श्रीः

स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक संस्करण

गुप्त-निबन्धावली

[हिन्दीके अन्यतम निर्माता स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तके मुख्य मुख्य लेखों और कविताओंका संग्रह]

प्रथम भाग

सम्पादक
श्री झाबरमल्ल शर्मा
श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रकाशक
गुप्त-स्मारक ग्रन्थ प्रकाशन-समिति,
१४७, हरिसन रोड, कलकत्ता।

प्रथम संस्करण] संवत् २००७ विक्रमाब्द [मूल्य १०)

निवेदन

"गुप्त-निबन्धावली" का प्रथम संस्करण बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका देहावसान होनेके पांच वर्ष बाद, अबसे प्रायः ३७ वर्ष पूर्व, पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी द्वारा सम्पादित होकर भारतमित्र कार्यालयसे प्रकाशित हुआ था। उसमें गुप्तजीके उर्दू और हिन्दी समाचार-पत्रोंके इतिहास विषयक लेखोंके अतिरिक्त "भाषाकी अनस्थिरता" वाले केवल १० निबन्ध ही समाविष्ट किये गये थे। उनके विभिन्न विषयक अवशिष्ट लेखोंको दूसरे भागमें प्रकाशित करनेका विचार था, किन्तु दूसरा भाग प्रकाशित होनेका अवसर ही नहीं आया। आगे चलकर 'भारतमित्र' भी कालके गालमें समा गया।

स्वर्गीय गुप्तजीके लेखोंको उनकी सरसता और सजीवताके कारण आज भी हिन्दी साहित्यानुरागी-समुदाय पढ़नेके लिये उत्कण्ठित है, किन्तु वे अप्राप्य हैं। 'गुप्त-निबन्धावली' के प्रकाशित होनेके पूर्व गुप्तजीकी रचनाओंमें से 'शिवशंभुके चिट्ठे' और 'स्फुट कविता' पुस्तकाकार छप चुकीं थीं। 'रत्नावली नाटिका' तथा 'हरिदास' नामकी दो पुस्तकें गुप्तजीने संस्कृत तथा बङ्ग भाषासे उलथा करके प्रकाशित करायीं थीं। उन्होंने ब्रजभाषाके प्रसिद्ध कवि नन्ददासजीकी दो कविताओंका संग्रह भी "रास पंचाध्यायी" के नामसे अपनी भूमिकाके साथ छपाकर 'भारतमित्र' के उपहारमें दिया था। इन सबकी मांग होनेपर भी आज वे नहीं मिलतीं।

गत वर्ष कर्तव्यानुरोधसे जब हम स्वर्गीय गुप्तजीकी स्मृतिमें उनकी विस्तृत जीवनी तथा संस्मरणोंके साथ एक "स्मारक ग्रन्थ" प्रस्तुत करनेको कृतसंकल्प हुए, तब हमें सबसे पहले उनकी अमर कृतियोंका संग्रह हिन्दी-संसारके समक्ष रखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई और तदनु-

सार आज परिवर्द्धित रूपमें यह "गुप्त-निबन्धावली" भेंट की जाती है। इसमें चरित-चर्चा, राष्ट्रभाषा और लिपि, शिवशंभुके चिट्ठे और खत, संवाद-पत्रोंका इतिहास, आलोचना-प्रत्यालोचना एवं स्फुट कविता, शीर्षक छै प्रकरणोंमें गुप्तजीके गद्य-पद्यात्मक मुख्य मुख्य लेखों तथा कविताओंका समावेश करनेका प्रयत्न किया गया है। खेद है कि आकार बहुत बढ़ जानेके कारण हमें कितने ही लेख द्वितीय भागके लिये रख लेने पड़े हैं। उनके साथ हम गुप्तजीके चुने हुए कुछ उर्दू गद्य-पद्यमय लेखोंको भी सम्मिलित करना चाहते हैं। यदि कोई सज्जन कृपया उनकी प्राप्तिमें सहायता देंगे तो हम उनके कृतज्ञ होंगे। गुप्तजीके लेख तथा कविताएँ सन् १८८५ ई० से सन १९०७ तकके जिन प्रसिद्ध उर्दू पत्रोंमें प्रकाशित होती रहीं, उनके नाम ये हैं :—अवधपंच, अखबारे चुनार, कोहेनूर, रहबर, विक्टोरिया गजट, भारत प्रताप, मखजन, उर्दू-ए-मोअल्ला और जमाना आदि।

इस समय हिन्दी राष्ट्रभाषा-पदारूढ़ हो रही है। गुप्तजी हिन्दीके एक ख्यातनामा निर्माता एवं उन्नायक थे। उनकी रचनाओंमें सन् १८९० से सन् १९०७ ई० तकका हिन्दीके विकासका इतिहास सुरक्षित है। अतएव आशा है, हिन्दीके हितचिन्तक और विशेषकर शिक्षार्थी प्रस्तुत "गुप्त-निबन्धावली" से लाभ उठायेंगे।

हाँ, एक विशेष निवेदन है, स्वर्गीय गुप्तजी बहुवचनमें भी 'वे' की जगह 'वह' का प्रयोग करते थे और अक्षरोंके नीचे बिन्दी (नुक्ता) नहीं लगाते थे। इसलिये उनकी रचनाओंमें हमें उनके नियमोंका विचार रखना पड़ा है। प्रूफ पढ़नेवालोंकी अनवधानता और दृष्टिदोषसे पुस्तकमें जहाँ तहाँ प्रूफ सम्बन्धी कितनी ही भूलें भी रह गई हैं, इसके लिये भी हम क्षमाप्रार्थी हैं।

गांधी-भवन कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ २७-१२-४९ ई०	विनीत झाबरमल्ल शर्मा बनारसीदास चतुर्वेदी

विशेष द्रष्टव्य

प्रस्तुत संग्रहमें दी गई रचनाओंके अतिरिक्त स्वर्गीय गुप्तजीकी विस्तृत जीवनी तथा उनके सम्बन्धमें हिन्दीके गण्यमान्य विद्वानों द्वारा लिखित संस्मरण और श्रद्धांजलियोंका संग्रह 'गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ' के नामसे गुप्तजीकी आगामी पुण्य-तिथि भाद्र शुक्ला ११ संवत् २००७ वि० (२२ सितम्बर, १९५०) के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है।

—प्रकाशक
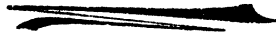
स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त

बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका जन्म हरियाना (पंजाब) के अन्तर्गत 'गुड़ियानी' नामक कस्बेमें विक्रम संवत् १९२२ (सन् १८६५ ई०) कार्तिक शुक्ला ४ को हुआ था। उनके पिताका नाम लाला पूरनमलजी था। वे गोयल गोत्रके अग्रवाल वैश्य थे।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके परवर्ती कालके हिन्दी-साहित्य सेवियोंमें यशस्वी गुप्तजी आगेकी पंक्तिमें दिखाई देते हैं। भारतेन्दुजीका समय सन् १८५० से १८८५ ई० तक समझा जाता है। भारतेन्दुजीके जीवन-कालमें गुप्तजी लेखनी धारण कर चुके थे। उस समय उर्दू फारसी साहित्यमें ही उनकी अनुरक्ति थी। उर्दूके सामयिक पत्रोंमें अध्ययनावस्थासे ही उनके लेख प्रकाशित होने आरम्भ हो गये थे।

सन् १८८६ ई० में गुप्तजी उर्दू पत्रकारके रूपमें साहित्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। पहले पहल वे "अखबारे चुनार" के सम्पादक बने थे। इसके पूर्व भारतवर्ष के प्रसिद्ध हिन्दी वक्ता व्याख्यान-वाचस्पति पं० दीन दयालुजी शर्मासे उनका मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। पण्डितजीके अनुरोधसे उन्हें "अखबारे चुनार" के बाद लाहौरके "कोहेनूर" का सम्पादन-भार ग्रहण करना पड़ा। सन् १८८८ से १८८९ ई० तक वे कोहेनूर के सम्पादकीय पदपर प्रतिष्ठित रहे।

सन् १८८९ ई० में श्रीभारतधर्म महामण्डलके महाधिवेशनके अवसर पर वृन्दावनमें महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयसे गुप्तजीकी भेंट हुई और मालवीयजीने उस समयके एक मात्र हिन्दी दैनिक "हिन्दोस्थान" के सम्पादकीय मण्डलमें सम्मिलित होनेके लिये उनको आग्रह पूर्वक आमंत्रित किया। "हिन्दोस्थान", कालाकांकरके हिन्दी हितैषी जमींदार

राजा रामपालसिंहजीकी उदारतासे प्रकाशित होता था और मालवीयजी उसके प्रधान सम्पादक थे। गुप्तजी सन् १८८६ के अन्तिम भागमें कालाकाँकर पहुंचकर "हिन्दोस्थान" के सम्पादकीय विभागमें सम्मिलित हुए। यहींसे उनकी नियमित हिन्दी सेवाका श्रीगणेश समझना चाहिये। महामना मालवीयजीकी योजनासे भारतेन्दु-सखा प० प्रतापनारायण मिश्रजी वहाँ बुलाये जा चुके थे। कुछ दिनों बाद गुप्तजी भी पहुँच गये। बाबू शशिभूषण चटर्जी वहाँ पहलेसे विद्यमान थे। गुप्तजी उर्दूके एक सुदक्ष पत्रकार थे, हिन्दी भाषाके साहित्यका मर्म समझनेमें उनको अधिक समय नहीं लगा। "सूर-सागर" और "रामचरित मानस" आपके नित्य पाठके ग्रन्थ थे और मनन पूर्वक पुस्तकावलोकन था आपका अभ्यास-सिद्ध व्यसन। कालाकांकरमें गुप्तजीने पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके सत्सङ्गका विशेष लाभ उठाया। वहीं मिश्रजीसे हिन्दी पद्य-रचनाका प्रकार सीखकर आप हिन्दीमें कविता रचना करने लगे थे। "भैंसका स्वर्ग" शीर्षक कविता गुप्तजीकी पहली हिन्दी रचना है। अपनी पद्य रचनाको वे 'तुकबंदी' कहा करते थे। वकालतकी परीक्षा देनेकी तैयारीके लिये जब पण्डित मालवीयजीने अवकाश ग्रहण किया, तब गुप्तजी ही "हिन्दोस्थान" के सम्पादकीय विभागके मुखिया रहे। प्रायः दो वर्ष उक्त पत्रसे उनका सम्बन्ध रहा। पश्चात् पत्रके स्वामी राजा साहबके विचारसे वे ब्रिटिश गवर्नमेंटके विरुद्ध बहुत कड़ा लिखनेवाले समझे गये और इसलिये उनको हटना पड़ा।

सन् १८९२ ई० में गुप्तजी पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीजी की प्रधानतामें "हिन्दी बङ्गवासी" के सहकारी सम्पादक नियुक्त होकर कलकत्ते आये। यहाँ चक्रवर्तीजीके अतिरिक्त पिनाहट निवासी स्वर्गीय पं० प्रभुदयाल पांडेजीका भी साथ रहा। प्रायः छै वर्ष तक "हिन्दी बङ्गवासी" में विविध विषयों पर गद्य एवं पद्यात्मक लेख लिखकर आपने हिन्दीके निर्माणमें सहायता पहुँचायी।

सन् १८९९ ई० से अपने जीवनके अन्त (सन् १९०७) तक गुप्तजी कलकत्तेके साप्ताहिक भारतमित्रके प्रधान सम्पादकीय आसन पर विराजमान रहे। प्रायः साढ़े आठ वर्ष "भारतमित्र" से उनका सम्बध रहा। उसके वही सर्वेसर्वा थे। उनकी लेखनीके प्रभावसे "भारतमित्र" ने अपने समयके सर्वप्रधान हिन्दी समाचार पत्र कहलानेकी सुख्याति लाभ की थी।

गुप्तजी राष्ट्रियताके प्रबल समर्थक और भारतीय संस्कृतिके दृढ़ानुयायी थे। वे सनातन धर्मी थे और अपने विचार निर्भय होकर प्रकट करते थे। कांग्रेसका जन्म होनेके साथ साथ उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्र में प्रवेश किया था, इसलिये उनमें राष्ट्रियताकी भावना आरम्भसे ही उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। बङ्गभङ्गके प्रश्नको लेकर देशमें जागृतिकी जो लहर आयी थी, उसको आगे बढ़ानेमें हिन्दी पत्रों में गुप्तजीका "भारत मित्र" ही अग्रणी था। गुप्तजीकी हिन्दी सरस, सरल और हृदय स्पर्शिनी होती थी। अपने समयके, अपने ढंगके वे एक ही मर्मज्ञ साहित्य पारखी थे।

गुप्तजीके सम्बन्धमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्यके इतिहासमें लिखते हैं—"वे अपने विचारोंको विनोदपूर्ण वर्णनोंके भीतर ऐसा लपेटकर रखते थे कि उनका आभास बीच बीचमें ही मिलता था। उनके विनोदपूर्ण वर्णनात्मक विधानके भीतर विचार और भाव लुके-छिपेसे रहते थे। यह उनकी लिखावटकी एक बड़ी विशेषता थी।" स्वर्गीय प० अमृतलालजीका कथन है— "पण्डित बदरीनारायण चौधरी हिन्दी बङ्गवासीको भाषा गढ़नेकी टकसाल कहा करते थे। उस समय टकसालका कोई सिक्का बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी छापके बिना नहीं निकलता था।" निस्सन्देह प्रचलित हिन्दीके स्वरूप-निर्माणमें गुप्तजीका बहुत बड़ा भाग है।

राष्ट्रभाषा हिन्दीके सम्बन्धमें गुप्तजीका अभिमत है :—

"हमारे लिये इस समय वही हिन्दी अधिक उपकारी है, जिसे हिन्दी बोलने वाले तो समझ ही सकें, उनके सिवा उन प्रान्तोंके लोग भी उसे कुछ न कुछ समझ सकें, जिनमें वह नहीं बोली जाती। हिन्दीमें संस्कृतके सरल सरल शब्द अवश्य अधिक होने चाहियें, इससे हमारी मूल भाषा संस्कृतका उपकार होगा और गुजराती, बंगाली, मराठे आदि भी हमारी भाषाको समझनेके योग्य होंगे। किसी देशकी भाषा उस समय तक काम की नहीं होती, जबतक उसमें उस देशकी मूल भाषाके शब्द बहुतायतके साथ शामिल नहीं होते।"

संवत् १९६४ तदनुसार सन् १९०७ ई० ता० १८ सितम्बर भाद्र शुक्ला ११ को दिल्लीमें गुप्तजीका स्वर्गवास हुआ।

माघ शुक्ला श्रीपञ्चमी, २००६ विक्रमाब्द
जसरापुर—खेतड़ी, राजस्थान। } झाबरमल्ल शर्मा

अनुक्रमणिका

१—चरित-चर्चा

२—राष्ट्र-भाषा और लिपि

३—शिवशम्भुके चिट्ठे और खत

४—संवाद्पत्रोंका इतिहास

उर्दू अखबार

हिन्दी अखबार

५—आलोचना-प्रत्यालोचना

स्फुट-कविता

देव-देवी स्तुति

राष्ट्रिय भावना

शोभा और श्रद्धा

बाल-विनोद

हँसी-दिल्लगी

विषय			पृष्ठ

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त

गुप्त-निबन्धावली

१

चरित-चर्चा

पं० प्रतापनारायण मिश्र

हिन्दी-साहित्यके आकाशमें हरिश्चन्द्रके उदय होनेके थोड़ेही दिन पश्चात् एक ऐसा चमकता हुआ तारा उदय हुआ था, जिसकी चमक-दमकको देखकर लोग उसे दूसरा चन्द्र कहने लगे थे। उस चन्द्रके अस्त हो जानेके पश्चात् इस तारेकी ज्योति और बढ़ी। बड़े हर्षके साथ कितनोहीके मुखसे यह ध्वनि निकलने लगी कि यही उस चन्द्रको जगह लेगा। पर दुःखकी बात है कि वैसा होनेसे पहलेही कुछ दिन बाद यह उज्ज्वल नक्षत्र भी अस्त हो गया। इसका नाम पण्डित प्रतापनारायण मिश्र था। हरिश्चन्द्रके जन्मसे ६ साल पीछे आश्विन बदी ६ संवत् १६१३ विक्रमाब्दको प्रतापका जन्म हुआ और उनकी मृत्युसे प्रायः दस साल पीछे आषाढ़ सुदी ४ संवत् १६५१ को शरीरान्त हुआ। हरिश्चन्द्रजी ३४ साल जिये और प्रतापनारायण ३८ साल।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्रमें बहुत बातें बाबू हरिश्चन्द्रकीसी थीं। कितनीही बातोंमें यह उनके बराबर और कितनीहीमें कम थे; पर एक आधमें बढ़कर भी थे। यह सब बातें आगे चलकर स्वयं पाठकोंकी

समझमें आजायेंगी। जिस गुणमें वह कितनीही बार हरिश्चन्द्रके बराबर हो जाते थे, वह उनकी कवित्वशक्ति और सुन्दर भाषा लिखनेकी शैली था। हिन्दी गद्य और पद्यके लिखनेमें हरिश्चन्द्र जैसे तेज, तीखे और बेधड़क थे, प्रतापनारायण भी वैसेही थे। दूसरे लोग बहुत सोच-सोच कर और बड़ी चेष्टासे जो खूबियाँ अपने गद्य और पद्यमें पैदा करते थे, वह प्रतापनारायण मिश्रको सामने पड़ी मिल जाती थीं। इस लेखके लेखकका और उनका कोई डेढ़ साल तक साथ रहा है। रहना, सहना, उठना, बैठना, लिखना, पढ़ना, सब एक साथ होता था। इससे उनके स्वभाव और व्यवहारकी एक-एक बात मूर्तिमान सम्मुख दिखाई देती है। वह बातें करते करते कविता करते थे, चलते-चलते गीत बना डालते थे। सीधी-सीधी बातोंमें दिल्लगी पैदाकर देते थे। तबसे कितनेही विद्वानों, पण्डितों, कवियोंसे मेल-जोल हुआ है, बातें हुई हैं और कितनोहीमें उनका-सा एक आध गुण भी देखनेमें आया है। पर उतने गुणोंसे युक्त, और हिन्दी साहित्य-सेवी देखनेमें न आया।

इस लेखकपर मिश्रजीकी बड़ी कृपा थी और यह भी उनपर बहुत भक्ति रखता था। इससे आज ग्यारह वर्ष तक इनके विषयमें कुछ न लिखा जाना बहुतोंके जीमें यह विचार उत्पन्न करेगा कि इतने दिन तक इनकी जीवनी क्यों न लिखी गई? इसका कारण यह है कि प्रतापकी जीवनी लिखनेके एक और सज्जन बड़े हकदार थे। वह स्वर्गीय पाण्डे प्रभुदयाल थे, जो प्रतापजीके प्रिय शिष्य और इस लेखकके साथी थे। जब-जब लिखनेका इरादा किया गया, पाण्डेजीने यही कहा कि अपने गुरुकी जीवनी हम आप लिखेंगे। स्वर्गीय महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंहजी भी पण्डित प्रतापनारायणजी पर बड़ी भक्ति रखते थे। उन्होंने जीवनी लिखनेका सब सामान पाण्डेजीको सौंप दिया था। दुःखकी बात है कि पाण्डेजी उनकी जीवनी न लिखने पाये और

स्वर्गगामी होगये। जीवनीकी बहुत अच्छी सामग्री भी पाण्डेजीके घर रह गई, जिसमें मिश्रजीका उर्दू और फारसीका दीवान भी है। मालूम नहीं, और किसीके पास उसकी नकल है या नहीं। इस समय तो वह अलभ्य होगया है। उधर बाबू रामदीनसिंहजीके स्वर्गवाससे भी बहुत-सी चीजें बेपता होगई हैं; जिनका मिलना कठिन होगया है। उनके सुयोग्य पुत्र बाबू रामरणविजयसिंहने उनमेंसे बहुत-सी चीजें तलाश की हैं; पर सब कहाँ, आधी भी नहीं मिलीं। बहुत-सी ऐसी चीजें थीं, जो प्रतापनारायणजीके साथ ही चली गईं। यह लेखक उस समय उनको बहुत सुलभ समझता था, पर अब वह दुर्लभ ही, नहीं; अलभ्य हैं। खैर, जो कुछ मौजूद है, उसीको लेकर प्रताप-चरित लिख डालना उचित समझा गया।

प्रतापनारायणजी स्वयं 'प्रताप-चरित्र'के नामसे अपनी एक जीवनी "ब्राह्मण" पत्रमें छापने लगे थे, पर उसके समाप्त करनेसे पहले आपही समाप्त होगये। आज हम उनकी लिखी हुई वह अधूरी जीवनी 'ब्राह्मण' खण्ड ५, संख्या २, ३, और ५ से उद्धृत करदेते हैं। इससे उनके वंश आदिका अच्छा परिचय मिलता है।

प्रताप-चरित्र

—"प्रताप-चरित्र, इस नामसे निश्चय है कि पाठकगण समझ जायँगे कि प्रतापनारायणका जीवन-चरित्र है, पर साथ ही यह भी हास्य करेंगे कि जन्म-भरमें स्वाँग लाये तो कोढ़ीका, प्रताप मिश्र न कोई विद्वान् है, न धनवान, न बलवान, उसके तुच्छ-जीवन वृत्तान्तसे कौन बड़ी मनोरंजना व कौन बड़ा उपदेश निकलेगा! हाँ, यह सच है! पर यह भी बुद्धिमानोंको समझना चाहिये कि परमेश्वरका कोई काम व्यर्थ नहीं है। जिन पदार्थोंको साधारण दृष्टिसे लोग देखते हैं, वे भी कभी-कभी ऐसे आश्चर्य्यमय उपकार-पूर्ण जँचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि

चमत्कृत हो रहती है ! एक घासका तिनका हाथमें लीजिये और उसकी भूत एवं वर्तमान दशाका विचार कर चलिये तो जो-जो बात उस तुच्छ तिनकेपर बीती हैं, उनका ठीक-ठीक वृत्तान्त तो आप जानही नहीं सकते, पर तौ भी इतना अवश्य सोच सकते हैं, कि एक दिन उसकी हरीतिमा (सबजी) किसी मैदानकी शोभाका कारण रही होगी ! कितने बड़े-बड़े रूप-गुण-बुद्धि-विद्यादि विशिष्ट उसके देखनेको आते होंगे, कितने ही क्षुद्रकीटों एवं महान् व्यक्तियोंने उसपर विहार किया होगा, कितने ही क्षुधित पशु उसके खाजानेको लालायित रहे होंगे, अथवा उसे देखके न जाने कौन डर गया होगा कि इसे शीघ्र खोदो, नहीं तो वर्षा होनेपर घर कमजोर कर देगा, सुखसे बैठना कठिन पड़ेगा। इसके अतिरिक्त न जाने कैसी मन्द प्रखर वायु, कैसी अपघोर वृष्टि, कैसे कोमल कठोर चरण-प्रहारका सामना करता-करता आज इस दशाको पहुँचा है ! कल न जाने किसकी आँखोंमें खटके, न जाने किस ठौरके जल व पवनमें नाचे, न जाने किस अग्निमें जलके भस्म हो इत्यादि। जब तुच्छ वस्तुओंका चरित्र ऐसे-ऐसे भारी विचार उत्पन्न कराता है, तो यह तो एक मनुष्यपर बीती हुई बातें हैं। सारग्राही लोग इन बातोंसे सैकड़ों भली बुरी बातें निकालके सैकड़ों लोगोंको चतुर बना सकते हैं ! सच पूछो तो पदार्थ विद्या, जिसके कारण बड़े-बड़े विद्वान् जन्म-भर दूसरे कामोंसे रहित होके केवल विचार करने व ग्रन्थ लिखनेमें संलग्न रहते हैं, जिसके कारण मर जानेपर भी हजारों वर्षतक हजारों बुद्धिमान उनकी महिमा करते हैं, उस विद्याका मूल बालकोंके और पागलोंके विचार हैं। हरी-हरी डालमें लाल-लाल पीले-पीले फूल कहाँसे आये ? पीला और नीला मिलके हरा क्यों बन जाता है ? इत्यादि प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर सोचके निकालनाही पदार्थ-विद्या है। फिर मनुष्य कहाँ जन्मा, क्या-क्या किया, क्या-क्या देखा, किस-किससे कैसा-कैसा

बर्ताव रखा, इन बातोंका वर्णन क्या लाभ-शून्य होगा ? विद्या जानकारी-का नाम है, फिर क्या मनुष्यका वृत्तान्त जानना विद्या नहीं है ? हमारी समझमें तो जितने मनुष्य हैं, सबका जीवन-चरित्र लेखनीवद्ध होना चाहिये। इससे बड़ा लाभ एक यही होगा कि उसकी भलाइयोंको ग्रहण करके, बुराइयोंसे बचके, दूसरे सैकड़ों लोग अपना भला कर सकते हैं। हमारे देशमें यह लिखनेकी चाल नहीं है, इससे बड़ी हानि होती है। मैं उनका बड़ा गुण मानूंगा, जो अपना वृत्तान्त लिखके मेरा साथ देंगे। जिसके अनेक मधुरफल लेखकोंको यदि न भी मिलें, तौ भी बहुत दिनों तक बहुत-से लोग बहुत कुछ लाभ उठावेंगे। देश-भक्तोंके लिये यही बात क्या थोड़ी है ? इसमें कोई गुण वा दोष घटाने-बढ़ानेका व कोई बात छिपानेका विचार नहीं है। सच्चा-सच्चा हाल लिखूँगा। इससे पाठक महोदय, यह न समझें कि किसीपर आक्षेप व किसीकी प्रशंसादि करूंगा। यदि किसी स्थानपर नीरसता आ जाय तौ भी आशा है क्षमा कीजियेगा, क्योंकि यह कोई प्रस्ताव नहीं है कि लेख-शक्ति दिखाऊँ, यह जीवन-चरित्र है।

अपना जीवन-चरित्र लिखनेसे पहले अपने पूर्व पुरुषोंका परिचय देना योग्य समझके यह बात सच्चे अहंकारसे लिखना ठीक है, कि हमारे आदि पुरुष भगवान् विश्वामित्र बाबा हैं, जिनके पिता गाधि महाराज और पितामह कुशिक महाराजादि कान्यकुब्ज देशके राजा थे। पर हमारे बाबाने राज्यका झगड़ा छोड़छाड़के निज तपोबलसे ब्रह्मऋषिकी पदवी ग्रहण की और यहाँ तक प्रतिष्ठा पाई कि सप्त-महर्षियोंमें चौथे ऋषि हुए। कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ—यह सप्तर्षि हैं। राज्य छोड़नेपर भी राजसी ढङ्ग नहीं छोड़ा ! यदि सातों ऋषियोंकी मूर्ति बनाई जाय तो क्या अच्छा दृश्य होगा कि तीन ऋषि इस पार्श्वमें होंगे, तीन उस पार्श्वमें और बाबा मध्यमें। निज तपोबलसे उन्होंने

स्वर्गमें बहुतसे तारागण एवं पृथ्वीपर बहुत अन्न और पशु भी उत्पन्न किये थे। यह बात अन्य मतावलम्बी अथच आजकलके अंग्रेजीबाज न मानें तो हमारी कोई हानि नहीं है, क्योंकि सभीके मत-प्रवर्त्तक और वंश-चालकोंके चरित्रोंमें आश्चर्य्यकर्म पाये जाते हैं। फिर हमीं अपने बाबाकी प्रशंसामें यह बातें क्यों न मानें? ईश्वर सर्व शक्तिमान है, वह अपने निज लोगोंको चाहे, जैसी सामर्थ्य दे सकता है! भगवान कृष्णचन्द्रका पर्वत उठाना, महात्मा मसीहका मुरदे जिलाना, हजरत मुहम्मदका चन्द्रमा काटना इत्यादि यदि सत्य हैं, तो हमारे बाबाका थोड़ीसी सृष्टि बनाना भी सत्य है। यदि उन बातोंका गुप्तार्थ कुछ और है, तो इस बातका भी गुप्तार्थ यह है कि जगतके अनेक पदार्थोंका रूप, गुण, स्वभाव आदि पहिले पहिल उन्होंने सबको बतलाया था। इसीसे उस कालके लोग उन पदार्थोंको विश्वामित्रीय सृष्टि, अर्थात विश्वामित्रकी खोजी और बताई हुई सृष्टि कहने लगे। यही बात क्या कम है? भगवान रामचन्द्रजीको हमारे बाबाने धनुर्वेद और योगशास्त्र भी सिखाया था। यदि आजकल हमारे भाई आकिन, मांझगांव आदिके मिश्र इस महत्वपर कुछ भी ध्यान दें, तनिक भी विचारें कि हम किनके वंशज हैं और अब कैसे हो रहे हैं तो क्या ही सौभाग्य है!!! इनके उपरान्त कात्यायन और किलक (अक्षील?) के सिवा और किसी महर्षिका नाम हमें नहीं मिलता, जिन्हें हम अपने पुरुखोंमें बतलावें। हाँ, परमनाथ (या पवननाथ) बाबा अनुमान होता है, कि तीनही चारसो वर्षके लगभग होगये हैं। वह बड़े यशस्वी थे। उनके साथ हमारे कुलका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) छोड़के विजयग्राम (बेंजेगांव) में कौन बाबा किस समय, क्यों आबसे थे, इसका पता नहीं मिलता। क्योंकि हमारे यहाँ इतिहास एवं जीवनचरित्र लिखनेकी चाल बहुत दिनसे नहीं रही। यदि किसी भाईके यहां श्रृङ्खलाबद्ध नामावली हो तो उसका मिलना कठिन है। अतः

हम अपने अगले पुरुखोंके साथ इससे अधिक अपना विवरण नहीं लिख सकते कि विश्वामित्र बाबाके वंशमें कात्यायन बाबाके गोत्रमें परमनाथ बाबाके असामी (वंशज) हैं। उन्नावके जिलेमें पूर्वकी ओर पाँच कोस बैजेगाँव नामका स्थान है, वहाँके हम मिश्र हैं। यद्यपि अब बैजेगाँव एक साधारणसा गाँव है, पर अनुमान होता है, किसी समय वह बड़ा दर्शनीय स्थान, विद्वानों (मिश्रों) का गाँव होगा। उसके निकट बृहत्-स्थल (बेथर) और उससे कुछ ही दूरपर विग्रहपुर (बिगहपुर) गाँव है। इन विजयग्राम, बृहत्स्थल, और विग्रहपुर नामक गाँवोंसे प्रगट होता है, कि इस प्रान्तमें किसी वीर पुरुषने अपना पराक्रम दिखाया होगा। पर यह बातें अभी तो अनुमान मात्र हैं। कोई भाई पुष्ट प्रमाण सहित लिखे तो बड़ा उपकार होगा। हमारी कुलदेवी 'गार्जी', कुलदेवता 'बूढ़े बाबू' कुल-पुरोहित 'सत्यशुक्ल', यजुर्वेद, धनुर्वेद उपवेद, शिव इष्ट देवता हैं। हमारे पिता श्रीसंकटाप्रसाद मिश्र, पितामह श्रीरामदयाल मिश्र, प्रपितामह सेवकनाथ मिश्र, वृद्धपितामह श्रीसबसुख मिश्र हैं। इनके आगे कौन महात्मा थे, यह नहीं मालूम। हम समझते हैं कि बहुत ही कम लोग होंगे जो वृद्धपितामहके पिताका नाम जानते होंगे। फिर हमारा ही क्या दोष है, जो न लिखसके। हमारे पितामह रामदयाल बाबाके एक भाई शिवप्रसाद बाबा थे। उनके पुत्र जयगोपाल काका और रामसहाय काका हमारे पितृचरणसे बड़े थे और हितचिन्तना भी बहुत करते थे। जयगोपाल काकाके पुत्र रामकृष्ण दादा भी पिताजीके हितैषी और उदार पुरुष थे। उनके पुत्र शिवरतन (यह भी व्यवहार कुशल और पिताजीके भक्त थे) दूसरे रामभरोसे हैं, जिनसे भाईचारा मात्र है। रामसहाय काकाके केवल एक कन्या (अनन्तदेवी) थी, वह विधवा स्वर्ग-वासिनी हुई। अतः उनका वंश उन्हींसे समाप्त हुआ। जयगोपाल काकाके दूसरी स्त्रीसे गुरदयाल, शिवदयाल, गौरीशंकर थे। उनमेंसे शिवदयाल दादाका वंश

नहीं है, उक्त दोनों भाइयोंका वंश है। पर अधिक स्नेह सम्बन्ध न होनेके कारण उनकी कथा लिखना भी कागज रंगना मात्र है। अतः हम अपने निज बाबा रामदयाल मिश्रसे आरम्भ करते हैं। इनके दर्शन हमने नहीं पाये, क्योंकि हमारे पितृचरण केवल नौ वर्षके थे, जब उन्होंने परलोक यात्रा की थी। सुनते हैं कि वे कवि थे, पर उनका काव्य देखनेमें नहीं आया। भारतके अभाग्यसे नगरोंमें तो काव्य-रसिक और कवियोंके सहायक मिलतेही नहीं, जो अपना रुपया लगाके उत्तमोत्तम कविताका प्रकाश किया करते हैं। उन्हें तो अभागे भारतीय हतोत्साह करही देते हैं। यदि एक साधारण गाँवमें एक साधारण गृहस्थका परिश्रम लुप्त होगया तो आश्चर्य ही क्या है? भगवान तुलसीदास, सूरदास आदिको हम कवियोंमें नहीं गिनते। वे अवतार थे कि उन्होंने छातीपर लात मारके अपनी शक्ति दिखाई है। नहीं तो कवि, पण्डित, प्रेमी, देशभक्त, यह तो दुनियाँसे न्यारे रहते हैं। इन्हें दुनियाँदार क्यों पूछने लगे? हमें शोच है कि अपने बाबाकी कविता प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि पिताजी नौ वर्ष की आयुमें पितृहीन हुए। १४ वर्षकी आयुमें उन्हें गाँव और घर छोड़के कुटुम्ब पालनार्थ परदेश आना पड़ा। ऐसे कुसमयमें कविता-संग्रह करना कैसे सम्भव था? इससे हमें अपने पिताहीका ठीक-ठीक चरित्र थोड़ासा लिखनेकी सामर्थ्य है।

हमारे पितृचरणके दो बड़े भाई और थे। (१) द्वारिकाप्रसाद काका,—यह निस्सन्तान स्वर्ग गये। (२) यदुनन्दन काका,—इनका विवाह मदारपुरके सामवेदियोंके कुलमें हुआ था। इस नगरके परम प्रतिष्ठित श्रीप्रयागनारायण तिवारी स्वर्गवासी हमारे दादा थे, क्योंकि हमारी चाची उनके चाचा श्रीद्वारिकाप्रसाद त्रिपाठीकी कन्या थीं। उनके एक पुत्र अम्बिकाप्रसाद दादा थे। वह हमारे पितृचरणके बड़े भक्त थे, पर चौदह वर्षकी अवस्थामें परलोक सिधारे। हमारी दोनों चाची भी

पिताजीसे बड़ी प्रीति करती थीं। पर एक चाचीका हमें दर्शन नहीं हुआ। दूसरी चाची सदा पुत्रकी भाँति हमारे जन्मदाताको जानती थीं। पर हमारे अभाग्यसे हम तीन वर्षके थे, तभी परमधाम यात्रा करगई। यह श्रीरामानुज स्वामीके सम्प्रदायकी थीं, क्योंकि इनके पितृ-कुलका यही धर्म था। इसीसे हमारे घरमें बहुतसी रीतें हमारी चाचीके पितृ-कुलकी प्रचरित हुईं। मेरा नाम भी उसी ढंगका हुआ। हमारे पिता नौ वर्षके थे, तब निज पितासे वियुक्त हुए थे। फिर थोड़ ही कालमें उनकी माता भी वैकुण्ठ गई। अत: हमको यह लिखनेका गौरव है कि हमारी चाचीके हम भी वात्सल्य-पात्र थे, हमारे पिता भी। यह महात्मा वाल्यावस्थामें पिता-माताके वियोगसे घरकी निर्धनताके कारण जगत्-चिन्तामें उसी समय फंस गये, जिस समय खेल कूदके दिन होते हैं। विजय-ग्रामसे डेढ़ कोसपर मवैया गाँव है। वहांके पण्डित दयानिधि बाबा रहते थे, उनसे पढ़ने लगे। वर्ष दिन पढ़ा, फिर एक पेड़परसे गिरे, पाँव टूटा नहीं, पर लड़खड़ाने लगा। इससे कई महीने पड़े रहे, फिर कानपुर चले आये। यहां श्रीशिवप्रसादजी अवस्थी और श्रीरेवतीरामजी त्रिपाठी (प्रयागनारायणजीके पिता) ने उनपर बड़ी कृपा-दृष्टि रक्खी। कुछ दिन पीछे अवधके बादशाह श्री गाजीउद्दीन हैदरके दारोगा जनाब आजम अलीखां साहबके दीवान श्रीमहाराज फतेहचन्दजीके यहाँ नौकर हुए और अवधप्रान्तके इब्राहीमपुर नामक गाँवमें काशीरामके वाजपेयी-वंशमें विवाह किया। हमारी माता श्रीमुक्ताप्रसादजी वाजपेयीकी कन्या थीं। यह व्याह और यह नौकरी इन्हें ऐसी फलीभूत हुई कि *.... ”

× × × ×

* 'ब्राह्मण, पत्रके— खण्ड ५ वेंकी दूसरी, तीसरी और ५ वीं संख्यामें पण्डित प्रतापनारायण मिश्रजी द्वारा लिखित अपने चरित्रका इतना ही अंश प्रकाशित हुआ था।

क्या अच्छा होता, जो पण्डित प्रतापनारायण मिश्र अपनी जीवनी आप लिख डालते। बड़े मौकेसे उन्होंने अपने 'ब्राह्मण' पत्रमें अपनी जीवनी स्वयं लिखनी आरम्भ की थी। उसके बाद वह चार-पाँच साल तक जीते रहे थे। यदि थोड़ी-थोड़ी भी लिखते तो बहुत-कुछ लिख जाते। अपनी जीवनीका जितना अंश वह 'ब्राह्मण' के तीन अङ्कोंमें लिख गये हैं, उसे पढ़कर बार-बार जीमें यही होता है कि यदि सब नहीं, तो अपने पिताके सम्बन्धकी पूरी बातें और अपने लड़कपनकी बातें तो लिखही जाते। प्रसिद्ध लोगोंकी जीवनियाँ बहुत करके दूसरोंही-की लिखी हुई होती हैं, पर बहुतसे प्रसिद्ध लोगोंने अपनी पूरी या अधूरी जीवनियाँ स्वयं भी लिखी हैं और वह दूसरोंकी लिखी जीवनियोंसे कम कामकी नहीं हुई, वरञ्च कितनेही अंशोंमें बढ़कर हुई हैं। मनुष्यकी कितनीही बातें और कितनेही विचार ऐसे हैं, जिनको यह स्वयं ही भली-भाँति जानता है और लिख सकता है।

हरबर्ट स्पेन्सरने अपनी जीवनीके सम्बन्धकी बहुत-सी बातें लिखी हैं। वह ऐसी हैं कि यदि उन्हें वह स्वयं न लिखते तो कोई न लिखता और न कोई जानता। पण्डित प्रतापनारायणने अपनी लिखी जीवनी-में अपना वंश परिचय जिस उत्तम रीतिसे दिया है, उससे कहीं बढ़कर अपने पिताका हाल लिखते और अपना हाल, तो वह न जाने कितना सुन्दर लिखते। हमने उनके मुँहसे उनके लड़कपनकी कितनीही बातें सुनी हैं। सुनकर बड़ी हँसी आती थी, बड़ा आमोद होता था, बड़ा आनन्द आता था। उनके कहनेका ढंग बड़ा बाँका था। बात करते समय सबका ध्यान अपनी ओर खींच लेनेकी शक्ति उनमें विलक्षण थी। इससे कहते हैं कि यदि वह अपने लड़कपनकी बातें भी लिख जाते तो विचित्र होतीं। इसके सिवा वह मनके बड़े साफ थे। अपने किसी दोषको छिपाना भी दोष समझते थे। सब कह डालते थे। ऐसे खरे आदमीकी लेखनीसे न जाने कितनी खरी बातें निकल जातीं। पर

वह सब बातें तो होने नहीं पाईं और अब उसके होनेका कोई उपाय भी नहीं है। लाचार, जो कुछ मौजूद है, उसीसे काम लिया जाता है।

वंश-परिचय

अपने वंशका परिचय देते हुए पण्डित प्रतापनारायणजीने अपने वृद्ध प्रपितामह तकका नाम बताया है। उनके बड़े, उन्नाव जिलेके बैजेगाँवमें रहते थे। वहीं उनका जन्म आश्विन बदी ६ सोमवार संवत् १९१३ को हुआ। उनके पिता पण्डित संकटादीन मातृ-पितृ-विहीन होकर थोड़ीसी उमरमें कानपुर आये थे। इससे पहले उनका कानपुरसे कुछ सम्बन्ध न था। उनके विषयमें इतना ही मालूम हुआ है कि वह एक प्रतिष्ठित ज्योतिषी थे। कानपुर जूट मीलके मैनेजर बीयर साहब उनके ज्योतिषके गुणोंपर मोहित हुए थे। एकबार बीयर साहबको तार मिला कि उनकी मेम विलायतमें बहुत बीमार है। साहब बहुत घबरा गये और सोचने लगे कि क्या करना चाहिये। उनके हिन्दुस्तानी क्लर्कोंने उनसे पण्डित संकटादीन मिश्रकी बात कही। साहबने मिश्रजीको बुलाया और अपनी मेमकी बीमारीके विषयमें उनसे प्रश्न किया। मिश्रजीने थोड़ीही देरमें उत्तर दिया कि आपकी मेम आपसे मिलनेके लिये बहुत जल्द आना चाहती है। साहबको मिश्रजीकी बातोंपर कुछ विश्वास न हुआ। उन्होंने समझा कि यह बात वाहियात है। पर दोही दिनमें जब मेम उनके सामने आ खड़ी हुई तो साहब बहुत चकराये। उनके आश्चर्यका कुछ ठिकाना न रहा और तबसे वह मिश्रजीका बहुत आदर करने लगे।

शिक्षा

प्रतापजीके पिता बहुत बालक प्रतापको अपने साथ कानपुर लाये। वह ज्योतिषी थे, इससे उन्होंने पुत्रको भी ज्योतिष पढ़ाना आरम्भ किया। पितासे प्रताप कुछ दिन शीघ्रबोध और मुहूर्तचिन्तामणि

पढ़ते रहे। पर इन पोथियोंमें प्रतापजीका मन न लगा, तब वह अंग्रेजी स्कूलमें दाखिल किये गये। वहाँ उन्होंने कुछ सीखा जरूर, पर केवल मेधाके प्रतापसे। पढ़नेमें परिश्रम उन्होंने कभी न किया और न कभी जी लगाकर पढ़ा। इसीसे उनकी पढ़ाई सब प्रकार अधूरी रही, तिस-पर भी वह अंग्रेजी खासी बोल सकते थे। आध-आध घण्टा, घण्टा-घण्टा, बराबर अंग्रेजीमें बातें किये जाते थे; अंग्रेजी अखबार पढ़लेते थे, कभी इच्छा करते तो कुछ अनुवाद भी कर लेते थे, पर बड़ी अनिच्छासे। अंग्रेजी पोथियों और अखबारोंके पढ़नेमें वह जरा मन न लगाते थे। कोई इसके लिये दबाता था तो भी परवाह न करते थे। मुंह बनाके कागज या पोथी फेंक देते थे। यदि वह साल दो साल जी लगाकर अंग्रेजी पोथियाँ या अखबार पढ़ते तो अच्छे अंग्रेजी-पढ़ोमें उनकी गिनती होती। यही हाल उनकी संस्कृतका था। छः-छः और आठ-आठ सालसे जो विद्यार्थी कौमुदी रटते थे अथवा जिन पण्डितोंको कथा कहते युग बीत गये थे, उनके साथ हमने प्रतापनारायणजीको बातें करते देखा है। यह उनसे कुछ जल्दी बोलते थे और अच्छा बोलते थे, पर रुचि आपकी संस्कृत पुस्तकोंमें भी वैसीही थी, जैसी अंग्रेजी पुस्तकोंमें।

उर्दूमें भी वह बन्द न थे, उर्दूमें उनकी बहुत-सी कविता मौजूद हैं। गजलें लिखते थे, लावनियाँ लिखते थे, मसनवी लिखते थे। उर्दूमें उनका एक छोटा-सा दीवान भी देखा था। फारसी गजलोंपर अपने उर्दू मिसरे लगाकर उनसे मुखम्मस वगैरह बनाते थे। गजलके हर टुकड़े-में दो-दो चरण होते हैं, उनपर तीन-तीन चरण और जोड़, मुखम्मस बनानेकी रीति उर्दूमें बहुत प्रचलित है। प्रतापने फारसी गजलोंपर अपने मिसरे लगा-लगाकर बहुतसे मुखम्मस बनाये थे। उनमेंसे कितने ही ऐसे थे कि सुनकर हँसते-हँसते आतोंमें बल पड़-पड़कर जाते थे। ऐसी कविताएँ अधिक उनको जबानी याद थीं। शायद अब उनका

मिलना भी कठिन है। सारांश यह है कि फारसी-उर्दू कविताको वह खूब समझते थे। उर्दूमें कविता करते थे और फारसीमें भी कभी-कभी कुछ कहलेते थे। फारसीकी कई कविताओंका उन्होंने हिन्दी अनुवाद किया है। इस प्रकारके अनुवाद बहुधा दिल्लगीके लिये किया करते।

जिन दिनोंमें स्वामी दयानन्दजीके नामकी बड़ी धूम-धाम पड़ी थी, उन दिनों मुरादाबादमें मुन्शी इन्द्रमणिके नामकी भी बड़ी धूम मची थी। आदिमें स्वामीजीका बहुत कुछ मेल भी था। उन दिनों एक खत्री मुसलमान हो गया था। उसने हिन्दुओंके विरुद्ध उर्दूमें एक पोथी लिखी थी। मुंशीजीने उत्तरमें एक फारसी पुस्तक लिखी। तब दूसरे मुसलमान उस नये मुसलमानकी हिमायतको खड़े हुए। मुंशीजीने उनकी पोथियोंके उत्तरमें भी कई पोथियां लिखीं। यह सब पोथियाँ पण्डित प्रतापनारायणने पढ़ डाली थीं। एक बार इन्द्रमणि कानपुर गये थे, प्रताप उनसे मिलने गये और वहाँ उन्होंने अपनी कविताएँ सुनाईं, जिनका फारसीसे हिन्दीमें अनुवाद किया था। वह अनुवाद प्रायः उन कविताओंके थे जो मुन्शीजीने मुसलमानोंके उत्तरमें लिखी थीं। मुंशीजी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। आपने प्रतापसे पूछा कि फारसी कहाँ तक पढ़े हो? प्रतापने जवाब दिया—'तोहफतुल इसलाम' और 'पादाशे इसलाम' तक। मुंशीजी सुनकर हँस पड़े। हँसनेका कारण यह था कि उक्त दोनों फारसीकी पोथियाँ वही थीं, जो मुंशीजीने मुसलमानोंके उत्तरमें लिखी थीं।

हिन्दीका प्रतापनारायणको बड़ा शौक था। हिन्दी किताबें और हिन्दी अखबार वह दिन रात पढ़ा करते थे। जो पोथियाँ या अखबार रद्दी समझके फेंक दिये जाते थे, उन्हें भी वह पढ़ डालते थे। जिस समय हमने उनको देखा, उस समय उनकी शारीरिक अवस्था अच्छी न

थी ; बड़े कमजोर थे। इससे लेटे-लेटे ही पढ़ा करते थे और लेटे-लेटे ही लिखा करते थे ; बैठकर लिखने-पढ़नेकी शक्ति उनमें कम थी। उनके अक्षर एक विशेष सूरत-शकलके थे। पंक्तियाँ सीधी नहीं लिख सकते थे। टेढ़ी भी यहाँ तक लिखते थे कि दो-दो अढ़ाई-अढ़ाई अंगुलका फासिला पड़ता था और फिर उसके नीचे टेढ़ी-टेढ़ी पंक्तियाँ लिखे चले जाते थे। उर्दू-हिन्दीमें ऐसा अधिक करते थे, अंग्रेजीमें कम। उर्दूमें भी उनको अच्छे लेख लिखनेकी शक्ति थी। भारत-प्रतापमें उनके कई उर्दू लेख छपे थे, जो एक दम उर्दू ढंगपर थे। हिन्दी वह कैसी जानते थे यह बात यहाँ नहीं बताई जा सकती, वह आगे चलकर मालूम होगी। उनकी हिन्दीहीको लेकर उनकी जीवनी लिखी जाती है।

—भारतमित्र १९०७ ई०

पं० देवकीनन्दन तिवारी

जुई महीने हुए "प्रयाग-समाचार" के जन्मदाता पण्डित देवकीनन्दन तिवारीका देहान्त हो गया। "प्रयाग-समाचार"में उनकी मृत्युके विषयमें हमने एक लाइन भी छपी हुई न देखी। दूसरे किसी हिन्दी अखबारमें दस पांच पंक्तियोंमें उनकी मृत्युकी खबर छपी हुई देखी थी, उसका नाम याद नहीं रहा। खबर पढ़कर हमने कई एक हिन्दी-प्रेमियोंको उनके विषयमें पत्र लिखे। किसीसे इतना न हुआ कि उनके विषयकी कुछ मुख्य-मुख्य बातें लिख भेजते। केवल प्रयागके "हिन्दी प्रदीप"के वृद्ध सम्पादक पूज्यवर पण्डित बालकृष्ण भट्टजीने दो चार बातें उनके विषयमें लिख भेजी हैं। उन्हींको प्रकाशित कर देनेके सिवा इस समय अन्य उपाय नहीं है। अब भी हमें आशा है कि कोई सज्जन उनके जीवन और काम सम्बन्धी आवश्यक बातें लिखनेकी चेष्टा करेंगे। हिन्दीके एक सुयोग्य लेखकको भाग्यने तो कंगालीमें रखा, पर हिन्दीके प्रेमी भी उसे गुमनामीके हवाले करते हैं, यह बड़े ही आक्षेपकी बात है! भट्टजीने तिवारीजीके विषयमें जो कुछ लिख भेजा है, वह इस प्रकार है:—

"पण्डित देवकीनन्दन तिवारी प्रयागसे २० कोस दक्षिण ओर-स्थित एक गाँवके निवासी थे। बहुत थोड़ी उमरमें वह किसी कारणसे बङ्ग देशको चले गये थे। वहां बङ्ग-साहित्यका उन्होंने अच्छा अभ्यास किया। बङ्गालमें उन दिनों ब्राह्म-सामाज और केशवचन्द्र सेनकी बड़ी धूम थी। बंगालसे लौटकर जब वह प्रयागमें आये और उनसे हमारा परिचय हुआ, तो उनकी उमर २५ सालके लगभग थी। उस समय उनकी झुकावट ब्राह्मधर्मकी तरफ थी। जाति-पांति नहीं मानते थे। उस समय उनके ठीक वैसे ही खयाल थे, जैसे कि आजकलके यङ्ग बंगालके होते हैं। पीछे

उन्होंने बहुत तरहके रङ्ग बदले। एक बार बातों ही बातोंमें हमने पाणिनि और पतञ्जलिकी प्रशंसा की। उसपर वह बहुत बिगड़े और हमसे रूठ गये। हमें ठीक याद नहीं कि यह चर्चा किस प्रसंगसे चली थी। स्वरका विषय वह अच्छा जानते थे। हारमोनियम, तबला आदि खूब बजा सकते थे, तथा लोगोंको सिखाते भी थे। बहुत दिनों तक यही उनकी जीविका थी। प्रयागके अमीरोंमें कई एक उनके ऐसे चेले हैं, जिन्होंने उनसे बाजा बजाना सीखा है। उस समय प्रयागमें एक नाटकका दल हुआ था, उसमें तिवारीजीको मोशन मास्टर और बैण्ड मास्टरका पद मिला। वह स्वयं बहुत अच्छा एक्ट करते थे। उन्होंने कई एक नाटक और प्रह-सन बनाये। पीछे "प्रयाग समाचार" निकालना आरम्भ किया, जो अबतक चलता है। फिर नाट्यपत्र निकालने लगे। ब्राह्मणोंकी एक सभा बनाई थी, जिसके कई अधिवेशन माघ मेलेमें त्रिवेणी-तटपर हुए। उनमेंसे दो एक अधिवेशन तो बहुत ही धूमधामके हुए। बहुतसे गरीब ब्राह्मणोंके लड़कोंका यज्ञोपवीत प्रतिवर्ष करा देते थे। उन्होंने एक पाठशाला जारी की थी, जो बहुत दिन तक रही। वह भिक्षाघटके द्वारा चलती थी। बहुत-से घरोंमें उन्होंने भिक्षाके पात्र रखवा दिये थे। उनसे कई मन अन्न हर महीने आजाता था। पर यह पाठशाला इसलिये न चली कि वह सब ब्राह्मण बालकोंकी एक पंक्ति किया चाहते थे। ऐसा होना हमारे इस प्रान्तमें सर्वथा असम्भव है, और नई बात है। कवितामें उनकी ऐसी उत्तम प्रतिभा थी कि, संस्कृत अच्छी तरह न जानने तथा कोई ग्रन्थ ठीक ठीक न पढ़नेपर भी बीसों श्लोक बैठे-बैठे बना डालते थे। वाल्मीकि रामायणका शब्दार्थ पद्यात्मक अनुवाद उन्हींका बनाया हुआ, सातों काण्ड छपा हुआ, मौजूद है। वह तुलसीदासजीकी कविताकासा चटकीला तो नहीं है, पर वाल्मीकिका भाव उससे बिल्कुल प्रगट हो जाता है। अद्भुत प्रतिभाके मनुष्य थे। उन्हें कोई सहायक न मिला, नहीं तो बड़े-बड़े

काम कर डालते। अन्तमें उन्होंने एक शारदा-मठ बनवाया, जिसमें एक सरस्वतीकी मूर्ति स्थापित की। उसका उद्देश्य यह था कि जिनको स्थान न मिले, वह वहाँ एकत्र होकर क्लब, कमेटी, सभा आदि किया करें।। अन्तमें यह सनातन-धर्म्मके बड़े पोषक और आर्य्य-समाजके प्रतिपक्षी होगये थे, यद्यपि पहले स्वयं ब्राह्मधर्म्मकी ओर झुके हुए तथा न्यारे-न्यारे चौकेके बड़े विरोधी थे। आलाराम स्वामीपर जब मुकद्दमा कायम हुआ तो आपने उनकी बड़ी मदद की थी।"

यहाँ तक तो वह सब बातें हुईं, जो भट्टजी महाराजने कृपाकरके लिख भेजी हैं। अब हम वह बातें लिखते हैं, जो स्वयं जानते तथा दूसरोंसे सुनी हैं। सन् १८८९ ईस्वीके आरम्भमें पण्डित श्रीदीनदयालु शर्म्माने श्रीवृन्दावन-धाममें भारतधर्म्म-महामण्डलका दूसरा बड़ा अधिवेशन कराया था। दूर दूरके धर्म्मपरायण हिन्दू उस अवसरपर वहाँ पधारे थे। प्रयागसे पण्डित मदनमोहनजी मालवीय पधारे थे। उस समय पण्डित देवकीनन्दन तिवारीजी भी वहाँ पधारे थे। लम्बे पतले आदमी थे, रङ्ग साँवला और उमर ढलती हुई। साथ कई एक शिष्य थे, जो उनकी बनाई पाठशालामें पढ़ते थे। अपनी बनाई पोथियोंकी गठड़ी बगलमें रखते थे, उनको बेचते और बाँटते भी जाते थे। एक मोटी 'कमरी' पहने हुए थे, सिरपर एक गोल बड़ी भद्दी टोपी थी, जो उस प्रान्तके पुरानी चालके ब्राह्मण बहुधा पहना करते हैं। उनके वेश आदिसे उनकी गरीबी जाहिर होती थी, पर बड़े तेजस्वी थे। बड़े बड़े पण्डितों और उपदेशकोंने महा-मण्डलसे आने जानेका भाड़ा लिया था, पर उन्होंने नहीं लिया। कहा, इसी तरह काम चल जाता है। ऐसे कामोंमें भाड़ा लेना मैं पसन्द नहीं करता। गरीब थे तो क्या, गरीबीमें इतनी बेपरवाई बहुत कम लोग दिखा सकते हैं। तिसपर भी एक गुमनामीकी हालतमें वह हिन्दीकी जितनी सेवा कर गये हैं, वह भट्टजीकी चिट्ठीसे स्पष्ट है। पूरी वाल्मीकि-

रामायण हिन्दीमें छन्दोबद्ध करके डाल गये हैं।

प्रहसन लिखनेमें वह बड़े प्रवीण थे। उन्होंने कई एक प्रहसन लिखे। उनमेंसे हमने केवल "जयनारसिंहकी" देखा है। और एक प्रहसन उनका अधूरा था, उसका नाम था "सबके गुरु गोबर्द्धनदास।" पण्डित प्रतापनारायण उसकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे और उसके एक गीतको बड़ा आनन्द ले-लेकर गाया करते थे। पण्डित मदनमोहन मालवीयने एक दिन कहा था कि हिन्दीमें नाटक लिखना पण्डित देवकीनन्दनजीसे सीखना चाहिये। सुना है कि नाट्यपत्रमें उन्होंने 'गुरु गोबर्द्धनदास' वाला प्रहसन पूरा किया है और दूसरे कई प्रहसन आदि लिखे हैं। प्रयागमें उनकी बनाई और भी कितनीही चीजें हैं। हिन्दी-हितैषियोंका कर्तव्य है कि उनका पता लगावें और उनकी रक्षाका उपाय सोचें। थोड़ीसी चेष्टासे वह इन सब लुप्त होते हुए रत्नोंका उद्धार कर सकते हैं।

"जयनारसिंहकी" एक प्रान्तीय प्रहसन है। प्रान्तीयही उसकी भाषा रखी गई। झाड़-फूंक करनेवाले और उनके मूर्ख लालची और ठग चेले कैसे बोलते हैं, देहातकी भले घरकी स्त्रियोंकी कैसी बोली है, देहातकी दाई और मजदूरनियाँ कैसे बोलती हैं, इसका इस प्रहसनमें बड़ा ध्यान रखा गया है। भाषा, भाव और प्लाट, तीनोंके लिहाजसे यह प्रहसन इतना सुन्दर हुआ है, कि हिन्दीमें उसका सानी मिलना कठिन है। हिन्दी लिखनेवालोंपर कुछ लोग इलजाम लगाते हैं कि वह अधिकतर बङ्गभाषाकी पोथियोंसे चोरी और तरजमा करते हैं, पर जो लोग तिवारीजीके इस प्रहसनको ध्यानसे देखेंगे, वह कहेंगे कि वह अछूता है और बङ्गभाषामें भी कोई उस ढङ्गका उतना सुन्दर प्रहसन नहीं है। तिवारीजीमें यह गुण था कि सदा अपने खयालसे काम लेते थे। दूसरे हिन्दी-लेखक उनकी चालकी पैरवी करें तो हिन्दीकी बहुत कुछ इज्जत बढ़ा सकते हैं और नेकनामी पा सकते हैं।

तिवारीजीकी बनाई पुस्तकोंमेंसे हमारे पास तीन हैं। एक "जय-नारसिंहकी," दूसरी "बुढ़िया-बखान" और तीसरी "कबीर।" हम किसी दूसरे लेखमें इनकी बात कहेंगे। यदि कोई सज्जन उनकी बनाई और पुस्तकोंका भी हमें पता देंगे तो हम बहुत आभारी होंगे।

—भारतमित्र १९०५ ई०

साहित्याचार्य्य पं० अम्बिकादत्त व्यास

काशीमें उदासी छाई हुई है! बिहार शोकसे विह्वल है! भारतवर्षकी शिक्षित मण्डलीके मुखोंकी कांति मलिन हो रही है। आरा, छपरा और बाँकीपुरकी विद्वज्जन-मण्डलीकी आखें डबडबाई हुई हैं! हिन्दी-साहित्यकी फूली-फुलवारीपर पाला पड़ गया! भाषा-कविताकी खिली वाटिकामें ओले गिर गये! जिनकी यह दिव्य मूर्ति देखते थे, आज वह भारत-रत्न, साहित्याचार्य्य पण्डितवर अम्बिकादत्त व्यास इस संसारमें नहीं हैं! बिलकते हुए बालक पुत्र, कन्याको छोड़कर, रोती हुई स्त्री और कुटुम्बियोंको छोड़कर, शोकग्रस्त-मित्रमण्डलीको छोड़कर गत मार्गशीर्ष बदी १३ सोमवारको रातके तीन बजे उन्होंने काशीपुरीमें प्राण-त्याग किया। भगवान् विश्वनाथकी पुरीमें उनकी राखकी ढेरी होगई!

भाषाका वह अद्वितीय सुवक्ता अब नहीं है। वह वक्तृताके मिष मोहनी मन्त्र फूंकनेवाला अब नहीं है। जो १० सालकी उमरसे साहित्य-संसारमें उदित होकर, अपनी अपार ज्योति फैला रहा था; वह प्रतिभा-शाली साहित्याचार्य्य अब इस संसारमें नहीं है। आज भारत, रत्न-विहीन है, साहित्य, आचार्य्य-विहीन है, शास्त्र, व्यास-विहीन है, सनातन हिन्दू-धर्म, अम्बिकादत्त-विहीन है। आज भारतकी वह चीज लुट गई है, जिसका फिर प्राप्त होना कठिन है! चारों ओरसे लम्बी साँसके साथ यही सुनाई देता है कि हा! व्यासजी!

पण्डित अम्बिकादत्तजी मारवाड़ी गौड़ ब्राह्मण थे। जयपुरके पास मानपुर गाँव, इनके बड़ोंका निवासस्थान था। वहाँ पण्डित ईश्वररामजी गौड़ ज्योतिषी रहते थे। उनके पुत्र पण्डित राजारामजी काशीमें आकर बसे। वहाँ वह अपने समयके एक नामी ज्योतिषी हुए। उनके पुत्र पण्डित दुर्गादत्तजी 'दत्त कवि'के नामसे प्रसिद्ध थे। दत्तजी काशी और जयपुर दोनों स्थानोंमें रहते थे। उनके द्वितीय पुत्रका जन्म जयपुर सिलावटोंके मुहल्लेमें चैत्र सुदी ८ संवत १९१५ को हुआ। आपही पण्डित अम्बिकादत्तजी व्यास थे।

एक साल पीछे व्यासजीके पिता सकुटुम्ब काशीजीमें चले आये। पाँचवें वर्षसे व्यासजीकी शिक्षा आरम्भ हुई। पढ़ने-लिखनेमें आप बड़े तेज थे। शतरञ्ज, ताश आदि-खेलनेमें भी वैसेही तेज थे। इन खेलोंको भी उन्होंने बाल-कालमें खूब सीखा। लिखने-पढ़नेमें इतने तेज थे कि १० सालकी उमरमें आपने भाषा कविता बनाने तकका अभ्यास कर लिया था, और उस तरह याद तो कितनी ही चीजें करली थीं। ११ सालकी उमरमें व्यासजीने जो समस्या-पूर्ति की थी, उसे देखकर लोग दंग रह गये थे!

समस्या थी—"जिन तोरहु नेहको काँचो तगा—"इसकी पूर्ति व्यासजीने इस प्रकार की थी :--

मुरली तजिके तलवार गही, अरु जामा गह्यो तजि पीरो झगा।
तजि अम्बिकादत्त सबै हमहूँ, अहै साँचहु कौनको कौन सगा॥
कहियो तुम ऊधव साँवरेसों, इहाँ प्रेमको पन्थ पगा सो पगा।
इन जोग-विराग झटक्कनसों, जनि तोरहु नेहको काँचो तगा॥

इसी प्रकार और भी समस्या-पूर्तियाँ करके बालक व्यासजी बहुत कुछ प्रशंसा-भाजन हुए।

इसी छोटी-सी उमरमें व्यासजीने कथा कहना सीखा और

कौमुदी पढ़ने लग गये थे। कथा आप ऐसी सुन्दर कहते थे कि सबका मन मोह लेते थे। कविता-शक्ति इनकी इतनी अद्भुत थी, कि स्वर्गवासी बाबू हरिश्चन्द्रजी भी मोहित होगये थे। "विक्टोरिया रानी" समस्याकी पूर्ति व्यासजीने इतनी सुन्दर की थी, कि बाबू हरिश्चन्द्रजीने अपने "कवि-वचनसुधा" पत्रमें उनकी बहुत कुछ प्रशंसा करके कहा था, कि इस विलक्षण बालक-कविकी बुद्धि भी विलक्षण है, और अवस्था केवल १२ वर्षकी है। इसी उमरमें एक वृद्ध तैलङ्ग अष्टावधानने उनको "सुकवि"की उपाधि दी। उस समय बाबू हरिश्चन्द्रजी भी मौजूद थे। उन्होंने "काशी कविता-वर्द्धिनी" सभासे यही उपाधि मंजूर करादी।

इसी प्रकार व्यासजीकी उत्तरोत्तर उन्नति होती थी। संवत १९३७ में उन्होंने काशी गवर्नमेण्ट कालिजकी आचार्य्य-परीक्षा पास कर साहित्याचार्य्यकी पदवी प्राप्त की। परन्तु इसी वर्ष उनके पूज्य पिताका देहान्त होगया। गृहस्थका बहुत जञ्जाल उनपर आपड़ा। तिसपर भी विद्याका अनुराग बढ़ताही गया। कवितामें उनका अभ्यास इतना बढ़ा कि एक घड़ीमें सौ श्लोक बनाकर "घटिका-शतक"की उपाधि प्राप्त की। "काशी ब्रह्मामृत-वर्षिणी" सभासे संवत १९४० में व्यासजी मधुबनी संस्कृत स्कूलमें नियत हुए। यहींसे वह बिहारियोंके प्रीति-पात्र हुए। यहांपर उन्होंने अपनी मधुर वक्तृताके बलसे कितनीही धर्म्मसभाएं बना डालीं। उनकी वक्तृताकी बिहार-प्रान्तमें धूम पड़गई। इसके दो साल बाद बाँकीपुरके कालिजमें इनके धूमधामी व्याख्यान हुए। उसी समय छपरा आदिमें भी उन्होंने धर्म्मकी धूम मचाई। फिर इसके दो साल बाद आपने भागलपुरमें धर्म्मकी धूम मचाकर धर्म्म-विरोधियोंके हौसले पस्त किये। संवत १९४४ में आप हरिद्वारके श्रीभारत-धर्म्म महा-मण्डलके सबसे पहिले अधिवेशनमें पधारे। वहां आपकी वक्तृताको सुन-कर सब लोग प्रसन्न हुए! कर्नल अलकाट साहबने उनकी वक्तृता ठीक ठीक

न समझ सकनेपर भी उनकी तेजस्विता तथा वक्तृताकी बड़ी प्रशंसा की। संवत् १६४७ में दिल्लीके पहिली बार वाले श्रीभारत-धर्म्म महामण्डलके समय आपको प्रथम श्रेणीके महोपदेशककी सनद, "विहार-भूषण" पदवी तथा सोनेका तमगा मिला। संवत् १६४६ में आप कलकत्ते पधारे थे। फिर अगले वर्ष छुट्टी लेकर पंजाब और सिंधमें दौरा किया। सहारनपुर, लाहौर, अमृतसर आदि बड़े बड़े नगरोंमें खूब व्याख्यान दिये।

व्यासजीको बहुत-सी उपाधियां मिलीं। संवत १६५४ में काशीजी-की महासभामें कांकरौली-नरेशकी छापसे उनको "भारतरत्न"की उपाधि मिली। अवध-नरेशने उन्हें "शतावधान"की उपाधि दी। सबसे अन्तिम उपाधि उनको श्रीभारत-धर्म्म-महामण्डलसे "भारतभास्कर"की मिली। हा शोक! इसका सोनेका तमगा अभी विलायतमें बनही रहा है! वर्तमान दरभङ्गा-नरेश महाराज रमेश्वरसिंह यह तमगा उन्हें अपने करकमलसे पिन्हाते! परन्तु मौतने जल्दी की, उनके इस सम्मान-को हमलोग अपनी आंखोसे देख न सके। व्यासजी एक विलक्षण योग्यताके पुरुष थे। कितनीही भाषाएं जानते थे। हिन्दी-भाषाके जानने वालोंमें तो वह अद्वितीय थे ही, संस्कृतके भी अच्छे पण्डित थे। बङ्ग-भाषामें वक्तृता तक कर सकते थे। अंगरेजी भी जानते थे। काव्यके सिवा दर्शन-शास्त्रमें भी वह बन्द न थे। न्याय, वेदान्त, सबमें दखल था। खिलाड़ी बड़े पक्के थे। ताश और शतरञ्जमें अच्छे अच्छे खेलने-वालोंके कान काटते थे। गाने बजानेमें भी चुप न थे। सितार, हारमो-नियम बढ़िया बजाते थे। यहां तक कि जलतरङ्ग, नसतरङ्ग तक बजा डालते थे। कवितामें बड़ेही चतुर और तीव्र थे। संस्कृत कविता भी बड़ी तेजीके साथ करते थे। वक्तृता बहुतही सुन्दर करते थे। बड़े मिष्टभाषी, मिलनसार पुरुष थे। एकही शरीरमें इतने गुण एकत्र होना एक दैवी बातही है। हा! आज व्यासजीके जोड़का भारतवर्षमें एक

भी आदमी नहीं दिखाई देता !

केवल ४२ वर्ष और कई मासकी उमर व्यासजीने पाई। इस थोड़े-हीसे कालमें उन्होंने साहित्यकी बहुत कुछ सेवा करडाली। वह एक मासिक-पत्र भी निकालते थे, जिसका नाम "पीयूष-प्रवाह" था। "वैष्णव-पत्रिका"के नामसे और भी एक मासिक-पत्रिका उन्होंने निकाली थी। पर यह दोनों पत्र बहुत दिन नहीं चलने पाये, तथापि व्यासजी-की रचनाका जखीरा बहुत भारी है। वह संवत १९२५ अर्थात् १० वर्षकी उमरसे लिखने लगे थे। उन्होंने "प्रस्तार दीपक" नामकी पुस्तक सबसे पहिले बनाई। तबसे संवत १९५४ तक ७८ पुस्तकें बनाई। इसके पीछे और भी किताबें इनकी छपकर निकली हैं। इन किताबोंमें नाटक, काव्य, साहित्य, इतिहास, दर्शन, दिल्लगी, धर्म्म आदि सब प्रकारकी रचनाएं हैं। उनको बनाई "मूर्तिपूजा" और "बिहारी विहार"का बड़ा भारी आदर हुआ। दो वर्ष नहीं हुए, व्यासजी फिर कलकत्ते आये थे। श्रीबलदेवजीके मन्दिरमें उनके व्याख्यान हुए थे। इसके बाद आप बीमार हुए। बीमार पहिले भी हुए थे। दो बार मरनेकी खबर भी उड़ चुकी थी। परन्तु इस बारकी लम्बी बीमारी राजयक्ष्मा रूपसे उनके प्राणही लेने आई थी। उसने धीरे धीरे उनके कोमल प्राणोंको खेंचना आरम्भ किया। अन्तमें अतिसारके झोकोंने उनके जीवन-दीपकको एकबारही बुझा दिया। गत पूर्व सोमवार (ता० १९-११-१९०० ई०) को रातके तीन बजे उनका जीवन शेष हुआ। क्या लिखें, उनकी किस किस चीजकी आलोचना करें ? चित्त व्याकुल है ! आखोंसे आँसू बहे चले आते हैं। पण्डितवर सुधाकरजी द्विवेदीने ठीक लिखा है कि उनके मरनेका आज विद्वान मात्रको शोक है।

व्यासजी केवल एक पुत्र और एक पुत्री छोड़ गये हैं। पुत्रकी अवस्था केवल १० वर्ष है। —भारतमित्र १९०० ई०

पण्डित देवीसहाय

चैत्र सुदी एकादशी बुधवार (संवत् १९६०) को रातके १० बजे कलकत्ता बड़ाबाजारके प्रसिद्ध पंडित देवीसहायजी स्वर्गगामी हुए। वह एक बड़े नामी पंडित और विचारशील पुरुष थे। उनका जन्मस्थान राजपूतानेका "पाटन" गाँव है। वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। चैत्र सुदी २ को वह कलकत्तेसे स्वदेशको गये और ७ को वहां पहुंचे। ४ दिन पीछे प्राण त्याग दिया। उनको संग्रहणीकी कठिन पीड़ा थी और अबके उसका तीसरा आक्रमण हुआ था।

पंडित देवीसहायजीके उद्योगसे मारवाड़ियोंमें कई प्रकारकी विद्या और धर्म-सम्बन्धी चर्चा फैली। कलकत्ता-बड़ाबाजारकी धर्मसभा और उसकी पाठशालाके बननेकी जड़ वही थे। चैत्र सुदी १५ संवत् १९३९ से उन्होंने "धर्म्मदिवाकर" नामका एक धर्म्म-सम्बन्धी मासिक-पत्र निकाला था। वह कोई पांच साल तक चलाया। उसमें जैसे सुन्दर और सारगर्भित लेख उक्त पंडितजी लिखते थे, उनसे उनकी विद्वत्ताका भली-भाँति परिचय मिलता है। कह सकते हैं कि फिर हिन्दी भाषामें शास्त्रोंका तत्व समझानेवाला वैसा मासिक-पत्र नहीं निकला। उस समय वह व्याख्यान भी अच्छा देसकते थे। हमने उनका पहला व्याख्यान संवत १९४४ में कनखलमें सुना था, जब कि श्रीभारत-धर्म्म महामण्डलकी नींव हरिद्वारमें पड़ी थी। नींव पड़नेसे पहले पं० दीनदयालुजी कलकत्ते आये थे, तब वह बहुत कम उमर थे। पं० देवीसहायजीकी संगतसे उनके हृदयमें महामण्डल जैसी विराट हिन्दू सभाका अङ्कुर प्रस्फुटित हुआ था।

धर्म्म-दिवाकरमें अच्छे लेख लिखनेके सिवा वह मार्कण्डेय-पुराणपर एक सुन्दर संस्कृत टीका करगये हैं, जो अभी छपी नहीं है। इसके

सिवा गीतापर एक उत्तम हिन्दी टीका करते थे, पर पूरी न कर सके। सारांश यह कि मारवाड़ियोंमें एक अपूर्व रत्न थे। आश्विन शुक्ला अष्टमी संवत् १९१३ में आपका जन्म हुआ था। इस समय उमर लगभग ४७ वर्षके थी। पिताका नाम भजनरामजी था। सात वर्षकी उमर तक घर रहे। पीछे पितृव्य बलदेवजीके साथ पञ्जाब अमृतसर गये। वहीं पढ़े। पंडित कृष्णदत्तजी उनके गुरु थे। लड़कपनमें दरिद्रता और पीड़ा आदिके कितनेही क्लेश भोगते हुए उन्होंने संस्कृत विद्याको सीखा। व्याकरण, काव्य, कोष, अलङ्कारमें निपुण हुए। अन्तमें काशीमें महामहोपाध्याय पंडित राम मिश्र शास्त्रीजीसे पढ़े। जन्मस्थानमें हरशङ्कर नामोच्चारण पूर्वक पार्थिव शिवार्च्चन करते, गंगाजल पीते, गोमय-लेपित कुशासनपर सिद्धासन बैठकर नेत्रमार्गसे प्राण-त्याग किया। मृत्युसे दो दिन पहले सब संसारी बातें छोड़कर केवल हरशंकरका नाम लेते थे। मृत्युसे पहले ब्राह्मण-भोजन, दान-पुण्य, गोदान आदि निष्ठावान ब्राह्मणोंके करने योग्य सब कार्य सम्पादन कराये।

प्राणत्यागसे ४ घण्टे पहले भूमिपर विराजे। उनके इस थोड़ी उमरमें उठ जानेसे मारवाड़ी समाजकी बड़ी हानि हुई, इसमें सन्देह नहीं।

इस देशका जो कुछ चला जाता है, वह फिर नहीं लौटता। पंडित देवीसहायजीका स्थान पूरा करनेके लिये, वैसा योग्य पुरुष दिखाई नहीं देता। उनमें अनेक गुण थे। जो कुछ करते थे, आडम्बर रहित होकर करते थे। बङ्गवासी-पत्रपर एक समय विपद् पड़ी थी, वह राजविद्रोहमें पकड़ा गया था। उस समय पं० देवीसहायजीने उसके लिये चुपचाप कई हजारका चन्दा करादिया था। और कितनेही काम उनके वैसेही थे। माता, एक छोटा भाई और एक भतीजा छोड़ गये हैं। छोटे भाईके ८ वर्षके पुत्र श्रीकण्ठको अपना पुत्र मानते थे। वह व्याकरण पढ़ता है। ईश्वर उसकी बड़ी आयु करे। वह पिताकी भांति कीर्त्तिमान

पण्डित होकर मारवाड़ी जातिका यश बढ़ावे। —भारतमित्र १९०३ ई०

पाण्डे प्रभुदयालु

हिन्दी-बङ्गवासीके सम्पादक पण्डित प्रभुदयालु चतुर्वेदी जवानीके आरंभमें इस असार संसारको त्याग गये। होलीपर अच्छे थे। गत पूर्व मंगलवारको उनकी तबियत खराब हुई। उसके साथही प्लेगका आक्रमण हुआ। कई-एक दिन रोग-भोग कर रविवारको चलते हुए।

प्रभुदयालुजी आगरा जिलेके पिनाहट नामक कसबेके निवासी थे। चतुर्वेदियोंमें पाण्डे थे, इसीसे पाण्डे प्रभुदयालु कहलाते थे। वह कानपुर निवासी स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके प्रिय शिष्य थे। उनके पिता कानपुरमें बहुत रहते थे, इसीसे प्रतापनारायणजीसे उनका मेल हुआ। पाण्डेजीने शिक्षा भी कानपुरहीमें पाई। उनकी जीवनी सबकी सब हिन्दी-बङ्गवासीसे सम्बन्ध रखती है। वहीं वह बालकसे युवा हुए और वहीं अपनी योग्यता बढ़ाई और उसी पत्रकी सेवा करते हुए समाप्त होगये।

पण्डित अमृतलाल शर्म्मा हिन्दी-बङ्गवासीके आदि सम्पादक और जन्मदाता हैं। उन्होंने स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायणजीकी सहायतासे प्रभुदयालुजीको पाया। जब वह हिन्दी-बङ्गवासीमें आये तो अखबारी विद्या कुछ नहीं जानते थे। वहीं उन्होंने सब सीखा और अखबार लिखनेमें निपुण हुए। अङ्गरेजी वह एंट्रेन्स तक पढ़े थे, पर अखबारी बातें समझनेमें बहुत अच्छे होगये थे। हिन्दी पढ़े थे और पण्डित प्रतापनारायणजीकी संगतसे उसकी बारीकियोंको जानते थे। उर्दू और फारसी, वह कितनी पढ़े थे सो कह नहीं सकते, पर उर्दू किताबें खूब पढ़ लेते थे, फारसी भी समझते थे। संस्कृतकी सीधी पुस्तकें भी पढ़लेते थे। इन सब

बातोंपर बुद्धि बड़ी तीखी पाई थी। समझनेकी शक्ति खूब थी। विशेष-कर कविता समझनेमें बड़े तीव्र थे। स्वयं कविता कर भी सकते थे। बड़े परिश्रमी थे। पुस्तकें खूब पढ़ते थे।

हिन्दी-बङ्गवासीमें वह कोई नौ साल रहे। उन्होंने आरम्भहीमें संस्कृतकी एक ज्योतिषकी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद किया। हिन्दीमें उनकी कहां तक पहुँच थी, यह उनकी की हुई बिहारीकी सतसईकी टीकासे भली भांति विदित होता है। अवश्यही उसमें वह कहीं कहीं भूले हैं, पर अबतक बिहारी-सतसईपर जो टीकाएं हुई हैं, प्रभुदयालुकी टीकाही उनमें सबसे उत्तम और अपने ढङ्गकी निराली है। हिन्दीके व्याकरण विषयमें उनकी पहुंच बहुत बढ़-चढ़कर थी। यदि वह हिन्दीका व्याकरण लिखने पाते तो सफल मनोरथ होते। अङ्गरेजीकी दो एक आरंभिक पुस्तकें भी वह हिन्दी सहित लिख गये हैं, जिनसे हिन्दीसे अङ्गरेजी पढ़नेवालोंको सहायता मिलती है। और भी कई पुस्तकें हिन्दी-बङ्गवासीके उपहारके लिये उन्होंने लिखी हैं।

पांच साल तक हमारा उनका साथ था। पांच साल तक पण्डित अमृतलालजी, हम और पाण्डे प्रभुदयालुजी, एक साथ बैठकर हिन्दी-बङ्ग-वासीका सम्पादन करते थे। उस प्रिय मेल-मिलाप और उस अच्छे समय-का चित्र अब भी आंखोंके सम्मुख है। संसारमें अच्छे दृश्य आंखोंके सम्मुख बहुत काल तक नहीं रहने पाते। आज वह दृश्य नहीं, उसकी कहानी बाकी है!

पिछले चार सालसे पण्डित प्रभुदयालुही हिन्दी बङ्गवासीके सम्पा-दक थे। उनमें हिन्दीके एक नामी लेखक होनेके कितनेही गुण थे। यदि वह जीते तो हिन्दीकी कितनीही सेवा कर सकते, पर इस देशका भाग्य-ही ऐसा है, कि इसमें होनहार लोग बीचहीमें रह जाते हैं। अच्छे लोग उठ जाते हैं और उनका स्थान पूरा करनेवाले नये उत्पन्न नहीं होते। वह

सरल, सीधे और मस्त आदमी थे। बड़े दिल्लगीबाज थे। विशेषकर हँसने हँसाने और कवितामें दिल्लगी करनेकी आदत उनकी बहुतही बढ़ी-चढ़ी थी। किसी किसी दिन कविताहीमें बातें करते थे, एक शब्द भी गद्य नहीं बोलते थे। मस्त ऐसे थे कि कभी कभी चुपचाप जंगलको निकल जाते थे और कई दिन तक गायब रहते थे।

६ साल होगये, जब हम हिन्दी-बङ्गवासीके लिये कलकत्तेमें आये तो कानपुरमें पण्डित प्रतापनारायणजीने कहा था, कि हमारा प्रभुदयालु भी वहाँ है ; उसका ध्यान रखना। हाय ! आज स्वर्गीय प्रतापका वही प्यारा प्रभुदयालु छिन गया ! कुछ काल भी संसारमें अपनी प्रतिभा न दिखाने पाया ! गुरुकी जीवनी लिखनेसे पहलेही उनका अनुगामी हुआ !

प्रभुदयालुकी धर्म्मपरायणता अनुकरणके योग्य थी। सदा गङ्गास्नान और शिवपूजन करते थे। रुद्राक्ष गलेसे कभी नहीं हटा। मरते दम तक होशियार थे। प्राण त्यागनेके लिये स्वयं चारपाईसे उतर पड़े। रोती हुई माता और पत्नीको छोड़कर शिवलोकको चले गये। घरमें चार विधवा स्त्रियाँ छोड़ीं हैं और एक साल भरका बालक। भगवानके सिवा इन विधवाओं और बालकका कोई पालनकर्त्ता नहीं। अपने मित्र, अपने सहयोगीके असमयके वियोगसे आज हमारी कातरताका पार नहीं है।

—भारतमित्र, १९०३ ई०

बाबू रामदीनसिंह

तुलसीदासजीने भगवान रामचन्द्रजीकी एक पदमें महिमा वर्णन की है, उसका आरम्भ इस प्रकार है :—

"ऐसे रामदीन हितकारी"—

स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्रने बाबू रामदीनसिंहजीके गुणों-

पर मोहित होकर कहा था—'ऐसे रामदीन हितकारी'। इसके दो अर्थ हुए, एक यह कि रामने हमको एक हितकारी दिया और दूसरा यह कि रामदीनजी हितकारी हैं। यह हित किस चीजका ? हिन्दीके परम रसिक दूसरे हरिश्चन्द्र पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके हृदयमें बाबू रामदीनसिंहके किस हितने जगह की ? वह और कोई चीज नहीं, केवल बाबू रामदीनसिंहकी हिन्दी-हितैषिता थी। हरिश्चन्द्रको प्रतापनारायण गुरु-तुल्य मानते थे। उन हरिश्चन्द्रकी ग्रन्थावलीके छापनेमें बाबू रामदीनसिंहका इतना अनुराग देखकर प्रतापनारायण गा उठे थे—"ऐसे रामदीन हितकारी।"

बाबू रामदीनसिंहका जन्मस्थान युक्तप्रदेशके बलिया जिलेके रेपुरा तालुकेमें है। उन्होंने पौष शुक्ला १४ रविवार संवत् १६१२ को उक्त स्थानमें जन्म-ग्रहण किया था। राशिका नाम कोमलसिंह था। वह हयहय वंशीय क्षत्रिय थे। पिताका नाम अमरसिंह और पितामहका नाम दिगम्बरसिंह था। रेपुरासे १२—१३ वर्षकी उमरमें बाबू रामदीनसिंह पटना आये और पांच छः साल तक हिन्दी और संस्कृत पढ़ते रहे। आरम्भमें उन्होंने एकाध छोटी मोटी नौकरी भी की। सन १८७७ या ७८ के लगभग वह हिन्दी लिखने लगे थे। इसके कुछ दिन पीछे "क्षत्रिय-पत्रिका" निकालनेका उद्योग करने लगे थे। उन्हीं दिनोंमें "क्षेत्र तत्व" और "गणितबत्तीसी" आदि पुस्तकें लिखी थीं। सन १८८१ ई०में उन्होंने अपने माननीय मित्र हिन्दीके प्रेमी स्वर्गीय लाल खड्गबहादुर मल्लके नामपर खड्गविलास प्रेस खोला। उसी सालके मई माससे उनकी "क्षत्रिय-पत्रिका" निकलनी आरम्भ हुई। उस दिन संवत् १६३८ के जेठ मासका दशहरा था। तीन चार साल तक "क्षत्रिय पत्रिका" लगातार चली, फिर कुछ दिन बन्द रहकर फिर चली। हालमें फिर उसका दर्शन हुआ था, पर चल न सकी।

संवत् १९४४ की आश्विनकी पूर्णिमासे बाबू रामदीनसिंहने "हरिश्चन्द्रकला" निकाली। यह स्वर्गीय हरिश्चन्द्रके स्वर्गवासके थोड़ेही दिन पीछे जारी हुई थी। जहाँ तक हम जानते हैं, उस समय उनकी आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी नहीं थी ; तथापि उन्होंने कलाको सिलसिलेवार निकाला। पहले नाटकावली प्रकाशित की, पीछे इतिहासावली। इसी प्रकार ५-६ साल तक उसका सिलसिला चला। बाबू हरिश्चन्द्रके ग्रन्थ खोज-खोजकर इसमें निकाले। जिस प्रकार कहा जाता है, कि काशीमें हरिश्चन्द्रका जन्म न होता तो आज हिन्दी भाषाकी यह उन्नति न होती, उसी प्रकार यह भी कहा जासकता है, कि यदि बाबू रामदीनसिंह न होते तो हरिश्चन्द्रजीकी ग्रन्थावली ऐसी उत्तम रीतिसे प्रकाशित न होती। इसके साथ-साथ बाबू रामदीनसिंहने पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, दामोदर शास्त्री, लाल खड्गबहादुर मल्ल आदि सुलेखकोंकी बहुत-सी ऐसी पुस्तकें भी छपवाई, जिनकी दस-दस बीस-बीस कापियाँ भी न बिकीं।

इसके बाद उनका यश बढ़ गया और बिहारके शिक्षा-विभागकी पुस्तकोंके वह एक प्रकार सर्वाधिकारी बन गये। कितनी वङ्गभाषाकी पुस्तकें उनके यहाँ आकर हिन्दीमें छपीं। बड़ी-बड़ी पुस्तकोंके छापनेका उनका इरादा था। कलकत्तेमें जब आते थे, सैकड़ों पुस्तकें बटोरके ले जाते थे। पुस्तकें खरीदनेमें उनको रेलका खर्चा घटजाने तकका खयाल नहीं रहता था। मासिकपत्र उन्होंने कितनेही निकाले। 'क्षत्रिय-पत्रिका' के सिवा 'द्विज-पत्रिका' निकाली थी। पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके मासिक पत्र "ब्राह्मण" को एक साल तक पण्डितजीके जीते जी और कुछ दिन तक उनके बाद भी निकालते रहे, पर इन पत्रोंमेंसे कोई भी चिरस्थायी न हुआ।

बाबू साहब उच्च कुलके क्षत्रिय थे। अपने उच्च कुलके होनेका अभि-

मान भी बहुत रखते थे। इतनेपर भी उनका स्वभाव बड़ाही नम्र था। मुखमण्डल सदा प्रसन्न रहता था। सबसे हँसकर बातें करते थे। बड़े ब्राह्मण भक्त थे, हिन्दीके लेखकोंकी कुछ कुछ सहायता भी करते थे। उनकी सदा यही इच्छा रहती थी कि, उनका प्रेस हिन्दीके काममें सबसे बढ़ जाय। पुस्तकके ऐसे प्रेमी थे कि शरीरकी धूल न झाड़ते थे और पुस्तकोंकी धूल झाड़ते थे। हरिश्चन्द्र-कलाके सिवा उन्होंने कई-एक पुस्तके बड़े कामकी छापीं, उनमेंसे एक तुलसीकृत रामायण है, जिसको शुद्धतापूर्वक बहुत ऊंचे ढंगपर छापा है। रामायणमें क्षेपक मिला मिलाके छापनेवालोंने उसे एक रद्दी पुस्तक बना दिया है। खड्गविलास प्रेसने उसे शुद्ध करके मानो रत्नोंको कंकड़ोंसे अलग कर लिया है। इसकी बात फिर कभी कहेंगे।

कई एक और भी अच्छी पुस्तके छापनेका इनका इरादा था। (१) टाड राजस्थानका हिन्दी अनुवाद, (२) राजतरङ्गिणीका सटिप्पण अनुवाद, (३) भाषाके कवियोंका बड़ा जीवन चरित्र (४) स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र और पण्डित प्रतापनारायण मिश्रकी सचित्र जीवनी (५) एक अच्छा भाषा कोष। हम आशा करते हैं, कि बाबू साहबके उत्तराधिकारी लोग उनके इन प्यारे कामोंको पूरा करेंगे।

उनका बहुत लोगोंसे मेल मिलाप था, पर इन दो सज्जनोंसे बहुतही अधिक प्रीति थी—स्वर्गीय उदयपुर-नरेश महाराना सज्जनसिंह और डाक्टर ग्रियर्सन। वह सदा इनका नाम लिया करते थे।

बाबू रामदीनसिंहकी अवस्था केवल ४८ वर्ष थी। वह अपनी कमाईसे हजारोंकी जायदाद छोड़ गये हैं। वह बहुतसी जमींदारी खरीद कर गये हैं। उनका हजारों रुपयेकी मालियतका छापाखाना है, उसकी एक बहुत अच्छी इमारत है। बाबू साहबके तीन पुत्र हैं, जिनमेंसे बड़े रामरणविजयसिंहकी उमर १८ सालकी है।

बाबू साहब हमारे बहुत परिचित थे। कलकत्तेमें जब आते थे, तो हमारे यहाँ आनेकी भी कृपा करते थे। उनकी गुणावली वर्णन करनेके लिये आजके लेखमें स्थान नहीं है। ईश्वरसे हमारी प्रार्थना है, कि खड्गविलास प्रेसकी और भी इज्जत बढ़े और बाबू रामदीनसिंहजीके पुत्र, पितासे भी अधिक कीर्त्तिमान हों।

—भारतमित्र १९०३ ई०

पण्डित गौरीदत्तजी

सच्चे नागरी-हितैषी, सच्चे नागरी-प्रचारक मेरठ निवासी पण्डित गौरीदत्तजीका दर्शन हमने दिल्लीके श्रीभारतधर्म्म महामण्डलके समारोहमें किया था, उमर साठसे कई साल ऊपर हो गई है। हलके फुलके आदमी हैं। चेहरे पर झुर्रियां पड़ रही हैं। तिसपर भी देवनागरीके लिये व्याख्यान देते समय इतना जोश था कि लड़कोंकी भाँति उछल उछल पड़ते थे।

अच्छे गृहस्थ हैं। युवापनमें पण्डिताई, मास्टरी, कमसरियटकी नौकरी आदि सब कर चुके हैं। कुटुम्बी हैं, लड़की-लड़के वाले हैं। गृहस्थका काम अच्छी तरह चला चुके हैं। पुत्र पुत्रियोंके विवाह आदिका खर्च अपनी कमाईसे चला चुके हैं। यह सब करके ४५ वर्षकी अवस्थासे देवनागरीके प्रचारमें लगे हैं। मेरठसे शहरमें नागरीका प्रचार करना काले पत्थरपर पेड़ उगानेसे कम नहीं है। वह उर्दू-फारसीका दास मेरठ शहर, मुसल्मानी सभ्यताका चेला मेरठ नगर, जहांके हिन्दू, नहीं नहीं, ब्राह्मण तक—डाढ़ी रखना पसन्द करें, वल्लह, सुबहान अल्लह, मासाअल्लह और इन्शा अल्लहकी भरमार, जहां दिन रात गजल, शेर, मसनवी यहां तक कि मरासिये अच्छे अच्छे पण्डितोंके मुखपर जारी, ऐसे मेरठ

शहरमें नागरी फैलानेवाले पण्डित गौरीदत्तजीकी पूजा करनेको किसका जी न चाहेगा ?

आप धनी नहीं हैं, लखपति नहीं हैं, तिसपर भी ३२ हजार रुपये नागरीके काममें आपके परिश्रमसे व्यय हो चुके हैं। मेरठमें देवनागरी पाठशाला आपने जारी कराई। इसमें मिडल तक पढ़ाई होती है। कोई दो सौ बालक इसमें पढ़ते हैं। इनके स्कूलके पचासों विद्यार्थी पास होकर नौकरी पागये। मेरठके पुरुषोंहीमें नहीं, स्त्रियों तकमें नागरी फैल गई।

किसी चीजके पीछे लगे, तो इन पण्डितजीकी भाँति लगे। यह नागरीही लिखते हैं, नागरीही पढ़ते हैं तथा नागरीहीमें गीत गाते हैं, भजन गाते हैं, गजल बनाते हैं। नागरीहीमें स्वांग तमाशे करते हैं, नाटक खेलते हैं। जब सारा मेरठ-शहर नौचन्दीकी सैर करता है, तो यह वहाँ देवनागरीका झण्डा उड़ाते हैं। सारांश यह है कि सोते जागते उठते, बैठते, चलते, फिरते आपको नागरीहीका ध्यान है। नागरीके लिये आपने मेमोरियल आदि भेजनेमें बड़ा परिश्रम किया है। भगवान-की कृपासे नागरीको अदालतोंमें स्थान मिला है। श्रीमान पश्चिमोत्तर प्रदेशके छोटे लाट मेकडानल्ड साहबके अनुरोधसे बड़े लाट कर्ज्जन महोदयने पश्चिमोत्तर और अवधकी कचहरियोंमें नागरी-प्रचार स्वीकार किया है। पण्डित गौरीदत्तजी धन्य हैं, जिनकी प्यारी आशा उनके जीते जी पूरी हुई। *

—भारतमित्र सन् १९०० ई०

---

* सन् १९०६ ई०में पण्डित गौरीदत्तजीके देहान्तका सवाद पाकर गुप्तजीने भारतमित्रमें यह टिप्पणी लिखी थी :—

"मेरठसे एक मित्रके पत्र द्वारा हमें समाचार मिला है कि गत ८ फरवरी (सन्

३

१९०६) को पण्डित गौरीदत्तजीका देहान्त होगया। यह बड़े नागरी हितैषी पुरुष थे। मेरठ जैसी ऊसर भूमिमें नागरीका पौधा इन्होंने लगाया था। वहाँ खाली उर्दूहीकी जयजयकार थी, पर अब वहाँ नागरी जाननेवाले भी बहुत होगये। पण्डित गौरीदत्त जबतक जीते रहे, नागरीकी सेवा करते रहे। हरघड़ी नागरीकी धुन थी। राम-राम, और नमस्कारकी जगह भी कहते थे, कि नागरीकी जय। मेरठका देवनागरी स्कूल आपहीका बनाया हुआ है। वह उनके शोकमें एक दिन बन्द रहा। बड़े निरभिमान पुरुष थे। स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र इनका एक गीत गागाकर खूब आनन्द लिया करते और खूब हँसा करते। गीतका आरंभ इस प्रकार है :—

भजु गोविन्दं हरे हरे, भाई भजु गोविन्दं हरे हरे।
देवनागरी हित कुछ धन दो,
दूध न देगा धरे धरे।

इन्होंने मेरठसे देवनागरी गजट जारी किया था। अफसोस है कि अब वह नहीं है। एक कोष बना गये हैं, जिसका नाम गौरी-नागरी कोष है। बहुत-सी नागरीकी छोटी-छोटी किताबें लिख गये हैं, यहाँ तक कि एक नागरीका ताश भी बना गये हैं।"

पण्डित माधवप्रसाद मिश्र

भिवानी-निवासी पण्डितवर माधवप्रसाद मिश्र इस संसारमें नहीं हैं। गत १६ अप्रेल (सन १९०७ ई०) को प्लेग-रोगसे उन्होंने शरीर-त्याग किया। भिवानीमें अबके फिर प्लेगका बहुत जोर हुआ था। उसके कारण आप सकुटुम्ब भिवानीके निकट 'कूंगड़" गांवमें चले गये थे, जो आपके बड़ोंका निवास स्थान है और जहांका निवास अब भी एक दम छोड़ नहीं दिया गया है। वहीं आपकी मृत्यु हुई। इस खबरने कलेजा हिला दिया। विश्वास न हुआ, कि कल तक जिसकी लेखनीसे भारी भारी लेख निकल रहे थे, आज वह नहीं है! पर खबर तो सच थी! बुरी खबर झूठ क्यों होने लगी? सन्ध्या तक बड़बाजारमें यह खबर फैल गई। जिसने सुना, दुःख प्रकाश किया। विशेषकर उनके इस जवान उमरमें मरनेका खयाल करके लोग अधिक अफसोस करते थे। अपने जीवनके पिछले तीन चार सालमें उन्होंने कलकत्तेका आना जाना बहुत बढ़ा लिया था और कई कई मास तक लगातार यहां रहते और सभा—समाजों और लेखोंकी बड़ी धूम रखते थे। इससे बड़ा-बाजार (कलकत्ता) के लोग उनसे बहुत परिचित होगये थे। यहां तक कि कितनोहीसे उनकी मित्रता भी होगई थी। इसीसे इस खबरने बहुत लोगोंको विकल और विह्वल करदिया।

मिश्र माधवप्रसाद हिन्दीके एक बड़े नामी लेखक थे। यदि वह कुछ दिन बच पाते और अपनी शक्तिको उचित रूपसे व्यवहार करनेका समय उन्हें मिलता, तो न जाने कैसी कैसी उत्तम चीजें हिन्दीमें लिख जाते। उनके हिन्दीमें लेखनी उठानेकी अवधि दस सालसे अधिक है। उसमें भी आठही सालसे वह अखबारोंमें लिखने पढ़ने लगे थे। इस

थोड़ेही कालमें उन्होंने दिखा दिया, कि वह उत्तम पुस्तकें लिख सकते हैं, सुन्दर कविता बना सकते हैं और अच्छे अच्छे युक्ति-पूर्ण लेख लिख सकते हैं। कड़ी समालोचना लिखनेमें वह बड़ेही कुशल-हस्त थे। अति तीव्र और जहरमें बुझे लेख लिखनेपर भी वह हँसीके लेख लिखकर पाठकोंके चेहरेपर खुशी लासकते थे। लिखनेमें वह बड़े ही निडर और निर्भीक थे। हिन्दी इतनी अच्छी लिखते थे कि दूसरा कोई उनके जोड़का लिखनेवाला नहीं दिखाई देता।

माधवप्रसादजीने उमर कुछ न पाई, पर इस थोड़ीही उमरमें उन्होंने भारतवर्षके सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंका चक्कर लगा डाला था। बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था। संस्कृत पुस्तकों और अपने शास्त्रोंकी खोजमें भी उन्होंने बड़ा मन लगाया था और कुछ काम भी किया था। बड़े इरादे और उत्साहके आदमी थे। पर हाय! कुछ न होने पाया! असमय मृत्युने सब जहांका तहां रखवा दिया!

भारतमित्र-सम्पादकसे उनका बड़ा प्रेम था। इतना प्रेम कि, कदाचित् ही कभी दूसरे किसीसे उतना हुआ हो। बातें करते करते दिन बीत जाते थे, रातें ढल जाती थीं, पर बातें पूरी न होती थीं। गत दो सालसे वह नाराज थे। नाराजी मिटानेकी चेष्टा भी कई बार की गई, पर न मिटी। यही खयाल था, कि कभी न कभी मिट जायगी। पर मौतने आकर वह आशा धूलमें मिला दी। इतना अवसर भी न दिया, कि एक बार उनको फिर प्रसन्न कर लेते!

उनका और भारतमित्र-सम्पादकका एक ही देश है। बहुत पुराना साथ था। इससे उनके साथ ठीक स्वजनोंकासा नाता था। इस नाराजगीके दिनोंमें कभी कभी मिला करते तो कहते—"बस, अब यही बाकी है, कि तू मर जाय तो एक बार तुझे खूब रोलें और हम मर गये तो हम जानते हैं कि पीछे तू रोवेगा।" आज पहली तो नहीं,—पिछली

बात हुई ! याद करते करते आँसू निकल पड़े ! अब नहीं लिखा जाता !

—भारतमित्र १९०७ ई०

मुन्शी देवीप्रसाद

श्रीयुक्त मुंशी देवीप्रसाद महोदय हिन्दी-भाषा और देवनागरीके प्रचारके बड़े पक्षपाती हैं। यद्यपि आप फारसी और उर्दूके विद्वान हैं, तथापि हिन्दीके तरफदार बहुत दिनसे हैं। बहुत दिन पहले हिन्दीमें "राजस्थानका स्वप्न" नामकी पुस्तक लिखकर आपने अपने हिन्दीप्रेमका परिचय दिया था और राजस्थानकी रियासतोंमें देवनागरी अक्षरोंके प्रचारके लिये जोर दिया था। मुसलमान बादशाहों और हिन्दू राजाओंका इतिहास जाननेमें आप अद्वितीय पुरुष हैं। राजस्थानकी एक एक रियासतहीकी नहीं, एक एक गांव और एक एक कसबेकी सब प्रकारकी बातोंको आपने इस तरह खोज खोजकर निकाला है, कि आपको यदि राजस्थानका सजीव इतिहास कहें; तो कुछ भी अत्युक्ति नहीं होती। राजस्थानके इतिहासकी खोजमें आपने जैसा श्रम किया है, उससे आपका नाम 'मुवर्रिखे राजपूताना' पड़ गया है। पर सच पूछिये तो वह राजस्थानके केवल इतिहास-लेखकही नहीं, वरञ्च वहाँके रीफार्मर या सुधारक भी हैं। बहुतसे देशी रजवाड़ोंमें उनकी लेखनीसे बहुत कुछ सुधार हुआ है। हिन्दीके प्रेमियोंके लिये यह एक बड़े हर्षका विषय है कि इस प्रवीणावस्थामें वह हिन्दीके मुरब्बी हुए हैं और हिन्दीभाषाके इतिहास-भण्डारको पूर्ण करनेकी ओर उनका ध्यान हुआ है।

मुंशी देवीप्रसादजी गौड़ कायस्थ हैं। आपके पूर्वपुरुष दिल्लीसे भूपाल गये थे। उनमेंसे एक मुंशी नरसिंहदास थे। उनके पुत्र मुंशी आलमचन्द थे, उनके बेटे घासीराम मुंशी देवीप्रसादके परदादा थे; जो बड़े मुंशी और

खुशनवीस थे। उनके बेटे मुंशी किशनचन्दजीका सम्बन्ध टौंकके नवाब अमीरखांके बख्शी दौलतरायजीकी कन्यासे हुआ था। इससे वह भूपाल छोड़कर सिरोंजमें आबसे थे, जो भूपालसे १८ कोस पर नवाब अमीरखांकी अमलदारीमें था। वहीं मुंशी देवीप्रसादके पिता मुंशी नत्थनलालजीका जन्म भादों बदी ६ संवत् १८७६ को हुआ। उसी साल अमीरखांने अङ्गरेजोंसे सन्धि होजाने पर टौंकमें रहना स्वीकार किया। इससे देवीप्रसादजीके दादा सकुटुम्ब टौंकमें आबसे। जब आपके पिता लिख पढ़कर होशियार हुए, तो वह अमीरखांके छोटे बेटे साहबजादे अबदुलकरीमखांकी सरकारमें नौकर होकर संवत १६०० विक्रमाब्दमें उनके साथ अजमेर चले आये। क्योंकि साहबजादेकी उनके बड़े भाई नवाब वजीरुद्दौलासे नहीं बनती थी, इससे अंगरेजोंने उनको अजमेरमें रहनेकी आज्ञा दी।

मुंशी देवीप्रसादका जन्म माघ सुदी १४ संवत १६०४ को जयपुरमें नानाके घर हुआ। नाना हकीम शंकरलाल जयपुर राज्यके चौकीनवीस भैया* हीरालालजीके पुत्र थे। देवीप्रसादजीने फारसी, हिन्दी अपने पितासे पढ़ी और नौकरी भी टौंकहीकी सरकारमें संवत १६२० से संवत १६३४ तक की। इस बीचमें उनका रहना कभी अजमेरमें और कभी टौंकमें हुआ। क्योंकि उक्त साहबजादेके पुत्र, पिताके बाद कभी अजमेरमें और कभी टौंकमें रहने लगे थे।

मुसलमानी राज्य होजानेसे टौंकमें हिन्दुओंपर बहुत अत्याचार होने लगा। इससे संवत १६३५ के आरम्भमें मुंशी देवीप्रसादजीकी नौकरीही नहीं छूटी, वरञ्च उन्हें टौंक छोड़देनेका भी हुक्म हुआ। मुंशीजीने अजमेरमें आकर कोहेनूर आदि अखबारोंमें उन अत्याचारोंकी बात लिखनी

* ढूंढारदेश और हाडोती (कोटाबंदी) में कायस्थोंको 'भैयाजी' कहते हैं और मारवाड़-मेवाड़में 'पंचोली'।

आरम्भ की। परिणाम यह हुआ, कि टोंक दरबारको कुछ सुध हुई। अत्याचार कुछ कम किये गये और लखनऊके अवध अखबारमें रियासतकी ओरसे विज्ञापन प्रकाशित हुआ, कि अब पिछली बातें रियासतमें नहीं होने पावेंगी।

मुंशीजीके छोटेभाई बाबू बिहारीलाल जोधपुरकी एजण्टीमें सेकेण्ड-क्लर्क थे। उनकी चेष्टासे आपको एक नौकरी संवत १९३६ में जोधपुर दरबारमें मिली। पहले कई साल तक आप अपीलकोर्टके नायब सरिश्तेदार रहे। संवत १९४० में महकमे खासके सरदफ्तर होगये। संवत १९४२ में आप मुंसिफ हुए। संवत १९४६ में महकमें तवारीखके मेम्बर हुए। संवत १९४८ में मनुष्यगणनाके डिपटी सुपरिण्टेण्डेण्ट और १९५५ में महकमें बाकियात और खामा दुकानातके सुपरिण्टेण्डेण्ट हुए। अढ़ाई सौ रुपये मासिक तक वेतन पाते रहे। संवत १९५६ के अकालमें रियासतकी मुन्सिफी टूट गई, तब आपने कुछ दिन तक फेमिन विभागमें काम किया। संवत १९५७ में फिर जोधपुर परगनेमें मनुष्यगणनाके सुपरिण्टेण्डेण्ट हुए। आजकल रियासतके बड़े काम छोड़कर गुजारेके लायक कुछ काम आपने अपने पास रखे हैं और साहित्यसेवामें लगे हैं। दुनियामें धन जोड़नेकी इच्छा अधिक लोगोंको रहती है, पर धन अमर नहीं हैं। मुंशी साहब इस समय वह धन जोड़ रहे हैं, जो सदा अमर रहे।

अङ्गरेजीमें छपी हुई मुंशी देवीप्रसादजीके सार्टीफिकेटोंकी एक पुस्तक मेरे दृष्टिगोचर हुई। उसके देखनेसे विदित होता है, कि वह जिस विभागमें गये हैं, उसीमें उनके कामकी इज्जत और उनकी सेवाकी सराहना हुई है। नौकरके लिये यही बड़ी इज्जत है, कि उनके कामकी प्रशंसा हो। पर जिनके दृष्टि है उनकी समझमें आ जाता है, कि मुंशी देवीप्रसाद मामूली काम करनेवालोंके सदृश नहीं थे। उनकी प्रतिभाने हर जगह अपना चमत्कार दिखाया है। इतिहासके समझने पढ़ने और

पुरानी बातोंको खोज खोजकर निकालनेकी जो बुद्धि भगवानने उनको दी है, उसने हर जगह अपनी तेजी दिखाई है। मनुष्यगणनामें जाकर आपने जोधपुर-राज्यकी प्रजाकी वह सुन्दर रिपोर्ट लिखी है, कि वैसी रिपोर्ट देशी रियासतोंमें तो कहाँ भारतके अंगरेजी इलाकोंकी भी बहुत कम है।

अब कुछ बातें उनके साहित्यसेवा-संबंधकी लिखी जाती हैं। उसके दो विभाग हैं, एक उर्दू विभाग,—जिसमें उन्होंने बहुत पुस्तकें लिखी हैं। उनमेंसे अधिक इतिहास, नीति और स्त्री-शिक्षाके विषयमें हैं। गुल-दस्तयेअदब, तालीमउन्निसा और तवारिख मारवाड़ नामकी पुस्तकोंके लिये उन्हें युक्तप्रदेशकी सरकारसे इनाम मिला। एक पुस्तक उन्होंने उर्दूमें कविता करनेवाले हिन्दूकवियोंके विषयमें बहुत सुन्दर लिखी है। हिन्दीमें आपने जो पुस्तकें लिखी हैं, उनके भी दो विभाग हैं—एक तो वह, जो मारवाड़ दरबारके लिये उक्त दरबारकी आज्ञासे बनाई गई हैं। वह मारवाड़में भी काम आती हैं और बाहर भी जाती हैं। उनमेंसे तीन तो मारवाड़ राज्यकी तीन सालकीरिपोर्ट हैं, जिनमें सन १८८३—८४ ईस्वीसे १८८५—८६ तकका वर्णन है। एक सन १८९१ ईस्वीकी मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट है, जिसके लिये उन्हें ५००) इनाम मिला। इसके पहले भागमें उमर, जाति और पेशे सहित मनुष्यगणना लिखी गई है। दूसरे भागमें मालाणी-मारवाड़के कुल गाँवोंकी परगनेवार लिष्ट अका-रादि क्रमसे मनुष्यगणना, मालिकोंके नाम और स्थानोंका फ़ासिला लिखा गया है। तीसरे भागमें मारवाड़में बसनेवाली सब जातियोंका हाल उनके पेशे और चालचलनकी जरूरी बातें, कितने ही कामके चित्रों सहित दी हैं। उनमें एक एक गाँवकी सूची, मनुष्यगणना आदि बहुत-सी कामकी बातें लिखी हुई हैं। तेरह अलग अलग पुस्तकोंमें मारवाड़ राज्यके दीवानी फौजदारी और दूसरे प्रबन्ध-संबंधी कायदे-कानून लिखे हैं।

दूसरे विभागकी हिन्दी पुस्तकें वह हैं, जो आपने अपनी रुचिसे लिखी हैं। यह हिन्दी साहित्यकी सेवाके लिये लिखी गई हैं। इनमेंसे कुछ छपी हैं, कुछ नहीं छपी ; कुछ अधूरी हैं।

हिन्दीकी ओर आपका ध्यान थोड़ेही दिनसे हुआ है। कई एक विद्वानोंने आपसे आग्रह किया कि हिन्दीके भण्डारमें इतिहासकी बहुत कमी है। आप इस कमीको दूर करते तो बड़ा उपकार होता। इतिहासका आपको सदासे अनुराग है। उसकी बड़ी सामग्री उन्होंने एकत्र की है। इसका कुछ परिचय उन्होंने अपनी सन १९०५ ईस्वीकी जन्त्रीमें दिया है। यह अनुरोध उन्होंने अङ्गीकार किया और तबसे बराबर वह उस काममें लगे हुए हैं। इसके सिवा आप बहुतसे विद्वानोंको साहित्यसेवामें यथाशक्ति सहायता देनेसे भी नहीं रुकते हैं। भारतवर्षके नाना स्थानोंसे कितनी ही इतिहास-सम्बन्धी बातोंकी जाँच पड़तालके लिये उनके पास पत्र पहुंचते हैं। उनके उत्तरमें मुंशी साहब जोधपुरसे उनकी अभीष्ट सामग्री भेज देते हैं। इतना परिश्रम करने पर भी वह साहित्य और इतिहासके संबंधके लेख समाचारपत्रोंको भेजते हैं। आपने विज्ञापन दे रक्खा है कि मुसलमानों और राजपूतोंके इतिहासके विषयमें कोई बात पूछना हो या किसी पुस्तककी जरूरत हो तो उनसे पत्रव्यवहार करें।

जब जब उन्होंने अपने या रियासती कामोंके लिये यात्रा की है, तब तब कुछ समय निकालकर पुरानी बातें, पुराने ग्रन्थ, पुराने शिलालेख, पुराने पट्टे, कागज और पुराने सिक्कोंके ढूँढनेमें बड़ा श्रम किया है। दो साल पहले काशीकी नागरीप्रचारिणी सभाके लिखनेपर एक हजारके लगभग पुरानी हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकोंका पता मारवाड़ जैसे विद्या-हीन देशमें झटपट लगा दिया था।

आप पुश्तैनी कवि हैं। आपके पिता उर्दू-फारसीके अच्छे कवि थे।

फारसी कवितामें उनकी बनाई भक्तमाल मैंने पढ़ी है। आप स्वयं भी पहले उर्दूकी कविता करते थे और कितनेही कवि, संशोधनके लिये अपनी कविता आपके पास भेजते थे। हिन्दीमें आपने कविता नहीं की, पर पुरानी कविताका उद्धार किया है। "महिला-मृदुवाणी" प्रकाशित कर आपने कविता करनेवाली स्त्रियोंकी जीवनी और उनकी कविताको रक्षित किया है। राजरमनामृत नामसे आपने कविता करनेवाले लोगोंकी कविता और जीवनीका एक अच्छा संग्रह किया है, जो अभी छपा नहीं है। इसी प्रकार हिन्दीके कवियोंकी एक रत्नमाला गूंथी है। स्वर्गीय 'अजान' कवि डुमरांव-निवासी पण्डित नकछेदी तिवारीने, जिनकी मृत्युका शोक अभी बहुत ताजा है (जो आश्विन सं० १९६२ में इस संसारको छोड़ गये हैं) कवि पद्माकरकी जीवनी लिखकर उसकी इतिहास संबंधी बातोंको एकबार जांच जानेके लिये आपके पास भेजी थी। इसी प्रकार और बहुतसी बातोंकी खोज तलाश आपके द्वारा होती है। आपके पुत्र मुंशी पीताम्बरप्रसाद, जिनकी उमर इस समय कोई ३० सालकी है; उर्दूके बहुत अच्छे और होनहार कवि हैं। उनकी बनाई नीतिकी कई पुस्तकें मैंने देखी हैं।

साहित्य-संबंधमें राजस्थानको इस समय दो उज्वल रत्न प्राप्त हैं, एक मुंशी देवीप्रसाद जोधपुरमें और दूसरे पण्डित गौरीशंकरजी ओझा उदयपुरमें। पहलेने मुसलमानी समयके भारत-इतिहासको खोजा है और दूसरेने संस्कृत और अंगरेजीके विद्वान होनेसे हिन्दुओंके प्राचीन इतिहासको। सब साहित्य-प्रेमियोंकी इच्छा है, कि इन दो रत्नोंकी चमक दमक खूब बढ़े और सबकी आशा है, कि भारतके विद्याभण्डारकी इनके द्वारा बहुत कुछ पूर्ति हो।

—सन् १९०० ई०

योगेन्द्रचन्द्र बसु

बाबू योगेन्द्रचन्द्र बसु एक कुलीन कायस्थ-कुलमें पैदा हुए थे। उनका जन्म बर्दवान जिलेके बेड़ग्राम, नामक एक छोटेसे ग्राममें हुआ। उनकी उमर पचास सालसे कुछ कम थी। कलकत्तेमें वह खाली हाथ आये थे, और यहाँ आकर अपने बुद्धिबल और अपनीही चेष्टासे एक नामी अखबारवाले बने। कलकत्तेमें जो इस समय कितनेही बहुत लम्बे चौड़े बङ्गला और हिन्दीके अखबार दिखाई देते हैं, इनके आदि पथ-प्रदर्शक बाबू योगेन्द्रचन्द्रही थे। लार्ड लिटनने प्रेस एक्ट जारी करके भारतके देशी भाषाओंके पत्रोंका गला घोंटा था। लार्ड रिपनने आकर उनको स्वाधीनता दी और तीन तोलेके अखबारोंका डाक महसूल एक पैसा किया। उस समय बंगालमें कई एक बंगला अखबार निकलते थे, जिनमेंसे 'सोमप्रकाश' और 'सहचर' प्रधान थे। लार्ड रिपनकी डाक महसूल कम करनेकी आज्ञासे क्योंकर लाभ उठाया जाय, यह बात किसीकी समझमें न आई। योगेन्द्र-बाबूकी उमर उस समय केवल २५ सालकी थी। उस तीव्र-बुद्धि युवाने उस आज्ञासे लाभ उठाना चाहा। उसने एक बड़े कागजपर 'बंगवासी' नामका एक बंगला साप्ताहिक अखबार नवम्बर सन १८८० ई० में जारी किया। उसका वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित दो रुपये और एक संख्याका मूल्य दो पैसे रखा। इस सस्तापनको देखकर उस समयके लोग हैरान रहगये! वह समझे कि जल्द यह पत्र बन्द होजायगा और मालिक दिवाला निकाल कर भागेगा, पर बात औरही हुई। एकही सालमें बङ्गाल भरमें बंगवासीकी धूम पड़ गई। सब अखबार उससे पीछे रह गये।

बंगवासीकी देखा देखी 'सञ्जीवनी' निकली। 'समय' निकला। 'हितवादी' 'बसुमती' भी उसीके देखा देखी निकले। यह सब लगभग

एकही आकारके पत्र हैं और सबका वार्षिक और एक संख्याका मूल्य भी बङ्गवासीके बराबरही है। आकार बङ्गवासीका पहलेसे बहुत बढ़ गया है, इससे दूसरे पत्रोंका आकार देखा देखी बढ़ताही जाता है। फल यह हुआ, कि बङ्गभाषाके छोटे आकार और अधिक मूल्यके समाचारपत्र लगभग सब बन्द होगये। यदि दो चार बचे भी हैं तो उनकी दशा अच्छी नहीं। सस्ते बड़े अखबारोंके सामने उनकी पूछही क्या हो सकती है? अखबार सस्ता करनेके बाद योगेन्द्रबाबूने पुस्तकें सस्ती करनेकी ओर ध्यान दिया। अखबारोंके साथ उपहार देनेकी रीति उन्होंने चलाई। इस उपायसे पुराण, महाभारत तथा कितनीही अच्छी पुस्तकें उन्होंने बहुत अल्प मूल्यपर अपने ग्राहकोंको देडाली। यह रीति बङ्गाली अखबारोंमें खूब चल गई है, हर साल इसकी बदौलत बङ्गभाषाके साहित्यमें कितनीही नई नई पोथियां बढ़ती जाती हैं और बङ्गला पढ़नेवाले अल्प मूल्यमें बड़ी बड़ी पोथियां पाते हैं। उपहार बङ्गभाषाके कितनेही अखबार देते हैं, पर हिन्दू धर्म्मकी पुस्तकें जितनी बङ्गवासी आफिससे छपीं, उतनी कहीं न छपीं।

हिन्दीके लिये भी योगेन्द्रबाबूके हाथसे एक बड़ा काम हुआ। 'हिन्दी-बंगवासी' जारी करके उन्होंने हिन्दी अखबारवालोंको भी उसी प्रकार उन्नति करनेका पथ दिखादिया था। उनके हिन्दी अखबारकी बदौलत हजारों हिन्दी पढ़नेवाले उत्पन्न हुए। उन्हींके अखबारोंको देखकर कई हिन्दी अखबारोंने बड़ा डीलडौल बनाया और मूल्य अल्प किया। भारत-मित्र' यद्यपि हिन्दी-बङ्गवासीसे पुराना है, वरञ्च बंगला बंगवासीसे भी पुराना है, पर उसका वर्तमान आकार-प्रकार हिन्दी बंगवासीकी देखा-देखी हुआ है। बहुत अल्प मूल्य रखकर भी बड़े अखबार चल सकते हैं, यह शिक्षा योगेन्द्रबाबूने दी, इसके लिये हिन्दीके तरफदार उनके ऋणी हैं।

एक बङ्गला दैनिक पत्र भी उन्होंने निकाला था। कई वर्ष तक वह चला। अच्छा पत्र था। पहले बड़े उत्साहसे जी लगाकर उसको चलाया

था, पर चल न सका। कई साल हुए, वह बन्द हो गया है। 'जन्मभूमि' नामका एक बंगला मासिक पत्र भी योगेन्द्रबाबूने बड़ी योग्यतासे चलाया था। उसका जन्म हिन्दी-बंगवासीके साथ साथही हुआ था। कोई पाँच छः साल उक्त पत्र चला। खूब सस्तापत्र था, सचित्र था, ग्राहक भी उसे कोई डेढ़ हजार मिले थे, पर चल न सका। बन्द करना पड़ा। इसके बाद एक अंग्रेजी सचित्र मासिक पत्र भी आपने निकाला था, जो चल न सका, जल्द बन्द होगया।

योगेन्द्रबाबूका दिमाग सदा नई नई बातें तलाश किया करता था। बंगला और हिन्दीमें सस्ते पत्र चलानेके बाद उनको यह धुन समाई कि एक अंग्रेजीका सस्ता पत्र भी चलाया जाय। गत वर्षसे 'टेलीग्राफ' नामका एक अंग्रेजी दैनिक-पत्र उन्होंने निकालही दिया। कलकत्तेमें किसी अंग्रेजी दैनिक-पत्रकी एक संख्या चार पैसेसे कममें नहीं बिकती है, पर टेलीग्राफका आकार खूब बड़ा होनेपर भी उसकी एक कापी एक पैसेमें बिकती है। मजा यह है कि उतना बड़ा कोरा कागज भी एक पैसेमें नहीं मिलता है। इस सस्तापनपर अंग्रेजी अखबार हैरान हैं।

बाबू योगेन्द्रचन्द्र बसुमें कई गुण थे। वह अखबारके मालिक भी थे और सम्पादक भी थे। जितने अखबार उनके यहाँसे निकले, उनके आदि सम्पादक वही होते थे। बंगवासीमें वह बराबर लिखते थे और बीचबीच-में उसके पूरे सम्पादक बन जाते थे। जन्मभूमि और दैनिक भी उन्हींके लेखोंसे चमकते थे। आदिमें हिन्दी-बङ्गवासीके लिये भी वह बंगलामें लिखते थे और उन लेखोंका हिन्दी अनुवाद उक्त पत्रमें छपता था। सम्पादकके सिवा, वह कवि भी थे और गद्य बंगलाके एक जबर्दस्त और विचारशील लेखक थे। उन्होंने बंगभाषामें कई उपन्यास ऐसे धूमके लिखे हैं, जिनकी हजारों कापियाँ बिकी और कई कई बार छपी। उनके 'मोडेल-भगिनी' नामके उपन्यासकी बड़ी भारी कटती हुई। 'कालानन्द' नामका

ऐसा उपन्यास वह लिख गये हैं, कि यदि वह पूरा होजाता तो बङ्गभाषा-में लासानी होता। सबसे अन्तमें राजलक्ष्मी नामका एक और उत्तम उपन्यास वह लिखगये हैं।

हँसीके लेख लिखनेमें भी वह अपने ढंगके एकही थे। उनके हर उपन्यास और हर लेखमें वही झलक होती है। पर जहाँ गम्भीर बनते थे, वहाँ भी गजब करते थे। 'मॉडलभगिनी' उपन्यासके नायक ब्राह्मण देवताका चित्र खेंचनेमें गम्भीरताकी मूर्ति खड़ी करदी है।

विज्ञापन लिखनेमें बड़ेही वीर थे। बंगला और हिन्दीमें विज्ञा-पनोंका नया ढंग उन्हींके आविष्कृत ढङ्गकी नकल है। अपनी इस अपूर्व शक्तिको उन्होंने वी० बसुका सालसा और विजयबटिका बेचनेमें खर्च किया और उससे खूब रुपये पैदा किये। उनका चलाया हुआ यह कारोबार खासे नफेका है। उनके हाथसे बङ्गभाषाके साहित्यकी अच्छी सेवा हुई, तिसपर भी अपनी बनाई पुस्तकोंपर वह अपना नाम न देते थे। अब उनके शरीरान्तके बाद यह बात प्रचार की जाती है, कि वह उपन्यास उनके लिखे हुए थे।

उनकी अंग्रेजी-शिक्षा बहुत साधारण थी, तथापि अपने बुद्धिबलसे उन्होंने अंग्रेजीसे बहुत कुछ काम लिया। अंग्रेजी दैनिक पत्र जारी किया, अंग्रेजीकी अच्छी अच्छी भारतवासियोंके कामकी किताबें छापकर सस्ते दामोंपर बिकवाईं। बङ्गभाषाके लिखनेकी उनकी चलाई नई चालका खूब अनुकरण हुआ।

योगेन्द्र बाबूका शरीर बहुत भारी था। मामूली कुर्सीपर बैठ नहीं सकते थे। रङ्ग अत्यन्त काला था। भारी होनेसे चल-फिर बहुत-ही कम सकते थे। आवाज साफ न थी। बहुत रुक रुककर बातें करते थे। उनकी शकल देखकर कोई नहीं कह सकता था, कि यह बड़े रसिक और नामी सुलेखक हैं। उनकी रसिकता इस दर्जेतक थी, कि

बात करते समय स्वयं अपने रङ्ग रूपकी दिल्लगी किया करते थे। बड़े मिष्ट भाषी और सीधे सादे थे।

उनके तीन पुत्र और एक कन्या है। वरदाप्रसाद बसु इस समय सारे कारोबारके मालिक हुए हैं। उमर उनकी ७० सालसे कुछ ऊपर है।

—भारतमित्र १९०५ ई०

हरबर्ट-स्पेन्सर

विलायत भी भारतकी भाँति विद्वानोंसे खाली होती जाती है। बहुत कालसे भारत, उन विद्याकी ज्योति फैलानेवाले ऋषि महर्षियोंको खो चुका है, जो वनोंमें एकान्त निवास करके विद्या और ज्ञानकी आलोचना करते थे; जिन्होंने विशुद्ध ज्ञानके अनुसन्धानमें संसारकी सब चीजोंसे मुंह मोड़कर जंगलों और पर्वतोंकी कन्दराओंमें आयु बिता दी। अब विलायतमें भी वही दशा जारी है। वहांके सरस्वतीकुमार भी एक एक करके उठते जाते हैं। कई मास हुए, हरबर्ट स्पेंसर उठ गये! आप विलायतके एक नामी दार्शनिक थे।

संसार इस समय जड़ पदार्थोंकी शोभापर मुग्ध है। रुपयेके सामने इस जमानेमें सब चीजें हेच हैं। विद्वान और विद्याका कौन आदर करेगा? एक विचारशील पुरुषने विलायतकी धन-लोलुपता और स्वार्थान्धतापर दृष्टि करके क्या सुन्दर कहा है, कि अब विलायतमें ग्लाडस्टान और ब्राइटके आसन पर चेम्बरलेन और ब्राडरिक विराजमान हैं और विद्याके आसनपर किपलिङ्ग। विद्वानोंकी ऊँचीसे ऊँची दृष्टि भी पैसेपर है।

अभी पायनियरके विलायती संवाददाताकी निन्दा हुई है, कि उसने लार्ड कर्जनकी ४ थी जूनवाली ईटन कालिजकी वक्तृताका अर्थ ठीक नहीं

समझा। लार्ड कर्जनने यह नहीं कहा था, कि भारतमें पक्का वायसराय रहनेका नियम जारी होना चाहिये, वरञ्च दिल्लगीमें कहा था, कि इस कालिजके लड़के तीन बारकी जीतमें प्याला अपना कर लेते थे, अब तीन चार इसके लड़के भारतके वायसराय हुए हैं, इससे यह पद उनके लिये पक्का होजाना चाहिये और तीन बार वह विलायतके प्रधान मंत्री हो चुके हैं, इससे यह पद भी उनके लिये पक्का होजाना चाहिये अर्थात उन्होंने खुल्लम-खुल्ला नहीं कहा था, कि भारतकी लाटगिरीका पक्का पट्टा, विलायतके ईटन कालिजके लड़कोंके नाम लिखदेना चाहिये, वरञ्च कोनेमें कहा था, कि ऐसा न होना चाहिये। जिस प्रकार किसी बालकको अपने माता पितासे कोई वस्तु मांगनेकी हिम्मत न हो और वह इधर उधर किसीसे चुपके चुपके उसे कहे, वही बात तो लार्ड कर्जनने की।

खैर, खुले दहाने कहें या कोनेमें, इतना मालूम होगया, कि विद्याका भारीसे भारी दाम धन है। विद्याका परम-फल भारतका बड़ा लाट होजाना या विलायतका प्रधान-मंत्री बन जाना है। अर्थात् विद्या, धनके बदलेमें बिक जाती है अथवा सोने और जवाहिरातमें जड़ित होकर सबकी आँखोंमें बड़ा बनना विद्याका फल है या हाथियोंका जुलूस निकालकर स्वयं आगे होना और सब राजा महाराजोंको हाथियोंपर चढ़ाकर अपने हाथीके पीछे पीछे चलाना विद्याका अधिकसे अधिक फल है! पर क्या विद्याका सचमुच यही मूल्य है? विद्वानकी ऊँचीसे ऊंची यही आकांक्षा है?

हरबर्ट स्पेन्सरके विषयमें एक विलायती पत्रमें कई एक बातें छपी हैं। उनके पढ़नेसे मालूम होगा, कि विद्वान् क्या चाहते हैं और उनका हृदय कैसा होता है।

ग्राण्ट एलेन नामका एक आदमी स्पेन्सरका हमउमर था, उसने कई-एक बातें स्पेन्सरके विषयमें लिखी थीं। वह मर गया। मरते समय

उसने कहा कि स्पेन्सरके मरनेसे पहले मेरी लिखी हुई यह बातें प्रकाशित न हों। वह स्पेन्सरका बड़ा मित्र था। उसके जीमें उसका बड़ा आदर था। वह जानता था, कि ऐसे अच्छे मस्तिष्क और तेज बुद्धिका आदमी दुनियांमें दुर्लभ है। उसका परिचय बहुत दिनसे स्पेन्सरके साथ था, पर साक्षात् भेंट कभी न हुई थी। सन १८८६ ई० में वह स्पेन्सरसे उसके मकानपर मिलने गया। स्पेन्सर उस समय क्वीन्सगार्डन बेसवाटर नामके स्थानमें रहता था।

ग्रान्टने जाकर उस मुहल्लेमें घर घर पूछना आरम्भ किया कि यहां स्पेन्सर साहब रहते हैं ? हर जगह यही उत्तर मिला कि यह नाम तक हमने नहीं सुना। तब पहरेवालेसे पूछा। उसने कहा, नहीं साहब! इस नामका आदमी यहां नहीं रहता, आप पता भूले हैं। यह बातें सुनकर ग्रान्टने मनमें कहा—“हाय! इंगलैंडके सिवा पृथिवीके किस देशमें ऐसी मूर्खता हो सकती है ? इतना बड़ा विद्वान् यहां वर्षोंसे रहता है और इस मुहल्लेका एक आदमी भी उसका नाम नहीं जानता ? कितना अन्धेर है!”

ग्रान्टने स्पेन्सरको कैसा देखा उसके विषयमें वह कहता है— “स्पेन्सरको देखकर कभी खयाल नहीं हो सकता, कि वह इतना बड़ा पण्डित है! पहले उसे देखनेसे यही विदित होता, कि वह कोई मामूली मुन्शी है। पर उससे बातें करनेसे जान पड़ता है कि उसके मनका भाव मुखसे प्रकाशित नहीं होसकता। क्वीन्स गार्डनके एक बोर्डिंग हाउसमें स्पेन्सर बीस साल तक बराबर रहा। पर वहां भोजनके समयके सिवा कोई उसे देख न पाता था। बेसवाटरमें एक दूधकी दुकान थी, नीचे दूध बिका करता था, ऊपर एक छोटासा कमरा था, वहां बैठकर वह दिन-रात दर्शनकी आलोचना करता था। पुस्तकोंके ढेरमें उसका चित्त घुसा रहता था। उसका जीवन एक योगीकासा था। उसका मन

लगाकर दर्शनकी आलोचना करना योगीके ध्यानके तुल्य था। इन बीस सालमें बोर्डिङ्ग हाउसकी मालिकनीको भी उसने अपने पढ़नेके घरका ठिकाना न बताया। इसीलिये कि नौकर पता बता देंगे तो लोग आकर उसके एकान्त विचारमें वाधा देंगे, अथवा जानकर भी उन्हें कहना पड़े कि हम उनका पता नहीं जानते।

स्पेन्सरकी एक जीवनी स्वयं लिखी हुई है। इसमें मृत्युसे १३ साल पहले तककी सब बातें हैं। उक्त जीवनीसे विदित होता है कि वह अपने माता पिताका अकेला पुत्र था। कोई भाई बहिन उसके न था। इससे उसका स्वभाव खूब उद्धत था। लड़कपनमें लड़कोंसे तर्क करने और अपने तर्कके जोरसे उनको हरा देनेमें उसे बड़ा मजा मिलता था। किसीकी बातपर भी वह चुपचाप हाँ न करता था। कुछ न कुछ तर्क निकालता। इसीसे सब बातोंका तथ्य निकालनेकी ओर उसकी तबीयतका झुकाव हो गया था। ऐसी आदत पर दोष लगाया जासकता है, पर वही स्वभाव सिद्ध थी; मिट नहीं सकती थी। इस प्रकार स्पेन्सरने अपनी एक एक बातकी खोज करके उसके गुण दोष दिखाये हैं।

उसका जन्म २७ अप्रेल सन् १८२० ई० को हुआ। उसके बाद उसके पिताके पाँच बालक हुए, पर आठ आठ दस दस दिनसे अधिक न जिये। लड़कपनमें स्पेन्सरको लिखना पढ़ना सिखाना कठिन होगया था। एक तो वह अकेला लाडला था, दूसरे दुष्ट। स्कूलमें सबसे आगे दौड़ता और सब लड़कोंपर अफसरी करता। लड़कपनमें वह माताके पास बहुत रहता था। पिताने सोचा कि कहीं और भेजना चाहिये: यहाँ वह पढ़े लिखेगा नहीं।। हिन्टन नगरमें उसका एक चचा पादरी था, वहीं उसके भेजनेकी सलाह हुई। जाते समय स्पेन्सरने कुछ न कहा। समझा कि चाचासे मिलने जाना है। दस दिन चाचाके पास वह प्रसन्न रहा। पीछे उसने जाना कि माताके पास अब जाना न

मिलेगा। बस, चुपचाप पाकेटमें दो शिलिङ्ग डाल घरको चल दिया। पहले दिन ४८ मील पैदल चला; दूसरे दिन ४७ मील और तीसरे दिन २० मील चलकर माताके पास पहुँच गया। सारे राह रोते रोते गया, कहीं न ठहरा। उस समय वह कोई १३ सालका था। इस घटनासे उसकी एकाग्रता, उत्साह और दृढ़ताका खूब परिचय मिलता है।

जवानीमें भी उसने लिखना पढ़ना न सीखा। अंग्रेजी व्याकरणका उसे कुछ होश न था। कभी अच्छी अंग्रेजी न लिख सका। इतिहास नहीं पढ़ता था। कहता—"इतिहासमें झूठी बातें भरी रहती हैं, उनकी आलोचनासे क्या लाभ है? यदि इतिहासमें मनुष्य-समाज विशेषके क्रम-विकासके पर्यायकी व्याख्या होती तो पढ़ता।" सारांश यह है कि जिसे सब लोग पण्डित और शिक्षित कहते हैं, स्पेन्सर उनमेंसे कुछ न था। कवि शैली, दार्शनिक प्लेटो, सन्दर्भकारोंमें कारलाइलका लेख उसे कुछ कुछ पसन्द था। वह अङ्कशास्त्र जानता था। एक सिविल इंजिनियरके साथ उसने चार पाँच साल रेलका काम किया। वह संसारमें अधिक किसीकी परवाह न करता था।

उसने विवाह नहीं किया। इसका कारण स्वयं लिखा है—"मेरे बहन न थी, एक बूढ़ी माता थी, इससे कोई स्त्री हमारे यहाँ नहीं आती थी। स्त्रियोंके साथ रहनेका अनुभव मुझे कभी न हुआ। अवस्था मन्द थी, इससे विवाहकी बात कभी सोची भी नहीं। पीछे जब अवस्था अच्छी हुई तो सिरमें बहुत भारी पीड़ा आरम्भ हुई। मेरे मित्रोंने विवाह करनेपर जोर दिया। एक लड़की भी मिली। मेरी "सोशल स्टेटिक्स" पढ़कर मुझे देखने एक स्त्री आई। बातें हुईं। पर दोनोंने दोनोंको नापसन्द किया। मैंने सोचा, इतनी पढ़ी लिखी स्त्रीको लेकर क्या घर बसेगा। यह मुझसे भी तेज उद्धत और स्वाधीन प्रकृतिकी होगी। क्या जाने क्या हो, इसीसे पीछे हटा। युवतीने भी मुझे

नापसन्द किया।" यही विवाहका प्रथम उद्योग था और यही अन्तिम। वह स्त्री थी, मिस इवान्स जार्ज इलियट। बुढ़ापेमें दोनोंमें बड़ा मेल हुआ था।

जवानीमें स्पेन्सर नास्तिक था। उसी पद्धतिसे उसने दर्शनकी आलोचना आरम्भ की। कारलाइल और मिलसे उसकी बड़ी मित्रता हुई। उसने कभी कोई उपाधि न ली, कभी राजाका दर्शन करने न गया, कभी धनीकी सेवा न की और न किसी सभाका सभापति हुआ। कभी खुली वक्तृता न की, कभी अपनी पुस्तक किसीको आलोचनाके लिये न दी। कभी किसी समाज या मण्डलीसे कोई सम्मान या मर्यादाका पद न लिया। कभी किसीसे कुछ न मांगा और कभी किसी मित्रसे रुपयेकी सहायता आदि न ली। सामाजिकता या लौकिकता उसमें न थी। अचानक देखनेसे मालूम होता था, कि यह आदमी कुछ नहीं है और बातें करनेपर यह अनुभव होता कि वह बड़ा कर्कश आदमी है, पर मित्रके निकट वह अति स्नेहमय और भावमय था। लड़कोंको लेकर खेलना उसे बहुत पसन्द था। यही उसका एकमात्र आमोद था।

बुढ़ापेमें वह ईश्वर-विश्वासी हुआ था। उसने देखा कि संसारके कार्य्य कारणोंमें एक उद्देश्य है। संसारमें जो कुछ होता है, वह मानो किसी मतलबसे होता है। मनुष्य कितनाही बेसुध क्यों न हो, उसके अन्तरमें एक आत्मानुभूति सदा जागती रहती है। वही जन्म मृत्युके बीचका अन्तर बता देती है। ऐसा क्यों होता है? इसी प्रश्नसे स्पेन्सरने ईश्वरका होना अनुभव किया और धर्म कर्मकी जरूरत भी समझी। वह एक लासानी दार्शनिक था। उसके स्वयं अपने जीवनी लिख जानेपर बहुत लोग आश्चर्य करते हैं, कि ऐसा विद्वान् जिसने विवर्त्तन-वादको दर्शनसे मिला दिया, अपनी जीवनी आप लिखे! पर उस जीवनीमें भी उसकी दार्शनिक विश्लेषण-पटुता मौजूद है। विद्वान्‌का

क्या भाव होता है, संसारसे उनका क्या बर्ताव होता है, यह स्पेन्सरकी जीवनीसे अनुभव करना चाहिये। —भारतमित्र १९०४ ई०

मेक्समूलर

विलायतमें मेक्समूलरका बड़ा नाम है। पृथिवीके समस्त सभ्यदेशोंके पढ़े लिखे लोगोंमें उनके नामका बहुत कुछ आदर है। भारतवर्षमें भी इनके नामकी कम धूम नहीं है। केवल अंग्रेजी पढ़े हुए लोगोंमें ही नहीं; इस देशके ब्राह्मण पण्डितोंमें भी मेक्समूलरके नामकी बहुत कुछ चर्चा है। हमारे ब्राह्मण पण्डित लोग अन्य देशोंके विद्वानोंकी बहुत कम खोज खबर रखा करते हैं, परन्तु मेक्समूलरके नामको वह भी भली भाँति जानते हैं। केवल जानते ही नहीं हैं, वरञ्च भारतवर्षके विद्वान पण्डितोंके प्रसादसेही कृस्तान प्रोफेसर मेक्समूलरका नाम "आचार्य्य मोक्षमूलर भट्ट" पड़ गया था। भारतवासियोंके हृदयमें मेक्समूलरका बड़ा आदर होनाही चाहिये, उनके प्रतापसे इस संस्कृतके देशमें संस्कृतकी कुछ अधिक चर्चा हुई तथा इस देशके असंस्कृत लोगोंके हृदयमें भी संस्कृतने कुछ कुछ जगह पाई। इस देशके अंगरेजी पढ़े हुए बाबू, जो केवल अंगरेजीहीको लेकर मस्त थे, प्रोफेसर मेक्समूलरकी बदौलत कुछ कुछ संस्कृतकी तरफ झुके। वह संस्कृतके तलस्पर्शी पण्डित नहीं थे, तो भी भारतवासियोंके सन्मानार्ह थे, क्योंकि देवनागरी, और संस्कृतमें उनकी प्रगाढ़ अनुरक्ति थी। उस संस्कृतके नातेसेही भारतवासियों और भारतवर्षके साथ उनका प्रेम था। संस्कृतकी शिक्षामें मेक्समूलरने सारा जीवन बिता दिया, वे संस्कृत शास्त्रको सारवान समझते थे, इसीसे उसके प्रचारमें उन्होंने अपने आपको अर्पण कर दिया था।

मेक्समूलर वेदकी पूजा नहीं करते थे, परन्तु सम्मान करते थे। वेदको

वह अपौरुषेय नहीं मानते थे, परन्तु वह जानते थे कि इसमें बहुत कुछ सार है। वह इस बातको नहीं समझ सके कि वेद मामूली पुस्तकोंकी भांति पढ़नेकी चीज नहीं है, वरञ्च काममें लानेकी चीज है। परन्तु एक कृस्तान हिन्दू-धर्मकी इतनी निगूढ़ बातको समझ भी कैसे सकता है! आज जब कि वेदके पढ़ने पढ़ानेवाले आर्य्य लोगोंकी सन्तानही वेदको लेकर नाना प्रकारके खिलवाड़ करती है, उसके कपोल कल्पित अर्थ करती है, तो वह भिन्न धर्म्मी, भिन्न देशवासी वेदकी तली तक कैसे पहुंच सकते हैं। मेक्समूलरने, तथापि पठन-पाठनमें बहुत समय लगाया। ऋग्वेद छापकर प्रकाश किया, उसका अङ्गरेजी अनुवाद भी प्रकाश किया। वेदके प्रकाश करनेमें मेक्समूलरने सबसे प्रशंसाके योग्य यह कार्य्य किया कि उसमें अपनी इच्छाको दखल नहीं दिया। स्वेच्छाचारितासे तत्वा-लोचना करनेका अपलाप नहीं किया। वह नहीं जानते थे कि वेदको कैसे सजायें, तथापि अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा बना; वैसा सजाया और अनुवाद भी जैसे उनसे बनसका, किया। उनके वेदसे भारतवर्षका बहुत कुछ उपकार हुआ, उन्हींका छापा हुआ ऋग्वेद इस समय भारतवर्षके ब्राह्मण पण्डितोंके पास है। उनके अंगरेजी वेदसे अंगरेजी पढ़े लोग कुछ कुछ भ्रममें भी पड़े हैं। उनकी समझमें यही आया कि वेद प्राचीन आर्य्य किसानोंका गीत है, परन्तु मेक्समूलरका कुछ दोष नहीं है, जिन लोगोंकी समझमें ऐसी बात आई है, उनकी समझमें इससे अधिक और कुछ नहीं आसकता था। जो कुछ हो, मेक्समूलरका जितना हम आदर करें, कम है। वह भारतवासी नहीं थे, आर्य्य-सन्तान नहीं थे, आर्य्य धर्मावलम्बी नहीं थे, यहां तक कि आर्य्य-देशमें पैदा भी नहीं हुए थे, ऐसे मनुष्यका जीवन, संस्कृतकी महिमा-प्रचार करनेमें बीत जाय, यह एक बड़ीही विलक्षण बात है। इस संस्कृतकी अवनतिके समयमें आर्य्य-सन्तानकी इस गिरी हुई दशामें मेक्समूलर संस्कृतकी चर्चाहीमें लिप्त

रहते थे, यह क्या कम आदरकी बात है ? वह भारतवर्षमें कभी नहीं आये, परन्तु जब कोई विलायत जानेवाला भारतवासी उनके घर पर जाकर उनसे मिलता था, तो उसके सामने पहले संस्कृतहीकी बात छेड़ते थे। संस्कृत न जाननेके कारण कितनेही भारतवासियोंको उनके पास जाकर लज्जित होना पड़ा था।

सन् १८२३ ई० को ६ दिसम्बरको जर्मनीके अन्तर्गत "डीशो" नामक स्थानमें मेक्समूलरने जन्म लिया। उनके पिता एक प्रसिद्ध जर्म्मन कवि थे। मेक्समूलरने लिपजिक और बर्लिनके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाई। २० सालकी उमरमें उनको उपाधि मिली। उनके शिक्षाकालके पहलेसेही जर्म्मनीमें संस्कृत आदि की चर्चा आरम्भ हुई थी, फारसी, अर्बी, पाली, संस्कृत आदि भाषाओंकी समालोचना होने लगी थी। मेक्समूलर इन भाषाओंकी चर्चा करनेवालोंके पास आया जाया करते थे। शेलिङ्ग आदि कई प्रसिद्ध दार्शनिकोंके पास उन्होंने दर्शनशास्त्र पढ़ा, तभी उनकी संस्कृत पढ़नेकी रुची हुई और १ वर्षके भीतर हितोपदेशका एक अनुवाद प्रकाशित किया। पीछे वह बर्लिन विश्वविद्यालयकी संग्रहीत संस्कृत पुस्तकोंको पढ़ने और आलोचना करनेमें नियुक्त हुए, वहाँसे वह हर साल पैरिस जाते थे और यूजिनीवानूससे संस्कृत पढ़ते थे। वानूसकी प्रेरणासेही मेक्समूलर वैदिक—चर्चामें लगे और ऋग्वेद तथा सायण-भाष्यके एक पूर्णसंस्करणका सम्पादन करनेमें नियुक्त हुए। पैरिसमें ऋग्वेदकी जितनी पोथियाँ मिलीं, उन सबको देखा तथा ईष्ट इण्डिया कार्य्यालय तथा आक्सफोर्ड और वड-लियमके पुस्तकालयोंमें जो पोथियाँ थीं, उनके देखनेके लिये मेक्समूलर विलायत गये। यह १८४६ ई० की बात है। यह काम करके जब मेक्स-मूलर अपने देशको लौटते थे, तो लण्डनमें उनकी बेरनविन्सिनसे मुलाकात हुई। उनके कहनेसे मेक्समूलरने स्वदेशमें आनेका इरादा छोड़ दिया। ईष्ट इण्डिया कम्पनीने ऋग्वेदके प्रचारका भार लिया और मेक्समूलरके

हाथमें उसका भार सौंपा गया। तबसे मेक्समूलर आक्सफोर्डमें बस गये। अन्तको आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालयके अध्यापक नियुक्त हुए। यहीं रह-कर मेक्समूलरने कोई ५५ वर्ष तक संस्कृतादि भाषाओंकी आलोचना की। संस्कृत साहित्यकी इतिहास-रचना, वैदिक-साहित्यके उद्धार, बौद्ध-साहित्य-के प्रचार, हिन्दू-दर्शनकी आलोचना, धर्म्म-विज्ञान, भाषा-विज्ञान, मनो-विज्ञान आदि विभागोंमें उन्होंने जो कुछ मीमांसा की है, उसमें भ्रम होने पर भी उसका बहुत कुछ आदर हुआ है। उनके ऋग्वेदका प्रथम भाग सन १८४९ ई० में प्रकाशित हुआ, तभी से उनकी ख्याति भारतवर्षमें तथा अन्यत्र हुई। उन्होंने इतने ग्रन्थ रचे हैं, कि उनके वर्णन करनेमें एक पुस्तक बन सकती है। विभिन्न पचास प्रसिद्ध धर्म्मशास्त्रोंका अनुवाद भी उन्होंने प्रकाशित किया। केम्ब्रिज, एडिनबरा, ग्लासगो आदिके विश्वविद्यालयोंमें वह समय समय पर वक्तता देते थे। वह सब वक्तृताएं भी पुस्तकाकार छपी हैं। प्राचीन हिन्दू-शास्त्रोंका इतिहास नामकी एक प्रसिद्ध बड़ी पुस्तक भी उन्होंने लिखी। लिखने पढ़नेमें उनका उत्साह ऐसा बढ़ा हुआ था कि ७५ वर्षकी उमरमें भी दो और बड़ी किताबें लिखीं, जिनमेंसे एक श्रीरामकृष्ण परमहंसकी जीवनी और उक्तियां हैं, दूसरी षट्दर्शनका इतिहास।

मेक्समूलर ७७ वर्षके होकर मरे। इस उमर तक उनका स्वास्थ्य अच्छा था, शरीरमें बल था। आजकलके समयमें लोग जितनी आयु पाते हैं, उसको देखिये तो मेक्समूलरने बहुत उमर पाई। उनकी सारी उमर विद्याकी चर्चामें बीती, सारी दुनियांके पढ़े लिखे लोगोंमें उनके नामका आदर है। वह विलायतहीमें रहे, परन्तु संसार भरके पढ़े लिखे लोगोंके घरोंमें उनका चित्र लटकता है। संसारमें कितनेही लोग धनसे आदर पाते हैं, कितनेही बलसे आदर पाते हैं, मेक्समूलरने विद्यासे वह आदर पाया जो धन और बलसे भी बहुत बढ़कर है। मेक्समूलरका हम कहां तक आदर करें। उन्होंने कृस्तान होकर संस्कृतका आदर किया, उनकी सारी

उमर संस्कृतकी आलोचनामें बीती, तिसपर भी वह पक्के कृस्तान थे, अपने कृस्तान धर्मको सबसे ऊंचा कर दिखानेमें उन्होंने कमी नहीं की। हमारे देशमें अंगरेजी आदि पढ़कर लोग पागल होजाते हैं और विदेशीय भावमें डूब जाते हैं, अपने धर्म्मको खो बैठते हैं। ऐसे लोगोंको देखना चाहिये कि क्योंकर मेक्समूलर संस्कृत-चर्चा करते हुए, संसार भरके धर्म्मोंकी चर्चा करते हुए भी अपने कृस्तान धर्म्ममें दृढ़ थे। मेक्समूलरकी मृत्युसे हमें हर्ष है और विषाद भी है। हर्ष यह है कि उन्होंने अच्छी आयु पाई, अच्छा यश पाया। यशस्वी बूढ़के मरनेपर हिन्दू हर्ष करते हैं। विषाद इस बातका है कि विलायतवालोंको चाहे मेक्समूलर जैसे लोग मिल जायं, परन्तु हम भारतवासियोंको हमारी देववाणी संस्कृतका आदर करनेवाला मेक्समूलर न मिलेगा।

—भारतमित्र १९०० ई०

अकबर बादशाह

अकबर बादशाहका दादा बाबर काबुलसे हिन्दुस्थानमें आया और सं० १५८३ विक्रमाब्दमें दिल्लीके बादशाह इब्राहीमखां लोदीको मारकर उसके राज्यका अधिकारी हुआ। संवत १५८८ में बाबर मर गया और उसका बड़ा बेटा हुमायूं उसके राज्य सिंहासनपर बैठा। संवत १५९७ में शेरखां पठानने उससे लड़कर उसकी बादशाहत छीनली। तब हुमायूं पंजाब और सिन्धसे होकर मारवाड़को गया और उसी विपद्ग्रस्त दशामें फिर सिन्धको लौटा। सिन्ध देशके अमरकोट स्थानमें पहुंचनेपर कार्तिक सुदी ५ सं० १५९९ को अकबरका जन्म हुआ। हुमायूं अकबरको काबुल ले गया और उसे वहीं छोड़कर ईरान चला गया। ईरानके बादशाहने उसे सहायता दी और उससे उसने सं० १६१२ में पठानोंको निकालकर फिर दिल्लीपर अपना अधिकार कर

लिया। पर छःही महीने पीछे हुमायूं बादशाह छतसे गिरकर मर गया। अकबरने अपने पिता हुमायूँके मरनेकी खबर सरहिन्दमें सुनी। वहाँ वह पठानोंसे लड़ रहा था। वहाँसे वह कलानोरमें आया। वहाँ उसका राज्याभिषेक हुआ। उस समय बहुत थोड़ासा हिस्सा पंजाब और काबुलका उसके अधीन था, पर ५० वर्ष पीछे जब संवत १६६२ में अकबरका देहान्त हुआ, तो सारे भारतवर्षमें उसका शासन चलता था। शान्ति और सुशासनका वह बड़ा पक्षपाती था। इसीसे राज्यके प्रबन्ध और प्रजाके सुखके लिये उसने अच्छे अच्छे नियम बनाये थे।

अकबर दुनियाके नेकनाम बादशाहोंमेंसे था। उसने नेकी और नेकनामीके बड़-बड़े काम किये, जिनके कारण आजतक लोग उसका नाम बड़े प्रेमसे लेते हैं। उसे लोगोंने सुलहकुलकी उपाधि दी थी, जिसका अर्थ है सबसे मिलकर चलनेवाला। अकबरमें सबसे बड़ा गुण यह था कि उसे किसी जाति, किसी सम्प्रदाय और किसी धर्म्मसे द्वेष नहीं था। हिन्दुओंको उसने ऐसा प्रसन्न किया कि वह उसपर जी जानसे मोहित थे। हिन्दुओंने उसको 'जगद्गुरु' तककी उपाधि दे डाली थी। हिन्दी और संस्कृत पुस्तकोंमें अकबरकी बहुत कुछ प्रशंसा लिखी गई है। राजा रामदास कछवाहेके बनवाये हुए एक संस्कृत ग्रन्थमें अकबरकी जो कुछ प्रशंसा लिखी गई है, उसका भावार्थ इस प्रकार है—"जो समुद्रसे सुमेरु पर्वत तक प्रजाका पालन करता है, जो गायोंको मृत्युसे बचाता है, जिसने तीर्थों और व्यापारके कर छोड़ दिये हैं, जिसने पुराण सुने और जो सूर्य्यका जाप करता है, जो योगका साधन करता है और गंगाजलके सिवा और कोई जल नहीं पीता, जिसने कलिकालसे घटे हुए धर्म्म, वेद, ब्राह्मण और गायोंकी रक्षाके लिये जन्म लिया है—उस जलालुद्दीन अकबरकी जय हो।"

पोथियोंहीमें नहीं ; अमीरसे लेकर कंगाल तकके झोपड़ेमें अकबरका यश गाया जाता था। वह जीते जी यशस्वी हुआ और आज उसको मरे तीन सौ वर्ष हो गये ; अब भी लोग उसे भूले नहीं हैं। निरक्षरसे निरक्षर लोग भी अकबरके न्याय और उदार-भावकी कहानियां कहा करते हैं। ऐसा भाग्य हरेकका नहीं होता। भाग्यसे अकबरको मुसाहिब भी अच्छे-अच्छे मिले थे। वह उसकी सभाके गौरव कहलाते थे। अद्वितीय बुद्धिमान राजा टोडरमल उसका वजीर था। उसने लगभग सारे हिन्दुस्थानकी पैमाइश करके हरेक गांवकी अलग-अलग सीमा निकालदी थी। राजा बीरबलसा दानी, दूरदर्शी, मिष्टभाषी और प्रत्युत्पन्नमति सभासद् उसे मिला था, जिसके उत्तम व्यवहारसे हिन्दू और मुसलमानोंमें बड़ा मेल होकर भेदभाव उठ गया था। फैजी-सा कवि, अबुलफजलसा मुंशी, खानखानासा सेनापति, राजा मानसिंहसा सूबेदार फतहउल्लह और अब्दुलफतहसे हकीम अकबरको मिले थे। गंगसे कवि, तानसेनसे गवैये उसे मिले थे। ऐसे लोग और बादशाहोंको नहीं मिले। एक कवित्त नीचे लिखते हैं। उससे अकबरके दरबारके अच्छे-अच्छे लोगोंके नाम मालूम होंगे

"दिल्लीसे तखत बखत मुगलनसे न होयँगे, होयँगे नगर न कहूँ आगरा नगरसे।
गंगसे न गुनी न तानधारी तानसेन जैसे, बूचनसे न कानूंगो न दाता बीरबरसे।
खाननमें खानखाना, राजनमें राजा मान, होंगे न वजीर कहूँ टण्डन टोडरसे।
सात द्वीपके मझार सातहूँ समुद्र पार होंगे न जलालुद्दीन गाजी अकबरसे।"

अकबर बादशाहके बसाये हुए आगरा, इलाहाबाद, काबुलके पास जलालाबाद आदि नगर और अटक आदि किले सदा उसका स्मरण दिलाते हैं। उसने अपने राज्यको १५ सूबोंमें बांटा था। हरेक सूबेमें एक-एक सूबेदार रहता था और उसके नीचे कई फौजदार होते थे, जो चोरी डाके आदिका पता लगाते थे और बड़े-बड़े जमींदारों और राज्यों-

से बादशाही हुक्मोंकी तामील कराते थे। दीवानी और मालका काम सूबेका दीवान करता था और सूबेका फौजी अफसर उस सूबेका बख्शी होता था। इन्साफके लिये काजी और मीरअदल नियत थे। मार्गोंकी रक्षाके लिये बड़-बड़ फौजी अफसर थे, वह मनसबदार कहलाते थे। पन्द्रह सूबोंके नाम यह हैं:—आगरा, इलाहाबाद, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली, लाहौर, काबुल-कन्दहार, मुलतान, मालवा, बरार, खानदेश, अहमदनगर। इनके सिवा मरहटा, तिलंगाना और कर्नाटक नामक तीन सूबे अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुरके बादशाहोंके पास थे, वह भी अकबरके अधीन होगये थे। राजा लोगोंमेंसे केवल महाराणा प्रतापसिंहने अकबरकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी।

अकबरके समयमें बड़ा अमन चैन था। अन्न सस्ता था, प्रजा सुखी थी। सब सुखसे दिन बिताते थे। उस समयकी कुछ चीजोंका भाव नीचे लिखते हैं, पढ़कर आश्चर्य होगा। स्वप्नसा मालूम होगा कि जिस भारतवर्षमें अब हर साल अकाल और अन्नके लिये हाहाकार रहती है, वह कभी इतना सुखी था।

गेहूँ	फी मन	।)॥।
काबुली चने	,,	=)।
देशी चने	,,	≡)।
मसूर	,,	।)॥।
जौ	,,	≡)।
चावल बढ़िया	,,	॥)
दूसरे चावल	,,	१)
साठी चावल	,,	≡)।
मूंग	,,	।≡)

उड़द	,,	।=)॥
मोठ	,,	।)॥।
तिल	,,	≡)॥
ज्वार	,,	।)
मैदा	,,	।=)॥।
आटा	,,	।=)
घी	,,	२॥=)
तेल	,,	२)
दूध	,,	।=)
दही	,,	।≡)
खांड सफेद	,,	३-)।
लाल खांड	,,	१।=)॥
अंगूर	,,	२)॥।

अकबरी मन अंग्रेजी तौलसे २६ सेर १०। छटांकका होता था। किशमिश ≡)॥ खोपरा -)॥। बादाम ।)॥ पिस्ता ≡)॥ सुपारी ≡)। सेर बिकती थी। अकबरी सेर अंग्रेजी सेरका १०। छटांक होता था।

अकबरका समय

ता० १६ अक्टोबर अकबर बादशाहके मरनेकी तिथि कही जाती है। उक्त तिथिको अकबर बादशाहको मरे पूरे ३०० वर्ष हो गये। कई महीने पहले कुछ शिक्षित लोगोंके जीमें यह विचार उठा था, कि उक्त तिथिको अकबरके स्मरणार्थ कुछ उत्सव किया जाय। कई एक मासिक पत्रवालोंने अकबर-नम्बर निकालनेकी बात भी सोची थी। पर वही १६ अक्टोबरकी तिथि बंगालके टुकड़े होनेकी तिथि निकल आई। उससे एक नईही बात खड़ी होगई। अकबरको उसके सामने लोग याद न रख सके। अपनी विपद्‌में मनुष्य औरकी बात भूल जाता है।

अकबरकी मृत्युकी ठीक ठीक तारीख कौनसी है, उसमें भी कुछ गड़-बड़ पड़ गई है। भारतमित्रके इस वर्षके उपहारके लिये जो जहांगीरनामा छप रहा है, उसमें मुंशी देवीप्रसाद साहब मुंसिफ जोधपुरने अकबरके मरनेकी तारीख १३ जमादिउस्सानी सन १०१४ हिजरी लिखी है, जिसके मुकाबिलेमें कार्तिक सुदी १५ संवत १६६२ विक्रमाब्द पड़ता है। हिन्दी मितीके अनुसार कार्तिक सुदी पूर्णिमाको अकबरको मरे ३०० वर्ष होंगे, पर हिसाब लगानेसे अंग्रेजी तारीख उस दिन १६ अक्टोबर होती है, जो गत सोमवारको बीत चुकी। अकबरकी मृत्यु बुधवारको हुई, यह बात निश्चय है। बुधवारको मुसलमान चहारशम्बा कहते हैं। उक्त दिनको पिताकी मृत्यु होनेसे जहांगीरने अशुभ समझा था। इसीसे चहारशम्बे-का नाम कमशम्बा रखा और हुक्म दिया कि आगेसे चहारशम्बेको लोग कमशम्बा कहें।

अकबरके मरनेके सनमें कुछ गड़बड़ नहीं है। "फौते अकबरशाह" के अङ्कोंसे उसके मरनेका हिजरी सन १०१४ निकलता है, पर मितीमें बड़ी गड़बड़ है। यूरोपीय इतिहास-वेत्ताओंमेंसे किसीने अकबरके मरने की तारीख १३ अक्टोबर, किसीने १० अक्टोबर और किसीने १७ अक्टो-बर लिखी है। एकने १५ लिखी है, पर निश्चय १६ की गई है। हिजरी तारीखोंमें भी बहुत भेद है। एकने २० जमादिउलअव्वल दूसरेने १२ जमादिउस्सानी और तीसरेने २३ जमादिउलअव्वल लिखी है। "अन-फउल" अखबारमें मुहम्मद अमीन बलखीने १२ जमादिउस्सानी और फरिश्तेने अपनी तारीखमें १३ जमादिउस्सानी लिखी है। फरिश्ते-वाली तारीखही सबसे अधिक सही समझी जाती है।

उसीके अनुसार १६ अक्टोबर अकबरके मरनेकी ठीक तारीख समझी गई है। इसी अकबर बादशाहके समयमें सबसे पहले भारतवर्षका इंगलैंडसे सम्बन्ध हुआ। २८ सितम्बर सन १५८५ ईस्वीको इंगलैंडकी

रानी एलिजाबेथका भेजा हुआ न्यूबरी नामका एक अंग्रेज अकबरके दरबारमें पहुँचा। वह उक्त रानीकी ओरसे एक चिट्ठी लाया था, जो उसने अकबरके हवाले की थी। फतेहपुर सिकरीमें सलीम चिश्ती रहते थे, जिनपर अकबरकी बड़ी भक्ति थी। वहीं उसके बड़े बेटे जहाँगीरने जन्म लिया था। आगरेसे उक्त स्थान १२ मीलके फासलेपर था। वह १२ मीलका रास्ता ऐसा आबाद था कि जाने आने वालोंको यही मालूम होता था, कि वह किसी बड़े शहरमें फिर रहे हैं। न्यूबरीके साथ फिश नामका एक और अंग्रेज भी आया था। वही जीता लौटकर विलायत पहुँचा था। उसने अपने सफरनामेमें लिखा है—"हमलोग गोआसे भागकर बुरहानपुर आये थे। गोआमें पुर्तगीजोंने हमें कैद कर लिया था। बुरहानपुरसे आगरे आये। आगरा एक बड़ा और आबाद शहर है। उसमें पत्थरकी इमारतें हैं, रास्ते बड़े और चौड़े हैं। जमना नदी उसके किनारे बहती है, जो बंगालकी खाड़ीमें गिरती है। आगरेमें एक किला है, जिसकी खाइयां बहुत चौड़ी और दृढ़ हैं। यहाँ बहुतसे मूर और जेण्टिल (मुसलमान और हिन्दू) हैं। बादशाहका नाम जलाबदील एकेबर (जलालुद्दीन अकबर) है। यहाँके निवासी उसे ग्रेट मुगर (मुगल) कहते हैं। आगरेसे हमलोग फतेहपुर सीकरी गये। यहीं बादशाह दरबार करता है। यह शहर आगरेसे बड़ा है—पर उसके मकान और रास्ते आगरेसे अच्छे नहीं हैं। लोग कहते हैं कि बादशाहके पास १ हजार हाथी, ३० हजार घोड़े, १४०० हरन और ८ सौ हरम हैं। सोना, शेर, मुर्ग, भैंसे और बाज उसके पास इतने हैं कि देखकर आश्चर्य्य होता है। दरीखानेमें बादशाहका दरबार होता है। यहाँ लोगोंके पास बहुतसी सोने चाँदी और रेशमसे मण्डित बहलियाँ हैं, जिनके दो-दो पहिये हैं और जिनमें बैल जुड़ते हैं। फारिस और दूर-दूरके सौदागर यहाँ सौदागरीके लिये आते हैं। ज्यादातर रेशम, रेशमी और सूती कपड़ा, लाल, हीरे, मोतीका व्यापार होता है।

बादशाह एक सफेद कबा पहने रहता है, जिसके दोनों ओर बन्द लगे रहते हैं। एक छोटासा कपड़ा (पगड़ी) अपने सिरपर बाँधे रहता है, जिसका रंग कभी लाल और कभी पीला होता है।"

रानी एलिजाबेथने अकबरको जो चिट्ठी लिखी, उसमें पहले बहुत लम्बा-चौड़ा अलकाब है। आगे लिखा है—"हमारी प्रजाको दूर देशोंमें फिरनेका बड़ा उत्साह है। केवल सैरके लिये नहीं, वरञ्च इसलिये भी कि अपने देशका माल दूसरे देशोंमें पहुंचावें और दूसरे देशोंका माल अपने देशमें लावें और इस प्रकार आपसमें मेल-जोल बढ़ावें। इसीलिये जार्ज न्यूबरी अपने साथियोंके साथ आपकी सेवामें हाजिर होता है। हमें विश्वास है कि आप अपनी बादशाहोंकीसी दयाके साथ उन्हें अपने दरबारमें उपस्थित होनेकी आज्ञा देंगे। आशा है, हमारे लिये आप ऐसा करके हमें चिर कृतज्ञ करेंगे। जो खबरें इस दूर-देशमें आपकी बाबत पहुँचती हैं, उनसे हमारी बड़ी तसल्ली हुई है और इस विषयमें अधिक लिखनेकी जरूरत नहीं मालूम होती। हमारी यही प्रार्थना है कि यह लोग, जो बहुत दूरका सफर करके आपकी सेवामें पहुंचते हैं, इनपर आप विशेष अनुग्रह करेंगे। अपनी बादशाही प्रतिष्ठाकी शपथ खाकर कहते हैं कि हमसे जहाँतक बन सकेगा, इसका बदला देंगे। अधिक श्रीमानको बहुत बहुत सलाम।"

ओह! तीन सौ सालके उस समय और आजके समयमें कितना अन्तर है! उस समयके भारतवर्ष और आजके भारतवर्षमें कितना अन्तर है। अंग्रेजोंके उस समयके प्रताप और आजके प्रतापमें कितना अन्तर है। उस समय विलायतकी रानीने भारतके बादशाहसे अपने कई आदमियोंको सुख पूर्वक दरबारमें रखनेकी प्रार्थना की थी। आज वही अंग्रेज इस मुल्कके मालिक और हर्ता-कर्त्ता हैं। मुगल बादशाहोंके वंशका कहीं पता भी नहीं। तीन सौ सालके समयने संसारमें कितना उलट-पलट कर दिया है।

—भारतमित्र १९०५ ई०

टोडरमल

अकबरके वजीरे-माल महाराजा टोडरमल अपने समयके अद्वितीय बुद्धिमान पुरुष थे। हिसाब-किताब और माली मामलेके समझनेमें उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। जो महाजनी दस्तूर बही-खातोंका हिसाब, हुण्डी चिट्ठीके लिखनेका ढंग, इस समय तक यहांके वैश्योंमें जारी है, इसकी प्रधान-प्रधान बातें महाराज टोडरमलकी चलाई हुई हैं। बङ्ग-देशमें आकर आपने पठानोंको जिस वीरतासे सीधा किया था, उससे उनकी बहादुरीकी भी बड़ी धाक है! पर यह कम आदमी जानते हैं कि वह कवि भी थे और उनकी बनाई बहुतसी कविता है। वह कविता है, उसी ढंगकी जिस ढंगके वह स्वयं थे। कलकत्ता बंगाल बैङ्कके हेडमुंशी पण्डित शिवगोपालजी तिवारीके अनुग्रहसे हमें महाराज टोडरमलकी कुछ कविता प्राप्त हुई। उक्त पण्डितजी 'भारतमित्र'के पुराने उत्साही परिचालक सज्जनोंमेंसे हैं।

महाराज टोडरमलने सिद्धान्त किया था—

मकां, अदालत, ज़ामिनी, परनारीको साथ,

यह चारों चौपट करें, रहे दूर तजि आस।

बहुत मकान बनवाना, बहुत मुक़द्दमेबाजी करना और बहुत ज़मानत करना और पराई स्त्रीके फेरमें पड़ना, यह चारों बातें आदमी—को चौपट कर देती हैं! बहुत सुन्दर सिद्धान्त है।

हुण्डी क्या है, इसके विषयमें कहते हैं—

ऊपर लिखे निवास सब, रक्खै मुद्दत होय।

चलन निशां अन्दाज़ धन, हुण्डी कहिये सोय।

हुण्डी खोये पेठ लिख, पेठ गये परपेठ।

सनद एकके दाम दे, रोकड़ खाता डेठ।

जो हुण्डी सिकरै नहीं, जिकरी लिखै बनाय,

हुण्डी कोरे पीठ ले, तब धन देय चुकाय।

हुण्डीके आरम्भमें सब पता ठिकाना लिखा जावे, किसके रुपये रखे गये, सो लिखना चाहिये। रुपये किस चलनके कितने यह सब बातें लिखनी चाहियें।

हुण्डीके खो जानेपर पेठ लिखना चाहिये, पेठके खो जानेपर परपैठ। यदि हुण्डी न सिकरी अर्थात जिसपर की है, वह रुपये न दे तो दूसरे किसीके नाम जिकरी लिखी जावे। जिकरी वाला कोरी पीठकी हुण्डी लेकर रुपये चुका दे।

यद्यपि यह नियम बहुत पुराने होगये हैं और हुण्डीका ज़माना भी कुछ और होगया है, तथापि इन्हीं नियमोंका पालन अब भी होता है।

सराफके लक्षण

हुण्डी लिखै न हाथसे, जमा न रक्खै भूल।

लेय ब्याज देवै नहीं, सोइ सराफी मूल।

सराफ कभी अपने हाथकी हुण्डी लिखकर नहीं देता। अर्थात् हुण्डी लिखकर रुपये नहीं लेता। किसीकी पूँजी अपने घरमें नहीं रखता। सूद लेता है, देता कभी नहीं। उसीको सराफ कहना चाहिये। इससे समझ लेना चाहिये कि जो हुण्डी चलाते हैं और सूद देते हैं, वह सराफ नहीं कहला सकते।

चौधरीके लक्षण

अब तो वह बात रही नहीं, पर पहले ज़मानेमें चौधरी बाज़ारका मालिक होता था। टोडरमल उसके लक्षण बताते हैं—

धारा बांधै बाट, हाकिम रैयत मानही,

सो चौधरका ठाट, जाके सकल अधीन हों।

अर्थात् जिसके चलाये माप तौल आदिको हाकिम, रैयत सब मानें और उसकी बात मानकर चलें, वही चौधरी कहला सकता है।

इसी प्रकार दलालके दस लक्षण बताते हैं।

खरे सराफ और व्यापारीके लक्षण बताते हैं—

जग सराफ ताको कहें, जमा समय पर देय।
व्यापारी सो जानिये, समय पर मुद्दत लेय।
साफ हिसाब किताब हो, रोब सिताबी काम।
कर्म धर्म अरु भर्म हो, सचित धन औ धाम।

साहूकारके लक्षण—

आधा ऊपर आधा तरे, आधा देय साहुके गरे।
आधेमें आधा निस्तरे, जुग टर जाय साहु नहीं टरे।

अर्थात् लाखमें पचास हजार गाड़ दे, पचास हजार ऊपर रखे। उस पचास हजारमें पचीस हजारका जेवर रखे। बाकी पचास हजारमेंसे आधे उधार दे तो वह साहूकार कभी न बिगड़े।

टोडरमलके समयमें सराफी कहाँ-कहाँकी नामजद थी—

प्रथम बनारस आगरा, दिल्ली और गुजरात।
अग्गर और अजमेरसे, सिखै सराफी बात।

मालूम नहीं, इसमें अग्गर किस स्थानको कहा है। मालवेमें एक अग्गर नामका स्थान है। शायद वह उस समय प्रसिद्ध हो। या अग्रवाल लोगोंका प्रसिद्ध नगर अगरोहा जो हिसार जिलेमें उजाड़ पड़ा है, शायद उस समय आबाद हो। आगरेका नाम तो पहलेही आ चुका है, इससे अग्गर कोई दूसरा स्थान था।

वही खातेकी वर्तमान रीतिके नेता भी टोडरमलही थे। कहते हैं—

सहस, तीन सौ साठ, सौ, पैसठ, पैंतीस, आठ।
कागज आठ प्रकारके उत्तम मध्यम ठाठ॥

रोकड़, खाता, नकल, यह तीन बहीमें काम ।

ज्यादा बहियाँ मत करो, वृथा जाँयगे दाम ॥

ऊपरके दोहेमें बहियोंकी संख्या बहुत गिनाई गई है । पर साधारण-में तीन बहियोंसे काम लिया जाता है । आठ बहियोंका कागज भी बड़ी-बड़ी कोठियाँ करती हैं, पर हजार या तीनसौ साठ बहियोंका खाता कैसा होता था, कह नहीं सकते ।

बही-खाता लिखनेका ढंग बताते हैं—

बाम जमा दक्षिण खरच, सिर पेटा पर पेट ।

ऊपर नाम धनी लिखे हस्ते पुनरी देत ।

किन चीजोंका वाणिज्य करना चाहिये

प्रथम जवाहिर धातु पुनि, कपड़ा गल्ला और ।

मूलपान फल फूल रस, धरे धीर कर धौर ।

अर्थात खूब सोच विचारकर कि कौन चीज़ कितने दिन ठहरनेवाली है, उसका वाणिज्य करना उचित है ।

बहुतसी रूखी बातें पढ़ते-पढ़ते पाठकोंकी तबीयत कुन्द हो जायगी, इससे एक चटपटा सिद्धान्त सुनाते हैं ।

क्या अच्छा सिद्धान्त है—

दाना खाय लीद जो करै, ऐसा साह बनज नहीं करै

घास खाय दूध बहु देय, ऐसा साह बनज करि लेय ।

भारतवर्षके वैश्य ठीक इसी चालपर चलते थे । पर ज़मानेकी देखा-देखी अब उल्टी चाल चलते हैं ।

टोडरमल खत्री थे, तथापि वैश्य लोगोंकी बिरादरी और दूसरी जाति वालोंकी बिरादरियाँ उन्हींका क़ानून मानकर इतने दिन दृढ़ रहीं । पर अब ढीली होगई । कहते हैं कि बहीखाता फुरतीसे लिखा जावे, इसके लिये टोडरमलने मात्रा-विहीन मुड़िया अक्षर चलाकर उनकानाम सराफी

रखा था। क्या वैश्य, क्या खत्री और क्या दूसरे सराफेवाले वही अक्षर लिखते हैं, इससे सब विद्या भूल गये। नागरीको इन्हीं अक्षरोंने चौपट किया। यदि यह बात सत्य हो तो टोडरमलके सिर कलङ्क समझिये। बिरादरीकी शक्तिको टोडरमलने इतना बढ़ाया था कि विवाह आदिमें उनके गीत गाये जाते हैं। ऐसे पुरुषने क्या मुड़िया अक्षर चलाये होंगे?

—भारतमित्र १९०४ ई०

शेख सादी

कुछ ऐसे लोग हैं कि जो जीते हैं, पर लोग नहीं जानते कि वह जीते हैं या मर गये। कुछ ऐसे हैं कि जो मरकर मर गये और कुछ जीकर जीते हैं। पर कुछ ऐसे भी हैं कि सैकड़ों साल हुए मरगये, भूमि उनकी हड्डियोंको कबर समेत चाट गई, तथापि वह जीते हैं। फारिसके मुसलमान कवियोंमें शेख सादी भी वैसेही लोगोंमेंसे हैं।

साढ़े छः सौ सालसे शेख सादीका नाम इस देशमें गूँजता है। महमूद गजनवीके भारतवर्षपर आक्रमण करनेके बाद शेख सादी पैदा हुआ। इससे जैसोही उसकी कविताकी धूम ईरान, तूरान, रूम और मिसरमें फैली, वैसीही भारतवर्षमें भी फैल गई। सैकड़ों वर्ष यहां उसकी कविता मुसलमानी बादशाहत रहनेके कारण बड़ी आदरकी दृष्टिसे देखी गई। खास हिन्दुस्थानका तो क्या कहना, बङ्गदेशमें भी उसकी बड़ी धूम थी। एक बङ्गाली कविने भी अपना नाम सादी रखा था और शेख सादीकी कविताका अपनी भाषामें अनुवाद किया करता था।

उत्तर भारत विशेष-कर दिल्लीप्रांतमें शेख सादीकी इतनी इज्जत हुई कि कितने ही कायस्थ सवेरे उठकर सादीकी कविता मंगलार्थ पढ़ते थे। संस्कृतके मुसलमानी राज्यमें एकबार ही दब जाने और फारसीका दौर-

दौरा होनेसे भारतवासी अपने कवियोंको भूलकर शेख़ सादीहीको जानने लगे। फारसीके कितने ही नामी-नामी कवि हुए हैं। शेख़ सादीसे पहले तथा पीछे अच्छे कवियोंकी कमी न थी। पर जो रुतबा इस शेख़ने हासिल किया, वह किसी कविको न मिला। अन्यान्य कवियोंको मुसलमान-कवि ही समझते थे, पर शेख़ सादीको एक ऊंचे दरजेका बुजुर्ग और खुदारसीदा समझते थे। एक मुसलमान-कविने तो यहां तक श्रद्धा प्रकाश की थी कि शेख़ सादीको हजरत मुहम्मदके पास बैठे हुए स्वप्नमें देखा था।

तीन किताबोंके लिये शेख़ सादीका भारतवर्षमें बड़ा नाम है गुलिस्तान, बोस्तान और करीमा। यह तीनों पुस्तकें हिन्दुस्थानके मकतबोंमें सैकड़ों वर्ष तक पढ़ी-पढ़ाई गई। अब भी पढ़ाई जाती हैं। सरकार अंगरेज़ीके स्कूलोंमें भी इन पुस्तकोंका सार-संग्रह अब तक पढ़ाया जाता है। किन्तु अब अंगरेज़ीके ज़ोरके कारण इन पुस्तकोंकी वह इज्जत कम होती जाती है। फारसी शिक्षाही छूटती जाती है तो फारसी किताबोंका क्या आदर रह सकता है?

उक्त तीनों किताबोंमें शेख़ सादीने नीति वर्णनकी है। इनमेंसे 'करीमा' छोटी किताब है। बच्चे उसे पढ़ते हैं और शेख़ सादीने भी बचपनहीमें उसे लिखा था। सरकारी स्कूलोंमें यह पोथी कभी नहीं पढ़ाई गई। केवल मकतबोंमें मुल्ला मौलवीही उसे पढ़ाते रहे। "गुलिस्तान" का आदर सबसे अधिक है और यही सबसे उत्तम है। "गुलिस्तान" गद्य और पद्यमय है। इससे दूसरे दरजेकी "बोस्तान" है। वह केवल पद्यमें है। इन दोनों पुस्तकोंका आदर यूरोपमें भी खूब हुआ है। अंगरेज़ीके सिवाय वहांकी कई भाषाओंमें उसका अनुवाद भी हुआ है। विलायतवालोंने उक्त दोनों पुस्तकोंको बहुत शुद्ध छपवाकर प्रकाशित किया। पर जितनी अधिक यह पुस्तकें भारतवर्षमें छपीं और बिकीं, उतनी ईरानमें भी नहीं बिकीं।

"गुलिस्तान" और "बोस्तान" सेही शेख़ सादीके जीवनका बहुत-कुछ पता लगता है। मुसलमानोंके यहाँ और कुछ अधिक इतिहास उसका नहीं मिलता। दो एक अंगरेज विद्वानोंने बड़ी चेष्टा करके उसके जीवना-की कुछ बातें संग्रह की हैं और उन्होंनेही उसकी एक जीवनी लिखी है। उसके सहारेसे अब दिल्लीके मौलवी हालीने शेख़ सादीकी एक जीवनी लिखी है। आश्चर्य है कि जिस देशका वह कवि था, वहाँ किसीने उसकी जीवनी लिखनेकी चेष्टा न की।

जिसकी कविताकी इतनी धूम है, जिसका देश-देशान्तरमें इतना नाम है, उसकी शकल सूरत कैसी होगी, ऐसा विचार हरेक पढ़े-लिखे आदमी-के जीमें उठता है। इसीसे बड़ी तलाशसे सादीकी आकृति प्राप्त की है। जरा ध्यानसे देखना चाहिये। एक हाथमें तबर है, दूसरेमें कशकोल। यह ईरानके दरवेशोंकी वजे है। छः सात सौ वर्ष पहले ईरानके फकीरों-का यही वेष था। तबर या कुल्हाड़ा दरवेशोंका दण्ड था और कशकोल उनका कमण्डलु। शेख़ सादीको देशाटनका बड़ा उत्साह रहता था। अरब, रूम, मिसर, तातार आदि मुसलमान देशोंमें वह बहुधा घूमा है। दरवेशों और बुजुर्गोंकी उसके जीमें बड़ी इज्ज़त थी। बहुधा उनके साथ रहा करता था। जान पड़ता है कि इसीसे उसे दरवेशाना वेश पसन्द था। "गुलिस्तान" से यह भी विदित होता है कि शेखने एकबार विवाह किया था। तिसपर भी अधिक जीवन उसका परिव्राजकोंके साथ ही बीता।

बोस्तानका एक अंगरेजी अनुवाद कप्तान एच० विलबर फोर्स क्लार्कने सन१८७९ ई० में लण्डनमें छपवाया था। उसीमें यह चित्र लगा हुआ है। कप्तान कहते हैं कि यह तसवीर सादीकी एक पुरानी तसवीरकी नकल है। शीराज़ शहरके पास "हफतान" नामका एक स्थान है। वहाँ सात दरवेशोंकी कबरें हैं। यह स्थान ३३ गज चौड़ा और ११० गज

लम्बा है। इसीके एक मकानमें दो आधे साइजकी तसवीरें लटकती हैं। उनमेंसे एक हाफिज़की पूर्वी दरवाजेपर और दूसरे शेखसादीकी पश्चिमी द्वारपर लटकती है।

शेख सादीकी भाँति नीति लिखनेवाले फारसीमें बहुतही कम हुए हैं। उसकी "गुलिस्तान" के बन जानेके बाद कई आदमियोंने वैसीही किताबें बनाई। पर किसीसे सादीकी बराबरी न हो सकी और न उनकी पुस्तकोंको कोई पूछता है। सादीके लेखमें सादापन बड़ा भारी है। फिर कहनेका ढंग इतना सुन्दर है कि सुनकर तबीयत खिल जाती है। उसकी कविता खिले हुए फूलके सदृश है। इससे उसने अपनी किताबोंका नाम "गुलिस्तान" "बोस्तान" ठीक ही रखा है। कड़ी बातको मीठे ढंगसे कहना, न कहनेके योग्य बातको हंसी-हंसीमें कह जाना, शेख सादीहीका हिस्सा है।

शेख सादीकी ऊपर कही किताबोंसे मुसलमानी नीति तथा सात सौ बरस पहलेकी ईरान, तातार, अरब, मिसर और रूम आदि मुसलमान देशोंकी दशा, मुसलमानोंका चाल-चलन, रङ्ग-ढङ्ग और उस समयके बादशाहोंकी शासन प्रणाली, मुसलमानोंकी विद्या-बुद्धि तथा उस समय के लोगोंके विचारोंका अच्छा पता लगता है। साथ ही यह भी मालूम होजाता है कि भिन्न धर्म्म और भिन्न जातिके लोगोंको वह किस दृष्टिसे देखते थे। उस समयके कवि बादशाहोंकी लम्बी-चौड़ी खुशामदको अपनी कविताका भूषण समझते थे, पर शेख सादीने ऐसी खुशामदकी निन्दा की है और स्वयं बहुत कम खुशामद की है। पर की है अवश्य। बादशाहोंको मार्गपर चलने और अच्छा न्याय करनेका उपदेश दिया है। परमार्थकी ओर सादीने लोगोंका ध्यान बहुत कुछ दिलाया है। सूफीपन और साधुता भी खूब दिखाई है। विद्वानोंका आदर और धनवानोंका निरादर भी सादीके लेखमें है। देश-विदेशकी

कितनी ही बात हैं। उनसे मालूम होता है कि सादी बड़ाही चतुर और समयको पहचाननेवाला था। कितनीही जगह उसने न्यायपरायणता और उदारता भी दिखाई है। पर मुसलमान मजहबकी उसे बड़ी तरफ-दारी थी। मुसलमान मजहबकी तारीफ करने तथा अन्यान्य मजहब-वालोंपर नफरत दिखानेमें सादीने किसी प्रकार कमी नहीं की। यहूदी और ईसाई लोगोंपर कई जगह ताने उड़ाये हैं। हिन्दुओंको गाली देनेमें उसने खूब झूठ बोला है। इससे यह भी मालूम होता है कि उसकी किताबोंमें बहुतसी बातें मनघड़न्त हैं। जान पड़ता है, उस समय दूसरे मजहबवालोंपर झूठे इलजाम लगाकर गाली देना भी अच्छा समझते थे तथा हिन्दू-धर्म और हिन्दुस्थानकी बाबत वह कुछ भी न जानते थे। यहां तक कि वह हिन्दुओंकी धर्म्म पुस्तकका नाम तक भी न जानते थे। केवल ख्यालहीसे हिन्दुओंकी कल्पित मूर्ति बनाकर गालियाँ दिया करते थे।

किन्तु सादीका क्या दोष है? इस समय सात सौ सालसे अधिक मुसलमानोंको इस देशमें आये हो चुके, तथापि वह अब तक शेख सादी-ही बने हुए हैं। अब भी करोड़ों मुसलमान नहीं जानते कि हिन्दूधर्म्म क्या है और हिन्दू क्या मानते हैं। आज भी संस्कृत तो क्या हिन्दी तकसे मुसलमानोंको घृणा है। देवनागरी अक्षरकी शकल देखकर भागते हैं। भगवान जाने यह दशा उनकी कबतक बनी रहेगी।

कुछ हो, सादी कीर्त्तिमान पुरुष था। संसारमें कितनेही हुए, कितने होगये। शेख सादी भी उनकी भाँति अब पृथिवीपर नहीं है। न वह समयही बाकी है, जिसमें सादी था। पर उसकी "गुलिस्तान" अब भी हरी-भरी फूली-फली है। आज साढ़े छः सौ वर्ष बाद भी उसकी वाटिका-के फूल वैसेही ताजा हैं और न जाने कबतक रहेंगे। सादी स्वयं कह गया है-

"दूसरी वाटिकासे क्या फूल तोड़ते हो, मेरी वाटिका (गुलिस्तान) से एक पत्र ले लो। और सब फूल पांच छः दिन ताजा रहेंगे, पर मेरी गुलिस्तान सदा हरी-भरी रहेगी।" ठीक उस कथनके अनुसार बोस्तान-को ६६४ साल और गुलिस्तानको ६६३ साल हिजरी हो गये। अभी और भी न जाने कितने वर्ष वह शेख़ सादी और उसके समयको जिलाये रखेंगी। —भारतमित्र १९०१ ई०

शाइस्ताखाँ

यह शाइस्ताखाँ वही है, जिससे एक दफे शिवाजीकी मुठभेड़ हुई थी। उस समय शाइस्ताखाँ औरंगजेब बादशाहकी तरफसे दक्षिणका सूबेदार बना था। औरंगाबाद उस सूबेकी राजधानी था। उस समय शिवाजीने बीजापुरके शाहको दबाकर मुगलोंकी सेनापर हमला किया और लूटमार करते औरंगाबाद तक पहुंचा। इसपर शाइस्ताखांने शिवाजीको दबानेका इरादा किया। उसने पहले दक्षिणकी ओर बढ़कर चाकन फतेह किया और फिर खास पूना परही अधिकार करलिया, वहां उस मकानमें जाकर उतरा, जहां शिवाजी पला था। शिवाजी एक दिन चिराग़ जले कुछ आदमियोंको साथ लेकर एक बरातमें मिल गया और आंख बचाकर उसी मकानमें जा घुसा, जहां शाइस्ताखां उतरा हुआ था। शाइस्ताखां खिड़कीसे कूदकर भाग गया और उसकी दो अंगुलियां शिवाजीकी तलवारसे कटकर वहीं रहगई। शाइस्ताखांका बेटा और उसके साथी वहीं मारे गये।

यही शाइस्ताखां पीछे बंगालका सूबेदार नियत हुआ। पहले मीर-जुमला बंगालका सूबेदार था। मीरजुमलाकी मृत्युपर सन १६६२ ईस्वीमें औरंगजेबने शाइस्ताखांको बंगालका हाकिम नियत किया। यह सुप्रसिद्ध

नूरजहाँका भतीजा था और बहुत न्यायी, वीर और दयावान था। उसका शासनकाल यूरोपियन व्यापारियों—विशेषकर अंग्रेजोंके लिये बहुत बुरा साबित हुआ। अधिकांश झगड़े बखेड़े इन व्यापारियोंके इसीके शासनकालमें हुए।

उसके शासनके दूसरेही साल सन १६६३में ईस्टइण्डिया कम्पनीने अपनी फेक्टरी क़ासिम बाजारमें स्थापित की। शाइस्ताखाँके न्यायके कारण यूरोपियनोंका व्यापार दिनोंदिन बढ़ने लगा। यद्यपि उनकी सदा यह शिकायत रहती थी कि शाइस्ताखाँ उनसे अच्छा बर्ताव नहीं करता। पर इतिहासके लेखक मि० मार्शमैन सी० आई० ई० इस शिकायतको निर्मूल बताते हैं।

उसने इन व्यापारियों विशेषकर अंग्रेजोंके लिये जो कुछ किया, उसमें भी शिकायतका कहीं मौक़ा नहीं देखा जाता। पहले अंग्रेजोंके जहाज़ हुगली तक नहीं आने पाते थे। उसने उनको वहाँतक आनेकी आज्ञा दी! हर नये सूबेदारके आते ही अंग्रेजों और अन्य व्यापारियों-को अपने व्यापारका फरमान नया कराना पड़ता था, नवाब शाइस्ताखाँ-ने यह झगड़ा भी दूर कर दिया और इस तरह उन्हें बहुत हानि और कष्टसे बचाया। इनके सिवा फ्रेञ्च, डच और डेन भी बंगालमें व्यापार करते थे। चन्द्रनगर, चिन्सुरा (चींचुड़ा) और बालासोरमें इनकी कोठियाँ स्थापित होगईं और अब खूब व्यापार बढ़ने लगा। इन सब बातोंसे साबित है कि शाइस्ताखाँके शासनके आरम्भहीमें विदेशी व्या-पारी उन्नति कर चले थे और उनके साथ उसका बर्ताव भी बहुत अच्छा था।

सन १६७७ ई० में शाइस्ताखाँ आगरेकी सूबेदारीपर चला गया। पर दोही सालके बाद सन ७९ में फिर बंगालका हाकिम नियत होकर आया। अबकी बार औरंगजेबने उसे हिन्दुओंपर जज़िया लगाने और अनेक तरहसे उनको दुःख देनेकी आज्ञा देकर भेजा। यद्यपि वह स्वयं बहुत

शांत प्रकृतिका और दयावान मनुष्य था, पर बादशाहकी आज्ञासे मजबूर था। सो उसने मुसलमानोंके सिवा सबपर जज़िया लगा दिया। अंग्रेज़ों और अन्य यूरोपियन जातियोंपर भी यह कर लगाया गया, पर उन्होंने बहुतसे घोड़े और बहुमूल्य नज़र देकर अपना पीछा छुड़ाया। इसी सम्बन्धमें हिन्दुओंके अनेक मंदिर नष्ट किये गये और राय मल्लिकचन्द्र नामक एक प्रतिष्ठित हिन्दू कैद भी किया गया। इन सब बातोंसे औरंगजेबसे लोग घृणा करने लगे।

इसी समय ईस्टइण्डिया कम्पनीका व्यापार बहुत बढ़गया था। एक बादशाही फरमानके द्वारा उन्हें व्यापारमें पूरी स्वतंत्रता मिल गई थी। पर इसी समय उनके व्यापारमें बाधा डालनेवाले कुछ व्यापारी पैदा होगये, जो छिप-छिपाकर अपना माल देशके अन्दर पहुँचाते थे। इनको रोकनेके लिये औरंगजेबने भागीरथीके मुहानेपर एक किला बनानेका विचार किया। शाइस्ताखाँसे इस बातकी आज्ञा मांगी गई। पर उसने यह देखकर कि क़िला बनाते ही अंग्रेज कुल नदीपर अपना अधिकार जमा सकेंगे, ऐसी आज्ञा न दी और किला बनानेसे मनाकर दिया। इसी समय पटनेमें कुछ गड़बड़ और बलवा हो गया था। पटनेवाली अंग्रेज कोठीके एजेण्ट पर इस गड़बड़में शरीक होनेका सन्देह था। शाइस्ताखाँ यह सुनतेही अंग्रेजोंसे नाराज होगया। उसने अंग्रेजोंके मालपर बहुत कड़ा महसूल लगा दिया। नवाबकी नाराजी देखकर कुल शाही नौकर अंग्रेजोंको सताने लगे। क़ासिमबाजारके फौजदारने वहांके एजेण्टसे कहला भेजा कि जो डेढ़ लाख रुपये जुलाहोंको तुम्हें देने हैं, वह छोड़दो और ४३ हजार रुपये और दो। पर अंग्रेजोंने यह स्वीकार नहीं किया। औरंगजेब यह सब बातें शाइस्ताख़ाँसे सुनकर बहुत नाराज़ हुआ। इस नाराजीका परिणाम यह हुआ कि कुल अंग्रेज़ी व्यापार तितर बितर होगया और अंग्रेजोंको भारी हानि पहुंची।

अब अंग्रेजोंने देखा कि यदि हम कुछ अपना जोर नहीं दिखाते तो कुल व्यापार सदाके लिये हाथसे निकल जायगा। उन्होंने अपने बादशाह दूसरे जेम्ससे मुगलोंसे लड़नेकी प्रार्थना की। उसने प्रार्थना स्वीकार करके १० जंगी जहाज़ बहुतसी फौजके साथ हिन्दुस्थान भेजे। पर इनमेंसे केवल २।४ जहाज़ सन १६८६ ई० में भगीरथीके मुहाने तक पहुंच सके : बाकी आंधी आदि दैवी आपदोंके कारण रास्तेहीमें रह गये। इन जहाजोंके हुगली पहुंचनेके कुछ दिन बाद हुगलीके बाजारमें एक दिन ३ अंग्रेजी सिपाहियोंसे शाही सिपाहियोंकी तकरार होगई। बात बढ़ते-बढ़ते यहां तक पहुंची कि कुल अंग्रेजी फौज बाहर निकल आई और शाही फौजसे खूब घमासानकी लड़ाई हुई। हुगली नदीमें ठहरे हुए अंग्रेजी जंगी जहाज़ने भी नगर पर खूब गोले बरसाये, जिनसे ५ सौ मकान गिर पड़े और बहुतसे मनुष्य मारे गये और ज़ख़मी हुए। शाइस्ताखांके कानों तक ज्योंही यह बात पहुंची उसने अंग्रेजोंकी पटना, मालदह, ढाका और कासिमबाजारकी कोठियां ज़ब्त कर लीं और उन्हे सज़ा देनेके लिये हुगली पर फौज भेजी। उस समय तो अङ्गरेज़ हुगली छोड़कर भाग गये, पर थोड़ही दिन बाद सन १६८७ ई० में नवाबसे कह सुनकर उन्होंने सुलह कर ली। पर नवाब शाइस्तास्वां अब अङ्गरेजोंसे बहुत चिढ़ा हुआ था। उसने उनको अब भी चैन न लेने दिया। पहली आज्ञा उसने यह दी कि अङ्गरेज़ हुगलीके समीप कोई मकान पत्थर और मिट्टीसे न बनवावें। उधर विलायतमें ईस्टइण्डिया कम्पनी—को जब हुगलीके झगड़ेका हाल मालूम हुआ, तब उसने दूसरी फौज हिन्दुस्थानके लिये रवाना की। यह फौज सन् १६८८ के अक्टोबर—में हीथ नामक एक जिद्दी और क्रोधी कप्तानकी अधीनतामें बंगाल पहुंची। कप्तान हीथने कम्पनीके गवर्नरके कहते रहने पर भी कम्पनीके कुल कर्मचारियों और माल असबाबको जहाज़ोंपर लादकर बालासोरको

कूच किया। वहांके फौजदारने उसके आनेकी खबर सुन स्थानीय अंग्रेजी फैक्टरीको जब्त करके वहांके कर्मचारियोंको कैद कर लिया। उसी समय ढाकेवाली फैक्टरीके दो उच्च कर्मचारी भी वहांके फौजदारके हुक्म-से पकड़ लिये गये। इन सब बातोंसे घबराकर कप्तान हीथने ढाकेके हाकिमसे बातचीत शुरू की, जिसका सारांश यह था कि अंग्रेज मुगलोंको सहायता देकर अरकान विजय करा देंगे। ढाकेके हाकिमने भी मालूम होता है यह बात स्वीकार करली, क्योंकि बातचीत करनेके बाद ही कप्तान हीथ चटगाँवके सामने अपने जहाज लेकर पहुंचा। पर वहांकी दृढ़ किलाबन्दीसे घबराकर उसने उक्त हाकिमको कुल हाल लिखकर अंग्रेजोंके सब कष्ट सुनाये। इस खतका इन्तजार किये बिना ही कप्तानने अब अरकानके राजाको अपने ढङ्ग पर लाकर मुगलोंसे लड़ना चाहा। पर इसका कुछ उत्तर न आया। जिद्दी कप्तान इन बातोंसे घबराकर कम्पनीके कुल कर्मचारियों और व्यापारियों सहित मद्रासको चला गया। उधर औरंगजेबने यह सुनकर कुल अंग्रेजोंको बंगालसे निकाल देने और उनका सब माल जब्त करनेकी आज्ञा दे दी। इस तरहसे ५० वर्षोंसे चलता हुआ अंग्रेजी व्यापार शाइस्ताखांके शासनकालके अन्तमें एक दम जड़से उखाड़ दिया गया।

शाइस्ताखाँ अब बूढ़ा होगया था। इसलिये उसने सन् १६८९ ई० में बंगालकी सूबेदारीसे हाथ खींच लिया। बङ्ग-इतिहासके लेखक मि० मार्शमेन सी० आई० ई० लिखते हैं कि यद्यपि अंग्रेजों और अन्य यूरो-पियन जातियोंसे शाइस्ताखांका बहुत कड़ा बर्ताव रहा, पर देशी प्रजा उसे बहुत चाहती थी। वही साहब कहते हैं कि उसके समयमें १) का ८ मन अनाज बिकता था। इस बातकी यादगारमें उसने ढाकेके नगर द्वार बनवाये और उनपर लिख दिया था कि जब तक कोई हाकिम ऐसा सस्ता अनाज न करदे, इस द्वारसे कभी न प्रवेश करे।—भारतमित्र १९०५ ई०

मौलवी मुहम्मदहुसेन आज़ाद—१

गदर १८५८ के बाद ज़बाने उर्दूको चन्द ऐसे मोहसिन[१] मिले, जिन्होंने इसके सीगा[२] नसर[३] को बहुत तरक्की दी, और इसका पाया[४] बुलन्द किया। इन बुज़र्गोंमेंसे कुछ तो इस दुनियामें अपना काम अंजाम[६] कर चुके और कुछ अभी मसरूफ़[७] हैं। मगर जल्द-जल्द ख़त्म कर रहे हैं; यह नज़ारा[८] भी थोड़ी देरके लिये है। आँख चाहती हैं कि अभी यह सामनेसे न हटें। यह सितारे अभी और चमकें। सुबह ज़रा आहिस्ता-आहिस्ता हो।

नसर उर्दूकी इस इज़्ज़त बढ़ानेवाले बुज़र्गोंमेंसे सर सय्यद अहमद ख़ाँ और पंडित रतननाथ सरशार, इस दुनियामें नहीं हैं। शम्स-उल-उलेमा मौलवी नज़ीर अहमद, शम्स-उल-उलेमा मौलवी ज़का उल्लाह, शम्स-उल-उलेमा मौलवी मुहम्मद हुसेन आज़ाद देहलीके तीन आफ़ताब[९] और मुन्शी सज्जाद हुसेन (एडीटर "अवध पंच") लखनवी, इन चारमेंसे तीन अभी अपने-अपने काममें लगे हुए हैं—चौथे आज़ाद कई सालसे फ़ारग़[१०] हो गये हैं। अब वह बेफिकरीके आलम[११] में हैं। इस आलम[१२] के कामोंको तर्क[१३] कर चुके हैं। अब दुनियाँ, तर्क करने या न करनेकी भी परवा नहीं है। बहिश्तका लालच नहीं है। इस मुल्कके तारकउलदुनिया[१४] सरताज़ लोगोंकी तरह जीते जीही क़ैदे ज़िन्दगीसे आज़ाद हैं—शहर, बियाबान और दुनिया उक़बा[१५] सबसे बेपर्वा हैं। वह सच्चे आज़ाद थे और अब सच्चे आज़ाद हैं। गो

१—उपकारी। २—विभाग। ३—गद्य। ४—स्थान। ५—मान। ६—समाप्त। ७—व्यस्त। ८—दृश्य। ९—सूर्य। १०—मुक्त। ११—अवस्था, दशा। १२—संसार। १३—छोड़। १४—संन्यासी। १५—परलोक।

इनके जिस्म खाकी१६ इस दुनियासे ताल्लुक़ है, मगर वह खुद उस जिस्मे और इस दुनियासे बेताल्लुक़ हैं। इनकी पाक रूह अभी इस जिस्मे खाकीहीको अपना घर बनाये हुये है, मगर इससे बेपरवा है।

इन बुज़ुर्गोंने नसरे उर्दूको नसरे उर्दू बनाया। इनसे पहिले नसरे उर्दू एक परी थी, जो बहुतसे अफ़सूं१७ पढ़ने और टोने-टोटके करनेसे अपने रुखे रोशन१८ की एक झलक दिखाती थी, मगर आनकी आनमें एक नज़र देखनेसे पहिले ही, उड़नछू हो जाती थी। आँखोंको इसके देखनेकी हसरत ही रह जाती थी। इन बुज़ुर्गोंने बड़ी मेहनतसे इसे परचाया और परीसे इन्सान बनाया; जिससे वह इस दुनियाके लोगोंके भी काम आनेके लायक़ बनी। ये लोग न होते, तो न जाने अभी और कितने दिन उर्दूमें जिन और परियोंकी कहानियां और शहज़ादा शहज़ादियोंके हुस्नो-इश्क़१९ के अफ़साने२० चलते और इन्सानोंको देव-जिन्नोंसे जंगो-जदल२१ में मसरूफ रहना पड़ता। सर सय्यद अहमद खाँ अंग्रेज़ी नहीं जानते थे, फिर भी आपके क़लमने उर्दूको वह फायदा पहुँचाया कि कोई फाज़िलसे फाज़िल२२ उर्दूका हिमायती भी शायद इससे ज्यादा कुछ न कर सकता। अंग्रेज़ीके आला दर्जाके माहवार रसायल२३ में जिस क़िस्मके इल्मी२४ अदबी२५ तारीखी और तनक़ीदी२६ वग़ैरह मज़ामीन२७ निकलते हैं इनकी बुनियादी आपने उर्दूमें डाल दी। इस क़िस्मके मज़ामीन अब उर्दूमें बड़ी खूबीसे लिखे जाने लगे हैं। उर्दू अख़बारनवीसीको भी आपसे बहुत मदद मिली। साफ़, सादा, मगर मुख्तसर२८ और पुरमानी२९ इबारत लिखनेके ढंगको तरक्की दी। पंडित रतननाथ सरशारने फ़सानानवीसीका ढंग बदल दिया।

१६—पार्थिव शरीर। १७—जादू। १८—सौन्दर्य। १९—सौन्दर्य और प्रेम। २०—कथानक। २१—लड़ाई। २२—विद्वान्। २३—पत्रिकाओं। २४—विज्ञान। २५—साहित्यिक। २६—आलोचनात्मक। २७—लेख। २८—संक्षिप्त। २९—सारपूर्ण।

इनके नावलोंको सबने पसन्द किया, जो राह उन्होंने निकाली, वह सबने पसन्द की। इनकी शोहरतके झण्डे गड़ गये। वह अँग्रेज़ी-दां, और अपनी ज़बानके आशिक़, दोनों ज़बानोंके खयालातको मिलाकर उन्होंने उर्दू फ़सानानवीसीमें एक अजीब लुत्फ़ पैदा कर दिया।

क्रांतिकारी लेखक

अब भी इस तर्ज़ की बहुत तक़लीद३० होती है। शम्स-उल-उलेमा मौलवी नज़ीर अहमद साहबकी फ़सानानवीसी दूसरी क़िस्म की है। तर्ज तहरीर३१ की सादगीसे उन्होंने हज़ारों रंगीनियोंका रंग फ़ीका कर दिया। इनकी किताबें पाकीज़ा, और शुस्ता उर्दू का नमूना हैं। देहलीकी ज़बानका लुत्फ़ हासिल करना हो तो इनकी एक किताबको उठाकर कहींसे पढ़ने लग जाओ। यह खूबी इनके कुरानके तर्जुमामें भी मौजूद है। अगरचे इनकी किताबें ख़ास ढंग की हैं, और इनका ज्यादातर ताल्लुक़ मुसलमान सोसाइटीसे है, ताहम ज़बानकी खूबीके हिसाबसे वह फर्द३२ हैं। अगर वह महदूदखयालीसे३३ काम न लेते तो न जाने उर्दूको कहाँ तक फायदा पहुँचा सकते, और किस दर्जातक इनकी तहरीरकी शोहरत और इज्ज़त होती। शम्स-उल-उलेमा मौलवी ज़काउल्लाने रियाज़ी३४ साइन्स और तारीख़, जुग़राफियाकी किताबें उर्दूमें तैय्यार कीं। सूबाजात मुत्तहिदा और पंजाबके तुलबाने३५ इनकी किताबोंसे बहुत फायदा उठाया और उठाते हैं। आपका तर्ज़ तहरीर खूब सादा और साफ है। इसमें ज़बान देहलीकी खूबी और ज़राफ़त३६ का चटख़ारा भी साथ साथ मौजूद है। साइन्सकी बात समझाते हुए भी वह पढ़नेवालेको हँसा देते हैं। आजकल तारीख़की तरफ़ आपकी तवज्जह ज्यादा है। आपकी यह पीरानासाली३७ की मेहनत बड़े-बड़े नौ-उम्र अहले क़लमको हैरतमें

३०—अनुसरण। ३१—लेखन-शैली। ३२—एक। ३३—सीमित, सकुचित। ३४—गणित। ३५—छात्रों। ३६—हास्य। ३७—वार्द्धक्य।

डालती है। आपका तारीखी ज़खीरा मालूमातसे पुर है। मगर महदूद खयालीने भी इसमें जगह ली है। मुवरिख़ अपने नाज़रीनको३८ सौ साल आगे ले जानेकी कोशिश किया करते हैं, मगर आप अपने नाज़रीनको सौ साल पीछे हटानेकी ख्वाहिश रखते हैं। बावजूद इन सब बातोंके नसरे उर्दूके एक सीगेका काम उन्होंने बड़ी उम्दगीसे किया, है—इसमें शक नहीं।

मुंशी सज्जाद हुसेनने ज़राफतको तरक्की दी। वह अपनी तर्ज़के मूजिद३९ हैं। लखनऊकी उर्दूको आपने बहुत बुलन्द मर्तबापर पहुँचाया। तीस सालसे आप बराबर इस काममें मेहनत करते चले आते हैं। अगरचे आपने नसरको पसंद किया, मगर नज़्मको४० भी भूले नहीं। नज़्ममें भी आपने वह खूबी पैदा करदी है, जो नसरमें हँसी, दिल्लगी और हिजूसे४१ लेकर साइन्स फलसफ़ा४२ और पोलिटिक्स तक कोई मुश्किलसे मुश्किल बात और सख्तसे सख्त मज़मून ऐसा नहीं, जो "अवध पंच"की ज़रीफ़ाना नज़्मो नसरमें अदा४३ न हो सके। आपके क़लमने उर्दूमें यह खास खूबी पैदा कर दी। इन सब बुज़ुर्गोंने उर्दूके एक-एक सीगेको लिया और इसका काम बहुत माकूलीयतसे अंजाम दिया। मौलवी मुहम्मद हुसेन आज़ादने भी उसी तरह एक सीग़ेका काम किया। मगर इनका काम सबसे ज्यादा ज़रूरी है। उन्होंने जो किया वह शायद दूसरेसे न होता, क्योंकि वह इन्हींके करनेका था। एक तो दूसरोंने इनके कामकी तरफ़ तवज्जह ही न की थी, और न अब भी किसीकी तवज्जह इधर है। लेकिन अगर कोई करता भी, तो 'आज़ाद'का-सा फ़राखदिल४४ कहाँसे लाता? 'आज़ाद'ने सबको उर्दूकी असली शक्ल दिखा दी। उर्दू क्या थी, कैसे बनी, आयन्दा इसकी क्या

३८—पाठकों। ३९—आविष्कारक। ४०—पद्य। ४१—निन्दा। ४२—दर्शन। ४३—व्यक्त। ४४—उदार हृदय।

हालत होगी, इसके ख़ैरख्वाहोंको किस राह चलना चाहिये। वगैरह-वगैरह सब ज़रूरी बातें सबको बता दीं। अगर 'आज़ाद' 'आबेहयात'न लिखते तो बहुत मुद्दत तक लोग उर्दूकी असलीयतसे वाक़िफ़ न होते। अच्छी उर्दू लिखनेवाले बहुत होते, मगर इसकी माहिय्यतसे[४५] बेख़बर ही रहते, उर्दूकी तारीख़ लिखकर 'आज़ाद'ने उर्दूके ख़ैरख्वाहोंपर बड़ा अहसान किया है।

आज़ादकी शोहरत

पंजाबमें 'आज़ाद'को बच्चा २ जानता है और हिन्दोस्तानमें भी बहुत शोहरत है। मगर अफ़सोस है कि वह इससे बेख़बर हैं। पंजाबके अच्छी उर्दू जानने वाले नौजवानोंमें ज्यादातर इन्हींके पैरो,[४६] निकलेंगे। पंजाबी स्कूलोंपर इनकी उर्दूका बहुत भारी असर है। दरसी[४७] किताबें तलाश करो, तो बहुत-सी इनकी और इनके शार्गिदोंकी बनाई निकलेंगी। सरिश्ते तालीम[४८] पंजाबसे इनका बहुत पुराना और गहरा ताल्लुक़ था, जो आख़ीर तक रहा। कह सकते हैं कि पंजाबमें इन्हींकी उर्दू जारी है। सीधी-सीधी बातें और छोटे-छोटे फिक़रे लिखना और इबारतमें ज़राफ़तकी चाटसे काम लेना 'आज़ाद'का ख़ास तर्ज़ हैं। उर्दू ज़बानको सक़ालत[४९] और उलझनसे उन्होंने खूब साफ़ किया। हिन्दोस्तानमें इनकी शोहरतका बायस इनका बनाया मशहूर "तज़करा आबेहयात" है। यही किताव इनकी तसानीफ़[५०] में सबसे आला है और इसीसे इनकी ख़सूसीयत ज़ाहिर हुई। जब यह पहलीबार छपी उस वक्त 'आज़ाद'को बहुत कम लोगोंने पहिचाना था। जिसका उन्होंने 'आबेहयात'के दूसरे एडीशनमें अफ़सोस भी किया है। मगर यह अफ़सोस देर तक न रहा। दूसरी बार इनकी खूबियोंकी शोहरत चारों

४५—वास्तविकता। ४६—अनुयायी। ४७—पाठ्य। ४८—शिक्षा विभाग। ४९—कठिनता। ५०—लिखित पुस्तकें।

तरफ़ फैलने लगी। अफ़सोस इतना ही है कि जब उन लोगोंने अच्छी तरह पहिचाना तो ख़ुद लोगोंको पहचाननेसे मजबूर होगये। इसे हम अपनी बदनसीबीके सिवा क्या कहें!

वतन और ख़ानदान

'आज़ाद'को जानते हैं, 'आज़ाद'के वतनको जानते हैं। मगर देहलीके चंद ख़ास बुड्ढ बुज़ुर्गोंके सिवा 'आज़ाद'के ख़ान्दान और देहली-से इनके ताल्लुककी बातें लोग बहुत कम जानते हैं और इनकी जला-वतनीके दर्दनाक बायस५१ को तो बिल्कुल ही नहीं जानते। 'आज़ाद' की किताबोंमें भी इन बातोंका कोई ज़िक्र नहीं है। 'आबेहयात' और 'दीवाने ज़ौक'से इतना पता लगता है कि 'आज़ाद'के वालिद ज़ौकके बड़े दोस्त थे और 'आज़ाद' ज़ौकके बहुत प्यारे और हरदम पास रहनेवाले शागिर्द थे। इसके सिवा और कुछ नहीं मालूम होता। यहाँतक कि 'आज़ाद'के खानदानके किसी आदमी या इनके वालिदका नाम तक भी इनकी किताबोंमें नहीं आया। कितनोंहीसे इस बारेमें पूछ-ताछकी गई, मगर कुछ फ़ायदा न हुआ। मजबूर होकर मौलवी मुहम्मद ज़काउल्ला साहबसे अर्ज़ की गई। उन्होंने हस्बज़ैल बयान फरमाया—

"मौलवी मुहम्मद हुसैन आज़ादके वालिद मौलवी मुहम्मद बाक़र थे। जो शीयोंके एक फिरक़ाके मुजतहिद५२ थे और बाइल्म५३ थे। पहिले तहसीलदारीके ओहदेपर थे। इससे किनाराकश होकर उन्होंने छापा-ख़ाना जारी किया; जिससे बहुत रुपया कमाया और एक नीलाम घर बनाया। इसको भी बहुत ख़ूबीसे चलाया। ग़र्ज़ वह बहुत मोअज़िज़ और मुतमव्वल५४ रईस देहलीके थे।"

आज़ादने इब्तदा५५ से देहलीके ओरिएंटल डिपार्टमेन्टमें तालीम पाई। वह पहिले शीयोंकी जमातोंमें पढ़ते थे। लेकिन फिर सुन्नियोंकी

५१—कारण। ५२—गुरु। ५३—शिक्षित। ५४—प्रतिष्ठित। ५५-आरंभ।

जमातोंमें दाखिल हुए। यह दोनों जमातें देहली कालिजमें जुदा-जुदा थीं। वह अरबीकी अव्वल जमात तक पढ़े। ज़ौकके शागिर्द रशीद५६ थे। उर्दूकी नज्मो नसर लिखनेमें इनको इसतदाद५७ कालिज ही में हासिल होगई थी। वह कालिज छोड़कर देहलीकी कचहरीमें रोज़नामचा नवीस हुए।

इनका खानदान मोअज़िज़ था। वह मुग़ल थे। फारसी ज़बान इनके घरमें इस सबबसे बोली जाती थी कि इनकी मां ईरानी थीं। सन् १८५७ के ग़दरके बाद जब अंग्रेज़ोंने देहली फतह की तो उन्होंने देहली छोड़ी। फिर इसमें आनकर आबाद नहीं हुए। लाहौरमें वह कालेजके प्रोफेसर अरबी फारसीके थे। उन्होंने दो पोलिटिकल सफ़र ईरान और बदख्शांके किये! सन १८८७ में वह दीवाने होगये। अबतक वह इसी हालमें हैं। अब इनकी उम्र ७८ सालकी हैं।"

मौलाना मोहम्मद ज़काउल्ला साहबने सिर्फ़ यही हालात बयान फरमाये। आगे वह चुप हो गये, मगर बराह इनायत एक ऐसे बुज़ुर्ग-का पता बताया जिनसे 'आज़ाद'का बहुत ताल्लुक़ था और जो उनके मोहसिन५८ थे। मेरे लायक दोस्त पंडित हरनारायण शास्त्री हिन्दू कालिज देहलीके संस्कृतके प्रोफेसरने इनकी खिदमतमें हाज़िर होकर बहुत-सी बातें मालूम कीं, वह नीचे लिखी जाती हैं।

आज़ादकी तालीम

'आज़ाद'के वालिद मौलवी मुहम्मद बाक़रका घर देहलीमें काश्मीरी दरवाजा बहरामखांकी खिड़कीमें था। अबतक वहां इनका इमामबाड़ा मौजूद है। ग़दरमें वह इनके हाथसे निकल गया था। मगर अब सुना है कि 'आज़ाद'के साहबज़ादे मुहम्मद इब्राहीम साहब मुंसिफ लाहौरने इसे सरकारसे वागुज़ाश्त५९ कराके अपने दखलमें कर लिया है। वहीं

५६—प्रधान शिष्य। ५७—क्षमता। ५८—उपकारी। ५९—वापस लेकर।

आज़ाद पैदा हुए थे। ऊपर कहा जा चुका है कि वह पुराने देहली कालिजमें फ़ारसी अरबी पढ़ते थे। कालिज मज़कूरमें मज़हबी किताबें, शीयोंको शीया मौलवी और सुन्नियोंको सुन्नी पढ़ाता था। शीया मौलवी-का नाम मुहम्मद जाफ़र था। इनके साथ 'आज़ाद'के वालिद मुहम्मद बाक़रका तनाज़ा ६० था। इससे 'आज़ाद' को बापके हुक्मसे सुन्नी मौलवीसे पढ़ना पड़ा। एक तो 'आज़ाद'की वालिदा ईरानी थीं जो फारसी खूब जानती थीं, दूसरे इन दिनों ईरानी सौदागर घोड़े लेकर आते थे और मौलवी मुहम्मद बाक़रके यहाँ ठहरते थे। इससे'आज़ाद' को फ़ारसी खूब आई।

मुहम्मद बाक़र

उनके वालिद मौलवी मुहम्मद बाक़र कचहरीमें मुलाज़िम होनेके सिवा बड़े नामवर शख्श थे। मिस्टर एफ० टेलरने जो बादमें देहली कालिजके प्रिंसपल हुए उनसे उर्दू फारसी पढ़ी थी। साहबका इनपर बड़ा एतबार था। ग़दर हो जानेपर जब अंग्रेजोंपर मुसीबत पड़ी तो टेलर साहब भागकर मुहम्मद बाक़रके घरमें छिपे। कहते हैं साहब तीन दिन उनके घरमें रहे। चोथे दिन निकाले गये और उन्हींके कूचेमें मारे गये। जब टेलर साहब उनके मकानमें गये थे, उस वक्त उनके पास एक लाख ७५ हज़ार रुपयेकी क़ीमतके कम्पनीके काग़ज़ थे। ग़दरके बाद जब देहलीपर अंग्रेज़ोंका दख़ल हो गया, तो मुहम्मद बाक़र वह नोट और एक चिट्ठी लेकर कप्तान हडसनके पास गये। उन्होंने वह चिट्ठी साहबको दी। इसमें टेलर साहबकी तरफ़से लिखा हुआ था कि मुहम्मद बाक़रने मेरी जान बचाई और मुझे अपने घरमें रक्खा। साहबने चिट्ठी पढ़कर मुहम्मद बाक़रसे पूछा कि टेलर साहब कहां हैं ? मौलवी साहबने कहा वह तो मारे गये। साहबने कहा

६०—झगड़ा।

कि हमें मालूम है। टेलर साहब कैसे मारा गया ? इनका रुपया कहाँ है ? मुहम्मद बाक़रने नोट पेश किये। उनपर लिखा था कि यह नोट टेलर साहबने मौलवी मुहम्मद बाक़रको बेच दिये। हडसनने वह नोट लेकर अपनी जेबमें रक्खे और सिपाहीको हुक्म दिया कि गोली मार दो। बेचारे मुहम्मद बाक़र वहीं गोलीसे मारे गये। साथ ही उनके लड़के मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद'की तलाश हुई और इनकी गिर-फ्तारीके लिये पांच सौ रुपया इनामका इश्तहार जारी हुआ। मौलवी मुहम्मद बाक़रपर एक तो यह शुबा था कि वह टेलर साहबके क़ातिल थे, दूसरे सन् १८५६ में उन्होंने 'उर्दू अख़बार' नामी एक अख़बार निकाला था, जिसके वह खुद एडीटर थे। कहा जाता है कि उस अख़बारमें अंग्रेज़ोंके ख़िलाफ़ बहुत मज़ामीन[६१] निकलते थे। ग़दरके वक्त भी वह जारी था ! इससे भी अंग्रेज़ इनसे नाराज़ थे। इसी नाराज़ीके सबब इनकी जान गई। 'उर्दू अखबार'का एक-एक नम्बर तलाश कराके अंग्रेज़ोंने जलवा दिया। मगर यह भी बहाने हैं। वह अजीब वक्त था। । उस वक्त क़सूरवार इनाम पाते थे और बेक़सूर मारे जाते थे। राक़िम[६२] जिस क़स्बाका बाशिन्दा है वह पहिले नवाब झज्जर-के इलाकेमें था। अपने बुज़ुर्गोंसे सुना—कि नवाब झज्जर न बाग़ी थे न उन्होंने अंग्रेज़ोंके साथ कोई बुराई की थी, मगर ताहम उनका इलाक़ा ज़ब्त हुआ और उनको देहलीमें चाँदनीचौकके फव्वारेके पास फाँसी दी गई। मौलवी मुहम्मद बाक़रके साथ भी वैसाही बर्ताव हुआ।

जलावतनी और नौकरी

बाप मुहम्मद बाक़रके मारे जानेके बाद बेटे मुहम्मद हुसेनको जान लेकर भागना पड़ा। इस वक्त इनकी उम्र २६ या २७ सालकी थी वह दक्कनकी तरफ भागे और हैदराबाद पहुँचे। एक अर्सेकी सरगरदानी[६३]के

६१—लेख। ६२—लेखक। ६३—परेशानी।

बाद मौलवी रज्जब अलीकी बदौलत उन्हें फिर पंजाबमें आना नसीब हुआ। रज्जब अली जगरांव जिला लुधियानाके रहनेवाले थे। किसी ज़मानेमें पंजाबके छोटे लाटसाहबके मीरमुंशी थे। अय्याम६४ ग़दरमें अंग्रेज़ोंके साथ जगरांवसे देहली आये थे। अंग्रेज़ी लशकरमें रहते थे। कप्तान हडसन उनके अफ़सर थे। उर्दू फारसीका सब काम मौलवी रज्जब अली कप्तान हडसनकी मातहतीमें अंजाम देते थे। सरकारी खैर ख्वाह देहलीसे दूसरे लशकरोंमें जो ख़बरें भेजते थे, वह सब मौलवी रज्जब अलीके हाथोंमें जाती थीं। अंग्रेज़ोंमें उनका बड़ा रसूख़ था। वह आज़ादके हममजहब थे। उन्होंने बंदोबस्त करके हैदराबादसे बुलाया और पंडित मनफूलसे जो उनके बाद मीर मुंशी हुए आज़ादकी सिफ़ारिश की। पंडित साहबने सरिश्ता तालीम पंजाबके डाइरेक्टर मेजर फिलर साहबसे कहकर उनके दफ्तरमें मुहम्मद हुसेनको पन्द्रह रुपया माहवारकी एक मुहर्ररी दिला दी।

रायबहादुर मास्टर प्यारेलाल साहब रईस देहली इस ज़मानेमें देहली नार्मलस्कूलके हेडमास्टर थे, बादमें वह पंजाबके स्कूलोंके इन्सपेक्टर हुए और माहवार सात सौ रुपये तनख्वाह पाई। अब आप पेंशनयाब होकर बुढ़ापेके दिन बसर करते हैं। मगर इस पीरानासालीमें भी जवानीका जोश रखते हैं। मुल्की और क़ौमी भलाईके कामोंमें बहुत-कुछ मेहनत बर्दाश्त करते हैं। आप 'आज़ाद'के बड़े तरफ़दार थे। आप ही इनकी तरक्कीका बायस हुए। सरिश्ता तालीमके डाईरेक्टर फिलर साहब यूनिवर्सिटीके लिये जो सवालात६५ तैयार करते थे वह मास्टर साहबको दिखा लेते थे। मास्टर साहबकी इस्लाह६६ पर वह बड़ा भरोसा रखते थे।

और उनकी इलमीयत६७ के मोतरफ६८ थे। लाहौरमें एक दिन मास्टर

६४—गदरके दिनों। ६५—प्रश्न। ६६—संशोधन। ६७—विद्वत्ता। ६८—प्रशंसक।

साहब फिलर साहबसे मिलने जा रहे थे—राहमें 'आज़ाद' उनसे मिले बोले, भाई! फिलर साहबसे आपकी इतनी रस्मोराह है, हमारी कुछ सिफ़ारिश नहीं करते। मास्टर साहबने कहा, बहुत अच्छा, आज ही सही! इत्तफाक़से जब मास्टरजी फिलर साहबसे मिलने गये, तो बातें करते हुए साहबने उनसे पूछा कि ईजाद६९ मुवन्निस७० है या मुज़क्कर७१ मास्टर साहबने कहा मुज़क्कर है। फिलर साहबके सरिश्तादार मौलवी करीमउद्दीन इसी लफ़ज़को मुवन्निस बताते थे। इसपर मास्टर साहबने कहा कि आपके दफ्तरमें देहलीका मौलवी मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' बहुत होशियार आदमी है। फारसीमें बहुत बा-लियाक़त है। उससे बुलाकर दरयाफ्त कीजिये। 'आज़ाद' आये और कहा ईजाद मुज्ज़कर है और उसी वक्त शौदाका यह शेर पढ़ दिया—

हाय यह किस भड़वेका ईजाद है।
नुसखे में माजून ज़रे नव्वाद है॥

तबसे डायरेक्टर साहबकी निगाहमें इनकी वक़्अत७२ बढ़ी। उनकी कुछ तरक्की भी हुई। जब फिलर साहब मर गये और हाल्डामृड पंजाब यूनिवर्सिटीके डायरेक्टर हुए, उन्होंने एक पर्चाको जो सरकारी अख़बारके नामसे डायरेक्टरके दफ्तरसे निकलता था, रौनक देना चाहा। इसके लिये मास्टर प्यारेलालको इसका एडीटर और 'आज़ाद' असिस्टेन्ट एडीटर बनाया। इन दोनोंके एहतमाम७३ से उस अख़बारने ऐसी रौनक़ पाई कि पंजाबके सब अख़बार इसके साभने गर्द७४ हो गये। गैर-सरकारी अख़बारवालोंने शोर मचाया कि सरकारने हमारा रिज़क७५ छीन लिया। इससे सरकारने वह अख़बार बन्द करके रिसाला "अता-लीक़" पंजाबसे निकाला। इसमें सिर्फ इल्मी मज़ामीन होते थे। 'आज़ाद' कई साल तक डायरेक्टरके दफ्तरमें काम करते रहे। जब पंडित मनफूल

६९-आविष्कार, ७०-स्त्रीलिंग, ७१-पुलिङ्ग, ७२-इज्जत, ७३-प्रबंध, ७४-मन्द, ७५-जीविका,

काबुल और बदख़शांको गये, तो 'आज़ाद' को अपने साथ लेते गये। वहांसे लौटकर 'आज़ाद' डेढ़ सौ रुपया माहवार पर लाहौरके सरकारी कालिजके अरबी प्रोफेसर मुकर्रर हुए, और जबतक आपके दिमाग़में ख़लल न आया, बराबर इसी ओहदेपर रहे। अब ७५) माहवार पेंशन पाते हैं। लाहौरमें रहते हैं। सन् १८८७ में मलकय-मुअज़्ज़मा७६ विक्टोरियाकी जुबलीके मौक़ापर आपको शम्स-उल-उलेमाका ख़िताब मिला था। 'आज़ाद' के ख़लल दिमाग़के आरज़ा७७ की निस्बत मौलाना मुहम्मद जका उल्लाह साहब लिखते हैं कि सन १८८७ में हुआ। मगर मास्टर प्यारेलाल साहबसे मालूम हुआ कि सन १८९१ या १८९४ में हुआ। राक़िम पिछली बातको सही समझता है, क्योंकि सन् १८८७ में शम्स-उल-उलेमा हुए थे। जुबलीपर उन्होंने एक उम्दा नज़्म लिखी थी। सन् १८८८ में राक़िम "कोहनूर" लाहौरकी एडीटरीसे ताल्लुक़ रखता था। अगले साल भी लाहौरहीमें था। उस वक्त 'आज़ाद'-ने एक लाइब्रेरी बनाई थी, जो शहरकी चहारदिवारीसे बाहर बाग़में थी। राक़िम वहाँ मौलाना 'आज़ाद' की ख़िदमतमें हाजिर हुआ करता था। आप भी कभी २ 'कोहनूर' प्रेसमें क़दम रंजा७८ फरमाया करते थे। इन दिनों दीवान ज़ौककी तालीफ़७९ जारी थी इसके मुतअल्लिक़ जो कुछ तलाश व तजस्सस८० आपने किया, इसका भी ज़िक्र करते थे। एक दिन कहने लगे कि देखो भाई! नाइन्साफ़ कहते हैं कि मैं खुद ग़ज़लें लिखकर उस्तादके नामसे इनके दीवानमें दाख़िल करना चाहता हूं। भला इससे फ़ायदा? अगर उस्तादके बराबर मैं ग़ज़लें कह सकता हूं तो इनको अपने नामसे क्यों न छपवाता?" ग़र्ज़ कि कभी-कभी बहुत बातें होती थीं। उस वक्त इनको कुछ आरज़ा न था। दीवाने ज़ौक़ इसके बाद ही छपकर निकला है।

७६—सम्राज्ञी। ७७—रोग। ७८—पधारना। ७९—सम्पादन। ८०—खोज

पोलिटिकल मुसाफिरत

पंडित मनफूल * सन् १८६४-६५ में मीरमुंशी थे। सन् १८६६-६७ में उन्होंने बदख़शांका पोलिटीकल सफ़र किया। 'आज़ाद'को साथ ले गये। 'आज़ाद' बदख़शांसे लौटकर सरकारी अख़बार और 'अतालीक़ पञ्जाब' के असिसटेन्ट एडीटर हुए। अफ़सोस, अपनी सय्याहतके मुताल्लिक उन्होंने कोई किताब न लिखी। सिर्फ कहीं २ कुछ इशारे किये हैं। अपनी बनाई फारसीकी दूसरी किताबमें किसी सय्याह८१ के नामसे एक कहानी लिखी है। मालूम हुआ कि वह आपके पहिले सफ़रसे मुताल्लिक एक सरगुज़श्त८२ है। सरकारी अख़बार सन् १८७६ में निकला था, जो जल्द बन्द कर दिया गया। बादमें रिसाला 'अतालीक़ पञ्जाब' निकला, वह कोई दो साल जारी रहा। इन दोनोंके कुछ पर्चे तलाश किये थे, मगर न मिले। मास्टर साहबके पास थे, मगर कोई साहब मांगकर ले गये। फिर वापिस देने न आये।

दूसरी दफ़ा आज़ादने ईरानका सफ़र किया था। यह सफ़र सन १८८७ से कुछ पहिले ख़त्म हो गया था। इसके बाद मलका विक्टोरिया-

८१—यात्री। ८२—विवरण।

* मनफूल मेरठके पास किसी गांवके रहनेवाले एक ग़रीब गौड़ ब्राह्मणके लड़के थे। इसके वालिद तलाशरिज़कमें देहली आये थे। यहाँ आकर पंडित मनफूल देहली कालिजमें पढ़े—इनका घर भी कश्मीरी दरवाज़ा पर था—और दरीबामें भी रहते थे। आपके ६ लड़के हुए। बड़े वीरबल लाहौरमें मरे—दूसरे चन्द्रबल पंजाबमें इक्स्ट्रा असिसटेन्ट कमिश्नर थे। तीसरे सूरजबल बी० ए० बैरिस्टर एट-ला एल० एल० डी० पहिले जम्मूके गवर्नर थे। अब वहांकी कौंसिलके सेक्रेटरी हैं। आप सात साल विलायतमें रहे। चौथे महेशबल जम्मूमें मर गये। पाँचवे नारायणबल लाहौरमें हैं। अपनी पुरानी जायदादका इन्तज़ाम करते हैं। छठे गणेशबल जयपुरमें हैं।

की जुबली हुई थी और इसके बाद ही आज़ाद शम्स-उल-उलेमा हुए थे।

इस सफ़रके बादही आपने बेरून शहर लाहौर बाग़में लाइब्रेरी क़ायम की थी। अपनी मुसाफिरत पर एक लेक्चर भी दिया था। पहिली सियाहतके कुछ अर्सा बाद ही आप सरकारी कालेजके प्रोफेसर हुए थे।

(२)

उज्र तक़सीर ख़िदमत[१]

शम्स-उल-उलेमा मौलवी मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद'की निस्बत पहिला मज़मून जुलाई सन् १९०६ ई० के "ज़मानामें" शाया[२] हुआ, तबसे आज पूरे नौ महीनेके बाद, दूसरा मज़मून शाया होता है। मुसलसिल[३] लिखा जाता, तो अबतक यह काम पूरा हो जाता। मगर पहिला मज़मून निकलते ही कई बातें ऐसी पेश आईं, जिनसे आजतक यह सिलसिला रुका रहा। एक तो राक़िमकी अलालते[४] तबआ ख़ासकर बीमारी चश्मसे इसमें रुकावट हुई। फिर पहिला मज़मून पढ़कर हज़रत आज़ादके साहबज़ादे जनाब मुहम्मद इब्राहीम साहब मुंसिफ लाहौरने, एडीटर साहब "ज़माना" को एक ख़त लिखा कि मज़मूनमें कुछ ग़लतियां हैं। साथही उन ग़लतियों-को सही करनेका वायदा भी आग़ा साहबने किया था। एडीटर 'ज़माना'-से यह बातें मालूम करके राक़िमने आग़ा साहबको ख़त लिखा कि उन ग़लतियोंसे इस नाचीज़को वाक़िफ़ किया जाय तो यह ख़ुद दूसरे नम्बरमें उनको दुरुस्त[५] कर देगा। पहिले कुछ उम्मेद भी उनकी तरफ़से हुई, मगर आख़िरकार मायूसीका सामना हुआ। मजबूर अब बहुतसे दोस्तोंके तकाज़ों, बल्कि तानों[६] की ताब न लाकर राक़िम फिर यह सिल-

१—विलंबके लिये क्षमा याचना। २—प्रकाशित। ३—लगातार। ४—तबियतकी खराबी। ५—ठीक। ६—बोली ठोली।

सिला शुरू करता है। इरादा है कि अब इसे खत्म ही करके छोड़ा जाय, चाहे इसमें कितनी ही ग़लतियां क्यों न रह जायें। राक़िमको जो अक़ीदत[७] हज़रत आज़ादसे है, उससे मजबूर है कि अपनी तरफ़से इस कामको एक दफ़ा पूरा कर दे। आह बेदर्दी! पूछनेपर कोई जवाब तक नहीं देता। लाहौरमें मौलाना आज़ाद राक़िमकी कम उमरीका लिहाज़ न करके अदना-अदना[८] बातोंका माकूल-से-माकूल जवाब देते थे। ज़बानी ही नहीं, बल्कि लिखकर देते थे। कितनी ही बातें अपनी खुशीसे लिख देते थे। एक-दो किताबोंका रीव्यू तक उन्होंने लिख दिया था। वह अगर इस वक्त मेरे दिलकी बेताबी[९] जान सकते तो खुद अपनी ज़िन्दगीके हालात लिखकर भेज देते और अपना ताज़ा फोटो खिचवाकर भेज देते, चाहे इन्हें फोटो खिचवानेका शौक़ भी न होता। मगर उनके शागिर्दों और उनके नाम लेनेवालोंने मुझे बिल्कुल मायूस किया। हज़रत आज़ादकी तसवीर जो पहिले मज़मूनके साथ 'ज़माना'में निकली, उसपर भी कुछ एतराज़[१०] हुए हैं। कहा गया है कि उसमें आँख दुरुस्त नहीं हुई हैं। ऐसा होना मुमकिन है। वजह यह है कि जो फोटो मेरे पास है, वह पुराना हो जानेसे बहुत फीका हो गया है। उसीसे वह तैयार कराई गई है और बहुत कोशिश इस बातकी की गई है कि अच्छी बने। तब वह इस हैसियतसे निकली, नहीं तो और भी कुछ कसर रह सकती थी। यह फोटो जुबलीके वक्तका है, जबकि हज़रत आज़ाद शम्स-उल-उल्मा हुए थे। वही लिबास भी है। लाहौरमें "मखज़न"के चलानेवालोंने भी एक तसवीर विलायतसे बनवाकर मंगवाई है, मगर वह भी इससे बेहतर नहीं है। उसमें क़द अन्दाज़ काबिले ग़ौर है। उम्मेद है कि वह तसवीर सब तरह उम्दा होगी, जो आगा मुहम्मद इब्राहीम साहबने बनवाई है और जो 'आबेहयात' और 'दरबार अकबरी'के साथ

७—प्रेम श्रद्धा। ८—छोटी-छोटी, मामूली। ९—घबराहट। १०—आक्षेप।

निकलेगी। यह दोनों किताबे आग़ा साहबके अहतमाम११ से छप रही हैं।

मुझे खुशी है कि चाहे मेरे मज़मूनमें कुछ कमी भी हो, मगर वह बेकार नहीं गया, उसका असर हुआ है, तबसे हज़रत 'आज़ाद'के हालात जिन्दगीपर बहुत रोशनी पड़ी है। मुझे उम्मीद है कि इस सिलसिलाके ख़त्म होने तक और भी बहुत-कुछ रोशनी पड़ेगी, और मेरी यह ख़िदमत बिल्कुल बेकार साबित न होगी।

१२तसनीफ़ात आज़ाद

'आज़ाद'की तसनीफ़ातमें दो तरहकी किताबें हैं। एक तो वह जो उन्होंने सरिश्ता१३ तालीम पंजाबके लिये लिखीं और दूसरी वह जो अपने शौक़से लिखीं। राक़िमके ख़यालमें सबसे पहिले उन्होंने सरिश्ता तालीम-की किताबोंके लिये क़लम उठाया। यह बात सिर्फ़ पंजाबवालेही जानते हैं कि सरिश्ता तालीम पंजाबके लिये बहुत किताबें हज़रत आज़ादसे लिखवाई गई। दूसरे सूबेवाले इससे नावाकिफ़ हैं। सरिश्ता तालीमके लिये जो किताबें उन्होंने तैयार कीं, उनमें मुन्दरजाज़ैल१३ (क) के नाम मालूम हुए हैं :—

(१) फ़ारसीकी पहिली किताब (२) फ़ारसीकी दूसरी किताब (३) जामाउलक़वायद (४) उर्दूका क़ायदा (५) उर्दूकी पहली किताब (६) उर्दूकी दूसरी किताब (७) उर्दूकी तीसरी किताब (८) उर्दूकी चौथी किताब (८) क़सिस हिन्द हिस्सा दोयम। इनमेंसे जामाउल क़वायद आला जमातोंके लिये बनी और बाक़ी सब अदना जमातोंके लिये। इनमेंसे पहिली तीन और सबसे पिछली चार किताबें राक़िमने भी स्कूल—में पढ़ी थीं।

११—प्रबन्ध। १२—रचना। १३—शिक्षा विभाग। १३(क)—निम्नलिखित।

जो किताबें उन्होंने अपने शौक़से तसनीफ़ या तालीफ़ कीं उनके नाम यह हैं :—

१—आबेहयात।

२—नैरंगे ख़याल।

३—दीवाने ज़ौक़।

४—दरबारे अकबरी।

५—सखुन्दाने फ़ारिस*।

६—क़न्द फारसी।

७—नसीहतका करन फूल। दोनों हालमें आगा साहबने छपवाई हैं। पिछली तालीमे निस्वां (नारी शिक्षा) से मुतआल्लिक हैं।

८—नज़्मे आज़ाद आगा साहबने छपवाई है। पहिले मजमूआ१४ नज़्मे आज़ादके नामसे मौलवी सैय्यद मुमताज़अली छाप चुके हैं।

९—मकाशकात आज़ाद; यह नीमबेखुदी १५ की हालतकी तसनीफ़ है।

१०—मजमूआ नविश्तयेपाक यानी रसाला सपाक व नमाक आलमे इस्तग़राक१६ चीज़ है। इसके बाद क़लम हाथसे गिर गया।

सरिश्ता तालीमवाली किताबोंमें क़सिसे हिन्द हिस्सा दोयम और जामाउल क़वायदकी बड़ी शोहरत है। क़सिसे हिन्दके ढंगकी किताब इस वक्त तक उर्दूमें न थी और हक़ यह है कि अब भी उस ढंगमें उसकी बराबरी करनेवाली कोई किताब नज़र नहीं आती है। जामाउल क़वायद फारसी ज़बानके क़वायदकी ऐसी जामा किताब है, कि वैसी

१४—संग्रह। १५—अर्द्धविक्षिप्तावस्था। १६—खयाल।

* यह किताब सन् १८९८ ई० में लाहौरके सैयद मुमताज़ अली साहबने छापी थी। ज़खामत थी सफ़े १२८। अब आगा मुहम्मद इब्राहिम साहबने छपवायी है। ज़खामत ३१८ सफ़े।

न हिन्दमें है और न ईरान में। ऐसी किताब लिखना आज़ादहीका काम था। पंजाबके स्कूलोंमें जामाउलक़वायदके बननेसे पहिले मसदरफ़ियूज़ नामकी एक किताबसे क़वायद फ़ारसीका काम निकाला जाता था, जो अपने वक्तपर अच्छी किताब थी। मगर अब वह अच्छा काम नहीं दे सकती, वक्त बहुत आगे निकल गया है।

सन् १८७५ई०के आख़िरमें राक़िम स्कूलमें दाख़िल हुआ था, उस वक्त पंजाबके इब्तदाई मदरसे नीम मकतबों की शक्लमें थे। उर्दू-का क़ायदा मौजूद न था। काग़ज़ोंपर अलीफ-बे लिखकर पढ़ाई जाती थी। तसहील-उल-तालीम नामकी एक किताब उर्दूकी पहिली किताब-और उर्दूके क़ायदेका काम देती थी। उर्दूकी पहिली और दूसरी और तीसरी किताबें बनी ज़रूर थीं। मगर वह सब स्कूलों तक नहीं पहुँच सकी थीं। कुछ दिन बाद उर्दूकी पहिली और दूसरी किताबें आईं। और तसहील-उल-तालीमसे लड़कोंका पीछा छूटा। उर्दूकी पहिली किताब के दो हिस्से थे। पहिले हिस्सेमें उर्दूका क़ायदा था और दूसरेमें कुछ लतायफ़। यह लतायफ़[17] ऐसे मुश्किल थे कि बाज़ तो उनमेंसे आला जमाअतोंके लड़कोंकी समझमें भी मुश्किलसे आते थे। मसलन एक मंतकी[18] और एक पैराकका लतीफ़ा था, जो दोनों एक साथ नावमें सवार हुए थे। इस तरह एक मंतकी और एक मुल्ला तेलीका लतीफा था। मंतकी कौन होता है और इल्म मंतक क्या शै है, उर्दूका क़ायदा पढ़नेवाले लड़के भला क्या ख़ाक समझेंगे। इसी तरह उर्दूकी दूसरी भी ऐसे हिकायत और लतायफ़से पुर थीं, जो और भी मुश्किल थे। मगर सबसे मुश्किल थी उर्दूकी तीसरी किताब। उसे मिडिल क्लासके लड़के भी अच्छी तरह नहीं समझ सकते थे, ख़सूसन उसका हिस्सा नज़्म बहुत ही सख्त था। एक दो शैर उसमेंसे याद हैं—मुलाहज़ा हों :—

१७—चुटकले, मज़ेदार बातें। १८—बहस करनेवाला।

जोफ़से गरये मुबद्दल बदम सर्द हुआ।
बावर आया हमें पानीका हवा हो जाना॥

इशरते कतरा है दरियामें फना हो जाना।
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना॥

ज्यों साया इस चमनमें फिरा मैं तमाम उम्र।
शरमिन्दा पा नहीं मरावर्गे गयाहका॥

उस वक्त यह तोतेकी तरह रट लिये थे। मानी तो बहुत दिन बाद मालूम हुए—खैर कुछ भी हो, उर्दूकी इन तीन किताबोंने लड़कोंके जुज़दानों[19]मेंसे करीमा, ख़ालिक़बारी और पारहाय क़ुरानको बड़े अदबके साथ रुख्सत कराया।

हज़रत आज़ादने उर्दूमें एक नया तालीम-उल-मुबतदीका[20] सिल-सिला जारी किया। उन्होंने ख़ुद उर्दूका क़ायदा लिखा और पहिलीसे लेकर चौथी तक उर्दूकी किताबें लिखीं। यह किताबें ऐसी आसान और बाक़ायदा हैं कि इनको पढ़नेवाले बच्चे उर्दू पढ़ना और लिखना साथ-साथ सीखते जाते हैं, और जो कुछ पढ़ते हैं उसे ख़ुद बख़ुद समझ लेते हैं। अगला सबक आपही निकाल लेते हैं। उस्तादोंको बहुतही कम मेहनत पड़ती है। पहले दोसाल तक पढ़ते ही चले जाते थे, लिखना नहीं सीख सकते थे। क्योंकि जो पढ़ते थे उसे समझ बहुत कम सकते थे। इससे समझना चाहिये कि आज़ादने किस मारकेका काम किया। सच यह है कि यह किताबें लिखकर उन्होंने उर्दूके पौदे लगाये, और उन्हें सींच कर हरा भरा किया। नहीं नहीं, बल्कि उर्दूके दरख़्तकी जड़ोंमें पानी

१९—बस्ता। २०—नई शिक्षा शैली।

पहुंचाया। अब यही किताबें पंजाबके इब्तदाई स्कूलोंमें पढ़ाई जाती हैं। उर्दूकी पहिली और दूसरी किताबें जो आज़ादने तालीफ़कीं२१ पहिली बार लन्दनसे छपकर पंजाबमें आईं। यह बातसबीर थीं। बातसबीर उर्दू किताबोंका सिलसिला तबहीसे पंजाबी स्कूलोंमें जारी हुआ। इस सिलसिलामें अब आठ किताबें हैं। पहिली चार आज़ादने खुद लिखीं और पिछली चार दूसरोंने। दूसरे लोगोंने भी आज़ादकी पूरी-पूरी नक़ल की है। ताहम उनमें अंग्रेज़ीकी कचाहन्द बुरी तरह मालूम होती है। साफ़ अंग्रेज़ीका तरजुमा मालूम होती हैं। उनके बाज़ मज़ामीन तो ज्योंके त्यों अंग्रेज़ी मालूम होते हैं, जिनमें उर्दूपन आया ही नहीं।

इसी तरह फारसी सीखनेके लिये आज़ादकी फारसीकी पहिली और दूसरी किताबके मुक़ाबिलेकी किताबें हिन्दुस्तान भरमें कहीं नहीं हैं। यह दोनों किताबें इस खूबसूरतीसे लिखी गई हैं, कि इनके पढ़नेके साथ-साथ क़वायद फारसीकी सीधी-सीधी बातें भी मालूम होती जाती हैं। यह दो किताबें पढ़ लेनेसे लड़के सादीकी गुलिस्तां पढ़नेके लायक हो जाते हैं, और इन किताबोंके बाद गुलिस्तां ही पंजाबी स्कूलोंमें शुरू कराई जाती है। ऐसी किताबें हिन्दुस्तानके दूसरे सूबोंके स्कूलोंमें मयस्सर नहीं है।

आज़ादकी खास खूबी

आज़ादमें यह एक खास वस्फ़२२ है कि वह जिस क़लमसे आलासे आला दर्जेकी बात लिख सकता है, उसीसे अदनासे अदना दर्जेकी भी लिख सकता है। वह उड़े तो आसमानके तारे तोड़ ला सकता है, और नीचेकी तरफ जाय तो समुन्दरकी काई निकाल ला सकता है। उसका वही कलम 'आबेहयात' और 'नैरंगे ख़याल' लिखकर उर्दूके फजला

२१—बनाई। २२—विशेषता।

को[२३] हैरतमें डाल सकता है और वही क़लम उर्दूकी पहिली और मीठी लोरी लिखकर छोटे २ बच्चोंको हंसा और चुप कर सकता है। वह समझदार और बूढ़ोंको बागउम्मेद दिखलाकर लुभा सकता है और नन्हें नन्हें बच्चोंको मालीके पौदे लगाने और क्यारियोंमें पानी बहनेकी बात सुनाकर बहला सकता है। वह जिस खूबीसे एक आलादर्जेके ख़यालको क़लमबन्द कर सकता है, उसी खूबीसे बहुत अदना और मामूली दर्जेकी बातको भी कर सकता है। क़सिसे-हिन्द वग़ैरह लिखकर वह "आबे हयात" और "दरबारे अक़बरी" लिख सकता है, और इनके लिख लेनेके बाद फिर "तालीम उल मुब्तदी"का सिलसिला लिखनेमें जी लगा सकता है। दोनोंमें उसे बराबरका लुत्फ़ हासिल होता है। उसकी हर शैमें उसका आज़ादपन मौजूद है। उर्दूकी पहिली उर्दूकी पहिली है और आबेहयात, आबेहयात। इसी तरह फारसीकी पहिली, फारसीकी पहिली है, और सखुनदान फारस, सखुनदान फारस। मगर ज़रा ग़ौरसे देखनेमें मालूम हो जायगा कि आज़ाद सबमें मौजूद है और उसी ठाठके साथ। हर अहले क़लमको[२४] यह बात हासिल नहीं है।

आज़ाद जब जिस चीज़को लिखता है पूरी तवज्जहके[२५] साथ लिखता है। चाहे कोई फरमाइशी शै हो, चाहे अपनी खुशीकी। ख्वाह सरिश्ता तालीमके लिये हो ख्वाह अपने लिये। उल्माके लिये हो या तुलबाके लिये। बेगारका काम करना और टालना तो वह जानता ही नहीं। इसीसे उसकी हर शै पसन्दीदा होती है, और क़बूलेआम[२६] पट्टा साथ लेकर निकलती है। इसीसे वह लासानी[२७] होती है और सब पर फौक़[२८] ले जाती है, वह जिस ख़यालको सामने लाता है उसमें मह्[२९] हो जाता है। ज़रा उर्दूका क़ायदा हाथमें लो और देखो कि चार चार

२३—विद्वान। २४—लेखक। २५—ध्यान। २६—सर्वस्वीकृत। २७—बेजोड़। २८—सर्वोपरि, बाज़ी। २९—लिप्त।

पांच पांच सालके बच्चोंको पढ़ानेके लिये वह खुद कैसा बच्चा बन जाता है:—

"देर न कर। बेर ला दो। यह शेर है। दो सेर साग ले आ। फीस ले लो। इसकी रीस न कर। इसको पीस दो। बाग़की सैर कर। खैर तो है। आज आये। कल जाये। रोटी खाये। पानी पीये। अनार लिये थे। पैसे दिये थे। राई पीसो। इसकी सिलाई अच्छी है। आज सबक़ हुआ था। मेरा क़लम किसने छूआ। मदरसे जल्द जाओ। मेरी किताब लाओ।"

कायदा पढ़कर बच्चा होशियार होगया है। उम्रमें भी कुछ ज़्यादा हो गया है। अब वह उर्दूकी पहिली किताब पढ़ता है। देखिये आज़ाद उसके खयालात ज़ाहिर करता है;—

"माँ बच्चेको गोदमें लिये बैठी है, बाप हुक्का पी रहा है और देख देखकर खुश होता है। बच्चा आँख खोले पड़ा है। अंगूठा चूस रहा है। माँ मोहब्बत भरी निगाहोंसे उसके मुंहको तक रही है और प्यारसे कहती है मेरी जान! वह दिन कब आयेगा! कि मीठी मीठी बातें करेगा! बड़ा होगा, सेहरा बंधेगा! दुल्हा बनेगा! दुलहिन ब्याह लायेगा! हम बुड्ढे होंगे! तू कमायेगा! आप खायेगा! हमें खिलायेगा! बच्चा मुस्कराता है; माँ का दिल बाग़ बाग़ हो जाता है। जब नन्हा-सा ओंठ निकालकर रोनी सूरत बनाता है, तो बेचैन हो जाती है।" और देखिये बच्चा आज़ाद जुलाहे मियांके करघेके पास खड़ा हुआ क्या ग़ौर कर रहा है:—

"जुलाहा कपड़ा बुन रहा है। करघे पर बैठा है। टूटे हुए तार सरपर लटक रहे हैं। एक हाथमें नाल है। दूसरेमें कंघीका हत्था। इधर नाल फेंकता है। उधर लपकता है। और कंघीसे ठोंकता जाता है। छोटासा लड़का देख रहा है। वाहरे तेरी फुरती! जहां तार टूटता है, वहीं झट जोड़

देता है। "मियां! यह थान कितनेको बेचोगे? हजूर! दो-ढाई रुपयेको बिकेगा। इस काममें क्या रहा? जबसे कलका कपड़ा चला है, इसे टके गज़ कोई नहीं लेता। अब तो नैनू लट्ठेकी क़दर है। एक दिन वह था कि हमारे हाथके कपड़े बड़े-बड़े अमीर पहिनते थे। एक दिन यह है कि ग़रीब भी नहीं पूछते। क्या करें? अपने दिन पूरे करते हैं, कमती बढ़ती बेच ही डालते हैं। सुनो—हिम्मत न हारो मेहनत किये जाओ—बहुत न सही, थोड़ा हो सही। तुम्हारा काम बहुत अच्छा है। ग़रीबोंके तन ढकते हैं। अमीरोंके भी काम निकलते हैं। वह आप नहीं पहिनते, पर उनके सायबान परदे, कनातें और तम्बू बनते हैं।"

इसी तरह उर्दूकी पहली किताब भरमें कहीं आप बनियेकी दुकानके सामने हैं, कहीं कुआँ चलता है, देख रहे हैं। कहीं कुछ और कहीं कुछ और कर रहे हैं। देहलीकी बोल-चाल देहलीके साफ़ सीधे मुहावरे और वहाँका रोज़ मर्रा, और लुत्फ़ यह कि वहाँके छोटे-छोटे बच्चोंकी बोली और उनके ख़यालात किस तरह और किस मेहनतसे आज़ादने देहलीकी उर्दू पंजाबियोंको सिखाई है। यह बात सब लोग कहाँ जानते होंगे। इसीसे राक़िमने अलीफ़, बे, से उनकी बात उठाई। नाज़रीन इसे फ़ज़ूल न समझ बैठें।

जहाँ जिसका बयान किया है, उसकी तसवीर खींच दी है। देखिये तो ग़रीब जुलाहेकी हालत कितनी खूबसूरतीसे दिखाई है। आज अगर हज़रत आज़ादको ख़बर होती कि स्वदेशी तहरीककी बदौलत उनके ग़रीब जुलाहेके दिन फिरे हैं, और आपने जो उसे हिम्मत दिलाई थी, कि मेहनत किये जाओ; उसका उसे फल मिला है। वह कितने खुश होते?

अब उर्दूकी दूसरी किताबमेंसे कुछ नमूना देखिये। बच्चा आज़ाद चिऊँटी देख रहा है। सुनिये क्या कहता जाता है। क्या नन्हीं-सी जान है। क्या हिम्मत है। अपनेसे दुगना बोझ उठाती है। न हिम्मतसे मुंह मोड़ती

है। न मेहनतसे जी तोड़ती है। कैसी जान खपाती है। किस मुसीबतसे रोज़ी कमाती है। खुदाकी कुदरत देखो। क्या बलाकी याद है! कहाँ-कहाँ पहुँचती है। फिर भी अपना ठिकाना नहीं भूलती। मिठास तो इसकी जान है। मगर और चीज़ें भी नहीं छोड़ती। मक्खियाँ और मरे हुए कीड़े भी खाती हैं। ज़ख्मी हों तो भी घसीट ले जाती हैं। देखना! भिड़ मरी पड़ी है, इन्हें शिकार हाथ आया। कैसी चिमट गई हैं, कोई पर खींचती है, कोई धड़ घसीटती है, कोई मुँहको चिमटती है, कोई पाँवको लिपटती है, जो है इसी खयालमें लगी है। दौड़ाये लिये जाती हैं। एक उड़ रही है। बेचारीकी मौत आन पहुँची है। भली चंगी तो है। क्योंकर जाना मरेगी? जब इनके पर निकल आते हैं—तो मरनेके दिन क़रीब आ जाते हैं। यह मसल नहीं सुनी? चिऊँटीके पर निकले हैं, यह वहाँ बोलते हैं, जहाँ कोई शेखी मारता है।

ज़रा रूईके पौदेका बयान सुनिये

रूईका दरख्त बहुत खूबसूरत होता है, गज़ डेढ़ गज़ ऊँचा हरे-हरे पत्ते, ज़र्द-ज़र्द फूल, जब फूल खिलता है, तो यह मालूम होता है कि केसर फूली है। उसका कच्चा फल सब्ज़ होता है। पर ज़रा सुर्ख़ी मारता है। जब पक जाता है—और सूखता है, तो फटकर कमलकी तरह खिल जाता है। उस वक्त इसके अन्दर एक चीज़ बर्फ़ सी सफ़ेद और रेशम सी नर्म दिखाई देती है, वही रूई है। उर्दूकी पहिली और दूसरी किताबमें क्या फ़र्क़ है। ज़रा दोनोंकी ईबारतोंको मिलाकर देखो। पहिलीके फ़िक़रे बिल्कुल सीधे-सादे हैं, मगर दूसरी में तशबीहातसे३० भी काम लिया है। देखिये रूईके बयानमें कैसी शगुफ्ता३१ तशबीहें दी हैं। फूल फटकर कमल-सा खिल जाता है, बर्फ़सी सफ़ेद, रेशम सी नर्म, वगैरह। गुल व बुलबुल और हुस्न व इश्क़

३०—तुलनाएँ। ३१—उपयुक्त।

के मज़ामीन नज़्म करनेवाले शअरा३२ और आला दर्जेकी अदकनसर३३ लिखनेवाले ज़रा ग़ौर करें कि आज़ाद किसबलाका आदमी है। बच्चोंको किताबें लिखनेमें उसने कैसा अंग्रेज़ी किताबोंका मुकाबिला किया। उर्दूमें ऐसी किताबें कहाँ थी? इस किस्मकी किताबोंको तसनीफ़का३४ खयाल आज़ादने अंग्रेज़ीसे लिया। मगर अपनी ज़बानमें उसका चरबा३५ इस खूबसूरतीसे उतारा कि गोया उर्दूमें यह सदासे मौजूद थी।

तीसरी और चौथी किताबें भी इसी तरह दर्ज़ा बदर्ज़ा बढ़ती गई हैं। उनकेबाज़ मज़ामीन बहुत आला दर्जेके हुए हैं। आज़ादके सिवा कोई दूसरा उन्हें लिखता तो वह इस पायाके कभी न होते। काश! बादकी चार किताबें भी उन्हींके क़लमसे तैयार होतीं।

यह उर्दूकी पहली और दूसरी किताबें पाँचवीं बार छपी हैं। पहली किताब डेढ़ लाख* छपी है और दूसरी एक लाख। चूँकि यह सन १८९२ ई० की छपी हुई हैं, इससे ताज्जुब नहीं जो छठी बार भी छपी हों। इससे ज़ाहिर है कि आजादके क़लमने पंजाबमें उर्दूकी इशायतके३६ लिये क्या काम किया। बड़े होशियार थे साबिक़ डाइरेक्टर कर्नल हाम-राइड साहब, जिन्होंने सरिश्ता-तालीम पंजाबकी इस ख़िदमतके लिये मौलाना आज़ादको चुना। मगर एक बात बड़े अफ़सोसकी है, कि सरिश्ता तालीमकी किताबें होनेसे इनमें बार-बार तग़ैयर३७ व तबद्दुल३८ कमी ब

*लीथोमें उर्दूकी किताबें एकबार एक हजार ही उम्दा छपा करतीं थीं। रायसाहब गुलाबसिंह मरहूमने ऐसी कल निकाली कि अब लीथोसे उर्दूकी किताबें एक ही बार कई २ हज़ार बल्कि लाख तक छप सकती हैं। लाहौरमें उर्दू किताबें छापनेमें राय साहब मरहूम कमाल तरक्की करके दिखा गये हैं। सरिश्ता तालीम पंजाबकी ज्यादातर किताबें आपहीके मुतबयमें छपी हैं।

३२—कवि। ३३—कठिन गद्य। ३४—लिखनेका। ३५—प्रतिविम्ब। ३६—प्रचार। ३७—बदलना। ३८—तबदील करना।

बेशी होती रहती है। आजकल इनमें एक हिस्सा नज्मका भी दाखिल हुआ है। जिससे आज़ादका कुछ ताल्लुक नहीं है। इस तरह कटते छटते इनकी शक्लें ऐसी बदल जायेंगी कि इनको तसनीफात आज़ाद कहना बेफ़ायदा हो जायगा। सरिश्ता तालीमकी खास किताबों पर मुसन्नफ़[३९] या मुवल्लफका[४०] नाम नहीं होता—उसके मुताबिक़ इन किताबोंपर भी हजरत आज़ादका नाम नहीं है। नावाकिफ़ तो जान ही नहीं सकता कि यह किसकी मेहनत है। वाकिफ़ भी कुछ दिनोंमें भूल जायेंगे। क्या इसका कुछ इलाज नहीं है?

—ज़माना जून १९०७ ई०।

३९—लेखक। ४०—संग्रहकार।

राष्ट्र-भाषा और लिपि

२

हिन्दी-भाषाकी भूमिका

वर्तमान हिन्दी-भाषाकी जन्मभूमि दिल्ली है। वहीं ब्रज-भाषासे वह उत्पन्न हुई और वहीं उसका नाम हिन्दी रखा गया।

आरम्भमें उसका नाम रेखता पड़ा था। बहुत दिनों यही नाम रहा। पीछे हिन्दी कहलाई। कुछ और पीछे इसका नाम उर्दू हुआ। अब फारसी वेषमें अपना उर्दू नाम ज्योंका त्यों बना हुआ रखकर देवनागरी वस्त्रोंमें हिन्दी-भाषा कहलाती है।

हिन्दीके जन्म-समय उसकी माता ब्रज-भाषा खाली भाषा कहलाती थी। क्योंकि वही उस समय उत्तर-भारतकी देश-भाषा थी। पर बेटीका प्रताप शीघ्रही इतना बढ़ा कि माताके नामके साथ ब्रज शब्द जोड़नेकी आवश्यकता पड़ी। क्योंकि कुछ बड़ी होकर बेटी भारतवर्ष-की प्रधान भाषा बन गई और माता केवल एक प्रान्तकी भाषा रह गई। अब माता ब्रजभाषा और पुत्री हिन्दी-भाषा कहलाती है।

यद्यपि हिन्दीकी नींव बहुत दिनोंसे पड़ गई थी, पर इसका जन्मकाल शाहजहाँके समयसे माना जाता है। मुग़ल सम्राट् शाहजहाँके बसाये शाहजहानाबादके बाजारमें इसका जन्म हुआ। कुछ दिनोंतक वह निरी बाजारी भाषा बनी रही! बाजारमें जन्म ग्रहण करनेसेही इसका नाम उर्दू हुआ। उर्दू तुर्की भाषाका शब्द है। तुर्कीमें उर्दू, लश्कर या छावनीके बाजारको कहते हैं। शाहजहानी लश्करके बाजारमें उत्पन्न होनेके कारण जन्म-स्थानके नामपर उसका नाम उर्दू हुआ।

उसका नाम "हिन्दी" भी मुसलमानोंका रखा हुआ है। हिन्दी फारसी भाषाका शब्द है। उसका अर्थ है, हिन्दसे सम्बन्ध रखनेवाली अर्थात हिन्दुस्थानकी भाषा। ब्रजभाषामें फारसी, अरबी, तुर्की आदि भाषाओंके मिलनेसे हिन्दीकी सृष्टि हुई। उक्त तीनों भाषाओंको विजेता मुसलमान अपने देशोंसे अपने साथ भारतवर्षमें लाये थे। सैकड़ों साल तक मुसलमान इस देशमें फारसी बोलते रहे। फारिसके विजेताओंहीका इस देशमें अधिक बल रहा है। अरबी, तुर्की बोलनेवाले बहुत कम थे। जब इन लोगोंकी कई पीढ़ियां इस देशमें बसते हो गई तो इस देशकी भाषाका भी उनपर प्रभाव हुआ। भारतकी भाषा उनकी भाषामें मिलने लगी और उनकी भाषा भारतकी भाषामें युक्त होने लगी। जिस समय यह मेल होने लगा था, उसे अब छः सौ वर्षसे अधिक होगये। आरम्भमें उक्त मेलजोल सामान्य-सा था। धीरे-धीरे इतना बढ़ा कि फारसी और ब्रजभाषा दोनोंके संयोगसे एक तीसरी भाषा उत्पन्न होगई। उसका नाम हिन्दी या उर्दू जो चाहिये सो समझ लीजिये। फारसी-भाषाके कवियोंने इस नई भाषाको शाहजहानी बाजारमें अनाथावस्थामें इधर-उधर फिरते देखा। उन्हें इसकी भोली-भाली सूरत बहुत पसन्द आई। वह उसे अपने घर लेजाकर पालने लगे। उन्होंनेही उसका नामकरण किया और उसे रेखता कहकर पुकारने लगे। औरङ्गजेबके समयमें उक्त भाषामें कविता होने लगी। मुहम्मदशाहके समयमें उन्नति हुई और शाहआलम सानीके समयमें यहां तक उन्नति हुई कि बहुत अच्छे-अच्छे कवियोंके सिवा स्वयं बादशाह उक्त भाषामें कविता करने लगे और एक नामी कवि कहलाये। कितनेही हिन्दू कवि भी इस भाषामें कविता करने लगे। साधु महात्माओंके कुटीर तक भी इसका प्रचार होने लगा, वह अपने भगवद्भक्तिके पद इस भाषामें रचने लगे।

मुसलमानी अमलदारीमें इस भाषामें केवल फारसी कविताके ढङ्ग-की कविताही होती रही। गद्यकी उस समय तक कुछ जरूरत न पड़ी। जब अंग्रेजोंके पांव इस देशमें जम गये और मुसलमानी राज्यका चिराग ठंडा होने लगा, तब इस भाषामें गद्यकी नीव पड़ी। गद्यकी पहली पोथी सन १७९८ ई० में लिखी गई। सन १८०२ ई० में जब दिल्लीमें "बागोबहार" नामकी पोथी तय्यार हुई तो गद्यकी चर्चा कुछ बढ़ी। यहांतक कि हिन्दुओंका भी इधर ध्यान हुआ। कविवर लल्लूलालजी आगरा निवासीने अगलेही वर्ष सन १८०३ ई० में प्रेमसागर लिखा। मुसलमान लोग अपनी पोथियां फारसी अक्षरोंमें लिखते थे लल्लूलालजीने देवनागरी अक्षरोंमें अपनी पोथी लिखी। पर दुःखकी बात है, लल्लूजीके पीछे बहुत काल तक ऐसे लोग उत्पन्न न हुए जो उनके दिखाये मार्गपर चलते और उनके किये हुए कामकी उन्नति करते। इसीसे उनका काम जहांका तहां रह गया। देवनागरी अक्षरोंमें प्रेमसागरके ढङ्गकी नई-नई रचनाएं करनेवाले लोग साठ साल तक फिर दिखाई न दिये। अक्षरोंवाले उन्नति करते गये। गद्यमें उन्होंने और भी कितनीही पोथियां लिखीं। पीछे सन १८३५ ई० में उनके सौभाग्यसे सरकारी दफ्तरोंमें फारसी अक्षरोंके साथ हिन्दी जारी हुई। इससे नागरी अक्षरोंको बड़ा धक्का पहुंचा। उनका प्रचार बहुत कम हो चला। जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे, वह फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए। फल यह हुआ कि हिन्दी-भाषा न रह कर उर्दू बन गई। हिन्दी उस भाषाका नाम रहा जो टूटी-फूटी चालपर देवनागरी अक्षरोंमें लिखी जाती थी। न वह नियम पूर्वक सीखी जाती थी और न उसके लिखनेका कोई अच्छा ढङ्ग था। कविता करनेवाले ब्रजभाषामें कविता करते हुए पुरानी चालपर चले जाते थे, जो अब भी एकदम बन्द नहीं होगई है। गद्य या तो आपसकी चिट्ठी पत्रियोंमें

बड़े गँवारी ढङ्गसे जारी था या कोई एक-आध गुम नाम बेढङ्गी पोथीमें दिखाई देता था।

पचास सालसे अधिक हिन्दीकी यहां दशा रही। उसका नाम-निशान मिटनेका समय आगया। उसके साथही साथ देवनागरी अक्षरोंका प्रचार एकदम उठ चला था। देवनागरी अक्षरोंमें एक छोटी मोटी चिट्ठी भी शुद्ध लिखना लोग भूल चले थे। उर्दूका जोर बहुत बढ़ गया था। अचानक समयने पलटा खाया। कुछ फारसी-अंग्रेजी पढ़े हुए हिन्दू सज्जनोंके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि फारसी अक्षरोंका चाहे कितनाही प्रचार हो जाय और सरकारी आफिसोंमें भी उनका कैसाही आदर बढ़ जाय, सर्व्वसाधारणमें फैलनेके योग्य देवनागरी अक्षर ही हैं। स्वर्गीय राजा शिवप्रसादकी चेष्टासे काशीसे बनारस अखबार निकाला* उसकी भाषा उर्दू और अक्षर देवनागरी थे। राजा शिवप्रसादजी द्वारा देवनागरी अक्षरोंका और भी बहुत कुछ प्रचार हुआ। पीछे काशीवालोंने हिन्दी भाषाके सुधारकी ओर भी ध्यान दिया और "सुधाकर-पत्र" निकाला। पर वह चेष्टा भी विफल हुई। अन्तको आगरा-निवासी स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंहजीने शकुन्तलाका हिन्दी अनुवाद किया और अच्छी हिन्दी लिखनेवालोंको फिरसे एक मार्ग दिखाया। यद्यपि उसका शुद्ध अनुवाद २५ साल पीछे सन १८८८ ई० में प्रकाशित हुआ जब कि हिन्दीकी चर्चा बहुत कुछ फैल चुकी थी—तथापि राजा शिवप्रसादके गुटके में मिल जानेसे उसके पहले अनुवादका बहुत प्रचार हो चुका था। सन

*इसके पहले कलकत्तेसे ३० मई सन् १८२६ को 'उदन्तमार्तण्ड' नामक साप्ताहिक हिन्दीपत्र प्रकाशित हो चुका था। उसके सम्पादक और प्रकाशक कानपुर निवासी पं० युगलकिशोर मिश्र थे। वे यहाँ सदर दीवानी अदालतमें 'प्रोसिडिंग्स रीडर' थे। —(बांगला सामयिक पत्र,—श्रीव्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय-लिखित, पृष्ठ ७३)
सम्पादक।

१८७८ ई० में उक्त राजा साहबने रघुवंशका गद्य हिन्दीमें अनुवाद किया। उसकी भूमिकामें वह लिखते हैं—

"हमारे मतमें हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं। हिन्दी इस देशके हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहांके मुसलमानों और पारसी पढ़े हुए हिन्दुओंकी बोलचाल है। हिन्दीमें संस्कृतके पद बहुत आते हैं, उर्दूमें अरबी पारसीके। परन्तु कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी पारसीके शब्दों बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम उस भाषाको हिन्दी कहते हैं, जिसमें अरबी पारसीके शब्द भरे हों। इस उलथामें यह भी नियम रक्खा गया है कि कोई पद अरबी पारसीका न आवे।"

राजा साहब उर्दू फारसी भलीभांति जानते थे, तिसपर भी हिन्दी और उर्दूको केवल इसलिये दो न्यारी न्यारी बोली बताते थे कि एकमें संस्कृतके शब्द अधिक होते हैं और दूसरीमें फारसी अरबीके शब्द। अस्तु, इस कथनसे यह स्पष्ट है कि हिन्दी और उर्दूमें केवल संस्कृत और फारसी आदिके शब्दोंके लिये भेद है और सब प्रकार दोनों एक हैं। साथही यह भी विदित होता है कि उर्दूसे उस समय कुछ शिक्षित हिन्दू घबराने लगे थे और समझने लगे थे कि फारसी, अरबी शब्दोंके बहुत मिल जानेसे हिन्दी हिन्दी नहीं रही कुछ और ही होगई, हिन्दुओंके काम वह नहीं आ सकती। ईश्वरकी इच्छा थी कि हिन्दीकी रक्षा हो, इसीसे यह विचार कुछ शिक्षित हिन्दुओंके हृदयमें उसने अंकुरित किया। गिरती हुई हिन्दीको उठानेके लिये उसकी प्रेरणासे स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रका जन्म हुआ।

हरिश्चन्द्रने हिन्दीको फिरसे प्राण-दान किया। उन्होंने हिन्दीमें अच्छे अच्छे समाचारपत्र, मासिकपत्र आदि निकाले और उत्तम उत्तम नाटकों और पुस्तकोंसे उसका गौरव बढ़ाना आरम्भ किया। यद्यपि उन्होंने बहुत थोड़ी आयु पाई और सतरह अठारह वर्षसे अधिक हिन्दीकी

सेवा न कर सके, तथापि इस अल्पकालहीमें हिन्दी-संसारमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। उनके सामनेही कितनेही हिन्दीके अच्छे लेखक हो गये थे। कितनेही समाचारपत्र निकलने लगे थे। जिस हिन्दीकी ओर पहले लोग आंख उठाकर न देखते थे वह सबकी आँखोंका तारा हो चली थी। हरिश्चन्द्रने हिन्दीके लिये क्या किया, यह बात आगे कही जावेगी। यहाँ केवल इतनाही कहना है कि आज उन्हींकी चलाई हिन्दी सब जगह फैल रही है। उन्हींकी हिन्दीमें आजकलके सामयिकपत्र निकलते हैं और पुस्तकें बनती हैं। दिनपर दिन लोग शुद्ध हिन्दी लिखना और शुद्ध देवनागरीलिपिमें पत्रव्यवहार करना सीखते जाते हैं। यद्यपि बंगला, मराठी आदि भारतवर्षकी अन्य कई भाषाओंसे हिन्दी अभी पीछे है, तथापि समस्त भारतवर्षमें यह विचार फैलता जाता है कि इस देशकी प्रधान भाषा हिन्दीही है और वही यहाँकी राष्ट्रभाषा होनेके योग्य है। साथ साथ यह भी मानते जाते हैं कि सारे भारतवर्षमें देवनागरी अक्षरोंका प्रचार होना उचित है। हरिश्चन्द्रके प्रसादसे यह सब हुआ और आज हिन्दीकी चर्चा करनेका अवसर मिला।

इस समय हिन्दीके दो रूप हैं। एक उर्दू दूसरा हिन्दी। दोनोंमें केवल शब्दोंहीका नहीं लिपि-भेद बड़ा भारी पड़ा हुआ है। यदि यह भेद न होता तो दोनों रूप मिलकर एक हो जाता। यदि आदिसे फारसी लिपिके स्थानमें देवनागरी लिपि रहती तो यह भेदही न होता। अब भी लिपि एक होनेसे भेद मिट सकता है। पर जल्द ऐसा होनेकी आशा कम है। अभी दोनों रूप कुछ कालतक अलग अलग अपनी अपनी चमक दमक दिखानेकी चेष्टा करेंगे। आगे समय जो करावेगा, वही होगा। बड़ी कठिनाई तो यह है कि दोनों एक दूसरेको न पहचानते हैं न पहचाननेकी चेष्टा करते हैं। इससे बड़ा भारी अन्तर होता जाता है! जो लोग उर्दूके अच्छे कवि और ज्ञाता हैं, वह हिन्दीकी ओर ध्यान देना

कुछ आवश्यक नहीं समझते। इसीसे देवनागरी अक्षर भी नहीं सीखते और भारतवर्षके साहित्यसे निरे अनभिज्ञ हैं। अरब और फारिसके साहित्यकी ओर खिचते हैं। साथ साथ भारतवर्षके साहित्यसे घृणा करते और जी चुराते हैं। उधर हिन्दीके प्रेमी भी उर्दूकी ओर कम दृष्टि रखते हैं और उर्दूवालोंको अपनी ओरकी बातें ठीक ठीक समझानेकी चेष्टा नहीं करते। यदि दोनों ओरसे चेष्टा हो तो इस भाषाकी बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। मैं इस पुस्तक द्वारा दोनों ओरके लोगोंको एक दूसरेकी बातें ठीक-ठीक समझा देनेकी चेष्टा करूँगा। इसमें मेरा अधिक श्रम हिन्दीवालोंके लिये होगा।

हिन्दी-भाषा

जान पड़ता है कि मुसलमानोंके इस देशमें पाँव रखनेके समय यहाँ चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था, विद्याका सूर्य अस्त हो चुका था। संस्कृतके विद्वानोंका तिरोभाव होकर उसका प्रचार बन्द हो चुका था। देशमें कलह और अविद्या फैलती जाती थी। एक पतनोन्मुख देशकी जैसी दशा हो जाती है वैसीही दशा इस समय देशकी हो रही थी। कदाचित यही कारण है कि हिन्दुओंने अपनी लेखनीसे उस समयका कुछ वृत्तान्त किसी पोथी या पत्रमें नहीं लिखा। उस समयकी बातें न संस्कृतमें लिखी ही मिलती हैं; न भाषामें। उस समयका वृत्तान्त जो कुछ जाना गया है, वह मुसलमानोंकी लिखी पोथियोंसे जाना गया है। यदि हिन्दुओंमें उस समय कोई भी लेखनी-धारण करनेवाला पुरुष होता तो अवश्य ही संस्कृतमें अथवा प्रचलित देशभाषामें कुछ न कुछ लिखता और उससे उस समयकी भाषाका कुछ नमूना मिलता। अनुमानसे यही विदित होता है कि उस समय वह भाषा प्रचलित थी, जिसे हम

इस समय ब्रजभाषाकी जड़ कहते हैं अर्थात् जिसके आधारपर ब्रजभाषा बनी। उसकी नीव दसवीं ईसवी शताब्दिमें पड़ी होगी।

अचानक मुसलमानोंके इस देशमें घुस आने और आक्रमण करनेसे इस देशकी स्थिति और यहांके धर्ममें एक बड़ा भारी परिवर्त्तन उपस्थित हुआ। आक्रमणकारी मुसलमानोंने यहांके मन्दिरों और देवालयोंके साथ जैसी क्रूरताका बरताव किया, उससे यहाँकी बची बचाई विद्याका भी धूलमें मिलजाना एक सहज बात थी। कारण यह कि वही मन्दिर और देवालय विद्याके भी भण्डार थे, जो आक्रमणकारियोंने तोड़ फोड़ कर धूलमें मिला दिये। बहुत कालतक सर्वसाधारणको अपने धन और प्राणोंकी रक्षाके लिये चिन्तित रहना पड़ा। विद्याकी चर्चा कौन करता ? जो कुछ हो, देशके इस परिवर्त्तनके साथ साथ देश भाषाका परिवर्त्तन भी विलक्षण रूपसे होने लगा। अरबी और तुर्की शब्दोंसे भरी हुई फारसी भाषाको लेकर मुसलमान इस देशमें आये थे। उनकी वह भाषा इस देशकी भाषामें मिलने लगी। यदि संस्कृत उस समय देश-भाषा य राज-दरबारकी भाषा होती तो मुसलमानी भाषा उसीमें मिलती। पर वह तब केवल धर्म संबंधी भाषा थी, इससे म्लेच्छ भाषाका एक शब्द भी उसमें न घुस सका। हिन्दू धर्म कुछ ऐसा विचित्र है कि उसकी पोथियाँ लिखनेको आज भी भिन्न भाषाके शब्द लेनेकी आवश्यकता नहीं होती, फिर उस समय तो क्या होती। इसीसे संस्कृत वैसीकी वैसी पवित्र बनी हुई है।

पर उस समयकी देशभाषाने जिसका नाम अबसे ब्रजभाषा कहकर पुकारा जावेगा इस बिना बुलाये अतिथिका सत्कार किया। यद्यपि उस समयके हिन्दुओंको मुसलमानोंका बरताव देखकर उनसे बड़ी घृणा हुई थी, तथापि मुसलमानी भाषाके शब्दोंको वह अपनी भाषामें मिलने देनेसे न रोक सके। कैसे रोक सकते ? आठ पहर चौसठ घड़ीका उनका

मुसलमानोंसे साथ होगया था। बहुतसी नई चीजें, जो मुसलमानोंके साथ इस देशमें आई थीं, उनके नाम भी नये थे। वह नाम यहाँके लोगोंको सीखने पड़े, जो पीछे यहाँकी भाषामें मिल गये। और भी कई कारण हैं। भिन्न भाषाओंके बहुत शब्द ऐसे होते हैं कि यदि उनका अपनी भाषामें अनुवाद किया जावे तो मतलब एक वाक्यमें पूरा हो और फिर भी ठीक आनन्द प्राप्त न हो। ऐसी दशामें वह शब्द ज्योंका त्यों बोलना पड़ता है। फिर दो भिन्न भिन्न भाषा बोलनेवालोंको कभी कभी जल्दी बोलनेके लिये या सरलतासे बात समझा देनेके लिये एक दूसरेके शब्द बोल जानेपर लाचार होना पड़ता है। और जब आपसमें भलीभाँति मेल-जोल होजाता है, तब तो एक दूसरेके शब्द खूबही उनके मुंहसे निकलने लगते हैं। कभी प्रेमसे कभी दिल्लगीके लिये एक दूसरेके शब्दोंकी अदल बदल होती है। सबसे बड़ा कारण एक और यह है कि विजेता लोगोंकी बोल-चाल रङ्ग-ढङ्ग और दूसरी दूसरी बातें विजित लोगोंको बहुत भली मालूम होती हैं। उनका न वह केवल अनुकरण ही करते हैं, बरंच वैसा करनेमें लाभ दिखाते हैं और उनकी चालपर चलकर प्रसन्न होते हैं। यहाँ तक कि कभी कभी ऐसा करनेमें अपनी बड़ाई समझते हैं। आज कल अंग्रेजोंकी प्रत्येक बात हमारे देशके शिक्षित और अशिक्षित लोगोंको जैसी भली जान पड़ती है और उनकी नकल करके जैसे वह कृतार्थ होते हैं, यही दशा मुसलमानी समयमें भी हो चुकी है। मुसलमानी चालपर उस समय बहुत लोग लट्टू थे, जिसके चिन्ह अब तक नहीं मिटे हैं। इन्हीं कारणोंसे फारसी हिन्दीमें मिलने लगी।

किन्तु दुःखकी बात यह है कि उस कालकी बनी पुस्तकें या लेख ऐसे नहीं मिलते, जिनसे तबकी भाषाका रंग-ढंग मालूम हो सके और इस बातका पता लग सके कि किस आक्रमणकारीके समयमें इस देशकी भाषामें क्या परिवर्त्तन हुआ तथा किस सीमा तक मुसलमानी भाषा

हिन्दुस्थानी भाषामें मिलती गई। सुबुक्तगीन या महमूदके समयकी कुछ लिखावटें अब तक नहीं मिलीं। बहुत खोज करने पर भी हिन्दीमें चन्द कविके "पृथीराज रासा" से पुरानी कोई पोथी नहीं मिली है।* पृथीराज दिल्लीका अन्तिम शक्तिशाली महाराज था। उसके पीछे दिल्लीमें हिन्दुओंके राज्यका दीपनिर्वाण हुआ। सन् ११९१ में उसने शहाबुद्दीन गोरीको हराया था और पीछे ११९३ में उससे हार खाई थी। पृथीराजरासामें पृथीराजकी वीरताका कीर्त्तन है। उसके पढ़नेसे विदित होता है कि उस समयकी हिन्दी-भाषा बड़ी विचित्र थी। आज कल उसके आधे शब्दोंका अर्थ भी लोग ठीक ठीक नहीं समझ सकते। इतने-पर यह आश्चर्यकी बात है कि फारसी अरबीके शब्द उसमें बड़ी बहु-तायतसे घुसे हुए हैं। यहाँतक कि थोड़ीसी खोजसे प्रत्येक पृष्ठमें कई कई मिल जाते हैं। उदाहरणकी भाँति चन्दकी कवितामेंसे कुछ टुकड़े उद्धृत किये जाते हैं;—

सात कोसको दुर्ग है, तापर जरत 'मशाल'।
सो देखी मीरां तहां, तनमें ऊठी झाल।
पिये दूध मण पंच, सेर पंतीस जु 'शक्कर'।
अन नवता कड़ि खाय, बली एक मोटो बक्कर।
काल कूट त्रय सेर, सवा मण घृत्त सुपोषन।
कस्तूरी एक सेर, सेर दो केसर चोषन।
मण चार दही महिषी तरन, भोगराज मटकी भरै।
सवा पहर दिन चढ़त ही, सीरा मणि चामुंड करै।

---

* इतना लिखनेके बाद चन्दसे पुरानी कविता कुछ मिली है—
रावल देव भाटी जैसलमेरके राजोंका मूल पुरुष सं० ९०९ में हुआ। उसके बनाये दोहे जैसलमेरकी ख्यातमें लिखे हैं—

'सुज' 'शेख' जात 'उजबक्क' नाम, मीरां प्रधान पुनि युद्धधाम ।
चालीस दून जिन पीठ ढाल, चालीस दून उर कंठ माल ।
पच्चास दून पहरे कवच्च, पच्चीस दून सिर टोप रच्च ।
चकमार पंच मणको उदार, 'हज़ार' 'तीर' जिहिं माथ भार ।
'कब्बान' पकर 'उजबक्क' 'पीर', दो एकोस पै न चूँकत्त तीर ।

परे रहे रन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख 'रुक्ख' ।
जीत चल्यो प्रथीराज रन, सकल सूर भय सुक्ख ।

बर गोरी पद्मावती, गहि 'गोरी सुलतान' ।
निकट नगर दिल्ली गये, चत्र भुजा चहुआन ।
सत्तर सत तिय अग्ग, वीर गजराज सुअप्पिय ।
जे लीन्हें 'सुरतान', 'साहि' डोरी गोरी किय ।
पंच सत्त पच्चास, एक सो तुंग तुरंगम ।
सौदासी चतुरंग, सत्त ढोलिय बहु चंगम ।
चतुरंग लच्छि चित्रंग दे, बर सोमेसर थप्पिये ।
बोलाइ सजन रावर समर, पंच कोस मिलि जंपिये ।

मरी जे भाभी इण हासे । चोर निदाणेके नासे ॥
राव जुड़ा सुण बेनती बोलन पादो लेह ।
का भुड़ का भाटिये कोट अडावण देह ।
पड़िन वीजै अत्त देबरानु रवा कहे ।
जुगग रहासी बन नत अनीत ना कीजिये ।
खिर बिरजेवा गाह मोन भला ना भाटिया ।
जे गुण किया रवाइ तेही कलार हारिया ॥

कुशादे 'कुशादे' कहै 'ग्वानजादे', ग्रह्यो हत्थगोरी अबैं साहिबादे।
लग्यो चित्रकोटी 'सुरत्तान' साह्यो, बजै बे निसानं सजित्त्यो सराह्यो।
गयो भग्गि कूरंभ मरहट्ट बाली, गयो सत्थ मुक्कीनृपं वे पँचाली।
भग्यो प्रव्वती एलची झारखंडी, जिनैं भुज्ज गोरी ग्रहलाज मंडी।
पस्यो खान 'याकूब' संमार साखी, जिनैं दीन 'बन्देन' की लाज राखी।

चीतोर राइ काइम्म कीन, खुम्मान पाट पग अचल दीन।

तैं जित्त्यो गजनेस नंज अड्डो हम्मीरां।
तैं जित्त्यो चालुक्य पहरि सन्नाह सरीरां।

यह ऊपरका सोरठा श्लोका है। रावल कवि था। उसी ख्यातमें हैं—

दिराबर थापी दुरंग लुद्रवो आप घर लयो।
सम बाहण त्रियसंध जूनोपाह करजमयो।
आबू फैरी आण भड़जा लोरहूं भंजे।
पूगलगढ़ लीनी प्रगट कनल बिहंडे कीजिये।
देवराज चढ़ते दिवस रतन आज्ञ धर लीजिये।

बीसलदे रासो। सं० १२७२

हंसवाहनी मृगलोचनी नारि, सीस समारइ दिन गिणइ।
कीण सिरजइ उलिगाणा घरि नारि जाइ दीहाड़ उम्कीरितां ॥१॥
गवरीका नन्दन त्रिभुवन सार।
नाद वेदां थारइ उदिर भण्डार।
कर जोरे नरपति कहइ, मूसा बाह तिलक स्यन्दूर।
एक दन्त उमुख झलमलइ, जणिक रोहिणी उत पै सूर ॥१॥
नाल्ह रसायण रसभरी गाई।
तुठी सारदा त्रिभुवन माई।

तैं दल पंग नरिंद इन्दु ग्रहियो जिमराहं ।
तैं गोरी दल दह्यो बार पट्टह बन दाहं ।
तुअ 'तेज तेग' तुअ उद्ध मन तं तो पासन मिल्लिये ।
चामंड राय दाहर तनय तो भुज उप्पर खिल्लिये ।

मशाल, शेख, सुलतान, याकूब आदि अरबीके शब्द हैं। शक्कर, कमान, रुख, शाह, खानजादे कुशादा, तेग, तेज आदि फारसीके और उजबक तुर्कीका शब्द है। इनमेंसे कई एक नाम हैं, जिनका अनुवाद कुछ होही नहीं सकता। कई शब्द ऐसे हैं कि उनका अनुवाद किया जावे तो कई कई पंक्तियाँ लग जावें तो भी अर्थ स्पष्ट न हो। सुलतानको यदि चन्द कवि राजा महाराजा या देशपति लिखता तो वह अर्थ कभी सिद्ध न होता, जो सुलतान या सुरतान लिखनेसे होता है। क्योंकि सुलतान शब्दमें उसकी सुलतानीका ठाठ भी तो मौजूद है। सुलतान कहनेहीसे उसके स्वभाव, प्रकृति, न्याय, अन्याय, शक्ति, धर्म, आदिकी बातोंका भी साथ साथ ध्यान आ जाता है। अंग्रजीके बहुतसे शब्द ऐसे हैं कि जो हिन्दीमें कुछ बिगड़कर मिल गये हैं। उनके बोलनेसे उनका अर्थ भली-भाँति समझमें आजाता है। पर यदि उनका अनुवाद किया जावे तो समझना कठिन हो जावे। रेल, स्टेशन, लाट, कमिटी, आदि पचासों शब्द ऐसे हैं जिनका अनुवाद करना व्यर्थ सिर पचाना है। फारसी, अरबीके कितनेही शब्द हिन्दीमें ऐसे मिले हैं कि लोग उनको हिन्दीके शब्दोंसे भी प्यारा समझते हैं। साहब शब्दको तुलसीदासजी अपनी कवितामें बड़ेही प्रेमसे लाते हैं।

इन शब्दोंके सिवा दीवान, खलक, फरमान, हजरत, सलाम आदि शब्द चन्दकी कवितामें बहुत हैं। इतने फारसी, अरबी आदिके शब्द उसमें

उलीगणां गुण बरणनां कूकट कूमाणसां भिणकहृदऊ रास ।
अस्त्री चरित गत को लहइ, यें कहूँ आखीरसें सबई विणास ॥२॥

घुस जानेपर भी चन्दकी भाषा स्वच्छ और सरल नहीं है। वह इतनी उखड़ी हुई और लक्कड़तोड़ है कि मानो चन्द उसे उसी समय कहींसे तोड़ ताड़ कर बनाता था और कविताके काममें लगाता था। यही कारण है कि आजकल उसके समझनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। उसकी भाषामें तीन प्रकारके नमूने मिलते हैं। एक संस्कृतके ढङ्गकी भाषा है जो पढ़नेमें संस्कृतहीसी मालूम पड़ती है, पर अशुद्ध है और उसमें हिन्दी मिली हुई है। यथा—

स्वस्ति श्री राजंग राजन वरं धम्माधि धम्मं गुरुं।
इन्द्रप्रस्थ सुइन्द्र इंद समयं राजं गुरं वर्तते।
अरदासं तत्तारखान लिखियं सुलतान मोक्षं करं।
तुम बड्डु बड्डाइ राजन सुरं राजाधिपोराजनं।

यह एक अर्जी है जो तातारखांने शहाबुद्दीनको मुक्त करानेके लिये पृथिवीराजको लिखी थी, निरी दिल्लगी जान पड़ती है। हँसानेके लिये स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्रने एक कविता "महा संस्कृतकी कविता" के नामसे लिखी थी। वह इससे खूब मिलती है। नमूना लीजिये—

कूदंतं झुंड झुंडं घरघर घुसतं खप्पर फोड़यन्तम्।
जूरूबच्चा समेतं दंत नख कटतं कूकरां डप्पूयंतम्।

अर्जदाश्तको अरदास बनाकर संस्कृत करनेके लिये अरदासं कर लिया है। लिखियं और भी बढ़कर है और अन्तमें तो "बड्डु बड्डाइ" लिखकर रही सही कसर मिटादी है। पर हंसनेसे क्या होगा, वह नकली नहीं, असली भाषा थी। मेवाड़ और मारवाड़के कवि अबतक भी इस ढङ्गकी भाषामें कविता करते हैं। अस्तु, इस भाषासे भी यह पता लगता है कि संस्कृत किस प्रकार टूट फूट कर हिन्दी बनती जाती थी।

दूसरी प्राकृतके ढङ्गकी भाषा है। उसमें धम्म, कम्म, आदि शब्द हैं।

दूसरी भाषाओंके शब्द भी इसी साँचेमें ढालकर उक्त भाषामें मिला लिये गये हैं। उजबकको उजबक्क, कमानको कव्वान, सुलतानको सुरत्तान, कवचको कवच्च बना डाला है। इसी प्रकार जहाँ जिस शब्दको ऐसा करनेकी आवश्यकता पड़ी है, वहाँ उसीको कर डाला है। ऊपर जो कविता चंदकी उद्धृत हुई है, उसमें इसके नमूने मौजूद हैं। कहीं-कहीं उक्त दोनों नमूनोंकी भाषाको गड्ड-मड्ड करके कविता की है। तीसरा नमूना सरल भाषाका है। वह ब्रजभाषासे बहुत मिलती-जुलती है। वही स्वच्छ और सरल होकर शुद्ध ब्रजभाषा बनी होगी। नमूना देखिये—

एकादस से पंचदह विक्रम साक अनन्द।
तिहिं रिपु जयपुर हरनको भय पृथिराज नरिन्द॥

बहुत जगह चन्दने तीनों भाषाओंको मिलाकर तिगड्डा बनाया है। कहीं-कहीं एकके शब्द दूसरीमें लगा दिये हैं। राजस्थानके कवि अबतक इन तीनों नमूनोंकी भाषामें कविता करते हैं। शुद्ध ब्रजभाषाका प्रभाव उनपर बहुतही अल्प हुआ।

कवि चन्दके पीछे सौ सालतक बड़ी भारी तबाही और अशान्ति-का समय बीता। इससे फिर वैसे कवि और लेखक उत्पन्न न हुए। न पृथिवीराजके पीछे कोई स्वाधीन हिन्दू राजा रहा, न कवियोंका सम्मान करनेवाला। इससे पता नहीं लगता कि आगे भाषाकी क्या गति हुई? अल्लाउद्दीन खिलजीके राजत्वकालके आरम्भमें दिल्लीमें अमीर खुसरू फारसी भाषाका एक प्रसिद्ध कवि हुआ है। वह सन् १३२५ ई० में मरा। उसने हिन्दीमें कुछ नई कारीगरी करके दिखाई। फारसीमें वह बहुत तेज था। नई बातें उत्पन्न करने और नये-नये बेलबूटे बनाने-को उसे जन्महीसे शक्ति मिली थी। इससे हिन्दीमें भी उसने बहुत कुछ नयापन कर दिखाया। फारसी और हिन्दीको मिलाकर उसने कई एक ऐसी कविताएं लिखीं, जिनकी आजतक चर्चा होती है। उनकी नीचे

लिखी गजल बहुतही प्रसिद्ध है—

जे हाले मिसकीं मकुन तगाफुल, दुराय नैना बनाय बतियाँ।
किताबे हिजरां नदारम ऐ जां, न लेहु काहे लगाय छतियां।
शबाने हिजरां दराज चूँ जुल्फो, रोजे वसलत चुउम्र कोताह।
सखी पियाको जो मैं न देखूं तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।
यकायक अजदिल दो चश्मे जादू, बसद फरेबम बुबुंद तिसकीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे पीको हमारी बतियाँ।
चू शमा सोजां चुजर्रह हैरां जे मेहरे आं मह बेगश्तम आखिर।
न नींद नैना न अङ्ग चैना न आप आवे न भेजे पतियाँ।
बहक्क रोजे विसाले महशर किदाद मारा फरेब खुसरू।
लुभाय राखूं तू सुन ऐ साजन जो कहने पाऊं दो बोल बतियाँ॥

इस गजलके पहले दो चरणोंमेंसे प्रत्येक आधा-आधा फारसी है और आधा-आधा हिन्दी। आगेके दो-दो चरणोंमें पहला फारसी और दूसरा हिन्दी है। छः सौ वर्ष हो गये, अब भी इस गजलका आदर होता है। इससे पता लगता है कि हिन्दी उस समय कैसी थी। अथवा मुसलमानोंके मुंहपर जो हिन्दी जारी थी वह कैसी थी। यह बात भी लक्ष्य करनेके योग्य है कि इस गजलमें स्त्री अपने पियाके वियोगका वर्णन करती है। संस्कृत और भाषाके कवियोंकी यही चाल है। वह स्त्रीकी ओरसे अपने पतिके विरहकी कविता करते हैं। फारसीके कवियोंकी चाल इससे भिन्न है। वह पुरुषका विरह वणन करते हैं और वह पुरुष भी स्त्रीके विरहमें पागल नहीं होता वरञ्च बहुधा किसी सुन्दर बालकके विरहमें प्रलाप करता है। आरम्भमें मुसलमान कवि भी हिन्दुस्थानी चालपर चले थे। पर पीछे उनकी कविता फारसीके रंगमें शराबोर हो गई। इससे उर्दूमें भी पुरुषका प्रेम पुरुषसे चलता है। उसी चालपर इस समय तकके उर्दू कवि चले जाते हैं। खुसरूने हिन्दीमें फारसी

छन्द चलाया। शायद यही पहली गजल है, जिसमें हिन्दी सम्मिलित हुई। इसमें भाषा और फारसीको ऐसे ढङ्गसे मिलाया है कि छः सौ साल पीछे भी गजलका मजा वैसेका वैसा बना हुआ है।

खालिकबारी एक छोटीसी पोथी जो अब भी पुराने ढरेंके मकतबोंमें पढ़ाई जाती है, वह भी अमीर खुसरूनेही बनाई थी। बहुत बड़ी थी, उसके कई भाग थे। अब जो पढ़ाई जाती है, वह उसमेंसे थोड़ीसी चुनकर निकाली हुई है। उसमें ब्रजभाषा और फारसीको खूब मिलाया गया है। उसमेंसे कुछ नीचे लिखते हैं—

बिया बरादर, आवरे भाई। बिनशीं मादर, बैठरी माई।
तुरा बुगुफ्तम, मैं तुझ कहिया। कुजाबि मान्दी, तू कित रहिया।
दोश, कालह रात जो गई। इमशब आज रात जो भई।

इनमें हरेक चरणका पहला अंश फारसी है, दूसरा अंश उसका हिन्दी अर्थ है।

मर्द मनस जन है इस्तरी—कहत अकाल वबा है मरी।
इस्म अल्लह खुदाका नांव - गर्मा धूप साया है छांव॥

इन फारसी शब्दोंका हिन्दी अर्थ स्पष्ट समझमें आता है। पर कहीं ऐसे हिन्दी शब्द हैं, जो अब नहीं बोले जाते हैं। जैसे—

रसूल पयम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोलीजा ईठ।

रसूल अरबी, पयम्बर फारसी है। हिन्दीमें इनका अर्थ है दूत। पर खुसरूके समयमें दूतको बसीठ कहते थे। इसी प्रकार यार-दोस्तका अर्थ उस समय ईठ था। आज कल यार-दोस्त सब समझते हैं, ईठको कोई— नहीं समझता।

हिन्दी फारसी और अरबी शब्दोंके गड्डमड्ड कोषमें तीनों भाषाओंका जबरदस्ती तिगड्डम किया गया है। इसीसे क्रिया कहीं फारसी है, कहीं हिन्दी और कहीं दोनो।

अर्द धरती फारसी बाशद जमीन।
कोह दर हिन्दी पहाड़ आमद यकीन।
काह हेजम घास काठी जानिये।
ईंट माटी खिस्तो गिल पहचानिये।
देग हांडी कफचा डोई बेखता।
ताबा कजगांनस्त कढ़ाई तवा।
तप लर्जा दर हिन्दी आमद जूड़ी ताप।
दर्द सर आमद सिरकी पीड़ा तग है धाप।
गन्दुम गेहूं नखुद चना शाली है धान।
जुरत जूनती अद्स मसूर बर्ग है पान॥

इन पंक्तियोंमें सब प्रकारके नमूने मौजद हैं।

यह तो हुई फारसी और ब्रजभाषाके मेलकी कविताकी बात। अब उनकी केवल ब्रजभाषाकी चीजोंका नमूना लीजिये। दुखती हुई आंखोंके इलाजके लिये वह एक पोटली बताते हैं—

लोध फिटकरी मुर्दासंग। हल्दी जीरा एक एक टंग।
अफयूँ चना भर मिरचं चार। उरद बराबर थोथा डार।
पोस्तके पानी पोटली करे। तुरत पीर नैनोंकी हरे॥

खुसरूकी बनाई पहेलियाँ सुनिये—

तरवरसे एक तिरया उतरी उसने खूब रिझाया।
बापके उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर वाका बूझ पहेली मोरी।
अमीर खुसरू यों कहें अपने नाम निबोरी॥

यह निबोलीकी पहेली है। निबोली दिल्लीमें नीमके फलको कहते हैं। ब्रजमें उसे निबोरी कहते हैं। नीम फारसीमें आधेको कहते हैं। इसीसे खुसरू पहेलीमें कहता है कि पेड़ परसे एक स्त्रीने उतरकर बहुत

रिझाया। उसके बापका नाम पूछा तो उसने आधा नाम बताया अर्थात नीम। उसके नाममें आधा पिताका नाम है। उसका नाम पूछा तो निबोरी अर्थात नबोली अर्थात् चुप रह गई। और बता भी दिया अर्थात निबोली। ब्रजभाषामें 'ल' की जगह 'र' अधिक आता है। इससे 'न' बोली की जगह भी पहले नबोरी कहते थे। अब ब्रजके नगरोंमें तो 'ल' की जगह 'र' बहुत नहीं बोलते, पर उसके पासही मेवातके गांवोंमें जल्दीको भी जरदी कहते हैं। इस पहेलीसे यह भी देखना चाहिये कि हिन्दी फारसी उस समय कितनी मिल गई थी कि हिन्दी पहेलीमें फारसी अर्थ तलाश किया जाता था। किसी औरने नीमकी पहेली कही है।

एक तरवर आधा नाम। अर्थ करो नहीं छोड़ो गाम।

आगेकी पहेलियोंमें हिन्दी संस्कृतका मेल देखिये—

फारसी बोली आईना। तुर्की सोची पाईना।
हिन्दी कहते आरसी आये। मुँह देखो जो उसे बताये॥

इसका अर्थ है आईना। किस चोचलेसे कहता है कि फारसी बोली आईना। एक तो यह कि फारसी बोली मालूम नहीं, दूसरे साफ साफ अर्थही हो गया, फारसीमें उसे आईना कहते हैं। फिर कहता है हिन्दी बोलते आरसी आये। एक तो यह अर्थ हुआ कि हिन्दी बोलनेको जी नहीं होता, दूसरा आईनेकी हिन्दी आरसी है। इसी प्रकार चौथे चरणमें भी दो तरहका अर्थ है। एक यह कि तुम अर्थ बताओ तुम्हारा क्या मुँह है? दूसरे आईनेमें मुँह देखनेका साफ इशारा है। एक और पहेलीमें फारसी और भाषाका मेल देखिये—

अन्धा गूंगा बहरा बोले गूंगा आप कहाये।
देख सफेदी होत अंगारा गूंगेसे भिड़ जाये।
बांसका मन्दिर वाका बासा बाशेका वह खाजा।
संग मिले तो सिर पर राखे वाको राव और राजा।

सीसी करके नाम बताया तामें बैठा एक।
उलटा सीधा हिर फिर देखो वही एकका एक।
भेद पहेली में कही तू सुनले मेरे लाल।
अरबी हिन्दी फारसी तीनों करो खयाल।

यह लालकी पहेली है। यद्यपि पहेलीकी भाषा हिन्दी है, पर उसका अर्थ अरबी, फारसीकीतरफ भी चहलकदमी करता है। अरबीमें लाल सुर्खको कहते हैं। फारसीमें गूँगे बहरेको। हिन्दीमें एक छोटीसी चिड़ियाका नाम लाल है। इसीसे कवि उसके रहनेका ठिकाना बांसका मन्दिर अर्थात् पिंजरा बताता है। बाशा छोटे बाजका नाम है। वह लालको मारकर खाजाता है, इससे उसे बाशेका खाजा कहा। राव राजा लालको सिर पर रखते हैं, यह भी ठीक है; क्योंकि लाल रत्न होता है। सीसी करनेके समय मुँहसे लाल टपकती है, उससे भी लालका अर्थ निकला। फिर लालको उलटकर पढ़नेसे भी लालही रहता है। फिर लाल हिन्दीमें बच्चेको कहते हैं, मेरे लाल कहनेसे वह अर्थ भी हो गया। इस प्रकार अरबी, हिन्दी, फारसी, तीन भाषाओंका खयाल कविने एक शब्दसे उत्पन्न किया।

इसी तरह एक और पहेली है—

बीसोंका सिर काट लिया, नामारा नाखून किया।

खुसरूकी यह बहादुरी है कि पहेलीमें किसी तरह उस चीजका नाम भी ला देता है, जिसकी पहेली है। यह नाखूनकी पहेली है। बीसों नाखून काटे जाते हैं। इससे खुसरू बड़े चोचलेसे कहता है कि बीसोंका सिर काट लिया न किसीको मारा न खून किया। साथ ही नाखून कियामें अर्थ भी निकल आया कि नाखून ठीक किये।

बहुत पहेलियाँ सीधी हिन्दी अर्थकी भी हैं। जैसे—

चार महीने बहुत चले और महीने थोरी।

अमीर खुसरू यों कहे तू बता पहली मोरी।

यह मोरीहीकी पहेली है। बरसातमें चार महीने मोरी अधिक चलती है। बाकी आठ महीने कम।

दिल्ली प्रान्तमें आषाढ़से वर्षा ऋतुका आरम्भ होता है। श्रावणमें चारों ओर हरयाली फैल जाती है। तब वर्षाका यौवन होता है। इसीसे श्रावण सुदी ३ को उधर हरयाली तीजका बड़ा भारी मेला होता है। श्रावणमें झूले पड़ते हैं। खम्ब गड़ते हैं या पेड़ोंमें और मकानोंकी छतों— में झूले डाले जाते हैं। इनमें झूलते तो पुरुष भी हैं पर बहुत कम। स्त्रियोंका त्यौहार है, सब स्त्रियाँ मिलकर झूलती हैं। कभी कभी पूरे एक महीने झूलनेकी फसल रहती है। बहुधा हरयाली तीजके पीछे झूलना बन्द हो जाता है। झूलते समय स्त्रियाँ बहुतसे गीत गाती हैं। उनमें अमीर खुसरूके बनाये भी गीत हैं। छः सौ सालसे अधिक बीत गये अबतक हर बरसातमें गाये जाते हैं। एक गीत है—

जो पिया आवन कह गये अजहुँ न आये स्वामी हो
ए हो जो पिया आवन कह गये।
सावन आवन कह गये आये न बारहमास,
ए हो जो पिया आवन कह गये।

यह तो बड़ी बड़ी स्त्रियोंके गानेका गीत हुआ। छोटी छोटी लड़कियोंको पिया और स्वामीके गीत शोभा नहीं देते। पर सावनकी उमंगमें कुछ गाना तो उनको भी चाहिये। इसीसे उन्हींके योग्य गीत बनाये। एक लड़की मानो ससुरालमें है। वर्षा ऋतु है। वह झूलती हुई माता-पिताको याद करती है—

अम्मा मेरे बाबलको भेजोरी, कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबल तो बूढ़ारी, कि सावन आया।
अम्मा मेरे भाईको भेजोरी, कि सावन आया।

बेटी तेरा भाई तो बालारी, कि सावन आया।
अम्मा मेरे मामूको भेजोरी, कि सावन आया।
बेटी तेरा मामू तो बांकारी, कि सावन आया।

इस गीतमें बेटी मातासे कहती है कि मा! सावन आगया पिताको भेजो मुझे आकर लेजाय। माने उत्तर दिया कि वह बूढ़ा है। तब कहा भाईको भेजो तो उत्तर दिया कि वह बालक है। तब लड़की कहती है मामाको भेजो वह तो न बूढ़ा है न बालक। तब माता कहती है कि वह मेरी सुनताही नहीं। कैसी सुन्दर रीतिसे भारतवर्षकी छोटी छोटी लड़कियोंके हृदयके विचार इस गीतमें दिखाये हैं। मुकरी या मुकरनीका अमीर खुसरू मानो आविष्कर्त्ता था :—

सगरी रैन मोह संग जागा। भोर भई तो बिछुरन लागा।
वाके बिछुरे फाटत हीया। ए सखी! साजन? ना सखी दीया।
सर्ब सलूना सब गुन नीका। वा बिन सब जग लागे फीका।
वाके सिर पर होवे कोन। ए सखी! साजन? ना सखी लोन।
वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल। क्यों सखी! साजन? ना सखी ढोल।

अब मुकरनियोंका रिवाज दिल्लीमें भी कम हो गया है, तथापि यह ढङ्ग इतना प्रिय था कि बाबू हरिश्चन्द्रजीने भी कई एक मुकरनियाँ लिखी हैं।

एक अनमिल चलाया था। उसका नमूना लीजिये—एक कूप-पर चार पनहारियाँ पानी भर रही थीं। अमीर खुसरू उधरसे जाता था! प्यास लगी। कुए पर आया। पानी मांगा। उनमेंसे एक उसे पहचानती थी। उसने कहा देखो यह खुसरू है। उन्होंने पूछा क्या तू खुसरू है? तेरेही बनाये गीत सब गाते हैं, पहेलियाँ मुकरनियाँ तूही बनाता है? उसने कहा—हाँ। तब एकने कहा—मुझे खीरकी बात

कहदे। दूसरीने कहा चरखेकी। तीसरी बोली ढोलकी। चौथी कहने लगी कुत्तेकी। खुसरोने कहा बड़ी प्यास है, पहले पानी तो पिला दो। वह बोलीं पहले हमारी बात न कह दोगे तो पानी न पिलाएंगी। खुसरूने झट कहा—

खीर पकाई जतनसे चरखा दिया जला !
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।

ला पानी पिला। इस प्रकार पानी पिया।

कभी-कभी ढकोसला कहता था। कहते हैं कि वह भी उसीने चलाया था। ढकोसला सुनिये—

भादोंकी पक्की पीपली चू-चू पड़े कपास !
बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नङ्गाही सो रहूं।

यह ऐसा पसन्द हुआ था कि सैकड़ों ऐसेही और ढकोसले बनगये थे। कुछ दिन पहले तक पुराने आदमियोंमें इनकी चर्चा थी, पर अब बन्द है। एक और सुननेके लायक है—

भैंस चढ़ी बबूल पर गप गप गूलर खाय।
दुम उठाके देखा तो ईदके तीन दिन।

एक दो-सुखना चलाया था। वह लोगोंको बहुत भाया। न जाने खुसरूने चलाया था या यहींसे लिया था। पर इतना अवश्य है कि उसको कुछ उन्नत किया। फारसी हिन्दीं दोनोंको मिलाकर भी दो-सुखने बनाये। सुनिये—

मुसाफिर प्यासा क्यों ? गधा उदासा क्यों ? लोटा न था !
जूता क्यों न पहना ? संबोसा क्यों न खाया ? तला न था।
पान सड़ा क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ? फेरा न था !

मुसाफिर इस लिये प्यासा रहा कि उसके पास पानी पीनेको लोटा न था। गधा उदास इस लिये कि वह लोटा न था। लोटनेसे गधा प्रसन्न

होता है। जूतेके तला न हो तो पहना कैसे जाय? इसी प्रकार संबोसा जब तक कढ़ाईमें तला न जाय कैसे खाया जावे? पानको यदि फेरते न रहें तो सड़ जाता है। घोड़ा न फेरनेसे अड़ जाता है। इस ढङ्गमें खालिस हिन्दीके दो-सुखने नहीं, से-सुखने तक हैं। इनको भी एक प्रकारकी पहेली कहना चाहिये। पुरानी हिन्दीका एक से-सुखना है अथवा इसे मारवाड़ी भाषाका समझिये—

गाड़ी अटकी गोरवे काँटो लाग्यो पाय।

कामन रोवे महलमें कह चेला कहँ दाय?

गाड़ी गांवसे बाहर अटक गई, पांवमें काटा लगा, कामिनी महलमें रोती है क्यों चेले क्या कारण? चेलेने उत्तर दिया—गुरुजी जोड़ी नहीं। गाड़ीके पहियोंको जोड़ी कहते हैं पाँवके जूतेको जोड़ी कहते हैं। स्त्री-पुरुष मिल कर जोड़ी होते हैं। खुसरूके फारसी हिन्दीके मिले हुए दो-सुखने—

सौदागर रा चि मोबायद? बचेको क्या चाहिये?

दूकान।

शिकार व चि मोबायद कर्द? मगजकी कूवतको क्या चाहिये?

बादाम।

तिशना रा चि मीबायद? मिलापको क्या चाहिये? चाह। सौदागर क्या चाहता है? दूकान, और बूचा भी चाहता है दूकान। शिकार बादाम अर्थन जालसे होता है। मगजको बादामसे शक्ति मिलती है। प्यासेको चाह अर्थात् कूप दरकार है। मिलापके लिये भी चाह दरकार है।

आज कल इन सब बातोंकी चाहे कोई बहुत इज्जत न करे, पर उस समय यह विद्याके विनोदमें दाखिल थीं। इनसे फारसी हिन्दीका बड़ा भारी मेल हुआ इसमें कुछ संदेह नहीं, यहां तक कि बनते-बनते एक नई भाषा बनगई।

वीणासे सितार इसी सुयोग्य पुरुषने बनाया। राग-बहार और कितनीही चीजें बनाई। वसन्तका मेला चलाया। बड़ा रंगीला रसीला आदमी था। आनन्द जहाँसे मिलता था, वहींसे लेलेता था। मुहल्लेके सिरे पर एक बुढ़ियाकी दुकान थी, नाम था उसका चिम्मो। शहरके आवारा लोग वहाँ बैठकर भंग, चरस आदि पिया करते थे। जब खुसरू दरबारसे फिर कर उसकी दुकानके सामनेसे निकलता या और किसी कारण उधरसे आना होता तो चिम्मो भी उसे सलाम करती और कभी कभी हुक्का भर कर सामने ले खड़ी होती। खुसरू भी उसका मन रखनेको दो एक घूंट पीलेता था। एक दिन उसने कहा—बलालं, हजारों गजलं, गीत, राग-रागनी बनाते हो, किताबें लिखते हो, कोई चीज लौंडोंके नाम पर भी बनादो। खुसरूने कहा बी चिम्मो अच्छा। एक दिन उसने फिर कहा कि भटियारीके लड़केके लिये खालिकबारी लिखदी। जरा लौंडीके नाम पर भी कुछ लिखदोगे तो क्या होगा? आपके सदकेसे हमारा भी नाम रह जायगा। उसके बार बार कहनेसे एक दिन ध्यान आगया तो कहा कि लो, बीबी चिम्मो सुनो—

औरोंकी चौपहरी बाजे चिम्मोकी अठपहरी।
बाहरका कोई आवे नाहीं आवे सारे शहरी।
साफ सूफ कर आगे राखे जिसमें नाहीं तूसल।
औरोंके जहाँ सींक समावे चिम्मोके वहाँ मूसल।

उस जमानेमें बादशाहके चौपहरी नौबत बजा करती थी। खुसरू कहता है कि चिम्मोके अठपहरी बजती है अर्थात् यह बादशाहसे भी बड़ी है। इसकी दुकान आठों पहर चलती है, उसपर जंगली गँवार नहीं, सब शहरी आते हैं। भंगका प्याला साफ करके सामने रखती है, जिसमें कोई तिनका नहीं दिखाई देता। भंगड़ लोग गाढ़ी भाँगकी तारीफमें कहा करते हैं कि ऐसी जिसमें सींक खड़ी रहे। खुसरू अत्युक्ति करके

कहता है कि औरोंकीमें तो सींक ही खड़ी रहती है, चिम्मोकीमें मूसल खड़ा रहता है। इस प्रकार ख़ुसरूकी दिल्लगीसे बी चिम्मोका भी नाम चला आता है।

---

१५ वीं ईस्वी शताब्दिके अन्तमें सिकन्दर लोधीका राजत्व काल था। उस समय कायस्थ फारसी पढ़-पढ़कर बादशाही दफ्तरमें दाखिल हुए। इससे फारसी शब्दोंका हिन्दुओंके मुँहपर जारी होनेका अधिक अवसर मिला। हिन्दी फारसीमें ख़ूब मेल हो गया। अकबरके समयमें हिन्दू मुसलमानोंका और भी मेल बढ़ा। उस समय दरबारके अच्छे-अच्छे मुसलमान अपने ईरानी जुबेदस्तारके साथ डाढ़ियोंको बिदा करके जामे पहनने और खिड़कीदार पगड़ियाँ बाँधने लगे। उधर हिन्दू अमीर यहाँ तक कि राजा-रानी ईरानी लिबास पहनने लगे, फारसी बोलने और मुसलमानी उपाधियोंसे प्रसन्न होने लगे।

सिकन्दर लोधीके समयमें भक्तवर कबीरदासजी काशीमें हुए। आप अनपढ़ थे, पर एक महात्मा साधु थे। रामानन्दजीके चेले कहे जाते हैं। अबतक उनका पन्थ चलता है। यद्यपि अब उनके पन्थियोंका वैसा जोर नहीं है, तथापि एक समय ख़ूब जोर होचुका है। कबीरमें विवेचना और कविताशक्ति इतनी थी कि उनकी बनाई चीजें किसी पढ़े-लिखे कविकी बनाई चीजोंसे कम नहीं हैं। कई पोथी उनकी कविताकी छप चुकी हैं और अभी उनकी और भी कविता बाकी है। उनका प्रताप ऐसा था कि उनका शरीरान्त होनेके बाद भी सैकड़ों वर्ष लोग आप कविता बनाकर भी उसमें कबीरजीका नाम डालते रहे। इनकी भाषा कहीं-कहीं तो निरी गँवारी है और बेपढ़े आदमियोंके लेखमें जैसी भूलें होती हैं, वैसी भूलें भी हैं, पर कहीं-कहीं बहुत साफ है। जान पड़ता है कि अधिक गँवारी भाषा उनकी प्रारम्भमें थी और आयुके शेष दिनोंकी भाषा बहुत

सँवरी हुई थी। खैर, वह पढ़े-लिखे न थे, इससे उनकी भाषा किताबी नहीं है। सर्वसाधारणमें जो बोली उस समय बोली जाती थी, उसीमें कबीरजी कविता करके अपने हृदयके भाव प्रकाशित करते थे। उनकी रमैनीकी भाषा बहुत गंवारी है। उसका छन्द चौपाई है। शायद चौपाई छन्दका नाम उस समय रमैनी था। पदोंकी भाषा कहीं-कहीं तो बड़ी गंवारी और कहीं-कहीं बहुत साफ है। जहाँ साफ है, वहाँ फारसी शब्द बहुत मिले हुए हैं। सबसे साफ उनके दोहे हैं। उनमें खूब फारसी शब्द आये हैं। कहते हैं —

द्वार धनीके परि रहै, धका धनीके खाय।
कबहूं धनी 'निवाज' ही, जो दर छाड़ि न जाय।
'साहब' के 'दरबार' में, कमी काहुकी नाहिं।
'बन्दा' 'मौज' न पावहीं, चूक चाकरी माहिं।
मेरा मुजको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुजको सौंपते, क्या लागे है मोर।
जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।
तोको फूलका फूल है, ताको है तिरसूल।
दुरबलको न सताइये, जाकी मोटी हाय।
मुई खालके साँससों, सार भसम होइ जाय।
या 'दुनिया' में आइके, छाड़ि देइ तू एंठ।
लेना है सो लेइले, उठी जात है पैंठ।
सब आये इस एकमें, डार पात फल फूल।
कबीरा पीछे क्या रहा, गहि पकरा जिन मूल।
चाह घटी चिन्ता गई, मनवा 'बे-परवाह'।
जिनको कछू न चाहिये सो 'साहन' पति 'साह'
जहाँ दया तहाँ धर्म्म है, लोभ जहाँ है पाप।

जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ क्षमा तहाँ आप।
'साहब' सों सब होत है, 'बन्दे' सों कछु नाहिं।
राईसों परवत करे, परवत राई माहिं।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखे कोय।
जो 'दिल' खोजा आपना, तो मुझसे बुरा न कोय।
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पलमें परलै होयगी, बहुरि करोगे कब।
पाव पलकी सुधि नहीं, करे कालको 'साज'।
काल अचानक मारि है, ज्यों तीतरको बाज।
माली आवत देखिके, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुनि लिये, कालि हमारी बार।
काँची काया मन अथिर, थिर थिर काम करन्त।
ज्यों ज्यों नर निधरक फिरे, त्यों त्यों कालि हसंत।

बहुतसे भजन भी उनके नामके बहुत साफ मिलते हैं, पर वह उनके हैं कि नहीं इसमें सन्देह है। क्योंकि जो पुस्तकें उनके नामसे छपी हैं, उनमें वह नहीं आये हैं। इकतारे पर गानेवालों या संग्रहकी पोथियोंमें मिलते हैं। जो पद उनकी पोथियोंमें भी हैं, उनमें कोई कोई साफ हैं। कुछका नमूना देते हैं —

तन धर सुखिया कोई न देखा, सब जग दुखिया देखारे।
ऊपर चढ़ चढ़ देखा साधो, घर घर एकहि लेखारे।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तापसको दुख दूनारे।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, कोई महल नहीं सूनारे।

पंडित बाद बदै सो झूठा।
रामके कहे जगत गति पावे, खांड़ कहे मुख मीठा।

साधो पंडित निपुन कसाई।
बकरी मार भैंसको धावें दिलमें दरद न आई।

ना हम काहूके कोऊ न हमारा।
बालूकी भीत पवन असवारा। उड़ चला पंछी बोलन हारा।

गुरु नानक

पंजाबमें गुरु नानक बड़े प्रतापी हुए। कबीरको आप बहुत मानते थे। उनके वाक्योंको अपने वाक्योंके साथ बहुत लाते थे। सिखोंके दस गुरुओंमेंसे आदि गुरु थे। अभीतक उनके शिष्योंका पन्थ सजीव है। वह भी कबीरके ढङ्गके साधु थे, परिब्राजक थे। उनके बनाये छन्द पद, दोहे, स्तुतियाँ, बहुत मिलती हैं। गुरुमुखीमें तो उनका ग्रन्थही मौजूद है। देवनागरी अक्षरोंमें भी उनकी रचनाके कई अंश छप गये हैं। उनमें फारसी अरबीके शब्द बड़ी बहुतायतसे मिलते हैं। उनकी कवितासे चार सौ वर्षसे कुछ पहलेकी पंजाबी भाषाका खूब पता लगता है। अर्थात् उस समय वह हिन्दीसे बहुत मिलती जुलती थी। जपुजीमें कहते हैं—

'कुदरती' कवण कहा विचार। वारिया न जावा एक बार।
जो तुध भावें साई भलीकार। तू 'सदा सलामति' निरंकार।

एह तन माया पहिया प्यारे लीतड़ालवी रंगाय।
मेरे कन्त न भावे चोलड़ा प्यारे क्यों धनसेजै जाय।
हौ 'कुरबाने' जाओ 'मेहरबाना' हौ कुरबानै जाओ।
हौ कुरबाने जाओ तिनांके लैन जो तेरा नाउ।
लैन जो तेरा नाउ, तिनाके हौ 'सद कुरबाने' जाओ।

तू 'सुलतान' कहा हौ 'मीया' तेरी कवन बड़ाई।

जो तू देहिसो कहा स्वामी मैं मूरख कहण न जाई।
तेरे गुण गावा देहि बुझाई। जैसे मच महि रह्यो रजाई।
जो किछु होआ सभ किछु तुझते तेरी सम अशनाई।
तेरा अन्त न जाणा मेरे साहिब मैं अन्धुले क्या चतुराई।
क्या हौ कथी कथे कथ देखा मैं अकथ न कथना जाई।
जो तुध भावे सोई आखा तिल तेरी बड़ियाई।
एते कूकर हौ 'बेगाना' भौंका इस तन ताई।
भगति हीण नानक जो होयगा ता 'खसमैं' नाम न जाई।

पर आश्चर्य है कि बहुतसे पद गुरु नानकके नामके ऐसे हैं, जिनकी भाषा बहुत साफ हिन्दी है। या तो इन पदोंमेंसे कुछ पंजाबी शब्द निकल कर उनकी जगह हिन्दी मिल गये अथवा वह वैसेही साफ बने। एक लिख देते हैं—

काहेरे बन खोजन जाई ?
सर्ब निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकर माहिं ज्यों छाई।
तैसेही हरि बसैं निरंतर घटही खोजो भाई।
बाहर-भीतर एको जाने यह गुरु ज्ञान बताई।
जान नानक बिन आपा चीने मिटे न भ्रमकी काई।

इस पदकी भाषा साफ होनेपर भी जोड़-तोड़ और ढङ्ग पंजाबी है।

मलिक मुहम्मद जायसी

सोलहवीं ईस्वी सदीमें मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दीका एक बहुत योग्य कवि हुआ है। उसकी बनाई पदमावत उस समयकी हिन्दी-का अच्छा नमूना है। जायस अवध प्रान्तमें एक स्थान है। मलिक मुहम्मदकी हिन्दी भी उसी प्रान्तकी है। ब्रजमें या दिल्लीकी तरफ पदमावतकी भाषा नहीं समझी जा सकती। पर अवध और बैसवाड़े-

में कितनेही अच्छे हिन्दुओंके घरोंमें अभी वह बोली बोली जाती है।

उक्त कवि शेरशाह सूरीके समयमें था। जान पड़ता है कि हुमायूँ बादशाह उस समय भारतसे भागकर ईरान जा चुका था। क्योंकि मलिक मुहम्मद अपनी पोथीमें शेरशाहकाही डङ्का बजाता है। कहता है—

सेरसाह दिल्ली सुलतानू —चारों खण्ड तपो जस भानू।
ओही छाज छातिओ पाटा—सब राजै भुँइँधरा लिलाटा।
जात सूर औ खांडे सूरा—औ बुधवन्त सबै गुन पूरा।
तहँ लग राज खरग कर लीन्हा—सिकंदर 'जुलकर' नयन जो कीन्हा।
हाथ 'सुलैमां' केर अंगूठी—जग कहे दान दीन्ह भर मूठी।
औ अति गरू भूमि पत भारी—टेक भूमि सब सृष्टि सँभारी।

देहि असीस मुहम्मद, करहु जुगन जुगराज।
बादसाह तुम जगतके,जग तुम्हार 'मुहताज'।

शेरशाहके सैन्यबल, न्याय और प्रतापका वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

बरनउं सूर भूमि पत राजा—भूमि न भार सहै जो साजा।
हय मय सैन चले जगपूरी—परबत टूटि उडहिं होय धूरी।
परी रेनु होय रविही ग्रासा—मानुख पेख लेहि फिर बासा।
भुँइ उड़ अन्तरिच्छ मृत मण्डा—ऊपर होय छावा महि मण्डा।
डोलै गगन ईन्द्र डर कांपा - बासुकी जाय पतालहि चांपा!
मेरु धसमसैमुस सुखाई—बनखंड टूटि खेह मिल जाई।

जो गढ़ नये न काहु चलत होय सब चूर।
जो वह चढ़े भूमिपत शेरशाह जग सूर।

'अदल' कहों प्रथमैं दस होय—चांटा चलत न दुखवै कोय।
'नौसेरवां' जो 'आदिल' कहा—'साह' अदल सर सौंहि न रहा।

अदल जो कीन्ह 'उम'की नाईं —भई यहाँ सगरी दुनियाई।
गऊ सिंह रेंगहि एक बाटा — दोनों पानि पियें एक घाटा।
नीर-छीर छानै दरबारा —दूध पानि सब करै निरारा।
धर्म्म नियाव चलै सत भाखा— दूबर बरी एक सम राखा।
सबै पिरथवी असीसै जोरि जोरिकै हाथ।
गंगा जमन जौलहि जल तौलहि अम्मर नाथ।

मलिक मुहम्मदने पदमावत आरम्भ करनेका समय स्वयं लिखा है कि सन ९२७ हिजरीमें उसकी नीव पड़ी—

सन नवसै सत्ताइस अहै—कथा आरंभ बैन कवि कहै।
सिंहलदीप पदमिनी रानी —रतनसेन चितौर गढ़ आनी।
अलादीन दिल्ली सुलतानू—राघो चेतन कीन्ह बखानू।
सुना साह गढ़ छेंका आई —हिन्दू तुर्कहि भई लराई।
आदि अंतकी जस कथा अहै — लिखि भाषा चौपाई कहै।

मलिक मुहम्मदकी पदमावत पढ़नेसे कितनीही बातोंका पता लगता है। एक तो यह कि हिन्दुओंकी भाषामें जिस प्रकार मुसलमानी शब्द मिलने लगे थे, उसी प्रकार मुसलमानी भाषामें भी हिन्दीका खूब दखल होने लगा था। केवल इतनाही नहीं, वरञ्च मुसलमान लोग बहुत अच्छी हिन्दी बोलने लगे थे और उस भाषासे उनको प्रेम हो गया था। दूसरे हिन्दू कवियोंकी भाषामें जिस प्रकार मुसलमानी शब्द बेपरवाईसे मिलते जाते थे, मुसलमान कवि उसी प्रकार चेष्टा करते थे कि उनकी हिन्दीमें फारसी अरबीके शब्द कुछ न आवें। मलिक मुहम्मदकी पदमावत आरम्भसे अन्त तक पढ़ जाइये, कहीं अरबी फारसी शब्दोंका पता न मिलेगा। मुसलमान लोग पहले खुदाकी, पीछे मुहम्मदकी, और पीछे अपने पीर और समयके बादशाहकी तारीफ कर लेते हैं, तब पोथी आरंभ करते हैं। मलिक मुहम्मदने भी खुदाकी तारीफ की है।

पर उसमें उसे खुदा या अल्लाह नहीं कहा, करतारू कहा है। उसकी पोथीका आरम्भ यों है —

सुमिरउं आदि एक करतारू। जे जिव दीन्ह कीन्ह संसारू।

यह स्तुति दूर तक चली गई है, कहीं एक शब्द मुसलमानी नहीं है। मुहम्मदकी प्रशंसामें वह लाचार था, मुहम्मदका नाम लाना पड़ा। खुदा तो करतारू हो सकता है, मुहम्मदका तो कुछ अनुवाद हो नहीं सकता। इसीसे कहता है—

कीन्हेसि पुरुख एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनो करा॥

प्रथम ज्योति बिधि ताकी साजी। औ तेहि प्रीति सृष्टि उपराजी।

इसका अर्थ है कि करतारूने एक निर्मल पुरुष उत्पन्न किया, उसका नाम मुहम्मद है, वह पूर्णिमाका चन्द्र है। विधिने पहले उसकी ज्योति बनाई और उसीकी प्रीतिसे यह संसार उत्पन्न किया। मुसलमान लोग कहते हैं कि सृष्टिकी उत्पत्तिमें खुदाने एक नूर उत्पन्न किया। वह मुहम्मदका नूर था। उसीकी प्रीतिसे खुदाने दुनिया बनाई। यद्यपि मुहम्मद बहुत पीछे उत्पन्न हुए और मुसलमान उनको अन्तिम पैगम्बर या ईश्वरका दूत मानते हैं, तथापि यह भी मानते हैं कि मुहम्मदका नूर सबसे पहले उत्पन्न हुआ। उस नूर शब्दको भी मलिक मुहम्मदने ज्योति लिखा है, नूर नहीं। इसी प्रकार उसकी पूरी पोथी फारसी-अरबी शब्दों-से एकदम खाली है, सिवा मुहताज, आदिल, अदल, सुलतान और शाह आदि कई एक शब्दोंके जो शेरशाहकी तारीफमें उसे लाने पड़े हैं या सिदक, सदीक, दीन, आदि और कई एक शब्द जो मुहम्मदके चार यारों और ग्रन्थकारके पीरकी प्रशंसामें आये हैं।

तीसरे जिस प्रकार फारसी अरबी शब्द उक्त पोथीमें नहीं हैं, उसी प्रकार संस्कृत शब्द भी उसमें एकदम नहीं आये हैं। आये हैं केवल वही शब्द जो टूटफूटकर हिन्दीमें मिल चुके हैं। मलिक मुहम्मदकी पोथीको

खालिस पूर्वी हिन्दीकी पोथी कहना चाहिये। अवध प्रान्तके सर्वसाधारण लोगोंके घरोंमें जो भाषा प्रचलित थी, वही उक्त पोथीमें लिखी गई है। ऊपर जो चौपाइयाँ उद्धृतकी गई हैं, उनसे यह बात भलीभांति जानी जा सकती है। चौथी बात यह है कि अवध-प्रान्तके हिन्दुओंमें उस समय जो कुछ रीति-चाल थी और जिन शास्त्रों या पुराणोंकी चर्चा थी, उसे भी मलिक मुहम्मद जानता था। शायद दूसरे मुसलमान भी मलिक मुहम्मदकी भाँति इन सब बातोंको जानते थे। पर आज कलके मुसलमान हिन्दुओंकी रीति-भांतिको बहुत कम जानते हैं। पदमावत-में मलिक मुहम्मदने हिन्दुआना चाल ढाल और भावोंको बहुत उत्तम रीतिसे दिखाया है। नागमतीका बारहमासा उसने बड़ाही सुन्दर लिखा है, उसके कई एक स्थान ध्यानसे पढ़नेके योग्य हैं। वह विवाह होते समयकी चीजोंका वर्णन करता है।

माड़ो सोन कि गगन संवारा। बन्दनवार लाग सब बारा।
सजा पाट छत्तरके छाहाँ। रतन चौक पूरे तेहि माहाँ।
कंचन कलस नीर भरि धरा। इन्द्र पास आनी अच्छरा।
गाँठ दुलह-दुलहनिकी जोरी। दुहूं जगत जो जाय न छोरी।
वेद पढ़ें पंडित तेही ठाऊं। कन्या तुला रासलें नाऊं।

एक जगह षट ऋतुका वर्णन किया है। उसमें वर्षाका वर्णन करता है—

रुत पावस बरसै पिव पावा। सावन-भादों अधिक सुहावा।
पदमावत चाहत रुत पाई। गगन सुहावन भूमि सुहाई।
कोकिल बैन पाँत बग छूटी। धन निसरी जनु वीर बहूटी।
चमक बीज बरसै जल सोना। दादुर मोर शब्द सुठलोना।
रंग राति पिय संग नित जागी। गरजे गगन चौंक कंठ लागी।
सीतल बूंद ऊंच चौबारा। हरियर सब दीखै संसारा।

मलय समीर बास सुख बासी। बेल फूल सेजरि सुख दासी।
हरियर भूमि कसूँभी चोला। औ धन पिय संग रचो हिंडोला।

नागमतीके बारहमासेमें आषाढ़का वर्णन सुनिये, गजब किया है—

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुन्द दल बाजा।
धूम स्याम धौरी धन धाये। स्वेत ध्वजा बक पांति देखाये।
खडग बीज चमकै चहुं ओरा। बूँद बान बरसहिं घन घोरा।
उनई घटा आये चहुं फेरी। कंत उबार मदनहौं घेरी॥
दादर मोर कोकिला पीऊ। गिरहिं बीज घट रहहि न जीऊ।
पुक्ख नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिन नाह मंदिरको छावा।
आद्रा लाग बीज भुंइ लेई। मो पिय बिन को आदर देई।
जे घर कंता ते सुखी तेहि गारू तेहि गर्ब
कंत पियारे बाहरे हम सुख भूला सर्ब।

आषाढ़की शोभाके सिवा हिन्दू स्त्रियोंके मनके भावोंकी इसमें कैसी सुन्दर झलक है। साथ-साथ सामयिक ज्योतिष भी बताता जाता है कि आर्द्रा नक्षत्र आरम्भ हो गया। बिजली भूमिसे लग-लग जाती है इत्यादि। इसी बारहमासेके श्रावणका वर्णन और भी सुन्दर है—

सावन बरस मेह अत बानी। मरन परीहौं बिरह झुरानी।
लाग पुनरबसु पी उन देखा। भइ बावर कँह कंत सरेखा।
रकतकी आंसु परहि भूंइ टूटी। रंग चलैं जनु बीर बहूटी।

इनमेंसे अन्तिम दो पंक्तियोंमें कविने कविताका शेष कर दिया है। सावनमें बीरबहूटी उत्पन्न होती है। वह ठीक लहूकी बूंद सदृश होती है। नागमती अपने पति राजाके वियोगमें है। वह रक्तके आंसुओंसे रोती है। वही आंसू बीर बहूटीकी भांति रंगके चलते हैं। बीरबहूटीयाँ सावनकी शोभा हैं। पर नागमती वियोगमें रोती है। इससे यहाँ उसके रक्तमय आँसूही बीरबहूटी हैं। इसी प्रकार जहाँ क्षत्रियोंकी वीरता

और सेनाओंकी सजावटका वर्णन है, उससे भी ग्रन्थकर्त्ताकी योग्यता प्रगट होती है। सतियोंके सती होनेका वर्णन और भी सुन्दर है। सारांश यह कि मुहम्मद कवि और उसकी पोथी दोनोही अपने-अपने ढङ्गमें बेजोड़ हैं।

हिन्दी-भाषामें फारसी शब्दोंके मिलते जानेके विषयमें मौलवी मुहम्मद हुसैन साहब आजादने अपनी किताब "आबेहयात"में एक कहानी लिखी है।

हुमायूं बादशाहने गुजरात पर चढ़ाई की तो उस समय सुलतान बहादुर वहांका बादशाह था। वह जांपानेरके किलेमें रहता था। जब किला घेरा गया तो सुलतान बहादुरका बहुत विश्वासी मुसाहिब रूमीखां मीर आतश हुमायूंसे मिल गया। इससे किला, सारे खजाने और उत्तम चीजों सहित हुमायूंके हाथ आगया। सुलतान बहादुरका एक प्यारा और खूब बोलनेवाला तोता भी जो सदा सोनेके पिंजरेमें रखा जाता था लूटमें हुमायूंके हाथ लगा। जब वह तोता दरबारमें लाया गया तो उसने सामने रूमीखांको देखा। पहचानतेही तोता बोला—"फिट पापी रूमीखां नमकहराम" सबको सुनकर आश्चर्य हुआ। हुमायूंने फारसीमें कहा —"रूमीखां, क्या करूं? यह जानवर है, नहीं तो इसकी जिह्वा निकलवा लेता।" रूमीखांने लजाकर सिर नीचा कर लिया। इस नकलसे यह स्पष्ट होता है कि फारसी शब्द हिन्दीमें इतने मिलते जाते थे कि जानवर भी उनको सीख लेते थे। तोतेके मुंहसे नमकहराम शब्द निकलनेसे स्पष्ट है कि उस समय वह हिन्दीमें मिल गया था।*

* हिन्दी भाषा-विषयक अपने प्रस्ताविन उपादेय ग्रन्थका इतना ही अंश गुप्तजी लिख सके। अपने विचारानुसार उसके विशद विवेचनात्मक अवतरणिका-भागको भी पूर्ण करनेका अवसर उन्हें नहीं मिला। देहावसानके एक वर्ष बाद सन् १९०८ ई० में उनकी पहली वार्षिक स्मृति-सभा कलकत्ता हाईकोर्टके माननीय जष्टिस सारदाचरण मित्र महोदयकी अध्यक्षतामें हुई थी। उस अवसरपर इस अंशको

हिन्दी-भाषा

"हिन्दी-भाषा" नामसे पुस्तकाकार प० अमृतलालजी चक्रवर्तीकी भूमिकाके साथ स्थानीय हिन्दी साहित्य परिषद्ने वितरणार्थ छपवाया था। तदनंतर हिन्दी प्रेमियोंकी मांगपर भारतमित्र-कार्यालय द्वारा इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए। अपनी इस पुस्तकको गुप्तजी कैसी—क्या बनाना चाहते थे,—यह उर्दू-मासिक पत्र 'जमाना' के सम्पादक मुन्शी दयानारायण 'निगम' साहबके नाम भेजे हुए उनके १-१-१९०५ ई० के पत्रसे प्रकट है। इस पत्रमें गुप्तजीने लिखा था :—"मेरी किताबमें वेदके जमाने-से लेकर मुसलमान जमाने तक हिन्दुस्थानकी जबानकी हालत और उसका इनकलाब दिखाकर ब्रजभाषा, उर्दू और हिन्दीकी पनेवर हिस्टरी होगी। वक्तन फवक्तन जो तगीर तवद्दुल हुई हैं, सब दिखाई जावेंगी। उर्दूकी बाबत मुख्तसिर कही जावेगी; क्योंकि 'आजाद' लिख चुके हैं, संस्कृत, हिन्दी और मौजूदा हिन्दीकी ज्यादातर।"

—सम्पादक।

ब्रज भाषा और उर्दू

जिस समय ब्रजभाषासे उर्दू बन रही थी, उस समय भी कई एक नमूनोंकी हिन्दी जारी थी। यहाँ तक कि स्वयं उर्दूको स्वच्छ करके ढालनेवाले मुसलमान कवि भी उन सब नमूनों पर कविता लिखते थे। यदि मुसलमान लोग अरबी फारसीको अपनी कवितामें अधिक न घुसेड़ते और वह अपनी हिन्दी या उर्दूको फारसी अक्षरोंमें न लिखते, तो आज हिन्दी-उर्दूमें जो भेद है, वह कुछ न रहता। दूसरे शाह आलमके समयमें उर्दूकी अधिक उन्नति होनी आरम्भ हुई। उस समयके प्रसिद्ध सौदाकी कवितासे हम कुछ नमूने दिखाते हैं। यह सौदा कवि अन्तमें लखनऊ पहुंचा था। वहाँ इसकी और इसके सहयोगियोंकी सहायतासे उर्दूकी चर्चा फैली। फारसी और अरबी शब्दोंसे मिली हुई उर्दूका नमूना—

बनेगी जीनते दुनिया से नहस शक्ल तेरी।
लिबासे जरको पहनकर न हो तू बूमेतिला॥
कलामे शीरीं पै मत जा तू अहले दुनियाके।
बनाम जहरे हिलाहिल भी होवे है मीठा॥
देवे न तेरे नामसे गुलशन में गर बहार।
फूलोंको आबोरंगका लेना हो नागवार॥
मौजे गौहर सिपहरसे उधर करे गुजार।
गर अपने अब्रे फैजसे इतना कहे बिचार॥

क्रियाओंके सिवा सब शब्द और उनके जोड़ तोड़ एक दम फारसी हैं। विचार भी फारसी हैं। होवे, देवे, करे, कहे यह सब क्रियाओंका ढङ्ग पुराना है। दिल्ली आगरेके हिन्दुओंके घरोंमें यह शब्द बोले जाते

हैं। पर मुसलमान कम बोलते हैं और लिखनेमें अब गँवारी समझे जाते हैं। अब होता है, देता है, कहता है इत्यादि बोलते हैं। पण्डित श्रीधर पाठकजीने 'एकान्तवासी योगी' में इन क्रियाओंका प्रयोग किया है। जैसे:—

"करके कृपा बतादे मुझको कहाँ जले है वह आगी।"

किन्तु अब प्रचलित उर्दू तो क्या प्रचलित हिन्दीमें भी ऐसा नहीं बोलते। अब जले है की जगह जलती है, लिखना पड़ता है। और भी कई शब्द पहले उर्दू में लिखे जाते थे, पर अब छोड़ दिये गये हैं:—

घोड़ा ले अगर नौकरी करते हैं किसूकी,
तनखाहका फिर आलमेवाला पै निशाँ है।
आगेसे तोबड़ा उसे दिखलाये था सईस।
पीछे नकीब हांके था लाठी से मार मार॥
पहिये लगाओ इसके कि ता होवे यह खाँ!
या बादबान बाँध पवनके दो इखतियार॥

'किसू' की जगह अब 'किसी' बोला जाता है। 'पवनके दो इखतियार'की जगह 'हवाके इखतियारमें दो' कहा जाता है। इसके सिवा इस नमूनेसे यह भी देखना चाहिये कि उर्दूवालोंके हाथमें पड़कर हिन्दीने क्या-क्या शकलें बदलीं! कहीं-कहीं सौदाकी कविता साफ हिन्दी भी हो जाती थी—

ठग न तनहा चढे हैं उसकी आन। मिल रही है उचक्कोंसे भी साज॥
सिर पे यह देखें जिसके अच्छी शाल। गोया वह उसके बापका है माल॥
गश्त जब उसका फिरता आता है। यही नरसिंगया बजाता है॥
किसूका गठकटी बतरी है। कोई भड़वा उठाई गीरा है॥
हैंगे अज बस यह हाथके चालाक। डाले हैं उसकी आँखोंमें भी खाक॥
दस रुपये वह मुझे दिलाते हैं। कहिये अब आपका क्या लगाते हैं॥

इन पंक्तियोंमें एक आध शब्दके सिवा सब ठेठ हिन्दी हैं। यहाँ तक कि गश्त आदि जो फारसी शब्द इसमें आये हैं, वह भी हिन्दीमें मिल चुके हैं।

सौदाके समयमें 'तूने'की जगह 'तैं'से काम निकल जाता था और 'तेरे मुँह'की जगह 'तुझ मुख' कहते थे। जैसे—

मुल्के आईन जबसे तैं लूटा। तुझ मुख पे ता निसार करें मिहरो माहको।

जब सौदा अरबी-फारसीको छोड़कर मामूली बोलचालकी तरफ झुकते थे तो उनकी भाषा इतनी सरल हो जाती थी—

अजब तरहकी है वह नार। उसका क्या मैं करूं विचार ॥
दिन वह डोले पीके सङ्ग। लाग रहे निस वाके अंग ॥
दिया बरे तो वह शरमाय। ढकसे सरक दूर हो जाय ॥
एक नार भौंरा सी काली। कान नहीं वह पहने बाली ॥
नाक नहीं वह सूंघे फूल। जितना अरज उतना ही तूल ॥
नर बत्तीस एक है नारी। जगमें देखो सबकी प्यारी ॥
करलो मनमें सोच विचार। पुरुष मरे पर जीवे नार ॥

इसी प्रकार सौदाकी पहेलियों और दूसरी हँसी-दिल्लगीकी चीजोंमें फारसी अरबी शब्द कम हैं। पहले उर्दूमें बहुत हिन्दी शब्द थे, पर पीछे निकाले गये। सौदा तनिक, टुक आदि शब्द बोलता था—

घोड़को देन दो लगाम, मुंहको तनिक लगाम दो ॥

उर्दूका प्रथम कवि वली दक्षिणी था। इसीसे उसकी कवितामें हमन, कीता, आदि शब्द होते थे। सौदाने भी दक्षिणी ढङ्गकी हिन्दीमें कविता की हैं,—

जालिमाँ ढादिये तुमनाने इमामतके सुतून ॥
घर पयम्बरका किया तुमने हदम क्या कीता ॥

जालिमोंकी जगह 'जालिमाँ' कहकर सम्बोधन करना, तुमनेकी जगह

'तुमनाने' इत्यादि शब्द इसमें आये हैं। दक्षिणी उर्दूमें ऐसे शब्द अब भी हैं। किन्तु बोलनेमें अधिक हैं, लिखनेमें कम।

एक मरसियेमें सौदाने उर्दूमें दोहे लिखे—

कैसा हो मखलूकको, बड़ा बनावे रब्ब।
जो कर्म्मोंमें है लिखा, सो मिटता है कब्ब॥
तन घायल हो तेगसे, सीस उतारा जाय।
पूत ऐसेका होय कर, प्यासा मारा जाय॥
मझधारमें आनकर, ऐ हकके महबूब।
किश्ती तेरी यक बयक, गई लहूमें डूब॥

पण्डित श्रीधर पाठकके "एकान्तवासी योगी" में दो दो चरण लावनी छन्द और दो दो दूसरे ढङ्गके हैं। सौदाने एक मरसियेमें लावनी छन्दको यों बरता है—

ऐसी नींद कहाँसे आई दूधभी माँग न रोये तुम।
कन्धेसे लग बापके अपने सोये सो बस सोये तुम॥

सीधी हिन्दीका एक और नमूना—

करती थी मैं तुझको प्यार। होती थी यह जान निसार।
तू मेरा था गलेका हार। किनने डाला तुझको मार॥

उर्दू भाषा, रोला और दोहा छन्दमें सौदाने मरसिया लिखा है। खड़ी बोलीमें जो लोग ब्रजभाषाके बरते हुए छन्दोंको बरतना चाहते हैं, उनके लिये यह कोई सवा सौ साल पहलेका नमूना है:—

सुनो मुहिब्बो बात कहूँ मैं तुमसे रोओ।
गम है शहका आज खुशीको दिलसे धोओ॥
जिसको जगमें लोग कहे थे दीनका सुलताँ।
सीस कटा अब उसका तन है खूनमें गलताँ॥
कहता हूँ मैं अब तुम्हें मुखपर खाक लगाय।

दीन दुनीके ताजका सिर नेजे पर जाय ॥

किन्तु खड़ी बोलीवाले देखें कि यह उर्दूके कवि भी ब्रजभाषामें कविता करते थे। सौदाने एक मरसिया ऊपर कहे छन्दमें कहा है। उसकी ब्रजभाषा है :—

कासन कहियेबात कौन अब मनकीबूझै। रोवतहैं दिनरात हुसैना रनमें जूझै॥
नैनन बरसत रक्तधार उमगत है छाती। प्यासे माते हाय नबीके ऐसे नाती॥
गेरूसे कपड़े रँगे मुखपर मले भभूत। पूछैं बीबी फातमा कित गयो मेरो पूत॥

एक मरसिया सौदाने ऐसा लिखा है जिसमें चौपाई छन्द उर्दू भाषामें और दोहे ब्रजभाषामें हैं—

आबिद कहते हैं यह सबसे। रोता हूँ मैं जगमें तबसे॥
जबसे आया छोड़ मदीना। फेरन चाहा अपना जीना॥
मैं दुखियारा हो अब रोया। बाप चचा करबलामें सोया॥
अकबर और असगरसा भाई। तिनकी टुकभी खबर न पाई॥
कैसा साथ हमारा छूटा। बैरीने घर तिसपर लूटा॥
लिखी हतीजोकर्म्ममें मेटेमिटेनमूल। होनी थी सो होचुकी कासों कहों रसूल॥

इन दस पांच नमूनोंसे हिन्दी अनुरागी लोग ब्रजभाषासे उर्दू बनानेके समयकी उलट फेरका अनुमान करें।

खुसरूकी 'जेहाले मिसकीं मकुन तगाफुल' 'गजलमें ब्रजभाषा कुछ उर्दूकी तरफ ढुलक रही थी। इसमें कैसे देखूं और काटूँ शब्द नई तराशके हैं। इससे भी कुछ आगे बढ़नेका नमूना पहेलियोंमें मिलता है। अमीर खुसरूके हाथसे उर्दूकी नींव पड़ी, तथापि उर्दूके कवियोंमें उसकी गिनती नहीं हुई। उर्दूके प्रथम कविका नाम 'वली गुजराती' था। उसकी कविताका कुछ नमूना देखिये—

जिसे इश्कका तीर कारी लगे।

उसे जिन्दगी जगमें भारी लगे ॥
हमन है इश्कके माते हमनको
दौलतां क्या करे ॥
हमनको खुशक रोटी बस, कमरको
एक लँगोटी बस।
सिरपर एक टोपी बस, हमनको
इज्जतां क्या करे ॥
कवा शाला वजीरोंको, जरी रजवफ्त
अमीरोंको,
हमन जैसे फकीरोंको, जगतकी
नेमतां क्या करे ॥
बे वफाई न कर खुदासों डर।
कज अदाई न कर खुदासों डर ॥

इन सबमें कुछ-कुछ क्रियाओंकी नई तराश-खराशके साथ कितने ही हिन्दी शब्द ऐसे हैं, जिनको अब उर्दूवालोंने छोड़ दिया है। 'हमन'की जगह 'हम' रह गया है। नेमतां, इज्जतां आदि शब्द अब नहीं बोले जाते। मुसलमानोंकी भाषाके संसर्गसे उस समय हिन्दीका यही ढंग था। इस प्रकारकी भाषामें केवल कविताही होती थी, गद्यका नाम-निशान तक न था।

दूसरे शाहआलमके समयमें उर्दूकी कुछ अधिक उन्नति हो गई थी। बहुतसे उर्दूके अच्छे-अच्छे कवि उस समय मौजूद थे। इस समय ब्रज-भाषाकी क्रियाओंसे उर्दूको क्रियाओंका ढंग तो अलग होही गया था, साथही हिन्दी-संस्कृतके शब्द घटाकर मुसलमान लोग उसमें अरबी-फारसी बहुत भरने लगे थे। इसकी जरूरत इसलिये पड़ी कि मुसलमान इस नई भाषाको अपनी फारसीके ढंगपर घसीट ले गये। फारसी-

अक्षरोंही में उसे लिखने लगे और फारसी छन्दोंहीमें कविता करने लगे। यदि हिन्दू लोग इस भाषाको देवनागरी अक्षरोंमें लिखते और अपने दोहा-चौपाई-सवैया आदि छन्दोमें कविता रचते, तो इस समय नई हिन्दीकी कविता भी बहुत मिलती। पर हिन्दीके कवि अपनी ब्रजभाषाही में कविता करते रहे। और क्यों न करते, ब्रजभाषाही तो उस समय भारतवर्षकी भाषा थी। यहाँ तक कि बङ्गदेशके प्राचीन कवियोंकी कविता भी ब्रजभाषाहीमें है। अब थोड़े दिनसे आधुनिक बङ्गभाषामें कविता होने लगी है।

मुसलमानोंमेंसे भी कुछका ध्यान ऊपर लिखी बातोंकी ओर गया है। उन्होंने कठिन उर्दूहीमें नहीं, सरलमें भी कविताकी है, तथा ब्रजभाषामें भी की है। साथ ही यह भी किया है कि हिन्दीके दोहा-चौपाई आदि छन्द रखकर सरल-सरल उर्दूकी कविताको सजाया है।

—भारतमित्र १९०१ ई०

हिन्दीमें 'बिन्दी'

काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दीमें 'बिन्दी' चलाना चाहती है। यह 'बिन्दी' अक्षरके ऊपर नहीं, नीचे हुआ करेगी। ऐसी 'बिन्दी' लगानेका मतलब यह है कि उससे उर्दू शब्द हिन्दीमें शुद्ध लिखे पढ़े जायँ। हिन्दीमें खाली 'ज' होता है और उर्दूमें 'जीम,' 'जाल', 'जे' और बड़ी 'जे', 'ज्वाद' और 'जोय'। 'जीम' के सिवा इन सब उर्दू अक्षरोंका उच्चारण 'जे' के उच्चारणके तुल्य होता है। 'जे' का उच्चारण जिह्वाके ऊपरके दाँतोंके साथ मिलनेसे होता है। नागरी-प्रचारिणीवाले चाहते हैं कि हिन्दीके 'ज' के नीचे एक बिन्दी लगाकर उर्दूकी 'जे' का उच्चारण करें। हिन्दीमें ऐसा उच्चारण नहीं है, क्योंकि वास्तवमें 'जे'-'जीम' ही का विकार है। वह फारसीवालोंके कण्ठकी खराबीके सिवा और कुछ नहीं है। उस खराबीको नागरी-प्रचारिणी हिन्दीमें भी धँसाना चाहती है। परन्तु इस धँसानेसे क्या लाभ है, इसका पता ठीक नहीं लगता।

'जे'-'जाल' की खराबी उर्दूमें यहाँ तक है कि बहुत लोग वर्षों शिक्षा पाने तथा लुगातोंको कीड़ोंकी तरह चाट जाने पर भी 'जे'-'जाल' का भेद ठीक-ठीक नहीं जान सकते। कितनीही बार वह इस झगड़ेमें पड़ते हैं, कि अमुक शब्द 'जाल' से है या 'जे' से। जब स्वयं उर्दू जानने-वालोंकी यह खराबी है, तो नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दीको पराये काँटोंमें क्यों घसीटना चाहती है? लज्जत, 'जाल' से होती है, लाजिम 'जे' से और जरूर 'ज्वाद' से और जाहिर 'जोय' से। नागरी-प्रचारिणी सभाके रूलसे एक बिन्दी लगानेसे सबका उच्चारण शुद्ध होगया! परन्तु इसमें 'जाल', 'ज्वाद' और 'जोय' की क्या पहचान रही? यदि 'जाल'

'ज्वाद' 'जोय'का फर्क रखना मंजूर नहीं है, तो बिन्दी लगानेकी जरूरत नहीं और यदि उन सबमें भेद समझा जाता है, तो फिर 'जाल' 'ज्वाद' 'जोय' की कुछ पहचान रहनी चाहिये। नागरी-प्रचारिणी सभावालोंसे हमारा यह प्रश्न है कि इस बिन्दीसे उर्दू न जाननेवालोंका क्या उपकार होता है ? वह कैसे जानेंगे कि किस शब्दके नीचे बिन्दी लगाना चाहिये ? क्या आप लोग बिन्दी लगा लगाकर उर्दू शब्दोंका उनके लिये कोष तैयार कर देंगे ? और हिन्दी पढ़े हुए उसे मियाँ मिट्ठूकी तरह दिन-भर रटा करेंगे ? यदि ऐसा होगा तब तो आप लोगोंकी हिन्दी खुदाके फजलसे उर्दूसे भी सरल हो जायगी और तीन महीनेकी जगह तीन-तीये नौ वर्षमें सीखी जायगी और यदि उर्दू न जाननेवालोंको 'बिन्दी' न आवेगी तो आप लोगोंकी हिन्दीमें लबड़-धौंधौं मच जायगी। कोई 'बिन्दी' लगावेगा, कोई नहीं लगावेगा।

बिन्दीकी बीमारी नागरीप्रचारिणी-सभाके जन्मके पहले भी लोगोंमें हो चुकी है। बृन्दावन-निवासी पण्डित राधाचरणजी गोस्वामीने नागरीदासजी-कृत 'इश्क चमन' छापा था। उसमें उन्होंने उर्दू शब्दोंमें खूब बिन्दीकी भरमार की थी, यहाँ तक कि जिन शब्दोंके नीचे बिन्दी नहीं लगानी चाहिये, उनके नीचे भी उन्होंने 'बिन्दी' लगादी थी। स्वर्गवासी पण्डित प्रतापनारायण मिश्र उसे पढ़ते पढ़ते लोट-पोट हो गये थे और कहा था कि 'यह 'बिन्दी' की बीमारी हिन्दीवालोंको अच्छी लगी ! यह उनको दूर तक खराब करेगी।' नागरी प्रचारिणी सभाहीके मेम्बरोंमें एक बहुत बड़े आदमी हैं, जो अंग्रेजी-हिन्दीके बड़े पण्डित हैं। वह वकील शब्दमें 'बड़ा काफ' बोलते थे। वह यह समझते थे कि 'बड़ा काफ' बोलनेहीसे उर्दू हो जाती है। हमने उनको समझाया कि साहब ! वकील 'छोटे काफ' सेही है, बड़ेसे नहीं। इसी तरह बिन्दीकी बीमारीमें पड़कर उर्दू न जाननेवालोंको बड़ी ठोंकरें खानी पड़ती हैं।

हिन्दीमें बिन्दी

'सरस्वतो' पत्रिकाके देखनेहीसे हमें नागरी प्रचारिणीवालोंकी 'बिन्दी' का खयाल आया है। उक्त पत्रिकामें लेखकोंके लिये जो नियम लिखे गये हैं, उनके पाँचवें नियममें लिखा है—"लेख लिखनेमें उन्हीं नियमोंका पालन हो, जो काशी नागरीप्रचारिणी सभाने सर्व-सम्मतिसे निश्चय किया है।" इसमें ऊपर 'नियमों' है और नीचे 'किया है' है।

यदि इसी नियमपर हिन्दीवाले चल पड़ें, तो बीचहीमें बेड़ा पार हो जावेगा। इसीसे हमें सावधान करना पड़ा है कि लेखक लोग आँख खोलकर चलें, नागरी-प्रचारिणीकी लकड़ी पकड़करही न चलें। सरस्वती' पत्रिकामें "मोगल" शब्द लिखकर 'ग' के नीचे बिन्दी लगाई गई है। बिन्दीका तो खयाल किया है, परन्तु शब्दके ठीक उच्चारणका कुछ भी विचार नहीं किया कि शब्द "मुगल" है—"मोगल" नहीं है। गीतका बहुवचन 'गीतें' करके उसे स्त्रीलिङ्ग लिखा है। नागरी प्रचारिणीके नियमपर चलनेसे पुलिङ्ग गीतको स्त्रीलिङ्ग लिखना पड़ेगा। 'बाजार' शब्दका उच्चारण नागरी-प्रचारिणीवाले जानते थे, इससे उसके नीचे बिन्दी लगा दी है। परन्तु 'तहकीकात' शब्द 'सरस्वती' के पाँचवें पृष्ठपर दो जगह आया है, वह दोनों जगह बिन्दी-शून्य है। यह चार बिन्दियाँ हमारी नागरी-प्रचारिणी सभाके माथे हुईं।

'सरस्वती' में एक जगह शेख सादीका नाम आया है। शेखमें जो 'ख' है, उसके नीचे बिन्दी है ; परन्तु शादीके बीचमें जो 'ऐन' है, उसका लेखकने 'गैन' कर दिया है। उधर शेख शब्द भी 'शेख' नहीं है, वह अरबी भाषाका शब्द है —वह होता है 'शैख'। जब शुद्ध उच्चारण करना था, तो इन शेखजी बिचारे की मिट्टी खराब क्यों की ? उर्दूमें 'ते' होती है, 'तोय' होती है। दोनोंके उच्चारणमें नागरी-प्रचारिणी सभाने क्या भेद रखा है, सो हमें मालूम नहीं। 'से', 'सीन', और 'स्वाद',—इन तीन अक्षरोंका उच्चारण एकही-सा होता है। इसमें आपलोग क्या भेद

रखना चाहते हैं ? 'अलिफ' और 'ऐन' का भी कुछ भेद नहीं मालूम पड़ा। 'सरस्वती' पत्रिकामें एक जगह 'अरक' लिखा है। इसी प्रकारकी घसीटनमें हिन्दीको क्यों फँसाया जाता है, इस बातका उत्तर नागरी-प्रचारिणीवालोंको देना चाहिये। तब वह दूसरोंके लिये अपने चलाये रूलपर चलनेका डंका बजा सकते हैं !

—भारतमित्र १९-२-१९०० ई०

हिन्दीकी उन्नति

हिन्दीभाषाके सम्बन्धमें शुभ केवल इतनाही देखनेमें आता है कि कुछ लोगोंको इसे उन्नत देखनेकी इच्छा हुई है। किन्तु केवल इच्छा करनेसे कार्य्य सिद्ध नहीं होता है। यदि इच्छा करनेहीसे कार्य्य पूरा होता हो तो शायद पृथ्वी—लखपति, करोड़पति, जमींदार, राजा-महाराजा-ओंसे भर जाती। क्योंकि अपरमित धनकी इच्छा न रखनेवाला संसारमें कोई भी मनुष्य नहीं है।

इच्छा होनेसे उसको पूरा करने के लिये इच्छाके साथ-साथ और भी एक वस्तु जरूरी है। उसका नाम है चेष्टा। किन्तु हिन्दीकी उन्नति-की इच्छा रखनेवालोंमेंसे आज तक कितने आदमियोंने कितनी चेष्टा की है ? हम उन्नति-उन्नति चिल्लानेवालोंसे विनयपूर्वक पूछते हैं,—भाइयो, छातीपर हाथ रखकर कहिये तो सही, आपने मातृभाषाकी उन्नतिके लिये कितनी चेष्टा की है ?

आप कहेंगे, यह देखो, हमने अखबार जारी किया है। आप कहेंगे यह देखो, हमने सरकारी अदालतोंमें नागरी अक्षर जारी कराये हैं। आप कहेंगे कि हमने बड़ी-बड़ी चेष्टासे बङ्गदेशकी यूनिवर्सिटीकी एल०

ए० परीक्षामें हिन्दीके लिये भी कुछ जगह देनेके लिये शिक्षाधिकारियों-को लाचार किया है। किन्तु क्या यही सब हिन्दीकी उन्नतिके लक्षण हैं?

इस लेखके लेखकने मिडल क्लासके अतिरिक्त हिन्दी नहीं पढ़ी थी, किन्तु आज वह हिन्दी-साहित्यके लेख लिखनेका दावा रखता है, बड़े बड़े लोगोंको हिन्दीके सम्बन्धमें दो बात कह कर लज्जित नहीं होता है। इसके क्या माने हैं? क्या इस लेखककी प्रकृतिका दोष है, अथवा मिडल क्लास तक पढ़नाही हिन्दी-विद्या पूर्ण रूपसे प्राप्त करनेके लिये यथेष्ट है? मालूम होता है कि यह पिछली बात सही है। किसी लाइ-ब्रेरी में जाइये, देखेंगे कि अलमारीकी अलमारी अंग्रेजी किताबोंसे भरी हुई हैं। काव्य, अलङ्कार, न्याय, दर्शन, विज्ञान प्रभृतिमेंसे चाहे जिस विषयकी पुस्तकोंकी आलोचना करनेमें जीवन गवाँ डालिये, किन्तु किताबोंका शेष नहीं होगा। और संस्कृत विद्या? संस्कृत विद्या-के हर एक विभागमें केश पकाये हुए कितने सुविज्ञ लोग आज तक काशीकी विद्यापुरीमें विद्यमान हैं, अब तक विद्याही सीख रहे हैं, विद्याका पार नहीं देख सकते। किन्तु हमारी हिन्दी-विद्या मिडल क्लास तक पढ़नेमें प्रायः पूरी हो जाती है। आगे और किताब नहीं कि पढ़कर विद्या बढ़ावें।

पूर्वज कवियोंके हिन्दी काव्य-साहित्यकी बात नहीं कहेंगे, प्रचलित गद्य पुस्तकेंही भाषाकी उन्नति विचारनेका निदान गिनी जाती हैं। वह किताबें हिन्दीमें कितनी हैं? यदि स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्रकी अमृतमयी लेखनी कुछ भिन्न भाषाकी पुस्तकोंके अनुवाद प्रभृति न रचती तो आज तक शायद हिन्दी-गद्य साहित्यका नाम तक सुननेमें नहीं आता। वही आदि वही अन्त। बाबू हरिश्चन्द्रके पीछे और किसने हिन्दीकी उन्नतिके लिये उनका जैसा उत्साह दिखाया है? सिर्फ यही नहीं, उनकी किताबें हीं कितनी बिकी हैं? जो लोग आज

हिन्दीकी उन्नति-उन्नति पुकार रहे हैं क्या उनमेंसे हर-एकको हरिश्चन्द्र-ग्रन्थावलीकी एक-एक प्रति अपने घरमें देखनेका सौभाग्य प्राप्त है ?

केवल गाल बजानेसे भाषाकी उन्नति नहीं होती है। भाषाकी उन्नतिके लिये लेखक चाहिये। लेखक बनानेके लिये पाठक चाहिये और पाठक होनेके लिये मातृ-भाषा पर अनन्त अनुराग, अनन्त प्रेम, अनन्त भक्ति चाहिये। जबतक इन वस्तुओंका अभाव रहेगा तबतक मातृ-भाषाकी उन्नति-उन्नति चिल्लाना केवल गाल बजाकर भूख बढ़ाना है।

यदि सचमुच हिन्दीकी उन्नतिकी कामना आपके हृदयमें चुभ गई है, तो कमर कसकर खड़े हो जाइये। आपही आप प्रतिज्ञा कीजिये—'यत्नं साधयं वा शरीरं पातयं वा।' वह देखिये प्रति वर्ष कितनेही युवक अंग्रेजी विद्याकी बी० ए०,-एम० ए० परीक्षा पास कर रहे हैं। उनके हृदयमें हिन्दीका रस प्रवेश कराइये। अब वह न हिन्दी पढ़ते हैं, न हिन्दी लिखते हैं। देशमें जो थोड़ेसे लोग हिन्दी लिखते हैं, उनमेंसे बहुतही थोड़े लोग लिखनेकी योग्यता रखते हैं। जितने लोग हिन्दी पढ़ते हैं, उनमेंसे बहुतही थोड़े लोग पढ़ी हुई बातको समझनेकी शक्ति रखते हैं। यदि सचमुचही आप हिन्दीकी उन्नति चाहते हैं तो यह दोष दूर करनेकी चेष्टा कीजिये। दोष दूर करनेका उपाय केवल पढ़े हुए लोगोंसे लिखानेके साथ उनकी लिखी हुई चीजें बिकवानेकी चेष्टा करना है। वह चेष्टा धनके बिना नहीं हो सकती। यदि हिन्दीपर सचमुच अनुराग हुआ हो तो हिन्दीकी उन्नतिके लिये धन संग्रह कीजिये, सुयोग्य सुपण्डितोंसे हिन्दीकी प्रयोजनीय पुस्तकें लिखाकर संगृहीत धनसे खरीद लीजिये। वह पुस्तकें देशमें बांटकर देशवासियोंमें हिन्दी पढ़नेका शौक फैलाइये। तभी मातृभाषाकी उन्नति होगी, तभी हिन्दी अपने उचित स्थानको प्राप्त कर देशवासियोंको अपने फल-फूल-पत्र-पल्लवोंसे सुशोभित होकर बहार दिखा सकेगी।

—भारतमित्र ६-४-१९०१ ई०

भारतकी भाषा

"प्रवासी" बङ्ग-भाषाका मासिक-पत्र है। प्रयागसे निकलता है। एक बार उसकी बात हम कह चुके हैं। बड़े आनन्दका विषय है कि वह हिन्दी भाषाकी कुछ-कुछ चर्चा करने लगा है। गत अग्रहायण मासकी संख्यामें उसने "हिन्दी सामयिक साहित्य" के शीर्षकसे कुछ हिन्दी-समाचार-पत्रों और हिन्दी-भाषाकी आलोचना की है, उसमें दो एक बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

बङ्गभाषाके समाचारपत्रोंमें हिन्दीकी चर्चा कभी नहीं होती, यह बात हम कई बार कह चुके हैं। इसका कारण यही है कि बङ्गाली हिन्दी-भाषाकी कुछ कदर नहीं करते। न वह इसे सीखनेके योग्य समझते हैं, न सीखते हैं और न इसके विषयमें विशेष कुछ जानते हैं। इसपर प्रवासी कहता है—"देश व्यापक भाषाके सम्बन्धमें बङ्गदेशसे बाहर कहाँ क्या होता है, यह न जाननेके कारण शायद बङ्गला कागजोंमें इस विषयमें कुछ नहीं लिखा जाता है। पर अब उनको अपना-अपना मत प्रकाश करना चाहिये।" आशा है कि जब एक अच्छे हाथोंसे निकला हुआ बङ्गला कागज ऐसा कहता है तो अन्यान्य बङ्गला कागज भी इस ओर ध्यान देंगे।

प्रवासीने बम्बईके "भारतधर्म" मासिक-पत्रकी बात कही है। उक्त पत्र हिन्दी, मराठी और गुजराती तीन भाषाओंमें निकलता है। हिन्दी और मराठी दोनों भाषाएं नागरीमें लिखी जाती हैं। गुजराती अक्षर कुछ भिन्न होते हैं, पर बहुत भिन्न नहीं। इसपर प्रवासीको एक युक्ति सूझी है। वह कहता है—"एकदम एक व्यापक भाषा होना कठिन जान पड़ता है। ऊपर जैसे एक त्रैभाषिक पत्रकी बात कही गई है,

वैसे ही बङ्गला, हिन्दी, मराठी और गुजराती—चार भाषाओंमें यदि एक पत्र निकले तो कैसा हो ? चारों भाषाएं अलग-अलग रहें, अक्षर केवल देवनागरी हों। चारों भाषाओंके सम्पादक चाहे अलग-अलग रहें अथवा संभव हो तो एक ही सम्पादक चारोंका सम्पादन करे। गुजराती, मराठी और हिन्दीके अक्षर नागरी या देवनागरी हैं। बखेड़ा है केवल हमारे बङ्गाली अक्षरोंके लिये। पर यदि इस पत्रमें बङ्गला अक्षरोंकी जगह देवनागरी अक्षर रहें तो क्या कुछ विशेष हानि है ? शिक्षित बंगाली मात्र प्रायः देवनागरी अक्षर पढ़ सकते हैं। स्कूल-कालिजोंमें प्रचलित संस्कृत पुस्तकें देवनागरी अक्षरोंही में छपती हैं। जान पड़ता है कि यह चार भाषाओंका एक पत्र भारतीय साहित्य-जगत्में एक नई वस्तु होगा और उत्तर भारतकी प्रधान भाषाओंको एक करनेमें बड़ी सहायता पहुंचावेगा।"

विचार उत्तम है। हम इसका अनुमोदन करते हैं। निश्चय चार भाषाएं जब एक ही अक्षरोंमें एक पत्रमें छपेंगी तो धीरे-धीरे वह बहुत मिल-जुल जायंगी। उक्त पत्रके पाठक भी चारों भाषाओंके जानने सीखनेकी चेष्टा करेंगे। देवनागरी अक्षरोंका जितना अधिक प्रचार होगा, उतना ही भारतव्यापी होनेके योग्य भाषा हिन्दीका अधिक प्रचार होगा। हिन्दी अब भी भारतव्यापी है। हिन्दुस्थानके किसी विभाग-में चले जाइये, वहां गांववालोंकी भाषा समझना कठिन होगा। पर बड़े बड़े नगरोंमें रहनेवालोंसे बातें करनेमें विशेष कठिनाई न होगी। कलकत्तेमें जहां खड़े होकर हिन्दीसे काम निकालना चाहो निकल जायगा। चीनियोंसे हिन्दीमें बात की जा सकती है, अरबों और यहूदियोंसे बात की जा सकती है। यहां तक कि जब एक अरबका एक चीनीसे काम पड़ता है तो वह हिन्दीमें बातें करते हैं। चीनी अपने लहजेसे गुनगुनाता हुआ और अरब अपने ढंगसे हलक फाड़ता हुआ

हिन्दी बोलनेकी चेष्टा करता है। इससे उनका मतलब भी निकल जाता है। उस तरह न चीनी अरबी बोल सकता है, न अरब चीनी।

जब उदयपुरमें रेल न थी तो हमको एकबार नाथद्वारे जाना पड़ा था। भीलवाड़ेसे तीन दिन तक बैलगाड़ियोंमें जाना पड़ा। मार्गमें जिन गाँवोंमें हम ठहरते थे, उनकी भाषा कुछ न समझते थे। पर नाथद्वारेमें कुछ दिक्कत न थी। वहाँ खूब हिन्दी बोली जाती है और वहाँ जो मेवाड़ी है वह भी सरल है। वहाँके गीत तक समझमें आते थे। यही दशा पंजाबमें हुई। लाहोर, अमृतसर, लुधियाना, जालन्धर आदि शहरोंकी भाषा सब समझमें आती थी। देहातवालोंकी बात समझनेमें मगज चकरा जाता था। अधिक क्या मन्द्राज जैसे विकट देशके नगरोंमें भी हिन्दी समझी जाती है और हिन्दीसे काम निकाला जाता है।

बङ्गालियोंको या दूसरे प्रान्तवालोंको हम क्या कह सकते हैं, जब स्वयं हिन्दीवालेही देवनागरीसे कोसों दूर भागते हैं। जितने लोग भारतवर्षमें हिन्दी बोलते हैं, यदि उनमेंसे चौथाई भी नागरी लिख पढ़ सकते तो हिन्दी भाषा सबसे आगे दिखाई देती। पंजाबी लोग देवनागरीको हव्वा समझते हैं। लाहोरके पोस्ट आफिसोंमें कोई नागरी अक्षर जाननेवाला नहीं। हिन्दुस्थानी और खत्री मुड़िया अक्षर लिखते हैं। मारवाड़ियोंके अक्षर भी मुड़ियाके भाई बन्धु होते हैं। सारांश यह कि हिन्दी बोलने वालोंमें अधिक लोग नागरीसे अनभिज्ञ हैं, फिर क्योंकर हिन्दी फैले ?

उर्दूवालोंको देखिये कि उनकी भाषा हिन्दी ही है, उर्दू-हिन्दीमें कुछ भेद नहीं है, इतना होनेपर भी देवनागरी अक्षर न जाननेके कारण हिन्दीसे वह उतनेही दूर हैं, जितने बंगाली और मन्द्राजी। खाली मुसलमानही नहीं, उर्दू जाननेवाले हिन्दू भी बहुधा हिन्दीसे कोरे हैं।

यहाँ तक कि लाहोरके अखबारे-आमके सिवा एक भी उर्दू अखबार ऐसा नहीं, जिसमें कभी कोई हिन्दीका लेख उद्धृत हुआ हो अथवा उसका सम्पादक हिन्दी अखबारवालोंकी बातें ठीक-ठीक समझता हो। यदि उर्दू, देवनागरी अक्षरोंमें लिखी जाती तो आज उसमें और हिन्दीमें कुछ भेद न होता। अब भी यदि उर्दू जाननेवाले देवनागरी अक्षर जानने-की चेष्टा करें तो उन्हें एक नई दुनियाँका पता लगे, जिससे वह आजतक बेखबर हैं।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे हम 'प्रवासी'के खयालको और भी पसन्द करते हैं। बेशक चार भाषाओंका पत्र देवनागरी अक्षरोंमें निकलनेसे बहुत-कुछ उपकार हो सकता है। यह आनन्दकी बात है कि प्रवासी-सम्पादकका एक जरूरी बातकी ओर इतना ध्यान हुआ है। सचमुच भारतवर्षके लिये एक देश-व्यापी भाषाकी बहुत भारी जरूरत है। भारतवासियोंके पास इस समय ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें भारतके सब प्रान्तोंके लोग बातें कर सकें। इसीसे इन्डियन नेशनल कांग्रेसमें अंग्रेजीसे काम लिया जाता है। एक प्रवीण युरोपियनने खूब कहा था कि यदि कांग्रेसवालोंसे अंग्रेजी भाषा छीन ली जाय तो कांग्रेस एक दिनमें बंद हो जाय। क्योंकि मन्द्राजियोंको पंजाबियोंसे और पंजाबियोंको बंगालियोंसे और इसी प्रकार एक दूसरे प्रान्तवालोंको भिन्न प्रान्तवालोंसे आपसमें बातें करनेके लिये कोई भाषा नहीं है।

बङ्किम बाबूके समयके बङ्गदर्शनने, भारते एकता' नामके लेखमें हिन्दीको ही सारे भारतवर्षकी भाषा होनेके योग्य माना था। प्रवासीको वह नम्बर नहीं मिला, इससे हम उसका पता देते हैं। वह नम्बर बङ्ग-दर्शनके पाँचवें खण्ड १२८४ सालका था। ४६ वें पृष्ठसे लेकर बारह पेज-में वह लेख समाप्त हुआ है। लेखके उपसंहारमें लिखा है :—

"उपसंहार काले सुशिक्षित बङ्गवासिगणके एकटी कथा बलिते इच्छा

करि। भारतवर्षेर मध्ये तांहाराई पाश्चात्य ज्ञानोपार्जने सर्वापेक्षा अधिक कृतकार्य्य हइयाछेन।.........

इंराजी भाषा द्वारा याहा हउक, किन्तु हिन्दि शिक्षा न करिले कोन क्रमेई चलिबेना। हिन्दि भाषाय पुस्तक ओ वक्तृता द्वारा भारतेर अधिकांश स्थानेर मंगल साधन करिबेन, केवल बांगला ओ इंराजी चर्चाय हइबेना। भारतेर अधिवासीर संख्यार सहित तुलना करिले बांगला ओ इंराजी कयजन लोक बलिते व बुझिते पारेन? बांगलार न्याय ये हिन्दीर उन्नति हइतेछेना इहा देशेर दुर्भाग्येर विषय। हिन्दी भाषार साहाय्ये भारतवर्षेर विभिन्न प्रदेशेर मध्ये यांहारा ऐक्यबंधन संस्थापन करिते पारिबेन तांहाराई-प्रकृत भारतबन्धु नामे अभिहित हइबार योग्य। सकले चेष्टा करुन, यत्न करुन, यत दिन परेई हउक मनोरथ पूर्ण हइबे।"

१२८४ सालका बङ्गदर्शन जिसमें यह लेख लिखा गया है, हमारे पड़ोसमें चोरबगानकी यूनियन लाइब्रेरीमें मौजूद है। प्रवासी उस नम्बरको देखकर अपनी तसल्ली करले।

अंग्रेज इस समय अंग्रेजीको संसार-व्यापी भाषा बना रहे हैं और सचमुच वह सारी पृथिवीको भाषा बनती जाती है। वह बने, उसकी बराबरी करनेका हमारा मकदूर नहीं है, पर तो भी यदि हिन्दीको भारतवासी सारे भारतको भाषा बना सकें तो अंग्रेजीके बाद दूसरा दर्जा पृथिवी पर इसी भाषाका होगा।

—भारतमित्र सन् १९०४ ई०

एक लिपिकी जरूरत

भारतमित्रकी गत दो संख्याओंमें हम माननीय जष्टिस सारदाचरण-मित्र महोदयके उस लेखका पूरा अनुवाद छाप चुके हैं, जो आपने हालमें कलकत्ता यूनिवर्सिटी इन्सटिट्यूटमें सुनाया था। हम आशा करते हैं कि हमारे विचारशील पाठकोंने उसे ध्यानसे पढ़ा होगा। जिन सज्जनोंने उसे न पढ़ा हो उनसे हमारा अनुरोध है कि वह उसे एकबार खूब ध्यानसे पढ़ें। लेखक महोदयने बड़ी सुन्दर युक्तियों और अपने दीर्घ-कालके अनुभवसे भलि-भाँति स्पष्ट कर दिया है कि अब भारतवर्ष भरमें एक लिपिके जारी होनेका समय आगया और वह लिपि देवनागरी ही है, जो सारे भारतवर्षमें जारी हो सकती है। केवल हिन्दुस्थानहीमें नहीं, लेखक महोदय नागरी लिपिका प्रचार—ब्रह्मा, चीन, जापान और लङ्का आदिमें भी चाहते हैं।

अक्षरोंके विषयमें बहुतसे पण्डितोंका मतभेद है। बहुत लोग देव-नागरी अक्षरोंको बहुत पुराने नहीं समझते हैं। वह बताते हैं कि, इससे पहले और औरप्रकारकी लिपियाँ जारीं थीं। बहुतसे बङ्गालियोंको इस बातका हठ है कि उनके बङ्गाक्षर देवनागरी अक्षरोंसे पुराने हैं। जष्टिस सारदाचरण मित्रने इन सब बातोंकी बहस छोड़ दी है और यह दिखाने-की चेष्टा की है कि हिन्दुस्थानमें इस समय जितनी लिपियाँ जारी हैं, उन सबमें नागरी सबसे सुगम, सुन्दर और अधिक फैली हुई है और वही अधिक फैल सकती है। अपनी इस चेष्टामें वह सफल मनोरथ हुए हैं। उन्होंने केवल यही नहीं स्पष्ट कर दिया कि नागरी हिन्दुस्थान भरकी लिपियोंमें सर्वश्रेष्ठ है, वरञ्च यह भी दिखा दिया कि पृथ्वी भरमें देव-नागरीके समान शुद्धलिपि और कोई नहीं है।

लेखकने दिखाया है कि भारतवर्षमें छापेकी कल जारी होतेही बम्बई, काशी और कलकत्ते आदिमें संस्कृतके अच्छे-अच्छे ग्रन्थ देवनागरी अक्षरोंमेंही छपे। इससे स्पष्ट है कि भारतवर्ष भरमें यही अक्षर सबसे अच्छे समझे गये हैं। फिर क्यों नहीं, इनका अधिक प्रचार किया जाय तथा छपने-लिखने दोनोंमें यही अक्षर चलें? यदि विद्वान् लोग अपने प्रान्तीय अक्षरोंका पक्षपात कुछ देरके लिये छोड़कर देवनागरी अक्षरोंका विचार करें तो उनको आपसे आप मान लेना पड़ेगा कि अपने प्रान्तीय अक्षरोंका प्रचार घटाकर इन अक्षरोंका प्रचार बढ़ाना चाहिये। कई प्रान्तोंमें नागरी अक्षरोंहीकी प्रधानता है। युक्तप्रदेशमें नागरी अक्षर चालूही हैं और युक्त-प्रान्तमें संस्कृत और हिन्दीकी पोथियाँ इसी लिपिमें छपती हैं। पंजाबमें सिखोंके समयसे गुरुमुखी अक्षर जारी हो गये हैं, पर उनमें केवल सिख धर्मकी पुस्तकें ही छपती हैं। संस्कृत पुस्तकें वहाँ भी देवनागरी अक्षरोंहीमें छपती हैं और इन्हीं अक्षरोंकी वहाँ प्रधानता है। काश्मीरमें सैकड़ों वर्षसे देवनागरी लिपि चली आती है। पञ्जाबमें भी गुरुमुखी अक्षर बहुत थोड़े लोग लिखते हैं। वह अक्षर नागरी अक्षरोंहीसे बने हैं और मिलते जुलते हैं। लिखनेमें वह देवनागरीसे सुगम भी नहीं है। साथ ही यह हर्षका विषय है कि सिख-धर्मके ग्रन्थ भी लाहोर आदिमें नागरीहीमें छपने लगे हैं।

महाराष्ट्र देशमें लिखनेके अक्षर अवश्यही मुड़िया हैं, पर पुस्तकोंके अक्षर वहाँ संस्कृत और मराठी दोनों भाषाओंमें देवनागरीही हो गये हैं। गुजरातियोंने अपने गुजराती अक्षर रखे हैं। उन्हींमें गुजराती भाषाकी पोथी छापते हैं, पर संस्कृत पुस्तकें वहाँ भी,देवनागरीहीमें छपती हैं और गुजराती अक्षरोंकी पोथियोंमें भी जब बीच-बीचमें संस्कृत श्लोक या संस्कृत नाम आते हैं तो वहाँ देवनागरी अक्षरही दिये जाते हैं। गुजरातियोंको देवनागरी अक्षरोंके पढ़नेका वैसा ही अभ्यास है, जैसा गुज-

राती अक्षरोंके पढ़नेका। गुजराती अक्षर भी संस्कृतसे खूब मिलते-जुलते हैं। इससे गुजराती लोग बहुत आसानीके साथ संस्कृत अक्षरोंको ग्रहण कर सकते हैं, उसमें उन्हें कुछ भी कठिनाई नहीं हो सकती। संस्कृत अंशमें तो वह देवनागरी अक्षरोंको ग्रहण कर ही चुके हैं, अपनी देश-भाषाके लिये भी नागरी लिपि करलें तो झगड़ा चुकता है। एक दो गुज-राती पत्र नागरीमें निकले भी थे। ठीक यही दशा बिहारके कैथी अक्षरों-की है। बिहारी सब देवनागरी अक्षर जानते हैं, पर लिखनेमें कैथी अक्षर अधिक लिखते हैं, इसीसे पोथियोंके लिये भी उनके यहाँ अन्तमें कैथी टाइप ढल गये। कुछ हो, उनको अपने अक्षर छोड़ते और नागरी अक्षर ग्रहण करते कुछ भी देर नहीं लग सकती।

अब यदि झंझट होगा तो बङ्गाक्षरको लेकर। बङ्गालियोंको अपने बङ्गाली अक्षरोंके लिये कुछ हठ है। बङ्गाक्षर देवनागरी अक्षरोंहीके एक रूप हैं, उनमें मात्रा आदि प्रायः सब उसी प्रकार है। देवनागरी अक्षर और बङ्गाक्षरके टाइप भी ठीक एकही संस्कृत नियमसे बने हैं। जब यह बात है तो देशके हितके लिये बङ्गालियोंको अपने अक्षर देवनागरी अक्षरोंसे बदल डालना कुछ कठिन नहीं है। पर जल्द इतनी उदारता वह कर नहीं सकते। क्योंकि बङ्गभाषाकी पुस्तकोंके अतिरिक्त संस्कृतकी पुस्तकें भी वह बङ्ग-लिपिमें छापने लगे हैं। पर अब भी संस्कृतके सब ग्रन्थ उनकी लिपिमें नहीं छप गये हैं। वेदादि ग्रंथ अभी देवनागरी-लिपिमें हैं। स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महोदयने अपनी व्याकरणकौमुदी चार भागमें तैयार की है, पहले तीन भाग बङ्गाक्षरमें छपवाये हैं, पर चौथे भागके सूत्र देवनागरीमें छपवाये हैं और उनकी व्याख्या बङ्गा-क्षरमें। राजा सर राधाकान्तदेवका सुप्रसिद्ध कोष 'शब्द-कल्पद्रुम' देवनागरी अक्षरोंहीमें छपा है। पण्डित जीवानन्द विद्यासागरने कल-कत्तेमें बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ देवनागरी अक्षरोंमें छापे हैं। इन सब बातोंसे

बङ्गदेशमें भी देवनागरी अक्षरोंकी आवश्यकता स्पष्ट होती है और माननीय जष्टिस मित्रका आगे बढ़कर यह कहना कि सारे भारतवर्षमें देवनागरी लिपि होनी चाहिये, इस बातका और स्पष्ट प्रमाण है कि बङ्गाली सज्जन भी देवनागरी अक्षरोंको सबसे आवश्यक समझते हैं।

कुछ दिनकी बात है "प्रवासी" पत्रके सम्पादक बाबू श्रीरामानन्द चट्टोपाध्याय एम० ए० ने 'चतुर्भाषी' नामका एक पत्र निकालनेका उद्योग किया था, जिसमें हिन्दी, बङ्गला, मराठी और गुजराती चार भाषाओंके लेख होते और सब लेख देवनागरी लिपिमें छपते। दुःखकी बात है कि पीछे वह उद्योग कई कारणोंसे शिथिल होगया। हम आशा करते हैं कि उक्त महोदय फिर एकबार अपने उस मनोरथके सफल करनेकी चेष्टा करेंगे। यहां हमको केवल यही दिखाना था कि बङ्गाली विद्वानोंकी न केवल देवनागरी अक्षरोंसे सहानुभूतिही है, वरञ्च वही देवनागरी अक्षरोंके प्रचारके अगुआ कहे जा सकते हैं। क्योंकि सबसे पहले उन्होंनेही इस बातका प्रस्ताव किया है कि देवनागरी सारे भारतवर्षके अक्षर बनें।

—भारतमित्र सन् १९०५ ई०

देवनागरी अक्षर

युरोपमें १६ देश हैं। सबकी भाषा प्रायः अलग अलग है, पर अक्षर एक हैं। जिनअक्षरोंमें अंग्रेजी लिखी जाती है, उन्हींमें फरान्सीसी और जर्म्मन आदि भाषाएं भी लिखी जाती हैं। रूसी, डच और इटलीकी भाषाएं भी उन्ही अक्षरोंमें लिखी जाती हैं। सारांश यह कि एक रूसी भाषाको छोड़कर सारे युरोपकी भाषाएं एकही प्रकारके अक्षरोंमें लिखी जाती हैं और युरोपको छोड़कर युरोपवाले जहां जहां जाकर बसते हैं, वहीं उनके यह अक्षर पहुंच जाते हैं।

पर भारतवर्षके अक्षरोंकी विचित्र गति है। यहां भाषा एक होने पर भी अक्षरोंकी गत्ति निरालीही रहती है। देवनागरी अक्षर भारत-

वर्षमें सबसे उत्तम अक्षर हैं। भारतकी प्राचीन भाषा संस्कृत इन्हीं अक्षरोंमें लिखी जाती है। सीखनेमें भी यही सबसे जल्द आते हैं। तिसपर भी लोगोंका इनपर वैसा प्रेम नहीं, जैसा होना चाहिये। पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध खास हिन्दुस्थान है। हिन्दी वहाँकी भाषा है। पर देवनागरी अक्षरोंका जो खास हिन्दी अक्षर हैं, वहाँ बहुत प्रचार नहीं। अपनी हिन्दीको लोग नाहक फारसी अक्षरोंमें लिखते हैं, देवनागरी अक्षर एक महीनेमें आजाते हैं, पर उन्हें नहीं सीखते। फारसी अक्षर तीन चार सालमें भी शुद्ध लिखने नहीं आते, उन्हें सीखते हैं।

बिहारवाले हिन्दी बोलते हैं। उनकी अदालती भाषा भी सौभाग्यवश हिन्दी है। पर वह लोग देवनागरी अक्षरोंको छोड़कर अपने टेढ़े-मेढ़े कैथी अक्षरोंसे प्रसन्न हैं। यदि वह लोग देवनागरी अक्षर लिखें तो उनका बहुत लाभ है। 'किस' की जगह-'कीश' और 'उस' की जगह 'उश' न लिखें। पर ऐसा करना उन्हें बहुत भारी जान पड़ता है।

पञ्जाबमें सदासे देवनागरीका प्रचार है। पर अब सिख लोग गुरमुखी अक्षरोंके तरफदार हैं। गुरमुखी अक्षरोंको वह जातीय अक्षर बनाकर नागरीको दूर करना चाहते हैं। गुरमुखी अक्षर नागरीहीका एक भद्दा स्वरूप है। उन्हें सिख पसन्द करते हैं और सुन्दर नागरीसे भागते हैं। यदि सिख लोग गुरमुखी छोड़कर नागरीमें ग्रन्थ साहब छपवाते और नागरीसे प्रेम रखते तो उनके ग्रन्थी लोग एक एक अक्षर टटोल टटोलकर न पढ़ते और विद्या-शून्य नहीं हो जाते।

गुजराती अक्षर नागरीही का एक रूप है। आधी मात्रा होनेसे उससे नागरीका काम ठीक नहीं निकल सकता, तथापि गुजराती उन्हें छोड़कर नागरीको पसन्द नहीं करते। हां, महाराष्ट्र लोगोंने अपनी भाषामें देवनागरी अक्षरकोही पसन्द किया है। यद्यपि लिखनेमें मराठीवाले भी विलक्षणही हैं। पर उनकी पुस्तकें देवनागरीमें हैं। यदि

इसी प्रकार गुरमुखी, गुजराती और कैथी अक्षरोंके स्थानमें नागरीका प्रचार हो जावे तो अक्षरोंके सिवा भाषाओंका भी बहुत कुछ मेल-मिलाप हो सकता है। एक दूसरेकी भाषाको लोग जल्द सीख सकते हैं।

सबसे गजब बङ्गाली लोग करते हैं। उनके अक्षर और मात्राएँ ठीक देवनागरीके बराबर हैं। तिसपर भी वह देवनागरीको छोड़कर उसीके विकृत स्वरूप बङ्गाक्षरको पसन्द करते हैं। अपने उन बक्राकार अक्षरोंको बड़ी फुर्तीसे लिखते हैं, पर नागरीमें अपना नाम भी लिखना उन्हें पहाड़ हो जाता है। संस्कृत पुस्तकोंको भी टेढे उल्टे बङ्गाक्षरोंमें छपवाते हैं। बङ्गेश्वर छोटे लाट उडबर्नने बङ्गालियोंकी एक साहित्य-सभामें कहा था कि आप लोगोंको बङ्गाली हरफ छोड़कर देवनागरी अक्षरोंसे काम लेना चाहिये। इससे संस्कृतकी बड़ी उन्नति होगी। पर वह लोग भी इस ओर ध्यान नहीं देते। यदि देते तो उन्हें ह्रस्व दीर्घका बोध हो जाता और उनकी जबानका मोच निकलकर उन्हें दन्त्य और तालव्यका बोध हो जाता।

उड़िया भाषाके अक्षर खूबही मेंड़कोंकी शकलके हैं। हरफ क्या हैं मानो मेंड़क बैठे हैं। हरफका असली आकार जरासा नीचे छिपा हुआ रहता है। ऊपरसे गोलाकार लकीर इस प्रकार घेरा लगाती है मानों हनुमानजी पूंछका हलका लगाये बैठे हैं। अपने ऐसे विचित्र हरफोंके सामने उन्हें देवनागरीकी तरफ ध्यान तक नहीं होता। वह संस्कृत भी उन्हीं अपने मेंड़कनुमा अक्षरोंमें लिखते हैं।

सबके गुरु हैं, मारवाड़ी और मुड़िया हरफवाले। इनके हरफोंका कुछ ठिकानाही नहीं। एकही कोठीमें दस गुमाश्ते दस प्रकारके हरफ लिखते हैं। एकके हरफ दूसरा सहसा नहीं समझ सकता। अपने इन हरफोंके पीछे वह लोग विद्याही खो बैठे। यदि यह सब अक्षर एक होकर देवनागरी बनजावें तो कितना अच्छा हो? —भारतमित्र १९०२ ई०

हिन्दुस्तानमें एक रस्मुलखत

कई सालसे हिन्दुस्तानके आला दरजेके तालीम-याफ्ता[1] लोगोंका इस बातकी तरफ़ ख़याल हुआ है कि हिन्दुस्तानभरमें एकही रस्मुलखत[2] जारी हो। सर गुरुदास बनर्जी साबिक़[3] जज हाईकोर्ट कलकत्ताने अंग्रेजीमें इस बारेमें एक छोटा-सा रिसाला[4] लिखा था, जो-जो रस्मुलख़त हिन्दुस्तानमें जारी हैं, सबका ज़िक्र करके और सबका तौर-तर्ज़[5] बख़ूबी समझाके उन्होंने फैसला किया कि सिर्फ़ देवनागरी हरुफ़ ही ऐसे मुकम्मिल[6] और मौजू[7] हैं जो आसानीसे हिन्दके हर हिस्सेमें फैल सकते हैं। इससे कुल हिन्दमें रस्मुलखत होनेका हक़ इन्हीं हरुफ़को हासिल है। इस रिसालेको शाया[8] हुए कई साल हो गये। इसका ज़िक्र मौकेसे फिर किया जायगा।

दो साल हुए जस्टिस सारदाचरन मित्रने जो इस वक्त कलकत्ता हाईकोर्टके एक नामवर जज हैं और कलकत्ता यूनीवर्सिटीके एम० ए० बी० एल० हैं, यूनीवर्सिटी-मज़कूरके मेम्बरोंके रुबरू एक मज़मून पढ़ा था, जिसमें बहुत उम्दगीसे यह दिखाया था, कि देवनागरी हरुफ़ ही सबसे आला हैं, और यही कुल हिन्दमें बतौर एक रस्मुलख़तके जारी होने चाहिये। उस मीटिंगमें सर गुरुदास भी थे। इसकी उस मुहतरिम[9] बुजुर्गने ताईद की। यह मज़मून पीछे इलाहाबादके मशहूर अंग्रेजी रिसाला 'हिन्दुस्तान रिव्यू'में छपा था और इसका मुकम्मिल तर्जुमा 'भारत-मित्र' कलकत्तामें शाया हुआ था। अलावाअजीं[10] ख़ास बंगालियोंके समझानेके लिये जस्टिस साहबने बंगलामें यह मज़मून लिखा और एक नामवर बंगला अख़बारमें छपवाया। फिर एक मज़मून आपने ख़ास 'भारतमित्र' के लिये लिखा, जिसका एक बड़ा

१—शिक्षित। २—लिपि, अक्षर। ३—भूतपूर्व। ४—पुस्तिका। ५—रंग-ढंग। ६—पूर्ण। ७—उपयुक्त। ८—प्रकाशित। ९—अवसरप्राप्त। १०—इसके सिवा।

हिस्सा छप चुका है। यह मज़मून बंगाली ज़बानमें था और छपा नागरी हरुफ़में। इस मज़मूनका तर्जुमा या मतलब कभी "ज़माना" के नाज़रीनके लिये लिखा जायगा।

जस्टिस साहबका यह मज़मून शाया होनेके बाद कलकत्तामें एक अंजुमन[११] काइम हुई। जिसका नाम "एक लिपि विस्तारपरिषद्" हुआ। कलकत्ता बड़ाबाज़ारके श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती-विद्यालयके साबिक प्रिंसिपल पाण्डेय उमापतिदत्त शर्मा बी० ए० इसके सेक्रेटरी और महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए० असिस्टेन्ट सेक्रेटरी हुए। इस अंजुमनसे "देवनागर" नामका एक माहवार रिसाला निकलना शुरू हो गया है। जिसमें हिन्दी, बंगाली, मरहठी. गुजराती, उर्दू, उड़िया, तामिल, वगैरह कितनी ही ज़ुबानोंके मज़ामीन होते हैं। मगर हरुफ़ देवनागरी ही होते हैं। इस रिसालेका पहिला नम्बर निकल गया। इसमें ग्यारह हिन्दुस्तानी ज़ुबानोंके मज़ामीन हैं। इससे ज़ाहिर हो जायगा, किस तरह देवनागरी-हरुफ़ हर मुल्क और हर सूबेकी बोलीको अदाकर देनेकी क़ुदरत रखते हैं।

बहुत अर्सा हुआ मरहठोंने अपनी ज़ुबानके लिये देवनागरी हरुफ़ क़बूलकर लिये। अब मरहठी ज़ुबानके कुल अख़बार, रसायल और कुतब देवनागरी हरुफ़में शाया होते हैं। हिन्दी और मरहठी दो ज़ुबानें नागरी हरुफ़में लिखी जाती हैं। गुजरातियोंके ख़ास गुजराती हरुफ़ हैं। यह नागरीसे बहुत मिलते-जुलते हैं। इनकी उम्र सौ सालसे ज्यादा नहीं है। इनमें हरकात[१२]की अलामतें[१३] नागरीसे निस्फ़[१४] हैं। इसीसे संस्कृत ज़ुबान इनमें सही नहीं लिखी जा सकती है। मजबूरन गुजराती लोग संस्कृतको नागरीमें लिखते हैं और अपनी गुजराती ज़ुबानको गुज़राती हरुफ़में। आजकल गुजराती भी कोशिश कर रहे हैं, कि जल्द

११—संस्था। १२—मात्रा। १३—चिन्ह। १४—आधी।

गुजराती हरुफ़को ख़ैरबाद कहकर नागरी हरुफ़ इख्तियार करें। हिन्दुओं-के हाथमें, जो गुजराती अख़बार या रिसायल हैं, अब उनके अनवान१५ नागरीमें होते हैं, और मज़ामीन गुजरातीमें। यानी वह अपने नाज़रीनको नागरी पढ़नेका रब्त करा रहे हैं। बहुतसी गुजराती किताबें अब नागरीमें तबआ१६ होने लगी हैं। गुजरातियोंकी संस्कृत किताबें नागरीमें तबआ होती हैं, और उनका गुजराती तर्जुमा गुजराती हरुफ़में। बंगालियोंको अभी अपने हरुफ़पर ज़िद है। बंगला हरुफ़ नागरी हरुफ़के बिलकुल हमशक्ल हैं। बंगाली उन्हें आसानीसे छोड़ सकते और नागरी इख्तियार कर सकते हैं; मगर अभी बंगाली अपने हरुफ़की मोहब्बत नहीं छोड़ते हैं। वह संस्कृत और बंगला दोनों बंगला हरुफही में लिखते हैं, मगर संस्कृत किताबें बंगाली भी ज्यादातर देवनागरी हरुफ़मेंही तबआ करते हैं। खैर, उनकी रही सही ज़िद भी जल्द रुख़सत होगी।

बंगालियोंमें सर गुरुदास और जस्टिस मित्र जैसे नागरीके तरफ़दार पैदा हो गये हैं। बंगला किताबें नागरीमें तबआ होने लगी हैं। बंगाली लोग हिन्दी और नागरी सीखने लगे हैं। बंगालियोंमें पहिले भी ऐसे लोग हो गये हैं, जिनका ख़याल था, कि नागरी एक दिन कुल हिन्दमें रस्मुलख़त होगी और हिन्दी हिन्दोस्तान भरकी एक ज़ुबान। यह खयाल खुद बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी मरहूमका है, जिनका "बन्देमातरम्" आजकल हिन्दुस्तान भरमें गूंज रहा है। दो साल हुए बंकिम बाबूके उस तवील१७ मज़मूनका ज़रूरी हिस्सा हिन्दी होकर 'भारत-मित्र' म तबआ हुआ था।

हिन्दुस्तानके पुराने हरुफ़पर पंडित गौरीशंकर ओझा उदयपुरके विक्टोरियाहालके लाइब्रेरियनने कई साल हुए, एक उम्दा किताब लिखी

१५—हेडिंग। १६—मुद्रित। १७—लम्बा, बहुत बड़ा।

हैं, जिसका नाम है, "प्राचीनलिपिमाला"। जितने क़िस्मके पुराने हरुफ़ हिन्दुस्तानमें जहाँ-तहाँ मिले, सब इस किताबमें जमाकर दिये हैं। राजपूतानाके आप बड़े नामी मुहक़्क़िक़[१८] हैं। अढ़ाई हज़ार साल तक-के पुराने हरुफ़ आपने पढ़ डाले हैं। आप अपनी किताब दूसरी बार छपवाया चाहते हैं। जो पहलीबार वालीसे बहुत जामअ[१९] होगी, क्योंकि इस अर्सेमें उन्होंने और भी बहुत-सी कुतब और पत्थरोंपर लिखे मज़ामीन पढ़डाले हैं। उनकी किताब देखनेसे मालूम होता है, सबसे मुकम्मिल नागरी हरुफ़ हैं। यही वजह है, कि हिन्दके हर सूबाके हिन्दू नागरी हरुफ़ इख़्तियार कर रहे हैं। इसलिये उम्मीद है, बंगाली भी जल्द ज़िद छोड़ देंगे।

मदरासमें दो ज़ुबाने हैं, उनके नाम हैं, तामिल और तेलगू। इनमें-से तेलगूका लगाव संस्कृतसे है, और तामिलका बहुत कम। ताहम इस ज़ुबानके एक अच्छे माहवार रिसालेमें देखा गया कि और सब मज़ामीन तो तामिल हरुफ़में हैं, मगर जहाँ संस्कृतसे कुछ लेना पड़ा है, वहाँ देव-नागरी हरुफ़से काम लिया है और तेलगू जाननेवाले तो नागरी हरुफ़ ज़रूर ही सीखते हैं। मदरासमें और भी दो ज़ुबाने हैं, जो तेलगू और तामिलसे कम फैली हुई हैं। यह अमर भी क़ाबिले ग़ौर है कि मदरास-से एक हफ्ताबार संस्कृत अखबार निकलता है। यह नागरी हरुफ़में होता है और एक हिन्दी रिसाला वहाँसे निकला है, जिसको एक मदरासीने जारी किया है और वही उसका एडीटर है। संस्कृतकी जो किताबें मदरासमें तबआ हुई हैं, सब देवनागरी हरुफ़में हैं। क्योंकि मदरासी हरुफ़ संस्कृतके कामके नहीं। उनमें संस्कृत नहीं लिखी जा सकती। इसी तरह हिन्दुस्तानके तालीम-याफ्तालोग कोशिश कर रहे हैं कि जिस तरह युरोपके मुख्तलिफ़ मुमालिक[२०] और मुतलिफ़ ज़ुबानों-

---

१८—खोज करनेवाला, अनुसन्धान-कर्त्ता। १९—बड़ी वृहत्। २०—विभिन्न देश।

के लिये एक ही रस्मुलख़त है, इसी तरह हिन्दुस्तानमें भी देवनागरी हरूफ़को एक रस्मुलख़त बनाया जाय।

२६ दिसम्बर सन् १६०५ ई०को कांग्रेस हो जानेके बाद बनारसमें वहांकी नागरी-प्रचारिणी सभाकी तरफ़से हिन्दमें एक रस्मुलख़तके लिये ख़ास जलसा हुआ था। मिस्टर रमेशचन्द्र दत्त-सी० आई० ई०दीवान-बदौड़ा इसके प्रेसीडेन्ट थे। इस जलसेमें नामी-नामी आदमियोंने जो कुछ कहा उसका खुलासा इस तरह है:—

यह जलसा चाहता है कि हिन्दमें एक रस्मुलख़त जारी हो। बहुत अर्सेसे कुछ लायक़ लोग इसपर ग़ौर कर रहे हैं। मुझे याद है कि एक दफ़ा बंगालमें हिन्दोस्तान भरके लिये रोमन हरूफ़ बतौर एक रस्मुलख़तके क़बूल करनेकी तहरीक[२१] हुई थी,—वह बेशक वाहियात थी। इसीसे चली भी नहीं। मगर आप चाहते हैं कि नागरी हरूफ़ हिन्द भरमें बतौर एक रस्मुलख़तके ज़ारी हों। साहबो! शुरूमें लोग एक नया रस्मुलख़त क़बूल करना मुशकिल समझेंगे। बंगालियोंका ख़याल है कि नागरी हरूफ़ बहुत मुशकिल हैं। वह उन्हें सीख नहीं सकते। गुजरात, बड़ौदा और दूसरे मुक़ामातमें भी नागरी हरूफ़ बहुत आहिस्ता-आहिस्ता फैल रहे हैं। मगर मैं अपने तजुर्बेसे कहता हूँ कि अगर एक दफ़ा आप नागरी हरूफ़ सीखनेपर कमरबस्ता[२२] हो जायँ तो मालूम होगा कि वह कैसे आसान हैं। जब मैं सिविलसर्विसका इम्तिहान देने विलायत गया था, तो नागरीका एक हरूफ़ भी न जानता था। कुछ संस्कृत जानता था, वह भी बंगला हरूफ़में लिख सकता था। मगर वहाँ बंगला हरूफकी परसिश[२३] न थी और मैंने और मज़ामीनके साथ संस्कृत भी ली थी। मजबूरन मुझे नागरी हरूफ़ सीखने पड़े और तीन महीनेमें मैं नागरी उतनी ही जल्दी लिखने लगा जितनी जल्दी बंगला लिखता था।

२१—प्रचार। २२—तैयार, दृढ़। २३—पूछ।

महाराजा साहब बड़ौदाकी इधर बड़ी तवज्जह है और कई सालसे कोशिशकर रहे हैं, कि उनकी रियासतमें नागरी हरूफ़ जारी हों। बड़ौदामें एक सरकारी गज़ट है, जिसका नाम "आज्ञापत्रिका" है। इसका एक हिस्सा गुजराती हरूफ़में छपता है और दूसरा नागरीमें। ज़बान दोनोंकी गुजराती है। बड़ौदाके अहलकारोंमें ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो नागरी हरूफ़ वैसे-ही तेजीसे न लिख सकते हों, कि जिस तेज़ीसे वह गुजराती लिखते हैं। इससे ज़ाहिर है, कि अगर एक ज़ुबान हम जानते हों और उसे किसी जदीद२४ रस्मुलख़तमें लिखनेकी आदत डालें तो बहुत मुश्किल बात नहीं है—

पचास साल पहिले जरमनीकी सब किताबें पुरानी ज़रमन हरूफ़-में छपती थीं, मगर अब उन्हें युरोपके दूसरे मुमालिकके लोगोंसे ताल्लुक रखनेका ख़याल हुआ है। इससे पचीस साल गुज़िश्ता२५से उनकी किताबें रोमन हरूफ़में तबआ होने लगीं हैं। इससे उनको कुछ मुशकिल वाक़े न हुई। हमलोगोंको भी अहले जरमनीकी तक़लीद२६ करना वाजिब है। ख़याल रहे कि हमारा ऐसा ख़याल उस वसीअ२७ ख़यालका एक टुकड़ा है, जो हम सब अहलेहिन्दको एक करना चाहता है। या एक दूसरे-को बहुत करीब-करीब ला देना चाहता है।

इसमें कामयाबी हासिल करनेका पहिला असूल यह है कि हर ज़बानकी मक़बूल२८ और हरदिलअज़ीज२९ किताबें नागरी हरूफ़में छापकर शाया की जायँ। ज़रूर शुरूमें ऐसी किताबें कुछ अर्से तक नागरीदां लोगोंही में बिकेंगी। मगर जल्द ही दूसरे लोगोंमें भी यह फैल जायेंगी।

मिस्टर तिलकने कहा—

साहबो! इस मजलिस३० की गर्ज़ प्रेसीडेन्ट साहबने समझा दी

२४—नई, अन्य। २५—बीते पहले। २६—नकल। २७—बहुत बड़ेव। २८—मानी हुई। २९—सर्वप्रिय। ३०—सभा।

है। चूँकि डेढ़ घंटेके अन्दर दस स्पीकरोंको बोलना है, इससे मैं बहुत मुख्तसिरमें कुछ कहना चाहता हूँ। सबसे पहिले तो यह ज़हनशीन३१ करना चाहिये कि यह ख़याल सिर्फ़ शुमालीहिन्दमें ही एक रस्मुलख़त जारी करनेके लिये नहीं है। बल्कि यह एक आला क़ौमी ख़यालका एक हिस्सा है, जिसका मतलब हिन्दुस्तान भरमें एक ज़ुबान ज़ारी करनेका है। क्योंकि क़ौमियत तैयार करनेके लिये एक ज़ुबानका होना लाज़मी है। एक ज़ुबान होनेके तुफ़ैलसे३२ ही-आप अपने ख़यालात दूसरोंपर ज़ाहिर कर सकते हैं। मनुजीने भी कहा है कि हरएक शैका इल्म३३ ज़बानहीसे होता है। बस, अगर क़ौमको एक धागेमें बान्धना है तो पहिले सबके लिये एक ज़ुबान पैदा करो। इससे ज़बरदस्त ताक़त दूसरी नहीं है। यही इस मजलिसका असूल है।

सिर्फ़ शुमाली हिन्दमें नहीं, हम लोग रफ़्ता रफ़्ता दक्खन और मदरासको लेकर कुल हिन्दमें एकही रस्मुलख़त ज़ारी करना चाहते हैं। बहुत मेहनत करनेसे सब मुशकिलें आसान हो सकती हैं। पहिली मुश्किल तारीख़ी है। आर्य और ग़ैर-आर्य लोगोंकी पुरानी और हिन्दू-मुसलमानोंकी मौजूदा अदावत और नफ़रतने ज़बानसे मुताल्लिक़ इत्तफ़ाक़को ज़ाइल३४ कर डाला है। शुमालीहिन्दके हिन्दू ज्यादा संस्कृत निकली हुई आर्य ज़ुबानें ही बोलते हैं। मगर दक्खनी ज़ुबानें द्राविड़से निकली हैं। उनका फ़र्क लफ़ज़ोंहीमें नहीं, हरुफ़में भी है, जिनमें कि वह लिखे जाते हैं। फिर उर्दू और हिन्दीका झगड़ा है। जिनको इन सूबाजातमें इस क़द्र अहमियत३५ दी गई है। हमारी तरफ़ मूड़ी या घसीट चलती है, जो लिखनेमें बहुत इस्तेमाल होती है। यह रस्मुलख़त नागरीसे अलग समझा जाता है। मगर अब हमारे अख़बार और किताबें नागरीहीमें तबआ होते हैं—

३१—समझ लेना। ३२—प्रताप। ३३—ज्ञान। ३४—नष्ट। ३५—महत्व।

गो हमारा मतलब हिन्द भरमें एक रस्मुलख़त और एक ज़ुबान बनानेका है। मगर पहिले हिन्दुओंसे शुरू करना होगा। पहिले नागरी और तामिल या द्राविड़ रस्मुलख़तमें इत्तफ़ाक़३६ पैदा कराना होगा। इन दोनोंमें सिर्फ़ हरूफ़ ही का इख़्तलाफ़३७ नहीं है, बल्कि तामिलमें कुछ आवाज़ें ऐसी हैं, जो किसी आर्य ज़ुबानमें नहीं हैं। हम सीढ़ी सीढ़ी चढ़ना चाहते हैं, और शुरूमें जैसा कि प्रेसीडेन्ट साहबने इरशाद३८ फरमाया है, हम संस्कृतसे निकली हुई ज़ुबानोंको हाथमें लेते हैं। इन ज़ुबानोंके नाम हिन्दी, बंगला, गुजराती, मरहठी, और पंजाबी हैं। यह सब ज़ुबाने संस्कृतसे निकली हैं और जिन हरूफ़में यह लिखी जाती हैं, वह सब भी हिन्दुस्तानके पुराने हरूफ़से बदलते बदलते मौजूदा शक्लोंमें आये हैं। अब इन ज़ुबानोंके क़वायद और बोलने और लिखनेके ढङ्गमें फ़र्क़ आ गया है। मगर वैसे देखिये तो इनके हरूफ़ क़रीब क़रीब यकसां और हम-शक्ल हैं।

नागरी-प्रचारणी-सभा कुल आर्यज़ुबानोंके लिये एक रस्मुलख़त पैदा करना चाहती है। जिससे उस रस्मुलख़तमें लिखी हुई किताबोंको आर्य ज़ुबानोंके बहुत चाहनेवाले पढ़ सकें। इस ख़यालकी अहमियत हम सब तसलीम करते हैं। मगर मुश्किल पड़ती है, उस वक्त जब कहा जाता है कि फलां रस्मुलख़त सबसे उम्दा है। मसलन बंगाली कह सकते हैं कि उनके हरूफ़ गुजरातियों और मरहठोंके हरूफ़से क़दीम हैं। इससे सब ज़ुबानोंके लिये बंगला रस्मुलख़तही बेहतर है। और कुछ लोग देवनागरी हरूफ़को एक रस्मुलख़त बनानेके तरफ़दार हैं और उन्हींको सबसे क़दीम मानते हैं।

मेरे ख़यालमें तारीख़ी सबूतसे यह सवाल हल नहीं हो सकता। क्योंकि अगर अशोकके वक्तसे आज तकके पत्थरोंके कुतबे देखें जायँ तो

३६—एकता। ३७—भेद। ३८—आज्ञा।

कम अज़ कम दस तरहके हरूफ़ मिलते हैं। इनमें खरोष्टी या ब्रहमनी हरूफ़ सबसे क़दीम समझे जाते हैं। तबसे अबतक रस्मुलख़तमें बहुत इनक़लाब हुआ है और इस वक्त जो सब रस्मुलख़त इस मुल्कमें जारी हैं, वह किसी न किसी पुराने रस्मुलख़तसे तब्दील होकर मौजूदा सूरतमें आये हैं। इससे तारीखी तलाश और तजस्सुस३९ से यह मसला हल नहीं हो सकता।

यह मुशकिल आसान करनेके लिये एक बार रोमन रस्मुख़त अख़तियार करनेकी सलाह हुई थी। इससे यह फ़ायदा भी सोचा गया था कि एशिया और युरोपमें एक रस्मुलख़त हो जायगा। मगर यह महज़ फ़िज़ूल बात थी। रोमनमें इस मुल्ककी आवाज़ोंके लिख देनेकी ताक़त कहां है? उसकी इस ख़ामी४० को अंग्रेजी क़वायददान भी मानते हैं। एकही हरूफ़की उसमें कई आवाज़ें होती हैं और कभी कभी एकही आवाज़के लिये तीन चार हरूफ़ कई तरहके नुक़ते वगैरह जबतक न लगायें जायँ—हमारी आवाज़ोंका अदा होना उनसे मुशकिल है।

इससे अगर हम कोई एक रस्मुलख़त चाहते हैं, तो नागरी सबसे बेहतर है। युरोपके संस्कृतदां लोगोंने तस्लीम किया है कि युरोपमें जो हरूफ़ जारी हैं उन सबसे नागरी हरूफ़ मुकम्मिल हैं। फिर देव-नागरी रस्मुलख़तको छोड़कर औरकी तलाश करना ख़ुदकशी४१ नहीं तो और क्या है?

मैं तो यहांतक कहता हूं कि हरूफ़ और तलफ्फ़ुज़४२ के लिये हमने हिन्दमें बड़ी मेहनतें की हैं। पाणिनिका संस्कृत क़वायद उसका शाहिद है। दुनियां भरमें न ऐसे हरूफ़ हैं और न तलफ्फ़ुज़का इतना उम्दा ढंग है। हमारे यहां एक हरूफ़के लिये एकही आवाज़ है, और एक आवाज़के लिये एकही हरूफ़।'

३९—खोज। ४०—कमी। ४१—आत्महत्या। ४२—उच्चारण।

लार्ड कर्ज़नने सब जगह एक वक्त मुक़र्ररकर दिया है। इसी तरह हम सब जगह एकही रस्मुलख़त चाहते हैं। अगर कर्ज़न साहब एक वक्तकी जगह एक रस्मुलक़त ज़ारी करा जाते तो हम उनके ज्यादा मशकूर[४३] होते। बंगालियोंको फितरतसेही अपने रस्मुलख़तका पास है। मैं इसके लिये शिकायत नहीं करता। इसी तरह कुछ गुजराती भी अपने रस्मुलख़तको आसान बताते हैं; क्योंकि उनके हरुफ़के सिरोंपर नागरीकी तरह लकीर नहीं लगाई जाती, इसी तरह कुछ मरहठे भी कहते हैं कि मरहठे हरुफ़हीमें संस्कृत लिखी जाती थी।

खैर. हमें वह रस्मुलख़त अख्तियार करना चाहिये, जो आसान हो उम्दगीसे लिखा जाय और आँखोंको अच्छा मालूम हो। साथ ही जल्दी लिखनेके लिये उसमें आसानीसे कुछ हेर-फेर हो सकता हो। वह हिन्दुस्तानकी सब आर्य ज़ुबानोंकी आवाज़ोंको ज़ाहिर कर सकता हो, और सबसे ज्यादा फैला हुआ हो।

अम्बालाल शंकरलाल देशाई एम० ए०, एल० एल० बी० ने कहा।—

शुरूमें गुजरातके स्कूलोंकी दरसी किताबोंमें नागरी और गुजराती दोनों हरुफ़ होते थे। इसलिये गुजराती स्कूलोंके तुलबा, नागरी हरुफ़से वाक़िफ़ हैं। मगर अब सिर्फ़ गुजराती हरुफ़ ही, लोग रखना चाहते हैं। ऐसा करेंगे तो बड़ी बदक़िस्मतीकी बात होगी। प्रेसीडेन्ट साहबने कहा कि अच्छी-अच्छी किताबें नागरी हरुफ़में छपें। बेशक यह बहुत उम्दा राय है। मेरे ख़यालमें साईन्सकी जो किताबें गुजरातीमें तैयार हों वह सब नागरी हरुफ़में छपें। दूसरे सब तरहके तिजारती कामोंमें आयन्दासे नागरी ख़तो-किताबत जारीकी जाय। अहमदाबाद वालोंने यह काम शुरू भी कर दिया है।

सर भालचन्द्रकृष्णने ताईद करते हुए कहा कि—हमारी सब संस्कृत

४३—कृतज्ञ।

किताबें नागरी हरुफ़में तबआ होती हैं ? बहुत ज़रूरत है कि यही हरुफ़ अब कुल सूबाजात हिन्दमें क़बूल किये जायँ। यह अमर कुछ भी मुशकिल नहीं हैं। कुल हिन्दकी ज़ुबान हिन्दी और हरुफ़ नागरी होने बहुत ज़रूरी हैं। यह कहकर आपने वह कहानी सुनाई जो बम्बई अहातेमें मरहठी ज़बानका रस्मुलख़त बदलनेके मुताल्लिक़ थी। आपने कहा कि हमारे सरिस्ता-तालीमके डाइरेक्टरने हमारी ज़ुबानका रस्मुलख़त और तलफ्फ़ुज़ बदल देना चाहा था। हमने इसके लिये एतराज़ किया मगर सुनाई न हुई। आख़िरकार बम्बई गवर्नमेण्ट तक बात पहुँची, और ज़ाहिर किया गया, ऐसा होनेसे झगड़ा होगा, तब हमारी अर्ज़ कबूल हुई।

कलकत्ताके प्रोफ़ेसर खीरोदप्रसाद विद्याविनोद एम० ए०, मद्रास सलीमके विजय राघवाचार्य बी० ए०, वग़ैरह आलिम शख़्सोंने इसी तरह अपनी-अपनी राय ज़ाहिर की।

हम उमीद करते हैं कि जो लोग हिन्दी-उर्दूके लिये झगड़ा करते हैं, वह समझ लेंगे कि हिन्दी वाले क्या चाहते हैं और उनकी क्या ग़र्ज़ है। उर्दूवालोंसे किसी क़िस्मका झगड़ा करना वह नहीं चाहते हैं और न उर्दूको नुक़सान पहुंचाना चाहते हैं, मगर नागरी हरुफ़ वह सारे हिन्दुस्तानमें जरूर फैलाना चाहते हैं। जिससे संस्कृतसे निकली हुई ज़बानें क़रीब-क़रीब आ जायँ। सब हिन्दुओं और हिन्दुस्तानकी सब ज़ुबानोंको एक करनेके लिये यह कोशिश होती है। हिन्दी और उर्दूको हिन्दू एकही ज़बान समझते हैं और मुसलमान भी पहले उर्दूको हिन्दी ही समझते थे। ख़ासकर देहलीवाले। मगर लखनऊवालोंने इसमें अरबी-के अलफ़ाज़ नाहक़ ठूंस-ठूंसकर इसे दूसरी ज़ुबान बना डाला है।

—"जमाना" एप्रिल और मई सन् १९०७ ई०

३

शिवशम्भुके चिट्ठे और खत

(भारतमित्र ११ अप्रेल सन् १९०३ ई०)

बनाम लार्ड कर्जन (१)

माई लार्ड ! लड़कपनमें इस बूढ़े भङ्गड़को बुलबुलका बड़ा चाव था। गांवमें कितनेही शौकीन बुलबुलबाज थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे, बालक शिवशम्भु शर्म्मा बुलबुलें लड़ानेका चाव नहीं रखता था। केवल एक बुलबुलको हाथपर बिठाकरही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मणकुमारको बुलबुल कैसे मिले ? पिताको यह भय कि बालकको बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथसे बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा। बहुत अनुरोधसे यदि पिताने किसी मित्रकी बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घण्टेसे अधिक नहीं रहने पाती थी। वह भी पिताकी निगरानीमें !

सरायके भटियारे बुलबुलें पकड़ा करते थे। गांवके लड़के उनसे दो दो तीन तीन पैसेमें खरीद लाते थे। पर बालक शिवशम्भु तो ऐसा नहीं कर सकता था। पिताकी आज्ञा बिना वह बुलबुल कैसे लावे और कहां रखे ? उधर मनमें अपार इच्छा थी कि बुलबुल जरूर हाथपर हो। इसीसे जङ्गलमें उड़ती बुलबुलको देखकर जी फड़क उठता था। बुलबुल-की बोली सुनकर आनन्दसे हृदय नृत्य करने लगता था। कैसी कैसी कल्पनाएं हृदयमें उठती थीं। उन सब बातोंका अनुभव दूसरोंको नहीं होसकता। दूसरोंको क्या होगा ? आज यह वही शिवशम्भु है, स्वयं

इसीको उस बालकालके अनिर्वचनीय चाव और आनन्दका अनुभव नहीं होसकता।

बुलबुल पकड़नेकी नाना प्रकारकी कल्पनाएं मनही मनमें करता हुआ बालक शिवशम्भु सोगया। उसने देखा कि संसार बुलबुलमय है। सारे गांवमें बुलबुलें उड़ रही हैं। अपने घरके सामने खेलनेका जो मैदान है, उसमें सैकड़ों बुलबुलें उड़ती फिरती हैं। फिर वह सब ऊंची नहीं उड़तीं। बहुत नीची नीची उड़ती हैं। उनके बैठनेके अड्डे भी नीचे नीचे हैं। वह कभी उड़ कर इधर जाती हैं और कभी उधर, कभी यहां बैठती हैं और कभी वहां, कभी स्वयं उड़कर बालक शिवशम्भुके हाथको उंगलियोंपर आ बैठती हैं। शिवशम्भु आनन्दमें मस्त होकर इधर उधर दौड़ रहा है। उसके दो तीन साथी भी उसी प्रकार बुलबुलें पकड़ते और छोड़ते इधर उधर कूदते फिरते हैं।

आज शिवशम्भुकी मनोवाञ्छा पूर्ण हुई। आज उसे बुलबुलोंकी कमी नहीं है। आज उसके खेलनेका मैदान बुलबुलिस्तान बन रहा है। आज शिवशम्भु बुलबुलोंका राजाही नहीं, महाराजा है। आनन्दका सिलसिला यहीं नहीं टूट गया। शिवशम्भुने देखा कि सामने एक सुन्दर बाग है। वहींसे सब बुलबुलें उड़कर आती हैं। बालक कूदता हुआ दौड़कर उसमें पहुंचा। देखा, सोनेके पेड़ पत्ते और सोने ही के नाना रंगके फूल हैं। उनपर सोनेकी बुलबुलें बैठी गाती हैं और उड़ती फिरती हैं। वहीं एक सोनेका महल है। उसपर सैकड़ों सुनहरी कलश हैं। उनपर भी बुलबुलें बैठी हैं। बालक दो तीन साथियों सहित महलपर चढ़ गया। उस समय वह सोनेका बागीचा सोनेके महल और बुलबुलोंसहित एक बार उड़ा। सब कुछ आनन्दसे उड़ता था, बालक शिवशम्भु भी दूसरे बालकों सहित उड़ रहा था। पर यह आमोद बहुत देर तक सुखदायी न हुआ। बुलबुलोंका खयाल अब बालकके मस्तिष्कसे हटने

लगा। उसने सोचा—हैं! मैं कहां उड़ा जाता हूं? माता पिता कहां? मेरा घर कहां? इस विचारके आतेही सुखस्वप्न भंग हुआ। बालक कुलबुलाकर उठ बैठा। देखा और कुछ नहीं, अपनाही घर और अपनी ही चारपाई है। मनोराज्य समाप्त हो गया!

आपने माई लार्ड! जबसे भारतवर्षमें पधारे हैं, बुलबुलोंका स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करनेके योग्य काम भी किया है? खाली अपना खयालही पूरा किया है या यहांकी प्रजाके लिये भी कुछ कर्तव्य पालन किया? एक बार यह बात बड़ी धीरतासे मनमें विचारिये। आपकी भारतमें स्थितिकी अवधिके पांच वर्ष पूरे हो गये। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूदमें, मूलधन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिये नुमायशी कामोंके सिवा कामकी बात आप कौनसी कर चले हैं और भड़कबाजीके सिवा ड्यूटी और कर्तव्यकी ओर आपका इस देशमें आकर कब ध्यान रहा है? इस बारके बजटकी वक्तृताही आपके कर्तव्य-कालकी अन्तिम वक्तृता थी। जरा उसे पढ़ तो जाइये फिर उसमें आपकी पांच सालकी किस अच्छी करतूतका वर्णन है? आप बारम्बार अपने दो अति तुमतराकसे भरे कामोंका वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मिमोरियलहाल और दूसरा दिल्ली-दरबार। पर जरा विचारिये तो यह दोनो काम "शो" हुए या "ड्यूटी"? विक्टोरिया मिमोरियलहाल चन्द पेट भरे अमीरोंके एक दो बार देख आनेकी चीज होगा। उससे दरिद्रों-का कुछ दुःख घट जावेगा या भारतीय प्रजाकी कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे।

अब दरबारकी बात सुनिये कि क्या था? आपके खयालसे वह बहुत बड़ी चीज था। पर भारतवासियोंकी दृष्टिमें वह बुलबुलोंके स्वप्नसे बढ़कर कुछ न था। जहां जहांसे वह जुलूसके हाथी आये, वहीं वहीं सब लौट गये। जिस हाथीपर आप सुनहरी झूलें और

सोनेका हौदा लगवाकर छत्र-धारण-पूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया। आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं। दरबारमें जिस सुनहरी सिंहासनपर विराजमान होकर आपने भारतके सब राजा महाराजाओंकी सलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भलीभांति जानते हैं कि वह आपका न था। वह भी जहांसे आया था वहीं चला गया। यह सब चीजें खाली नुमायशी थीं। भारतवर्षमें वह पहलेहीसे मौजूद थीं। क्या इन सबसे आपका कुछ गुण प्रगट हुआ? लोग विक्रमको याद करते हैं या उसके सिंहासनको, अकबरको या उसके तख्तको? शाहजहांकी इज्जत उसके गुणोंसे थी या तख्तेताऊससे? आप जैसे बुद्धिमान पुरुषके लिये यह सब बातें विचारनेकी हैं।

चीज वह बनना चाहिये जिसका कुछ देर कयाम हो। माता पिताकी याद आते ही बालक शिवशम्भुका सुखस्वप्न भंग होगया। दरबार समाप्त होते ही वह दरबार-भवन, वह एम्फीथियेटर तोड़कर रख देनेकी वस्तु हो गया। उधर बनाना, इधर उखाड़ना पड़ा! नुमायशी चीजोंका यही परिणाम है। उनका तितलियोंकासा जीवन होता है। माई-लार्ड! आपने कछाड़के चायवाले साहबोंकी दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य हैं और हम लोग कुछ दिनके लिये। आपके वह "कुछ दिन" बीत गये। अवधि पूरी हो गई। अब यदि कुछ दिन और मिलें तो वह किसी पुराने पुण्यके बलसे समझिये। उन्हींकी आशापर शिवशम्भु शर्म्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन मांगे दिनोंमें तो एक बार आपको अपने कर्त्तव्यका खयाल हो।

जिस पदपर आप आरूढ़ हुए, वह आपका मौरूसी नहीं—नदीनाव संयोगकी भांति है। आगे भी कुछ आशा नहीं कि इस बार छोड़नेके

बाद आपका इससे कुछ सम्बन्ध रहे। किन्तु जितने दिन आपके हाथमें शक्ति है, उतने दिन कुछ करनेकी शक्ति भी है। जो कुछ आपने दिल्ली आदिमें कर दिखाया उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखानेकी शक्ति आपमें थी। उसी प्रकार जानेसे पहले, इस देशके लिये कोई असली काम कर जानेकी शक्ति आपमें है। इस देशकी प्रजाके हृदयमें कोई स्मृति-मन्दिर बना जानेकी शक्ति आपमें है। पर यह सब तब हो सकता है, कि वैसी स्मृतिकी कुछ कदर आपके हृदयमें भी हो। स्मरण रहे धातुकी मूर्तियोंके स्मृतिचिन्हसे एक दिन किलेका मैदान भर जायगा। महारानीका स्मृति-मन्दिर मैदानकी हवा रोकता था या न रोकता था, पर दूसरोंकी मूर्तियां इतनी हो जावेंगी कि पचास पचास हाथपर हवाको टकराकर चलना पड़ेगा। जिस देशमें लार्ड लैंसडौनकी मूर्ति बन सकती है, उसमें और किस किसकी मूर्ति नहीं बन सकती? माई लार्ड! क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आसपास आपकी एक वैसीही मूर्ति खड़ी हो?

यह मूर्तियां किस प्रकारके स्मृतिचिन्ह हैं? इस दरिद्र देशके बहुत-से धनकी एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखनेसे ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियोंके कुछ देर विश्राम लेनेके अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है। माई लार्ड! आपकी मूर्तिकी वहां क्या शोभा होगी? आइये मूर्तियां दिखावें। वह देखिये एक मूर्ति है, जो किलेके मैदानमें नहीं है, पर भारतवासियोंके हृदयमें बनी हुई है। पहचानिये, इस वीर पुरुषने मैदानकी मूर्तिसे इस देशके करोड़ों गरीबोंके हृदयमें मूर्ति बनवाना अच्छा समझा। यह लार्ड रिपनकी मूर्ति है। और देखिये एक स्मृतिमन्दिर, यह आपके पचास लाखके सङ्गमर्म्मरवालेसे अधिक मजबूत और सैकड़ों गुना कीमती है। यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानीका सन् १८५८ ई० का घोषणापत्र है।

आपकी यादगार भी यहीं बन सकती है, यदि इन दो यादगारोंकी आपके जीमें कुछ इज्जत हो।

मतलब समाप्त होगया। जो लिखना था, वह लिखा गया। अब खुलासा बात यह है कि एक बार 'शो' और ड्यूटीका मुकाबिला कीजिये। 'शो' को 'शो' ही समझिये। 'शो' ड्यूटी नहीं है! माई लार्ड! आपके दिल्ली दरबारकी याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी जितनी शिव-शम्भु शर्म्माके सिरमें बालकपनके उस सुखस्वप्नकी है!

("भारतमित्र" २६ नवम्बर १९०४ ई०)

श्रीमानका स्वागत (२)

जो अटल है, वह टल नहीं सकती। जो होनहार है, वह होकर रहती है। इसीसे फिर दो वर्षके लिये भारतके वायसराय और गवर्नर जनरल होकर लार्ड कर्जन आते हैं। बहुतसे विघ्नोंको हटाते और बाधाओंको भगाते फिर एक बार भारतभूमिमें आपका पदार्पण होता है। इस शुभयात्राके लिये वह गत नवम्बरको सम्राट् एडवर्डसे भी विदा ले चुके हैं। दर्शनमें अब अधिक बिलम्ब नहीं है।

इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते हैं और आप यह जानते भी हैं कि आप क्यों आते हैं। यदि भारत-वासियोंका बश चलता तो आपको न आने देते और आपका बश चलता तो और भी कई सप्ताह पहले आ विराजते! पर दोनों ओरकी बाग किसी औरहीके हाथमें हैं। निरे बेबश भारतवासियोंका कुछ बश नहीं है और बहुत बातों पर बश रखनेवाले लार्ड कर्जनको भी बहुत बातोंमें बेबश होना पड़ता है। इसीसे भारतवासियोंको लार्ड कर्जनका

आना देखना पड़ता है और उक्त श्रीमान्‌को अपने चलनेमें विलम्ब देखना पड़ा। कवि कहता है—

"जो कुछ खुदा दिखाये, सो लाचार देखना।"

अभी भारतवासियोंको बहुत कुछ देखना है और लार्ड कर्जनको भी बहुत कुछ। श्रीमानके नये शासनकालके यह दो वर्ष निस्सन्देह देखने-की वस्तु होंगे। अभीसे भारवासियोंकी दृष्टियाँ सिमटकर उस ओर जा पड़ी हैं। यह जबरदस्त द्रष्टा लोग अब बहुत कालसे केवल निर्लिप्त निराकार तटस्थ द्रष्टाकी अवस्थामें अतृप्त लोचनसे देख रहे हैं और न जाने कब तक देखे जावेंगे। अथक ऐसे हैं कि कितने ही तमाशे देख गये, पर दृष्टि नहीं हटाते हैं। उन्होंने पृथिवीराज, जयचन्दकी तबाही देखी, मुसलमानोंकी बादशाही देखी। अकबर, बीरबल, खानखाना और तानसेन देखे, शाहजहानी तख्तताऊस और शाही जुलूस देखे। फिर वही तख्त नादिरको उठाकर ले जाते देखा। शिवाजी और औरङ्ग-जेब देखे, क्लाइव हेस्टिंग्ससे वीर अंग्रेज देखे। देखते-देखते बड़े शौकसे लार्ड कर्जनका हाथियोंका जुलूस और दिल्ली-दरबार देखा। अब गोरे पहलवान मिस्टर सेण्डोका छातीपर कितने ही मन बोझ उठाना देखनेको टूटे पड़ते हैं। कोई दिखाने वाला चाहिये भारतवासी देखनेको सदा प्रस्तुत हैं। इस गुणमें वह मोंछ मरोड़कर कह सकते हैं कि संसारमें कोई उनका सानी नहीं। लार्ड कर्जन भी अपनी शासित प्रजाका यह गुण जान गये थे, इसीसे श्रीमान्‌ने लीलामय रूप धारण करके कितनीही लीलाएँ दिखाईं।

इसीसे लोग बहुत कुछ सोच विचार कर रहे हैं कि इन दो वर्षोंमें भारतप्रभु लार्ड कर्जन और क्या क्या करेंगे। पिछले पाँच सालसे अधिक समयमें श्रीमान्‌ने जो कुछ किया, उसमें भारतवासी इतना समझने लगे हैं कि श्रीमान्‌की रुचि कैसी है और कितनी बातोंको पसन्द करते हैं। यदि

वह चाहें तो फिर हाथियोंका एक बड़ा भारी जुलूस निकलवा सकते हैं। पर उसकी वैसी कुछ जरूरत नहीं जान पड़ती। क्योंकि जो जुलूस वह दिल्लीमें निकलवा चुके हैं, उसमें सबसे ऊँचे हाथीपर बैठ चुके हैं, उससे ऊँचा हाथी यदि सारी पृथिवीमें नहीं तो भारतवर्षमें तो और नहीं है। इसीसे फिर किसी हाथीपर बैठनेका श्रीमान्‌को और क्या चाव हो सकता है? उससे ऊँचा हाथी और नहीं है। ऐरावतका केवल नाम है, देखा किसीने नहीं है। मेमथकी हड्डियाँ किसी किसी अजायबखानेमें उसी भांति आश्चर्यकी दृष्टिसे देखी जाती हैं, जैसे श्रीमान्‌के स्वदेशके अजायबखानेमें कोई छोटा मोटा हाथी। बहुत लोग कह सकते हैं कि हाथीकी छोटाई बड़ाई पर बात नहीं, जुलूस निकले तो फिर भी निकल सकता है। दिल्ली नहीं तो कहीं और सही। क्योंकि दिल्लीमें आतशबाजी खूब चल चुकी थी, कलकत्तेमें फिर चलाई गई। दिल्लीमें हाथियोंकी सवारी हो चुकनेपर भी कलकत्तेमें रोशनी और घोड़ागाड़ीका तार जमा था। कुछ लोग कहते हैं कि जिस कामको लार्ड कर्जन पकड़ते हैं, पूरा करके छोड़ते हैं। दिल्ली दरबारमें कुछ बातोंकी कसर रह गयी थी। उदयपुरके महाराणा न तो हाथियोंके जुलूसमें साथ चल सके न दरबारमें हाजिर होकर सलामी देनेका मौका उनको मिला। इसी प्रकार बड़ोदानरेश हाथियोंके जुलूसमें शामिल न थे। वह दरबारमें भी आये तो बड़ी सीधी सादी पोशाकमें। इतनी सीधी सादीमें जितनीसे आज कलकत्तेमें फिरते हैं। वह ऐसा तुमतराक और ठाठ-बाठका समय था कि स्वयं श्रीमान् वैसरायको पतलून तक कारचोबीकी पहनना और राजा महाराजोंको काठकी तथा ड्यूक आफ कनाटको चांदीकी कुरसीपर बिठाकर स्वयं सोनेके सिंहासनपर बैठाना पड़ा था। उस मौकेपर बड़ौदा नरेशका इतनी सफाई और सादगीसे निकल जाना एक नई आन था। इसके सिवा उन्होंने झुकके सलाम नहीं किया था, बड़ी

सादगीसे हाथ मिलाकर चल दिये थे। यह कई एक कसरें ऐसी हैं, जिनके मिटानेको फिर दरबार हो सकता है। फिर हाथियोंका जुलूस निकल सकता है।

इन लोगोंके विचारमें कलाम नहीं। पर समय कम है, काम बहुत होंगे। इसके सिवा कई राजा महाराजा पहले दरबारहीमें खर्चसे इतने दब चुके हैं कि श्रीमान लार्ड कर्जनके बाद यदि दो वैसराय और आवें और पांच पांचकी जगह सात सात साल तक शासन करें, तब तक भी उनका सिर उठाना कठिन है। इससे दरबार या हाथियोंके जुलूसकी फिर आशा रखना व्यर्थ है। पर सुना है कि अबके विद्याका उद्धार श्रीमान जरूर करेंगे। उपकारका बदला देना महत् पुरुषोंका काम है। विद्याने आपको धनी किया है, इससे आप विद्याको धनी किया चाहते हैं। इसीसे कङ्गालोंसे छीनकर आप धनियोंको विद्या देना चाहते हैं। इससे विद्याका वह कष्ट मिट जावेगा जो उसे कङ्गालको धनी बनानेमें होता है। नींव पड चुकी है, नमूना कायम होनेमें देर नहीं। अब तक गरीब पढ़ते थे, इससे धनियोंकी निन्दा होती थी कि वह पढ़ते नहीं। अब गरीब न पढ़ सकेंगे, इससे धनी पढ़ें न पढ़ें उनकी निन्दा न होगी। इस तरह लार्ड कर्जनकी कृपा उन्हें बेपढ़े भी शिक्षित कर देगी।

और कई काम हैं, कई कमीशनोंके कामका फैसिला करना है, कितनोही मिशनोंकी कारवाईका नतीजा देखना है। काबुल है, काश्मीर है, काबुलमें रेल चल सकती है, काश्मीरमें अंग्रेजी बस्ती बस सकती है। चायके प्रचारकी भांति मोटरगाड़ीके प्रचराकी इस देशमें बहुत जरूरत है। बङ्गदेशका पार्टीशन भी एक बहुत जरूरी काम है। सबसे जरूरी काम विक्टोरिया मिमोरियल हाल है। सन् १८५८ ई० की घोषणा अब भारतवासियोंको अधिक स्मरण रखनेकी जरूरत न पड़ेगी। श्रीमान् स्मृतिमन्दिर बनवाकर स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाका ऐसा स्मारक

बनवा देंगे, जिसको देखतेही लोग जान जावेंगे कि महारानी वह थीं जिनका यह स्मारक है।

बहुत बातें हैं। सबको भारतवासी अपने छोटे दिमागोंमें नहीं ला सकते। कौन जानता है कि श्रीमान् लार्ड कर्जनके दिमागमें कैसे-कैसे आली खयाल भरे हुए हैं। आपने स्वयं फरमाया था कि बहुत बातोंमें हिन्दुस्थानी अंग्रेजोंका मुकाबिला नहीं कर सकते। फिर लार्ड कर्जन तो इंग्लैण्डके रत्न हैं। उनके दिमागकी बराबरी कर गुस्ताखी करनेकी यहांके लोगोंको यह बूढ़ा भंगड़ कभी सलाह नहीं दे सकता। श्रीमान कैसे आली दिमाग शासक हैं, यह बात उनके उन लगातार कई व्याख्यानों-से टपकी पड़ती है, जो श्रीमानने विलायतमें दिये थे और जिनमें विलायत वासियोंको यह समझानेकी चेष्टा की थी कि हिन्दुस्थान क्या वस्तु है? आपने साफ दिखा दिया था कि विलायतवासी यह नहीं समझ सकते कि हिन्दुस्थान क्या है! हिन्दुस्थानको श्रीमान् स्वयं ही समझे हैं। विला-यतवाले समझते तो क्या समझते? विलायतमें उतना बड़ा हाथी कहां जिसपर वह चंवर छत्र लगाकर चढ़े थे? फिर कैसे समझा सकते कि वह किस उच्च श्रेणीके शासक हैं? यदि कोई ऐसा उपाय निकल सकता, जिससे वह एक बार भारतको विलायत तक खींच ले जा सकते तो विलायतवालोंको समझा सकते कि भारत क्या है और श्रीमान्‌का शासन क्या? आश्चर्य नहीं, भविष्यमें ऐसा कुछ उपाय निकल आवे। क्योंकि विज्ञान अभी बहुत कुछ करेगा।

भारतवासी जरा भय न करें, उन्हें लार्ड कर्जनके शासनमें कुछ करना न पड़ेगा। आनन्दही आनन्द है। चैनसे भंग पियो और मौज उड़ाओ। नजीर खूब कह गया है—

कूंडीके नकारे पे खुतकेका लगा डंका।
नित भंग पीके प्यारे दिन रात बजा डंका॥

पर एक प्याला इस बूढ़े ब्राह्मणको देना भूल न जाना।

(भारतमित्र १७ सितम्बर सन् १९०४ ई०)

वैसरायका कर्तव्य (३)

माई लार्ड! आपने इस देशमें फिर पदार्पण किया, इससे यह भूमि कृतार्थ हुई। विद्वान बुद्धिमान और विचारशील पुरुषोंके चरण जिस भूमिपर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है। आपमें उक्त तीन गुणोंके सिवा चौथा गुण राजशक्तिका है। अतः आपके श्रीचरण-स्पर्शसे भारतभूमि तीर्थसे भी कुछ बढ़ कर बन गई। आप गत मंगलवारको फिरसे भारतके राजसिंहासन पर सम्राट्के प्रतिनिधि बनकर विराजमान हुए। भगवान आपका मङ्गल करे और इस पतित देशके मङ्गलकी इच्छा आपके हृदयमें उत्पन्न करे।

बम्बईमें पांव रखते ही आपने अपने मनकी कुछ बात कह डाली हैं। यद्यपि बम्बईकी म्यूनिसिपलिटीने वह बातें सुननेकी इच्छा अपने अभिनन्दनपत्रमें प्रकाशित नहीं की थी, तथापि आपने बेपूछेही कह डालीं। ठीक उसी प्रकार बिना बुलाये यह दीन भङ्गड़ ब्राह्मण शिवशम्भु शर्म्मा तीसरी बार अपना चिट्ठा लेकर आपकी सेवामें उपस्थित है। इसे भी प्रजाका प्रतिनिधि होनेका दावा है। इसीसे यह राजप्रतिनिधिके सम्मुख प्रजाका कच्चाचिट्ठा सुनाने आया है। आप सुनिये न सुनिये, यह सुनाकरही जावेगा।

अवश्यही इस देशकी प्रजाने इस दीन ब्राह्मणको अपनी सभामें बुलाकर कभी अपने प्रतिनिधि होनेका टीका नहीं किया और न कोई पट्टा लिख दिया है। आप जैसे बाजाबृता राजप्रतिनिधि हैं वैसा बाजाबृता शिवशम्भु प्रजाका प्रतिनिधि नहीं है। आपको सम्राट्ने बुलाकर अपना वैसराय फिरसे बनाया। विलायती गजटमें खबर निकली। वही खबर तार द्वारा भारतमें पहुँची। मार्गमें जगह

जगह स्वागत हुआ। बम्बईमें स्वागत हुआ। कलकत्तेमें कई बार गजट हुआ। रेलसे उतरेते और राजसिंहासनपर बैठते समय दो बार सलामी-की तोपें सर हुई। कितनेही राजा, नवाब, बेगम आपके दर्शनार्थ बम्बई पहुँचे। बाजे बजते रहे, फौजें सलामी देती रहीं। ऐसी एक भी सनद प्रजा-प्रतिनिधि होनेकी शिवशम्भुके पास नहीं है। तथापि वह इस देशकी प्रजाका यहांके चिथड़ा-पोश कङ्गालोंका प्रतिनिधि होनेका दावा रखता है! क्योंकि उसने इस भूमिमें जन्म लिया हैं। उसका शरीर भारतकी मट्टीसे बना है और उसी मट्टीमें अपने शरीरकी मट्टीको एक दिन मिला देनेका इरादा रखता है। बचपनमें इसी देशकी धूलमें लोट कर बड़ा हुआ, इसी भूमिके अन्न-जलसे उसकी प्राणरक्षा होती है। इसी भूमिसे कुछ आनन्द हासिल करनेको उसे भंगकी चन्द पत्तियाँ मिल जाती हैं। गांवमें उसका कोई झोंपड़ा नहीं है। जंगलमें खेत नहीं है। एक पत्तीपर भी उसका अधिकार नहीं है। पर इस भूमिको छोड़कर उसका संसारमें कहीं ठिकाना भी नहीं है। इस भूमिपर उसका जरा स्वत्व न होनेपर भी इसे वह अपनी समझता है।

शिवशम्भुको कोई नहीं जानता। जो जानते हैं, वह संसारमें एकदम अनजान हैं। उन्हें कोई जानकर भी जानना नहीं चाहता। जाननेकी चीज शिवशम्भुके पास कुछ नहीं है। उसके कोई उपाधि नहीं, राजदरबारमें उसकी पूछ नहीं। हाकिमोंसे हाथ मिलानेकी उसकी हैसियत नहीं, उनकी हांमें हां मिलानेकी उसे ताब नहीं। वह एक कपर्दक-शून्य घमण्डी ब्राह्मण है। हे राजप्रतिनिधि! क्या उसकी दो चार बातें सुनियेगा?

आपने बम्बईमें कहा है कि भारतभूमिको मैं किस्सा-कहानीकी भूमि नहीं, कर्तव्यभूमि समझता हूं। उसी कर्तव्यके पालनके लिये आपको ऐसे कठिन समयमें भी दूसरी बार भारतमें आना पड़ा! माई लार्ड! इस

कर्तव्यभूमिको हमलोग कर्म्मभूमि कहते हैं। आप कर्तव्य-पालन करने आये हैं और हम कर्मोका भोग भोगने। आपके कर्तव्य-पालनकी अवधि है, हमारे कर्म्मभोगकी अवधि नहीं। आप कर्तव्य-पालन करके कुछ दिन पीछे चले जावेंगे। हमें कर्म्मके भोग भोगते-भोगते यहीं समाप्त होना होगा और न जाने फिर भी कबतक वह भोग समाप्त होगा। जब थोड़े दिनके लिये आपका इस भूमिसे स्नेह है तो हमलोगोंका कितना भारी स्नेह होना चाहिये, यह अनुमान कीजिये। क्योंकि हमारा इस भूमिसे जीने-मरनेका साथ है।

माई लार्ड! यद्यपि आपको इस बातका बड़ा अभिमान है कि अंग्रेजों-में आपकी भांति भारतवर्षके विषयमें शासननीति समझनेवाला और शासन करनेवाला नहीं है। यह बात विलायतमें भी आपने कई बार हेर-फेर लगाकर कही और इस बार बम्बईमें उतरतेही फिर कही। आप इस देशमें रहकर ७२ महीने तक जिन बातोंकी नीव डालते रहे, अब उन्हें २४ मास या उससे कममें पूरा कर जाना चाहते हैं। सरहदों पर फौलादी दीवार बनादेना चाहते हैं। जिससे इस देशकी भूमिको कोई बाहरी शत्रु उठाकर अपने घरमें न लेजावे! अथवा जो शान्ति आपके कथनानुसार धीरे-धीरे यहाँ सञ्चित हुई है, उसे इतना पक्का कर देना चाहते हैं कि आपके बाद जो वैसराय आपके राजसिंहासनपर बैठे उसे शौकीनी और खेल-तमाशेके सिवा दिनमें और नाच, बाल या निद्राके सिवा रातको कुछ करना न पड़ेगा! पर सच जानिये कि आपने इस देशको कुछ नहीं समझा, खाली समझनेकी शेखीमें रहे और आशा नहीं कि इन अगले कई महीनोंमें भी कुछ समझें। किन्तु इस देशने आपको खूब समझ लिया और अधिक समझनेकी जरूरत नहीं रही। यद्यपि आप कहते हैं, कि यह कहानीका देश नहीं कर्तव्यका देश है, तथापि यहांकी प्रजाने समझ लिया है कि आपका कर्तव्यही कहानी

है। एक बड़ा सुन्दर मेल हुआ था, अर्थात् आप बड़े घमण्डी शासक हैं और यहाँकी प्रजाके लोग भी बड़े भारी घमण्डी। पर कठिनाई इसी बात की है कि दोनोंका घमण्ड दो तरहका है। आपको जिन बातोंका घमण्ड है, उनपर यहाँके लोग हँस पड़ते हैं। यहाँके लोगोंको जो घमण्ड है, उसे आप समझते नहीं और शायद समझेंगे भी नहीं।

जिन आडम्बरोंको करके आप अपने मनमें बहुत प्रसन्न होते हैं या यह समझ बैठते हैं कि बड़ा कर्तव्य-पालन किया, वह इस देशकी प्रजाकी दृष्टिमें कुछ भी नहीं है। वह इतने आडम्बर देख सुन चुकी और कल्पना कर चुकी है कि और किसी आडम्बरका असर उस पर नहीं हो सकता। आप सरहद्दको लोहेकी दीवारसे मजबूत करते हैं। यहाँकी प्रजाने पढ़ा है कि एक राजाने पृथिवीको काबूमें करके स्वर्गमें सीढ़ी लगानी चाही थी। आप और लार्ड किचनर मिलकर जो फौलादी दीवार बनाते हैं, उससे बहुत मजबूत एक दीवार लार्ड केनिंग बना गये थे। आपने भी बम्बईकी स्पीचमें केनिंगका नाम लिया है। आज ४६ साल हो गये, वह दीवार अटल अचल खड़ी हुई है। वह स्वर्गीया महाराणीका घोषणापत्र है, जो १ नवम्बर १८५८ ई० को केनिंग महोदयने सुनाया था। वही भारतवर्षके लिये फौलादी दीवार है। वही दीवार भारतकी रक्षा करती है। उसी दीवारको भारतवासी अपना रक्षक समझते हैं। उस दीवारके होते आपके या लार्ड किचनरके कोई दीवार बनानेकी जरूरत नहीं है। उसकी आड़में आप जो चाहे जितनी मजबूत दीवारोंकी कल्पना कर सकते हैं। आडम्बरसे इस देशका शासन नहीं हो सकता। आडम्बरका आदर इस देशकी कंगाल प्रजा नहीं कर सकती। आपने अपनी समझमें बहुत-कुछ किया, पर फल यह हुआ कि विलायत जाकर वह सब अपनेही मुंहसे सुनाना पड़ा। कारण यह कि करनेसे कहीं अधिक कहनेका आपका स्वभाव है। इससे आपका करना भी कहे बिना प्रकाशित नहीं

होता ! यहाँकी अधिक प्रजा ऐसी है जो अबतक भी नहीं जानती कि आप यहाँके वैसराय और राजप्रतिनिधि हैं और आप एक बार विलायत जाकर फिरसे भारतमें आये हैं। आपने गरीब प्रजाकी ओर न कभी दृष्टि खोलकर देखा, न गरीबोंने आपको जाना। अब भी आपकी बातोंसे आपकी वह चेष्टा नहीं पाई जाती। इससे स्मरण रहे कि जब अपने पदको त्यागकर आप फिर स्वदेशमें जावेंगे तो चाहे आपको अपने कितनेही गुण कीर्त्तन करनेका अवसर मिले, यह तो कभी न कह सकेंगे कि कभी भारतकी प्रजाका मन भी अपने हाथमें किया था !

यह वह देश है, जहाँकी प्रजा एक दिन पहले रामचन्द्रके राजतिलक पानेके आनन्दमें मस्त थी और अगले दिन अचानक रामचन्द्र बनको चले तो रोती रोती उनके पीछे जाती थी। भरतको उस प्रजाका मन प्रसन्न करनेके लिये कोई भारी दरबार नहीं करना पड़ा, हाथियोंका जुलूस नहीं निकालना पड़ा, वरंच दौड़कर बनमें जाना पड़ा और रामचन्द्रको फिर अयोध्यामें लानेका यत्न करना पड़ा। जब वह न आये तो उनकी खड़ाऊंको सिरपर धरकर अयोध्या तक आये और खड़ाउओंको राज-सिंहासन पर रखकर स्वयं चौदह सालतक वल्कल धारण करके उनकी सेवा करते रहे। तब प्रजाने समझा कि भरत अयोध्याका शासन करनेके योग्य है।

माई लार्ड ! आप वक्तृता देनेमें बड़े दक्ष हैं। पर यहाँ वक्तृताका कुछ और ही वजन है। सत्यवादी युधिष्ठिरके मुखसे जो निकल जाता था, वही होता था। आयु भरमें उसने एक बार बहुत भारी पोलिटिकल जरूरत पड़नेसे कुछ सहजसा झूठ बोलनेकी चेष्टाकी थी। वही बात महाभारतमें लिखी हुई है। जब तक महाभारत है, वह बात भी रहेगी। एक बार अपनी वक्तृताओंसे इस विषयको मिलाइये और फिर विचारिये कि इस देशकी प्रजाके साथ आप किस प्रकार अपना

कर्तव्य पालन करेंगे। साथ ही इस समय इस अधेड़ भक्कड़ ब्राह्मणको अपनी भांग बूटीकी फिकर करनेके लिये आज्ञा दीजिये।

(भारतमित्र १७ दिसम्बर सन् १९०४ ई०)

पीछे मत फेंकिये (४)

माई लार्ड! सौ साल पूरे होनेमें अभी कई महीनोंकी कसर है। उस समय ईष्ट इण्डिया कम्पनीने लार्ड कार्नवालिसको दूसरी बार इस देशका गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा था। तबसे अब तक आपहीको भारत-वर्षका फिरसे शासक बनकर आनेका अवसर मिला है। सौ वर्ष पहलेके उस समयकी ओर एक बार दृष्टि कीजिये। तबमें और अबमें कितना अन्तर हो गया है, क्यासे क्या हो गया है? जागता हुआ रङ्क अति चिन्ताका मारा सोजावे और स्वप्नमें अपनेको राजा देखे, द्वारपर हाथी झूमते देखे अथवा अलिफलैलाके अबुलहसनकी भांति कोई तरल युवक प्याले पर प्याला उड़ाता घरमें बेहोश हो और जागनेपर आंखे मलते-मलते अपनेको बगदादका खलीफा देखे, आलीशान सजे महलकी शोभा उसे चक्करमें डाल दे, सुन्दरी दासियोंके जेवर और कामदार वस्त्रोंकी चमक उसकी आंखोंमें चकाचौंध लगा दे तथा सुन्दर बाजों और गीतोंकी मधुरध्वनि उसके कानोंमें अमृत ढालने लगे, तब भी उसे शायद आश्चर्य न हो जितना सौ साल पहलेकी भारतमें अंगरेजी राज्यकी दशाको आजकलकी दशाके साथ मिलानेसे हो सकता है।

जुलाई सन १८०५ ई० में लार्ड कार्नवालिस दूसरी बार भारतके गवर्नर जनरल होकर कलकत्तेमें पधारे थे। उस समय ईष्टइण्डिया कम्पनीकी सरकारपर चारों ओरसे चिन्ताओंकी भरमार हो रही थी,

आशंकाएँ उसे दम नहीं लेने देती थीं। हुलकरसे एक नई लड़ाई होनेको थी, सेन्धियासे लड़ाई चलती थीं। खजानेमें बरकतही बरकत थीं। जमीनका कर वसूल होनेमें बहुत देर थी। युद्धस्थलमें लड़नेवाली सेनाओंको पाँच पांच महीनेसे तनखाह नहीं मिली थी। विलायतके धनियोंमें कम्पनीका कुछ विश्वास न था। सत्तर सालका बूढ़ा गवर्नर जनरल यह सब बातें देखकर घबराया हुआ था। उससे केवल यही बन पड़ा कि दूसरी बार पदारूढ़ होनेके तीनही मास पीछे गाजीपुरमें जाकर प्राण देदिया। कई दिन तक इस बातकी खबर भी लोगोंने नहीं जानी। आज विलायतसे भारत तक दिनमें कई बार तार दौड़ जाता है। कई एक घन्टोंमें शिमलेसे कलकत्ते तक स्पेशल ट्रेन पार हो जाती है। उस समय कलकत्तेसे गाजीपुर तक जानेमें बड़ेलाटको कितनेही दिन लगे थे। गाजीपुरमें उनके लिये कलकत्तेसे जल्द किसी प्रकारकी सहायता पहुँचनेका कुछ उपाय न था।

किन्तु अब कुछ औरही समय है। माई लार्ड! लार्ड कार्नवालिसके दूसरी बार गवर्नर जनरल होकर भारतमें आने और आपके दूसरी बार आनेमें बड़ा अन्तर है। प्रताप आपके साथ साथ है। अंग्रेजी राज्यके भाग्यका सूर्य्य मध्यान्हमें है। उस समयके बड़ेलाटको जितने दिन कलकत्तेमें गाजीपुर जानेमें लगे होंगे, आप उनसे कम दिनोंमें विलायतसे भारतमें पहुँच गये। लार्ड कार्नवालिसको आतेही दो एक देशी रईसोंके साथ लड़ाई करनेकी चिन्ता थी, आपके स्वागतके लिये कोड़ियों राजा, रईस बम्बई दौड़े गये और जहाजसे उतरतेही उन्होंने आपका स्वागत करके अपने भाग्यको धन्य समझा। कितनेही बधाई देने कलकत्ते पहुँचे और कितने और चले आरहे हैं। प्रजाकी चाहे कैसीही दशा हो, पर

खजानेमें रुपये उबले पड़ते हैं। इसके लिये चारों ओरसे आपकी बड़ाई होती है। साख इस समयकी गवर्नमेण्टकी इतनी है कि विलायतमें या भारतमें एक बार 'हूं' करतेही रुपयेकी वर्षा होने लगती है। विलायती मन्त्री आपकी मुट्ठीमें हैं। विलायतकी जिस कन्सरवेटिव गवर्नमेण्टने आपको इस देशका वैसराय किया, वह अभी तक बराबर शासनकी मालिक है। लिबरल निर्जीव हैं। जान ब्राइट, ग्लाडष्टोन, ब्राडला, जैसे लोगोंसे विलायत शून्य है, इससे आप परम स्वतन्त्र हैं। इण्डिया आफिस आपके हाथकी पुतली है। विलायतके प्रधानमन्त्री आपके प्रियमित्र हैं। जो कुछ आप को करना है, वह विलायतमें कई मास रहकर पहलेही वहांके शासकोंसे निश्चय कर चुके हैं। अभी आपकी चढ़ती उमर है। चिन्ता कुछ नहीं है! जो कुछ चिन्ता थी, वह भीं जल्द मिट गई। स्वयं आपकी विलायतके बड़े भारी बुद्धिमानों और राजनीति-विशारदोंमें गिनती है, वरंच कह सकते हैं कि विलायतके मन्त्री लोग आपके मुंहकी ओर ताकते हैं। सम्राट्का आप पर बहुत भारी विश्वास है। विलायतके प्रधान समाचारपत्र मानो आपके बन्दीजन हैं। बीच-बीचमें आपका गुणग्राम सुनाना पुण्यकार्य समझते हैं। सारांश यह कि लार्ड कार्नवालिसके समय और आपके समयमें बड़ाही भेद होगया है।

संसारमें अब अंग्रेजी प्रताप अखण्ड है। भारतके राजा अब आपके हुक्मके बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिये, वह हाजिर हैं। आपके हुक्मकी तेजी तिब्बतके पहाड़ोंकी बरफको पिघलाती है, फारिसकी खाड़ीका जल सुखाती है, काबुलके पहाड़ोंको नर्म्म करती है। जल, स्थल, वायु, और आकाशमण्डलमें सर्वत्र आपकी विजय है। इस धराधाममें अब

अंग्रेज़ी प्रतापके आगे कोई उंगुली उठानेवाला नहीं है। इस देशमें एक महाप्रतापी राजाके प्रतापका वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उसके यहां जल भरता था, पवन उसके यहाँ चक्की चलाता था, चाँद सूरज उसके यहाँ रोशनी करते थे, इत्यादि। पर अंग्रेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया है। समुद्र अंग्रेजी राज्यका मल्लाह है, पहाड़ोंकी उपत्यकाएँ बैठनेके लिये कुर्सी मूढ़े। बिजली कलें चलानेवाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़नेवाली दूती, इत्यादि इत्यादि।

आश्चर्य्य है माई लार्ड! एक सौ सालमें अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी प्रातापकी तो इतनी उन्नति हो पर उसी प्रतापी बृटिश राज्यके अधीन रहकर भारत अपनी रही सही हैसियत भी खो दे! इस अपार उन्नतिके समयमें आप जैसे शासकके जीमें भारतवासियोंको आगे बढ़ानेकी जगह पीछे धकेलनेकी इच्छा उत्पन्न हो! उनका हौसला बढ़ानेकी जगह उनकी हिम्मत तोड़नेमें आप अपनी बुद्धिका अपव्यय करें! जिस जातिसे पुरानी कोई जाति इस धराधाम पर मौजूद नहीं, जो हजार सालसे अधिककी घोर पराधीनता सहकर भी लुप्त नहीं हुई, जीती है, जिसकी पुरानी सभ्यता और विद्याकी आलोचना करके विद्वान् और बुद्धिमान लोग आज भी मुग्ध होते हैं जिसने सदियों इस पृथिवीपर अखण्ड-शासन करके सभ्यता और मनुष्यत्व-का प्रचार किया, वह जाति क्या पीछे हटाने और धूलमें मिला देनेके योग्य है? आप जैसे उच्च श्रेणीके विद्वान्के जीमें यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुत-से काम करनेके योग्य नहीं और उनको आपके सजातीयही कर सकते हैं? आप परीक्षाकरके देखिये कि भारतवासी सचमुच उन ऊँचेसे ऊँचे कामोंको कर सकते हैं या नहीं, जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं। श्रममें, बुद्धिमें, विद्यामें, काममें, वक्तृतामें, सहिष्णुतामें, किसी बातमें इस देशके निवासी संसारमें किसी जातिके

आदमियोंसे पीछे रहनेवाले नहीं हैं। वरञ्च दो एक गुण भारतवासियोंमें ऐसे हैं कि संसार भरमें किसी जातिके लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्थानी फारसी पढ़के ठीक फारिसवालोंकी भांति बोल सकते हैं, कविता कर सकते हैं। अंग्रेजी बोलनेमें वह अंग्रेजोंकी पूरी नकल कर सकते हैं, कण्ठ तालूको अंग्रेजोंके सदृश बना सकते हैं। पर एक भी अंग्रेज ऐसा नहीं है, जो हिन्दुस्थानियोंकी भांति साफ हिन्दी बोल सकता हो। किसी बातमें हिन्दुस्थानी पीछे रहनेवाले नहीं हैं। हां दो बातोंमें वह अंग्रेजोंकी नकल या बराबरी नहीं कर सकते हैं। एक तो अपने शरीरके काले रंगको अंग्रेजोंकी भांति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्यको उनके भाग्यमें रगड़ कर बराबर नहीं कर सकते।

किन्तु इस संसारके आरम्भमें बड़ा भारी पार्थक्य होने पर भी अन्तमें बड़ी भारी एकता है। समय अन्तमें सबको अपने मार्ग पर ले आता है। देशपति राजा और भिक्षा मांग कर पेट भरनेवाले कङ्गालका परिणाम एकही होता है। मट्टी मट्टीमें मिल जाती है और यह जीतेजी लुभानेवाली दुनियां यहीं रह जाती है। कितनेही शासक और कितनेही नरेश इस पृथिवी पर होगये, आज उनका कहीं पता निशान नहीं है। थोड़े थोड़े दिन अपनी अपनी नौबत बजा गये, चले गये। बड़ी तलाशसे इतिहासके पन्नों अथवा टूटे फूटे खण्डहरोंमें उनके दो चार चिह्न मिल जाते हैं। माई लार्ड! बीते हुए समयको फिर लौटा लेनेकी शक्ति किसीमें नहीं है, आपमें भी नहीं है। दूरकी बात दूर रहे, इन पिछले सौ सालहीमें कितने बड़े लाट आये और चले गये। क्या उनका समय फिर लौट सकता है? कदापि नहीं। विचारिये तो मानो कल आप आये थे, किन्तु छः साल बीत गये। अब दूसरी बार आनेके बाद भी कितनेही दिन बीत गये तथा बीत जाते हैं। इसी प्रकार उमरें बीत

जावेंगी, युग बीत जावेंगे। समयके महासमुद्रमें मनुष्यकी आयु एक छोटी-सी बूंदकी भी बराबरी नहीं कर सकती। आपमें शक्ति नहीं है कि पिछले छः वर्षोंको लौटा सकें या उनमें जो कुछ हुआ है उसे अन्यथा कर सकें। दो साल आपके हाथमें अवश्य हैं। इनमें जो चाहें कर सकते हैं। चाहें तो इस देशकी ३० करोड़ प्रजाको अपनी अनुरक्त बना सकते हैं और इस देशके इतिहासमें अच्छे वैसरायोंमें अपना नाम छोड़ जासकते हैं। नहीं तो यह समय भी बीत जावेगा और फिर आपका करने धरनेका अधिकारही कुछ न रहेगा!

विक्रम, अशोक, अकबरके यह भूमि साथ नहीं गई। औरङ्गजेब, अलाउद्दीन इसे मुट्ठीमें दबा कर नहीं रख सके। महमूद, तैमूर और नादिर, इसे लूटके मालके साथ ऊंटों और हाथियोंपर लाद कर न ले जासके। आगे भी यह किसीके साथ न जावेगी, चाहे कोई कितनीही मजबूती क्यों न करे। इस समय भगवानने इसे एक औरही जातिके हाथमें अर्पण किया है, जिसकी बुद्धि, विद्या और प्रतापका संसार भरमें डङ्का बज रहा है। माई लार्ड! उसी जातिकी ओरसे आप इस देशकी ३० करोड़ प्रजाके शासक हैं।

अब यह विचारना आपहीके जिम्मे है कि इस देशकी प्रजाके साथ आपका क्या कर्तव्य है। हजार सालसे यह प्रजा गिरी दशामें है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ पचास साल गिरती चली जावे? इसके गिरानेमें बड़ेसे बड़ा इतनाही लाभ है कि कुछ सङ्कीर्णहृदय शासकोंकी यथेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है! किन्तु इसके उठाने और सम्हालनेमें जो लाभ हैं, उनकी तुलना नहीं हो सकती है। इतिहासमें सदा नाम रहेगा कि अंग्रेजोंने एक गिरी जातिके तीस करोड़ आदमियोंको उठाया था। माई लार्ड! दोनोंमें जो बात पसन्द हो, वह कर सकते हैं। कहिये क्या पसन्द है? पीछे हटाना या आगे बढ़ाना?

(भारतमित्र २५ फरवरी सन् १९०५)

आशाका अन्त (५)

माई लार्ड ! अबके आपके भाषणने नशा किरकिरा कर दिया। संसारके सब दुःखों और समस्त चिन्ताओंको जो शिवशम्भु शर्म्मा दो चुल्लू बूंटी पीकर भुला देता था, आज उसका उस प्यारी विजयापर भी मन नहीं है। आशासे बंधा हुआ यह संसार चलता है। रोगीको रोगसे, कैदीको कैदसे, ऋणीको ऋणसे, कंगालको दरिद्रतासे,--इसी प्रकार हरेक क्लेशित पुरुषको एक दिन अपने क्लेशसे मुक्त होनेकी आशा होती है। चाहे उसे इस जीवनमें क्लेशसे मुक्ति न मिले, पर आशाके सहारे इतना होता है कि वह धीरे धीरे अपने क्लेशोंको झेलता हुआ एक दिन इस क्लेशमय जीवनसे तो मुक्त हो जाता है। पर हाय ! जब उसकी यह आशा भी भंग हो जाय, उस समय उसके कष्टका क्या ठिकाना !--

"किस्मत पे उस मुसाफिरे खस्ताके रोइये।
जो थक गया हो बैठके मंजिलके सामने।"

बड़े लाट होकर आपके भारतमें पदार्पण करनेके समय इस देशके लोग श्रीमानसे जो जो आशाएँ करते और सुखस्वप्न देखते थे, वह सब उड़नछू हो गये। इस कलकत्ता महानगरीके समाचारपत्र कुछ दिन चौंक चौंक पड़ते थे कि आज बड़े लाट अमुक मोड़पर वेश बदले एक गरीब काले आदमीसे बातें कर रहे थे, परसों अमुक आफिसमें जाकर कामकी चक्कीमें पिसते हुए क्लर्कोंकी दशा देख रहे थे और उनसे कितनीही बातें पूछते जाते थे। इससे हिन्दू समझने लगे कि फिरसे विक्रमादित्यका आविर्भाव हुआ या अकबरका अमल होगया। मुसलमान खयाल करने लगे, खलीफा हारूंरशीदका जमाना आगया। पारसियोंने

आपको नौशीरवां समझनेकी मोहलत पाई थी या नहीं, ठीक नहीं कहा जासकता। क्योंकि श्रीमानने जल्द अपने कामोंसे ऐसे जल्दबाज लोगों-को कष्ट-कल्पना करनेके कष्टसे मुक्त कर दिया था। वह लोग थोड़ेही दिनोंमें इस बातके समझनेके योग्य होगये थे कि हमारा प्रधान शासक न विक्रमके रंग-ढङ्गका है, न हारूं या अकबरके, उसका रंगही निराला है! किसीसे नहीं मिलता।

माई लार्ड! इस देशकी दो चीजोंमें अजब तासीर है। एक यहांके जलवायुकी और दूसरे यहांके नमककी, जो उसी जलवायुसे उत्पन्न होता है। नीरससे नीरस शरीरमें यहांका जलवायु नमकीनी ला देता है। मजा यह कि उसे उस नमकीनीकी खबर तक नहीं होती। एक फारिसका कवि कहता है कि हिन्दुस्थानमें एक हरी पत्ती तक बेनमक नहीं है, मानो यह देश नमकसे सींचा गया है। किन्तु शिवशम्भु शर्म्माका विचार इस कविसे भी कुछ आगे है। वह समझता है कि यह देश नमककी एक महाखानि है, इसमें जो पड़ गया, वही नमक बन गया। श्रीमान् कभी चाहें तो सांभर-झीलके तटपर खड़े होकर देख सकते हैं, जो कुछ उसमें गिर जाता, वही नमक बन जाता है। यहां-के जलवायुसे अलग खड़े होकर कितनोंहीने बड़ी-बड़ी अटकलें लगाईं और लम्बे चौड़े मनसूबे बांधे पर यहांके जलवायुका असर होतेही वह सब काफूर हो गये।

अफसोस माई लार्ड! यहांके जलवायुकी तासीरने आपमें अपनी पिछली दशाके स्मरण रखनेकी शक्ति नहीं रहने दी। नहीं तो अपनी छः साल पहलेकी दशासे अबकी दशाका मिलान करके चकित होते। घबराके कहते कि ऐं! मैं क्या हो गया? क्या मैं वही हूं, जो विलायतसे भारतकी ओर चलनेसे पहले था? बम्बईमें जहाजसे उतरकर भूमिपर पांव रखतेही यहांके जलवायुका प्रभाव आपपर आरम्भ होगया था।

उसके प्रथम फलस्वरूप कलकत्तेमें पदार्पण करतेही आपने यहांके म्यूनिसिपल कारपोरेशनकी स्वाधीनताकी समाप्ति की। जब वह प्रभाव कुछ और बढ़ा तो अकाल पीड़ितोंकी सहायता करते समय आपकी समझमें आने लगा कि इस देशके कितनेही अभागे सचमुच अभागे नहीं, वरंच अच्छी मजदूरीके लालचसे जबरदस्ती अकालपीड़ितोंमें मिलकर दयालु सरकारको हैरान करते हैं! इससे मजदूरी कड़ी की गई।

इसी प्रकार जब प्रभाव तेज हुआ तो आपने अकालकी तरफसे आंखोंपर पट्टी बाँधकर दिल्ली-दरबार किया।

अन्तको गत वर्ष आपने यह भी साफ कह दिया कि बहुतसे पद ऐसे हैं जिनको पैदाइशी तौरसे अंग्रेजही पानेके योग्य हैं। भारत-वासियोंको सरकार जो देती है, वह भी उनकी हैसियतसे बढ़कर है। तब इस देशके लोगोंने समझ लिया था कि अब श्रीमान‍्पर यहांके जलवायुका पूरा सिक्का जम गया। उसी समय आपको स्वदेशदर्शनकी लालसा हुई। लोग समझे चलो अच्छा हुआ, जो हो चुका, वह हो चुका, आगेको तासीरकी अधिक उन्नतिसे पीछा छूटा। किन्तु आप कुछ न समझे। कोरियामें जब श्रीमान‍्की आयु अचानक सात साल बढ़कर चालीस होगई, उस समय भो श्रीमानकी समझमें आ गया था कि वहां-की सुन्दर आवहवाके प्रतापसे आप चालीस सालके होनेपर भी बत्तीस तंतीसके दिखाई देते हैं। पर इस देशकी आबहवाकी तासीर आपके कुछ समझमें न आई। वह विलायतमें भी श्रीमान‍्के साथ लगी गई और जबतक वहां रहे, अपना जोर दिखाती रही। यहां तक कि फिर आपको एक बार इस देशमें उठा लाई, किसी विघ्न वाधाकी परवा न की।

माई लार्ड! इस देशका नमक यहांके जलवायुका साथ देता है, क्योंकि उसी जलवायुसे उसका जन्म है। उसकी तासीर भी साथ साथ होती रही। वह पहले विचार-बुद्धि खोता है। पीछे दया और

सहृदयताको भगाता है और उदारताको हजम कर जाता है। अन्तको आँखोंपर पट्टी बांधकर, कानोंमें ठीठे ठोककर, नाकमें नकेल डालकर, आदमीको जिधर तिधर घसीटे फिरता है और उसके मुँहसे खुल्लम खुल्ला इस देशकी निन्दा कराता है। आदमीके मनमें वह यही जमा देता है कि जहांका खाना वहांकी खूब निन्दा करना और अपनी शेखी मारते जाना। हम लोग भी उस नमककी तासीरसे बेअसर नहीं हैं। पर हमारी हड्डियां उसीसे बनी हैं, इस कारण हमें इतना ज्ञान रहता है कि हमारे देशके नमककी क्या तासीर है। हमलोग खूब जानते थे कि यदि श्रीमान् कहीं दूसरी बार भारतमें आगये तो एक दम नमककी खानिमें जाकर नमक हो जावेंगे। इसीसे चाहते थे कि दोबारा आप न आवें। पर हमारी पेश न गई। आप आये और आतेही उस नमककी तासीर-का फल अपने कौंसिल और कानवोकेशनमें प्रगट कर डाला!

इतने दिन आप सरकारी भेदोंके जाननेसे, अच्छे पद पानेसे, उन्नति-की बातें सोचनेसे, सुगमतासे शिक्षा लाभ करनेसे, अपने स्वत्वोंके लिये पार्लीमेण्ट आदिमें पुकारनेसे, इस देशके लोगोंको रोकते रहे। आपकी शक्तिमें जो कुछ था, वह करते रहे। पर उसपर भी सन्तोष न हुआ, भगवानकी शक्तिपर भी हाथ चलाने लगे! जो सत्यप्रियता इस देशको सृष्टिके आदिसे मिली है, जिस देशका ईश्वर "सत्यंज्ञानमनन्तमृब्रह्म" है, वहांके लोगोंको सभामें बुलाके ज्ञानी और विद्वानका चोला पहनकर उनके मुँहपर झूठा और मक्कार कहने लगे। विचारिये तो यह कैसे अधःपतनकी बात है? जिस स्वदेशको श्रीमानने आदर्श सत्यका देश और वहांके लोगोंको सत्यवादी कहा है, उसका आला नमूना क्या श्रीमान् ही हैं? यदि सचमुच विलायत वैसाही देश हो, जैसा आप फरमाते हैं और भारत भी आपके कथनानुसार मिथ्यावादी और धूर्त देश हो, तोभी तो क्या कोई इस प्रकार कहता है? गिरेके ठोकर मारना क्या सज्जन और

सत्यवादीका काम है ? अपनी सत्यवादिता प्रकाश करनेके लिये दूसरेको मिथ्यावादी कहनाही क्या सत्यवादिताका सबूत है ?

माई लार्ड ! जब आपने अपने शासक होनेके विचारको भूलकर इस देशकी प्रजाके हृदयमें चोट पहुंचाई है तो दो एक बातें पूछ लेनेमें शायद कुछ गुस्ताखी न होगी ! सुनिये, विजित और विजेतामें बड़ा अन्तर है। जो भारतवर्ष हजार सालसे विदेशीय विजेताओंके पांवोंमें लोट रहा है, क्या उसकी प्रजाकी सत्यप्रियता विजेता इङ्गलेण्डके लोगोंकी सत्यप्रियताका मुकाबिला कर सकती है ? यह देश भी यदि विलायतकी भांति स्वाधीन होता और यहांके लोगही यहांके राजा होते तब यदि अपने देशके लोगोंको यहांके लोगोंसे अधिक सच्चा साबित कर सकते तो आपकी अवश्य कुछ बहादुरी होती। स्मरण करिये, उन दिनोंको कि जब अंग्रेजोंके देशपर विदेशियोंका अधिकार था। उस समय आपके स्वदेशियोंकी नैतिक दशा कैसी थी, उसका विचार तो कीजिये। यह वह देश है कि हजार साल पराये पांवके नीचे रहकर भी एकदम सत्यतासे च्युत नहीं हुआ है। यदि आपका युरोप या इंगलेण्ड दस साल भी पराधीन हो जाते तो आपको मालूम पड़े कि श्रीमानके स्वदेशीय कैसे सत्यवादी और नीति-परायण हैं। जो देश कर्म्मवादी है, वह क्या कभी असत्यवादी हो सकता है ? आपके स्वदेशीय यहां बड़ी-बड़ी इमारतोंमें रहते हैं, जैसी रुचि हो, वैसे पदार्थ भोग सकते हैं। भारत आपके लिये भोग्यभूमि है। किन्तु इस देशके लाखों आदमी, इसी देशमें पैदा होकर आवारा कुत्तोंकी भांति भटक-भटककर मरते हैं। उनको दो हाथ भूमि बैठनेको नहीं, पेट भरकर खानेको नहीं, मैले चिथड़े पहनकर उमरें बिता देते हैं और एक दिन कहीं पड़कर चुप-चाप प्राण दे देते हैं। हालकी इस सर्दीमें कितनोंहीके प्राण जहां-तहां निकल गये। इस प्रकार क्लेश पाकर मरनेपर भी क्या कभी वह लोग यह कहते हैं कि पापी राजा है, इससे हमारी यह

दुर्गति है ? माई लार्ड ! वह कर्म्मवादी हैं, वह यही समझते हैं कि किसी-का कुछ दोष नहीं है—सब हमारे पूर्व कर्मोंका दोष है ! हाय ! हाय ! ऐसी प्रजाको आप धूर्त कहते हैं !

कभी इस देशमें आकर आपने गरीबोंकी ओर ध्यान न दिया ! कभी यहांकी दीन भूखी प्रजाकी दशाका विचार न किया। कभी दस मीठे शब्द सुनाकर यहांके लोगोंको उत्साहित नहीं किया—फिर विचारिये तो गालियां यहांके लोगोंको आपने किस कृपाके बदलेमें दीं ? पराधीनता-की सबके जीमें बड़ी भारी चोट होती है। पर महारानी विक्टोरियाके सदय बरतावने यहांके लोगोंके जीसे वह दुःख भुला दिया था। इस देशके लोग सदा उनको माता तुल्य समझते रहे, अब उनके पुत्र महाराज एडवर्डपर भी इस देशके लोगोंकी वैसीही भक्ति है। किन्तु आप उन्हीं सम्राट् एडवर्डके प्रतिनिधि होकर इस देशकी प्रजाके अत्यन्त अप्रिय बने हैं। यह इस देशके बड़ही दुर्भाग्यकी बात है ! माई लार्ड ! इस देशकी प्रजाको आप नहीं चाहते और वह प्रजा आपको नहीं चाहती, फिर भी आप इस देशके शासक हैं और एक बार नहीं दूसरी बार शासक हुए हैं, यही विचार विचारकर इस अधबूढ़े भंगड़ ब्राह्मणका नशा किरकिरा हो-हो जाता है।

(भारतमित्र १८ मार्च सन् १९०५ ई०)

एक दुराशा (६)

नारङ्गीके रसमें जाफरानी वसन्ती बूटी छानकर शिवशम्भु शर्म्मा खटिया पर पड़े मौजोंका आनन्द ले रहे थे। खयाली घोड़ेकी बागें ढीली कर दी थीं। वह मनमानी जकन्दें भर रहा था। हाथ-पावोंको भी स्वाधीनता दी गई थी। वह खटियाके तूल अरजकी सीमा उल्लंघन

करके इधर-उधर निकल गये थे। कुछ देर इसी प्रकार शर्म्माजीका शरीर खटियापर था और खयाल दूसरी दुनियामें।

अचानक एक सुरीली गानेकी आवाजने चौंका दिया। कन-रसिया शिवशम्भु खटियापर उठ बैठे। कान लगाकर सुनने लगे। कानोंमें यह मधुर गीत बार-बार अमृत ढालने लगा—

चलो-चलो आज, खेलें होली कन्हैया घर।

कमरेसे निकल कर बरामदेमें खड़े हुए। मालूम हुआ कि पड़ोसमें किसी अमीरके यहाँ गाने-बजानेकी महफिल हो रही है। कोई सुरीली लयसे उक्त होली गा रहा है। साथही देखा बादल घिरे हुए हैं, बिजली चमक रही है, रिमझिम झड़ी लगी हुई है। वसन्तमें सावन देखकर अकल जरा चक्करमें पड़ी। विचारने लगे कि गानेवालेको मलार गाना चाहिये था, न कि होली। साथही खयाल आया कि फागुन सुदी है, वसन्तके विकाशका समय है, वह होली क्यों न गावे? इसमें तो गानेवाले-की नहीं, विधिकी भूल है, जिसने वसन्तमें सावन बना दिया है। कहां तो चान्दनी छिटकी होती, निर्म्मल वायु बहती, कोयलकी कूक सुनाई देती। कहाँ भादोंकी-सी अन्धियारी है, वर्षाकी झड़ी लगी हुई है! ओह! कैसा ऋतु विपर्यय है!

इस विचारको छोड़कर गीतके अर्थका विचार जीमें आया। होली खिलैया कहते हैं कि चलो आज कन्हैयाके घर होली खेलेंगे। कन्हैया कौन? ब्रजके राजकुमार और खेलनेवाले कौन? उनकी प्रजा— ग्वाल-बाल। इस विचारने शिवशम्भु शर्माको और भी चौंका दिया कि ऐं! क्या भारतमें ऐसा समय भी था, जब प्रजाके लोग राजाके घर जाकर होली खेलते थे और राजा-प्रजा मिलकर आनन्द मनाते थे! क्या इसी भारतमें राजा लोग प्रजाके आनन्दको किसी समय अपना आनन्द समझते थे? अच्छा यदि आज शिवशंभु शर्म्मा अपने मित्रवर्ग सहित

अबीर गुलालकी झोलियां, भरे रङ्गकी पिचकारियां लिये अपने राजाके घर होली खेलने जाये तो कहां जाये? राजा दूर सात समुद्र पार है। राजाका केवल नाम सुना है। न राजाको शिवशंभुने देखा, न राजाने शिवशंभुको। खैर राजा नहीं, उसने अपना प्रतिनिधि भारतमें भेजा है। कृष्ण द्वारिकाहीमें हैं, पर उधूवको प्रतिनिधि बनाकर ब्रजबासियोंको सन्तोष देनेके लिये ब्रजमें भेजा है। क्या उस राज-प्रतिनिधिके घर जाकर शिवशंभु होली नहीं खेल सकता?

ओफ! यह विचार वैसा ही बेतुका है, जैसे अभी वर्षामें होली गाई जाती थी! पर इसमें गानेवालेका क्या दोष है? वह तो समय समझकर ही गा रहा था। यदि वसन्तमें वर्षाकी झाड़ी लगे तो गानेवालोंको क्या मलार गाना चाहिये? सचमुच बड़ी कठिन समस्या है। कृष्ण है, उधूव हैं, पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटकने पाते! राजा है, राज-प्रतिनिधि है, पर प्रजाकी उन तक रसाई नहीं! सूर्य्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चान्दनी नहीं! माई लार्ड नगरहीमें है, पर शिवशम्भु उसके द्वार तक नहीं फटक सकता है, उसके घर चलकर होली खेलना तो विचारही दूसरा है। माई लार्डके घर तक प्रजाकी बात नहीं पहुंच सकती, बातकी हवा नहीं पहुंच सकती। जहांगीरकी भाँति उसने अपने शयनागार तक ऐसा कोई घण्टा नहीं लगाया, जिसकी जञ्जीर बाहरसे हिलाकर प्रजा अपनी फरयाद उसे सुना सके। न आगेको लगानेकी आशा है। प्रजा-की बोली वह नहीं समझता, उसकी बोली प्रजा नहीं समझती। प्रजाके मनका भाव वह न समझता है, न समझना चाहता है। उसके मनका भाव न प्रजा समझ सकती है, न समझनेका कोई उपाय है। उसका दर्शन दुलभ है। द्वितीयाके चन्द्रकी भांति कभी-कभी बहुत देर तक नजर गड़ानेसे उसका चन्द्रानन दिख जाता है, तो दिखजाता है। लोग उङ्ग-लियोंसे इशारे करते हैं कि वह है। किन्तु दूजके चान्दके उदयका भी

एक समय है। लोग उसे जान सकते हैं। माई लार्डके मुखचन्द्रके उदयके लिये कोई समय भी नियत नहीं। अच्छा, जिस प्रकार इस देशके निवासी माई लार्डका चन्द्रानन देखनेको टकटकी लगाये रहते हैं, या जैसे शिवशम्भु शर्माके जीमें अपने देशके माई लार्डसे होली खेलनेकी आई इस प्रकार कभी माई लार्डको भी इस देशके लोगोंकी सुध आती होगी? क्या कभी श्रीमानका जी होता होगा कि अपनी प्रजामें जिसके दण्ड-मुण्डके विधाता होकर आये हैं किसी एक आदमीसे मिल-कर उसके मनकी बात पूछें या कुछ आमोद-प्रमोदकी बातें करके उसके मनको टटोलें? माई लार्डको ड्यूटीका ध्यान दिलाना सूर्य्यको दीपक दिखाना है। वह स्वयं श्रीमुखसे कह चुके हैं कि ड्यूटीमें बँधा हुआ मैं इस देशमें फिर आया। यह देश मुझे बहुतही प्यारा है। इससे ड्यूटी और प्यारकी बात श्रीमानके कथनसेही तय हो जाती है। उसमें किसी प्रकारकी हुज्जत उठानेकी जरूरत नहीं। तथापि यह प्रश्न आपसे आप जीमें उठता है कि इस देशकी प्रजासे प्रजाके माई लार्डका निकट होना और प्रजाके लोगोंकी बात जानना भी उस ड्यूटीकी सीमा तक पहुंचता है या नहीं? यदि पहुंचता है तो क्या श्रीमान बता सकते हैं कि अपने छः सालके लम्बे शासनमें इस देशकी प्रजाको क्या जाना और उससे क्या सम्बन्ध उत्पन्न किया? जो पहरेदार सिरपर फेंटा बांधे हाथ-में सङ्गीनदार बन्दूक लिये काठके पुतलोंकी भांति गवर्नमेण्ट हौसके द्वार पर दण्डायमान रहते हैं, या छायाकी मूर्तिकी भांति जरा इधर उधर हिलते जुलते दिखाई देते हैं, कभी उनको भूले भटके आपने पूछा है कि कैसी गुजरती है? किसी काले प्यादे चपरासी या खानसामा आदिसे कभी आपने पूछा कि कैसे रहते हो? तुम्हारे देशकी क्या चाल-ढाल है? तुम्हारे देशके लोग हमारे राज्यको कैसा समझते हैं? क्या इन नीचे दरजेके नौकर-चाकरोंको कभी माई लार्डके श्रीमुखसे निकले हुए

अमृत रूपी वचनोंके सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ या खाली पेड़ों पर बैठी चिड़ियोंका शब्दही उनके कानों तक पहुँचकर रह गया ? क्या कभी सैर तमाशेमें टहलनेके समय या किसी एकान्त स्थानमें इस देशके किसी आदमीसे कुछ बातें करनेका अवसर मिला ? अथवा इस देशके प्रतिष्ठित बेगरज आदमीको अपने घरपर बुलाकर इस देशके लोगोंके सच्चे विचार जाननेकी चेष्टा की ? अथवा कभी विदेश या रियासतोंके दौरेमें उनलोगोंके सिवा जो झुकझुक कर लम्बी सलामें करने आये हों, किसी सच्चे और बेपरवा आदमीसे कुछ पूछने या कहनेका कष्ट किया ? सुनते हैं कि कलकत्तेमें श्रीमानने कोना कोना देख डाला। भारतमें क्या भीतर और क्या सीमाओंपर कोई जगह देखे बिना नहीं छोड़ी। बहुतोंका ऐसाही विचार था। पर कलकत्ता यूनिवर्सिटीके परीक्षोत्तीर्ण छात्रोंकी सभामें चैंसलरका जामा पहनकर माई लार्डने जो अभिज्ञता प्रगट की, उससे स्पष्ट हो गया कि जिन आखोंसे श्रीमानने देखा, उनमें इस देशकी बातें ठीक देखनेकी शक्ति न थी।

सारे भारतकी बात जाय, इस कलकत्तेहीमें देखनेकी इतनी बातें हैं कि केवल उनको भली भांति देख लेनेसे भारतवर्षकी बहुतसी बातोंका ज्ञान होसकता है। माई लार्डके शासनके छः साल हालवेलके स्मारकमें लाठ बनवाने, ब्लैक-हालका पता लगाने, अखतरलोनीकी लाठको मैदानसे उठवाकर वहाँ विक्टोरिया मिमोरियल-हाल बनवाने, गवर्नमेण्टहौसके आसपास अच्छी रोशनी, अच्छे फूटपाथ और अच्छी सड़कोंका प्रबन्ध करानेमें बीत गये। दूसरा दौर भी वैसेही कामोंमें बीत रहा है। सम्भव है कि उसमें भी श्रीमानके दिलपसन्द अंग्रेजी मुहल्लोंमें कुछ और भी बड़ी-बड़ी सड़कें निकल जायें और गवर्नमेण्टहौसकी तरफके स्वर्गकी सीमा और बढ़ जावे। पर नगर जैसा अन्धेरेमें था, वैसाही रहा, क्योंकि उसकी असली दशा देखनेके लिये औरही प्रकारकी आंखोंकी जरूरत

है। जब तक वह आंखें न होंगी, यह अंधेर योंही चला जावेगा। यदि किसी दिन शिवशम्भु शर्म्माके साथ माई लार्ड नगरकी दशा देखने चलते तो वह देखते कि इस महानगरकी लाखों प्रजा भेड़ों और सुअरोंकी भांति सड़े-गन्दे झोपड़ोंमें पड़ी लोटती है। उनके आस पास सड़ी बदबू और मैले सड़े पानीके नाले बहते हैं, कीचड़ और कूड़ेके ढेर चारों ओर लगे हुए हैं। उनके शरीरोंपर मैले-कुचैले फटे-चिथड़े लिपटे हुए हैं। उनमेंसे बहुतोंको आजीवन पेट भर अन्न और शरीर ढाकनेको कपड़ा नहीं मिलता। जाड़ोंमें सर्दीसे अकड़ कर रह जाते हैं और गर्मीमें सड़कों पर घूमते तथा जहाँ तहाँ पड़ते फिरते हैं। बरसातमें सड़े सीले घरोंमें भींगे पड़े रहते हैं। सारांश यह कि हरेक ऋतुकी तीव्रतामें सबसे आगे मृत्युके पथका वही अनुगमन करते हैं। मौतही एक है, जो उनकी दशा पर दया करके जल्द-जल्द उन्हें जीवन रूपी रोगके कष्टसे छुड़ाती है!

परन्तु क्या इनसे भी बढ़ कर और दृश्य नहीं हैं? हाँ हैं, पर जरा और स्थिरतासे देखनेके हैं। बालूमें बिखरी हुई चीनीको हाथी अपने सूंड़से नहीं उठा सकता, उसके लिये चिंवटीकी जिह्वा दरकार है। इसी कलकत्तेमें इसी इमारतोंके नगरमें माई लार्डकी प्रजामें हजारों आदमी ऐसे हैं, जिनको रहनेको सड़ा झोपड़ा भी नहीं है। गलियों और सड़कों पर घूमते-घूमते जहाँ जगह देखते है, वहीं पड़ रहते हैं। पहरेवाला आकर डण्डा लगाता है तो सरक कर दूसरी जगह जा पड़ते है। बीमार होते हैं तो सड़कोंही पर पड़े पांव पीटकर मर जाते हैं। कभी आग जलाकर खुले मैदान में पड़े रहते हैं। कभी-कभी हलवाइयोंकी भट्ठियोंसे चमट कर रात काट देते हैं। नित्य इनकी दो चार लाशें जहां तहांसे पड़ी हुई पुलिस उठाती है। भला माई मार्ड तक उनकी बात कौन पहुँचावे? दिल्ली-दरबारमें भी जहाँ सारे भारतका वैभव एकत्र था, सैकड़ों ऐसे लोग दिल्ली-की सड़कोंपर पड़े दिखाई देते थे, परन्तु उनकी ओर देखनेवाला कोई न था।

यदि माई लार्ड एक बार इन लोगोंको देख पाते तो पूछनेको जगह हो जाती कि वह लोग भी बृटिश राज्यके सिटिजन हैं वा नहीं ? यदि हैं तो कृपा पूर्वक पता लगाइये कि उनके रहनेके स्थान कहां हैं और बृटिश राज्यसे उनका क्या नाता है ? क्या कहकर वह अपने राजा और उसके प्रतिनिधिको सम्बोधन करें ? किन शब्दोंमें बृटिश राज्यको असीस दें ? क्या यों कहें कि जिस बृटिश राज्यमें हम अपनी जन्मभूमिमें एक उंगल भूमिके अधिकारी नहीं, जिसमें हमारे शरीरको फटे चिथड़े भी नहीं जुड़े और न कभी पापी पेटको पूरा अन्न मिला, उस राज्यकी जय हो ! उसका राजप्रतिनिधि हाथियोंका जुलूस निकालकर सबसे बड़े हाथीपर चँवर छत्र लगा कर निकले और स्वदेशमें जाकर प्रजाके सुखी होनेका डङ्का बजावे ?

इस देशमें करोड़ों प्रजा ऐसी है, जिसके लोग जब संध्या सवेरे किसी स्थान पर एकत्र होते हैं तो महाराज विक्रमकी चर्चा करते हैं और उन राजा महाराजोंकी गुणावली वर्णन करते हैं, जो प्रजाका दुःख मिटाने और उनके अभावोंका पता लगानेके लिये रातोंको वेश बदलकर निकला करते थे। अकबरके प्रजापालनको और बीरबलके लोकरञ्जनकी कहानियां कहकर वह जी बहलाते हैं और समझते हैं कि न्याय और सुखका समय बीत गया। अब वह राजा संसारमें उत्पन्न नहीं होते, जो प्रजाके सुख दुःखकी बातें उनके घरोंमें आकर पूछ जाते थे। महारानी विक्टोरियाको वह अवश्य जानते हैं कि वह महारानी थीं और अब उनके पुत्र उनकी जगह राजा और इस देशके प्रभु हुए हैं। उनको इस बातकी खबर तक भी नहीं कि उनके प्रभुके कोई प्रतिनिधि होते हैं और वही इस देशके शासन-के मालिक होते हैं तथा कभी-कभी इस देशकी तीस करोड़ प्रजाका शासन करनेका घमण्ड भी करते हैं। अथवा मन चाहे तो इस देशके साथ बिना कोई अच्छा बरताव किये भी यहांके लोगोंको झूठा, मक्कार आदि

कहकर अपनी बड़ाई करते हैं।

इन सब विचारोंने इतनीं बात तो शिवशम्भुके जीमें भी पक्की करदी कि अब राजा प्रजाके मिलकर होली खेलनेका समय गया। जो बाकी था, वह काश्मीर-नरेश महाराज रणवीरसिंहके साथ समाप्त होगया। इस देशमें उस समयके फिर लौटनेकी जल्द आशा नहीं। इस देशकी प्रजाका अब वह भाग्य नहीं है। साथही किसी राजपुरुषका भी ऐसा सौभाग्य नहीं है, जो यहांकी प्रजाके अकिंचन प्रेमके प्राप्त करनेकी परवा करे। माई लार्ड अपने शासन-कालका सुन्दरसे सुन्दर सचित्र इतिहास स्वयं लिखवा सकते हैं, वह प्रजाके प्रेमकी क्या परवा करेंगे? तो भी इतना सन्देश भङ्गड़ शिवशम्भु शर्मा अपने प्रभु तक पहुंचा देना चाहता है कि आपके द्वार पर होली खेलनेकी आशा करनेवाले एक ब्राह्मणको कुछ नहीं तो कभी-कभी पागल समझकरही स्मरण कर लेना। वह आपकी गूंगी प्रजाका एक वकील है, जिसके शिक्षित होकर मुंह खोलने तक आप कुछ करना नहीं चाहते।

बमुलाजिमाने सुलतां कै रसानद, ईं दुआरा?
कि बशुक्रे बादशाही जे नजर मरां गदारा।

("भारतमित्र" २ सितम्बर १९०५ ई०)

विदाई सम्भाषण

माई लार्ड! अन्तको आपके शासनकालका इस देशमें अन्त होगया। अब आप इस देशसे अलग होते हैं। इस संसारमें सब बातोंका अन्त है। इससे आपके शासनकालका भी अन्त होता, चाहे आपकी एक बारकी कल्पनाके अनुसार आप यहांके चिरस्थायी वैसराय भी होजाते। किन्तु इतनी जल्दी वह समय पूरा हो जायगा ऐसा विचार न आपहीका था, न

इस देशके निवासियोंका। इससे जान पड़ता है कि आपके और यहांके निवासियोंके बीचमें कोई तीसरी शक्ति और भी है? जिसपर यहांवालों-का तो क्या आपका भी काबू नहीं है।

बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पादक होता है। आपको बिछड़ते देख-कर आज हृदयमें बड़ा दुःख है। माई लार्ड! आपके दूसरी बार इस देशमें आनेसे भारतवासी किसी प्रकार प्रसन्न न थे। वह यही चाहते थे कि आप फिर न आवें। पर आप आये और उससे यहांके लोग बहुत-ही दुःखित हुए। वह दिन रात यही मनाते थे कि जल्द श्रीमान यहांसे पधारें। पर अहो! आज आपके जानेपर हर्षकी जगह विषाद होता है! इसीसे जाना कि बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पदक होता है। बड़ा पवित्र, बड़ा निर्मल और कोमल होता है। वैरभाव छूटकर शान्त-रसका आविर्भाव उस समय होता है।

माई लार्डका देश देखनेका इस दीन भङ्गड़ ब्राह्मणको कभी इस जन्म-में सौभाग्य नहीं हुआ। इससे नहीं जानता कि वहां बिछड़नेके समय लोगोंका क्या भाव होता है। पर इस देशके पशु-पक्षियोंको भी बिछ-ड़नेके समय उदास देखा है। एक बार शिवशम्भुके दो गाय थीं। उनमें एक अधिक बलवाली थी। वह कभी-कभी अपने सींगोंकी टक्करसे दूसरी कमजोर गायको गिरा देती थी। एक दिन वह टक्कर मारनेवाली गाय पुरोहितको दे दी गई। देखा कि दुर्बल गाय उसके चले जानेसे प्रसन्न नहीं हुई, वरंच उस दिन वह भूखी खड़ी रही, चारा छुआ तक नहीं। माई लार्ड! जिस देशके पशुओं-की बिछड़ते समय यह दशा होती है, वहांके मनुष्योंकी कैसी दशा हो सकती है, इसका अन्दाजा लगाना कठिन नहीं है।

आगे भी इस देशमें जो प्रधान शासक आये अन्तमें उनको जाना पड़ा। इससे आपका जाना भी परम्पराकी चालसे कुछ अलग नहीं

है, तथापि आपके शासनकालका नाटक घोर दुःखान्त है और अधि
आश्चर्यकी बात यह है कि दर्शक तो क्या स्वयं सूत्रधार भी नहीं जान
था कि उसने जो खेल सुखान्त समझकर खेलना आरम्भ किया था, व
दुःखान्त होजावेगा। जिसके आदिमें सुख था, मध्यमें सीमासे बाह
सुख था, उसका अन्त ऐसे घोर दुःखके साथ कैसे हुआ ! आह ! घमण
खिलाड़ी समझता है कि दूसरोंको अपनी लीला दिखाता हूं, कि
परदेके पीछे एक औरही लीलामयकी लीला होरही है, यह उसे खबर नहीं

इस बार बम्बईमें उतरकर, माई लार्ड ! आपने जो जो इरादे जाहि
किये थे, जरा देखिये तो उनमेंसे कौन-कौन पूरे हुए। आपने कहा थ
कि यहांसे जाते समय भारतवर्षको ऐसा कर जाऊंगा कि मेरे बाद आने
वाले बड़ेलाटोंको वर्षों तक कुछ करना न पड़ेगा, वह कितनेही व
सुखकी नींद सोते रहेंगे। किन्तु बात उलटी हुई। आपको स्वयं इ
बार बेचैनी उठानी पड़ी है और इस देशमें जैसी अशान्ति आप फैल
चले हैं, उसके मिटानेमें आपके पदपर आनेवालोंको न जाने कबतक नीं
और भूख हराम करनी पड़ेगी। इस बार आपने अपना बिस्तर ग
राख पर रखा है और भारतवासियोंको गर्म तवे पर पानीकी बून्दोंक
भांति नचाया है। आप स्वयं भी सुखी न हो सके और यहांकी प्रजाक
सुखी न होने दिया, इसका लोगोंके चित्त पर बड़ाही दुःख है।

विचारिये तो क्या शान आपकी इस देशमें थी और अब क्या ह
गई ! कितने ऊंचे होकर आप कितने नीचे गिरे ! अलिफलैलाके अल
हदीनने चिराग रगड़कर और अबुलहसनने बगदादके खलीफाकी गद्दी
पर आंख खोलकर वह शान न देखी, जो दिल्लीदरबारमें आपने देखी
आपकी और आपकी लेडीकी कुरसी सोनेकी थी और आपके प्रभु महा
राजके छोटे भाई और उनकी पत्नीकी चांदीकी। आप दहने थे वह बायें
आप प्रथम थे वह दूसरे। इस देशके सब राजा रईसोंने आपको सलाम

पहले किया और बादशाहके भाईको पीछे। जुलूसमें आपका हाथी सबसे आगेऔर सबसे ऊँचा था, हौदा और चंवर छत्र आदि सामान सबसे बढ़-चढ़कर थे। सारांश यह कि ईश्वर और महाराज एडवर्डके बाद इस देशमें आपही का दरजा था। किन्तु अब देखते हैं कि जंगीलाटके मुकाबिलेमें आपने पटखनी खाई, सिरके बल नीचे आ रहे! आपके स्वदेशमें वही ऊँचे माने गये, आपको साफ नीचा देखना पड़ा। पदत्यागकी धमकीसे भी ऊँचे न हो सके।

आप बहुत धीर गम्भीर प्रसिद्ध थे। उस सारी धीरता गम्भीरताका आपने इस बार कौन्सिलमें बेकानूनी कानून पास करते और कन-वोकेशनमें वक्तृता देते समय दीवाला निकाल दिया। यह दीवाला तो इस देशमें हुआ! उधर विलायतमें आपके बारबार इस्तीफा देनेकी धमकीने प्रकाश कर दिया कि जड़ हिल गई है। अन्तमें वहाँ भी आपको दिवालिया होना पड़ा और धीरता गम्भीरताके साथ दृढ़ताको भी जलां-जलि देनी पड़ी। इस देशके हाकिम आपकी ताल पर नाचते थे, राजा महाराजा डोरी हिलानेसे सामने हाथ बांधे हाजिर होते थे। आपके एक इशारेमें प्रलय होती थी। कितनेही राजोंको मट्टीके खिलौनेकी भांति आपने तोड़ फोड़ डाला। कितनेही मट्टी काठके खिलौने आपकी कृपाके जादूसे बड़े बड़े पदाधिकारी बन गये। आपके एक इशारेमें इस देशकी शिक्षा पायमाल होगई, स्वाधीनता उड़ गई! बङ्गदेशके सिरपर आरा रखा गया। ओह! इतने बड़े माई लार्डका यह दरजा हुआ कि एक फौजी अफसर उनके इच्छित पदपर नियत न होसका! और उनको उसी गुस्सेके मारे इस्तीफा दाखिल करना पड़ा, वह भी मंजूर हो गया! उनका रखाया एक आदमी नौकर न रखा गया, उल्टा उन्हींको निकल जानेका हुक्म मिला!

जिस प्रकार आपका बहुत ऊंचे चढ़कर गिरना यहाँके निवासियों-

को दुःखित कर रहा है, गिरकर पड़ा रहना उससे भी अधिक दुःखित करता है। आपका पद छूट गया, तथापि आपका पीछा नहीं छूटा है। एक अदना क्लर्क जिसे नौकरी छोड़नेके लिये एक महीनेका नोटिस मिल गया हो नोटिसकी अवधिको बड़ी घृणासे काटता है। आपको इस समय अपने पदपर रहना कहां तक पसन्द है, यह आपही जानते होंगे। अपनी दशापर आपको कैसी घृणा आती है, इस बातके जानलेनेका इस देशके वासियोंको अवसर नहीं मिला। पर पतनके पीछे इतनी उलझनमें पड़ते उन्होंने किसीको नहीं देखा।

माई लार्ड! एकबार अपने कामोंकी ओर ध्यान दीजिये। आप किस कामको आये थे और क्या कर चले? शासकका प्रजाके प्रति कुछ तो कर्तव्य होता है, यह बात आप निश्चय मानते होंगे। सो कृपा करके बतलाइये क्या कर्तव्य आप इस देशकी प्रजाके साथ पालन कर चले? क्या आंख बन्द करके मनमाने हुक्म चलाना और किसीकी कुछ न सुननेका नामही शासन है? क्या प्रजाकी बातपर कभी कान न देना और उसको दबाकर उसकी मर्जीके विरुद्ध जिद्दसे सब काम किये चले जानाही शासन कहलाता है? एक काम तो ऐसा बताइये, जिसमें आपने जिद्द छोड़कर प्रजाकी बातपर ध्यान दिया हो। कैसर और जार भी घेरने-घोटनेसे प्रजाकी बात सुन लेते हैं, पर आप एक मौका तो ऐसा बताइये जिसमें किसी अनुरोध या प्रार्थना सुननेके लिये प्रजाके लोगोंको आपने अपने निकट फटकने दिया हो और उनकी बात सुनी हो। नादिरशाहने जब दिल्लीमें कतलेआम किया तो आसिफजाहके तलवार गलेमें डालकर प्रार्थना करनेपर उसने कतलेआम उसी दम रोक दिया। पर आठ करोड़ प्रजाके गिड़गिड़ाकर बङ्गविच्छेद न करनेकी प्रार्थना पर आपने जरा भी ध्यान नहीं दिया! इस समय आपकी शासन अवधि पूरी हो गई है, तथापि बङ्गविच्छेद किये बिना घर जाना आपको

पसन्द नहीं है ! नादिरसे भी बढ़कर आपकी जिद्द है। क्या आप समझते हैं कि आपकी जिद्दसे प्रजाके जीमें दुःख नहीं होता ? आप विचारिये तो एक आदमीको आपके कहनेपर पद न देनेसे आप नौकरी छोड़े जाते हैं, इस देशकी प्रजाको भी यदि कहीं जानेकी जगह होती तो क्या वह नाराज होकर इस देशको छोड़ न जाती ?

यहांकी प्रजाने आपकी जिद्दका फल यहीं देख लिया। उसने देख लिया कि आपकी जिस जिद्दने इस देशकी प्रजाको पीड़ित किया, आपको भी उसने कम पीड़ा न दी, यहां तक कि आप स्वयं उसका शिकार हुए। यहांकी प्रजा वह प्रजा है, जो अपने दुःख और कष्टोंकी अपेक्षा परिणामका अधिक ध्यान रखती है। वह जानती है कि संसारमें सब चीजोंका अन्त है। दुःखका समय भी एक दिन निकल जावेगा। इसीसे सब दुःखोंको झेलकर पराधीनता सहकर भी वह जीती है। माई लार्ड ! इस कृतज्ञताकी भूमिकी महिमा आपने कुछ न समझी और न यहांकी दीन प्रजाकी, श्रद्धा भक्ति अपने साथ ले जा सके इसका बड़ा दुःख है !

इस देशके शिक्षितोंको तो देखनेकी आपकी आंखोंको ताब नहीं। अनपढ़ गूंगी प्रजाका नाम कभी कभी आपके मुंहसे निकल जाया करता है। उसी अनपढ़ प्रजामें नर सुलतान नामके एक राजकुमारका गीत गाया जाता है। एक बार अपनी विपदके कई साल सुलतानने नरवर-गढ़ नामके एक स्थानमें काटे थे। वहां चौकीदारीसे लेकर उसे एक ऊंचे पद तक काम करना पड़ा था। जिस दिन घोड़े पर सवार होकर वह उस नगरसे विदा हुआ, नगरद्वारसे बाहर आकर उस नगरको जिस रीतिसे उसने अभिवादन किया था, वह सुनिये ! उसने आँखोंमें आंसू भरकर कहा—"प्यारे नरवरगढ़ ! मेरा प्रणाम ले, आज मैं तुझसे जुदा होता हूं। तू मेरा अन्नदाता है। अपनी विपदके दिन मैंने तुझमें काटे हैं, तेरे ऋणका बदला मैं गरीब सिपाही नहीं दे सकता। भाई नरवरगढ़ !

यदि मैंने जान बूझ कर एक दिन भी अपनी सेवामें चूक की हो, यहांकी प्रजाकी शुभचिन्ता न की हो, यहांकी स्त्रियोंको माता और बहनकी दृष्टिसे न देखा हो तो मेरा प्रणाम न ले, नहीं तो प्रसन्न होकर एक बार मेरा प्रणाम ले और मुझे जानेकी आज्ञा दे !" माई लार्ड ! जिस प्रजामें ऐसे राजकुमारका गीत गाया जाता है, उसके देशसे क्या आप भी चलते समय कुछ सम्भाषण करेंगे ? क्या आप कह सकेंगे—"अभागे भारत ! मैंने तुझसे सब प्रकारका लाभ उठाया और तेरी बदौलत वह शान देखी जो इस जीवनमें असम्भव है, तूने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, पर मैंने तेरे बिगाड़नेमें कुछ कमी न की। संसारके सबसे पुराने देश ! जब तक मेरे हाथमें शक्ति थी तेरी भलाईकी इच्छा मेरे जीमें न थी। अब कुछ शक्ति नहीं है, जो तेरे लिये कुछ कर सकूं, पर आशीर्वाद करता हूं कि तू फिर उठे और अपने प्राचीन गौरव और यशको फिरसे लाभ करे। मेरे बाद आने वाले तेरे गौरवको समझें।" आप कर सकते हैं और यह देश आपकी पिछली सब बातें भूल सकता है, पर इतनी उदारता माई लार्डमें कहां ?

(भारतमित्र २१ अक्तूबर १९०५ ई०)

बङ्ग विच्छेद (८)

गत १६ अक्तोबरको बङ्गविच्छेद या बंगालका पार्टीशन हो गया। पूर्व बंगाल और आसामका नया प्रान्त बनकर हमारे महाप्रभु माई लार्ड इंगलेण्डके महान राजप्रतिनिधिका तुगलकाबाद आबाद होगया। भङ्गड़ लोगोंके पिछले रगड़की भांति यही माई लार्डकी सबसे पिछली प्यारी इच्छा थी। खूब अच्छी तरह भंग घुट कर तय्यार होजाने पर भंगड़

आनन्दसे उस पर एक और रगड़ लगाता है। भंगड़-जीवनमें उससे बढ़कर और कुछ आनन्द नहीं होता। माई लार्डके भारतशासन-जीवनमें भी इससे अधिक आनन्दकी बात कदाचित् कोई न होगी, जिसे पूरी होते देखनेके लिये आप इस देशका सम्बन्ध-जाल छिन्न कर डालने पर भी उसमें अटके रहे।

माई लार्डको इस देशमें जो कुछ करना था, वह पूरा कर चुके थे। यहां तक कि अपने सब इरादोंको पूरा करते करते अपने शासनकालकी इतिश्री भी अपनेही करकमलसे कर चुके थे। जो कुछ करना बाकी था, वह यही बङ्गविच्छेद था। वह भी होगया। आप अपनी अन्तिम कीर्त्तिकी ध्वजा अपनेही हाथोंसे उड़ा चले और अपनी आंखोंको उसके प्रियदर्शनसे सुखी कर चले, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अपने शासनकालकी रकाबीमें बहुतसी कड़वी कसैली चीजें चख जाने पर भी आप अपने लिये 'मधुरेण समापयेत' कर चले यही गनीमत है।

अब कुछ करना रह भी गया हो तो उसके पूरा करनेकी शक्ति माई लार्डमें नहीं है। आपके हाथोंसे इस देशका जो बुरा भला होना था, वह हो चुका। एकही तीर आपके तर्कशमें और बाकी था, उससे आप बङ्गभूमिका वक्षस्थल छेद चले। बस, यहाँ आकर आपकी शक्ति समाप्त हो गई! इस देशकी भलाईकी ओर तो आपने उस समय भी दृष्टि न की, जब कुछ भला करनेकी शक्ति आपमें थी। पर अब कुछ बुराई करनेकी शक्ति भी आपमें नहीं रही, इससे यहांके लोगोंको बहुत ढाढस मिली है। अब आप हमारा कुछ नहीं कर सकते।

आपके शासनकालमें बङ्गविच्छेद इस देशके लिये अन्तिम विषाद और आपके लिये अन्तिम हर्ष है। इस प्रकारके विषाद और हर्ष, इस पृथिवीके सबसे पुराने देशकी प्रजाने बारम्बार देखे हैं। महाभारतमें सबका संहार होजाने पर भी घायल पड़े हुए दुर्म्मद दुर्योधनको

अश्वत्थामाकी यह वाणी सुनकर अपार हर्ष हुआ था कि मैं पांचों पाण्डवोंके सिर काटकर आपके पास लाया हूं। उसी प्रकार सेनासुधार रूपी महाभारतमें जंगीलाट किचनर रूपी भीमकी विजय-गदासे जर्जरित होकर पदच्युति-हृदमें पड़े इस देशके माई लार्डको इस खबरने बड़ा हर्ष पहुंचाया कि अपने हाथोंसे श्रीमानको बङ्गविच्छेदका अवसर मिला। इसी महाहर्षको लेकर माई लार्ड इस देशसे विदा होते हैं, यह बड़े सन्तोषकी बात है! अपनोंसे लड़कर श्रीमानकी इज्जत गई या श्रीमानही गये, उसका कुछ खयाल नहीं है, भारतीय प्रजाके सामने आपकी इज्जत बनी रही, यही बड़ी बात है। इसके सहारे स्वदेश तक श्रीमान मोछों पर ताव देते चले जासकते हैं।

श्रीमानके खयालके शासक इस देशने कई बार देखे हैं। पांच सौसे अधिक वर्ष हुए तुगलक वंशके एक बादशाहने दिल्लीको उजाड़ कर दौलताबाद बसाया था। पहले उसने दिल्लीकी प्रजाको हुक्म दिया कि दौलताबादमें जाकर बसो। जब प्रजा बड़े कष्टसे दिल्लीको छोड़कर वहाँ जाकर बसी तो उसे फिर दिल्लीको लौट आनेका हुक्म दिया। इस प्रकार दो तीन बार प्रजाको दिल्लीसे देवगिरि और देवगिरिसे दिल्ली अर्थात् श्रीमान् मुहम्मद तुगलकके दौलताबाद और अपने वतनके बीचमें चकराना और तबाह होना पड़ा। हमारे इस समयके माई लार्डने केवल इतनाही किया है कि बङ्गालके कुछ जिले आसाममें मिलाकर एक नया प्रान्त बना दिया है। कलकत्तेकी प्रजाको कलकत्ता छोड़कर चटगांवमें आबाद होनेका हुक्म तो नहीं दिया। जो प्रजा तुगलक जैसे शासकोंका खयाल बरदाश्त कर गई, वह क्या आजकलके माई लार्डके एक खयालको बरदाश्त नहीं कर सकती है?

सब ज्योंका त्यों है। बङ्गदेशकी भूमि जहाँ थी वहीं है और उसका हरएक नगर और गांव जहाँ था वहीं है। कलकत्ता उठाकर चीरापूंजीके

पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगलीके पुलपर नहीं आबैठा। पूर्व और पश्चिम बङ्गालके बीचमें कोई नहर नहीं खुद गई और दोनोंको अलग अलग करनेके लिये बीचमें कोई चीनकीसी दीवार नहीं बन गई है। पूर्व बङ्गाल, पश्चिम बङ्गालसे अलग होजाने पर भी अंग्रेजी शासनहीमें बना हुआ है और पश्चिम बङ्गाल भी पहलेकी भांति उसी शासनमें है। किसी बातमें कुछ फर्क नहीं पड़ा। खाली खयाली लड़ाई है। बङ्गविच्छेद करके माई लार्डने अपना एक खयाल पूरा किया है। इस्तीफा देकर भी एक खयालही पूरा किया और इस्तीफा मंजूर होजाने पर इस देशमें पड़ रहकर भी श्रीमानका प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागत तक ठहरना एक खयाल मात्र है।

कितनेही खयाली इस देशमें अपना खयाल पूरा करके चले गये। दो सवादो सौ साल पहले एक शासकने इस बङ्गदेशमें एक रुपयेके आठ मन धान बिकवाकर कहा था कि जो इससे सस्ता धान इस देशमें बिकवाकर इस देशके धनधान्य-पूर्ण होनेका परिचय देगा, उसको मैं अपनेसे अच्छा शासक समझूंगा। वह शासक भी नहीं है, उसका समय भी नहीं है। कई एक शताब्दियोंके भीतर इस भूमिने कितनेही रङ्ग पलटे हैं, कितने ही इसकी सीमाएं हो चुकी हैं। कितनेही नगर इसकी राजधानी बनकर उजड़ गये। गौड़के जिन खण्डहरोंमें अब उल्लू बोलते और गीदड़ चिल्लाते हैं, वहाँ कभी बाँके महल खड़े थे और वहीं बङ्गदेशका शासक रहता था। मुर्शिदाबाद जो आज एक लुटाहुआसा शहर दिखाई देता है, कुछ दिन पहले इसी बङ्गदेशकी राजधानी था और उसकी चहल पहलका कुछ ठिकाना न था। जहाँ घसियारे घास खोदा करते थे, वहाँ आज कलकत्ता जैसा महानगर बसा हुआ है, जिसके जोड़का एशियामें एक आध नगरही निकल सकता है। अब माई लार्डके बङ्गविच्छेदसे ढाका, शिलाङ्ग और चटगांवमेंसे हरेक राजधानीका

सेहरा बंधवानेके लिये सिर आगे बढ़ाता है। कौन जाने इनमेंसे किसके नसीबमें क्या लिखा है और भविष्य क्या क्या दिखायेगा!

दो हजार वर्ष नहीं हुए इस देशका एक शासक कह गया है—

"सैकड़ों राजा जिसे अपनी-अपनी समझकर चले गये, परन्तु वह किसीके भी साथ नहीं गई, ऐसी पृथिवीके पानेसे क्या राजाओंको अभिमान करना चाहिये? अब तो लोग इसके अंशके अंशको पाकर भी अपनेको भूपति मानते हैं। ओहो! जिसपर पश्चात्ताप करना चाहिये उसके लिये मूर्ख उल्टा आनन्द करते हैं!" वही राजा और कहता है—"यह पृथिवी मट्टीका एक छोटा-सा ढेला है जो चारों तरफसे समुद्ररूपी पानीकी रेखासे घिरा हुआ है! राजा लोग आपसमें लड़ भिड़कर इस छोटेसे ढेलेके छोटे-छोटे अंशोंपर अपना अधिकार जमाकर राज्य करते हैं। ऐसे क्षुद्र और दरिद्री राजाओंको लोग दानी कहकर जांचने जाते हैं। ऐसे नीचोंसे धनकी आशा करनेवाले अधम पुरुषोंको धिक्कार है।" यह वह शासक था कि इस देशका चक्रवर्त्ती अधीश्वर होनेपर भी एक दिन राजपाटको लात मारकर जङ्गलों और बनोंमें चला गया था। आज वही भारत एक ऐसे शासकका शासनकाल देख रहा है जो यहांका अधीश्वर नहीं है, कुछ नियत समयके लिये उसके हाथमें यहांका शासनभार दिया गया था; तो भी इतना मोहमें डूबा हुआ है कि स्वयं इस देशको त्यागकर भी इसे कुछ दिन और न त्यागनेका लोभ संवरण न कर सका।

यह बङ्गविच्छेद बंगका विच्छेद नहीं है। बंगनिवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए, वरञ्च और युक्त हो गये। जिन्होंने गत १६ अक्तूबरका दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंगदेश या भारतवर्षमें नहीं, पृथिवी भरमें वह अपूर्व दृश्य था। आर्य्य सन्तान उस दिन अपने प्राचीन वेशमें विचरण करती थी। बंगभूमि ऋषि-मुनियोंके समयकी आर्यभूमि

बनी हुई थी। किसी अपूर्व शक्तिने उसको उस दिन एक राखीसे बान्ध दिया था। बहुत कालके पश्चात् भारत सन्तानको होश हुआ कि भारतकी मट्टी वन्दनाके योग्य है। इसीसे वह एक स्वरसे "बन्दे मातरम्" कहकर चिल्ला उठे। बंगालके टुकड़े नहीं हुए, वरञ्च भारतके अन्यान्य टुकड़े भी बंग देशसे आकर चिमटे जाते हैं।

हां, एक बड़ेही पवित्र मेलको हमारे माई लार्ड विच्छिन्न किये जाते हैं। वह इस देशके राजा प्रजाका मेल है। स्वर्गीया विक्टोरिया महारानीके घोषणापत्र और शासनकालने इस देशकी प्रजाके जीमें यह बात जमादी थी कि अंग्रेज, प्रजाकी बात सुनकर और उसका मन रखकर शासन करना जानते हैं और वह रङ्गके नहीं, योग्यताके पक्षपाती हैं। केनिंग और रिपन आदि उदारहृदय शासकोंने अपने सुशासनसे इस भावकी पुष्टि की थी। इस समयके महाप्रभुने दिखा दिया कि वह पवित्र घोषणापत्र समय पड़ेकी चाल मात्र था। अंग्रेज अपने खयालके सामने किसीकी नहीं सुनते। विशेषकर दुर्बल भारतवासियोंकी चिल्लाहटका उनके जीमें कुछ भी वजन नहीं है। इससे आठ करोड़ बंगालियोंके एक स्वर होकर दिन रात महीनों रोने-गानेपर भी अंग्रेजी सरकारने कुछ न सुना। बंगालके दो टुकड़े कर डाले। उसी माई लार्डके हाथसे दो टुकड़े कराये, जिसके कहनेसे उसने केवल एक मिलिटरी मेम्बर रखना भी मंजूर नहीं किया और उसके लिये माई लार्डको नौकरीसे अलग करना भी पसन्द किया। भारतवासियोंके जीमें यह बात जम गई कि अंग्रेजोंसे भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना गाना वृथा है। दुर्बलकी वह नहीं सुनते।

बंगविच्छेदसे हमारे महाप्रभु सरदस्त राजा प्रजामें यही भाव उत्पन्न करा चले हैं। किन्तु हाय! इस समय इसपर महाप्रभुके देशमें कोई ध्यान देनेवाला तक नहीं है, महाप्रभु तो ध्यान देनेके योग्यही कहां?

लार्ड मिन्टोका स्वागत

श्रीभगवान करे श्रीमान् इस विनयसे प्रसन्न हों—मैं इस भारत देशकी मट्टीसे उत्पन्न होनेवाला, इसका अन्न फल मूल आदि खाकर प्राण-धारण करनेवाला, मिल जाय तो कुछ भोजन करनेवाला, नहीं तो उपवास कर जानेवाला, यदि कभी कुछ भङ्ग प्राप्त होजाय तो उसे पीकर प्रसन्न होने-वाला, जवानी बिताकर बुढ़ापेकी ओर फुर्तीसे कदम बढ़ानेवाला और एक दिन प्राणविसर्जन करके इस मातृभूमिकी वन्दनीय मट्टीमें मिलकर चिर शान्तिलाभ करनेकी आशा रखनेवाला शिवशम्भु शर्मा इस देशकी प्रजाका अभिनन्दनपत्र लेकर श्रीमानकी सेवामें उपस्थित हुआ हूं। इस देशकी प्रजा श्रीमानका हृदयसे स्वागत करती है। आप उसके राजाके प्रतिनिधि होकर आये हैं। पांच साल तक इस देशकी ३० करोड़ प्रजाके रक्षण, पालन और शासनका भार राजाने आपको सौंपा। इससे यहाँ-की प्रजा आपको राजाके तुल्य मानकर आपका स्वागत करती है और आपके इस महान् पदपर प्रतिष्ठित होनेके लिये हर्ष प्रकाश करती है।

भाग्यसे आप इस देशकी प्रजाके शासक हुए हैं। अर्थात् यहाँकी प्रजाकी इच्छासे आप यहांके शासक नियत नहीं हुए। न यहांकी प्रजा उस समयतक आपके विषयमें कुछ जानती थी, जब कि उसने श्रीमान्के इस नियोगकी खबर सुनी। किसीको श्रीमानकी ओरका कुछ भी गुमान न था। आपके नियोगकी खबर इस देशमें बिना मेघकी वर्षाकी भांति अचानक आ गिरी। अब भी यहाँकी प्रजा श्रीमान्के विषयमें कुछ नहीं समझी है, तथापि उसे आपके नियोगसे हर्ष हुआ। आपको पाकर वह वैसीही प्रसन्न हुई है, जैसे डूबता थाह पाकर प्रसन्न होता है। उसने सोचा है कि आपतक पहुंच जानेसे उसकी सब विपदोंकी इति हो जायगी।

भाग्यवानोंसे कुछ न कुछ सम्बन्ध निकाल लेना संसारकी चाल है। जो लोग श्रीमान तक पहुँच सके हैं, उन्होंने श्रीमानसे भी एक गहरा सम्बन्ध निकाल लिया है। वह लोग कहते हैं कि सौ साल पहले आपके बड़ोंमेंसे एक महानुभाव यहांका शासन कर गये हैं, इससे भारतका शासक होना आपके लिये कोई नई बात नहीं है। वह लोग साथही यह भी कहते हैं कि सौ साल पहलेवाले लार्ड मिन्टो बड़े प्रजापालक थे। प्रजाको प्रसन्न रखकर शासन करना चाहते थे। यह कहकर वह श्रीमानसे भी अच्छे शासन और प्रजा-रञ्जनकी आशा जनाते हैं। पर यह सम्बन्ध बहुत दूरका है। सौ साल पहलेकी बातका कितना प्रभाव हो सकता है, नहीं कहा जा सकता। उस समयकी प्रजामेंसे एक आदमी जीवित नहीं, जो कुछ उस समयकी आँखों देखी कह सके। फिर यह भी कुछ निश्चय नहीं कि श्रीमान् अपने उस बड़के शासनके विषयमें वैसाही विचार रखते हों, जैसा यहांके लोग कहते हैं। यह भी निश्चय नहीं कि श्रीमानको सौ साल पहलेकी शासननीति पसन्द होगी या नहीं तथा उसका कैसा प्रभाव श्रीमानके चित्तपर है। हाँ, एक प्रभाव देखा कि श्रीमानके पूर्व्ववर्ती शासकने अपनेसे सौ साल पहलेके शासककी बात स्मरण करके उस समयकी पोशाकमें गवर्नमेन्ट हौसके भीतर एक नाच, नाच डाला था।

सरांश यह कि लोग जिस ढङ्गसे श्रीमानकी बड़ाई करते हैं वह एक प्रकारकी शिष्टाचारकी रीति पूरी कर रहे हैं। आपकी असली बड़ाईका मौका अभी नहीं आया, पर वह मौका आपके हाथमें विलक्षण रूपसे है। श्रीमान् इस देशमें अभी यदि अज्ञातकुल नहीं तो अज्ञातशील अवश्य हैं। यहांके कुछ लोगोंकी समझमें आपके पूर्ववर्ती शासकने प्रजा-को बहुत सताया है और वह उसके हाथसे बहुत तंग हुई। वह समझते हैं कि आप उन पीड़ाओंको दूरकर देंगे, जो आपका पूर्ववर्ती शासक यहां फैला गया है। इसीसे वह दौड़कर आपके द्वारपर जाते हैं। यह कदापि

न समझिये कि आपके किसी गुणपर मोहित होकर जाते हैं। वह जैसे आंखोंपर पट्टी बांधे जाते हैं, वैसेही चले आते हैं, जिस अंधेरेमें हैं, उसीमें रहते हैं!

अब यह कैसे मालूम हो कि लोग जिन बातोंको कष्ट मानते हैं, उन्हें श्रीमान् भी कष्टही मानते हों? अथवा आपके पूर्ववर्ती शासकने जो काम किये, आप भी उन्हें अन्याय भरे काम मानते हों? साथही एक और बात है। प्रजाके लोगोंकी पहुंच श्रीमान् तक बहुत कठिन है। पर आप-का पूर्ववर्ती शासक आपसे पहलेही मिल चुका और जो कहना था वह कह गया। कैसे जाना जाय कि आप उसकी बातपर ध्यान न देकर प्रजाकी बातपर ध्यान देंगे? इस देशमें पदार्पण करनेके बाद जहां आप-को जरा भी खड़ा होना पड़ा है, वहीं उन लोगोंसे घिरे हुए रहे हैं, जिन्हें आपके पूर्ववर्ती शासकका शासन पसन्द है। उसकी बात बनाई रखनेको अपनी इज्जत समझते हैं। अब भी श्रीमान् चारों ओरसे उन्हीं लोगोंके घेरेमें हैं। कुछ करने धरनेकी बात तो अलग रहे, श्रीमानके विचारोंको भी इतनीं स्वाधीनता नहीं है कि उन लोगोंके बिठाये चौकी पहरेको जरा भी उल्लंघन कर सकें। तिसपर गजब यह कि श्रीमान्को इतनी भी खबर नहीं कि श्रीमान्की स्वाधीनता पर इतने पहरे बैठे हुए हैं। हां, यह खबर हो जाय तो वह हट सकते हैं।

जिस दिन श्रीमानने इस राजधानीमें पदार्पण करके इसका सौभाग्य बढ़ाया, उस दिन प्रजाके कुछ लोगोंने सड़कके किनारोंपर खड़े होकर श्रीमानको बड़ी कठिनाईसे एक दृष्टि देख पाया। इसके लिये पुलिस पहरेवालोंकी गाली, घूसे और धक्के भी बरदाश्त किये। बस, उन लोगोंने श्रीमान्के श्रीमुखकी एक झलक देख ली। कुछ कहने सुननेका अवसर उन्हें न मिला, न सहजमें मिल सकता। हुजूरने किसीको बुलाकर कुछ पूछताछ न की न सही, उसका कुछ अरमान नहीं, पर जो लोग दौड़कर

कुछ कहने सुननेकी आशासे हुजूरके द्वार तक गये थे, उन्हें भी उल्टे पांव लौट आना पड़ा। ऐसी आशा अन्ततः प्रजाको आपसे न थी। इस समय वह अपनी आशाको खड़ा होनेके लिये स्थान नहीं पाते हैं।

एक बार एक छोटा-सा लड़का अपनी सौतेली मातासे खानेको रोटी मांग रहा था। सौतेली माँ कुछ काममें लगी थी, लड़केके चिल्लानेसे तंग होकर उसने उसे एक बहुत ऊंचे ताकमें बिठा दिया। बेचारा भूख और रोटी दोनोंको भूल नीचे उतार लेनेके लिये रो रो कर प्रार्थना करने लगा, क्योंकि उसे ऊंचे ताकसे गिरकर मरनेका भय हो रहा था। इतनेमें उस लड़केका पिता आगया। उसने पितासे बहुत गिड़गिड़ाकर नीचे उतार लेनेकी प्रार्थना की। पर सौतेली माताने पतिको डांटकर कहा, कि खबर-दार! इस शरीर लड़केको वहीं टंगे रहने दो, इसने मुझे बड़ा दिक किया है! इस बालककीसी दशा इस समय इस देशकी प्रजाकी है। श्रीमानसे वह इस समय ताकसे उतार लेनेकी प्रार्थना करती है, रोटी नहीं मांगती। जो अत्याचार उसपर श्रीमानके पधारनेके कुछ दिन पहलेसे आरम्भ हुआ है, उसे दूर करनेके लिये गिड़गिड़ाती है, रोटी नहीं मांगती। बस, इतने-हीमें श्रीमान् प्रजाको प्रसन्न कर सकते हैं! सुनाम पानेका यह बहुत ही अच्छा अवसर है, यदि श्रीमानको उसकी कुछ परवा हो।

आशा मनुष्यको बहुत लुभाती है, विशेषकर दुर्बलको परम कष्ट देती है। श्रीमानने इस देशमें पदार्पण करके बम्बईमें कहा और यहां भी एक बार कहा कि अपने शासनकालमें श्रीमान् इस देशमें सुख शान्ति बढ़ाना चाहते हैं। इससे यहांकी प्रजाको बड़ी आशा हुई थी कि वह ताकसे नीचे उतार ली जायगी, पर श्रीमान्के दो एक कामों तथा कौंसिलके उत्तरने उस आशाको ढीला कर डाला है, उसे ताकसे उतरनेका भरोसा भी नहीं रहा।

अभी कुछ दिन हुए आपके एक लफटन्टने कहा था कि मेरी दशा

उस आदमीकोसी है, जिसके एक हिन्दू और एक मुसलमान दो जोरू हों, हिन्दू जोरू नाराज रहती हो और मुसलमान जोरू प्रसन्न। इससे वह हिन्दू जोरूको हटाकर मुसलमान बीबीसे खूब प्रेम करने लगे। श्रीमानके उस लफटन्टकी ठीक वैसी दशा है या नहीं, कहा नहीं जा सकता! पर श्रीमानकी दशा ठीक उस लड़केके पिताकीसी है, जिसकी कहानी ऊपर कही गई है। उधर उसका लड़का ताकमें बैठा नीचे उतरनेके लिये रोता है और इधर उसकी नवीना सुन्दरी स्त्री लड़केको खूब डरानेके लिये पतिपर आंखे लाल करती है। प्रजा और "प्रेस्टीज" दो खयालोंमें श्रीमान् फंसे हैं। प्रजा ताकका बालक है और प्रेस्टीज नवीन सुन्दरी पत्नी--किसकी बात रखेंगे? यदि दया और वात्सल्यभाव श्रीमानके हृदयमें प्रबल हो तो प्रजाकी ओर ध्यान होगा, नहीं तो प्रेस्टीजकी ओर ढुलकनाही स्वाभाविक है।

अब यह विषय श्रीमानहीके विचारनेके योग्य है कि प्रजाकी ओर देखना कर्तव्य है या प्रेस्टीजकी। आप प्रजाकी रक्षाके लिये आये हैं या प्रेस्टीजकी? यदि आपके खयालमें प्रजारूपी लड़का ताकमें बैठा रोया करे और "उतारो, उतारो" पुकारा करे, इसीमें उसका सुख और शान्ति है तो उसे ताकमें टंगा रहने दीजिये, जैसा कि इस समय रहने दिया है। यदि उसे वहांसे उतारकर कुछ खाने पीनेको देनेमें सुख है तो वैसा किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि उसकी विमाताको प्रसन्न करके उसे उतरवा लिया जाय, इसमें प्रजा और प्रेस्टीज दोनोंकी रक्षा है।

जो बात आपको भली लगे वही कीजिये—कर्तव्य समझिये वही कीजिये। इस देशकी प्रजाको अब कुछ कहने सुननेका साहस नहीं रहा। अपने भाग्यका उसे भरोसा नहीं, अपनी प्रार्थनाके स्वीकार होनेका विश्वास नहीं। उसने अपनेको निराशाके हवाले कर दिया है।

एक विनय और भी साथ साथ की जाती है कि इस देशमें श्रीमान् जो चाहें बेखटके कर सकते हैं, किसी बातके लिये विचारने या सोचमें जानेकी जरूरत नहीं। प्रशंसा करनेवाले अब और चलते समय बराबर आपको घेरे रहेंगे। आप देखही रहे हैं कि कैसे सुन्दर कासकेटोंमें रखकर, लम्बी चौड़ी प्रशंसा भरे एड्रेस लेकर लोग आपकी सेवामें उपस्थित होते हैं। श्रीमान् उन्हें बुलाते भी नहीं, किसी प्रकारकी आशा भी नहीं दिलाते, पर वह आते हैं! इसी प्रकार हुजूर जब इस देशको छोड़ जांयगे तो हुजूरबालाको बहुतसे एड्रेस उन लोगोंसे मिलेंगे, जिनका हुजूरने कभी कुछ भला नहीं किया। बहुत लोग हुजूरकी एक मूर्तिके लिये खनाखन रुपये गिन देंगे, जैसे कि हुजूरके पूर्ववर्ती वाइसरायकी मूर्ति के लिये गिने जा रहे हैं। प्रजा उस शासककी कड़ाईके लिये लाख रोती है, पर इसी देशके धनसे उसकी मूर्ति बनती है।

विनय हो चुकी, अब भगवानसे प्रार्थना है कि श्रीमानका प्रताप बढ़े यश बढ़े और जबतक यहां रहें, आनन्दसे रहें। यहांकी प्रजाके लिये जैसा उचित समझें करें। यद्यपि इस देशके लोगोंकी प्रार्थना कुछ प्रार्थना नहीं है, पर प्रार्थनाकी रीति है, इससे की जाती है।

(भारतमित्र, २३ सितम्बर सन् १९०५ ई०)

(भारतमित्र, १६ फरवरी सन् १९०७ ई०)

मार्ली साहबके नाम

"निश्चित विषय !"

विज्ञवरेषु, साधुवरेषु !

बहुत काल पश्चात् आपसा पुरुष भारतके भाग्यका विधाता हुआ है। एक पंडित, विचारवान और आडम्बररहित सज्जनको अपना अफसर होते देखकर अपने भाग्यको अचल अटल और कभी टससे मस न होनेवाला, वरञ्च आपके कथनानुसार 'Settled fact' समझनेपर भी आडम्बर शून्य भोलेभाले भारतवासी हर्षित हुए थे। वह इसलिये हर्षित नहीं हुए कि आप उनके भाग्यकी कुछ मरम्मत कर सकते हैं। ऐसी आशाको वह कभीके जलांजलि दे चुके हैं। उनका हर्ष केवल इसलिये था कि एक सज्जनको, एक साधुको, यह पद मिलता है। भलेका पड़ोस भी भला, उसकी हवा भी भली ! "जो गन्धी कछु दे नहीं, तौहू बास सुबास !"

आप उपाधिशून्य हैं। आपको माई लार्ड कहके सम्बोधन करनेकी जरूरत नहीं है। अथच आप इस देशके माई लार्डके भी माई लार्ड हैं। यहांके निवासी सदासे ऋषि मुनियों और साधु महात्माओंको पूजते आये हैं और यहांके देशपति नरपति लोग सदा उन साधु महात्माओंके सामने सिर झुकाते और उनसे अनुशासन पाते रहे हैं। उसी विचारसे यहांके लोग आपके नियोगसे प्रसन्न हुए थे। एक विचारशील पुरुषका सिद्धान्त है कि किसी देशका उत्तम शासन होनेके लिये दो बातोंमेंसे किसी एकका होना अति आवश्यक है—या तो शासक साधु बन जाय या साधु शासक नियत किया जाय। हाकीम हकीम हो जाय या हकीम

किम बनाया जाय। इसीसे आपको भारतका देशमन्त्री देखकर
ाँकी प्रजाको हर्ष हुआ था कि अहा! बहुत दिन पीछे एक साधु
ष—एक विद्वान् सज्जन भारतका सर्व प्रधान शासक होता है!

भारतवासी समझते थे कि मिस्टर मार्ली विद्वान हैं। विद्या पढ़ने
र दर्शन-शास्त्रका मनन करनेमें समय बिताकर वह बूढ़े हुए हैं।
; तत्काल जान सकते हैं कि बुराई क्या है और भलाई क्या, नेकी क्या
और बदी क्या? उनको बुराई और भलाईके समझनेमें दूसरेकी
ायताकी आवश्यकता नहीं। वरञ्च वह स्वयं इतने योग्य हैं कि
पनीही बुद्धिसे ऐसी बातोंकी यथार्थ जाँच कर सकते हैं। दूसरोंके
रित्रको झट जान सकते हैं। वह दोषीको धमकायेंगे और उसे सुमार्गमें
ानेका उपदेश देंगे। भारतवासियोंका विचार था कि आप बड़े
ायप्रिय हैं। किसीसे जरा भी किसी विषयमें अन्याय करना पसन्द न
ंगे और खुशीको नेकीसे बढ़कर न समझेंगे। उचित कामोंके करनेमें
भी कदम पीछे न हटावेंगे और कोई लालच, कोई इनाम और कोई
रीसे भारी पद वा राजनीतिक दावपेच आपको सत्य और सन्मार्गसे
डिगा सकेगा। आपके मुँहसे जो शब्द निकलेंगे, वह तुले हुए सत्य
ो। यही कारण है कि भारतवासी आपके नियोगकी खबर सुनकर
ा हुए थे।

पार्लमेंटके चुनावके समय जिस प्रकार भारतवासी आपके चुनावकी
र टकटकी लगाये हुए थे, आपके भारत सचिव हो जानेपर उसी
ार वह आपके मुँहकी वाणी सुननेको उत्सुक हुए। पर आपके
से जो कुछ सुना उसे सुनकर वह लोग जैसे हक्का बक्का हुए
कभी न हुए थे। आपने कहा कि बङ्गभङ्ग होना बहुत खराब
म है, क्योंकि यह अधिकांश प्रजावर्गकी इच्छाके विरुद्ध हुआ। पर
हो गया उसे Settled fact, निश्चित विषय समझना चाहिये।

एक विद्वान् पुरुष दार्शनिक सज्जनकी यह उक्ति कि यह काम यद्यपि खराब हुआ, तथापि अब यही अटल रहेगा। इसकी खराबी अब दूर न होगी ! किमाश्चर्य्यमतः परम् !

लड़कपनमें एक देहातीकी कहानी पढ़ी थी जिसका गधा खोया गया था और वह एक दूसरेकी गधीको अपना गधा बताकर पकड़ ले जाना चाहता था। पर जब उसे लोगोंने कहा कि यार ! तू तो अपना गधा बताता है, देख यह गधी है ; तो उसने घबराकर कहा था कि मेरा गधा कुछ ऐसा गधा भी न था ! गंवारका गधा गधी हो सकता है, पर भारतसचिव दार्शनिकप्रवर मार्ली साहब जिस कामको बुरा बताते हैं, वही 'निश्चित विषय' भी हो सकता है, यह बात भारतवासियोंने कभी स्वप्नमें भी नहीं विचारी थी। जिस कामको आप खराब बताते हैं, उसे वैसेका वैसा बना रखना चाहते हैं, यह नये तरीकेका न्याय है। अब तक लोग यही समझते थे कि विचारवान विवेकी पुरुष जहां जायंगे वहीं विचार और विवेककी मर्यादाकी रक्षा करेंगे। वह यदि राजनीतिमें हाथ डालेंगे तो उसकी जटिलताको भी दूर कर देंगे। पर बात उल्टी देखनेमें आती है। राजनीति बड़-बड़ सत्यवादी साहसी विद्वानोंको भी गधा गधी एक बतलानेवालोंके बराबर कर देती है !

विज्ञवर ! आप समझते हैं और आप जैसे विद्वानोंको समझना चाहिये कि सत्य सत्य है और मिथ्या मिथ्या। मिथ्या और सत्य गड़प शड़प होकर एक हो सकते हैं, यह आप जैसे साधु पुरुषोंके कहनेकी बात नहीं है। विज्ञ पुरुषोंके कहनेकी बात नहीं है। विज्ञ पुरुषोंकी बातोंको आपसमें टकराना न चाहिये। पर गत बजटकी स्पीचमें आपने बातोंके मेढ़े लड़ा डाले हैं। आपने कहा है—"जहां तक मेरी कल्पना जा सकती है, भारत शासन यथेच्छ ढंगका रहेगा।" पर यह भी कहा है— "भारतमें किसी प्रकारकी बुरी चाल चलना हमें उससे भी अधिक

खराबीमें डालेगा, जितना दक्षिण अफ्रीकामें चार साल पहले एक बुरी चाल चलकर खराबीमें पड़ चुके हैं।"

आपने कहा है—"हिन्दुस्थानी कांग्रेसकी कामनाओंको सुनकर मैं घबराता नहीं।" पर यह भी कहा—'जो बातें विलायतको प्राप्त हैं, वह भारतको सब नहीं प्राप्त हो सकतीं।" आपकी इन दोरंगी बातोंसे भारतवासी बड़े घबराहटमें पड़े हैं। घबराकर उन्हें आपके देशकी दो कहावतोंका आश्रय लेना पड़ता है कि—राजनीतिज्ञ पुरुष युक्ति या न्यायके पाबन्द नहीं होते अथवा राजनीतिका कुछ ठिकाना नहीं!

आपको अपनेही एक वाक्यकी ओर ध्यान देना चाहिये—"अपनी साधारण योग्यताके परिणामसेही कोई आदमी प्रसिद्ध या बड़ा नहीं हो सकता। वरञ्च उचित समयपर उचित काम करनाही उसे बड़ा बनाता है।" जिस पदपर आप हैं—उसकी जो कुछ इज्जत है, वह आपकी नहीं, उस पदकी है। लार्ड जार्ज हमिल्टन और मिस्टर ब्राडरिक भी इसी पदपर थे। पर इस पदसे उनकी इतनीही इज्जत थी कि वह इस पदपर थे। बाकी उनके कामोंके अनुसारही उनकी इज्जत है। आपका गौरव इस पदसे नहीं बढ़ना चाहिये। वरञ्च आपके कामोंसे इस पदकी कुछ मर्य्यादा बढ़नी चाहिये।

भारतवासियोंने बहुत कुछ देखा और देख रहे हैं। इस देशके ऋषि-मुनि जब बनोंमें जाकर तप करते थे और यहांके नरेश उनकी आज्ञासे प्रजापालन करते थे, वह समय भी देखा। फिर मुसलमान इस देशके राजा हुए और पुराना क्रम मिट गया, वह भी देखा। अब देख रहे हैं, सात समुद्र पारसे आई हुई एक जातिके लोग जो पहले बिसातीके रूपमें इस देशमें आये थे और छल बल और कौशलसे यहांके प्रभु बन गये। यह देश और यहांकी स्वाधीनता उनकी मुट्ठीकी चिड़िया बन गई। और भी न जाने क्या क्या देखना पड़ेगा। पर संसारकी कोई

बात निश्चित है, यह बात यहांके लोगोंकी समझमें नहीं आती। निश्चित ही होती तो लार्ड जार्ज हमिल्टन और ब्राडारिककी गद्दी साधुवर मार्ली तक कैसे पहुँचती !

न बंगभंगही निश्चित विषय है और न भारतका यथेच्छ शासन। स्थिरता न प्रभातको है और न सन्ध्याको। सदा न वसन्त रहता है, न ग्रीष्म। हां, एक बात अब भारतवासियोंके जीमें भली भांति पक्की होती जाती है कि उनका भला न कन्सरवेटिवही कर सकते हैं और न लिबरलही। यदि उनका कुछ भला होना है तो उन्हींके हाथसे। इसे यदि विज्ञवर मार्ली "निश्चित-विषय" मान लें तो विशेष हानि नहीं।

अतः भारतवासियोंका भला या बुरा जो होना है सो होगा, इसकी उन्हें कुछ परवा नहीं है। उन्हें ईश्वरपर विश्वास है और काल अनन्त है, कभी न कभी भलेका भी समय आजायगा। भारतवासियोंको चिन्ता केवल यही है कि उनके देशसचिव साधुवर मार्ली साहबको अपनी चिरकालसे एकत्र की हुई कीर्त्ति और सुयशको अपने वर्तमान पदपर कुरबान न करना पड़े। इस देशका एक बहुतही साधारण कवि कहता है—

झूठा है वह हकीम जो लालचसे मालके,
अच्छा कहे मरीजके हाले तबाहको।

अपने लालचके लिये यदि रोगीकी बुरी दशाको अच्छा बतावे तो वह हकीम हकीम नहीं कहला सकता। भारतवासी आपको दार्शनिक और हकीम समझते हैं। उनको कभी यह विश्वास नहीं कि आप अपने पदके लोभसे न्यायनीतिकी मर्य्यादा भङ्ग कर सकते हैं या अपने दलकी बुराई भलाई और कमजोरी मजबूतीके खयालसे भारतके शासन रूपी रोगीकी बिगड़ी दशाको अच्छी बता सकते हैं। आपहीके देशका एक साधु पुरुष कह गया है—"आयर्लेण्डकी स्वाधीनता मेरे जीवनका व्रत है,

पर इस स्वाधीनता पानेके लोभसे भी मैं दक्षिण अफरीकावालोंकी स्वाधीनता छिनवानेका समर्थन कभी न करूंगा !" अतः आपसे बार बार यही विनय है कि अपने साधु पदकी मर्य्यादाका खूब विचार रखिये। भारतवासियोंको अपनी दशाकी परवा नहीं। पर आपकी इज्जतका उन्हें बड़ा खयाल है। कहीं आप राजनीतिक पदके लोभसे अपने साधुपदको उस देहातीका गधा न बना बैठें!

अपने सिरका तो हमें कुछ गम नहीं,
खम न पड़ जाये तेरी तलवारमें।

(भारतमित्र ३० मार्च सन् १९०७)

आशीर्वाद

तीसरे पहरका समय था। दिन जल्दी जल्दी ढल रहा था और सामनेसे संध्या फुर्तीके साथ पांव बढ़ाये चली आती थी। शर्म्मा महाराज बूटीकी धुनमें लगे हुए थे। सिल-बट्टे से भङ्ग रगड़ी जारही थी। मिर्च मसाला साफ हो रहा था। बादाम इलायचीके छिलके उतारे जाते थे। नागपुरी नारङ्गियां छील छील कर रस निकाला जाता था। इतनेमें देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं; तबीयत भुरभुरा उठी इधर भङ्ग उधर घटा, बहारमें बहार। इतनेमें वायुका वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अन्धेरा छाया। बून्दें गिरने लगीं। साथही तड़तड़ धड़धड़ होने लगी, देखा ओले गिर रहे हैं। ओले थमे, कुछ वर्षा हुई। बूटी तैयार हुई "बम भोला" कहके शर्म्माजीने एक लोटा भर चढाई। ठीक उसी समय लालडिग्गीपर बड़े लाट मिन्टोंने बङ्गदेशके भूतपूर्व छोटे लाट उडबर्नकी मूर्ति खोली। ठीक एकही समय कलकत्तेमें यह दो आवश्यक

काम हुए। भेद इतनाही था कि शिवशम्भुशर्म्माके बरामदेकी छतपर बून्दें गिरती थीं और लार्ड मिन्टोके सिर या छातेपर।

भङ्ग छानकर महाराजजीने खटियापर लम्बी तानी। कुछ काल सुषुप्तिके आनन्दमें निमग्न रहे। अचानक धड़धड़ तड़तड़के शब्दने कानोंमें प्रवेश किया। आंखें मलते उठे। वायुके झोंकोंसे किवाड़ पुर्जे-पुर्जे हुआ चाहते थे। बरामदेके टीनोंपर तड़ातड़के साथ ठनाका भी होता था। एक दरवाजेके किवाड़ खोलकर बाहरकी ओर झांका तो हवाके झोंकेने दस-बीस बून्दों और दो चार ओलोंसे शर्म्माजीके श्रीमुखका अभिषेक किया। कमरेके भीतर भी ओलोंकी एक बौछाड़ पहुंची। फुर्तीसे किवाड़ बन्द किये, तथापि एक शीशा चूर हुआ। समझमें आगया कि ओलोंकी बौछाड़ चल रही है। इतनेमें ठन-ठन करके दस बजे। शर्म्माजी फिर चारपाईपर लम्बायमान हुए। कान, टीन और ओलोंके सम्मिलनकी ठनाठनका मधुर शब्द सुनने लगे। आंखें बन्द, हाथ-पांव सुखमें। पर विचारके घोड़को विश्राम न था। वह ओलोंकी चोटसे बाजुओंको बचाता हुआ परिन्दोंकी तरह इधर-उधर उड़ रहा था। गुलाबी नशेमें विचारों-का तार बन्धा कि बड़े लाट फुर्तीसे अपनी कोठीमें घुस गये होंगे और दूसरे अमीर भी अपने-अपने घरोंमें चले गये होंगे, पर वह चीलें कहा गई होंगी? ओलोंसे उनके बाजू कैसे बचे होंगे, जो पक्षी इस समय अपने अण्डे बच्चों समेत पेड़ोंपर पत्तोंकी आड़में हैं या घोसलोंमें छिपे हुए हैं, उनपर क्या गुजरी होगी। जरूर झड़े हुए फलोंके ढेरमें कल सवेरे इन बदनसीबोंके टूटे अण्डे, मरे बच्चे और इनके भीगे सिसकते शरीर पड़े मिलेंगे। हां, शिवशम्भुको इन पक्षियोंकी चिन्ता है, पर यह नहीं जानता कि इस अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओंसे परपूरित महानगरमें सहस्रों अभागे रात बितानेको झोंपड़ी भी नहीं रखते। इस समय सैकड़ों अट्टालिकाएं शून्य पड़ी हैं। उनमें सहस्रों मनुष्य सो सकते, पर

उनके ताले लगे हैं और सहस्रोंमें केवल दो-दो चार-चार आदमी रहते हैं। अहो, तिसपर भी इस देशकी मट्टीसे बने हुए सहस्रों अभागे सड़कोंके किनारे इधर-उधरकी सड़ी और गीली भूमियोंमें पड़े भीगते हैं। मैले चिथड़े लपेटे वायु वर्षा और ओलोंका सामना करते हैं। सवेरे इनमेंसे कितनोंहीकी लाश जहां-तहां पड़ी मिलेंगी। तू इस चारपाईपर मौजें उड़ा रहा है।

आनकी आनमें विचार बदला, नशा उड़ा, हृदयपर दुर्बलता आई। भारत! तेरी वर्तमान दशामें हर्षको अधिक देर स्थिरता कहां? कभी कोई हर्षसूचक बात दस-बीस पलकके लिये चित्तको प्रसन्न कर जाय तो वही बहुत समझना चाहिये। प्यारी भङ्ग! तेरी कृपासे कभी-कभी कुछ कालके लिये चिन्ता दूर हो जाती है। इसीसे तेरा सहयोग अच्छा समझा है। नहीं तो यह अधबूढ़ा भङ्गड़ क्या सुखका भूखा है! घावोंसे चूर जैसे नींदमें पड़कर अपने कष्ट भूल जाता है अथवा स्वप्नमें अपनेको स्वस्थ देखता है, तुझे पीकर शिवशम्भु भी उसी प्रकार कभी-कभी अपने कष्टोंको भूल जाता है!

चिन्ता स्रोत दूसरी ओर फिरा। विचार आया कि काल अनन्त है। जो बात इस समय है, वह सदा न रहेगी। इससे एक समय अच्छा भी आसकता है। जो बात आज आठ-आठ आंसू रुलाती है, वही किसी दिन बड़ा आनन्द उत्पन्न कर सकती है। एक दिन ऐसीही काली रात थी। इससे भी घोर अंधेरी—भादों कृष्णा अष्टमीकी अर्द्धरात्रि। चारों ओर घोर अन्धकार—वर्षा होती थी, बिजली कौंदती थी, घन गरजते थे। यमुना उत्ताल तरङ्गोंमें बह रही थी! ऐसे समयमें एक दृढ़ पुरुष एक सद्यजात शिशुको गोदमें लिये, मथुराके कारागारसे निकल रहा था। शिशुकी माता शिशुके उत्पन्न होनेके हर्षको भूलकर दुःखसे विह्वल होकर चुपके-चुपके आंसू गिराती थी, पुकार कर रो भी नहीं सकती थी।

बालक उसने उस पुरुषको अर्पण किया और कलेजेपर हाथ रख कर बैठ गई। सुध आनेके समयसे उसने कारागारमें ही आयु बिताई है। उसके कितने ही बालक वहीं उत्पन्न हुए और वहीं उसकी आंखोंके सामने मारे गये। यह अन्तिम बालक है। कड़ा कारागार, विकट पहरा, पर इस बालकको वह किसी प्रकार बचाना चाहती है। इसीसे उस बालकको उसके पिताकी गोदमें दिया है कि वह उसे किसी निरापद स्थानमें पहुंचा आवे।

वह और कोई नहीं थे, यदुवंशी महाराज वसुदेव थे और नवजात शिशु कृष्ण। उसीको उस कठिन दशामें उस भयानक काली रातमें वह गोकुल पहुँचाने जाते हैं। कैसा कठिन समय था। पर दृढ़ता सब विपदोंको जीत लेती है, सब कठिनाइयोंको सुगम कर देती है। वसुदेव सब कष्टोंको सह कर यमुना पार करके भींगते हुए उस बालकको गोकुल पहुंचा कर उसी रात कारागारमें लौट आये। वही बालक आगे कृष्ण हुआ, ब्रजका प्यारा हुआ, मां-बापकी आंखोंका तारा हुआ, यदुकुल मुकुट हुआ। उस समयकी राजनीतिका अधिष्ठाता हुआ। जिधर वह हुआ उधर विजय हुई, जिसके विरुद्ध हुआ उसकी पराजय हुई। वही हिन्दुओंका सर्वप्रधान अवतार हुआ और शिवशम्भु शर्म्माका इष्टदेव, स्वामी और सर्वस्व। वह कारागार भारत सन्तानके लिये तीर्थ हुआ। वहांकी धूल मस्तकपर चढ़ानेके योग्य हुई—

बर जमीने कि निशानेकफ पाये तो बुवद।
सालहा सिजदये साहिब नजरां ख्वाहद बूद॥ *

तब तो जेल बुरी जगह नहीं है। "पञ्जाबी" के स्वामी और सम्पादकको जेलके लिये दुःख न करना चाहिये। जेलमें कृष्णने जन्म

* जिस भूमिपर तेरा पदचिन्ह है, दृष्टिवाले सैकड़ों वर्षतक उसपर अपना मस्तक टेकेंगे।

लिया है। इस देशके सब कष्टोंसे मुक्त करनेवालेने अपने पवित्र शरीरको पहले जेलकी मिट्टीसे स्पर्श कराया। उसी प्रकार "पञ्जाबी" के स्वामी लाला यशवन्त रायने जेलमें जाकर जेलकी प्रतिष्ठा बढ़ाई, भारतवासियोंका सिर ऊंचा किया, अग्रवाल जातिका सिर ऊंचा किया। उतना ही ऊंचा, जितना कभी स्वाधीनता और स्वराज्यके समय अग्रवाल जातिका अग्रोहेमें था! उधर एडीटर मि० अथावलेने स्थानीय ब्राह्मणोंका मस्तक ऊंचा किया जो उनके गुरु तिलकको अपने मस्तकका तिलक समझते हैं। सुरेन्द्रनाथने बङ्गालकी जेलका और तिलकने बम्बईकी जेलका मान बढ़ाया था। यशवन्त राय और अथावलेने लाहोरकी जेलको वही पद प्रदान किया। लाहोरी जेलकी भूमि पवित्र हुई। उसकी धूल देशके शुभचिन्तकोंकी आंखोंका अञ्जन हुई। जिन्हें इस देशपर प्रेम है, वह इन दो युवकोंकी स्वाधीनता और साधुतापर अभिमान कर सकते हैं।

जो जेल, चोर-डकैतों, दुष्ट-हत्यारोंके लिये है जब उसमें सज्जन-साधु, शिक्षित, स्वदेश और स्वजातिके शुभचिन्तकोंके चरण स्पर्श हों तो समझना चाहिये कि उस स्थानके दिन फिरे। ईश्वरकी उसपर दया दृष्टि हुई। साधुओंपर सङ्कट पड़नेसे शुभ दिन आते हैं। इससे सब भारतवासी शोक सन्ताप भूलकर प्रार्थनाके लिये हाथ उठावें कि शीघ्र वह दिन आवे कि जब एक भी भारतवासी चोरी, डकैती, दुष्टता, व्यभिचार, हत्या, लूट-खसोट, जाल आदि दोषोंके लिये जेलमें न जाय। जाय तो देश और जातिकी प्रीति और शुभचिन्ताके लिये। दीनों और पददलित निर्बलोंको सबलोंके अत्याचारसे बचानेके लिये, हाकिमोंको उनकी भूलों और हार्दिक दुर्बलतासे सावधान करनेके लिये और सरकारको सुमन्त्रणा देनेके लिये। यदि हमारे राजा और शासक हमारे सत्य और स्पष्ट भाषण और हृदयकी स्वच्छताको भी दोष समझें और

हमें उसके लिये जेल भेजें तो वैसी जेल हमें ईश्वरकी कृपा समझकर स्वीकार करना चाहिये और जिन हथकड़ियोंसे हमारे निर्दोष देश-बान्धवोंके हाथ बन्धें, उन्हे हेममय आभूषण समझना चाहिये। इसी प्रकार यदि हमारे ईश्वरमें इतनी शक्ति न हो कि वह हमारे राजा और शासकोंको हमारे अनुकूल कर सके और उन्हें उदारचित्त और न्यायप्रिय बना सके तो इतना अवश्य करे कि हमें सब प्रकारके दोषोंसे बचाकर न्यायके लिये जेल काटनेकी शक्ति दे, जिससे हम समझें कि भारत हमारा है और हम भारतके। इस देशके सिवा हमारा कहीं ठिकाना नहीं। रहें इसी देशमें, चाहे जेलमें चाहे घरमें। जबतक जियें जियें और जब प्राण निकल जायँ तो यहींकी पवित्र मट्टीमें मिल जायें।

(भारतमित्र २५ नवम्बर सन् १९०५ ई०)

शाइस्ताखांका खत (१)

फुलर साहबके नाम

भाई फुलरजङ्ग ! दो सौ सवा दो सौ सालके बाद तुमने फिर एक बार नवाबी जमानेको ताजा किया है, इसके लिये मैं तुम्हारा शुक्रिया किस जुबानसे अदा करूं। मैंने तो समझा था कि हमलोगोंकी बदनाम नवाबी हुकूमतकी दुनियामें फिर कभी इज्जत न होगी। उसपर अमलदरामद तो क्या उसका नाम भी अगर कोई लेगा तो गाली देनेके लिये। मेरा ही नहीं, मेरे बाद भी जो नवाब हुए उन सबका यही खयाल है। मगर अब देखता हूं कि जमानेका इनकलाब एक बार फिरसे हमलोगोंके कारनामोंको ताजा करना चाहता है।

अपनी हुकूमतके जमानेमें मैंने कितने ही काम अपनी मर्जीसे किये और कितनेही लाचारीसे। उनमेंसे कितनोंहीके लिये मैं निहायत शरमिन्दा हूं, अपने ऊपर मुझे आप नफरत आती है। मैंने देखा कि उन कामोंका नतीजा बहुत खराब हुआ। हुकूमतके नशेमें उस वक्त बुरा भला कुछ न सोचा। मगर अंजाम जो कुछ हुआ, वह सारे जमानेने देख लिया। यानी हमारी कौमको बहुत जल्द हुकूमतसे छुट्टी मिल गई और जिस बादशाहका मैं नायब बनकर बङ्गालका नाजिम हुआ था, उसने मरनेसे पहले अपनी हुकूमतका जवाल अपनी आंखोंसे देखा। बङ्गालमें मेरे बाद फिर किसीको नाजिम नहीं होना पड़ा।

गर्ज के मैंने खूब गौर करके देखा बङ्गालमें या हिन्दुस्तानमें नवाबी जमाना फिर होनेकी कुछ जरूरत नहीं है। इन दो सौ सालमें कितनी

ही बातें मैंने जान ली हैं, जमानेके कितने ही उलट-पलट देखे और समझे उसकी चालपर खूब निगाह जमाकर देखा, मगर कहीं नवाबीको खड़ा होनेकी गुञ्जाइश न पाई। लेकिन देखा जाता है कि तुम्हारे जीमें नवाबीकी ख्वाहिश है। तुम बङ्गालके हिन्दुओंको धमकाते हो कि उनके लिये फिर शाइस्ताखांका जमाना ला दिया जायगा! भई वल्लह! मैंने जबसे यह खबर अपने दोस्त नवाब अब्दुल्लतीफखांसे सुनी है तबसे हँसते-हँसते मेरे पेटमें बल पड़-पड़ जाते हैं। अकेला मैंही नहीं हँसा, बल्कि जितने मुझसे पहले और पीछेके नवाब यहां बहिश्तमें मौजूद हैं सब एकबार हँसे। यहाँतक कि हमारे सिका सूरत बादशाह औरङ्गजेब भी जो उस दुनियामें कभी न हँसे थे इस वक्त अपनी हंसीको रोक न सके। हँसी इस बातकी थी कि बेसमझे ही तुमने मेरे जमानेका नाम लिया है। मालूम होता है कि तुम्हें इल्म तवारीखसे बहुत कम मस है। अगर तुम्हें मालूम होता कि मेरा जमाना बङ्गालियोंके बनिस्बत तुम फरङ्गियोंके लिये ज्यादा मुसीबतका था, तो शायद उसका नाम भी न लेते। तुमको मालूम होना चाहिये कि यहां बहिश्तमें भी अंग्रेजी अखबार पढ़े जाते हैं। मेरे जमानेमें तो तुम लोगोंकी गिटपिट बोलीको खयालहीमें कौन लाता था, पर मैंने मालूम किया है कि मेरे बाद भी उसकी कुछ कदर न थी। यहांतक जि गदरके जमानेमें दिल्लीके मुसलमान तुम्हारी बोलीको गुड डामियर बोली कहा करते थे। मगर इस वक्त यहां भी तुम्हारी बोलीकी जरूरत पड़ती है क्योंकि अब वह कुल हिन्दुस्तानमें छाई हुई है और हिन्दुस्तानकी खबरोंको जाननेका यहां वालोंको भी शौक रहता है। इसीसे अंग्रेजी अखबारोंकी जरूरी खबरें यहाँ वाले भी नवाब अब्दुल्लतीफखां वगैरहसे सुन लिया करते हैं।

भाई नवाब फुलर! मैं सच कहता हूं कि मेरा जमाना बुलाना तुम कभी पसन्द न करोगे। मुझे ताज्जुब है कि किसी अंग्रेजने तुम्हारे

ऐसा कहनेपर तुम्हें गंवार नहीं कहा। उस वक्त तुम लोग क्या थे, जरा
सुन डालो ! तुम कई तरहके फरङ्गी इस मुल्कमें अपने जहाजोंमें बैठकर
आने लगे थे। बङ्गालमें वलन्देज, पुर्तगीज, फरासीसी और तुमलोगोंने
कई मुकामोंमें अपनी कोठियां बनाई थीं और तिजारतके बहाने कितनी
ही तरहकी शरारतें सोचा और किया करते थे। वह फरङ्गी चोरियां
करते थे, डाके डालते थे, गांव जलाते थे ! जब हमलोगोंको यह मालूम
हुआ कि तुम्हारी नीयत साफ नहीं है, तिजारतके बहानेसे तुम इस मुल्क
पर दखल कर बैठनेकी फिक्रमें हो, तब तुमलोगोंको यहांसे मारके भगाना
पड़ा और सिर्फ बङ्गालहीसे नहीं, सारे हिन्दुस्तानसे निकालनेका भी
हमारे बादशाहने बन्दोबस्त किया था। जुल्मसे यह सुलूक तुम्हारे
साथ नहीं किया गया, बल्कि तुम्हारी शरारतोंके सबबसे। इसके बाद
१० साल तक तुम अपने पांवसे खड़े न हो सके।

यह कायदा है कि दूसरी कौमकी हुकूमतहीको लोग जुल्मसे भी
बढ़कर जुल्म समझते हैं। इससे हिन्दू हमारी हुकूमतको उस जमानेमें
बुरा समझते हों तो एक मामूली बात है। तो भी मैं तुम्हारे जाननेको
कहता हूं, कि हम मुसलमानोंने बहुत दफे हिन्दुओंके साथ इंसानियतका
बर्ताव भी किया है। बहुत-सी बदनामियोंके साथ मेरी हुकूमतके वक्त-
की एक नेकनामी बङ्गालेकी तवारीखमें ऐसी मौजूद है, जिसकी नजीर
तुम्हारी तवारीखमें कहीं भी न मिलेगी। मैंने बङ्गालेके दारुस्सलतनत
ढाकेमें एक रुपयेके ८ मन चावल बिकवाये थे। क्या तुममें वह जमाना
फिर लादेनेकी ताकत है ? मैं समझता हूं कि अंग्रेजी हुकूमतमें यह
बात नामुमकिन है। अंग्रेजीमें ऐसा न हुआ, न है और न हो सकता
है। जहां तुम्हारी हुकूमत जाती है, वहां खाने-पीनेकी चीजोंको एकदम
आग लग जाती है। क्योंकि तुम तो हमलोगोंकी तरह खाली हाकिम
ही नहीं हो, साथ-साथ बक्काल भी हो। उस अपने बक्कालपनकी हिमायत-

के लियेही हमारे जमानेको बङ्गालमें खेंचकर लाना चाहते हो। जो बादशाह भी है और बक्काल भी है, उसकी हुकूमतमें खाने-पीनेकी चीजें सस्ती कैसे हों?

मेरी हुकूमतका एक सबसे बड़ा इलजाम मैं खुद बताता हूं। अपने बादशाहके हुक्मसे मैंने बङ्गालके हिन्दुओंपर जिजिया लगाया था। पर वह तुम फरङ्गियोंपर भी लगाया था। तुम लोग चालाक थे, कुछ घोड़े और तोहफा-तहायफ देकर बच गये। हिन्दुओंके साथ झगड़ा हुआ। उनके दो चार मन्दिर टूटे और एक इज्जतदार रईस कैद हुआ। इसीके लिये मैं शरमिन्दा हूं और इसका बदला भी हाथों हाथ पाया और इसीका खौफ तुम अपने इलाकेके हिन्दुओंको दिलाते हो। वरना यह हिम्मत तो तुममें कहां कि मेरे जमानेकी तरह हिन्दुओंको हरवा-हथियार बांधने दो और आठ मनका गल्ला खाने दो।

तुम लोगोंने जो महसूल इस मुल्कपर लगाये हैं, वह क्या कभी इस मुल्ककी खाने-पीनेकी चीजोंको सस्ता होने देंगे? तुम्हारा नमकका महसूल जिजियेसे किस बातमें कम है? भाई फुलरजङ्ग! कितने ही इलजाम चाहे मुझपर हों, एक बार मैंने इस मुल्ककी रैयतको जरूर खुश किया था। मगर तुमने हुकूमतकी बाग हाथमें लेते ही गुरखोंको अपने वहदेपर मुकर्रर किया है। बच्चोंके मुंहसे "बन्दयेमादरम्" सुन कर तुम जामेसे बाहर होते हो, इतनेपर भी तुम मेरी या किसी दूसरे नवाबकी हुकूमतसे अपनी हुकूमतको अच्छा समझते हो! तुम्हें आफरीं है!

तुमने बिगड़ कर कहा है कि तुम बङ्गालियोंको पांच सौ साल पीछे फेंक दोगे। अगर ऐसा हो, तो भी बंगाली बुरे न रहेंगे। उस वक्त बंगालमें एक ऐसे राजाका राज था, जिसने हिन्दुओंके लिये मन्दिर और मुसलमानोंके लिये मसजिदें बनवाई थीं और उस राजाके मर जानेपर हिन्दू उसकी लाशको जलाना और मुसलमान गाड़ना चाहते थे। वह

जमाना तुम्हारे जैसा हाकिम क्यों आने देगा ? तुम तो हिन्दू मुसलमानोंको लड़ा कर हुकूमत करनेकी बहादुरी समझते हो और इस वक्त मुसलमानोंके साथ बड़ी मुहब्बत जाहिर कर रहे हो। मगर तुम लोगोंकी मुहब्बत कलकत्तेमें उस लाठके बनानेसे ही समझदार मुसलमान समझ गये, जो तुम्हारा एक चलता अफसर सिराजुद्दौलाका मुंह काला करनेके लिये एक कयासी वकूएकी यादगारीके तौरपर बना गया है। मुसलमानोंसे तुम्हारी जैसी मुहब्बत है, उसे वह लाठ पुकार-पुकार कर कह रही है।

अखीरमें मैं तुमको एक दोस्ताना सलाह देता हूं कि खबरदार कभी पुराने जमानेको फिर लानेकी कोशिश न करना। तुम लोगोंको मैं सदा कमीने, झगड़ालू लोग और बेईमान बक्काल कहा करता। मेरे बाद भी तुम्हारे कामोंसे इस मुल्कके लोगोंको कभी मुहब्बत नहीं हुई। यहांतक कि खुदाने तुम्हें इस मुल्कका मालिक कर दिया तो भी लोगोंका एतबार तुमपर न हुआ। हां, एक तुम्हारी जन्नतमकानी मलिका विक्टोरियाका जमाना ही ऐसा हुआ, जिसमें इस मुल्कके लोगोंने तुम लोगोंकी हुकूमतकी इज्जत की। क्योंकि उस मलिका मुअज्जमाने अदलसे इस मुल्कके लोगोंका दिल अपने हाथमें लिया। मैं नहीं चाहता कि तुम उस हासिल की हुई इज्जतको खोओ। रैयतके दिलमें इनसाफका सिक्का बैठता है, जुल्मका नहीं। जुल्मके लिये हम लोग बदनाम हो चुके, तुम क्यों बदनाम होते हो ? जुल्मका नतीजा हम भोग चुके हैं, पर तुम्हें उससे खबरदार करते हैं। अपने कामोंसे साबित कर दो कि तुम इनसान हो. खुदातर्स हो, यहांकी रैयतको पालने आये हो, लोगोंको गिरी हालतसे उठाने आये हो। लोग यह न समझें कि मतलबी हो, नाखुदातर्स हो, अपने मतलबके लिये इस मुल्कके लड़कोंको "बन्दये मादरम" कहनेसे भी बन्द करते हो !

खयाल रखो कि दुनिया चन्दरोजा है। अखिर सबको उस दुनियासे

काम है, जिसमें हम हैं। सदा कोई रहा न रहेगा। नेकनामी या बद-नामी रह जावेगी। तुम जुल्मसे बङ्गालियोंको मत रुलाओ, वल्कि ऐसा करो जिससे तुम्हारे लिये तुम्हारे अलग होनेके वक्त बङ्गाली खुद रोवें। फकत।

शाइस्ताखां—अज जन्नत।

(भारतमित्र, १८ अगस्त सन् १९०६ ई०)

शाइस्ताखांका खत (२)

फुलर साहबके नाम।

बिरादरम् फुलरजङ्ग! तुम्हारी जङ्ग खत्म हो गई। यह लड़ाई तुम साफ हारे। तुमने अपनी शमशीर भी म्यानमें कर ली। इससे अब तुम्हारे अलकावमें "जङ्ग" जोड़नेकी जरूरत नहीं है। पर जिस तरह तुम्हारी नवाबी छिन जानेपर भी हिन्दुस्तानी सरकार तुम्हें बम्बईमें विलायती जहाजपर तुम्हारे मामूली नवाबी ठाटसे चढ़ा देना चाहती है, उसी तरह मैंने भी मुनासिब समझा कि उस वक्त तक तुम्हारा अलकाब भी बदस्तूर रहे। इसमें हर्ज ही क्या है!

सचमुच तुम्हारी हुकूमतका अंजाम बड़ा दर्दनाक हुआ, जिसे तुमने खुद दर्दनाक बताया है। मुझे उसके लिये ताज्जुब नहीं, क्योंकि वह अटल था। पर अफसोस है कि इतना जल्द हुआ! मैं जानता था कि ऐसा होगा, उसका इशारा मेरे पहले खतमें मौजूद है। पर यह खयाल न करता था कि दस ही महीनेमें तुम्हारी नकली नवाबी तय हो जायगी। वल्लाह, भानमतीके तमाशेको भी मात किया। अभी गुठली

थी, जरासा पानी छिड़क कर दो छटांक मट्टीमें दबा देनेसे फूट निकली। दो पत्ते निकल आये। चार हुए। बहुत हुए। पेड़ हुआ, फल लगे। थोड़ी देरमें वही गुठली और वही टीनका लोटा मियां मदारीके हाथमें रह गया।

तुमने यह सुनकर कि नवाबोंके कई-कई बेगमें होती थीं, अपनी रिआयामेंसे दो बेगमें फर्ज कीं। मगर उनमें जो होशियार थी, उसने तुम्हें मुंह न लगाया और न तुम्हारी नवाबी तसलीम की। जो भोली थी, उसे तुमने रिझाया। पर वह बेचारी अभी यह समझने न पाई थी कि तुम उसके हुस्नोसीरतपर नहीं रीझे, बल्कि होशियार बेगमकी बे-एतनाईसे कुढ़ कर मतलबकी मुहब्बत दिखाते थे, जिसकी बुनियाद निहायत कमजोर थी। अफसोस! तुम्हारी यह शान भी न चली। सिर्फ दो बेगमोंको भी तुम न रिझा सके। सच है, कहीं बुलहवसी भी मुहब्बत हो सकती है!

और तुमने सुना होगा कि नवाब सख्ती बहुत किया करते थे। उनके अमलमें सब तरहकी अन्धाधुन्ध चल सकती थी। इसीसे तुमने भी सख्ती और अन्धाधुन्ध शुरू की। अपनी जबरदस्तीसे तुमने उस जोशको रोकना चाहा, जो अपने मुल्ककी बनी चीजोंके फैलाने और गैरमुल्ककी चीजोंके रोकनेके लिये बङ्गालेमें बड़ी तेजीसे फैल रहा था। तुमने इस बातपर खयाल न किया कि जो जोश तुम्हारे अफसरेआला-की सख्तीसे पैदा हुआ है, वह सख्ती और जबरदस्तीसे कैसे दब सकता है? शायद तुमने समझा कि वह पूरी सख्तीसे दबाया नहीं गया, इसीसे फैला है, तुम्हारी सख्ती उसे दबा देगी और जो काम तुम्हारे खुदावन्दसे न हुआ, उसके कर डालनेकी बहादुरी तुम हासिल कर लोगे। मगर अब तुम्हें अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि ऐसा समझनेमें तुमने कितनी बड़ी गलती खाई। तुम्हारे आला अफसरने यह ओहदा तुम्हारी

बेहतरीके लिये तुम्हें नहीं दिया था, बल्कि अपनी जिद्द पूरी कराने या अपना उल्लू सीधा करानेके लिये। मगर उसकी वह आरजू पूरी न हुई, उलटी तुम्हें तकलीफ और खिफ्फत उठानी पड़ी। तुम सच जानो तुम्हारे ओहदेपर बैठनेके लिये तुमसे बढ़कर लायक और हकदार लोग कई मौजूद थे। मगर वह लोग थे जो अपनी अक्लसे काम लेते और इस बातपर खूब गौर करते कि सख्ती करके जब हमारे आला अफसरने शकस्त खाई है तो हमें उसमें फतह कैसे हासिल होगी। तुम्हें भी अगर इतना सोचनेकी मोहलत मिलती तो तुम चाहे इस ओहदेहीको कबूल न करते या उस रास्तेको तर्क करते, जिसपर तुम चलकर खराब हुए।

देखो भाई! जो गुजर गया है, उसे कोई लौटा नहीं सकता। बहकर दूर निकल गया हुआ नदीका पानी क्या कभी फिर लौटा है? पांच सौ बरसका या मेरा दो सवादो सौ सालका जमाना फिर लौटा लेना तो बहुत बड़ी बात है, तुम अपनी नवाबीके बीते हुए दस महीनोंको भी लौटानेकी ताकत नहीं रखते। क्या तुम सन १९०६ ईस्वीको पीछे हटा कर १४०६ या १७०६ बना सकते हो? नहीं; भाई इतने वर्ष तो कहां, तुममें २० अगस्तको १९ बनानेकी भी ताकत नहीं है। जरा पांच सौ साल पहलेकी अपने मुल्ककी तारीखपर निगाह डालो। उस वक्त तुम्हारी कौम क्या थी? अगर तुम किसी तरह उस जमानेतक पहुंच जाओ तो अपनी शकल पहचान न सको। दुनिया तारीक दिखाई देने लगे और तुम खौफसे आंखे बन्द करलो। दुनियामें तुम्हें अपना कोई मातहत मुल्क नजर न आवे, बल्कि अपने ही मुल्कमें तुम्हें अपनेको बेगाना समझना पड़े।

हिन्दमें मेरा जमाना लानेके लिये तुम्हें रेल—तार तोड़ने, दुखानी जहाज गारत करने, डाक उठवा देने, गैस बिजली वगैरहको जेहन्नमरसीद कर देनेकी जरूरत है। नहरें पटवा देने और सड़कें उठवा देनेकी जरूरत है।

साथ ही तालीमको नेस्तोनाबूद कर देनेकी जरूरत है। तुम सबको छोड़ कर एक तालीमको मिटानेकी तरफ झुके थे। यह हिदायत तुम्हें तुम्हारे मालिक मुर्शिद लाट कर्जनकी तरफसे हुई थी! पर अंजाम और ही हुआ। तालीम गारत न हुई, बल्कि और तरक्की पा गई। बङ्गाली अपना कौमी दारुलउलूम बनाते हैं। गारत हुई पहले तुम्हारी नेकनामी और पीछे नौकरी।

रिआया और मदरसेके तुलबासे लड़ते-लड़ते तुमने नवाबी खत्म की। लोगोंको आम जलसे करने और कौमी नारे मारनेसे रोका। लड़कोंको अपने मुल्की मालको तरफ मुतवज्जह देखकर तुमने उनको जेलमें भिजवाया, स्कूलोंसे निकलवाया और पिटवाया। तुम्हारे इलाके बरीसालमें तुम्हारे मातहतोंने इस मुल्ककी रिआयाके सबसे आला इज्जतदार और तालीमयाफ्ता अशखासको बेइज्जत करनेकी निहायत खफीफ हरकत की। तुमने अपने मातहतोंका इसमें साथ दिया। नतीजा यह हुआ कि हाईकोर्टसे तुम्हारे कामोंकी मलामत हुई। तुमने बड़ी शेखीसे कहा था कि हाईकोर्ट मेरा कुछ नहीं कर सकती, पार्लमेंट मेरे हुक्मको रोक नहीं सकती। मगर दोनों बातें गलत साबित हुईं। हाई-कोर्टसे तो तुमने मलामत सुनी ही पार्लमेन्टसे भी वह सुनी कि सारी नवाबी भूल गये। तुम्हारी होशियारी और लियाकतका इसीसे पता लगता है कि तुम्हारे अफसरका हुक्म पहुंचनेसे पहले तुम्हारे सूबेमें एक बन्दयेखुदाको बेवक्त फांसी होगई!

तुम्हारी इन हरकतोंपर यहाँ जन्नतमें खूब-खूब चर्चे होते हैं। पुराने बादशाह और नवाब कहते हैं कि भाई! यह फरङ्गी खूब हैं। एशियाई लोगोंके ऐब तलाश करनेहीको यह अपनी बहादुरी समझते हैं। दिखाने-को तो उन ऐबोंसे नफरत करते हैं, पर हकीकत देखिये तो उनको चुन-चुनकर काममें लाते हैं। मगर हुनरोंसे चश्मपोशी करते हैं। तुमलोग

हमारे जमानेके ऐबोंको काममें लानेसे नहीं हिचकते। मगर उस जमानेके हुनरोंकी नकल करनेकी तरफ खयाल नहीं दौड़ाते, क्योंकि वह टेढ़ी खीर है। कहां आठ मनके चावल और कहां हथियार बांधनेकी आजादी!

आठ मनके चावलोंकी जगह तुम खुश्कसाली और कहत छोड़कर जाते हो। हथियारोंकी आजादीकी जगह दस आदमियोंका मिलकर निकलना, मजलिसें करना और 'वन्देमातरम्' कहना बन्द किये जाते हो। अरे यार! इतना तो सोचा होता कि पिञ्जरेमें भी चिड़िया बोल सकती है। कैदमें भी जबान कैद नहीं होती। तुमने गजब किया लोगोंका मुंहतक सी दिया था।

और भी अहलेजन्नतने एक बातपर गौर किया है। वह यह कि किस भरोसेपर तुम अपने सूबेके लोगोंको मेरे जमानेमें फेंक देनेकी जुरअत करते थे। इसकी वजह सुनिये। तुम खूब जानते हो कि तुम्हारी डेढ़ सौ सालकी हुकूमतने तुम्हारे सूबेके लोगोंको कुछ भी आगे नहीं बढ़ाया। वह करीब-करीब दो सौ साल पहलेके जमानेहीमें हैं। तुम उनको बढ़ाते तो आज वह तुमसे किसी बातमें सिवा चमड़ेके रङ्गके कम न होते। पर तुमने उन्हें वहीं रखा, बल्कि उनकी कुछ पुरानी खूबियां छीन लीं और पुराने-पुराने हुकूक जब्त कर लिये। दी थी कुछ तालीम और कुछ नौकरियां, उन्हींको छीनकर तुम उन्हें औरङ्गजेबके जमानेमें फेंकना चाहते थे, वरना और दिया ही क्या था, जो छीनते और बढ़ाया ही क्या था, जो घटाते?

अपनी दस महीनेकी नवाबीसे तुम खुद तङ्ग आगये थे। इसीसे कयास करलो कि गरीब रैयतको कैसी तकलीफ हुई होगी। सब तुम्हारे जानेसे खुश हैं। ताहम खुशकिस्मतीसे हमारी मरहूम कौम रोनेको तैयार है। उसे तुम प्यारी बेगम कहकर बेवा बना चले हो। वह तुम्हारे फिराकमें टिसवे बहाती है। तुम्हें घरतक पहुंचा देनेमें वह टिसवे तुम्हारी

मदद करेंगे। भाई! हमारी कौमकी सलतनत गई, हुकूमत गई, शानो-शौकत गई, पर जिहालत और गुलामीकी आदत न गई। वह मर्द नहीं बनना चाहती, बल्कि रांड रहकर सदा एक खाविन्द तलाश करती रहती है। देखें तुम्हारे बाद क्या करती है!

तूल फुजूल है। तुम चले, अब कहनेसेही क्या है? पर जो तुम्हारे जानशीन होते हैं, वह सुन रखें कि जमानेके बहते दरयाको लाठी मारके कोई नहीं रोक सकता। दूसरेको तङ्ग करके कोई खुश रह नहीं सकता। अपने मुल्कको जाओ और खुदा तौफीक दे तो हिन्दुस्तानके लोगोंको कभी-कभी दुआये खैरसे याद करना। वस्सलाम—

शाइस्ताखाँ—अज जन्नत।

(भारतमित्र, ९ मार्च सन् १९०७ ई०)

सर सय्यद अहमदका खत (३)

अलीगढ़ कालिजके लड़कोंके नाम।

मेरे प्यारो, मेरी आंखोंके तारो, मेरी कौमके नौनिहालो!

जिन्दगीमें मैंने इज्जत, नामवरी बहुत कुछ हासिलकी, मगर यह कहूंगा और मेरा यह कहना बिलकुल सच है कि तुम्हारी बेहतरीकी तदबीरहीमें मैंने अपनी उमर पूरी कर दी। तुम लोगोंकी तरक्की और बेहबूदीके खयालहीको मैं अपनी जिन्दगीका हासिल समझता रहा। होश सम्हालनेके दिनसे अखीर दमतक इस कौमेमरहूमका मरसियाही मेरी जुबानपर जारी था। लाख-लाख शुक्रकी जगह है कि मेरी मेहनत बेकार न गई। तुम्हारे लिये मैं जो कुछ चाहता था, उसमेंसे बहुत कुछ

पूरा हुआ और तुम्हें एक अच्छी हालतमें देखलेनेके बाद मैंने खुदाको जान सौंपी।

उस दिन मेरे मजारपर आकर तुमने निढाल होकर अपने आंसुओं-के मोती बखेर दिये। उस वक्तकी अपने दिलकी कैफियत क्या जाहिर करूं कि मुझपर क्या गुजरती थी और तबसे मुझे कितनी बेचैनी है। हाय!

चि मिकदार खूं दर अमद खुर्दा बाशम।
कि बर खाकम आई ओ मन मुर्दा बाशम॥

काश! मुझमें ताकत होती कि मैं उस वक्त तुमसे बोल सकता और तुम्हारे पास आकर तुम्हें गोदमें लेकर कलेजा ठण्डा करता और तुम्हारे फूलसे मुखड़ोंसे आंसू पोंछकर तुम्हें हँसानेकी कोशिश कर सकता। मगर आह! यह सब बातें नामुमकिन थीं, इससे मुझपर जो कुछ बीती वह मैं ही जानता हूं। मर कर भी मुझे आराम न मिला! इस नई दुनियामें आकर भी मुझे कल न मिली।

अजीजो! जिस हालतमें तुम इस वक्त पड़े हो, इसका मुझे जीते जी ही खटका था। खासकर अपनी जिन्दगीके अखीर दिनोंमें मुझे बड़ाही खयाल था। इसके इन्सदादकी कोशिश भी मैंने बहुत कुछ की, मगर खुदाको मंजूर न थी, इससे काम बनकर भी बिगड़ गया। तुममेंसे बहुतों-ने सुना होगा कि मैंने अपनी मौजूदगीहीमें यह फैसला कर दिया था कि मेरे बाद महमूद तुम्हारे कालिजका लाइफ सेक्रेटरी बने। इसपर वह शोरिश मची और वह तूफाने बेतमीजी बरपा हुआ कि अल अमान! मेरी सब करनी-धरनी भूल कर लोग मुझे खुदगरज और मतलबी कहने लगे। उस कौमी कालिजको मेरे घरका कालिज बताने लगे और ताने देने लगे कि मैं अपने बेटेको अपना जानशीन बनाकर कौमसे दगा करता हूं। मुझपर "अहमदकी पगड़ी महमूदके सिर" की फबती उड़ाई

गई। पर मैंने कुछ परवा न की। सय्यद महमूदको लाइफ सेक्रेटरी बनाया। अपने जीतेजी एक अपनेसे भी बढ़कर लायक सेक्रेटरी तुम्हारे कालिजको दे गया था। पर अफसोस उसकी उमरने वफा न की। मेरे थोड़े ही दिन पीछे वह भी मेरे ही पास चला आया।

इस वक्त तुमपर जो कुछ गुजरी है, अगर मैं होता तो उसकी यह शकल कभी न होती। न सय्यद महमूदकी मौजूदगीमें ऐसा करनेकी किसीकी हिम्मत होती। मगर अफसोस हम दोनों ही नहीं! जो हैं, उनके बारेमें और क्या कहा जाय, अच्छे हैं! कालिजके नसीब! कौमके नसीब! अजीजो! यह कालिज तुम्हारे लिये बना था। तुम्हीं उसमेंसे निकाले जाते हो, तो यह किस काम आवेगा? उफ! मेरी समझमें नहीं आता कि मैंने तुम्हारे लिये यह दारुलउलूम बनाया था या गुलाम-खाना! तुम्हारे मौजूदा सेक्रेटरी क्या खयाल करते होंगे?

मगर क्या पस्तखयालीका नतीजा पस्ती न होना चाहिये? तुम्हारी और तुम्हारे कालिजकी मौजूदा हालतका क्या मैं ही जिम्मेदार नहीं हूं? क्या यह इस वक्तका दर्दनाक नज्जारा मेरी चालका नतीजा नहीं है? हां! यह जंजीरें कौमी तरक्कीके पावोंमें अपने ही हाथोंसे डाली गई हैं, दूसरा कोई इसके लिये कसूरवार नहीं ठहर सकता! अगर इबतिदासे अखीरतक मेरी चाल एक ही रहती तो यह खराबी काहेको होती? कौमी पस्तीका ऐसा सीन देखनेमें न आता!

न जिल्लतसे नफरत न इज्जतका अरमां।

मैं वही हूं, जिसने "असबाबे बगावत" लिखकर विलायत तकमें खलबली डाल दी थी। इन सूबोंमें मैं ही पहला शख्स हूं, जिसने अंग्रेजोंको आम रिआयाकी रायका खयाल दिलाया। मैंने ही सबसे पहले डंकेकी चोट यह जाहिर किया था कि अगर हिन्दुस्थानकी कौंसिलों-में अंग्रेज, रिआयाके कायममुकाम लोगोंको शामिल करते तो कभी

गदर न होता। तुम कभी न समझना कि मैं अंग्रेजोंकी खुशामद किया करता था, या खुशामदको किसी कौमकी तरक्कीका जीना समझा करता। बल्कि मैंने सदा अंग्रेजोंसे बराबरीका बरताव किया है। कितने ही बड़े-बड़े अंग्रेज अफसर मेरे दोस्त रहे हैं, मैंने सदा उनसे दोस्ताना और बेतकल्लुफाना गुफ्ततू की है। कभी उनकी अफसरी या हाकिमीका रोब मानकर उनसे बरताव नहीं किया। खुदाकी इनायतसे सय्यद महमूदकी तबीयतमें मुझसे भी ज्यादा आजादी थी और साथ ही उसने मगरबी इल्मोंमें भी फजीलत हासिल की थी, जिससे उस आजादीकी चमक दमक और भी बढ़ गई थी। यही वजह थी कि मैंने महमूदको जीतेजी अपना कायममुकाम और तुम्हारे कालिजका सेक्रेटरी मुकर्रिर किया था। अगर वह होता तो आज तुम लोगोंकी आजादी और इज्जत एक मामूली हिन्दुस्थानी कान्स्टबलकी हिमायतमें ठोकर न खाती फिरतीं और तुम्हें कालिजसे निकालकर कान्स्टबलोंको कालिजके अहातेमें न ला खड़ा किया जाता।

मेरे बच्चो! मेरी एक ही कमजोरीका यह फल है, जिसे तुम भोग रहे हो और जिसके लिये आज मेरी रूह कब्रमें भी बेकरार है। मेरी उस कमजोरीने खुदगरजी और खुशामदका दरजा हासिल किया। पर सच यह है, मैंने जो कुछ किया कौमकी भलाईके लिये किया, अपने फायदेके लिये नहीं। पर वैसा करना बड़ी भारी भूल थी, यह मैं कबूल करता हूं और उसका इतना खौफनाक नतीजा होगा, इसका मुझे ख्वाबमें भी खयाल न था। मैंने यही समझा था कि इस वक्त मसलहतन यह चाल चल ली जाय, आगे चलकर इसकी इसलाह कर ली जायगी। मैं यह न समझा था कि यह चाल मेरी कौमके रगोरेशेमें मिल जायगी और छूटनेके बजाय उसकी खू बू और आदत बन जायगी। अफसोस! खुद कर्दा अम खुद कर्दारा इलाजे नेस्त!

हिन्दुओंसे मेल रखना मुझे नापसन्द नहीं था। मेरे ऐसे हिन्दू दोस्त थे, जिन्होंने मरते दमतक मुझसे दोस्ती निबाही और जिनकी सोहबतसे मुझे बड़ी खुशी हासिल होती थी। कालिजके लिये उनसे माकूल चन्दे मिले हैं। पञ्जाबमें कालिजके चन्देके लिये दौरा करनेके वक्त लेक्चरमें मैंने कहा था कि हिन्दू मुसलमानोंको मैं एकही आँखसे देखता हूं। क्या अच्छा होता जो मेरे एक ही आँख होती, जिससे मैं इन दोनोंको सदा एक ही आँखसे देखा करता? अफसोस! अपनी कौमकी शकस्ताहालीने मुझे उस सच्चे रास्तेसे हटाया। मैंने सन १८८८ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेससे मुखालिफत करके हिन्दू-मुसलमानोंको दो आँखोंसे देखनेका खयाल पैदा किया और अपने उन्हीं सच्चे और पुराने खयालातपर पानी फेरा, जिनका दावेदार कांग्रेससे पहले मैं खुद था! खयाल करनेसे तअज्जुब और अफसोस मालूम होता है कि मैंने वह सच्चा और सीधा रास्ता छोड़ा भी तो किसके कहनेसे कि जो 'असबाबे बगावत' लिखनेके वक्त मेरे पिछले खयालातका तरफदार था और उसीने मेरी उस उर्दू किताबका अंग्रेजी तरजुमा कर दिया था! काश! सर आकलेण्ड कालविन इन सूबोंके लफटन्ट गवर्नर न होते और उसी हैसियतमें रहते, जैसे उस किताबके तरजुमा करनेके वक्त थे!

मेरे अजीजों! जमानेकी रफ्तारको कोई रोक नहीं सकता। वह सबको अपने रास्तेपर घसीट ले जाती है। अगरचे तुम लड़के नहीं हो, जवान हो और माशाअल्लह तुममेंसे कितनोंहीके दाढ़ी मूंछें भी निकल रही हैं। मगर इस कालिजमें तुम परदेकी बूबूकी तरह रखे जाते हो, गैरके सायेसे बचाये जाते हो। तुम्हारे हर कामपर अंग्रेज प्रिन्सपल वगैरा वैसाही पहरा रखते हैं, जैसे दाया और मामा छूछू गोदके और उङ्गलीके सहारेके बालकोंपर रखती हैं। पर इतनेपर भी तुम निरे गोदके बच्चे नहीं बने रह सके। बहुत दबनेपर तुम्हें जवानोंकी तरह हिम्मत करनी पड़ी।

गोदके बच्चे क्या सदा गोदहीमें रह सकते हैं ? उफ ! अजीब मखमसेमें फँसे हो। तुम्हारे गोरे अफसर एक गोरे हाकिमकी खुशामदको तुमसे अजीज समझकर एक कान्स्टबलपर तुम्हें निसार करते हैं और तुम्हारे सेक्रेटरी ट्रस्टी अपनी वफादारीके दामनपर दाग नहीं लगने देना चाहते! अगर वह तुम्हारी तरफदारी करें तो अंग्रेज अफसर उन्हें बागी समझेंगे! तुम्हारी सांप छछूँदरकीसी हालत हुई!

सबसे गजबकी बात है कि यह पस्तहिम्मती मेरी ही पालीसी बताई जाती है और इसका अमलदरआमद करना मेरी रूहको सवाब पहुंचाना समझा जाता है! मेरा जी घबराता है कि हाय! एक मामूलीसी कमजोरीके लिये यह जिल्लत! जो झूठे टुकड़े अंग्रेज अपनी मेजपरसे इस मुल्कके हिन्दू-मुसलमानोंकी तरफ फेंक देते हैं, उनमेंसे दो चार मुसलमानोंके लिये ज्यादा लपक देनेके लिये यह जिल्लत! इस वक्त कुछ समझमें नहीं आता कि क्या कहकर तुम्हें तसल्ली दूं। इससे एक उलुलअज्म शाइरका एक मिसरा पढ़कर यह खत खत्म करता हूं—

"तुम्हीं अपनी मुशकिलको आसां करोगे।"

सय्यद अहमद—अज जन्नत

४

संवाद-पत्रोंका इतिहास

उर्दू अखबार

हिन्दीके अखबारोंके विषयमें कुछ विशेष आलोचना करनेका विचार जीमें आनेसे पहलेही उर्दू अखबारोंकी ओर दृष्टि जाती है, क्योंकि उर्दूके अखबार हिन्दीसे पहले जारी हुए हैं और उन्हींने हिन्दी-अखबारोंसे पहले तरक्कीके मैदानमें कदम आगे बढ़ाया है। ऊपरसे देखिये तो उर्दू और हिन्दीमें इस समय बड़ी अनबन है। उर्दूके तरफदार हिन्दी-वालोंको और हिन्दीके पक्षवाले उर्दूवालोंको कुछ-कुछ टेढ़ी दृष्टिसे देखते हैं, पर वास्तवमें उर्दू-हिन्दीका बड़ा मेल है। यहाँतक कि दोनों एक ही वस्तु कहलानेके योग्य हैं। केवल फारसी जामा पहननेसे एक उर्दू कहलाती है और देवनागरी वस्त्र धारण करनेसे दूसरी हिन्दी।

अंग्रेजी सरकारने अपना अमल भारतमें जमाकर भारतकी भाषाका ईरानी लिबास पसन्द किया। उसी लिबाससे भारतकी भाषा अंग्रेजी अदालतोंमें पहुंची। पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशकी अदालती भाषा उर्दू ठहरी। अदालती भाषा होनेसे पहलेही उर्दूपर अंग्रेजोंकी दृष्टि पड़ चुकी थी। उस बातको आज सौ सालसे अधिक हो गये। उस समय उर्दूमें गद्य पुस्तक लिखनेका ढङ्ग जारी हो गया था। उर्दू पद्यकी सबसे पहली पुस्तक सन् १७९८ ई०में बनी। मीर अमनकी प्रसिद्ध "बागोबहार" नामकी पोथी सन् १८०२ ई०में बनी। उसके एकही साल पीछे लल्लू

लालजीका 'प्रेमसागर" बन गया था। सरकारी दफ्तर सन् १८३५ ई० में उर्दू होने आरम्भ हुए थे। सन् १८३६ ईस्वीमें अखबारोंको स्वाधीनता मिली।

सन् १८३३ ई०में उर्दूका पहला अखबार दिल्लीमें जारी हुआ। उसका नाम मालूम नहीं, क्या था। लाहोरके गवर्नमेण्ट कालिजके अरबी-भाषाके प्रोफेसर मौलवी मुहम्मद हुसैन आजाद दिल्ली-निवासीने अपनी "आबेहयात" नामकी पोथीमें केवल इतना लिखा है कि उर्दूका पहला अखबार दिल्लीसे मेरे पिताके कलमसे निकला। जान पड़ता है कि उक्त अखबार बहुत दिन चला नहीं। इसीसे प्रोफेसर आजादने उसका कुछ विशेष उल्लेख नहीं किया। वह अखबार अबतक जारी रहता, तो ६७ सालका होता। उसके बाद कोई और उर्दू अखबार निकला या नहीं, कुछ पता नहीं।

कोहेनूर

इसके कोई १४ साल पीछे सन् १८५० ई०में लाहोरसे "कोहेनूर" नामका एक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकला। उसके मालिक एक हिन्दुस्थानी भटनागर कायस्थ मुंशी हरसुखराय साहब थे। एक समय वह बड़ा नामी और बड़ी इज्जतका कागज था। आज भी जीवित है, पर गुमनामीके गढ़ेमें पड़ा हुआ है। एक मित्रको पत्र लिखनेसे जान पड़ा कि अभी कोहेनूरका अस्तित्व लोप नहीं हुआ है। नाम लेनेके लिये वह उर्दूका पुराना और प्रतिष्ठित अखबार नाम धारण किये है।

कोहेनूरने जारी होनेके थोड़ेही दिन पीछे अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। पञ्जाबहीमें क्या सारे भारतमें उर्दूका वह अकेला पत्र था, इससे उसकी बड़ी भारी इज्जत हुई। उस समय हिन्दुस्थानी रियासतोंकी भी ऐसी दशा न थी, जैसी आजकल है। उस समय कितनीही रियासतोंमें अच्छे अच्छे शासक और दीवान अहलकार थे। रजवाड़ोंमें सर्वत्र कोहेनूरकी

पूछ होती थी , उत्सवोंपर उसके मालिकको राजा महाराजा निमन्त्रण करते थे। स्वर्गीय महाराजा रणवीरसिंहजीकी मुंशी हरसुखरायपर बड़ी शुभदृष्टि थी। जब मुंशीजी काश्मीर जाते तो रुपयों और दुशालोंसे मालामाल होकर आते थे। पटियाला आदि पञ्जाबकी दूसरी रियासतें भी इसी प्रकार कोहेनूरकी मदद करती थीं। कितनी ही रियासतें घर बैठे रुपये भिजवा देती थीं, दक्षिण हैदराबाद तकसे मुंशीजीको निमन्त्रण आया, पर वह दूर समझकर न गये। बहुधा उनका दौरा पञ्जाब रियासतों तक ही सीमाबद्ध रहता था।

कोहेनूरकी कीमत पन्द्रह रुपया साल या उसके लगभग थी। पर देशी रियासतोंसे कोई पचास रुपये कीमत ली जाती थी। वह ऐसा जमाना था कि, जब गवनमेण्टसे भी अधिक कीमत ली जाती थी। प्रायः जो कीमत देशी राजाओंसे लीं जाती थी, वही सरकार अंग्रेजीसे ली जाती थी। अब वह समय नहीं है। अब सरकार अखबारोंको साधारण दरजेकी कीमत देती है, वह भी उसकी कृपा है। कुछ हो, कोहेनूर अच्छे ढङ्गसे चलता था। उसका ष्टाफ भी अच्छा था। कई प्रेस और कितने ही प्रेसमैन और कातिब, कई एक मुंशी और दो दो तीन तीन एडीटर उसमें बराबर रहते थे। कितनी ही बार उसके एडिटरोंमें बहुत योग्य और अच्छे पढ़े-लिखे लोग भी होते रहे हैं। उसके ष्टाफमें अधिक मुसलमान होते थे। प्रेसमैन, कातिब उर्दूमें मुसलमान ही मिलते हैं। एडिटर भी अधिकतर मुसलमान ही होते थे। मुंशीजी हिन्दू मुसलमानमें कुछ भेद नहीं समझते थे। वह समय भी ऐसा था कि जब हिन्दू मुसलमानोंमें अच्छा मेल था।

कोहेनूरकी पालिसी कुछ नहीं थी। यदि कुछ थी तो यही कि किसीसे छेड़छाड़ न करना। सबसे मिलकर चलना। मुसलमानोंसे

खूब मिलकर चलना। उसे जब जैसा सम्पादक मिलता था, तब उसकी वैसी ही पालिसी हो जाती थी। सच तो यह है कि उस समय देशी अखबारोंकी कुछ पालिसी स्थिर ही नहीं हुई थी। कोहेनूरमें संवाद-दाताओंकी भेजी हुई लम्बी लम्बी खबरें, दूसरोंके भेजे हुए बड़े बड़े लेख, अंग्रेजी अखबारोंके तारोंका तरजुमा और कुछ एडिटोरियल नोट्स होते थे। एक दो आर्टिकल भी सम्पादक महाशयके लिखे हुए होते थे। कोहेनूर साप्ताहिकसे अर्द्ध साप्ताहिक और फिर सप्ताहमें तीन बार हुआ। उसका साइज बहुत अच्छा था। लिखाई छपाईका ढङ्ग भी अच्छा था। सन १८८८ और ८६ ई० में भारतमित्रके वर्तमान सम्पादकको भी उसके सम्पादकोंमें शामिल होनेका अवसर मिला था। उस समय तीन महीनेके लिये उक्त पत्र दैनिक भी हुआ। पर तब कोहेनूरका ढलता जमाना था। उसका चढ़ा हुआ सितारा नीचा होचुका था तथा उसके सौभाग्यकी जड़में दीमक लग चुकी थी। उसके मालिक मुंशी हरसुखराय बूढ़े भी होगये थे और रिक्तहस्त भी होगये थे। जो लोग उनकी सहायता करते थे, वह संसारसे एक एक कर उठ चुके थे। ऐसी दशामें पत्रका दैनिक रखना उचित न समझा गया। क्योंकि रुपयेका काम रुपयेहीसे चलता है। उदार मालिककी इच्छा थी कि पत्र दैनिक रहे। पर समझदार सम्पादकोंने प्रेसकी दशाका विचार करके वह मौकूफ करादी। इसके थोड़ेही दिन पीछे मालिकका भी देहान्त होगया। उनके दत्तक पुत्र मुंशी जगतनारायणने कुछ दिन पत्र चलाया, किन्तु थोड़ेही दिन पीछे उनका भी देहान्त होगया। उनकी विधवा पत्नीके नामसे कोहेनूर बहुत बड़ी बेरौनकीके साथ साप्ताहिक चलने लगा। अब भी चलता है, पर हाय, इस नामी पत्रका कोई नाम तक नहीं लेता!

विलायत आदि सभ्य देशोंमें जो वस्तु जितनी पुरानी होती जाती है, उतना ही उसका आदर बढ़ता जाता है। पंजाबसे जो "कोहेनूर"

महाराज दिलीपसिंहके साथ विलायत चलागया, उसीकी अखबार कोहेनूर यादगार है। वही उर्दूका पहला अखबार और उर्दू अखबार नवीसीका जन्मदाता कहलानेका हकदार है। विलायत आदिमें ऐसे पत्रको बहुतसा धन देकर खरीदनेवाले और फिर उसको उसकी हैसियतके मुवाफिक चलानेवाले बहुत लोग मिल सकते हैं। पर पञ्जाबका उर्दूका कोहेनूर कीचड़में निमग्न हो रहा है। कोई पूछनेवाला तक नहीं! कोहेनूरसे पञ्जाबमें प्रेस और समाचारपत्रोंका बहुत कुछ प्रचार हुआ है। इस समय भी पञ्जाबमें कई नामी प्रेसवालों और अखबारवालोंमें वह लोग मौजूद हैं, जो कोहेनूरकी नौकरी करके सीखे और उन्नतिको प्राप्त हुए हैं! कोहेनूरके कापीनवीसोंमेंसे कई एक प्रेसोंके मालिक हैं! उसके सम्पादकोंमेंसे कई एक न केवल नामी सम्पादक ही, वरञ्च बड़-बड़े प्रसिद्ध पदाधिकारी भी हुए हैं। लखनऊके स्वर्गीय मुंशी नवलकिशोर, जो हिन्दुस्थानके प्रेसवालोंमें लासानी हो गये हैं, एक समय कोहेनूर प्रेसके मुलाजिम थे। मुंशी हरसुखरायजीकी कृपा ही लखनऊमें मुंशी नवलकिशोरकी आरम्भिक उन्नतिका कारण थी। भारतमित्रके वर्तमान सम्पादकका जिस समय कोहेनूरसे सम्बन्ध था, उस समय एकबार मुंशी नवलकिशोर लाहोर गये थे। कोहेनूर आफिसमें जब मुंशी हरसुखरायसे मिले तो बराबर उनको "हुजूर, हुजूर" कहकर सम्बोधन करते थे और मुंशी हरसुखराय उन्हें "मुंशी साहब" कहते थे। वह प्रयागकी चौथी कांग्रसका जमाना था। उस समय "कोहेनूर" कांग्रस का पूरा तरफदार और मुंशी नवलकिशोर, सैयद अहमद खां और राजा शिवप्रसाद सहित कांग्रसके बड़े विरोधी थे। मुंशी साहब टहलते-टहलते कोहेनूर-सम्पादकके कमरेमें भी आये। फरमाया—"एडीटर साहब! एक एन्टी-कांग्रस आपके घरमें उतर रहा है, आप उसे मार तो न डालेंगे?" उत्तर मिला—"एक तो आप बड़े आदमी, दूसरे छोटेलाट कालविनकी आपपर

इनायत, हम गरीब एडीटरों पर रहमकी नजर रहे।" मुंशी साहब हंसकर चले गये।

कुछ पुराने अखबार

कोहेनूरके जारी होनेके बाद पञ्जाब और भारतवर्षके दूसरे प्रान्तोंमें उर्दूके कई एक अखबार निकले। कानपुरमें एक अखबार "शोलयेतूर" के नामसे निकलता था। एक और अखबारने "मतलयेनूर" नाम रखा था, यह अब उठ गये हैं। खास लाहौरमें "पञ्जाबी अखबार" और "अंजमनेहिन्द" निकले थे। इनमेंसे पहला सप्ताहमें दो बार होकर समाप्त होगया। दूसरा कुछ दिन अच्छी तरह चलकर कोहेनूरके अण्डरमें आया और अन्तको बन्द होगया। "आफताबे पञ्जाब" नामका एक पत्र लाहोरमें दीवान बूटा सिंहने निकाला। सप्ताहमें तीन बार तक हो चुका था। यह हर बातमें कोहेनूरकी नकल करना पसन्द करता था। दिल्लीमें "अशरफुल अखबार" बहुत पुराना है, जिसकी बुझते हुए दियेकी-सी दशा है। ४४ सालका पुराना है। स्यालकोटका "विक्टोरिया" पेपर भी ४० सालका हो चुका। बम्बईके "कशफुल" अखबारकी भी इतनी ही उमर है। लखनऊका "कारनामा" भी बहुत पुराना पत्र है। वह गद्य होनेपर भी सदा पद्य ही बना रहता अर्थात तुकदार या मुफक्का भाषा लिखता है। इसी प्रकार मन्द्राजका "जरीदये रोजगार" जो कुछ कम पुराना है, एक बातको बराबर निबाह रहा है। कुदसी कविने फारसीमें मुहम्मद साहबकी तारीफमें एक गजल लिखी थी। उसी गजलपर हर सप्ताह नया उर्दू मुखम्मस तय्यार होकर उक्त पत्रके आरम्भमें छपता है। और भी उर्दूके कई एक बहुत पुराने पत्र थे या हैं। उनके नाम याद नहीं। सारांश यह कि समय बदल गया, पर वह पुरानी चालके ऐसे मुरीद हैं कि जहांसे चले थे, वहींके वहां अड़े हुए गुमनामीके गढ़ेमें पड़े हुए हैं। एक "अवध अखबार" लखनऊ उर्दूका दैनिक पत्र है, जिसका ४५वां वर्ष

आरम्भ है। यह मुंशी नवलकिशोर साहबका जारी किया हुआ है। अपने आकार प्रकार और छापकी हैसियतसे वह उर्दूमें सबसे प्रतिष्ठित पत्र है। पर उसकी पालिसीने उसके नामको अप्रसिद्ध ही रखा। एक "शमसुल" अखबार मद्राज है, जो पुरानी चालका साप्ताहिक पत्र है। इसका भी ४५वां वर्ष जारी है।

अवध अखबार।

कोहेनूरके बाद पुराने अखबारोंमें "अवध अखबार" का नाम उल्लेख करने योग्य है। यह कोहेनूरसे ६ साल पीछे लखनऊसे निकला। स्वर्गीय मुंशी नवलकिशोरने यह पत्र जारी किया था। तबसे ४५ वर्ष पूरे होनेको आये। उक्त पत्र बहुत अच्छी रीतिसे चल रहा है। समय इस पत्रके सदा अनुकूल रहा। मुंशी नवलकिशोर साहबका छापाखाना इन ४५ सालमें दिन परदिन उन्नति करता गया; इसका कोई कारण न था कि उक्त प्रेसके अखबारकी दशा किसी प्रकार खराब होती।

"अवध अखबार" आरम्भमें साप्ताहिक था। अब भी उसका एक साप्ताहिक एडिशन निकलता है। पर हमने इसे दैनिक ही देखा है। यह भी मालूम नहीं कि वह दैनिक कबसे है। हमको कोई २० सालसे उसके देखने और जाननेका मौका मिला है। जब स्वर्गीय पण्डित रत्ननाथ सरशार इसके सम्पादक कहलाये और जब उक्त पत्रमें उक्त पंडितजीका बनाया "फिसानये आजाद" नित्य नित्य दो दो वरक करके छपने लगा, उस समय लोगोंका उसकी ओर ध्यान हुआ था। उसी समयसे हम भी उक्त पत्रको देखते हैं। उस जमानेमें इसकी नामवरी भी खासी हुई थी। क्योंकि तब पुराने ढांचेके उर्दूके शौकीन मौजूद थे। किस्सा पढ़ना उनकी विद्याका मुख्य लक्ष्य था। हंसी-ठठ्ठा-मजाक और रंगीन किस्सा-कहानी उन्हें पसन्द था। इसीसे "फिसानये आजाद" उनको

बहुत पसन्द हुआ। रंगीन मिजाज पण्डितजीने अपना फिसाना अंग्रेजीकी चाशनी देकर एशियाई ढङ्गपर लिखा। उनपर उर्दूवाले लहालोट होगये। फिसानेकी बड़ी इज्जत हुई। यहाँ तक कि उसकी कीमत कोई सोलह रुपये होनेपर भी इन कई एक सालमें वह चार पाँच बार छप चुका है। पण्डित रत्ननाथ अंग्रेजी पढ़े हुए थे और अंग्रेजी ढंग पसन्द करते थे। यहाँ तक कि कोट-पतलून ही बहुधा डाटे रहते थे, तिसपर भी वह पुराने ढांचेके लेखक थे उनके लेख वही पुराने ढांचे पर जाते थे। वह उनमें अंग्रेजी ढङ्ग लानेकी चेष्टा करते थे, पर उनकी तबीयत उनके लेखोंको एशियाहीकी तरफ खेंच लाती थी। उनका "फिसाना" तो अलग दो सफेद पन्नोंपर निकलता था और अवध अखबार-का कागज उन दिनों कभी हिनाई और कभी मटिया रंगका होता था। उनके उस समयके कितने ही लम्बे लम्बे लेखोंका हमें स्मरण होता है। उनमें खाली बातेंही बातें होती थी। साहित्यके लेखसे यह लेख बुरे नहीं होते थे, पर एक दैनिक समाचारपत्रके योग्य वह किसी तरह न थे। शायद वह अखबारोंके लायक लेख न लिख सकते हों, क्योंकि कभी गम्भीर राजनीतिक या समाजनीतिक लेख उनकी कलमसे निकले हुए हमने नहीं देखे। वह जब लिखते थे, दिल्लगी या कहानी या और उसी ढङ्गके लेख। इसका कारण यह भी हो सकता है कि अवध अखबारहीमें उस समय राजनीतिक आदिलेख नहीं लिखे जाते थे और न लखनऊमें कोई और अखबार ही उस समय राजनीतिक था। यदि राजनीतिकी चर्चा उस समय होती तो सम्भव था कि वह भी उस ढङ्गपर कुछ चलते।

पर हमें पण्डितजीकी बात नहीं कहना है, कहना है "अवध अखबार" की। जहाँ तक हम समझते हैं, तबसे अब तक "अवध अखबार" ने कोई उन्नति नहीं की। वह जैसा २० साल पहले था, वैसा ही अब भी है और यही कारण है कि इन २० सालमें अखबारी दुनियामें उसका कुछ

भी नाम नहीं हुआ। अखबार पढ़नेवालोंमें अधिक लोग उसका नाम तक नहीं जानते। नामका उसने कुछ काम नहीं किया। २० साल पहले उसमें विलायती तारोंका तरजुमा छपता था, पायनियर आदि अंग्रजो अखबारोंके लेखोंके तरजुमे छपते थे। वही बात आजतक होती चली आती है। इससे कह सकते हैं कि, 'अवध अखबार" अंग्रजी अखबारोंका एक ऐसा उर्दू तरजुमा करनेवाला है, जो यह भी नहीं जानता कि किस लेखका तरजुमा उसे करना चाहिये और किस लेखका नहीं। उसमें जो तारोंका तरजुमा छपता है, उनसे कोई-कोई उर्दू पढ़ा कुछ नहीं समझ सकता है कि कहाँ क्या हो रहा है। उनमें न कोई सिल-सिला होता है न कोई मेल होता है, न उनका तरजुमा करनेवाला किसी तारको ठीक ठीक समझानेकी चेष्टा करता है। भगवान जाने वह खुद भी समझता है या नही। नमूनेके लिये हम उक्त अखबारके तारकी खबरोंमेंसे एक दो नकल कर देते हैं।

"१४ नवम्बर लन्दन—मि० बालफोर और सर एम० हेक्सबीच ब्रस्टलमें कल रातको लिसवनकी दावतमें मेहमान थे।

मि० बालफोरने अपनी तकरीरमें एवज मावजेकी जरूरतके मुताल्लिक अपने खयालातका एआदह किया और कहा कि मुझको खयाल नहीं है कि, कबल इसके कि दो तीन साल न गुजर जायं, कोई आम इन्तखाब हो।

सर एम० हेक्सबीचने बयान किया कि मैं आजाद तिजारतके मामिलेमें वजीर आजमकी हिकमत अमलीकी ताईदपर आमदा हुआ था, लेकिन उनके जेरमुस्तनद प्रोग्रामकी निस्बत बिल इस्तिकलाल इख्तिलाफ हुआ।"

नमूनेकी इन पंक्तियोंसे साफ समझमें आजायगा कि विलायती तारोंका कैसा अनुवाद अवध अखबारमें होता है। हम आशा करते हैं कि अवध अखबारके मालिक इस ढाँचेको बदलेंगे। जिस तरजमेसे

कुछ अर्थ नहीं निकलता उसके होनेसे क्या फायदा है ?

जिन लेखोंका अवध अखबारमें तरजमा होता है उनकी भी यही दशा होती है। जबतक असल अङ्गरेजी लेख सामने न हो तबतक अवध अखबारमें उस लेखके तरजमेका मतलब समझना कितनेही स्थानोंमें कठिन हो जाता है। इस ओर भी अवध अखबारके मालिकका ध्यान होना चाहिये।

अवध अखबारका ष्टाफ बहुत अच्छा है। उसमें चाहे कोई सम्पादक कहनेवाला न हो, पर ष्टाफ ओछा नहीं है। अच्छे अच्छे वेतनके तर-जमा करनेवाले उसमें मौजूद हैं। मनेजर है, क्लर्क हैं, उसके वहां कातिबोंकी भी कमी नहीं है। और भी सब सामान है यहांतक कि उसके पास जो कुछ सामान है, वैसा अबतक किसी उर्दू अखबारके पास नहीं है। ऐसा अखबार यदि किसी अच्छे ढंगपर चलाया जाता तो वह बहुत कुछ नामवरी पा सकता था। पर अवध अखबारमें यह चेष्टा नहीं की गई, वह आजतक पुरानी लकीरका फकीर है! समय कितनाही पलट गया। वह जहां था, वहीं है।

पालिसीके हिसाबसे अवध अखबार बेसूंडका हाथी है। उसके किसी नम्बरको उठाइये और आरम्भसे लेकर अन्ततक पढ़ जाइये, कुछ पता न लगेगा कि उसका क्या उसूल है और वह क्यों जारी है। एडीटोरियल कालम उसमें है ही नहीं। कभी कभी ऐसा मौका हुआ है कि उसमें अवध अखबारको भी एडीटोरियल लिखना पड़ा है, पर वह ऐसाही कि जिसका होना न होना बराबर है। जब उक्त पत्र कांग्रसका विरोध करता था तो उसमें कुछ कुछ एडीटोरियल लेख होते थे। गोरक्षिणी सभाओंपर जब एक बार पश्चिमोत्तर प्रदेशकी गवर्नमेण्टको कोपदृष्टि हुई थी, उस समय अवध अखबारमें कुछ एडीटोरियल लेख देखे गये थे। और भी सरकारी खैरख्वाहीके मौकोंपर एडीटोरियल लेख हुए हैं। स्वर्गीय

मुंशी नवलकिशोर बहुत राजभक्त थे, इसीसे वह बहुधा हरेक काममें सरकारहीके तरफदार हुआ करते थे। देशकी उस कामसे चाहे हानि हो चाहे लाभ, अवध अखबारको सरकारी तरफदारोहीमें खड़ा होना पड़ता था।

राजनीति और समाजनीति दो बातें हिन्दुस्थानी अखबारोंमें प्रधान होती हैं। "अवध अखबार" दोनोंहीमें सदासे विचित्र रहा। वह राजनीतिसे दूर भागता था, पर उलटी राजनीतिमें शामिल होजाता था। इसी प्रकार समाजनीतिसे भी हटता था, पर उलटी समाजनीतिका कितनीही बार तरफदार होजाता था। इन सब बातोंको दिखानेसे लेख बहुत बढ़ सकता है। इसीसे यहां उनका दिखाना उचित नहीं समझा गया। कोई और अवसर हुआ तो दिखावेंगे।

अवध अखबारकी इन सब कमजोरियोंपर उसका स्थानीय सहयोगी "अवधपञ्च" बराबर छेड़छाड़ करता था, किसी जमानेमें अवधपञ्चका एक भी ऐसा नम्बर नहीं निकलता था, जिसमें अवध अखबारसे कुछ न कुछ छेड़छाड़ न हो।

अवधपञ्चने अवध अखबारका नाम 'बनिया अखबार' रखा था। इसका कारण यही था कि 'अवध अखबार' सरकारी अफसरोंकी खुशामदमें बेतरह लिप्त हो जाता था। बहुत दिनसे अवधपञ्चने वह छेड़छाड़ बन्द कर दी है, विशेषकर मुंशी नवलकिशोर साहबके स्वर्गवासके पीछे वह उसका नाम भी नहीं लेता है। अवधपञ्चका भी अब पहली-सी उमंगका समय नहीं है।

अवध अखबारपर सर्वसाधारणका प्रेम कभी नहीं हुआ। उसका कारण यही है कि सर्वसाधारणके उपकारकी कोई बात उक्त पत्रने नहीं की। वह सदा अमीरों और सरकारी अफसरोंकी खुशामद करता रहा, अमीर ही उसे खरीदते भी रहे। राजा लोगोंसे उसका मूल्य ५०) है, ताल्लुकदारों

और छोटे रईसोंसे ३०) और पचास रुपया मासिककी आयवालोंसे २०) है। उसका शनिवारका नम्बर साप्ताहिक पत्रकी भांति भी निकलता है। उसका वार्षिक मूल्य ६) है। इतने भारी मूल्यके पत्रको सर्वसाधारण लोग नहीं खरीद सकते। इससे भी वह सर्वसाधारणके हाथोंतक बहुत कम पहुंचा और आगे भी पहुंचनेका कोई उपाय नहीं है।

इतना मूल्य रखनेपर भी उसे कितनीही बार घाटेके लिये झींखना पड़ा है। हिन्दीका "अवध समाचार" भी उसी कारखानेसे निकला था। जिस प्रकार वह ग्राहकोंके अभावकी शिकायत करके परमलोकको चला गया, उसी प्रकार अवध अखबारको भी कितनींही बार नुकसानकी शिकायत करनी पड़ी है। हमें स्मरण है कि सन् १८८७ ई० में उसने ऐसी शिकायत की थी। पर यह शिकायत बहुत कामकी न थी, क्योंकि इसी पत्र द्वारा नवलकिशोर प्रेसकी हजारों रुपया मासिककी पुस्तकें बिकती हैं। इससे यदि एक ओर घाटा होता है तो दूसरी ओर नफा भी होता है।

हम ऊपर इशारा कर चुके हैं कि अवध अखबारके पास जैसा सामान और ष्टाफ है, उसको लेकर यदि यह पत्र देशकी भलाईके लिये चेष्टा करता तो बहुत कुछ कर सकता और यही सब उर्दू पत्रोंमें सब बातोंमें प्रधान गिना जाता। पर उन सब गुणोंसे वह बहुत दूर है, इससे खाली डील-डौल और ष्टाफमें ही प्रधान है, बाकी बातोंमें कुछ नहीं। आगे भी इस पालिसीसे वह कोई नेकनामी नहीं प्राप्त कर सकेगा और यदि यही पालिसी और भी २० साल तक जारी रहे तो एक दिन उसे आपसे आप बन्द होजाना पड़ेगा या अपने घरसे कौड़ी-कौड़ी खर्च देना पड़ेगा। वर्तमान अवध अखबारसे उर्दू पढ़े कुछ लाभ नहीं उठा सकते और जो अङ्गरेजी पढ़े हैं, वह २०) साल खर्च करके अंगरेजीका कोई अच्छा दैनिक पत्र पढ़ सकते हैं।

समशुल अखबार

पहले लेखमें हमने "समशुल अखबार"का नाम भी लिया है। इस अखबारकी उमर भी अवध अखबारकी तरह ४५ सालकी है। यह दो बड़े-बड़े पन्नोंपर निकलता है। उर्दू अखबारोंमें इतने बड़े-बड़े पन्ने और देखनेमें नहीं आये। यद्यपि यह ४५ सालसे निकलता है, तथापि जहां था वहीं है। मानो वर्तमान समयसे वह अर्द्ध शताब्दी पीछे पड़ा हुआ है। वही पुराने समयकी भाषा लिखता है, वही उसका पुराना ढांचा है। एडीटोरियल इसमें देखा ही नहीं, पालिसी इसकी कुछ है ही नहीं; यदि कुछ पालिसी है तो यही कि मुसलमानोंकी बहुत तारीफ करना, अपना मुसलमानपन दिखानेमें अन्य धर्म्मावलम्बियोंकी कुछ निन्दा कर जाना, अथवा सुलताने रूमके कुछ बेसमयके गीत गाना। यह अखबार इस सिरेसे उस सिरे तक दूसरे अखबारोंकी नकलसे भरा रहता है। हाँ, कभी-कभी अरबी अखबारोंके कुछ लेखोंका तरजमा इसमें होता है। पर वह तरजमा ऐसा होता है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। कुछ अंगरेजी अखबारोंका तरजमा भी इसमें छपता है, उसे पढ़कर भी माशाअल्लाह कहना पड़ता है। नमूनेके लिये पाँच सात पंक्ति नीचे नकल कर देते हैं—

"ऐ जेण्टलमेन, मैं आपके एड्रसके लिये जो मुत्तजम्मिन खैरेमकदम है, आपका दिली शुक्रिया अदा करता हूं। आपका एड्रेस कुछ फकत अपने इलताफाना इजहारातके बाइस जो मेरे बारेमें हैं, मुझे खुश नहीं करता है, बल्कि अललखुसूस इसलिये कि इस एड्रससे आपकी अंजमन पर रोशनी पड़ती है—

इन पंक्तियोंसे यदि कुछ अर्थ निकलता हो तो निकाल लिया जाय। इसकी कीमत भी बेढब है। यद्यपि यह साप्ताहिक है, तथापि सरकारसे ४८) रुपया लेता है! यद्यपि आजकल सरकार किसी अखबार-

को सामान्य मूल्यसे अधिक नहीं देती, तथापि इसने *अड़तालीस ही* लिख रखे हैं। राजा लोगोंसे इसका मूल्य ३१॥=) (पाई नहीं !) अमीरों और महाजनोंसे २१॥=) सौ रुपयेकी आमदनीवालोंसे ११॥=) और दस बारहकी नौकरीवाले चपरासियोंसे ६॥=) साल है। फिर कोई अगाऊ मूल्य न दे तो यह मूल्य कोई पौने दूना हो जाता है, मानो यह अखबार अपने खरीदारोंसे मूल्य नहीं लेता, इनकमटैक्स लेता है। अवश्यही इस अखबारके ग्राहक भी होंगे, क्योंकि ग्राहक न होते तो ४५ साल चलता कैसे। ऐसे अखबारोंको हम उर्दू अखबारोंका कुतब कह सकते हैं। यह केवल पचास साल पहलेके स्मारक चिन्ह स्वरूपही नहीं हैं, वरञ्च उस समयको थामे भी बैठे हैं।

अखबारे आम

"कोहेनूर" और "अवध अखबार" आदिके जारी होनेका समय उर्दू अखबार नवीसीका पहला समय था। लाहोरके "अखबारे आम"ने वह समय पलट दिया। उसके निकलनेसे उर्दू अखबारोंका दूसरा दौर आरम्भ हो गया। वह दूसरे समयका पहला अखबार है। उसके निकलनेसे पहले जो अखबार जारी थे, उनका मूल्य बहुत था। कम आमदनीवाले उन्हें खरीद नहीं सकते थे। अखबारे आमके जारी करनेवालोंने इस अभावको दूर किया। इस समय उसे जारी हुए ३३ साल पूरे हुआ चाहते हैं। जिस समय अखबारे आम जारी हुआ छोटे अखबारोंका महसूल एक पैसा नहीं हुआ था। तिसपर भी उसने महसूल डाक सहित २॥) रखा था। चार छोटे छोटे वरकों पर वह निकलता था। इसके जारी करनेके प्रधान उद्योगी पञ्जाबके शिक्षा विभागके एक सुयोग्य कर्मचारी थे। स्वर्गीय पण्डित मुकुन्दरामजी इसके अधिष्ठाता बने। उन्होंने कोहेनूरकी नौकरीके समय प्रेस चलानेका बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था, इससे उनको "अखबारे आम" चालानेमें बड़ी सफलता प्राप्त

हुई। अखबार जैसा छोटासा था, खबरें भी उसमें वैसीही छोटी छोटी होती थीं। यहां तक कि पहले पृष्ठकी खबरें एक एक लाइनकी होती थीं। वह ढङ्ग आज तक जारी है। इस समय कागजका आकार तबसे दूना है, इससे लाइनें भी बड़ी बड़ी हैं। तथापि इतनी चाल बाकी है कि उन बड़ी बड़ी लाइनोंमें भी एक एक लाइनकी खबरें आरम्भके पृष्ठ पर दी जाती है।

"अखबारे आम" आरम्भमें खाली खबरोंका कागज था। इससे उसकी पालिसीका पता लगाना व्यर्थ है। उसमें सदा सामयिक अच्छी अच्छी खबरें छपती थीं। ऊपर कह चुके हैं कि पञ्जाबसे शिक्षा विभागके एक कर्मचारी इसके सरपरस्त थे, इसीसे पञ्जाबी सरकार अपने प्रान्तीय स्कूलोंके लिये अखबारे आम बहुत खरीदती थी। छोटे छोटे स्कूलोंमें भी इसकी एक एक कापी जाती थी। काबुलकी अमीर शेर अलीके समयकी लड़ाईके तथा पिछली रूस और रूमकी लड़ाईके समयमें अखबारे आमका खूब नाम था, इसी समय हमें पहले पहल अखबारे आमके पढ़नेका अवसर मिला। उस समय इस छोटेसे पत्रने इतना नाम पाया था कि बड़े बड़े अखबारोंके ऊपर छागया था। उस समय यह सच मुच अखबारे आम अर्थात् सर्व्वसाधारणका पत्र बन रहा था।

उस समय अखबारे आममें छोटी छोटी खबरोंके सिवाय कुछ लम्बी लम्बी खबरें, चुटकले और दिल्लगीकी कविताएं हुआ करती थीं। दिल्लीके पहले दरबारके समय बड़ा अकाल पड़ा हुआ था, तब अकालके विषयकी कई एक कविताएं उक्त पत्रमें अच्छी निकली थीं। कुछ दिन बाद "अखबारे आम" सरकारी स्कूलोंसे बन्द हो गया। उसकी जगह "विक्टोरिया पेपर" नामका स्यालकोटका एक उर्दू पत्र सरकारी स्कूलोंमें जारी हुआ। यह बात स्पष्ट न मालूम हुई कि सरकारी कृपा अखबारे आमके ऊपरसे हटकर विक्टोरिया पेपरपर कैसे जा पड़ी। उड़ती खबर

सुनी गयी थी कि अखबारे आमकी किसी खबरसे अङ्गरेजोंको गाली आती थी इसीसे पञ्जाबी सरकार उसपर नाराज हुई।

इसके बाद अखबारे आमका समय और पलटा। सरकारी कृपा हट जानेके बाद सर्वसाधारणकी कृपा उसपर खूब बढ़ी। वह कुछ स्वाधीनतासे लिखने लगा। अब पण्डित मुकुन्दरामजीके समयसे उनके पुत्र पण्डित गोविन्द सहाय और पण्डित गोपीनाथका जमाना आया। पत्र साप्ताहिकसे सप्ताहमें दो बार और फिर तीन बार हुआ। अन्तको दैनिक होकर आकार भी दूना कर लिया। उसकी इज्जत भी बहुत बढ़ी। उर्दूके बहुतसे इधर उधरके अखबार उसकी खबरोंको नकल किये बिना अपना काम नहीं चला सकते थे। इस समय कोहेनूर और उसके साथके पुराने अखबारोंका घटतीका समय आगया था, इससे अखबारे आमकी और भी धूम मची। पंजाबमें सबका यही ख्याल हो गया कि अखबारे आम पहला नम्बर लेगा। पर आज कल लाहोरी अखबारोंमें एक तीसरा समय उपस्थित हो चुका है। इससे कौन पहला नम्बर लेगा यह कहना कठिन है।

अखबारे आमकी पालिसी स्थिर करना कठिन है। आरम्भमें वह खाली खबरोंका छोटा-सा पत्र था। पीछे भी उसके कोई पालिसी न थी। बीच-बीचमें उसके फसली ढङ्गसे कभी-कभी पालिसी दिखाई दे जाती है, पर थोड़े दिन पीछे लोप हो जाती है। कितनी बार उसने सरकारकी बेफायदा खुशामद की है और कितनीही बार ठीक इसके विपरीत व्यर्थ विरोध। कभी-कभी वह हिन्दू समाजका लीडर बननेको भी आगे बढ़ा है, पर कुछ दिन पीछे "सुलहकुल" बनकर उलटे पांवों चलता दिखाई दिया है। कांग्रेसका वह तरफदार भी हुआ है, विरोधी भी हुआ है और बीचों-बीच भी रहा है। यहां तक कि उसके एक नम्बरमें जो राय प्रकाशित होती है, दूसरे नम्बरके लेखसे उसका खण्डन हो जाता

है। यह चाल उसकी बराबर जारी है और उसे इसका जरा ध्यान नहीं। पर अखबार लिखनेवालोंके लिये यह बड़ी दोषकी बात है।

अच्छी भाषा लिखनेमें अखबारे आमका कभी नाम न था। यों तो पंजाबके एक अखबारकी भी उर्दू ऐसी नहीं है, जिसे उर्दूके अच्छे विद्वान सही मान सकें, तथापि कई एक लाहोरी अखबार अच्छी उर्दू लिखते हैं। विशेषकर आजकल दो एक पत्र वहां भाषामें बहुत कुछ उन्नति कर रहे हैं। पर अखबारे आमकी उर्दू अब भी पुरानीही दशामें है। एक पालिसी और दूसरे भाषा—इन दोकी ओर उक्त पत्रके चलानेवालोंका पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिये। विशेषकर पहली बातका सबसे अधिक ध्यान चाहिये। वही अखबारका प्राण है।

इस समय अखबारोंके पढ़नेवालोंका ज्ञान पहलेसे बहुत अधिक हो गया है। वह यह भी जानने लगे हैं, कि कैसा अखबार पढ़ना चाहिये। इससे जो सम्पादक समयके परिवर्त्तनकी ओर भली भाँति ध्यान रखते हैं, वही अपने पत्रकी उन्नति कर सकेंगे।

कुछ हो, एक बात अखबारे आमने ऐसी की है, जिससे उर्दू अखबार पढ़नेवाले उसका गुण कभी न भूलेंगे। वह यही कि उसने सस्ता कागज निकालकर अखबार पढ़नेकी रुचि बढ़ाई। उर्दूमें यह काम पहले पहल उसीके द्वारा हुआ, इस बड़ाईका यह निःसन्देह हकदार है।

और कुछ अखबार

अखबारे आमके निकलनेके पीछे उर्दूके और भी कई एक अखबार निकले। वह भी बेपालिसीके अखबार थे। उनमेंसे दो एक जीवित भी हैं, पर बुरी दशामें। यदि जरूरत पड़ी तो उनकी बात कहीं आगे कहदी जायगी।

अवधपञ्च

"अवधपञ्च" २७ सालसे लखनऊसे निकलता है। जनवरीसे उसका २८ वां वर्ष आरम्भ होगा। भारतमित्रसे वह एक साल बड़ा है।

उसकी नींव उर्दू अखबार नवीसी के मध्य समयमें पड़ी है। उर्दू के पञ्च अखबारोंमें वही पहला अखबार है और वही अब जीवित है। "अवध अखबार" इसके जारी होनेसे १८ साल पहले जारी हो चुका था। पंजाबमें उस समय कितने ही अखबार जारी हो चुके थे। लखनऊमें भी और कई उर्दूके अखबार जारी थे। किन्तु दिल्लगी-बाज अखबार उस समय तक कोई न था। उसने जारी होकर पहले पहल उर्दू भाषाको हास्यरससे प्लावित किया। निकलनेके दो ही तीन साल बाद उसकी बहुत धूम पड़ गई थी और उसकी इज्जत होने लगी थी। उसका मूल्य भी कम न था। सर्वसाधारणसे डाक महसूलके सहित १२॥–) लिया जाता था और अमीरोंसे तो और भी अधिक लिया जाता था। उर्दूके एक साप्ताहिक पत्रका इतना मूल्य बहुत अधिक था, पर तो भी इसके ग्राहकोंकी संख्या एकवार दो हजारके आसपास जा पहुंची थी ; यह कुछ कम आदरकी बात नहीं है।

अवधपञ्चके लेख और चुटकले उर्दूके प्रायः सब अखबारोंमें नकल होते थे। गम्भीर अखबारोंका भी उसको देखादेखी हास्यकी ओर ध्यान हुआ था। उसकी नकल पर कितने ही पंच निकले भी। लखनऊ हीसे एक "इण्डियन पञ्च" निकला और कुछ दिन अच्छे ढङ्ग पर चला चला था। दिल्लीसे "देहलीपञ्च" निकला था और फिर लाहोरमें जाकर कई वर्ष चलकर बन्द हुआ। और भी दस पांच पञ्चोंके नाम इधर उधरसे सुननेमें आते थे, जिनमेंसे एक बांकीपुरमें, जो अबतक जीवित है। पर वह सब अवधपञ्चके सामने इज्जत न पासके और अन्तको ठहर भी न सके। लाहोरसे "मुल्ला-दोप्याजा" निकला था। वह खासा था, पर जल्द चल बसा। लखनऊमें बूढ़े अवध अखबारको भी अवध पञ्चकी देखादेखी दिल्लगी सूझी थी। उसमें भी पञ्चाना लेख लिखे जाने लगे थे। पण्डित रत्ननाथने 'फिसानये आजाद' उसी

लिये अवध अखबारमें लिखना आरम्भ किया था। उसमें अधिक हिस्सा हंसने हंसानेहीका है।

यद्यपि उर्दू अखबार-नवीसीकी उस समय तक बहुत उन्नति नहीं हुई थी, तथापि अवधपञ्चका पञ्चाना ढङ्ग बहुत उन्नत था, यह बड़े आश्चर्य्यकी बात है। विलायतके पञ्च और दूसरे दिल्लगीवाज अखबारोंमें जिस प्रकारकी ऊंचे दर्जेकी दिल्लगियां होती हैं, वैसे ही अवधपञ्चमें होती थीं। इसमें कुछ शक नहीं कि अवधपञ्च विलायती कागजोंसे बहुत कुछ मदद लेता था, तथापि उसमें निजके लेख ही अधिक होते थे और वही अधिक अच्छे होते थे।

अवधपञ्चमें तीन विशेष गुण थे। वह लिखता बड़ी स्वाधीनतासे था और उसकी दिल्लगी बड़ी ही मौकेकी होती थी। दूसरे वह जानता था कि इस देशके लिये कौनसी पालिसी दरकार है। वह सदा प्रजाका तरफदार रहा। यद्यपि वह हर मामलेमें दिल्लगी हीसे बोलता था, पर उसकी दिल्लगी अच्छे-अच्छे देशहितैपियोंकी रायका निचोड़ होती थी। तीसरी बात उसमें बढ़कर यह थी कि उसकी भाषा शुद्ध और पक्की उर्दू गिनी जाती थी। जिस आदमीके लिखे चार लेख अवधपञ्चमें छप जाते, वह समझ लेता था कि अच्छी उर्दू लिखनेकी मानो उसे सनद मिल गई। यह पिछली बात आजतक किसी उर्दू अखबारको नसीब नहीं हुई। इस समय अवधपञ्चकी अच्छी दशा नहीं है, पर उर्दूके लिये कुछ पूछना हो तो आज भी उसके रोगग्रस्त एडीटरके पास ही दौड़ना पड़ता है।

अवधपञ्चको अच्छे अच्छे लेखक मिले थे। बड़े बड़े नामी आदमी उसमें लिखना अपनी इज्जत समझते थे। स्वर्गीय पण्डित रत्ननाथ भी आदिमें अवधपञ्चमें लिखा करते, जो पीछे उर्दूके एक अद्वितीय लेखक गिने गये। और कितने ही अच्छे अच्छे लेखक इसमें लिखते थे, जिन्होंने

उर्दू लिटरेचरको बहुत कुछ उन्नति दी। उनमेंसे एक कसमण्डवी थे, जिनकी भाषाकी छटा और वर्णनका ढङ्ग देखनेके योग्य होता था। बहुत दिन हुए वह मर गये और फिर उस ढङ्गके लेख अवधपञ्चमें देखनेमें नहीं आये। एक और लेखक सितमजरीफ थे। अब वह भी दुनियांसे उठ गये हैं। वह सचमुच सितमजरीफ थे। उनके लेख पढ़ते समय आँतोंमें बल पड़ जाते थे। वह प्रायः लखनऊकी बातें लिखते थे। नवाबलोग बटेर कैसे लड़ाते हैं, मुकद्दमेंबाज अदालतोंमें मुकद्दमे कैसे करते हैं और किस प्रकार वह अदालती घसीटनमें पड़कर खराब होते हैं। लखनऊके नवाबोंका क्या ठाटबाट है, लखनऊके मेले, ठेलोंका क्या रंग-ढंग है, यही सब बातें उनके लेखोंमें होती थीं। इन्हीं मामूली बातोंको वह ऐसे ढङ्गसे लिखते थे कि पढ़नेवाले मोहित हो जाते थे। पर केवल हंसी ही उनके लेखोंमें नहीं होती थी। उनमें मुहावरोंका खजाना और लालित्यका ढेर होता था। सितमजरीफ मिरजाके उन लेखोंका सिलसिला उनके साथ ही पूरा हो गया। और भी इसी प्रकारके कई लेखक अवधपञ्चको मिले थे। अपने अपने ढङ्गमें वह खूब लिखते थे।

जो लोग अवधपञ्चमें लिखते थे, उनमेंसे कई एकके एक आन थी। वह यह कि इन्होंने जब कभी कुछ लिखा अवधपञ्चहीमें लिखा। उस जमानेमें अवधपञ्चके भी यह आन थी कि जो लेखक किसी और पत्रमें लिखता था, उनके लेख वह नहीं छापता था। और भी कितनी ही विशेषताएँ अवधपञ्चमें ऐसी थीं, जो भारतवर्षके अखबारोंमें होनी चाहिये। वह इस देशके त्यौहारों और उत्सवोंको कभी नहीं भूलता था। त्योहार चाहे हिन्दुओंके हों चाहे मुसलमानोंके और चाहे कृस्तानोंके, सबपर वह कुछ न कुछ लिखता था। बड़े दिनकी डाली और नये दिनके साकीनामे उसके बंधे हुए लेख थे। साकीनामोंका ढंग मुसलमान अपने देशसे लाये हैं। साकी शराब पिलानेवालेको कहते हैं। अरब और ईरानमें

साकीकी बहुत कुछ इज्जत थी। रिन्दलोग उससे शराब पीते थे। उससे उसे अपना सर्वस्व समझकर मनकी सब बातें उसके आगे कह डालते थे। मनकी बातोंको खोलकर कह डालनेका यह ढंग उक्त देशोंके ·· वियोंको बहुत पसन्द था वही चाल उनकी सन्तानने हिन्दुस्थानमें आकर उर्दू कवितामें चलाई। अवधपञ्चके साकीनामोंमें साल भरकी सब बातोंकी झलक होती थी। होलीमें वह सदा रंगीन निकलता था और अब भी निकलता है। होलीके नम्बरमें होलीहीके लेख होते हैं। और कोई पत्र भारतवर्षमें इस चालका निबाहनेवाला नहीं है। जातीयताका इतना बड़ा खयाल और किस अखबारको है? भारतके समाचार-पत्र भारतहीमें निकलते हैं और वह इस देशकी बातोंसे इतने शून्य होते हैं कि उन्हें भारतके पत्र कहनेसे भी लज्जा आती है।

अवधपञ्चके सम्पादकमें भी कुछ विशेष गुण हैं। वह केवल दिल्लगीकी भाषामें अखबार ही नहीं लिखते, वरञ्च स्वयं भी हास्यरसकी सजीव मूर्ति हैं। सन् १८८८ ई० में प्रयागकी चौथी कांग्रसमें पुलिसके विषयमें उनकी वक्तृता सुनकर लोग हंसीके मारे लोट पोट हो गये थे। सारे मंडपमें उनकी धूम पड़ गई थी। थोड़से शब्दोंमें बहुतसा मतलब अदा कर देना अवधपञ्च सम्पादक मुंशी मुहम्मद सज्जादहुसैन साहबका खास हिस्सा है। वह हिन्दू मुसलमानोंको एक दृष्टिसे देखते हैं। सदा अपने अखबार द्वारा उन्होंने दोनोंमें मेल रखनेकी चेष्टा की। उन अखबारोंका कभी साथ न दिया जो एक समूहकी तरफदारी और दूसरेसे विरोध करनेको बहादुरी समझते हैं।

अवधपञ्च अब भी बराबर जारी है, पर दुःखकी बात है कि अच्छी अवस्थामें नहीं। उसका वह जोशोखरोश नहीं है, वह धूमधाम नहीं है। बहुत दबी हालतमें पत्र किसी प्रकार निकल जाता है। इसका कारण एक चिट्ठी द्वारा पूछा गया था। उत्तरमें उसके मालिक और

सम्पादक महोदयकी एक चिट्ठी मिली है। उसका कुछ अंश नीचे दि
जाता है—

"मुकर्रमी तसलीम। खत पहुँचा। बहुत बजा है। अवधपञ्च मु
हाथोंसे इस वजहसे निकलता है कि कोई उठानेवाला नहीं। दो ए
सतरोंके सिवा हाथसे लिख सकता न मुँहसे बोल सकता हूं। कु
नौकर हिम्मत करके निकाल देते हैं। दस सालसे फालिजमें गिरिफ्ता
लबेगोर हूँ। जब किसी तरफ इतमीनान नहीं, तो क्या इन्तजाम ह
सके। अखबार सिरफ इस लिये निकालता हूं कि जीते जी मर नहं
सकता, वरना इस आरिजेके हाथों -

'मुझे क्या बुरा था मरना। अगर एक बार होता।'

अवधपञ्च जिन्दा अखबारोंमें नहीं कि इसका जिक्र हो। ह
गुजश्ता जमानेमें तो था।"

चिट्ठी पढ़कर जी भर आया। जो लोग उर्दू अखबारोंकी तरफदारीमे
जमीन आसमान एक किये डालते हैं और हिन्दीका नाम सुनते
ही खुदकुशीको तय्यार होते हैं, वह एकबार अपने अखबारोंकी
हालतपर निगाह डालें। मुसलमानोंकी तालीमी कानफरन्सके साथ उर्
अखबारोंकी कानफरन्स होनेकी भी बात सुनी है। देखें, उसका ध्यान ऐसे
बातोंपर होता है या और ही व्यर्थ बातोंपर। अवधपंच उर्दूका बादशाह
है। यदि अच्छी उर्दू कहीं है तो वह अवधपंचके पुराने २७ सालके
फाइलोंमें बन्द है। यदि अच्छी उर्दूकी रक्षा करना है तो उर्दूवाले पहले
अवधपंचकी रक्षा करें।

कोई अठारह उन्नीस साल हुए लखनऊसे "महशर" नामका एक
कागज निकला था। कोई साल भर भी न चला, पर उर्दू लिटरेचरका
अच्छा कागज था। गोरखपुरसे "रियाजुल अखबार" एक पुराने ढांचेका

अच्छी उर्दूका पत्र निकलता है। पर दोष यही है कि जहां बीस साल पहले था, वहीं अब है।

उद्देश्य

हम ऊपर कह आये हैं कि उर्दू अखबार बहुत कालतक उद्देश्यहीन दशामें चलते रहे। अबतक जिन अखबारोंका वर्णन कर चुके हैं, प्रायः वही हैं जिनके समयमें अखबार लिखनेका कोई उद्देश्य स्थिर नहीं हुआ था। आगे उन अखबारोंकी बात कहते हैं जिन्होंने उर्दू अखबार नवीसी-का उद्देश्य स्थिर किया।

हिन्दुस्तानी।

लखनऊका "हिन्दुस्तानी" उर्दू अखबारोंमें सबसे पहला अखबार है, जिसने उर्दू अखबारोंका उद्देश्य स्थिर किया। इस पत्रने दिखाया कि उर्दू पत्रोंको किस पथपर चलना चाहिये और उन्हें क्या लिखना चाहिये। जिस प्रकार कलकत्तेमें देशी अखबारोंकी एक पालिसी स्थिर करनेवाला पत्र "अमृतबाजार" है और "हिन्दू पेटरियट" उससे पुराना होनेपर भी वह इज्जत न पा सका, वैसे ही उर्दू अखबारोंमें "हिन्दुस्तानी" है जिसने उर्दू अख-बारोंको पालिसी सिखाई। जनवरी सन् १९०४ ई० से हिन्दुस्तानीको इक्कीसवां वर्ष लगता है। बीस साल उसे निकलते हो गये। आरम्भमें वह उर्दू और हिन्दी दोनोंमें निकला था। लीथोहीमें उर्दू हिन्दी दोनोंका काम चलता था। नया होनेसे अखबारी दुनियाकी बहुत बातें न जानता था। अपने विज्ञापनमें उसने लिखा था—"हिन्दुस्तानी हर सप्ताह तीन सौ खबरें छापता है।" तब यह सचमुच छोटी-छोटी खबरोंका कागज था।

पर यह दशा उसकी बहुत दिन न रही। कुछ दिन पीछे हिन्दीको उसने बिदा किया और खाली उर्दूमें निकलने लगा। शायद हिन्दी पाठकोंसे उसे कुछ सहायता न मिली। तबतक हिन्दीकी दशा भी अच्छी

न थी। इसके बाद उक्त पत्र सप्ताहमें एक बारसे दो बार और फिर तीन बार निकलने लगा। आरम्भमें उसने क्या मूल्य रखा था स्मरण नहीं, पर तीन बार निकलनेके समय छः रुपया साल इसका मूल्य था। पर अन्तको सप्ताहमें एक बार निकलने लगा और मूल्य तीन रुपये साल स्थिर किया। कहा कि सप्ताहमें तीन बारकी जरूरत लोग नहीं समझते। इससे डाक महसूलकी किफायत करके पाठकोंको बड़े आकारमें साप्ताहिक पत्र कम मूल्यपर दिया जाना अच्छा है। तबसे उक्त पत्र बराबर साप्ताहिक है और तबहीसे उसकी बात कहनेके योग्य है।

उर्दू-दुनियामें "हिन्दुस्तानी" एक नई चालका पत्र हुआ। उसने राजनीतिको ग्रहण किया और आरम्भहीसे राजनीतिके लेख लिखने आरम्भ किये। राजनीति सम्बन्धी हरेक बातपर कुछ न कुछ हिन्दुस्तानीमें लिखा जाता है। इसके सिवा और जितनी बातें आलोचनाके योग्य होती हैं, उन सबपर भी उसमें कुछ न कुछ आलोचना होती है। हिन्दुस्तानीके सालभरके सब पत्र जोड़कर पढ़ लो ; उस सालकी सब जरूरी राजनीतिक और दूसरी जाननेके योग्य बातें उसमें मिलेंगी। उसका फाइल साल भरकी घटनाओंकी याददाश्त होता है। उर्दू अखबारोंमें यह बात हिन्दुस्तानीसे पहले पूरी तरह किसीको प्राप्त न थी! हिन्दुस्तानीके निकलनेके बाद कई एक और अखबार भी उसीढंगपर चले हैं, पर अब भी हिन्दुस्तानीकी बराबरी कोई नहीं कर सका है। मंद्राजमें कांग्रेस हुई। प्रेसीडण्ट मि० घोषकी पूरी स्पीच हिन्दुस्तानीके एक ही नम्बरमें निकल गयी। और जितनी कामकी स्पीच होती हैं, उन सबका तरजमा बहुधा उसमें निकल जाता है। पार्लीमेण्टकी बातें, विलायतमें हिन्दुस्तानकी बाबत जरूरी स्पीचें, बड़े लाट आदि भारतके बड़े बड़े राजपुरुषोंकी स्पीचें जितनी भारतवासियोंके जाननेके योग्य होती हैं, उतनी हिन्दुस्तानीमें प्रकाश हो जाती हैं। जो लोग अंग्रेजी नहीं पढ़े हैं, वह भारत-

वर्षकी जरूरी जरूरी राजनीतिक बातें खाली हिन्दुस्तानीको पढ़कर जान सकते हैं। ऐसी दशामें जब हम यह कहते हैं कि हिन्दुस्तानी उर्दूमें अपने ढङ्गका एक ही अखबार है, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होती।

हिन्दुस्तानीमें और कई एक गुण हैं जो दूसरे अखबारमें कम हैं। वह जो कुछ लिखता है, बड़ी स्वाधीनतासे बेधड़क लिखता है। वह सभ्यताका बड़ा खयाल रखता है। कोई कुरुचिपूर्ण खबर या लेख हमने कभी उसमें नहीं देखा। वह जब लिखता है, अच्छी बात लिखता है और अच्छे ढंगसे लिखता है। किसीसे कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं करता। जो अखबार उसके साथ छेड़छाड़ करते हैं, यदि जरूरत पड़े तो उनका उत्तर देता है, नहीं तो चुप हो जाता है। उर्दू अखबारोंको खानाजंगी करनेकी बड़ी आदत है। जो अखबार मुसलमानोंके हाथमें हैं, वह मुसलमानोंकी व्यर्थ हिमायत करके हिन्दुओंको गालियां दिया करते हैं। उससे मुसलमानोंका कुछ लाभ नहीं होता। हां, हानि खूब होती है। क्योंकि उससे मुसलमानोंका हिन्दुओंकी ओर और हिन्दुओंका मुसलमानोंकी ओरसे जी खट्टा होता है। इसी प्रकार हिन्दुओंके कुछ पत्र मुसलमानोंके कुछ न कुछ विरुद्ध लिखा करते हैं। अपनी समझमें वह ऐसा करके हिन्दुओंके साथ कुछ मित्रता करते होंगे, पर असलमें वह हिन्दुओंहीके दुश्मन हैं। "हिन्दुस्तानी" ऐसे मामलोंमें सदा बेलाग रहता है। जो बात उचित होती है, वही लिखता है। यद्यपि इससे कई एक मुसलमानी अखबारोंका मिजाज नहीं बदला, तथापि जब कभी उनमें समझ आवेगी, वह आपसे आप समझ जायंगे कि दूसरेकी बुराई करनेसे अपनी भलाई कभी नहीं हो सकती। और यह भी किसी दिन वह समझ जायंगे कि हिन्दुओंके साथ मिलकर चलनेमें मुसलमानोंका लाभ है, अलग रहनेमें नहीं।

हिन्दुस्तानीके साथ-साथ और भी कईएक कागज ऐसे निकले जो

अपने कर्त्तव्यको पहचानते थे। लाहोरसे "रफीके हिन्द" नामका एक अखबार निकला था, जो बहुत दिनतक अच्छे ढंगसे चलता रहा। आरम्भमें उसकी पालिसी लगभग वही थी, जो हिन्दुस्तानीकी है। पीछे सर सय्यद अहमदखांकी आकलेण्ड कालविन साहबके समयकी नीतिमें उसे फंसना पड़ा। आरम्भमें सर सय्यद अहमदखां हिन्दू मुसलमानोंका खूब मेल चाहते थे। हिन्दू मुसलमानोंको वह अपनी दोनों आंख बताते थे। अलीगढ़ महम्मडन कालिजके लिये चन्दा वसूल करनेके समय उनकी यही पालिसी थी। पर प्रयागकी चौथी कांग्रेसके समय छोटे लाट कालविन साहबकी हवामें भरकर उन्होंने मुसलमानोंको हिन्दुओंसे फट कर चलनेकी सलाह दी। वही पालिसी उस समयके कई एक मुसलमान अखबारोंने स्वीकार की। "अलीगढ़ इन्सटीट्यूट गजट" नामका सर सय्यद अहमखांका एक उर्दू अंगरेजीका अखबार अलीगढ़से निकलता था। वह इस पालिसीका नेता बना। लखनऊके अवधपञ्चके सिवा प्रायः सब मुसलमानी अखबार उसमें शामिल हुए। "रफीके हिन्द" भी उनके साथ था। पीछे वह स्वयं सय्यद साहबसे लड़ गया। कुछ दिन मुसलमानोंकी हिमायत करता रहा। अन्तमें फिर हिन्दू-मुसलमानोंके मेलकी पालिसीपर आया। बीचमें दो तीन वर्ष बन्द रहकर गत वर्ष फिर उक्त पत्र निकलता था, पर इस वर्ष बन्द मालूम होता है। इस समय भी जो मुसलमानी अखबार हैं, वह मुसलमानोंको हिन्दुओंसे अलग रखनेमें प्रसन्न हैं। अवधपञ्च अब भी उनसे अलग है और अपनी उसी हिन्दू-मुसलमानोंके मेलकी पालिसीपर दृढ़ है।

जिस समय "हिन्दुस्तानी" निकला था, लखनऊसे उर्दूके कई एक अखबार निकले थे। अब उनमें से बहुतसे बन्द होगये। ठीक ढङ्गसे केवल तीनही कागज चलते हैं। अवध अखबार; अवधपञ्च और हिन्दुस्तानी। लखनऊमें जन्म लेनेपर भी हिन्दुस्तानीकी उर्दू कभी अच्छी

नहीं हुई। यद्यपि आज उसकी भाषा दस वर्ष पहलेकी भाषासे बहुत उन्नतिपर है, तथापि अब भी वह साफ नहीं है। विशेषकर जहां अङ्गरेजी-से तरजमा होता है वहाँ उसकी भाषाका कभी-कभी मतलब समझमें नहीं आता। पहले ऐसा अधिक होता था, अब कम होता है। इसका कारण यह भी होसकता है कि अङ्गरेजी अखबारोंके तरजमोंसे हिन्दुस्तानीको अधिक काम लेना पड़ता है। और उर्दू अच्छी तरह सीखनेका सम्पादकको मौका नहीं मिला। अथवा अच्छे लेखोंकी जरूरतके सामने भाषा अच्छी करनेकी परवा नहीं की गई, जिसका एक सबूत हिन्दुस्तानी-के प्रेसके नामहीसे मिलता है। उक्त प्रेसका नाम "जी० पी० वर्म्मा ब्रादरान प्रेस" है। इस नामके अर्थकी बात जाने दीजिये, बहुत लोग आज तक इसे ठीक-ठीक पढ़ भी नहीं सकते हैं।

राजनीतिकी चर्चा हिन्दुस्तानीने खूब की और करता है। कांग्रेसकी रिपोर्टका उर्दू तरजमा वह बराबर छापता रहा। एक साल हिन्दी तरजमा भी छापा था। पर इन सब गुणोंपर भी उसमें एक दोष ऐसा है, कि उससे उसका काम अधूरा है और रहेगा। इस देशकी धर्म्मनीति और समाजनीतिमें वह बड़े कच्चे पथपर चलता है। जिस जातिका सुधार करना है, उसकी आंखोंमें आदर पाये बिना कोई सुधारक सफल मनोरथ नहीं हो सकता। हिन्दुस्तानीमें भारतके धर्म्म और समाजकी जिस ढङ्गसे आलोचना होती है, उससे ठीक यही जान पड़ता है कि उसका सम्पादक हिन्दुओंसे कुछ सहानुभूति नहीं रखता और हिन्दुओंके धर्म्म और समाजके विषयमें उसका उतना ही ज्ञान है, जितना भारतमें बैठे हुए किसी युरोपियनका।

उदाहरणकी भाँति मिष्टर गोखलेकी बात कही जाती है। उनका नाम गोपाल कृष्ण गोखले है। उच्चवंशके दक्षिणी ब्राह्मण हैं। अच्छी शिक्षा पाई है। बड़े लाटकी कौंसिलमें उन्होंने इतनी योग्यता देखाई कि हिन्दु-

स्थानी, अंगरेज सबने उनकी स्तुति की। बड़े लाटने उनकी स्पीचका विरोध करनेपर भी उनकी प्रशंसा की और सी० आई० ई० की उपाधिसे भूषित किया। स्वदेशका वह सदा पक्ष करते हैं। इन सब बातोंसे भारतवासियोंके हृदयमें कितना आनन्द होता है? पर यह आनन्द कितना निरानन्दसे बदल जाता है, जब लोग यह सुनते हैं कि वह दो बार बड़े लाटके घर जाकर उनके साथ खा चुके हैं। यदि सचमुच ऐसा करनेमें गोखलेके निकट यह कुछ दोष नहीं तो भी बीस करोड़ हिन्दुओंके भावकी रक्षाके लिये उनको ऐसा न करना था। ऐसा करके उन्होंने अपने २० करोड़ स्वदेशियोंसे अपनेको पृथक कर लिया। अब वह लाख उन्नति कर जाव, हिन्दुओंके नेता कभी नहीं हो सकते। कौंसिलमें कह सुन लेनेके सिवा हिन्दूसमाजकी भलाई कुछ नहीं कर सकते। न हिन्दुओंके भक्तिभाजन हो सकते हैं।

सब अपने अपने धर्म्मकी इज्जत करते हैं। सर सय्यद अहमदखांने मुसल्मान धर्म्मके विषयमें कितनेही नये खयाल जाहिर किये, पर मसजिदकी इज्जत उनके कालिजमें वैसी ही है। मुसलमान सब एक हैं और समय पर एक दूसरेकी हिमायतको तय्यार हैं। अंगरेजोंमें कितनेही लोग कितनीही तरहका विचार रखते हैं, पर चर्चकी इज्जतके समय सब एक हो जाते हैं। दिल्ली, दरबारके समय जब दरबार हो जानेके बाद नमाज हुई तो उसमें बड़े लाटसे लेकर सब छोटे बड़े अंगरेज शामिल थे। कैसा अपूर्व दृश्य था! हमारे राजनीति-विशारद उससे क्या समझे? क्या वह खाली एक मजहबी रीतिका पूरा करना ही था? नहीं नहीं, उसमें राजनीति, धर्म्मनीति सब शामिल थीं। जो लोग समाजमें खड़े हो सकते हैं, वही तलवार लेकर भी साथ खड़े हो सकते हैं और वही सब जगह साथ दे सकते हैं। जो धर्म्म और समाजमें साथी नहीं, वह राजनीतिमें साथी होकर क्या कर सकते हैं?

इसी प्रकार जो लोग हिन्दुओंके धर्म्म और समाज सम्बन्धी भावोंकी अवज्ञा करके हिन्दुओंका सुधार करना चाहते हैं उनका श्रम कहांतक सफल हो सकता है, यह उनके विचारनेकी बात है। दुर्भाग्यसे इस समय हिन्दुओंके जितने नेता हैं, सब अपने-अपने घरके चौधरी हैं और सबकी सात-सात हाथकी तलवार है। इससे वह हिन्दुओंकी कैसी रक्षा कर सकेंगे। इन सब बातों पर हिन्दुस्तानीके सम्पादकको विचार करना चाहिये। बीस सालके तजुरबेने उनको बहुत कुछ सिखाया होगा।

तीसरा दौर

आजकल उर्दू अखबारोंका नया और तीसरा समय है। इस तीसरे दौरके अखबारोंहीकी कुछ चलती बनती है। वही अधिक छपते-बिकते हैं। उनके मूल्य भी बहुत कम हैं और साथ-साथ उनके लिखनेके ढङ्गमें भी कुछ नवीनता है। इसीसे उनका आदर भी खासा है। उनके सम्पादक भी न्यूनाधिक अंगरेजी पढ़े हुए हैं और वह जानते हैं कि विलायत आदिमें क्योंकर अखबार चलाये जाते हैं। वह अंगरेजी अखबारोंके सहारेसे अपने लिये अखबारनवीसीका एक पथ बना रहे हैं। उनकी यह चाल समयानुकूल है, इससे सफलताकी आशा है।

पैसा अखबार

इस नई चालका चलानेवाला पैसा अखबार है। पञ्जाबके उर्दू अखबारोंमें इस समय उसीका सबसे अधिक नाम है। उसीका प्रचार सबसे अधिक सुना जाता है। इस समय उसको निकलते १७ साल हो चुके हैं। उसकी अठारहवीं जिल्द गत जनवरी माससे आरम्भ है। इसका जन्म लाहोरके पास गूजरानवाला नामके कसबेमें हुआ। उसके मालिक और एडिटर मुंशी महबूबेआलम वहींके निवासी मुसलमान राजपूत हैं। उनके छोटे भाई मनेजर हैं। पैसा अखबारको हमने उसके

जन्मकालसे देखा है। जन्म समय उसमें होनहारीके कुछ भी लक्षण न थे। उसकी शकल देखकर न किसी प्रकारकी प्रसन्नता होती थी और न यह आशा होती थी कि वह चल भी जावेगा। इस बातका तो स्वप्न भी न था कि जल्द पञ्जाबमें उसका इतना नाम होगा।

अखबारे चुनार

चुनार मिरजापुरके जिलेमें एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक कसबा है। वहांसे कई सालतक एक उर्दूका अखबार निकलता रहा। उसका नाम था "अखबारे चुनार"। सन १८८७ ई० में उसकी सम्पदकतासे भारत-मित्रके वर्त्तमान सम्पादकका सम्बन्ध था। उसी साल पैसा अखबारका जन्म हुआ था। चुनारमें हमने पहले पहल पैसा अखबारके दर्शन किये। तब वह छोटे-छोटे चार वरकों पर निकलता था। ठीक समय पर नहीं निकलता था। दो-दो तीन-तीन सप्ताह बीच-बीचमें गायब हो जाता था। उसके कागज, छापे, लिखाई और लेख आदि सबसे उसकी दशाकी दीनताका पता मिलता था। पैसा अखबारके साथ-साथ "बागबान या बेतार" के नामसे एक मासिक पत्र निकाला गया था। और भी कोई एक पत्र था। सब मिलाकर कोई तीन थे। उस समय उक्त तीनों कागज कभी-कभी एक ही पैकटसे निकल पड़ते थे। लोग इसके निकालने वालेकी जल्दबाजी पर हंसते भी थे कि एक कागज अच्छी तरह नहीं निकाल सकते हैं और कई-कई निकालनेके लिये जल्दी करते हैं। एक उर्दू अखबारने उसपर बहुतही भद्दी फबती उड़ाई थी। कहा था "कई सप्ताह गायब होकर "पैसा अखबार" फिर अपने अण्डे बच्चोंको लेकर आ मौजूद हुआ"। जिस अखबारने ऐसा लिखा था, अब उसका नाम याद नहीं। खयाल होता है कि शायद वह अखबारही अब नहीं है। संसारमें किसीकी लघुता पर कभी हंसना न चाहिये। न जाने समय किस लघुको गुरु और गुरुको तृणसे भी लघु बना डाले।

सन् १८८६ ई० में "कोहेनूर" से सम्बन्ध रहनेके समय "पैसा अखबार"के मालिक एक बार लाहोरमें मिले थे। वह अपने पत्रको चलानेकी बहुत चेष्टामें थे, पर चलता न था। तीन चार साल तक उनको खूब हैरान होना पड़ा, पर उन्होंने हिम्मत न छोड़ी। इतनेमें "पैसा अखबार" को अपने चमकने और आदर पानेके लिये एक मौका मिल गया। एक तो उन दिनों लाहोरके कई एक पुराने अखबारोंके दिन पूरे होगये। दूसरे "अखबारे आम" जो सस्ता था, सप्ताहमें कईबार और अन्तको दैनिक होकर महंगा हो गया। यद्यपि उसका एक साप्ताहिक पत्र भी दो रुपये सालका निकलने लगा, परन्तु दो रुपये सालके पैसा अखबारमें कुछ अच्छा मसाला होता था। इससे पैसा-अखबारहोकी बढ़ती हुई। धीरे धीरे वह इस योग्य होगया कि गूजरानवालासे लाहोरमें चला आया। यहां आकर उसकी खूब उन्नति हुई। अब वह साप्ताहिकके सिवा कइ महीनेसे दैनिक भी निकलने लगा है। दो तीन मासिकपत्र भी उसके यहांसे निकलते हैं। उसका मूल्य जब दो रुपये साल था, तब उसका नाम "पैसा-अखबार" था। अब उसके दैनिकका मूल्य पन्द्रह रुपये साल हो जाने पर भी नाम वही है। वह नाम इतना पक्का हो गया कि उसके अर्थकी ओर भी किसीका ध्यान नहीं।

पैसा-अखबारने कई एक नई बात उर्दू दुनियामें पैदाकर दिखाई हैं। एक यह कि मूल्य बहुत कम होनेपर भी अखबारकी आमदनीसे अखबार चला दिया। कोहेनूर चलता था, पर अखबारकी आमदनीसे नहीं। और अखबार चलते थे, पर उनकी आमदनी उनको काफी नहीं होती थी। अब भी कितनेही अखबार लष्टम-पष्टम चलते हैं। पर पैसा-अखबार खासे तिजारती ढङ्गपर चलता है। उसने विज्ञापनोंसे खासा लाभ उठाया है। इतना लाभ विज्ञापनोंसे दूसरे उर्दू अखबारने शायद ही उठाया हो। आमदनीकी कमी और दूसरे कारणोंसे कुछ उर्दू अख-

बारोंको अमीरोंकी खुशामदके गीत गाने पड़ते थे और कितनेही ऐसे काम करने पड़ते थे, जिनसे अखबारोंकी इज्जतमें बट्टा लगता है। वह खराबी भी पैसाअखबारने कुछ कुछ दूर की है। कुछ पञ्जाबी अखबारोंकी गदागरोने वहांके अखबारोंको एक तरह बेइज्जत कर दिया था। वह इज्जत पैसा अखबारने कुछ कुछ फिरसे वापिस कराई है। सबसे बढ़कर बात उसने यह की है कि अखबार चलानेवालोंका खयाल विद्याकी ओर फेर दिया है और यह बात लोगोंके जीमें जमा दी कि हर कोई थोड़ी-बहुत उर्दू पढ़ा हुआ आदमी अखबारका सम्पादक बननेके योग्य नहीं है। उर्दू-पत्र चलानेके लिये भी अंगरेजीकी अच्छी योग्यता चाहिये। अच्छी अंगरेजी और अच्छी उर्दूके जाने बिना अखबारनवीसीके लिये कलम उठाना विडम्बना मात्र है। इसीसे इन दो चार सालके बीचमें लाहोर आदिसे जो उर्दू अखबार निकले हैं, वह अंगरेजी पढ़े संपादकोंके हाथोंमें हैं।

उर्दू अखबारोंमें एक चाल थी जो अब भी मिट नहीं गई है कि दो चार उर्दू अखबारोंसे गुमनाम खबरें और लेख आदि नकल कर लेना और अखबार निकाल देना। यह घटियापन वही सम्पादक स्वीकार कर सकता है, जो स्वयम् कुछ न जानता हो। वास्तवमें उर्दू अखबारोंके पास अच्छे सम्पादक न थे। अब यह चाल पलट गई है। पैसा अखबारने विलायत आदिके अखबारोंसे अच्छी अच्छी बातोंके तरजमें छाप छाप कर वह दोष मिटाया है। अब उर्दूके कई ऐसे कागज हैं, जो स्वयं परिश्रम करके अखबार पूरा करनेका ममाला एकत्र करते हैं। इनमेंसे अमृतसरका "वकील" जो ६ सालसे निकलता है और लाहोरका "वतन" जो तीन सालसे जारी है, वर्णनके योग्य हैं। गत वर्ष लुधियानेसे "आर्मी-न्यूज" और लाहोरसे "शरीफ" अच्छी चालके पत्र निकले हैं। यह सब आकार प्रकारमें प्रायः पैसा अखबारके तुल्यही हैं। लखनऊके "तफरीह" को भी हम इसी श्रेणीमें रखते हैं।

पैसा अखबारमें छोटी छोटी खबरें होती हैं। वह टुकड़े टुकड़े होकर छपती हैं। हँसी मजाककी खबरें एक जगह, गिनती और अङ्कोंसे भरी खबरें एक जगह, इसी प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी खबरें एक जगह और दूसरी कई प्रकारकी खबरें अलग अलग स्थानोंमें छपती हैं। सम्पादकीय लेखोंमें एक बड़ा और कई एक छोटे छोटे नोट होते हैं। अन्तमें कुछ फुटकर खबरें और चिट्ठियाँ तथा प्रेरितपत्र होते हैं। आकार भद्दा और कागज बहुत पतला होता है। पृष्ठ कभी कभी विज्ञापनोंकी भीड़के कारण तीस तक होते हैं। इसीसे कागज झिल्लीकी भांति रखना पड़ता है। विलायतके चुटकलेबाज छोटे-छोटे कागजोंकी उर्दू नकल इसे कह सकते हैं।

दैनिक पैसा अखबारकी उमर कई-एक माससे अधिक नहीं है। कई साल पहले भी एकबार दैनिक पैसा अखबार जारी हुआ था जो कई महीने चलकर बन्द हो गया था। अब फिर जारी हुआ है। आकार साप्ताहिकका साही है पर कागज सफेद और गाढ़ा है। पृष्ठ १२ हैं। जब पहली बार "पैसा अखबार" दैनिक होनेको था तो मुंशी महबूबेआलम हमसे कलकत्तेमें मिले थे। उनसे कहा था कि अभी उर्दूमें रोजाना अखबार नहीं चल सकता। उसके कारण भी बताये गये थे। अब भी वह कारण वर्त्तमान हैं। एक तो उर्दूमें दैनिक पढ़नेवाले कम हैं, दूसरे अंग्रेजी दैनिकोंका मुकाबिला उर्दू दैनिकोंसे नहीं हो सकता। इससे उर्दूके दैनिक पत्रोंको जैसी कामयाबी होना चाहिये वैसी होना कठिन है। खैर जो होता है वही अच्छा है। जो लोग साहसी हैं उनकी प्रशंसा करनाही उचित है। साहसी लोग अन्तमें सफलता लाभ करते हैं।

"पैसा अखबार" के उत्साह और अध्यवसायको हम बहुत पसन्द करते हैं। पर उसकी पालिसीका समर्थन नहीं कर सकते। उसके सम्पादक मुसलमान हैं, इससे हम यह नहीं कह सकते कि वह मुसलमानोंकी

शुभचिन्ता न करें और उनकी उन्नति न चाहें। किन्तु उनकी हिमायत करते समय न्यायको हाथसे न जाने दें। ऐसा काम न करें जिससे मुसलमान हिन्दुओंसे भड़कें और घृणा करें। अन्याय चाहे हिन्दूकी ओरसे हो चाहे मुसलमानकी, उसकी निन्दा करना चाहिये और न्याय-की सदा तरफदारी करना चाहिये। न्यायको दबाना और अन्यायको आश्रय देना शिक्षित लोगोंका काम नहीं। पैसाअखबारको हम कितनेही मौकों पर मुसलमानोंकी बेजा तरफदारी और हिन्दुओंके साथ व्यर्थ घृणा प्रकाश करते देखते हैं। हिन्दू मुसलमानोंके कितने ही सीधे सादे मामलोंको वह बेफायदा रङ्गीन बनाया करता है। मुसलमानोंको कितने ही मामलोंमें कसूरवार होने पर भी दामनमें छिपाता है और हिन्दुओंको निर्दोष होने पर भी कितनोही बार उलटी सीधी सुना दिया करता है। यद्यपि उसके ऐसा करनेसे मुसलमानोंकी कुछ बेहतरी नहीं होती और हिन्दुओंकी कुछ हानि भी नहीं। तथापि दोनों ओरके लोगोंके जी फटते हैं और उनका मेल जोल फिर कितने ही साल पीछे हट जाता है। यह बात हिन्दू मुसलमान दोनोंके लिये शुभ नहीं।

अन्तमें एक बात हम अपने उर्दू सहयोगीसे कहकर आजका लेख समाप्त करते हैं। यह बात हमने एकबार जुबानी भी कही थी। वह यह कि कभी-कभी उसके लेखोंसे आत्मश्लाघा की बू आया करती है। विद्वानोंके लिये इस प्रकारकी शेखी दोषकी बात है। पैसा अखबारके आदर्श पर इस समय कई पत्र चलते हैं। उनमें भी यह बू कुछ-कुछ पहुंची है। यह बहुत नुकसान पहुंचानेवाली और तरक्कीको रोकनेवाली आदत है। इस प्रकारकी आदत रखनेवालोंके अच्छे कामोंकी भी कभी तारीफ नहीं होती और लोग उनकी सफलताको शेखी समझने लगते हैं। हम अखबारवालोंको सदा यही चेष्टा करना चाहिये कि हृदयमें किसी प्रकारकी संकीर्णताको स्थान न मिले। उदारता सदा बढ़े। यदि

हमलोग दृढ़ताके साथ अच्छे काम किये चले जायंगे तो कीर्ति करनेवाले बहुत मिलेंगे। हमें अपने मुंहसे अपनी तारीफ स्वयं न करनी पड़ेगी।

मासिक पत्र

उर्दू के दैनिक और साप्ताहिक-पत्रोंके विषयमें पहले जो जरूरी था, वह कहा जा चुका। आज कुछ उर्दू मासिकपत्रोंके विषयमें कहना चाहते हैं। मासिक-पत्रोंकी नीव उर्दू में कबसे पड़ी इसका हमें ठीक खयाल नहीं है। पर जहांतक जानते हैं उर्दूका सबसे उत्तम मासिकपत्र सर सैयद अहमदखांका "तहजीबुल अखलाक" था जो सन् १२८७ हिजरीसे १२६३ हिजरी तक सात साल निकलकर बन्द हुआ। उसे बन्द हुए इस समय २६ सालसे अधिक होगये। यह अंग्रेजीके नामी मेगजीनोंके ढंगका पत्र था। इसके लेखक भी वह लोग थे, जिनकी चेष्टासे मुसलमानोंमें अंग्रेजी शिक्षा फैली और अलीगढ़का मुसलमानी कालिज बना। नवाब मुहसिनुल-मुल्क, सैयद मेहदीअली, स्वयं अनरेबल डाक्टर सर सैयद अहमदखां, आजमयार जङ्ग, मौलवी चिरागअली, मौलवी मुशताक हुसैन, इन्तजार-जङ्ग, मौलवी अलताफ हुसैन हाली, सैयद महमूद, मौलवी जकाउल्लह आदि आदि विद्वानोंके लेख इसमें निकलते थे। मुसलमानियतकी झोंक ही इस पत्रमें अधिक थी। किन्तु बहुत कामके लेख हैं, पढ़नेके योग्य हैं। एक दो नहीं, सैकड़ों नई बातें अब भी उनके पढ़नेसे मालूम होती हैं। उक्त मासिकपत्रके लेख अभी तक मरे नहीं हैं, क्योंकि वह चार पुस्तकोंमें अलग-अलग छपकर अब भी बिकते हैं।

जिस समयमें उक्त मासिकपत्र निकला था, उस समय मुसलमानोंमें विद्याका इतना प्रचार नहीं हुआ था। तथापि पत्र उर्दू था और मुसलमान बहुत दिनसे उर्दू सीखे हुए थे। इससे वह बहुत लोगोंमें पढ़ा गया। किन्तु अधिक बड़े आदमियोंहीमें। सर्वसाधारण तक कम पहुंचा।

दक्षिण हैदराबादसे उसकी अधिक परवरिश होती थी, क्या लेख सम्बन्धी, क्या धर्म्म सम्बन्धी। तथापि चला नहीं। चलानेवाले और अधिक रुपये उसके चलानेके लिये खर्च न सके। खैर जो कुछ उन सात सालमें होगया, वह भी उर्दू वालोंके लिये एक अच्छा जखीरा है। कहीं इस समय तक उक्त पत्र उसी ढंगसे चला जाता तो आज उसकी एक निराली ही शान होती।

उक्त मासिक पत्रके बन्द होनेके बाद फिर कोई ऐसा पत्र न निकला। क्योंकि वैसे निकालनेवाले ही और कहां थे। उस दिमागके आदमी ही तब और न थे। तथापि दक्षिण हैदराबादसे कुछ वैसे ढङ्गके पत्र कभी कभी निकलते और बन्द होते रहे। कई एक देखे थे, नाम याद नहीं। लाहोरसे "गंजेशायगान" नामका एक कानूनी मासिकपत्र कई साल तक निकलता रहा। यह "पञ्जाब रिकार्ड" का तरजमा होता था। चीफ-कोर्टकी मिसलोंका मासिक खुलासा इसमें होता था। कोहेनूर प्रेससे निकलता था। वकील लोग खरीदते थे। उसकी देखादेखी एक और वैसाही पत्र लाहोरहीसे कई साल तक निकलता रहा। लाहोरमें एक "अञ्जमने पञ्जाब" थी। अब नहीं है। उससे भी एक मासिकपत्र बहुत दिन तक निकलता रहा। सन १८८६ ई० में पादरी रजबअली साहबने "पञ्जाब रिव्यू" एक मासिकपत्र निकाला। पादरी साहब पुराने आदमी थे। पञ्जाबकी जीती हुई तारीख अर्थात् पञ्जाबका सजीव इतिहास लोग आपको कहते थे। क्योंकि पञ्जाबकी बहुत पुरानी-पुरानी बातें वह जानते थे। उनका यह पञ्जाब रिव्यू अच्छा पत्र होता पर वह केवल चार पांच नम्बर निकलकर बन्द होगया। उन नम्बरोंमें जो कई एक लेख निकले थे, वह अबतक पञ्जाबी पत्रोंमें उलट-पुलट होते हैं।

सारांश यह कि देश, समाज, धर्म्म, नीति, वाणिज्य और विद्या आदि विषयोंपर आलोचना करनेवाले मासिक पत्र तबतक उर्दूमें कमही निकले

और कमही ठहर सके। इसके बाद कविताके पत्रोंका नम्बर लगा। उर्दूकी कवितामें बड़ा जोर गजलोंका होता है। वही गजलें उन मासिक पत्रोंमें छपने लगीं।

दिल्लीमें जबतक बादशाही और लखनऊमें नवाबी रही, तबतक उर्दू-के कवि मुशाइरेकी गजलें लिखा करते थे। मुशाइरे अमीरों और नवाबोंके मकानपर हुआ करते थे। एक समस्या दी जाती थी, जिसे उर्दूमें "तरहका मिसरा" कहते हैं। उसीपर सब शाइर अपनी-अपनी गजलें बनाकर लाते थे और नियत दिन पर मुशाइरेमें सुनाते। अब वह रीति लगभग उठसी गई है। इसीसे इन गजलोंके मासिक पत्रोंने उसे एक बार फिर चमकाया। हर महीने यह एक नई समस्या छाप देते थे और उसी पर सब कवि गजल लिख-लिखकर भेज देते थे। वही कट छटकर इनमें छप जाती थीं। कोई २० सालसे अधिक हुए ऐसा एक मासिकपत्र कलकत्तेसे निकलता था जिसका नाम "गुलस्तये नतीजये सुखुन" था। इसकी देखादेखी आगरेसे "गुलदस्तयेसुखुन" निकला। फिर और कई निकले। यहाँ तक कि इस प्रकारके मासिकपत्रोंको लोग गुलदस्ता कहने लगे।

इन गुलदस्तोंकी महक लखनऊमें पहुंची। वह गजलोंका घर था। जरा भूलाही था कि इन गुलदस्तोंने फिर उसे गजलोंकी याद दिला दी। जैसे मस्त शराबियोंके सामने कोई एक तान उड़ा दे और फिर वह सब गाने लग पड़, उसी प्रकार लखनऊसे गुलदस्ते निकलने लगे और फिर एक बार गजलोंका दौर शुरू हुआ!

लखनऊसे मियां निसारहुसैनने "पयामेयार" नामका एक गुलदस्ता निकाला, जो पहले पहले हिन्दुस्तानी प्रेसमें छपता था। दो तीन साल तक उसकी बड़ी नामवरी हुई। उसकी नकल पर लखनऊहीसे कई अच्छे अच्छे गुलदस्ते निकले। जिनमेंसे "तोहफये उशूशाक" अच्छा था जो

कोई दो डेढ़ साल चलकर बन्द होगया। इन गुलदस्तोंसे इतनाही लाभ हुआ कि अमीर, दाग, जलाल आदि उर्दूके कई अच्छे अच्छे गजल-नवीस कवियोंको हिन्दुस्थानके बहुतसे उर्दूवाले जान गये।

पयामेयारके नामकी नकल पर कन्नौजसे मुंशी भगगखां रहीमने "पयामेआशिक" निकाला। इसमें साथ साथ कुछ हंसी दिल्लगीके लेख भी निकलते थे। पर सबही ऐसे वैसे होते थे, कामका एक नहीं। यह एक बड़ी दिल्लगीकी बात है कि इन गुलदस्तोंको बहुधा वही लोग निकालते थे, जो इतर भी बेचते थे। लखनऊके निसार हुसैन और कन्नौज-के रहीम दोनों ही इतरकी दुकान करते थे। यह कागजी गुलदस्ते उन्हींके प्रबन्ध रूपी इतरसे सुगन्धित होते थे। इस लेखका लेखक भी उनकी बूबाससे एकबारही वञ्चित नहीं रहा। उसके तोड़ हुए दो चार जङ्गली फूल भी कभी-कभी इन गुच्छोंमें शामिल हो जाते थे। उस समय हवा ही ऐसी थी। यहींसे उर्दूमें नाविल नवीसीकी नीव पड़ी। मौलवी अब्दुल हलीम शरर जो कभी-कभी पयामेयारमें एक आध कविता अंगरेजी-एशियाई मिश्रित ढंगकी लिख दिया करते थे, नाविल लिखने लगे। अन्तमें उन्होंने "दिल गुदाज" नामका एक मासिक पत्र निकाला जिसमें नाविल-के ढंगके कुछ लेख निकलते थे और कुछ नये ढंगकी कविता। अम्बालेसे एक सज्जनने "गुंचये मुराद" नामका गुलदस्ता निकाला था, उसमें गजलों-के सिवा कुछ नये ढंगकी कविताका ढंग भी डाला गया था। पर वह चला नहीं। इन गुलदस्तोंकी इतनी धूम हुई थी कि गोरखपुरके छोटेसे हंसी दिल्लगीके पत्र "फितने" ने एक "इत्रफितना" निकाला था, जिसमें इन गुलदस्तोंके अच्छे-अच्छे शेर चुनकर छापे जाते थे। वह साप्ताहिक निकलता था। अब भी मिट नहीं गया है। गुलदस्तोंका नाम निशान भी एकदम मिटा नहीं है, अभी उनमेंसे कई जारी हैं। पर अब उनका वह समय नहीं। वह धूम धाम भी नहीं।

वर्तमान मासिक पत्र

आज कल उर्दू मासिकपत्र कुछ अच्छी दशामें हैं। यह दशा तीन सालसे आरम्भ हुई है। इसकी नींव "अदीब" नामके एक मासिकपत्रसे पड़ी, जो जनवरी सन १८९९ ईस्वीसे फीरोजाबाद, जिले आगरेसे निकलने लगा था। आगरेके मुफीदेआम प्रेसमें छपता था। सय्यद अकबर अली उसके एडीटर थे। १२ महीने उक्त पत्र बहुत उत्तम रीतिसे निकला। ४८८ पृष्ठमें उसके १२ नम्बर समाप्त हुए। उसका मूल्य था तीन रुपया छः आना। जान पड़ता है कि उसको बहुत ग्राहक नहीं मिले। घाटा रहा। उसीसे बारहवें नम्बरमें सम्पादकने नोटिस दिया कि अगले वर्षसे ३ महीनेमें एक बार निकला करेगा। किन्तु निकला नहीं, एकदम बन्दही हो गया।

कागज अच्छा था। उसके बारहवें नम्बरमें जो लेख थे, उनकी सूची इस प्रकार है—

(१) अदीबका प्रोग्राम सन १९०० ई० के लिये।

(२) स्त्रियोंका परदा।

(३) मि० सोन हिडनकी यात्रा मध्यएशियामें।

(४) शमरूकी बेगमकी जीवनी।

(५) कुछ कविता।

(६) विचित्र बातें।

(७) कामकी बातें।

(८) स्मरण रखने योग्य घटनाएं।

(९) इङ्गलेण्ड एण्ड इण्डिया।

(१०) विज्ञापन।

हम कह सकते हैं कि इसी पत्रने वर्तमान मासिकपत्रोंकी नींव डाली। इसके बन्द होनेके बाद सन १९०१ में लाहोरसे "मखजन"

नामका एक मासिक पत्र निकला। उसने उसी पथ पर चलना आरम्भ किया, जिसे अदीबने एक साल तक चलकर साफ किया था। अदीबके लेख बहुत अच्छे होते थे और उसका सम्पादक किस प्रकारके लेख चुनता था, यह बात ऊपर लिखी लेखोंकी सूचीसे मालूम होगी। छपता यह इतना अच्छा था कि वर्तमान मासिक पत्रोंमें केवल अलीगढ़का "उर्दू-एमुअल्ला" ही इतना अच्छा छपता है। उसने उर्दू साहित्यमें एक नयी जान डालनेकी चेष्टा की थी। पुराने ढांचेके लेखों, व्यर्थ मसखरापने तथा गजलोंकी भरमारको छोड़कर अंग्रेजी मासिकपत्रोंकी चाल सीखी थी। अच्छे अच्छे लेख लिखनेका मार्ग निकाला था। इसीसे उसके केवल एक साल चलकर बन्द हो जानेसे लोगोंको बहुत अफसोस हुआ, किन्तु लाहोरसे मखजनने जारी होकर वह अफसोस दूर कर दिया।

मखजन

उर्दूके वर्तमान अच्छे मासिकपत्रोंमें "मखजन" सबसे पहला है। वही उमरमें भी सबसे बड़ा है। पर उस बड़ाई पर भी सितम्बरका नम्बर निकल जाने पर वह साढ़े तीन सालका होगा। किन्तु उसकी जिल्दें सात हो चुकी हैं। छः छः महीनेमें जिल्द बदलता है। इस से कुछ लोगोंको धोखा होता है कि वह छः सात सालसे निकलता है। उसके एडीटर शेख अबदुलकादिर बी० ए० एक योग्य पुरुष हैं। उन्होंने परिश्रम करके उर्दूमें दो बातें पैदा कीं। एक तो अच्छे लेखक पैदा किये, दूसरे अच्छे लेखोंके मासिकपत्रको पढ़नेवाले। अदीबके सम्पादक सैयद अकबर अलीने अच्छे लेखोंका मासिकपत्र तो निकाला, पर अच्छे लेखक और पत्रको जिलाये र नेके लायक खरीदार न एकत्र कर सके। मखजनके सम्पादकने एक बड़ा भारी अभाव दूर कर दिया। इस समय एक नहीं, कई उर्दू मासिकपत्र अच्छे चल निकले हैं। उन्हें आशा हुई है कि यदि वह हिम्मत न हारेंगे तो समय उनकी कदर करेगा।

साढ़े तीन सालमें मखजनने बहुत कुछ काम किया है। उसने कई बी० ए० और एम० ए० नवयुवकोंको उर्दूका लेखक बना दिया है और कितनों हीके जीमें उर्दू लिखने-पढ़नेका उत्साह उत्पन्न कर दिया है। अधिक अंगरेजी पढ़े मुसलमानोंको भी उर्दूसे नफरत थी। वह अंगरेजीहीको अपनी इज्जत समझते थे। उर्दूसे भागते और जी चुराते थे। उनका वह खयाल अब बदल गया है। मखजनके लेखकोंमें कितनेही बी० ए०, एम० ए० हैं। वह लोग गद्य और पद्य दोनों प्रकारके लेख लिखते हैं। अंगरेजी जाननेवालोंके हाथमें आनेसे पद्यकी दशा भी कुछ सुधरी है। अभी बहुत नहीं सुधरी है। खैर, जब सुधरनेका मार्ग मिला है तो एक दिन अच्छा सुधार भी हो जावेगा। गद्यमें मखजनने बड़ा काम किया है। पञ्जाबियोंमें ऐसे लोग बहुत कम थे, जो साफ उर्दू लिख सकते हों। साफ उर्दू बोलना भी बहुत ही कम पञ्जाबी जानते हैं। खैर बोलनेके विषयमें तो कुछ कह नहीं सकते, पर लिखनेके विषयमें यह अवश्य कहेंगे कि मखजनमें लिखनेवाले पञ्जाबी, अच्छी उर्दू लिखने लगे हैं। उनकी तहरीरसे उनका पञ्जाबीपन बहुत कम जाहिर होता है। कुछ दिनमें वह और भी उन्नति कर जावेंगे। शायद दो चार सालहीमें पञ्जाबियोंकी उर्दू पहचानना कठिन हो जायगा। यह बात पञ्जाबियोंको मखजनके कारणही नसीब हुई है। पञ्जाबियोंके सिवा हिन्दुस्थानके दूसरे प्रान्तोंके लोग मखजनमें लिखते हैं। बहुत लोगोंको उसने लेख लिखनेका उत्साह दिलाया है। उसके लेखकोंमें हिन्दुओंकी संख्या मुसलमानोंकी अपेक्षा बहुत कम है, तथापि हिन्दू लेखकोंको भी उसने बहुत कुछ उत्साह दिलाया है। अब यह चाल वर्तमान उर्दू मासिक-पत्रमें भली भांति चल गई कि हिन्दुओंके मासिकपत्रोंमें मुसलमान और मुसलमानोंके मासिक पत्रोंमें हिन्दू लिखते हैं और एक दूसरेके

लेखोंका आदर करते हैं। यह मेल बहुत खासा है। इसके लिये हम मखजनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते ।

उक्त पत्रमें अब तक जो लेख निकले हैं, उनका बहुत अंश अंगरेजी पुस्तकों या लेखोंका अनुवाद है। कुछ लेख पश्चिमीय लेखोंकी छाया हैं। यह बात गद्य और पद्य दोनोंमें है। लेखकोंके निजके लिखे हुए प्रबन्धोंमें ऐसे लेख बहुत कम निकले हैं, जो विशेष प्रशंसाके योग्य हों। अथवा दूसरी भाषाओंके पत्र उनमेंसे कुछ उपलब्ध कर सकें। इसके सिवा सामयिक और प्रान्तिक लेखोंकी भी इसमें बहुत कमी है। उधर सम्पादक और लेखकोंका ध्यान भी बहुत कम है। मखजनमें पोलिटिकल लेख नहीं छपते हैं। पोलिटिक्समें वह बहुत पड़ना नहीं चाहता। पर इसके सिवा भी और बहुतसे सामयिक मामले ऐसे होते हैं, जिन पर मासिक-पत्र खूब प्रबन्ध लिखते हैं। बङ्ग-भाषाके मासिकपत्र ऐसे अवसरों पर कभी नहीं चूकते। पञ्जाबमें प्लेगका मामिला ऐसा था कि उस पर कई अच्छे अच्छे प्रबन्ध लिखे जा सकते थे। पञ्जाब प्लेगसे उजड़ गया पर मखजनमें कभी उसका उल्लेख तक न हुआ। दिल्ली दरबारके समय उसका दरबार नम्बर निकला था, मामूली नम्बरोंसे वह मोटा भी बहुत है। पर देखिये तो दरबारसे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

और कई प्रकारकी सङ्कीर्णता हैं, जो इस पत्रकी उन्नतिमें बाधा देती हैं। कई प्रकारके विचार इसके चलाने वालोंके मनको उदार नहीं होने देते। इसके सम्पादक मुंशी अब्दुलकादिर बी० ए० "मुहम्मडन अबजरवर" नामके एक अंग्रेजी-पत्रके सम्पादक भी हैं। उक्त पत्रकी पालिसी कुछ हिन्दुओंके विरुद्ध है। यदि एक मामलेमें हिन्दू और मुसलमानोंका मुकाबिला होता है तो न्याय चाहे किसी ओर हो, उक्त पत्रको मुसलमानोंका पक्षही अवलम्बन करना पड़ता है। पोलिटिकल मामलोंमें भी आपकी राय हिन्दुओंसे नहीं मिलती है। शायद यही कारण है

कि यह पत्र पोलिटिकल बातोंसे बचता है। पर उर्दूके अन्यान्य मासिक-पत्र इस चालपर नहीं चलते हैं। उनमें खूब पोलिटिकल लेख लिखे जाते हैं। एक और संकीर्णता उर्दू पढ़े मुसलमानोंमें यह है कि वह अपने शीन काफके फेरमें बहुत पड़े रहते हैं। दूसरी भाषाएं कम पढ़ते हैं। भली उर्दू जाननेवाले मुसलमानोंमें ऐसे एकही दो आदमी निकलेंगे, जो हिन्दी भली तो क्या खासी भी जानते हों। फिर बङ्गला, गुजराती, मराठी आदिकी, और तो ध्यान करना दूर रहा। दूसरी भाषामें क्या लिखा जाता है, दूसरी भाषाओंके पत्र क्या करते हैं, इन बातोंकी ओर बहुत कम ध्यान देते हैं।

उदाहरणकी भांति हालकी एक बातका उल्लेख किया जाता है। कई मास हुए प्रयागके "प्रवासी" नामक बङ्गला मासिकपत्रमें उर्दू सामयिक साहित्यके नामसे एक लेख निकला था, जिसमें उर्दू मासिक पत्रोंकी कुछ आलोचना की गई थी। उसमें कुछ बातें बेअटकल भी थीं, पर कुछ बहुत ठीक थीं और इस योग्य थीं कि उर्दू मासिकपत्रवाले उन्हें जानें। इस प्रबन्धके लेखकने सोचा कि बंगला मासिक पत्रने जो बात उर्दू मासिक पत्रोंके लिये लिखी है यदि उसका उर्दू तरजमा करके किसी उर्दू पत्रमें न छपने दिया जायगा तो किसी उर्दूवाले तक उसकी हवा भी न पहुंचेगी। इसीसे उसका अनुवाद अपनी एक छोटीसी भूमिकाके साथ मखजनमें भेज दिया गया। वह गत अप्रेल मासके मखजनमें छपा है। उसमें और बातोंको छोड़कर उसके सम्पादक स्वाद और जे जीमकी गलतियोंपर गये हैं। किसी हिंदीवालेने अंगरेजीमें मखजनका नाम जेरसे लिखनेकी जगह जेसे लिख दिया है, बस इसीपर मखजनके सम्पादक साहब कह उठे कि नागरी अक्षरोंमें उर्दू शब्दोंका ठीक उच्चारण नहीं हो सकता। इसी प्रकार एक उर्दू पत्रका नाम "असरे जदीद" है। बंगला कागजमें उसका नाम "आसारे जदीद" लिखा हुआ

था। तरजमेमें उसका उर्दू नाम "आसारे जदीद" लिखा गया। इसपर मखजनके सम्पादक साहब लिखते हैं कि अनुवाद-कर्त्ताने हिन्दीमें लिखा होनेके कारण असरे जदीदको "आसारे जदीद" पढ़ लिया। उनको इतनी भी खबर नहीं है कि हिन्दी और बङ्गलाके अक्षर अलग अलग हैं, एक नहीं हैं। पर उर्दूकी हिमायतके खयालने उनको इतना घबरा दिया कि बङ्गला हिन्दीका कुछ खयाल न रहा।

हिन्दीके लिये उन्हें जे, जीम और स्वादका इतना खयाल रहा, पर उर्दूके लिये कुछ भी न रहा। आपने उसी लेखमें भारतमित्रको "भारतमित्रा" लिखा और प्रवासीको "प्रमासी" छापा। यह कुछ ऐसे मुशकिल शब्द नहीं थे, जिनके लिये उनको इतनी गलतीकी जरूरत पड़ती, पर बात यही है कि उर्दू वाले अपने शीन काफके फेरफारमें पड़े हुए दूसरी भाषाओंकी ओर ध्यान ही नहीं देते। वह ताका करते हैं कि दूसरी भाषाओंके जाननेवाले उनके ज्वाद और जोयमें गड़बड़ न कर दें। आप दूसरी भाषाओंके शब्दको कैसा ही गलत लिखें, कुछ परवा नहीं।

जो कुछ हो, उर्दू मासिक पत्रोंमें "मखजन" उत्तम पत्र है, होनहार है और उससे बहुत कुछ आशा की जा सकती है। इसमें कुछ तसवीरें भी होती हैं, पर अभी वह इस योग्य नहीं कि जिससे पत्र तसवीरदार कहा जा सके। पत्रका आकार डिमाई आठ पेजीके ६४ पृष्ठ हैं। छपाई-सफाई खासी होती है। कागज उत्तम लगाया जाता है। मूल्य अच्छे कागज पर ३) दूसरे दर्जेके कागजपर २) महसूल डाक ।≈) है।

जमाना

उर्दूके मासिक-पत्रोंमें और भी कई एक उत्तम हैं। उनकी बात हम अगले लेखमें कहेंगे, जो इस सिलसिलेका अन्तिम लेख होगा। उर्दूकी उन्नति कवितासे आरम्भ हुई। गद्य लिखनेकी चाल उसमें बहुत

पीछे पड़ी। उसी प्रकार उर्दू मासिकपत्रोंके इतिहासमें भी यह बात लक्ष्यके योग्य है कि उनकी उन्नति पद्यसे आरम्भ हुई। पहले कविताके मासिक-पत्र हुए और गजलें छापते रहे। फिर कुछ हंसी-दिल्लगी नाविलके बहानेसे गद्य भी उनमें जारी हुआ और गद्य-पद्यके मिले-जुले पत्र निकलने लगे। अब अन्तमें गद्यका जोर हुआ है। "मखजन" ने उनको अच्छे पथ पर चलानेकी चेष्टा की और उनको अपने पावोंसे चलनेका ढङ्ग बताया। अब एक और मासिकपत्र है जो उर्दू मासिक-पत्रोंको समालोचक बनानेकी चेष्टा कर रहा है। उसने उर्दूमें आलोचनाकी नींव डाल दी है। उस पत्रका नाम "जमाना" है। वह पहले किस ढंगसे निकलता था और कैसा निकलता था, इस विषयमें कुछ नहीं जानते। हमने उसको वर्तमान वर्षके जनवरी माससे देखा है। वह भी "मखजन" की भाँति ६ महीनेमें जिल्द बदल डालता है पिछले ६ महीनोंमें उसकी एक जिल्द बदल गई। अब जुलाई और अगस्तका नम्बर एक साथ निकला है जो इस लेखके लिखते समय हमारे सामने है। जान पड़ता है कि उसकी उमर एकही साल हुई है और हालके ६ महीनोंमें उसने नाम पाया है। इस समय इसके एडीटर एक नवयुवक कायस्थकुमार बाबू दयानारायण निगम बी० ए० हैं। जबसे वह सम्पादक हुए हैं, तभीसे उस कागजका नाम हुआ है और तभीसे वह एक गिन्तीके योग्य हुआ है। वह आकार प्रकार रङ्ग-ढङ्ग सब बातोंमें मखजनकी भाँति है। भेद इतना ही है कि मखजनमें राजनीतिक लेख नहीं होते और इसमें होते हैं। मखजनमें मुसलमान लेखक अधिक और हिन्दू कम हैं और उसमें दोनों बराबर या हिन्दू कुछ अधिक हैं। मखजनके लेखकोंमें पञ्जाबी अधिक हैं, इसके लेखकोंमें हिन्दुस्थानी अधिक। और भी एक बातसे इस मासिकपत्रका भाग्य अच्छा मालूम होता है कि मुसलमान भी इसे पसन्द करते हैं और

इसकी भाषाकी प्रशसा करते हैं। बहुतसे पुराने और नये मुसलमान सुलेखक इसमें लिखते हैं और बहुत इसकी प्रशंसा करते है। यह बात बहुत दिनों पीछे एक हिन्दू सम्पादक द्वारा सम्पादित मासिकपत्रको नसीब हुई है।

"जमाना" की जुलाई और अगस्तकी संख्यामें १४० पृष्ठ हैं। अर्थात एक संख्या ७० पृष्ठकी हुई। इससे मोटाईमें वह मखजनसे भी कुछ भारी हो जाता है। इसके सिवा उसकी लिखाई भी कुछ गहरी है। इससे उसमें विषय कुछ अधिक आते हैं। कई महीनेसे एक-एक तसवीर भी उसमें निकलने लगी है। जो संख्या हमारे सामने है, उसमें गद्य और पद्य मिलाकर १४ प्रबन्ध हैं, जिनमेंसे कई एक पढ़नेके योग्य हुए हैं। इसके सम्पादककी उमर यद्यपि कम है, पर वह बुद्धिमें वृद्ध हैं, इस बातके कहनेमें अत्युक्ति न होगी। क्योंकि कितनेही बूढ़े सुलेखक जो बीस-बीस सालसे लिखना छोड़ बैठे थे, इस कागजमें लिखने लगे हैं। यह इसके सुयोग्य सम्पादककी चेष्टाहीका फल है। खानबहादुर सय्यद अकबर हुसैन पेंशनर जज किसी समयमें अवधपञ्चमें लिखा करते थे। देखते हैं कि वह अब इसमें लिखते हैं। शमसुलउल्मा मौलवी जकाउल्लाह साहब बहुत बूढ़े लेखक हैं, उनका भी एकाध प्रबन्ध इसमें दिखाई देता है। भिन्न-भिन्न जाति और धर्म्मके प्रसिद्ध लेखक जितने इसे मिले हैं, आजतक उर्दूमें और किसी मासिक पत्रको नहीं मिले! मखजनसे पहले लगभग सब उर्दू मासिकपत्र मुसलमानोंसे प्रबन्ध लिखवाते थे। मखजनने हिन्दू-मुसलमान दोनोंका ध्यान इधर खंचना चाहा, पर उसे पूरी सफलता नहीं हुई। उसका कारण पिछले लेखमें कहा जाचुका है। हां "जमाना" ने कई एक महीनेहीमें वह बात हासिल की है। उसे हिन्दू मुसलमान दोनों तरहके नामी-नामी साहित्यसेवी मिले हैं। कितनेही प्रसिद्ध ग्रन्थकार और कितनेही नामी समाचारपत्रोंके सम्पादक

उसमें लिखते हैं। सम्पादकोंको अपने पत्रोंहीसे फुरसत नहीं रहती। उनसे लिखवाना जमानेकी बहादुरी है।

एक इस पत्रका विशेष गुण यह है कि सामयिक विषयोंकी भी खूब आलोचना करता है। शायद उर्दूके सब मासिकपत्रोंमेंसे यह गुण अकेले इसी पत्रमें हैं। यह सब प्रकार और प्रत्येक विचारके लोगोंको मिलाना चाहता है। सामयिक साहित्यकी आलोचना भी इसमें खूब होती है। इसके हर नम्बरमें दो-चार ध्यानसे पढ़नेके योग्य लेख होते हैं। पांच-सात लेख इसके पिछले नम्बरोंमें बहुत धूमके निकले हैं। उनमेंसे पं० ब्रजनारायण चकबस्तकी लिखी स्वर्गीय पण्डित रत्ननाथकी जीवनी और मुंशी सूर्य्यनारायण मेहरकी लिखी "कुंजे तनहाई" नामकी कविता प्रशंसाके योग्य लेख थे। जिस ढंगसे यह मासिकपत्र चल रहा है, यदि दो-चार साल इसी प्रकार उन्नति करता जाय तो एक बहुत बड़ा नामी पत्र होगा,—इसमें कुछ सन्देह नहीं।

अब दो-चार बातें जमानाकी पालिसीके विषयमें कही जाती हैं। उसकी वही पालिसी है, जो नवशिक्षित हिन्दुओंकी आजकल है। इससे उसकी आलोचना करना एक प्रकार नवशिक्षित हिन्दुओंकी रायकी आलोचना करना है। उसके सम्पादक थोड़े दिनसे बी० ए० पास हुए हैं। कालिजसे निकले हुए विद्यार्थियोंकी जो राय होती है, वही उनकी राय है। पुराने हिन्दू समाजमें उनके पसन्दके लायक बहुत बातें नहीं हैं। विद्यार्थीपनको छोड़कर उन्होंने संसारका कुछ भी अनुभव प्राप्त नहीं किया है। तथापि उनको मार्ग वही पसन्द है, जिसपर उन्होंने छात्रावस्थामें कालिजके अन्दर बैठकर अटकल लगाई है। इसी जुलाई और अगस्तकी संख्यामें एक प्रबन्ध पण्डित ब्रजनारायण चकबस्त लखनवीका निकला है। वह अंगरेजी पढ़े हिन्दुओंकी रायका दर्पण है। प्रबन्ध कहता है कि जिन लोगोंमें खाने-पीनेकी छूत-छात कुछ नहीं

है, वह खूब मोटे-ताजे है, जैसे अंगरेज, मुसलमान और पारसी। और हिन्दुओंमें छूतछात होती है, इसीसे उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। इस कथनमें लेखककी अटकल अधिक है और अनुभव कम। नहीं तो सीधी बात है कि जिन लोगोंको खानेपीनेको अच्छा मिलता है, वही खूब मोटे ताजे हैं। कलकत्तेमें लाखों गरीब मुसलमान दुबलापनके मारे शाहदुलहके चूहे बने हुए हैं। उनके बच्चे ऐसे होते हैं कि उनमेंसे आधेसे अधिक सालभरके नहीं होने पाते और मर जाते हैं। छूतछात न माननेसे यदि वह मोटे हो सकते तो खूब ही मोटे होते। और छूतछात माननेसे यदि दुबले होते तो कलकत्तेमें जितने मथुराके चौबे हैं, सब दुबले होते। हजारों कनौजिये यहां ऐसे जबरदस्त हैं कि जो तीन-तीन लखनऊवालोंको बगलमें दबाकर भाग जा सकते हैं, यदि छूतछातसे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता तो वह निरे दुबले पतले होते। हालांकि सब जानते हैं कि कनौजियोंसे बढ़कर और कोई छूतछात नहीं मानता है। जो लोग छूतछात नहीं मानना चाहते हैं उनको चाहिये कि अच्छी दलीलोंसे काम लें, बेतुकी हांक न लगाया करें।

उसी लेखमें उसी लेखकने बाल्य-विवाहकी निन्दा की है, विधवा विवाहकी तरफदारी की है, विलायत दौड़ जानेको अच्छा समझा है, स्त्रियोंको शिक्षा देनेका पक्ष लिया है। यह सब बातें अच्छे तर्कसे नहीं लिखी गई, घृणा दिखाकर और हिन्दुओंको गाली देकर लिखी हैं और कई एक बातें हिन्दू-धर्मसे घृणा दिलानेके लिये उक्त लेखकने लिखी हैं। वह कहता है कि धर्म्मकी आड़में हिन्दू बहुत पाप करते हैं। जीती स्त्रियां मरे पतिके साथ जबरदस्ती जला दी जाती थीं, छोटे छोटे बच्चे गङ्गामें फेंक दिये जाते थे, दक्षिणमें छोटी छोटी लड़कियां धर्म्मके नामसे अब वेश्या बनाई जाती हैं। लेखकने न कुछ सोचा है, न कुछ पढ़ा है, न देखा है। हिन्दुओंके विरुद्ध बातें सुनते सुनते हिन्दुओंसे उसके जीमें जो घृणा उत्पन्न हो गई है, वही

उसने प्रकाश कर दी है। किसी प्रकारका अनुभव न होनेसे और जोश रहनेसे लोग ऐसा ही करते हैं। लेकिन इससे वह अपने देश और जातिको कितनी हानि पहुंचाते हैं इसकी उनको कुछ भी खबर नहीं है। लेखकने इतना विचारनेकी चेष्टा भी नहीं की जो बातें मैं लिखता हूँ, वह सच हैं या नहीं और उनका धर्म्मसे कुछ सम्बन्ध है या नहीं। "जमाना" हिन्दू सम्पादकके हाथमें है, इससे वह हिन्दू कहा जा सकता है और उसकी राय भी एक हिन्दूकी राय कही जा सकती हैं।

भारतवर्षमें हिन्दू और मुसलमान दो बड़ी जातियां हैं। दोनोंके शिक्षित लोगोंके विचारोंमें हम एक विचित्र भेद देखते हैं। शिक्षित हिन्दू अपनी जाति, धर्म और समाजकी, जहां तक बने निन्दा करते हैं। समाजके गुणोंको छिपाते हैं और दोषोंको बढ़ा बढ़ाकर दिखाते हैं। उधर शिक्षित मुसलमानोंका ठीक इसके विरुद्ध आचरण है। वह अपनी जाति और धर्म्मके दोषोंको दबाकर गुणोंको प्रकाशित करते हैं। यदि किसी दोषको दूर करनेकी चेष्टा करते हैं तो बहुत उत्तम रीतिसे। पञ्जाबके शिक्षा विभागमें एक उर्दू पोथी बनी थी। उसका नाम था "रसूम हिन्द"। उसके पहले अंशमें हिन्दुओंका हाल था और दूसरेमें मुसलमानोंका। हिन्दुओंके विषयमें जो कुछ लिखा गया था, वह एक हिन्दूने लिखा था और मुसलमानी अंश एक मुसलमानने। हिन्दू अंशमें पहले कुछ हिन्दू-धर्म्म और धर्म्मकी पुस्तकोंका वर्णन है और पीछे दिल्लीके रहनेवाले हिन्दुओंकी दो कहानियां। उसी प्रकार मुसलमानी अंशमें मुसलमानोंके धर्म्म और धर्म्म सम्बन्धी पुस्तकोंका पहले कुछ वर्णन किया गया है और पीछे एक मुसलमान घरानेकी कहानी लिखी गई है। पञ्जाबी स्कूलोंके लड़के इस पोथीको पढ़ा करते थे। स्कूलमें पढ़ते पढ़ते ही हिन्दू लड़के यह समझने लगते थे कि हिन्दू धर्म्म निरा ढकोसला है, हिन्दू निरे मूर्ख और गंवार हैं। यह भूत, प्रेत, पिशाचकी पूजा करते

हैं। अकल उनके पास तक नहीं फटकी। मुसलमान बहुत अच्छे हैं उनका मजहब बहुत अच्छा है, उनकी मजहबी किताबें बहुत अच्छी हैं, उनके पगम्बर बहुत ही अच्छे थे। फल यह होता था कि उसी पोथीको लेकर मुसलमान लड़के हिन्दुओंको छेड़ते थे और हिन्दू लड़के कान ढलकाकर चुपके हो जाते थे।

वही बात अखबारोंमें भी है। जितने मुसलमानी समाचारपत्र हैं, चाहे वह पुराने ढर्रेके हों या नये ढर्रेके, चाहे वह धर्म्म सम्बन्धी हों या राजनीति सम्बन्धी, सब मुसलमान धर्म्मकी प्रशंसा करते हैं, मुसलमानोंकी तरफदारी करते हैं। अपने समाजका गौरव अक्षुन्न रखनेकी चेष्टा करते हैं। एक टूटी मसजिद देखकर भी उनको जोश आता है। कहां अरब है, किस जगह वहां रेल बनती है, तथापि शिक्षित मुसलमानोंका उधर ध्यान है। लाहोरके दो उर्दू अखबारोंके सम्पादक वहां रेल जारी होनेके लिये हजारों रुपये हिन्दुस्थानसे एकत्र करके सुलतानरूमके पास भेज रहे हैं। केवल यह जानकर कि उस सुदूर मरुभूमिमें मुसलमान धर्म्मके नेताने जन्म लिया था। किन्तु हिन्दुओंकी दूसरीही दशा है। अभी ऊपर "जमाना" पत्रको बात कही गई है। हिन्दुओंके साथ जैसा उसका बर्ताव है, हिन्दुओंके चलाये अन्यान्य उर्दू समाचार पत्रोंका भी वही बर्ताव है। वह जब करते हिन्दूधर्मकी कुछ निन्दाही करते हैं। उनके प्रबन्ध सदा संसार भरमें हिन्दुओंको हलका बनानेकी चेष्टामें निकलते हैं। हम क्या कहें, हमारे शिक्षित हिन्दू भाई स्वयं विचारें कि वह अच्छा करते हैं या बुरा करते हैं। संसारमें कोई जाति अपने धर्म्म और अपनी जातिसे घृणा करके उन्नत हो सकती हैं तो वह लोग अच्छा ही करते हैं।

अन्तिम प्रस्ताव

"मखजन" से पहले उर्दूके कई एक और अच्छे मासिक पत्र जारी

हुए थे, जिनमेंसे कुछ मिट गये और कुछ अब भी हैं। उनमेंसे एक "मुआरिफ" था, जो मखजनके जारी होनेके बाद बंद हुआ। मुसलमानी पत्र था। अरबीके विद्वान उसमें ऐतिहासिक और दार्शनिक लेख लिखा करते थे। मौलाना हालीकी नजमें भी उसमें छपा करती थीं। एक नाविल भी उसमें निकलता था। सन १८९८ ईस्वीसे १९०१ ई० तक उक्त पत्र जारी था।

"हसन" नामका पत्र एक सज्जन हसनबिन अब्दुल्लाने दक्षिण हैदराबादसे जारी किया था। उसके लेखकोंको अच्छे लेख लिखने पर एक अशर्फी उजरत मिलती थी। कई साल होगये यह पत्र बन्द होगया। "अवध-रिवियू" नामका एक पत्र नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे कोई छः सात सालतक निकल कर गत वर्ष बन्द होगया। एक प्रकारका अच्छा मासिक पत्र था। "नाइंटीन्थ संचुरी" और "ईष्ट एण्ड वेष्ट" आदि अंगरेजी पत्रोंका तरजमा उसमें छपा करता था। तरजमा अच्छा होता था। कविता उसमें नहीं होती थी। आधेसे अधिक भागमें नाविल होता था। एक तस्वीर और एक जीवनी भी उसके हर नम्बरमें होती थी।

लखनऊहीसे "खदङ्ग नजर" नामका एक मासिक पत्र निकलता है, जिसका ८ वां वर्ष चलता है। आर्थिक दशा अच्छी न होनेसे उसका जुलाईका नम्बर अब तक नहीं निकला है। गत वर्ष भी एक रईसकी उदारतासे उसका पुनर्जीवन हुआ था। इसके एक भागमें पद्य, एकमें गद्य और एकमें नाविल होता है। गद्यमें अच्छी उर्दूके नमूने होते हैं। इसकी कविताकी भाषा अच्छी होती है। पुरानी चालका पत्र है। एक हिन्दू सज्जन उसे निकालते हैं, पर उसमें लिखनेवाले अधिक मुसलमान हैं। लखनऊसे दस बारह साल पहले मौलवी अबुलहलीम शररने "दिलगुदाज" नामका एक पत्र निकाला था। इसके सब लेख मौलवी

साहब स्वयं लिखते थे। लेख अधिकतर साहित्य सम्बन्धी होते थे। नाविल उसमें बराबर छपता था। जब मौलवी साहब हैदराबाद चले गये तो उक्त पत्र बन्द हो गया। अब गत जून माससे वह पत्र फिर जारी हुआ है।

"दकन रिवियू और अफसाना" हैदराबादसे निकलता है। इसमें अधिक भाग नाविलका होता है। लेख कठिन दार्शनिक और भाषा और भी कठिन होती है। आकार ६० पृष्ठ और मूल्य ३) वार्षिक है। हैदराबादके दो और मासिक पत्र विशेष वर्णन योग्य हैं। इनके नाम "दबदबये आसिफी" और "मजबुबुलकलाम" हैं। इनमें पहला गद्यका है, दूसरा पद्यका। स्वयं हैदराबादके निजाम इन पत्रोंके सरपरस्त हैं और उनके प्रधान मंत्री महाराज किशनप्रसादकी आज्ञासे छपते हैं। पहलेमें साहित्य, इतिहास और नीति सम्बन्धी लेख होते हैं। उत्तम लेखके लिये एक अशर्फी इनाम दी जाती है। कवितावाले पत्रमें हुजूर निजाम और महाराज किशनप्रसाद मदारुलमूहामकी कविता छपती है। पहले पत्रका दाम ४) और दूसरेका २) साल है। चाहे इन कागजोंका पुराना ढांचा हो और इनकी कविता पुराने ढङ्गकी हो, पर दो साहित्य-सम्बन्धी मासिकपत्र हिन्दुस्थानके एक सबसे बड़े देशी रईस और उसके प्रधान मंत्रीके उत्साहसे निकलते हैं, यह बात बहुत कुछ सन्तोषकी है। दूसरे रईसोंका भी इनपर ध्यान होना चाहिये।

अलीगढ़से "उर्दूएमुअल्ला" नामका एक मासिकपत्र साल भरसे निकलने लगा है। इसके सम्पादक सय्यद फजलुलहसन हसरत बी० ए० हैं। "उर्दूएमुअल्ला" डीलडौलमें "मखजन" और जमानासे कुछ हलका और छपाई सफाईमें बढ़कर है। मूल्य भी इसका उनसे कुछ अधिक अर्थात् ४) साल है। इस पत्रमें कुछ विशेषता है। वह यही कि बहुत शुद्ध उर्दू लिखता है। राजनीतिसे भी यह भागता नहीं

है। दो चार खूब धड़ाकेके आर्टिकल इसकी गत संख्याओंमें निकल गये हैं। उसके कोई कोई प्रबन्ध बहुत लम्बे होने पर भी बहुत साफ होते हैं। अच्छी भाषा भी बहुत जरूरी चीज है। यह कागज उत्तम भाषा लिखता है और उसे पाक साफ रखनेकी चेष्टा करता है। इसी एक गुणके लिये इसका बना रहना बहुत जरूरी है। पर इसके लेख प्रायः एकही ढङ्गके होते हैं, उसमें बहुत विषयोंका समावेश नहीं होता। इसके सिवा सम्पादककी निगाह कुछ अधिक ऊंची है, जिससे खुदपसन्दीसी जाहिर होती है। अच्छी भाषा लिखना अच्छी बात है, पर वह खुदपसन्दीके विना भी लिखी जा सकती है। अच्छा काम करनेवालोंको हृदयमें संकीर्णता नहीं रखना चाहिये, उससे उन्नतिमें बाधा पड़ती है।

इसके सिवा "काश्मीरदर्पण" नामका एक उर्दू-पत्र प्रयागसे निकलता है। जिसमें ३२ पृष्ठ उर्दू और १६ पृष्ठ हिन्दी प्रबन्धोंके रहते हैं। इसके सम्पादक पं० तेजबहादुर सपरू एम० ए० हैं। मेरठसे "अमरेजदीद" नामका एक मासिकपत्र निकलता है। उसके सम्पादक भी एक मुसलमान बी० ए० वकील हैं। उसमें मुसलमानोंके सामाजिक सुधारकी ओर अधिक दृष्टि रखी जाती है। उसकी भाषा बहुत रूखी और फीकी होती है। यह सब पत्र एक-एक सालसे जारी हुए हैं। और भी कई एक मासिकपत्र उर्दूमें निकलते हैं। उनके सम्पादक भी प्रायः एम० ए०, बी० ए० हैं। इतने पत्रोंमेंसे दो चारके अवश्यही अच्छे ढङ्गसे चल जानेकी आशा की जा सकती है। हिन्दीवालोंके यह बात ध्यान देनेके योग्य है।

कई एक उर्दू मासिक-पत्र धर्म्म सम्बन्धी हैं, जिनमेंसे कुछ मुसलमानोंके धर्म्म सम्बन्धी और कुछ हिन्दुओंके हैं। इनमेंसे झझरका "भारत प्रताप" नामक मासिक पत्र विशेष वर्णनके योग्य है। उसे पण्डित दीनदयालु शर्माके छोटे भाई पण्डित विश्वम्भरदयालुजी निकालते हैं।

इसमें सनातन हिन्दू-धर्म्म सम्बन्धी लेख होते हैं और कितनेही बहुत योग्यतासे लिखे हुए होते हैं। आरम्भमें यह पत्र इस लेखके लेखकहीके कलमसे निकलता था। संबत् १९४९ में यह मुरादाबादसे जारी किया गया था। दो साल निकलकर बन्द हो गया। अब तीन-चार सालसे वह झझरसे निकलने लगा है। उर्दू में हिन्दू धर्म्मके मासिकपत्रोंकी चाल चली जरूर थी, पर कुछ स्थिरता नहीं हुई। पर हां, मुसलमानी मासिक-पत्र अब भी निकलते जाते हैं, किन्तु उनमें जोरदार एक भी नहीं है। हिन्दू लोग अपने धर्म्म और समाज सम्बन्धी मासिकपत्रोंको अब हिन्दीमें ले जा रहे हैं।

बहुतसे पुराने और नये उर्दू-पत्र हमारी निगाहसे छुट गये हैं और बहुतोंको हमने उल्लेख योग्य न समझकर छोड़ दिया है। उनमें देशी रियासतोंके अखबार भी हैं। उनमेंसे बहुत बन्द हो गये और जो हैं वह नहींके बराबर हैं। पञ्जाबमें बहावलपुर, पटियाला, कपूरथला आदि रियासतोंसे एक एक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकलता था। उनमेंसे एकाध जारी भी हैं, पर उनका होना न होना बराबर है। हां, दक्षिण हैदराबादमें एक दो जानदार उर्दू पत्र हैं। ग्वालियरसे "ग्वालियर गजट" उर्दू-हिन्दीमें निकलता था, पर अब वहांसे उर्दू उठ गयी है; इससे वह पत्र हिन्दीमें निकलता है। वह सरकारी अखबार है। इसी प्रकार जयपुरसे "जयपुर गजट" उर्दू-हिन्दीमें निकलता था और जोधपुरसे "जोधपुर गजट" उर्दू-हिन्दीहीमें निकलता था, जो अब अङ्गरेजी और हिन्दीमें निकलता है। और कई रियासतोंमें उर्दू पत्र निकलते थे, जो अब मिटगये।

बरेली, मुरादाबाद, आगरा, इटावा, कानपुर, बदायूं, फैजाबाद तथा और कितनेही शहरोंसे कई एक साप्ताहिक उर्दू पत्र निकलते हैं। मुरादा-बादसे एक नहीं, कई कागज अब भी निकलते हैं, इनमेंसे "रहबर" और

"नय्यरे आजम" दो नाम लेनेके योग्य हैं। "रहबर" पंडित प्रतापकृष्णके समयमें अच्छा कागज था, अब भी खासा है। "नय्यरे आजम" २६ सालका पुराना है। पर दुःखकी बात है कि उसकी कुछ उन्नति नहीं हुई और बात भी यह है कि जिस चालसे मुरादाबादी उर्दू अखबार चलते हैं, इससे उनकी उन्नति हो भी नहीं सकती। उनमेंसे कई एकको निन्दा—कुत्साके अभियोगमें जेल जाना पड़ा है, कई एक अब भी उसी चाल चले जाते हैं। तथापि कुछ सुधार हुआ है, कुछ उनके आंखें हुई हैं। नय्यरे आजमने हमारा उर्दू अखबारोंके सम्बन्धका लेख पढ़के कहा है कि लेख जरूरी और कामका है, पर उसमें जो उर्दू अखबारोंकी प्रशंसा की गई है, वह भी प्रशंसाकी ओटमें निन्दा ही है, पर असल बात यह है कि हमने न स्तुति की है न निन्दा। उर्दू पत्रोंको उनकी जैसी अवस्था है, वह खोल कर समझा दी है। इसलिये कि उनका सुधार हो और वह अपने लिये अच्छा मार्ग तलाश करें। अपने बहुतसे गुण दोष मनुष्य बहुत समझदार होने पर भी स्वयं नहीं समझता। समालोचककी लेखनीसे जब गुण दोष प्रगट होते हैं, तबही वह उसकी समझमें आते हैं। आगे उसे अधिकार है कि चाहे वह उनको सुनकर नाराज हो या समझ कर लाभ उठाये।

मथुरासे पंडित दीनदयालु शर्म्माने सन् १८८५ ई० में "मथुरा अखबार" निकाला था, जो एक सालसे कुछ कम चला। पत्र बड़े आकारका था। इसमें सबसे पहले ईश्वरकी एक स्तुति हिन्दीमें और उसकी नकल उर्दूमें होती थी। पीछे राजनीति, सामाजिक और धर्म्म सम्बन्धी लेख होते थे। पत्र राजनीति सम्बन्धी था, पर हिन्दू-धर्म्मका भाव उसमें खूब था। इस ढङ्गका वह एकही पत्र था। इससे पहले पंडितजीने अपने स्थान झज्झरसे "रिफाहेआम" नामका एक मासिक पत्र निकाला था। वहभी साल दो साल चला था।

कानपुरसे एक तसवीरदार पत्र महीनेमें दोबार मियां रहमतुल्लह रादने निकाला था। उसमें तसवीरें बहुत सुन्दर निकलती थीं। वह कोई दो साल चला। अन्तमें उसकी पालिसी हिन्दू विद्वेषकी ओर इतनी झुकी कि हिन्दुओंको गाली देते देते ही अन्त होगया। तसवीरके हिसाबसे वैसा पत्र उर्दूमें आजतक न निकला।

उर्दू पत्रोंमें बहुत कम ऐसे हैं, जो अपने पांवोंसे खड़े हो सकते हों और अपना खर्च आप चला सकते हों। पर हां, अब दो चार पत्र ऐसे हो गये हैं, जो अपने जोरपर चलते हैं और जिन्होंने दूसरोंकोभी अपने बल पर चलना सिखाया है। मासिकपत्रोंमें अभी केवल लाहोरका मखजनही अपनी आमदनीसे चलने लगा है। सुना है कि उसके लगभग एक हजार ग्राहक होगये हैं। पर अभी और मासिक पत्र हानि उठाकर चलते हैं। उनमेंसे कोई एक बहुत जल्द अपना बोझ सम्हालनेके योग्य हो जायंगे।

अभीतक उर्दूवाले केवल हिन्दी आदि दूसरी हिन्दुस्थानी भाषाओंको हव्वा समझते थे। अब भी उनका वह भय मिट नहीं गया है, तथापि हिन्दी आदिकी ओर उनका कुछ-कुछ ध्यान हुआ है। उर्दू-वालोंमें हिन्दीकी इतनी कम चर्चा है कि भारतमित्रमें उर्दू अखबारोंका लेख उन्होंने नहीं पढ़ा और पढ़ा भी तो केवल दो चारने, पर इतना हुआ कि उन्होंने उर्दूमें लिख देनेका अनुरोध किया। वैसा किया गया और हमको इस बातके प्रकाशित करनेमें बड़ी प्रसन्नता होती है, उसका प्रभाव भी बहुत अच्छा हुआ।

यहां हम अपना उर्दू पत्रोंके सम्बन्धका लेख समाप्त करते हैं। अगले सप्ताहसे हिन्दी पत्रोंकी बात कहेंगे, जिनके लिये हमारा यह सारा श्रम है।

भारतमित्र सन् १९०५ ई०

हिन्दी अखबार

उर्दू अखबारोंके विषयमें जो सबसे पहला लेख लिखा गया, उसमें दिखाया गया था कि भारतवर्षमें सन १८३५ ईस्वीमें समाचार पत्रोंको स्वाधीनता मिली। और उससे अगले वर्ष दिल्लीसे "उर्दू-अखबार"--निकला। उक्त पत्रमें राजनीति, समाजनीति आदिके लेख नहीं निकलते थे, जैसे कि आज कलके समाचारपत्रोंमें निकलते हैं। उर्दूके विद्वान और कवि लोगोंके वादानुवाद और कविता सम्बन्धी बातें उसमें छपती थीं। इतने पर भी बड़े-बड़े अंगरेज हाकिम उसे अस्सी-अस्सी और अड़तालीस-अड़तालीस रुपये वार्षिक देकर खरीदते थे। इसके पीछे फुलस्केप आकारके १६ पृष्ठ पर आगरेसे "मुफीदे खलायक" नामका एक अखबार निकला। वह कई वर्ष तक जारी रहा। उसमें खबरें निकलती थीं। भारतके इतिहासके दो पृष्ठ उसमें निकलते थे। इसके सिवा उर्दूके कवियोंकी गजलें और दूसरी चीजें उसमें छपती थीं। इससे यह अखबार भी ठीक अखबार कहनेके योग्य न था।

सन १८५० ईस्वीमें लाहोरसे "कोहेनूर" नामका एक साप्ताहिक उर्दू-पत्र निकला। वह उर्दूका असली पत्र कहलानेके योग्य हुआ। दस साल हुए काशीनिवासी बाबू श्रीराधाकृष्ण दासने हिन्दी अखबारोंके विषयमें एक छोटीसी पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने दिखाया है कि हिन्दीमें सबसे पहले राजा शिवप्रसादकी सहायतासे सन १८४५ ईस्वीमें "बनारस अखबार" निकला।* उक्त पत्र लीथोमें रद्दीसे कागजपर

* सबसे पहला हिन्दी अखबार "उदन्त मार्त्तण्ड" सन् १८२६ ई० में कलकत्तेसे प्रकाशित हुआ था। --सम्पादक

छपता था। एक महाराष्ट्रीय सज्जन गोविन्द रघुनाथ थत्ते उसके सम्पादक थे। उसका मोटो यह था—

सुबनारस अखबार यह, शिवप्रसाद आधार।
बुधि विवेक जन निपुनको, चित हित बारम्बार॥
गिरजापति नगरी जहां, गङ्ग अमल जलधार।
नेत शुभाशुभ मुकुरको, लखो विचार विचार॥

उसकी भाषाका भी एक नमूना उक्त पोथीमें दिखाया गया है। वह इस प्रकार है—

"यहां जो पाठशाला कई सालसे जनाब कप्तान किट साहब बहादुरके इहतिमाम और धर्मात्माओंके मददसे बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बन्नेका निशान तय्यार हर चेहार तरफसे हो गया, बल्कि इसके नकशेका बयान पहिले मुंदर्ज है सो परमेश्वरके दयासे साहब बहादुरने बड़ी तन्देही मुस्तैदीसे बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है! देखकर लोग उस पाठशालाके कितेके मकानोंकी खूबियां अक्सर बयान करते हैं और उसके बननेसे खर्चका तजवीज करते हैं कि जमासे जियादा लगा होगा और हर तरहसे लायक तारीफके है सो यह सब दानाई साहब ममदूहकी है। खर्चसे दूना लगावटमें वह मालूम होता है।"

महाराज काशिराजके शिक्षागुरु मुंशी शीतलसिंह साहबने इस भाषाकी एक कता लिखकर दिल्लगी की थी। वह कता इस प्रकार है—

"बनारसमें इक जो बनारस गजट है।
इबारत सब उसकी अजब ऊटपट है॥
मुहर्रिर बिचारा तो है बा-सलीका।
वले क्या करे वह कि तहरीर भट है॥"

इस कतेसे यह पता नहीं लगता कि मुंशी साहबने "बनारस

अखबार" की इबारतकी किसलिये दिल्लगी की। उर्दू में दो एक शब्द संस्कृतके मिला देनेके लिये की, या विशुद्ध हिन्दी न लिख सकनेके लिये की ; अथवा सम्पादकके लिङ्ग-ज्ञान पर की। हमारी समझमें सम्पादक बहुत दोषी नहीं। एक तो वह दक्षिणी थे, दूसरे उस समय तक हिन्दीका कोई ऐसा नमूना मौजूद न था, जिसके अनुसार वह लिखते और भाषा उर्दू न कहलाकर हिन्दी कहलानेके योग्य होती।

यह ठीक है कि श्रीलल्लूलालजीके प्रेमसागरकी भाषा उनके लिये आदर्श हो सकती थी। पर लल्लूजीके परिश्रमकी ओर किसीने ध्यान नहीं दिया। उनकी भाषा उनकी पोथीहीमें रह गई। आगे और पोथियां लिखकर किसीने उनकी चलाई हुई भाषाकी उन्नति नहीं की। लल्लूजीने उर्दूवालोंके साथ साथही प्रेमसागर लिखकर हिन्दीमें गद्य लिखनेकी रीति चलाई थी। दुःखकी बात है कि उर्दूकी उन्नति तो होती रही, पर हिन्दीकी कुछ न हुई। यदि लल्लूजीके प्रेमसागरकी भांति दस पांच और पोथियां हिन्दीमें लिखी जातीं तो "बनारस अखबार" को हिन्दी लिखनेका एक अच्छा मार्ग मिलता, पर लल्लूजीके बाद कोई साठ सालतक किसीने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। अन्तको स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्रजीने मरी हुई हिन्दीको फिरसे जिलाया।

जिस प्रकार गद्य लिखनेकी नीव आधुनिक हिन्दीमें उर्दू गद्यसे दो एक सालही पीछे पड़ी, वैसेही समाचारपत्रकी नींव भी दो चार साल बादही पड़ गई थी। पर दुःख यह है कि उसकी मजबूतीकी ओर किसीने ध्यान नहीं दिया। लाहोरसे उर्दूका "कोहेनूर" सन् १८५० ईस्वीमें निकला था। उसी साल काशीसे "सुधाकर" नामका हिन्दीपत्र तारामोहन मित्र नामी एक बंगाली सज्जनके द्वारा प्रकाशित हुआ। कोहेनूर बहुत दिन तक भलीभांति चला और अबतक भी उसका अस्तित्व एकदम मिट नहीं गया है, पर "सुधाकर" बहुत दिन नहीं

रहा। हां, एक यादगार उस पत्रकी काशीमें बहुत भारी है ; जिसके द्वारा ज्योतिष और संस्कृत भाषाके सिवा हिन्दीका भी बहुत कुछ उपकार हुआ और होता है। वह काशीके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकरजी द्विवेदी हैं। आपके चाचाजीके हाथमें ज्योंही डाकियेने सुधाकर पत्रका पहला नम्बर लाकर दिया, त्योंही घरके भीतरसे उनको भतीजा होनेकी खबर मिली। आपने भतीजेका नाम उस पत्रके नाम पर सुधाकर रखा। "सुधाकर" पत्रकी कोई संख्या हमने नहीं देखी और न उसकी भाषाहीका कुछ नमूना हमें मिला। यदि मिलता तो अच्छा होता। क्योंकि यह जाननेकी बात है कि लल्लूजीसे एकदम ४८ साल बाद जो हिन्दी लिखी वह किस ढङ्गकी थी।

कविवचनसुधा

अन्तको स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्रजीके समयमें हिन्दीके भाग्यने पलटा खाया। उन्होंने हिन्दीको उत्तम बनानेकी चेष्टा की। कई एक अच्छी अच्छी पोथियां लिखकर उन्होंने सुन्दर हिन्दीका एक नमूना खड़ा किया। फिर और लगातार कई एक पुस्तकें लिखकर उसकी पुष्टि की। यद्यपि स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह महोदयने सन् १८६३ ई० में शकुन्तलाका हिन्दी अनुवाद करके फिर एक अच्छी हिन्दीका नमूना उपस्थित किया था। पर उसका उस समय अधिक प्रभाव नहीं हुआ। मुख्य काम बाबू हरिश्चन्द्रजीके हाथोंहीसे हुआ। कहा जा सकता है कि हिन्दी नहीं थी, बाबू हरिश्चन्द्रने उसे पैदा किया। यदि हिन्दी होती तो राजा शिवप्रसाद नागरी अक्षरोंके बड़े प्रेमी होकर उर्दूमें क्यों उलझे रहते ?

हिन्दीका एक उत्तम रूप खड़ा होते ही बाबू हरिश्चन्द्रजीको अखबारका ध्यान आया। इसीसे सन् १८६८ ई० में उन्होंने "कविवचन-सुधा" मासिक पत्रके आकारमें निकाला। उसमें उस समय प्राचीन

कवियोंका काव्य प्रकाशित होता था। कवि देवका "अष्टयाम" दीनदयालु-गिरिका "अनुरागबाग", चन्दका "रासा", मलिक मुहम्मदकी "पद्मावत", कबीरकी "साखी" बिहारीके दोहे, गिरधरदासका "नहुपनाटक", गुलिस्तानका अनुवाद आदि पुस्तकें उसमें छपने लगीं। संसारमें सदा पद्यहीसे अच्छी भाषाओंको कल्याणका मार्ग मिलता आया है। पद्य लिखते छापते हरिश्चन्द्रजीको गद्यकी सुध आ गई। उन्होंने देखा कि गद्यमें भारतके सब प्रान्त बढ़ रहे हैं, केवल हिन्दीवाले ही बेसुध हैं। इतना विचार आते ही उन्होंने कविवचनसुधाको पाक्षिक और फिर साप्ताहिक किया। राजनीति, समाजनीति आदि पर लेख लिखने आरम्भ किये। उस पत्रका सिद्धान्त वाक्य यह था —

"खल गगनसों सज्जन दुखी मति होहिं, हरिपद मति रहै।
अपधर्म्म छूटैं, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, जग आनन्द लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजनकी अमृतवानी सब कहै॥"

इस सिद्धान्तमें राजनीति, समाजनीति सब है, साथ साथ धर्म्मनीति भी है और उसमें बाबू हरिश्चन्द्रजीका जो कुछ मत था वह भी झलकता है। अर्थात् "हरिपद मति रहै" और "नारी नर सम होहिं" का गङ्गा-मदारका जोड़ा भी साथ साथ है।

सरकारने भी कविवचन सुधाकी सौ कापियां खरीदी थीं। जब उक्त पत्र पाक्षिक होकर राजनीति सम्बन्धी और दूसरे लेख स्वाधीनता भावसे लिखने लगा तो बड़ा आन्दोलन मचा। यद्यपि हाकिमोंमें बाबू हरिश्चन्द्रकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, वह आनरेरी मजिष्ट्रेट किये गये थे, तथापि वह निडर होकर लिखते रहे और सर्व-साधारणमें उनके पत्रका आदर होने लगा। वह साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा। यद्यपि हिन्दी भाषाके प्रेमी उस समय बहुत कम थे तो भी हरिश्चन्द्रके ललित लेखोंने लोगोंके

जीमें ऐसी जगह कर ली थी कि कविवचनसुधाके हर नम्बरके लिये लोगोंको टकटकी लगाये रहना पड़ता था। जो लोग समझते थे, वह भी प्रशंसा करते थे। दुःख है कि हमको एक नम्बर भी उस पत्रका नहीं मिलता, नहीं तो उसमेंसे कुछ नमूने दिखाते। दुःखकी बात है कि बहुत जल्द कुछ चुगुलखोर लोगोंकी दृष्टि उस पर पड़ी। उन्होंने कविवचनसुधाके कई एक लेखोंको राजद्रोह-पूरित बताया। दिल्लगीकी बातोंको भी वह लोग निन्दासूचक बताने लगे। 'मरसिया' नामका एक लेख उक्त पत्रमें छपा था, यार लोगोंने छोटेलाट सर विलियम म्योरको समझाया कि यह आपहीकी खबर ली गई है। सरकारी सहायता बन्द हो गई। शिक्षा विभागके डाइरेक्टर केम्पसन साहबने बिगड़कर एक चिट्ठी लिखी। हरिश्चन्द्रजीने उत्तर देकर बहुत कुछ समझाया बुझाया। पर वहां यार लोगोंने जो रंग चढ़ा लिया था वह न उतरा। यहां तक कि बाबू हरिश्चन्द्रजीकी चलाई "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और "बालाबोधिनी" नामकी दो मासिक पत्रिकाओंकी सौ-सौ कापियां प्रान्तीय गवर्नमेण्ट लेती थी, वह भी बन्द की गईं।

इन फिकरेबाज लोगोंके दममें हाकिम कभी-कभी किस प्रकार आ जाते हैं, इसकी एक उन्हीं दिनोंकी दिल्लगी सुननेके योग्य है। हमारे वर्तमान महाराज सप्तम एडवर्ड उस समय प्रिन्स आफ वेल्स थे और श्रीमानने भारतमें पदार्पण किया था। राजभक्तिकी तरङ्गोंसे भारतवर्ष भारतमहासागरकी तरह तरङ्गित था। कवि वचनसुधाने श्रीमानके स्वागतमें "पाद्यार्घ्य" नामकी एक कविता लिखी थी। सब लोग जानते हैं कि पाद्यार्घ्य कितनी आदरकी वस्तु है। यदि उसका अनुवाद स्वागत किया जाय तो वैसा सुन्दर नहीं होता। हरेक हिन्दू जानता है कि पाद्यार्घ्य कितनी शिष्टताका बरताव है और हिन्दुओंकी कैसी पुरानी चाल है। तथापि यार लोगोंने हाकिमको समझाया था कि इसका अर्थ

जूतिओंसे पीटना भी है। यार लोगोंके ऐसे ही गुणोंपर मोहित होकर गोस्वामी तुलसीदासजी अपने रामचरितमानसमें इनकी बहुत कुछ वन्दना कर गये हैं।

हाकिमोंका ऐसा हलका वर्ताव देखकर निर्भीक हरिश्चन्द्रने आनरेरी मजिष्ट्रेटीका भार उसी दम अपनी गर्दनपरसे उतारकर फेंक दिया और फिर हाकिमोंसे मिलने-जुलने या उनकी दरबारदारी करनेका नाम न लिया। इसके बाद कविवचनसुधाका नाम सर्वसाधारणमें खूब बढ़ा। उसको बहुतसे अच्छे लेखक मिले थे। उसमेंसे कई एकके नाम हमें मालूम हुए हैं—पं० श्री राधाचरण गोस्वामी, बाबू गदाधर सिंह, बाबू काशीनाथ खत्री, लाला श्रीनिवासदास, पं० बिहारीलाल चौबे, पं० सरयुप्रसाद, बाबू तोताराम वर्मा, मुंशी कमलाप्रसाद, पं० दामोदर शास्त्री, बाबू ऐश्वर्य्यनारायण सिंह, बाबा सुमेरु सिंह, बाबा सन्तोषसिंह, बाबू गोकुलचन्द्र, बाबू नवीनचन्द्र राय।

पत्र कुछ देरसे निकलता था, कारण यह कि उस समय, समय पर पत्र निकालनेका अभ्यास लोगोंको नहीं पड़ा था। तथापि बाबू हरिश्चन्द्र-जीने समयपर निकालनेके लिये उक्त पत्र पं० चिन्तामणि राव घड़फलेके हवाले कर दिया। पत्र समय पर निकलने लगा। पर पीछे हरिश्चन्द्रजीने इसमें लिखना छोड़ दिया। इससे पत्रका प्राण निकल गया। इसके अन्तिम नम्बर हमने भी देखे हैं। सारहीनसे होते थे। कुछ दिन व्यास रामशंकर शर्मा भी इसके अवैतनिक सम्पादक थे। सन् १८८३ ईस्वीमें इसके अधःपतनका समय आ गया। लार्ड रिपनका जमाना था। इलवर्ट-बिलका आन्दोलन हुआ। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दने उसका विरोध करके स्वदेशवासियोंकी दृष्टिसे अपनेको गिराया था। कवि-वचनसुधाने राजा शिवप्रसादका साथ दिया। इससे वह भी गिरा। यहां तक कि सन् १८८५ ई० में वह पत्र बन्द होगया। उसी साल

बाबू हरिश्चन्द्रजीका देहान्त हुआ था। दूसरे हिन्दी पत्रोंने बाबू साहबके शोकमें महीनों तक काला बार्डर देकर लेख छापे, पर इस पत्रने अपने जन्मदाताके लिये एक कालम भी काला न किया।

कविवचनसुधाका नमूना

हिन्दी अखबारोंके विषयमें पहला लेख लिखते समय हमने दुःख प्रकाश किया था कि कविवचनसुधाका कोई अङ्क हमारे पास नहीं हैं, इससे उसके लेखोंका नमूना कुछ नहीं दिखा सकते। हर्षकी बात है कि उक्त लेखको पढ़कर जयपुरसे एक सज्जनने कृपापूर्वक उक्त पत्रके कुछ अङ्क भेज दिये है। हम उनकी इस कृपाके लिये बहुत कुछ कृतज्ञ हैं। इसमें कुछ अङ्क सन १८७५ और १८७६ ईस्वीके हैं। कुछ सन १८७८, ८० और ८१ के हैं। जिस समयके यह अङ्क हैं, उस समय "कविवचन" साप्ताहिक निकलता था। पिछले सात सालके अङ्क नहीं मिले। खैर जो अङ्क मिले हैं, उन्हींमेंसे कुछ-कुछ दिखाया जाता है।

सन १८७५ ईस्वीके अङ्कोंके आरम्भके अङ्क रायल हाफशीटके दो पन्नोंमें हैं, अन्तके डिमाई पूरेशीटके दो-दो पन्नोंमें। इनमें कागज सफेद और अच्छा लगा हुआ है। यह काशीके लाइटप्रेसके छपे हुए हैं। सन १८७८ से १८८१ तकके अङ्क घटिया कागजपर छपे हुए हैं। तब उक्त कागज काशीके हरिप्रसाद प्रेसमें छपता था। उस समय हरिश्चन्द्रजी सम्पादक भी न थे, चिन्तामणि शर्माके हाथमें कागज था। सन् १८७५ के अङ्कोंमें लेखोंकी तरतीब यों है—एक प्रधान लेख, इसके बाद दो चार टिप्पणियां, अन्तमें दसपांच छोटी-छोटी खबरें, दो दो चार चार लाइनसे बड़ी न होती थीं। उनका शीर्षक अंग्रेजीमें Summary of News और हिन्दीमें "समाचारावली" होता था। प्रायः हरेक विषयका एक-एक अंगरेजी हेडिङ्ग होता था। कोई-कोई लेख अंगरेजीका भी होता था।

कभी-कभी दिल्लगीका लेख या पद्य भी उसमें होता था और हर एक नम्बरमें हरिश्चन्द्रजीकी बनाई हुई कुछ कविता होती थीं। कवितासे खाली बहुत कम नम्बर रहने पाते थे। कवितामें अधिक सूरदासजीके ढंगके पद होते थे। पदोंमें हरिश्चन्द्रजीने सूरदासजीका बहुत कुछ अनुकरण किया है। कवितामेंसे कुछ नमूना देते हैं—

जनमत ही क्यों हम नाहीं मरी,
सखि विधना विध ना कछु जानत उलटी सबहि करी।
हरि आछत वृजचार चवाइन करिनिन्दा निदरीं।
तिन भय मुखहुलखन नहिं पायो, हौंस हिरहत भरीं।
अब हरिसो ब्रज छोड़ि अनत रहे, बिलपत बिरह जरी।
यह दुख देख नहीं जनमाई बारेहि विपद परी।
सुख केहि कहत न जान्यो सपनेहु दुखही रहत दरी।
हरीचन्द मोहि सिरजि विधिह नहिं जानौं कहासरी।

*   *   *   *

यह मन पारदहूं सों चञ्चल।
एक पलकमें ज्ञान विचारत, दूजेमें तिय अञ्चल॥
ठहरत कतहुं न डोलत इत उत, रहत सदा बौरानो।
ज्ञानध्यानकी आन न मानत, याको लम्पट बानो॥
तासों याकहं कृष्ण विरह तप, जो कोउ ताप तपावै।
हरीचन्द सों जीति याहि, हरि भजन रसायन पावै॥

*   *   *   *

नाथ मैं केहि विधि जिय समझाऊं।
बातनसों यह मानत नाहीं, कैसे कहो मनाऊं॥
जदपि याहि विश्वास परम दृढ़, वेदपुरानहु साखी।
कछु अनुभवहू होत कहत है, जद्यपि सोई बहु भाखी॥

तऊ कोटिससि कोटिमदन सम, तुव मुख विनु दृग देखें।
धीरज होत न याहि तनकहूं समाधान केहि लेखें।
निस दिन परम अमृत समलीला जेहि मानै अरु गावै।
तेहि बिनु अपने चखसों देखें किमि यह धीरज पावै।
दरमन करै रहैं लीलामें जिय भरि आनन्द लूटै।
तृप्त होंहिं तब मन इन्द्रिनको अनुभव भुस लै कूटै।
सम्पति सपनेकी न कामकी मृगतृश्ना नहि नीकी।
हरीचन्द बिन सुधा जिय आवै कैसे छछिया फीकी ॥

* * * *

गङ्गा पतितनको आधार।
यह कलिकाल कठिन सागरसों तुमहिं लगावत पार॥
दरस परस जलपान कियेतें तारे लोक हजार।
हरिचरनारविन्द मकरन्दी सोहत सुन्दर धार॥
अवगाहत नरदेव सिद्धमुनि करि अस्तुति बहुवार।
हरीचन्द जन तारिन देवी गावत निगम पुकार॥

* * * *

वह धुजकी फहरानि न भूलत।
उलटि उलटिके मोदिसि चितवनि
रथ हांकनि हरिकी हिय सूलत।
लैगये सब सुख साथहि मोहन
अब तो मदन सदा हिय हूलत।
मो मुख सुमिरि सुमिरि कै सजनी
अजहूं जिय रसबेली फूलत।
लै आवो कोउ मोढिग हरिको
विरह आगि अब तन उनमूलत।

हरीचन्द पिय रङ्ग बावरी
ग्वालिनि प्रेमडोर गहि झूलत।

* * * *

कभी कभी कवित्त और सवैये भी छापे जाते थे:—

जबसों हम नेह किये उनसों
तबसों तुम बात सुनावती हौ।
हम औरनके बसमें हैं परे
हरिचन्दहि कह समझावती हौ।
कोउ आपु न भूलि है बूझहु तौ
तुम क्यों इतनों बतरावती हौ।
इन नैननको सखी दोष सबै
हमैं झूठहि दोष लगावती हौ।
पिय रूसिबे लायक होय जो रूसनो
वाहीसौं चाहिये मान किए।
हरिचन्द तो दास सदा बिन मोल
को बोलै सदा रुख तेरो लिए!
रहै तेरे सुखीसों सुखी नितही
मुख तेरोही प्यारी विलोकि जिए।
इतनेहूं पै जानैं न क्यों तू रहै
सदा पीयसों भौंह तनेनी किए।

* * * *

यह हरिश्चन्द्रजीकी कई प्रकारकी कविताके नमूने हैं। वह समय ऐसा था कि कविताहीसे लोगोंको अधिक प्रेम था। इसीसे कविवचनसुधाको अखबार होकर भी 'कविवचनसुधा' होना पड़ा था और कविता इसमें बराबर छपती थी। जब हरिश्चन्द्रजीने

सम्पादन छोड़ दिया तो उनकी कविता भी बन्द हो गई और अखबारका रंगढंग भी और तरहका हो गया। कविताका उस समय यहां तक जोर था कि कविवचनसुधाके मूल्य आदिके नियम भी कविताहीमें छपते थे। नियमोंकी कविता इस प्रकार थी:—

पट मुद्रा पहिले दिये बरस बिताये सात ।
साथ चन्द्रिकाके लिये दसमें दोउ मिलि जात ।
बरन गए बारह लगत दोके दो महसूल ।
अलग चन्द्रिका सात, पट बचन सुधासमतूल ॥
दो आना इक पत्रको टका पोसटेज साथ ।
सारध आना आठ दे लहत चन्द्रिका हाथ ॥
प्रतिपंगति आना जुगल जो कोउ नोटिस देइ ।
जो विशेप जानन चहै पूछि सबै कुछ लेइ ।

पहले लेखमें कह चुके हैं कि हमारे महाराज एडवर्ड जब प्रिन्स आफ वेल्सकी हैसियितसे भारतवर्ष पधारे थे, उस समय हरिश्चन्द्रजीने उनके स्वागतके लिये बड़ी धूमधाम की थी। उस धूमधामका कुछ परिचय यहां दिया जाता है। उन्होंने कविवचनसुधामें निम्न-लिखित वक्तव्य प्रकाशित किया था।

प्रसिद्ध पत्र

श्रीमहाराजाधिराजजीके ज्येष्ठ पुत्र युवराज श्रीयुत् महाराज कुमार प्रिन्स आफ वेल्स आगत नवम्बरमें हिन्दुस्तानमें आवेंगे, इसके वर्णनमें सब भाषाके कवियोंकी कविता एकत्र संग्रह करके पुस्तकाकार छापी जायगी। यह सब कविता श्रीमहाराणीके वा कुमारके वा उनके वंशकी कीर्तिमें वा उनके आशीर्वादमें होगी। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बङ्गला, गुजराती, महाराष्ट्री, तामिल, तीलगु इत्यादि सब भाषाकी कविता इसमें सन्निवेशित होसकेगी। कवितामें अत्युक्ति और निरा

भाटपन न हो, योंतो बिना कुछ नमक मिर्च लगाए कविता होतीही नहीं। इसमें जिनकी कविता छपैगी एक एक प्रति इस पुस्तककी मिलैगी और जो लोग सहायता पूर्वक कविता भिजवावेंगे वे भी पुस्तक पावेंगे। जो कोई कविता भेजें, वह स्पष्ट अक्षरोंमें भेजें। ३० अक्टोबरके बाद कोई कविता आवैगी तो वह न छापी जायगी। यदि पत्र बेरिङ्ग भेजें तो लिफाफे पर 'राजकुमार सम्बन्धी कविता' इतना लिखदे और कविता बहुत लम्बी चौड़ी भी न हो। कविता चुननेका अधिकार हमने अपने हाथमें रक्खा है।

हरिश्चन्द्र

काशी पश्चिमोत्तरदेश।

इसी विज्ञापनका थोड़ा थोड़ा मतलब बङ्गला-उर्दू आदिमें भी छापा था। इससे उनके लिखनेका ढङ्ग और उनके विचारोंकी भी कुछ कैफियत मालूम होती है। इस विज्ञापनके अनुसार बहुतसी कविताएं भारतकी नाना भाषाओंमें बनकर हरिश्चन्द्रजीके पास आई। उनमेंसे कितनीही कविवचनसुधामें छपीं भी।

कविवचनसुधाके प्रधान लेख नाना विषयों पर होते थे। जहाजका सफर, युवराजके आगमनमें काशीमें क्या क्या होना चाहिये, शब्दमें प्रेरकशक्ति, नौकरोंको शिक्षा, विग्रहशङ्का, भूकम्प, स्वप्न, समालोचना, मूकप्रश्न इत्यादि कई एक प्रधान लेखोंके शीर्षक हैं। इनमेंसे हरेक लेख एक एक विषय पर है। लेखोंके लिखनेका रङ्ग-ढङ्ग दिखानेके लिये हम राजकुमार प्रिन्स आफ वेल्सके नामके लेखकी अन्तिम पंक्तियां नकल कर देते हैं।

"यद्यपि सरकार अपनी निश्चल नीति दिखानेको इनका मान श्रीयुत् वाइसरायसे न्यून समझे, पर हमको इससे कुछ काम नहीं। हमारे धर्म्म और नीति-अनुसार हमको श्रीमती महारानीके तुल्यही इनका आदर

सत्कार करना चाहिये। हम लोगोंको अब तक कुछ निश्चय नहीं कि हिस्दुस्तानी लोगोंने क्या क्या सोचा है और क्या क्या करैंगे। भला कलकत्ते इत्यादि जो बड़े बड़े नगर हैं उनमें तो कुछ होगा वह होयेगा, बड़ोंकी बड़ी बात है। हम उसमें क्या बोलैं, पर बनारसमें क्या होगा इसकी हमैं निस्सन्देह चिन्ता है। सुना है कि श्रीयुत् शेरिङ्ग साहबने एक फिहरिस्त बनाई है जिसमें उन्होंने बहुतसी बातें लिखी हैं। उनकी इच्छा है, कुमारको हिन्दुस्तानी तमाशे दिखलाये जायं। श्रीबाबू माधो दासजीकी अनुमति है कि मङ्गलका मेला हो। हमलोग इस विषयमें जो जो सोचते हैं वह प्रकाश करते हैं। और हमारे नगरस्थ वा विदेशस्थ पाठक और जो सोचैंगे हम उनको यथावकाश प्रकाश करैंगे।"

सन १८८० ई० में इस पत्रका आकार दूना हो गया था। अर्थात् डिमाइ एक शीटकी जगह दो शीट पर छपने लगा था। पर तभीसे इसकी बेरौनकी शुरू होगई थी और वह दशा इसके बन्द होने तक बनी रही।

अलमोड़ा अखबार

इससे पहले दो लेखोंमें हम कविवचनसुधाकी बात कह चुके हैं। वही पत्र हिन्दी अखबारोंके लिये पथ प्रदर्शक था। उसीको देखकर हिन्दीवालोंने जाना था कि समाचारपत्र क्या होता और उससे क्या लाभ है। फल यह हुआ कि कविवचनसुधाके जारी होनेके तीन साल बाद अलमोड़ासे "अलमोड़ा अखबार" निकला। आश्चर्य्य है कि जिन शहरों-की हिन्दी भाषा है, जिनमें अच्छी हिन्दी बोलनेवाले बहुत लोग रहते हैं, उनमेंसे कोई हिन्दी अखबार न निकला, पर अलमोड़ासे एक अखबार निकला—जहांके लोग सीधी हिन्दी बोलना नहीं जानते। इसका एक बड़ा मर्म्मभेदी कारण था। अच्छी हिन्दीके स्थानोंमें नागरी अक्षरोंका प्रचार एक दम बन्द होगया था। अलमोड़ेमें पहाड़ी ब्राह्मणोंके प्रसादसे

नागरी अक्षर थे, इसीसे पहले वहांके सज्जनोंका ध्यान हिन्दी अखबारकी ओर गया। "अलमोड़ा अखबार" वर्तमान हिन्दी अखबारोंमें उमरमें सबसे बड़ा है और इसीसे वह बहुत कुछ आदरके योग्य है। दुःख यही है कि उसे इन ३३ सालमें कभी उन्नतिका अवसर नहीं मिला, लष्टम पष्टम किसी प्रकार निकलता चला जाता है। आजकल बादामी रङ्गके बहुत साधारण कागज पर फुलस्केप साइजके दो या तीन पन्नोंमें निकलता है। महीनेमें दो बार निकलता है। उसका भी कुछ ठिकाना नहीं है, कभी निकलता है; कभी नहीं निकलता। आरम्भमें साप्ताहिक निकला था, दाम रखा था पौने सात रुपये वार्षिक। काशी निवासी बाबू श्रीराधाकृष्णजीने सन् १८९४ में "हिन्दी भाषाके सामयिक पत्रोंका इतिहास" नामकी एक छोटीसी पुस्तक लिखी थी जो काशी नागरी प्रचारिणी सभाके प्रबन्धसे छपी है। उसमें उक्त बाबू साहबने इसके मूल्यकी अधिकता पर आक्षेप किया है—"इतने छोटे पत्रका मूल्य इसके स्वामीने जाने किस कारणसे ६।।।) रखा है।" पर इसका कारण साफ था अर्थात् जिस कविवचन सुधाकी देखा देखी यह निकला था, उसका मूल्य भी इतना ही था। मूल्य कम रखनेकी चाल पीछे पड़ी। आजकल उसका मूल्य सरकार और रईसोंसे ६।।।) ही है। पर सर्वसाधारणसे २।) और विद्यार्थियोंसे १।।) है। जन्म दिनसे आजतक उसने किसी बातमें विशेष परिवर्त्तन नहीं किया। ३३ सालके पुराने समयको यह आजतक पकड़े बैठा है। खैर, इसे भी एक गुण समझ लेना चाहिये।

अलमोड़ा अखबारको हम कोई दस ग्यारह सालसे देखते हैं। इतने दिनोंमें उसको सदा एकही ढङ्गका पाया। कभी कोई विशेष परिवर्त्तन उसमें देखनेमें नहीं आया। उसकी भाषाके विषयमें हम किसी प्रकारकी आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं समझते। जिस स्थानसे वह निकलता है, उसके अनुसार उसकी भाषा है। तीस साल पहलेके उर्दू

सरकारी दफ्तरोंकी जैसी भाषा होती थी, वैसेही उसकी भाषा कभी कभी होती है। कभी खासी हिन्दी भी होती है। इसका विशेष कारण यह है कि वह आस पासके दो चार जिलोंका लोकल अखबार है। स्थानीय समाचार उसमें बहुत होते हैं। उनसे जब कुछ जगह बच रहती है, तब वह और इधर उधरकी बातें लिखता है। प्रान्तिक समाचार पत्रोंको उचित भी यही है कि वह अपने प्रान्तके समाचारों पर अधिक जोर दें। अलमोड़ा अखबारके इस गुणकी हम प्रशंसा करते हैं। दुःख यही है कि उसके चलानेवाले समयके अनुसार उसकी कुछ उन्नति नहीं कर सकते, नहीं तो उसका प्रचार अधिक हो सकता और उसकी ऐसी दशा न रहती। वह अधिक अपने आसपासके जिलोंहीमें बिकता है और पहाड़ी सरकारी कर्मचारियों आदिमें उसकी अधिक खपत है। उन्हींके भरोसे वह चलता है। यही कारण है कि उसकी दशा नहीं सुधरती। उसमें एक विशेष गुण यह है कि किसीसे किसी बातपर लड़ता झगड़ता नहीं। निरीह साधु लोगोंकी भांति जीवन बिताता है। वह हिन्दू है, क्योंकि उसके ऊपर श्रीगणेशकी मूर्त्ति छपती है और समाज सुधारक भी है क्योंकि अब्दुल गफूरके धर्म्मपाल होनेपर प्रसन्न होता है और विधवाविवाहका बड़ा प्रेमी है। साथही साधु भी है, क्योंकि स्वामी विवेकानन्द और उनके मठपर उसकी बड़ी श्रद्धा है।

अलमोड़ा अखबारके पीछे कलकत्तेसे "हिन्दीदीप्तिप्रकाश" नामका एक साप्ताहिक पत्र निकला। उसका मूल्य १॥) वार्षिक था। हमने उसे कभी नहीं देखा न उसके विषयमें कुछ जानते हैं। बाबू राधाकृष्णदासने अपने हिन्दी समाचार पत्रोंके इतिहासमें उसके विषयमें जो कुछ लिखा है उससे विदित होता है कि उसके जन्मदाता स्वर्गीय बाबू कार्तिकप्रसाद थे। उस समय कलकत्तेमें रहनेवाले हिन्दुस्थानी इतना भी न जानते थे कि अखबार किस चिड़ियाका नाम है। केवल दो चार सज्जन इसका

आदर करते थे। बाबू साहब घर-घर कोठी-कोठी घूमकर लोगोंको ग्राहक बनाते थे। कुछ ग्राहक ऐसे थे, जिन्हें समाचार-पत्रोंपर जरा भी विश्वास न था। कितनेही लोग उसे सरकारी पत्र समझते थे। कुछ ग्राहक यह भी कहते थे कि जब पत्र निकले तब आकर सुना जाया करो। सारांश यह कि जो जिस प्रकार ग्राहक होना स्वीकार करता था, उसे वह उसी प्रकार ग्राहक बनाते थे। यह पत्र थोड़ेही दिन चलकर बन्द होगया था। ठीक ऐसी ही दशा भारतमित्रकी हुई थी। "भारतमित्र" यद्यपि उससे पाँच साल पीछे निकला था, तो भी लोगोंकी वैसीही रुचि बनी हुई थी। भारतमित्रके उत्साही चलानेवालोंमें एक दो सज्जन ऐसे थे जो अपने ग्राहकोंको स्वयं अखबार सुना आया करते। महारानी स्वर्णमयी और स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी दीप्तिप्रकाशके प्रधान उत्साह दाताओं-मेंसे थे। उस पुराने अंकुरका यह फल है कि इस समय अच्छे हिन्दी अखबारोंका केन्द्र स्थान कलकत्ता ही बना हुआ है।

विहारबन्धु

बाँकीपुरका "विहारबन्धु" हिन्दीके पुराने जीवित अखबारोंमें दूसरा है। यह सन १८७२ ई० में पण्डित श्री केशवराम भट्ट और साधोरामजी भट्टके उद्योगसे साप्ताहिक निकला। सन १८८७ ई० में हमने उसे साप्ताहिक रूपमें देखा था। उसकी भाषा सदासे उर्दू मिश्रित हिन्दी होती है और अच्छी होती है, गंवारी नहीं होती। तब वह एक शीट रायलके चार वरक पर निकलता था। आजकल उसकी बहुत गिरी हुई दशा है, महीनेमें दो बार निकलता है और फुलिसकेप आकारके चार पन्नों-पर निकलता है। इससे पहले कुछ दिन मासिक निकलता रहा। लेख उसमें अब भी जब तब अच्छे होते हैं। सम्पादककी मौजपर सब कुछ निर्भर है। कभी मौज आती है, अच्छा लिख देते हैं, नहीं तो जैसा तैसा निकले जाता है। इस साल १५ नवम्बर तक उसके २० नम्बर निकले। प्रान्तीय

बातोंपर इसमें बहुत कुछ लिखा-पढ़ी होती है और उसका प्रभाव होता है। यह अखबार अब अपनी आयुके ३३ वर्ष पूरे करेगा। इतने दिनोंमें इसने बहुत कुछ नामवरी प्राप्त की है। इसके प्रेससे हिन्दीकी खासी सेवा हुई है। इसके पुराने सम्पादक पण्डित केशवराम भट्ट हिन्दीके एक पुराने नामी लेखक हैं और बिहार हिन्दी-भाषाके लिये एक बड़ाही उत्साही प्रान्त है। इतने पर भी बिहारबन्धुकी इतनी हीन अवस्था हुई, यह बड़ेही खेदकी बात है। बिहार वाले हिन्दी अखबारोंको खरीदकर पढ़ना नहीं चाहते, यह इलजाम उनपर नहीं लग सकता। क्योंकि वह बहुत हिन्दी-अखबार खरीदते और पढ़ते हैं। इससे यही कहना पड़ता है कि बिहारमें कोई ऐसा उत्साही आदमी नहीं है कि जो वहां एक अखबार चलानेके लिये रुपया दे सके और उसके लिये अच्छे सम्पादक आदि जुटा सके। बिहारवालोंसे हमारी अपील है कि वह लोग बिहार-बन्धुकी उन्नतिकी ओर ध्यान दें। एकबार सुना था कि कुछ सज्जन बिहारबन्धुको अच्छी दशामें लानेकी चेष्टा कर रहे हैं। पर उसके बाद फिर कुछ नहीं सुना। खैर, तब कुछ न हुआ तो अब होना चाहिये। बिहारमें धीरे-धीरे शिक्षाकी उन्नति हो रही है। हिन्दी वहांकी अदालती भाषा है। ऐसे प्रान्तमें एक अच्छा हिन्दी अखबार न होना कैसे दुःखकी बात है। यदि बिहार निवासी बिहारबन्धुको फिरसे ताजा कर लेंगे तो उन्हें अभिमान करनेको जगह रहेगी कि हिन्दीमें उन्हींका अखबार सबसे पुराना है।

सन १८७४ ई० में स्वर्गवासी लाला श्रीनिवासदासजीने दिल्लीसे "सदादर्श" नामका एक पत्र निकला था। वह साप्ताहिक निकलता था उसका मूल्य २॥) था। सन् १८७६ ई० में उक्त पत्र कविवचन सुधामें जा मिला। सन् १८७६ ई० में "काशीसे काशीपत्रिका" निकली थी। इसके उद्योगी थे बाबू हरिश्चन्द्रजी और इसके निकालनेवाले बाबू बालेश्वर प्रसाद

बी० ए० । यह पत्रिका साप्ताहिक थी, वही हरिश्चन्द्री ढङ्ग इसका भी था। कविवचनसुधाकी भाँति इसमें "सत्यहरिश्चन्द्र", "कर्पूरमञ्जरी" आदि कई-एक नाटक बाबू हरिश्चन्द्रजीके बनाये हुए छपे। पर यह ढंग उसका बहुत दिनतक नहीं रहा। आगे चलकर यह स्कूलके बालकोंकी पत्रिका बना दी गई। बालकोंके पढ़ने योग्य विषयही इसमें होने लगे। थोड़े दिन पीछे इसकी भाषा उर्दू होगई, केवल अक्षर नागरी रहे। अन्तमें भाषा एकदम उर्दू और अक्षर एक पृष्ठमें उर्दू और दूसरेमें नागरी होने लगे। उर्दू भी ऐसी कि नागरी अक्षरोंमें उसका पढ़ना बुरा मालूम होता था। बाबू बालेश्वरप्रसादने स्कूलमाष्टरसे डिपुटी कलक्टर होजाने पर उक्त पत्रिका राय बहादुर पण्डित लक्ष्मीशङ्कर मिश्र एम० ए० को देदी। उनके समयमें यह बिलकुल स्कूली पत्रिका बन गई और सरकारी सहायता पर चलने लगी। स्कूलोंहीमें इसकी खपत थी। उसमें अधिकतर सरिश्ते तालीमकी बातें छपती थीं और प्रायः हर नम्बरमें एक गणितका प्रश्न छपता था, जिसको हल करके स्कूलमाष्टर तथा विद्यार्थी लोग भेजते थे। सही उत्तर देनेवालोंके नाम धाम भी इस पत्रिकामें छपते थे। कुछ दिन कोई विषय देकर मुदर्रिसोंसे पद्य लिखवाया जाता था, जिन्हें साल भर पर शायद कुछ इनाम भी मिलता था। सारांश यह कि स्कूलोंहीमें यह पढ़ी जाती थी। स्कूलके बाहरके लोग इसकी बहुत कम परवा करते थे। १८८७ ई० में उसमें पण्डित श्रीधर पाठककी बनाई "ऊजड़गाम" नामकी कविता छपती थी। फिर एक उन्हींका लेख "तिलस्मातीमुंदरी" नामका उक्त पत्रिकामें कुछ दिन छपा था। तब कुछ लोगोंका इसकी ओर ध्यान हुआ था, पीछे वह लेख बन्द होगये। पाठकजीकी मुंदरी भी अपना तिलिस्मात दिखाये बिनाही रह गई। १८६४ ई० तक यह बराबर सरकारी सहायतासे चलती रही। पीछे राजा रामपालसिंहके प्रान्तीय कौंसिल में प्रश्न उठानेपर लखनऊके "अवध-अखबार", अलीगढ़के "इन्सटी-

ट्यूट गजट" और काशीकी इस पत्रिकाकी सरकारी सहायता बन्द हुई। इसके बाद भी कुछ दिन "काशीपत्रिका" चलती रही। पर सरकारी सहायताकाही उसकी कमर में बूता था, मूल्य भी कम न था। ६) असल और १॥=) डाक महसूल था। आमदनी बन्द होजानेसे उसने चिरकालके लिये सन् १८६६ ईस्वीमें काशी लाभ की।

सन १८७६ ईस्वीमेंही अलीगढ़से भी एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकला था, उसका नाम था "भारतबन्धु"। उसे वहांके वकील स्वर्गीय बाबू तोताराम वर्म्माने निकाला था। बाबू साहब हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखक और परमोत्साही भक्त थे। हिन्दीकी उन्नतिके लिये उन्होंने जीवनभर चेष्टा की। एक भाषा-सम्बर्द्धिनी सभा बनाई थी, एक अच्छी लाइब्रेरी भी बनाई थी। पर आपका पत्र कुछ अच्छे ढङ्गसे नहीं लिखा जाता था। समय पर नहीं निकलता था। पिछले दिनों बहुत भद्दे कागज पर बहुत भद्दे और मोटे टाइपमें छपता था। लेख भी सरेसनकेसे होते थे। दो-दो चार-चार सप्ताह गायब रहता था। सन १८६४ ईस्वी तक किसी प्रकार निकलकर अगले वर्ष बन्द हो गया। इसका मूल्य ७॥) रु० वार्षिक था।

दूसरा दौर

अबतक जिन हिन्दी समाचार पत्रोंकी बात कही गई है, वह आरम्भ समयके हैं। हिन्दी भाषामें समाचार पत्रोंकी नींव पड़नेके साथ-साथ उनका जन्म हुआ। अब दूसरे समयके पत्रोंकी बात कही जावेगी। उसकी नींव सन् १८७७ ई० में पड़ी। उक्त वर्षसे हिन्दीमें अच्छे अच्छे पत्रोंका जन्म होना आरम्भ हुआ। उनमेंसे कुछ तो नहीं हैं और कुछ अबतक चलते हैं।

प्रथम समयके पत्र एक तो ठीक समय पर बहुत कम निकलने पाते थे। कुछ न कुछ कारण उनके बिलम्बसे निकलनेके हो जाते थे। दूसरे

उनका बहुत ग्राहक भी नहीं मिले और इसीसे उनमेंसे अधिक बहुत दिन ठहर न सके। दूसरे समयके पत्रोंने यह सब त्रुटियां दूर करनेकी चेष्टा की और कुछ सफलता भी उनको प्राप्त हुई। लाहोरका

मित्र विलास

उनमेंसे पहला पत्र है। उसका जन्म सन १८७७ ई० में लाहोरके "अखबारे आम" आफिसमें हुआ। अखबारे आम उर्दूका पत्र है। उसका ३४ वां वर्ष चलता है। "मित्र-विलास" जीवित होता तो उसका अठाईसवां साल चलता अर्थात् अखबारे आमसे छः साल बाद उसका जन्म हुआ, पर अखबारे आम प्रेसका नाम जन्महीसे मित्र विलास प्रेस है। उसी नामके कारण उक्त प्रेसके हिन्दी पत्रका नाम "मित्र-विलास" पड़ा। उक्त पत्र बहुत ही भद्दे काशमीरी ढङ्गके अक्षरोंमें पत्थरके छापेमें छपता था। शायद उसके मालिक पण्डित मुकुन्दरामजी ही उसकी कापी लिखते थे। पर कई साल पीछे वह टाइपमें छपने लगा था। आकार छोटे साइजके चार पन्ने था। खबरों और लेखोंका ढङ्ग अखबारे आमकासा था। उसके निकलनेसे पहले पञ्जाबमें कोई उल्लेखके योग्य हिन्दी पत्र न था। केवल "ज्ञानप्रदायिनी" नामकी एक उर्दू हिन्दीकी मासिक पत्रिका उसके जन्मसे पहले निकलती थी। जिसे ब्राह्म-समाजी बङ्गाली बाबू नवीनचन्द्र राय निकालते और ब्राह्मधर्म्म सम्बन्धी लेख उसमें होते थे। वह मित्रविलास प्रेसहीमें छपती थी। एक और मासिकपत्र इस पत्रिकाके ढङ्गहीका निकला था। उसका नाम "हिन्दूबान्धव" था। वह भी ब्राह्म-समाजियोंहीने निकाला था। वह भी बन्द हो गया था। इससे कहा जा सकता है कि मित्रविलास ही पञ्जाबमें हिन्दीका सबसे पहला पत्र था। मित्रविलासवालोंका प्रेम स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीसे बहुत था। उनकी कविवचनसुधा पत्रिकाकी देखा देखी ही मित्र-विलासका जन्म हुआ। उसके स्वामी स्वर्गीय पण्डित मुकुन्दरामजीको

हिन्दीसे बहुत कुछ प्रेम था। जब तक वह जीवित रहे, मित्रविलास भी जीवित रहा। पर पत्र बहुत घाटेसे चलता था। इससे मालिकके देहान्तके पश्चात् उसे भी समाप्त होना पड़ा। हिन्दी समाचार रूपी वृक्षोंको उखाड़नेके लिये एक बार एक तूफान आया था। उसीने मित्रविलास जैसे कितने ही अखबारोंको उड़ा दिया। इसका वर्णन कुछ देर पीछे आवेगा। उसी तूफानके झटकोंसे मित्रविलासकी जड़ खोखली हो गई थी। दो तीन साल बादही उसे गिरना पड़ा।

पण्डित मुकुन्दरामजी पुरानी चालके हिन्दू थे। इसीसे मित्रविलास सनातनधर्म्मावलम्बी हिन्दुओंका पक्ष करता रहा। कितनीही वार उसमें अच्छे अच्छे लेख भी निकले हैं। पिछले दिनोंमें उसकी कदर भी खासी थी। पर हिन्दी अखबारोंके तीसरे दौरमें आकर उसकी बेकदरी होगई। उस दौरके अखबारोंकी बराबरी उससे किसी बातमें भी न होसकी, इससे हारना पड़ा। अन्तिम समयमें उसके सम्पादक तो पण्डित मुकुन्दरामके तीसरे पुत्र पण्डित कन्हैयालालजी थे और कन्हैयालालजीके दो बड़े भाई पण्डित गोविन्द सहायजी और गोपीनाथजी लेख आदिमें उनकी सहायता करते थे।

"मित्र-विलास" पञ्जाबमें हिन्दीका बहुत प्रचार न कर सका। कारण यह कि हिन्दीरूपी बीजके लिये पञ्जाबकी भूमि ऊसरही नहीं, एक दम पत्थरकी है। भारतवर्षके दूसरे प्रान्तोंमें हिन्दीकी बहुत कुछ उन्नति होजाने पर भी वहां कुछ नहीं हुई है। तोभी कुछ पुरानी चालके लोगों पर उसका प्रभाव था और कुछ न कुछ हिन्दीकी चर्चा उसके दमसे थी। उसके मिट जानेसे वह भी न रही। जल्द आशा नहीं कि पञ्जाबसे कोई अच्छा तो क्या मित्रविलास जैसा भी पत्र निकले।

इस समय पञ्जाबमें हिन्दी अखबारोंकी तरफसे एकदम सफाई

है। एक आध टूटीफूटी पत्रिका वहाँसे भले ही निकलती हो। बाकी उर्दूही उर्दू का राज्य है।

सन् १८७८ ई० में कलकत्तेसे कई हिन्दी समाचारपत्र निकले। उनमेंसे पहला "भारतमित्र" है। दूसरा "सारसुधानिधि" और तीसरा "उचितवक्ता" था। दोनों अब नहीं हैं। भारतमित्रकी बात हम इसी वर्ष २ जनवरीके पत्रमें "अपनी बात" के शीर्षकसे विस्तार पूर्वक सुना चुके हैं। उसमें भारतमित्रकी २६ सालकी संक्षिप्त जीवनी लिखी गई है। पाठक उसे पढ़कर पसन्द कर चुके हैं। इससे "भारतमित्र" पर इस सिलसिलेमें बहुत कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं है। तथापि कुछ बातें ऐसी हैं जिसको हम आगामी बार लिखेंगे। आजका लेख उचितवक्ता और सारसुधानिधिकी बात कह कर समाप्त करेंगे।

सारसुधानिधि

"भारतमित्र" पत्र पण्डित छोटूलाल मिश्र और पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्रने निकाला। पर पहले वर्षही पण्डित दुर्गाप्रसादजी उससे अलग हो गये। तब उन्होंने "सारसुधानिधि" निकाला, जिसके मालिक और एडीटर पण्डित सदानन्द मिश्र हुए। इसका मूल्य था वार्षिक ५॥।) रुपये। साप्ताहिक पत्र था। रायल एक शीटके आठ पन्नोंपर निकलता था। उसका कागज अच्छा और चिकना होता था। अक्षर और छपाईके हिसाबसे उस समयके पत्रोंमें वह लासानी था। भाषा संस्कृत मिश्रित हिन्दी होती थी। कुछ कठिन होती थी, पर साफ होती थी। लेख बहुत अच्छे और गम्भीर होते थे। राजनीति पर उसमें बहुत कुछ लिखा जाता था। दूसरे विषयों पर भी वह खासी अलोचना करता था। कितनेही लेख उसमें बहुत लम्बे होते थे। खबरोंकी ओर ध्यान कम था। हिन्दी-समाचार पत्रों में वह उस समय खबरों का नहीं, लेखोंका कागज था। बाबू हरिश्चन्द्रजी उससे बड़ा प्यार रखते थे। उदयपुराधीश महाराणा

सज्जनसिंहने उसपर प्रसन्न होकर पारितोषिक देकर उसका आदर बढ़ाया था। बारह साल उक्त पत्र चलकर सन् १८६० ई० में बन्द हुआ। दूसरे दौरके अखबारोंमें वह बड़ा तेजस्वी अखबार था। दुःख यही है कि बहुत ग्राहक उसे न मिले और जो मिले थे 'वह ठीक रीति पर मूल्य नहीं देते थे। लाचार पत्र बन्द करना पड़ा। बन्द होनेके एक डेढ़ साल पहले-से उसके गिरनेके चिन्ह दिखायी देने लगे थे। उस समय पत्रकी ऊपरी सूरतमें तो कुछ फर्क न आया था, पर भीतरी दशा बिगड़ चली थी। सम्पादकका मन अच्छे लेखोंके लिखनेमें नहीं लगता था। इधर-उधरकी नकलसे अधिक पत्र भरा जाता था। जिसका पत्र बन्द करनेकी सूचना देते समय दुःखके साथ सम्पादक महोदयने उल्लेख भी किया था। पत्र बन्द होनेके योग्य न था। इससे सबने उसके बन्द होनेपर बहुत कुछ दुःख प्रकाशित किया। पर केवल दुःख प्रकाशित करनेसे हिन्दी अखबारोंकी दशाका परिवर्त्तन हो नहीं सकता। पत्र बन्दही रहा। पण्डित सदानन्द मिश्रका भी पत्र बन्द होनेके बाद कई एक सालके अन्दरही शरीरान्त हो गया।

उचितवक्ता

पण्डित दुर्गाप्रसादने एक तीसरे हिन्दी समाचार पत्रकी नींव डाली। यह उनका खास अपना पत्र था। इसका नाम था "उचितवक्ता"। यह पत्र निकालकर पण्डित दुर्गाप्रसादजीने दूसरे दौरेके पत्रोंमें एक नई रंगत पैदाकर दी थी। उस समयके नामी लेखक इसमें बराबर लेख लिखा करते थे। स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र भी कभी-कभी लिखा करते थे। फिर पण्डित दुर्गाप्रसादजी स्वयं एक तेज सम्पादक और जबरदस्त लेखक थे। उनके धुआंधार लेख कभी-कभी गजब किया करते थे। दिल्लगीकी फुलझड़ियाँ और छेड़छाड़के पटाखे छोड़नेमें वह किसी उत्सव या पर्व्वका खयाल न रखते थे। भारतजीवनसे उचितवक्ताकी वैसीही छेड़छाड़

चली थी जैसी लखनऊके|उर्दू अखबार अवधपञ्चसे मेरठके तूतियेहिन्दकी। मीठी-मीठी छेड़ करने, व्यङ्ग विद्रूप करने—मुंह चिढ़ानेमें उचित-वक्ता पञ्चका काम करता था। किस किससे उसकी न छिड़ी? भारतमित्रसे चली, सारसुधानिधिसे खटपट हुई। कितने ही अखबारोंसे जब तब चखचख चली। अन्तमें हिन्दोस्थानसे कुछ ऐसी कहा सुनी हुई कि बदमजगी तक नौबत पहुंची। उस समय उचितवक्ता बीचमें एक बार बन्द होकर फिर जारी हुआ था।

इस पत्रमें कई गुण विशेष थे। मूल्य खूब कम था। एक बार रायल एक सीटपर छपता था और केवल एक पैसेमें बेचा जाता था। फिर छपाई-सफाई कागज आदि सब बातें इसकी अच्छी होती थीं। इससे बढ़कर इसके तीखे और चटपटे लेख और चुटकले होते थे, जो किसीको माफ नहीं करते थे। एक बार इसके ग्राहक भी दो डेढ़ हजारके लगभग हो गये थे। यह बात उस समय तक किसी पत्रको हासिल नहीं हुई थी। इतनेपर भी यह पत्र गिरा। उसका कारण था कि इसके सुयोग्य सम्पादक पण्डित दुर्गाप्रसादजी पत्रको छोड़कर काशमीर चले गये थे। पीछेसे पत्र ढीला पड़ गया। अन्तको बन्द करना पड़ा। दूसरी बार सन् १८९४ ई० में जारी किया गया था। बहुत अल्प दिन चला। कारण यह कि जी लगाकर चलायाही नहीं गया। खाली खिलवाड़सी की जाती थी। फल यह हुआ कि फिर बन्द करना पड़ा।

इसके बाद पण्डित दुर्गाप्रसादजीने लिखने पढ़नेसे एकदम हाथ खेंच लिया। कुछ दिन बाद प्रेस भी बेच दिया। इसके बाद उनपर विपदका समय आया! उनके कुटुम्बके कितनेही अच्छे-अच्छे लोगोंका देहान्त हो गया। उनकी सहधर्मिणीका भी वियोग हो गया; कुटुम्ब भरमें केवल तीन भाई बचे हैं। दो साल हुए तीनों भाई दिल्ली चले गये थे। तबसे लौटकर कलकत्ते नहीं आये हैं।

इस देशमें अखबार खास खास आदमियोंके शौकपर चलते हैं। जब उनका शौक कम हो जाता है या वह नहीं रहते तो अखबार भी लीला संवरण कर जाते हैं। विलायत आदिमें ऐसा नहीं है। वहांके अखबार किसी व्यक्ति विशेषके भरोसे नहीं हैं। वरञ्च उनका मजबूत ष्टाफ होता है, पूरा प्रबन्ध होता है, किसी एडीटर या मनेजरके न रहनेसे वह बन्द नहीं हो सकते; भारतवर्षमें अभी इस बातके होनेका दिन दूर है।

भारतमित्र

वर्त्तमान हिन्दी समाचार पत्रोंमें "भारतमित्र" दूसरे दौरका पहला अखबार है। ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा संवत् १६३५ मुताबिक १७ मई सन् १८७८ ई० को भारतमित्रका जन्म हुआ। पण्डित छोटूलाल मिश्र और पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र इसके जन्मदाता और आदि सम्पादक हैं। इसका पहला नम्बर आधे रायल शीटके दो पन्नोंपर छपा था। महीनेमें दो बार निकाला गया था। निवेदनमें आशा की गई थी कि यदि इसके पांच सौ ग्राहक हो जावें तो साप्ताहिक कर दिया जावेगा। संस्कृतमें इसका सिद्धान्त वाक्य था—"सत्यनिष्ठ लोगोंकी जय हो और उनके मनोरथ सिद्ध हों।"

पहले नम्बरके पहले लेखमें भारतमित्रने अपने जारी होनेके उद्देश्य लिखे हैं। उसमें दिखाया है कि जिस देश और जिस समाजमें उसी देश और उसी समाजकी भाषामें जब तक समाचार पत्रोंका प्रचार नहीं होता, तब तक उस देश और समाजकी उन्नति नहीं हो सकती। समाचारपत्र राजा और प्रजाके बीचमें वकील है। दोनोंकी खबर दोनोंको पहुंचा जाता है। जहां सभ्यता है, वहीं स्वाधीन समाचार पत्र हैं। जिन देशोंमें वाणिज्यकी उन्नति है, उन्हींमें स्वाधीन समाचार पत्रोंका आदर है। इसी प्रकारकी और कई बातें कही थीं। इन्हीं कई एक

उद्देश्योंको लेकर भारतमित्रने काम आरम्भ किया। पहले पहल इसका मूल्य सालाना ।।।) और डाक महसूल भी ।।।) था। उस समय अखबारोंका महसूल दो पैसे था।

१० वीं संख्यासे "भारतमित्र" साप्ताहिक हो गया। हर वृहस्पतिको निकलने लगा। मूल्य डाक व्यय सहित ३) नियत हुआ।

२२ नम्बर उसी आकारमें छपे। २३ वां नम्बर डिमाई एक शीटके दो पन्नों पर निकला। पहले वर्ष २६ दिसम्बर तक उसके २४ नम्बर निकले। दूसरा वर्ष जनवरी सन् १८७६ ई० से आरम्भ हुआ। तबसे बराबर जनवरीके आरम्भमें उसका वर्ष बदलता है।

८ मई सन् १८७६ ईस्वीसे "भारतमित्र" अपने घरके छापेखानेमें छपने लगा और आकार दूना हो गया—अर्थात् डबल डिमाईके चार पन्नों पर छपने लगा। उस समय कलकत्तेमें न कोई हिन्दीका प्रेस था, न अखबार। बङ्गाली छापेखानेमें कुछ-कुछ हिन्दीका काम होता था; वहीं हिन्दुस्थानियोंको दौड़ना पड़ता था। बङ्ग-भाषाके लम्बे चौड़े और नामी पत्र उस समय भविष्यके गर्भमें थे। "सोमप्रकाश" और "सहचर" उस समय नामी बङ्गला पत्र थे। उनमें से पहला गुमनाम दशामें जीता है और दूसरा कई सालसे बन्द है। ३ जुलाई सन् १८७६ ईस्वीसे भारतमित्रका आकार और बढ़कर रायल दो शीटके चार पन्ने हो गया। कागज भी अच्छा हो गया। दो-तीन सालके भीतर ही उसकी लेख प्रणाली सुधर गई। उसे विज्ञापन बहुत मिलने लगे और वह अच्छे समाचारपत्रकी गिनतीमें हो गया। विज्ञापन उसे इतने मिलने लगे थे कि एक सज्जनने चिढ़कर कहा—इसका नाम इश्तिहारपत्र होना चाहिये। वास्तवमें किसी हिन्दीपत्रको तब तक इतने विज्ञापन न मिले थे।

२५ अक्टूबर सन् १८८३ ईस्वीसे इसके सम्पादक पं० हरमुकुन्द शास्त्री हुए। उन्होंने कई साल तक इसे अच्छी रीतिसे चलाया। राजनीतिकी

चर्चा उनके समयमें और भी बढ़-चढ़ कर हुई। भारतमित्र अकेला पत्र था और उस समय हिन्दी-लेखक भी गिने-मिने थे। इससे प्रायः उस समयके सब लेखक इस कागजमें लिखते थे। स्वामी दयानन्दजी, बाबू हरिश्चन्द्रजी इसमें लिख चुके हैं। रमाबाई जो इस समय कृस्तानी बन कर पूनामें हिन्दू लड़कियोंको कृस्तान बनाती है, एक समय इस पत्रमें अपने लेख दिया करती थी। इसी प्रकार बहुतसे बङ्गाली सज्जन भी इसके तरफदार थे और इसमें लिखा करते थे, राजनीतिकी चर्चा और हिन्दीके प्रचारकी चेष्टा इस पत्रमें बराबर होती रही है।

इस पत्रके जनवरी सन १८९० ई०के प्रथम अङ्कमें पहले-पहल प्रिन्स अलवर्ट विक्टरकी तसवीर छपी। तबसे इसमें समय-समयपर तसवीर छपने लगीं। आकार और प्रबन्ध बदलनेमें भारतमित्र अपने ढंगका एक ही अखबार है। जन्म लेनेके दिनसे इसका प्रबन्ध बराबर जल्द जल्द बदलता रहा। पर अब दस सालसे अधिक हो गये, एक ही प्रबन्धपर दृढ़ है। इसी प्रकार इसके आकार भी खूब बदले। बहुत छोटे-से आकारसे बढ़ते-बढ़ते उसने खूब बड़ा आकार धारण किया। २५ जून सन १८९३ ई०से वह सुपररायल कागजके बड़े-बड़े दो पन्नोंपर छपने लगा। उसी दशामें १६ नवम्बर सन १८९३ ई०से वर्तमान मालिकके अधिकारमें आ गया। इससे पहले कई एक सज्जनोंकी एक कम्पनीके प्रबन्धसे निकलता था, जिसका नाम "भारतमित्र कम्पनी" था। ७ मई सन १८९६ ई०से इस पत्रका आकार और भी बढ़कर डबल सुपर-रायल हुआ। सन १८९७ ई०के अन्त तक उसी आकारमें छपता रहा।

आकारमें बढ़नेके अतिरिक्त भारतमित्रने दूसरे प्रकारकी उन्नतिकी भी बहुत कुछ चेष्टा की है। सन १८९७ ई०में छोटे साईजपर यह पत्र दैनिक हुआ और साप्ताहिक अपने असली आकारमें अलग छपता रहा। पर प्रबन्ध कुछ अच्छा नहीं किया गया था, इससे दो-चार महीनेके बाद

दैनिक पत्र बन्द कर देना पड़ा। भला हिन्दी-भाषा और देवनागरी अक्षरोंमें दैनिक पत्रोंके पढ़नेवाले कहाँ ? तो भी हिन्दीके तरफदारोंमें कुछ ऐसे सज्जन हैं, जिनकी आँखें दैनिक हिन्दी पत्र देखकर बहुत प्रसन्न होती हैं। जो दो-एक बुरे-भले दैनिक हिन्दी पत्र निकलते हैं, उनको देखकर भी वह प्रसन्न होते हैं। यद्यपि "दैनिक भारतमित्र" निरा बच्चोंका-सा खेल था, तथापि वैसे सज्जनोंको उसके बन्द होनेसे दुःख हुआ। उन्होंने फिरसे दैनिक भारतमित्र निकालनेके लिये लिखा-पढ़ी आरम्भ की। सन् १८९८ ई०से दो शीट रायल आकारके चार पन्नोंपर भारत-मित्र दैनिक हुआ। उसका मूल्य १२) साल हुआ और एक साल तक चलाया गया। उस साल साप्ताहिक पत्र बन्द रहा। दैनिक पत्रोंको जोड़कर ही एक साप्ताहिक बना लिया जाता था। उसी साल मालूम हो गया कि पत्रमें केवल घाटा-ही-घाटा है। इससे दूसरे साल चलाना व्यर्थ समझा गया। हिन्दीमें अभी दैनिक पत्र चलनेका समय नहीं है। हिन्दी क्या बङ्गभाषामें भी किसी दैनिक पत्रको अभी तक सफलता नहीं हुई। बङ्गालियोंके पाँच अंगरेजी अखबार कलकत्तेमें दैनिक हैं। उनमेंसे दो बहुत ही अच्छी दशामें चलते हैं। पर बङ्गलाका एक भी अच्छा दैनिक पत्र नहीं है। रूस, जापानकी लड़ाईके समयसे "हितवादी" छोटे-छोटे पन्नोंपर दैनिक भी हुआ है। पर वह उसी हैसियतका है, जिस हैसियतका दैनिक भारतमित्र था। हमारी समझमें दैनिक और साप्ता-हिक पत्रमें बड़ा भारी फर्क है। जिस प्रबन्धसे साप्ताहिक पत्र चल सकता है, दैनिकके लिये उससे दस गुना प्रबन्ध दरकार होता है। हिन्दी प्रेसोंमें अभी उतनी शक्ति कहाँ है ? दैनिक पत्र हिन्दीमें उसी दिन चल सकेंगे, जब उतना प्रबन्ध होगा। अंगरेजी भाषामें दैनिक पत्र चलना जितना कठिन है, हिन्दी भाषामें उससे और भी अधिक कठिन है, क्योंकि अखबारोंको खबर मिलनेका द्वार अंगरेजी है। अंगरेजीवाले

अंगरेजी-पत्रोंसे आसानीके साथ खबर और लेख नकल कर सकते हैं। तारकी खबरें अंगरेजीकी अंगरेजीमें छाप सकते हैं। अंगरेजीवाले लोग भी आसानीसे मिल सकते है, पर हिन्दीमें तो अंधेर हो जाता है। बम्बई कांग्रेसके प्रेसिडेण्ट काटन साहबकी स्पीच छापते हुए अंगरेजी अखबारोंके सम्पादकोंको इतना ही कष्ट हुआ कि उन्होंने एक छपा हुआ कागज अपने कम्पोजिटरोंके हाथमें दे दिया और उसे कम्पोज करके फेंक दिया। पर भारतमित्रमें उसका हिन्दी तरजमा तब छप सका, जब दो योग्य पुरुषोंने छः-छः घण्टे नित्य बैठकर तीन दिन तक उसका अनुवाद किया। वैसा ही कष्ट और दूसरी स्पीचोंके छापनेमें होता है; फिर भी एक सन्देह बना रहता है कि अनुवाद-कर्त्ता कहीं कुछ भूल तो नहीं गया।

सारांश यह है, अभी हिन्दी अखबारके दैनिक होनेका समय नहीं आया है। दैनिक पत्र पढ़नेवालोंके लिये हिन्दी दैनिकोंमें जब तक ऐसा मसाला न होगा, जो अंगरेजी दैनिकोंमें न मिले, तब तक हिन्दी दैनिकोंको कौन पढ़ेगा? क्योंकि हिन्दी दैनिकोंको भी अधिक वही लोग पढ़ेंगे, जो अंगरेजी दैनिक पत्रोंको पढ़ते हैं। अभी हिन्दीका इतना प्रचार भी नहीं हुआ है कि दैनिक हिन्दी-पत्रोंको बहुत ग्राहक मिल सकें। और साथ ही हिन्दी दैनिक-पत्र अभी तक उत्तम प्रबन्धसे चलाये भी नहीं गये हैं। खैर, भारतमित्र हताश नहीं हुआ है। वह उस समयकी प्रतीक्षा कर रहा है कि दैनिक हिन्दी पत्र भी चल सकेंगे और चलना एक दिन कठिन नहीं रहेगा। क्योंकि गुजराती भाषामें कई उत्तम-उत्तम दैनिक पत्र बम्बईसे निकलते हैं और वह डीलडौलमें, लिखा-पढ़ीमें ठीक अंगरेजी दैनिकोंके मुकाबलेके हैं। हिन्दी बोलनेवालोंकी संख्या ६ करोड़के लगभग और गुजराती बोलनेवालोंकी केवल एक करोड़। पर फर्क यही है कि गुजराती बोलनेवालोंमें पढ़े-लिखे लोगोंकी

संख्या अधिक है और सबसे अधिक शिक्षित पारसी लोग उन्हींमें हैं। हिन्दी बोलनेवाले शिक्षामें सबसे पीछे हैं। जब हिन्दीवालोंमें भी पढ़े-लिखे लोगोंकी संख्या बढ़ेगी, तो हिन्दी अखबारोंकी अवश्य उन्नति होगी। हिन्दीके लिये उन्नति करनेको बड़ा मैदान पड़ा है।

जनवरी सन १८९९ ई०से भारतमित्रका आकार और भी बढ़ गया। उसका वर्त्तमान आकार उस समयसे हुआ। तबसे इसका मूल्य और कम करके केवल दो रुपये साल कर दिया गया है। यद्यपि भारतमित्रका जन्म हिन्दी अखबारोंके दूसरे दौरमें हुआ, पर अब वह तीसरे दौरका अखबार है। क्योंकि उसका वर्त्तमान सम्पादक जो इस लेखका भी लेखक है, तीसरे दौरका आदमी है। तीसरे दौरके अखबार लिखनेवालोंके लिये कई एक ऐसी आसानियाँ हैं जो पहले और दूसरे दौरमें न थीं। अर्थात इस समयके हिन्दी अखबारोंके पढ़नेवाले कई-कई हजार हो गये हैं। दो ही चार वर्षमें यह संख्या दस हजारसे ऊपर पहुंच जावेगी और हिन्दीमें अच्छे दैनिक पत्र निकलनेका समय आ जावेगा। पर बहुत भारी परिश्रमसे ऐसा होगा।

भारतमित्रके सम्बन्धकी बहुत-सी जाननेके योग्य बातें गत २ जनवरी सन १९०४ ई०के अङ्कमें निकल चुकी हैं। इस लेखमें जो कुछ कहा गया है, वह हिन्दी अखबारोंके लेखका सिलसिला कायम रखनके लिये लिखा गया है। दूसरोंकी आलोचना हो सकती है, पर अपनी आलोचना स्वयं करना कठिन है। इससे भारतमित्रकी आलोचना दूसरे सज्जनों पर छोड़ी जाती है। यहां केवल उसके चलानेवालोंका उद्देश्य बता कर लेख समाप्त किया जाता है। इसके आदि नेता कलकत्ता बड़ाबाजारके सारस्वत और खत्री हैं। जो इस कागजको केवल इसलिये निकालते थे कि हिन्दी भाषामें भी एक अच्छा समाचार पत्र रहे। वह लोग सब व्यापारी थे। इसके वर्तमान मालिक

अग्रवाल वैश्य हैं और वह भी एक नामी व्यापारी हैं। कितनेही वर्ष इस पत्रके चलानेमें उन्होंने हजारों रुपये घाटा उठाया है। पर अब यह पत्र अपने खर्चसे चलता है। घाटेकी सीमासे पार हो गया। इसकी चेष्टा यही है, राजनीति, समाजनीति और वाणिज्यनीति आदिकी जितनी बातें इस समयके लोगोंके जाननेके योग्य हैं, उन्हें यथा साध्य सरल हिन्दीमें जनावे और हिन्दीके प्रचारकी चेष्टा करे। इसकी आमदनीमें यदि कुछ बढ़ती हो, इसी पत्रके काममें खर्च हो। इसी पथ पर यह पत्र चलता है। सफलता समयके हाथ है।

दैनिक पत्र

हिन्दीके दो तीन पुराने साप्ताहिक पत्र और हैं, जिनकी बात कहकर हमें आगे बढ़ना चाहिये था, पर उनकी बात हम पीछे कहेंगे। आज हिन्दीके दैनिक पत्रोंका कुछ वर्णन करते हैं। इस समय हिन्दीमें केवल दो दैनिक पत्र हैं, उनमेंसे प्रथम अवध कालाकांकरका—

"हिन्दोस्थान"

है। इसके मालिक श्रीयुक्त राजा रामपालसिंहजी एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार हैं। उन्होंने उक्त पत्रका जन्म इंगलेण्डमें कराया। अगस्त सन् १८८३ ईस्वीसे जुलाई सन १८८५ ईस्वी तक उक्त पत्र इंग्लेण्डमें प्रकाशित होता रहा। राजा रामपालसिंहजी उस समय इंगलेण्डहीमें थे। कुछ दिन तक उनका पत्र अंगरेजी, हिन्दी—दो भाषाओंमें निकला। पीछे अंगरेजी, हिन्दी और उर्दू, तीन भाषाओंमें निकलता रहा। तब उक्त पत्र मासिक था। हिन्दी उर्दूके लेख उसमें स्वयं राजा साहब लिखते थे और अंगरेजी, मि० जार्ज टेम्पल। टेम्पल साहबको राजा साहब पीछे हिन्दुस्थानमें लाये थे और कालाकांकरमें उनसे अंगरेजी हिन्दोस्थानका सम्पादन कराते थे। सन १८८४ ईस्वीके नवम्बर माससे विलायतहीमें

उक्त पत्र साप्ताहिक हुआ। तब खाली अंगरेजीमें निकलता था, उर्दू हिन्दी उठ गई थी। यह दशा जुलाई सन् १८६५ ईस्वी तक रही।

राजा साहबके भारतवर्षमें लौट आने पर पहली नवम्बर सन १८८५ ईस्वीसे उक्त पत्र कालाकांकरसे हिन्दीमें दैनिक निकलने लगा। तबसे अब तक बराबर दैनिक निकलता है। इसका आकार एक शोट रायलके दो पन्ने हैं और मूल्य डाक महसूल सहित १०) साल। जनवरी सन १८६१ ई० से प्रति रविवारको उक्त पत्रका एक नम्बर अंगरेजीमें छपने लगा। आगे प्रति सप्ताह दो नम्बर अंगरेजीमें और चार हिन्दीमें निकलने लगे। अब कई सालसे अंगरेजी हिन्दोस्थान सप्ताहमें तीन बार अलग निकलता है, जिसका मूल्य ६) साल है और हिन्दीका हिन्दोस्थान दैनिक अलग निकलता है।

हिन्दी हिन्दोस्थानके सम्पादक राजा रामपालसिंहजी स्वयं हैं। यह पद उन्होंने अपने ही लिये रखा है। जितने लोग सम्पादक हुए वह सब सहकारी सम्पादक कहलाये। केवल पण्डित मदनमोहन मालवीय ही एक ऐसे सम्पादक हुए हैं, जिनके समयमें राजा साहब अपना नाम सम्पादकोंमें नहीं लिखाते थे। वह समय कोई दो तीन साल तक था। पण्डितजीके अलग होतेही राजा साहबका नाम सम्पादक और मनेजरकी जगह लिखा जाने लगा, जो आज तक बराबर लिखा जाता है। जिन लोगोंने हिन्दोस्थान पत्रके एडीटोरियल ष्टाफमें काम किया है, उनमेंसे हम निम्नलिखित सज्जनोंके नाम जानते हैं— पण्डित अमृतलाल चक्रवर्त्ती, बाबू लाल बहादुर बी० ए०, पण्डित मदन-मोहन मालवीय बी० ए०, बाबू शशिभूषण चटर्जी बी० ए०, बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू गोपालराम गहमरनिवासी, पण्डित गुलाबचन्द चौबे। पण्डित रामलाल मिश्र इसके मनेजर थे, जो बहुत दिन तक मनेजरीका काम करते रहे। आजकल राजा रामपाल-

सिंह हिन्दोस्थान पत्रके मनेजर और एडीटर हैं। पण्डित शीतल प्रसाद उपाध्याय ज्वाइण्ट एडीटर और ठाकुर रामप्रसाद सिंह और बाबू शिवनारायण सिंह असिष्टण्ट एडीटर।

हिन्दोस्थानकी पालिसीमें दो तीन बार फेर बदल हुआ है। एक बातमें वह अपनी पुरानी चाल पर निस्सन्देह बराबर चल रहा है अर्थात् उसके स्वामी राजा रामपालसिंहजी हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरोंके प्रेमी जैसे आदिमें थे, वैसे ही अब भी हैं। किन्तु दूसरी बात है, इस पत्रकी चाल सदा एक नहीं रही। राजनीतिमें इस पत्रकी जो चाल अब है, यदि आदिमें यही होती तो शायद इसका विलायतमें जन्मही न होता। जिस मतलबके लिये कांग्रसवालोंका "इण्डिया" पत्र इस समय लण्डनसे निकलता है, लगभग वही मतलब लण्डनमें हिन्दोस्थानके जारी होनेका था। उस समय इसमें हिन्दुस्थानकी हिमायतके लेख निकलते थे, चाहे वह बहुत जबरदस्त न हों। हिन्दुस्थानमें आकर उक्त पत्र पूर्ण राजनीतिक बना। इधर यह जारी हुआ, उधर कांग्रस जारी हुई। दो तीन सालमें कांग्रसका इससे और इसका कांग्रससे पूरा परिचय हो गया। सन १८६८ ईस्वीसे लेकर चार पांच साल तक यह कांग्रसका बड़ा तरफदार रहा। इसके मालिक राजा रामपालसिंहजी पश्चिमोत्तर प्रदेशमें कांग्रसके एक प्रधान पुरुष समझे जाते थे। कांग्रसको उन्होंने अच्छा चन्दा दिया था और उसके वार्षिकोत्सवोंमें जाया करते थे। उन दिनों हिन्दी समाचार पत्रोंमें कांग्रसका प्रधान तरफदार यही पत्र था, इसीका जोर भी उन दिनों अधिक था। सरकारी अफसरोंकी बेजा कारवाइयोंकी इसमें खूब तीव्र आलोचना होती थी। राजनीति सम्बन्धी गद्यहीमें नहीं पद्यमें भी इसमें अच्छे-अच्छे लेख निकलते थे। उनमेंसे पण्डित प्रताप नारायण मिश्रके पद्य लेख बहुतही सुन्दर हुए थे। सन् १८८६ ईस्वीमें मि०

ब्राडला बम्बईकी पांचवीं कांग्रसमें आये थे। पण्डित प्रतापनारायणजीने पद्यमें ब्राडलाका एक स्वागत लिखा था, जिसमें इस देशकी दशाकी तसवीर खेंच दी थी। विलायतमें मि० फ्रेडरिक पिनकाटने उस कविताको इतना पसन्द किया था कि उसका अङ्गरेजी अनुवाद करके इण्डिया पत्रमें छपवाया था। सारांश यह कि धनसे, वक्तृतासे और लेखोंसे राजा रामपालसिंह कांग्रसकी तरफदारी करते थे। अब कई वर्षसे उनकी वह पालिसी बदल गई है। अब वह कांग्रसके तरफदार नहीं हैं। अब उसकी बात तक हिन्दोस्थानमें नहीं उठती है। राजनीतिक चर्चा भी अब प्रायः नहीं होती। राजनीति सम्बन्धी आन्दोलनमें अब हिन्दोस्थान अपने पत्रोंका साथ नहीं देता। कभी-कभी देता भी है तो प्रतिकूल, यहां तक कि अब कभी उसके लेखोंका ढङ्ग इस देशके बाज एंग्लो इण्डियन अखबारोंसे मिल जाता है।

राजनीतिकी भांति समाजनीति तथा और कई बातोंमें हिन्दोस्थानकी राय इस देशवालोंकी रायसे नहीं मिलती। वह सुधारक पत्र है और सुधार ठीक अङ्गरेजी ढङ्ग पर चाहता है। अङ्गरेजी चाल उसे बहुतही पसन्द है, अंगरेजी अनुकरण बहुत पसन्द है। उसके सम्पादक और मालिक राजा साहब अङ्गरेजी पोशाक पहनते हैं। अङ्गरेजी ढङ्गपर रहते हैं और अङ्गरेजीही ढङ्गसे भोजन करते हैं। मांस आदिके बड़े तरफदार हैं। यहां तक कि कुत्ते, श्रीमानको अंगरेजीही पसन्द हैं। क्योंकि हिन्दुस्थानी कुत्तोंको आपके पत्रमें नामर्द और लेडी कहकर एकाध बार गाली दी गई है।

कालाकांकर एक छोटासा गांव है, इतना छोटा कि उसकी जनसंख्या एक हजारके लगभग है। परन्तु रमणीय और सुखप्रद इतना है कि उसका वर्णन हमें एक अलग लेखमें करना होगा। तथापि एक दैनिक पत्रके योग्य वह गांव किसी प्रकार नहीं हैं। यद्यपि

राजा साहबने वहां तार लगवा दिया है और और भी बहुतसे प्रबन्ध किये हैं, तो भी उस बस्तीको क्या करें। पढ़े लिखे वहां राजा साहबके कर्म्मचारियोंके सिवा दस पांच आदमी भी कठिनाईसे मिलेंगे। वहांके निवासियोंमें धनी और ऊंची जातिके लोग बहुतही कम हैं। बाहरके दो चार महाजन दुकानदार हैं। उन्हींको जो चाहो समझ लो। ऐसे स्थानसे दैनिक-पत्र क्या साप्ताहिक-पत्र भी चलना कठिन है। किन्तु राजा साहबको कालाकांकर बहुत प्यारा है, इसीसे बहुत रुपये खर्च करके जोरसे कागजको चलाते हैं। इसी कारण दैनिक पत्रोंमें जो बातें होना चाहिये, वह इस कागजमें कम होती हैं। इसका फल यही होता है कि पत्रका सारा बोझ राजा साहब पर है। किसी अच्छे शहरसे यह निकलता तो अपना बहुतसा बोझ आप सम्हाल लेनेके योग्य हो जाता और जो बातें दैनिक समाचार-पत्रोंमें होनी चाहियें, वह होतीं। हम यह भली भांति जानते हैं कि इन बातोंमें किसी प्रकारका हेरफेर नहीं हो सकता है। तथापि जब अखबारोंकी आलोचना करने बैठे हैं, तो हमें अपनी राय जो कुछ हो प्रकाश कर डालना चाहिये। विशेषकर जब हमारा इस पत्रसे दो वर्ष तक बहुत गहरा सम्बन्ध रह चुका है। ऐसी दशामें हमें उक्त पत्रके सम्बन्धमें अपने मनका कोई भाव छिपा नहीं रखना चाहिये।

पहले कहा जाचुका है कि कालाकांकरके दैनिक हिन्दीपत्र "हिन्दोस्थान"से कोई दो वर्ष हमारा भी सम्बन्ध था। उसका कारण हुई थी, पण्डित श्रीमदनमोहन मालवीयजीकी कृपा। सन् १८८९ ई० के आरम्भमें पण्डित दीनदयालुजी शर्माके उद्योगसे श्रीभारतधर्म्म महा-मण्डलका दूसरा महाधिवेशन श्रीवृन्दाबनधाममें हुआ था। उस समय शीतकाल था। मालवीयजी महोदय उन दिनों "हिन्दोस्थान" के सम्पादक थे। आप भी महामन्डलमें पधारे थे। हमारा सम्बन्ध उस

समय लाहोरके पुराने उर्दू पत्र "कोहेनूर" से था। लाहोरसे हम भी मण्डलमें शरीक हुए थे। मालवीयजीसे साक्षात होने पर उन्होंने आज्ञा की कि आपको "हिन्दोस्थान" पत्रमें हमारे साथ काम करना चाहिये। कानपुरसे पण्डित प्रतापनारायणजी मिश्रको भी हम बुलाते हैं। उनसे विनय की गई कि यहां हिन्दीही नहीं आती, आपके साथ काम कैसे करेंगे ? उन्होंने कहा कुछ परवा नहीं, आप शामिल तो हूजिये।

अन्तको उनका अनुरोध पालन करना पड़ा। उसी वर्षके अन्तिम-भागमें उक्त पत्रके स्टाफमें शामिल हुए। पण्डित प्रतापनारायणजी कुछ पहले आचुके थे। उस समय वर्षाकालका आरम्भ था।

"हिन्दोस्थान" के स्टाफमें उस समय अच्छे अच्छे लोग एकत्र होगये थे। वैसा जमाव आजतक किसी हिन्दीपत्रके स्टाफमें नहीं हुआ। मालवीयजी सम्पादक थे। बाबू शशिभूषण चटर्जी बी० ए०, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त तथा दो तीन और भी लोग उक्त पत्रकी सम्पादकमण्डलीमें शामिल थे। मालवीयजीके जीमें पत्रकी उन्नतिके विषयमें बड़े बड़े ऊंचे विचार थे। पर कुछ दिन पीछे वह वकालतकी परीक्षाकी तय्यारी करने लगे। जल्दही वह "हिन्दोस्थान"से सम्बन्ध छोड़ने पर विवश हुए। उनके अलग होने पर बाबू शशिभूषणजी पत्रके सम्पादनमें अधिक परिश्रम करने लगे। कोई एक साल तक उनका साथ रहा। पीछे वह भी अलग हो गये। कुछ दिन पीछे पण्डित प्रतापनारायण मिश्र भी अलग होगये। तब पण्डित शीतलप्रसादजी बुलाये गये थे। दो सालसे कमके भीतर ही यह सब उलटा-पलटी होगई। अन्तमें पण्डित शीतलप्रसादजीको छोड़कर हमें भी अलग होना पड़ा। उक्त पण्डितजी अब तक बने हुए हैं। सच तो यह है कि उनकी भांति "हिन्दोस्थान" आफिसमें जमकर रहनेका सौभाग्य और किसीको प्राप्त नहीं हुआ। कालाकांकर रहनेके योग्य स्थान है। जो लोग वहां रहते हैं

और वहांके रहनेके आनन्दको समझ सकते हैं, वह सचमुच भाग्यवान हैं।

कालाकांकर एक बहुत ही छोटासा गांव है। उसकी जनसंख्या एक हजारसे भी कम है। प्रयागसे १५ कोस पश्चिमकी तरफ गङ्गा-तटपर है। ईष्टइण्डियन रेलवेके सिराथू स्टेशनसे वह कोई पांच कोस है। मार्गमें कच्ची सड़क है, उसपर इक्का चल सकता है। उक्त स्थान गङ्गाजीके इस पार है, इससे जाते और आते नाव द्वारा गंगासे पार होना पड़ता है। गङ्गा इस गांवको प्रायः तीन तरफसे घेरे हुए है। गांवके चारों ओर कई कोसका बन है। उसमें ढाक और कई प्रकारके जंगली पेड़ ही अधिक हैं, तथापि बड़ा रमणीय है। गांवके आसपास एक नहर है जो बनमेंसे होकर निकली है। उसके किनारे खूब ऊंचे हैं। उनपर बेर आदिके जंगली पेड़ खड़े हुए हैं। बरसातमें जब गङ्गाजीका जल खूब बढ़ता है तो यह नहर भर जाती है। उस समय कालाकांकरकी शोभा देखनेके योग्य होती है। वह गंगा और नहरके बीचमें एक छोटासा टापू बन जाता है। बनमें रास्तोंपर इस नहरके कई एक छोटे-छोटे पुल हैं। एक छोटासा नाला इस नहरमेंसे निकलकर कालाकांकरसे बाहर कई मील जंगलमें बहा चला जाता है। नहर भर जानेपर दो दिन तक यह नाला खूब जोरसे बहता है। नहरका पानी पाँच चार दिनहीमें सूख जाता है। क्योंकि कालेकांकरकी भूमि गंगातटकी ओर एक दम रेतली और बाकी भूड मटियाली है। पानीको गिरतेही पी जाती है। कितनेही जोरकी वर्षा क्यों न हो, वहाँ कीचड़ नहीं होता। इधर वर्षा थमी और उधर भूमिने सब जल सोखा। इसीसे वहाँ वर्षा-कालमें भी मच्छर आदि बहुत कम होते हैं। वर्षा वहाँ बहुतही सुखकर प्रतीत होती है। मट्टी नर्म होनेके कारण कालाकांकरके आसपासकी भूमिमें नाले भी बहुत हैं। यह बरसाती पानीसे कटकर बन जाते हैं।

वर्षा ऋतुमें इनमें थोड़ा-थोड़ा जल बहता रहता है और जल सूख जानेके बाद उनमें जंगली झाड़ियां और छोटे-छोटे पेड़ खूब फैल जाते हैं।

गांवमें सब घर कच्चे मट्टीके हैं। खपरैलोंसे छाये हुए हैं। पक्की एक श्रीमान राजा रामपालसिंह महोदयकी बारहदरी है। हिन्दोस्थान प्रेसका भी कुछ अंश पक्का है, जो गांवके दक्षिणी द्वारके सहारे बना हुआ है। इसी प्रकार पुरानी गढ़ीका कुछ अंश पक्का है, जिसे वहांका राजभवन या किला कह सकते हैं। इन दो तीन मकानोंके सिवा सब मकान कच्चे हैं। वर्षा ऋतु और शीतकालमें कालाकांकरका रहना बहुत ही भला जान पड़ता है। जेठकी धूपके समय अवश्य वहां दिनमें जी घबराता है और आंधी चलनेसे रेत उड़-उड़कर मजा किरकिरा करता रहता है। फिर जब तेज आंधियां चलती हैं, तो खपरैलें हिल हिलकर बहुतसे मकानोंके भीतर भी रेत गिरने लगता है। तो भी गर्मीकी रातें अच्छी होती हैं और सवेरे उठकर बनकी हवा और गंगाजीका स्नान तो उन दिनों बड़ा सुखकारी होता है।

कालेकांकरका जलवायु बड़ाही स्वास्थ्यप्रद है। अन्न वहां इतना पचता है कि ड्योढ़ी दूनी खुराक हो जाती है। चीजें सब अच्छी और सस्ती मिलती हैं। अन्न अच्छा मिलता है। घी शुद्ध साफ मिलता है। दूध अच्छा मिलता है। एक आनेका एक सेर दूध हमारे जमानेमें मिलता था। उस समय वहां ४५ सेरका एक मन था। इससे दूध सेरकी जगह कोई सवा सेर मिलता था। बाजारके दिन कई प्रकारके शाक-पात आते थे, जो सस्तेही मिलते थे। आमोंका तो उक्त स्थान जङ्गल है। उसके आसपासके गांवोंमें कोसों तक आमोंके बाग हैं। सन् १८६० ई० में इतने आम हुए थे कि दो पैसे सैकड़े तक बिकते थे। आमोंकी गिनती भी वहां विचित्र देखनेमें आई थी, सौकी जगह एकसौ सताईस गिने जाते

थे। और भी कितनीही तरहके फल वहाँ मिलते हैं। यह सब बहुत बढ़िया नहीं होते, तो भी खासे होते हैं।

गंगास्नानका जैसा सुख वहाँ है, वैसा अन्यत्र कम देखनेमें आया। अकेली गंगा है, वहां तक उसमें यमुना भी नहीं मिली है। जल खूब स्वच्छ है। पक्के घाटका नाम नहीं। कच्चे किनारों पर जहाँ चाहो स्नान करो। एक जगह घाटियेने एक तख्तोंका घाट भी बना रखा है। उसीको वहाँका प्रधान घाट समझना चाहिये। स्नान-संध्याका वहां खूबही आराम है। वहांका जल खूब मीठा और पाचक है। पर गंगा-जल पीनेका वहाँ इतना अभ्यास हो जाता है कि उसके सामने कोई जल अच्छा नहीं मालूम होता। दो सालमें दो एक बारही शायद कूप जल पीनेकी नौबत आई हो। वह भी गाँवमें नहीं, बनमें।

उस समय "हिन्दोस्थान" पत्रका कोई आफिस न था। प्रेसमें छापनेके सिवा और किसी कामके लिये स्थान न था। वहां कभी-कभी प्रूफ देखनेके लिये जाना पड़ता था। एडिटर लोग अपने रहनेके स्थानों-हीमें अलग-अलग लिखते रहते थे। पण्डित मदनमोहनजी अपनी कोठी-के आगे एक उसारेमें बैठकर लिखते थे। हम लोग भी कभी-कभी वहीं पहुंच जाते थे। हम लोग अपने-अपने ठिकानेपर लिखते थे। मदन-मोहनजीके काम छोड़ देनेपर शशि बाबू, पण्डित प्रतापनारायण और हम बहुधा हमारेही स्थानपर एकत्र होकर लिखते थे। यह मेल बहुत दिन तक रहा। आरम्भमें कुछ दिन राजा साहबकी बारहदरीके ऊपरके मकानमें लिखनेका स्थान बनाया गया था। बड़ा अच्छा समय था। बड़े अच्छे दिन थे। बड़ी स्वाधीनता और बड़ी बेफिकरी थी। स्वप्नकी भाँति वह पन्द्रह-सोलह सालका बीता हुआ जमाना याद आता है। वहां न मीलों लम्बी सड़कें थीं, न आकाशसे बातें करनेवाली ऊंची-ऊंची इमा-रतें थीं। न घोड़ा-गाड़ियों और ट्रामगाड़ियोंकी भड़भड़ थी, न मार्ग

चलते भीड़में रुकनेका झञ्झट और गाड़ियोंकी फेटमें आकर दब मरनेका भय था। न वहाँ कदम-कदम पर मन लुभावनेवाली या तबीयत बिगाड़नेवाली चीजें थीं। न रोशनी थी। न कल-कारखाने और चिमनियोंका दम घोटनेवाला कड़वा धुआं था, न सड़कों पर कूड़े-कचरेके ढेर थे और न गलियाँ बदबूसे सड़ती थीं। राजा साहबकी आलमारीके सिवा वहाँ शराबकी कहीं एक बोतल तक न दिखाई देती थी। बाजारी स्त्रियों और बदचलन पुरुषोंसे वह भूमि एकदम पाक थी। लम्बी चौड़ी वासनाओंका निवास उस स्थानमें नहीं। आकाश पातालको एक करनेवाले विचारोंका प्रवेश वहाँ नहीं होता। बड़ा ही शान्तिमय एकान्त स्थान है। सीधी सादी रीतिसे जीवन बितानेके लिये उससे अच्छा और कोई स्थान नहीं हो सकता। कभी वह गंगाके किनारे-किनारे पण्डित प्रतापनारायण जी और दूसरे सज्जनोंके साथ धीरे-धीरे टहलना, कभी मालवीयजीके साथ चाँदनीमें रेती पर फिरना और कितनीही तरहकी अच्छी बातें करना, स्मरण आता है। कालाकांकर भूलनेकी वस्तु नहीं है। वह छोटासा रम्य स्थान सचमुच स्वर्गका टुकड़ा था। उसमें रहनेका समय भूस्वर्गमें रहनेके समयकी भांति था। चिन्ता बहुत कम थी, वासनाएँ भी इतनी न थीं, विचार भी सीमाबद्ध स्थानमें विचरण करता था। पर हाय! उस समय उस स्थानका हृदयमें इतना आदर न था। स्वर्गमें रहकर कोई स्वर्गका आदर ठीक नहीं कर सकता है। कालाकांकरमें रहकर कालाकांकरकी ठीक कदर आदमी नहीं कर सकता। आज कलकत्तेमें वह सब बातें एक-एक करके याद आती हैं। पर क्या वह सब फिर मिल सकती हैं? जब कुछ मिले तो वह बेफिकरी कहाँ, वह उमर कहाँ? एक स्वप्न था कि जो जागते जागते देखा!—

"अफसानये शबाब खुदारा न पूछिये।
देखा है जागतेमें जिसे यह वह ख्वाब था"

"हिन्दोस्थान" की कई एक बातें ध्यान देने और अनुकरण करनेके योग्य हैं। वह जब जो बात लिखता है, खूब सरल स्पष्ट रीति पर लिखता है। उसकी बहुत ही सीधी चाल है। व्यङ्ग, कटूक्ति, कटाक्ष मानो वह जानता ही नहीं। आपसकी छेड़-छाड़से भी वह खूब बचता है। यदि कभी किसीसे छिड़ भी जाती है, तो लिखनेमें सभ्यता और गम्भीरताका बड़ा ध्यान रखता है। किसी पत्रसे यदि कोई खबर या लेख उद्घृत करता है तो उसका साफ नाम जाहिर करनेमें कभी कंजूसी नहीं करता। उसके नामको समूचा हजम करने अथवा उसके ईशारे बनाकर लिखनेकी उसे आदत नहीं। हिन्दीके समस्त अखबारोंको ध्यानसे देख जाओ, यह गुण पूर्ण रीतिसे केवल हिन्दोस्थानहीमें मिलेगा।

पर दो एक बातोंके लिये हिन्दोस्थानकी निन्दा भी होती है और हंसी भी होती है। एक तो उसने लिपिमें अपनी ओरसे जो तराश-खराश की है, वह ठीक हुई नहीं। उसके म्यनेजर, यडिटर, यसिष्टण्ट, व्यस आदि शब्दोंको जो नहीं जानते, वह ठीक पढ़ नहीं सकते। और जो जानते हैं, वह हंसते हैं। इस प्रकारकी तराश-खराशकी नीव सन् १८६१ ईस्वीसे पड़ी है। हम जिस समय "हिन्दोस्थान" से सम्बन्ध छोड़नेको थे, उन दिनों राजा रामपालसिंह महोदयने हिन्दीवालोंको अंगरेजी सिखानेके लिये "स्यल्फ टीचिङ्ग बुक" के नामसे एक पोथी अंगरेजीमें तय्यार करना आरंभ की थी। उसीके प्रसादसे इस विचित्र लिपिकी नीव हिन्दोस्थान-पत्रमें पड़ी। राजा साहबने अपनी समझमें यह चाल भलेके लिये चलाई है, जिससे अंगरेजी शब्द हिन्दी लिपिमें शुद्ध लिखे जावें और उनका शुद्ध उच्चारण हो, पर इससे यह मतलब तो हासिल नहीं होता, उलटी लिपिकी खराबी होती है। इसके लिये हिन्दोस्थान पर हिन्दी अखबारोंने कई बार कटाक्ष किये हैं और उसकी दिल्लगी उड़ाई है। पर उसने अपनी चुपसे सबको परास्त कर दिया। खैर; आज हम उसूलके साथ दो-चार

बातें लिखते हैं, राजा साहबको उन पर ध्यान देकर अपने लिखनेकी चालको सुधारना चाहिये। हम देखते हैं कि अंगरेजी A और E दोनोंके लिये हिन्दोस्थानमें 'य' लिखा आता है। Manager में दो बार A है। इसीसे हिन्दोस्थानमें दो बार य लगाकर 'म्यन्यजर' लिखा जाता है। Editor में E है, वह 'यडिटर' लिखा जाता है। Assistant में दो A हैं, वह 'यसिसृटयण्ट' लिखा जाता है। Self में E है, वह 'स्यलफ' लिखा जाता है। क्या राजासाहब कृपा करके बता सकते हैं कि E और A का वह एकहीसा उच्चारण किस कायदेसे करते हैं। और राजा साहबके लिखनेकी रीति मान लेनेसे लोग उक्त दोनों अक्षरोंके उच्चारणका भेद कैसे जान सकेंगे? 'य' वर्णमालामें अलग अक्षर है और उसका अलग उच्चारण है। जब इस अक्षरको राजा साहब अंगरेजीके लिये छीन लेंगे तो जहां इसका असली काम पड़ता है, वहां क्या किया जायगा। फिर A और E स्वर हैं और य व्यञ्जन। संस्कृतके स्वरही अंगरेजी स्वरोंके लिये बर्तावमें लाना उचित है। व्यञ्जनको नाहक स्वर बना कर व्यतिक्रम क्यों किया जाता है? ऐसे और स्वरोंकी जगह भी राजा साहब व्यञ्जनसे काम लेने लगे हैं। अर्थात् O की जगह "व" लिखने लगे हैं। जैसे proprietor को 'प्रवप्यटर'। हम समझ गये हैं कि राजा साहबको तीन-चार स्वरोंकी जरूरत पड़ी जिनमें 'ए' 'ऐ' और 'ओ' की जरूरतने उनको यह सब उलट पलट करनेका ध्यान दिलाया है। पर यह जरूरत समझदार लोगोंने भली भांति मिटा दी है। अंगरेजी और दूसरी भाषाओंसे बहुतसे शब्द ऐसे आ मिले हैं, जिनसे उक्त तीनों स्वरोंका पूरी तरह उच्चारण नहीं होता, आधा होता है। Self और Editor में 'ए' का आधा उच्चारण होता है और Manager शब्दमें 'ऐ' का आधा उच्चारण। इसी प्रकार और बाकीका भी समझ लेना चाहिये।

यदि हिन्दोस्थानका यह लिपि-वैचित्र्य अंगरेजी शब्दों तकही सीमा-

बद्ध रहता तो भी एक प्रकार कुशल थी। पर हम देखते हैं, यह हिन्दोस्थानके हिन्दी शब्दोंमें भी संक्रामक हुआ जाता है। बुलाया शब्दको राजा साहब पूर्वी ढंगसे 'बोलाया' बोलते हैं। पर इस बोलायामें 'ओ' का उच्चारण पूरा नहीं होता आधा होता है। इसीसे हिन्दोस्थान पत्रमें बुलाया लिखा जाता है। और इसी प्रकार 'ए' का आधा उच्चारण करनेमें 'में' की जगह 'म्य' लिखा जाता है। शुद्धताके विचारसे इस प्रकार व्यर्थ कष्ट पाना ठीक नहीं है। यदि राजा साहबको स्वरोंके अधिक और कम उच्चारण करनेका इतना खयाल हो तो वह उस चाल पर चल सकते हैं, जिस पर ग्रियर्सन साहब और महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी "पदुमावति" के एशियाटिक सोसाइटीवाले संस्करणमें चले हैं। उस पुस्तकमें स्वरोंके पूरा उच्चारण करनेकी तो वही शकलें रखी हैं, जो हैं और कम उच्चारण करनेके लिये उनकी शकलमें जरा भेद कर दिया है, जिससे असली शकल भी बनी रहती है और पूरा भेद भी जान पड़ता है। समयकी जरूरतने 'ए-ऐ-ओ-औ' का एक-एक ह्रस्व रूप और खड़ा कर दिया। अच्छा ही है।

इसी प्रकार इस पत्रके नाम पर भी बहुत तकरार है। कितनेही व्याकरणसे खेंच तान कर अर्थ निकालनेवालोंसे पूछा कोई भी हिन्दोस्थान नामको व्याकरणसे शुद्ध सिद्ध नहीं कर सका। जब ऐसा है तो क्यों एक गलत नामके रखनेकी चेष्टा की जाती है। हम देखते हैं कि उक्त पत्रमें जहाँ-जहाँ हिन्दुस्थान शब्द आता है वहां-वहां उस पत्रके नामपर हिन्दोस्थान बना लिया जाता है। हर आदमी कोई एक हठःकर सकता है और उस हठको निबाह भी सकता है, पर पढ़े-लिखे और समझदार आदमियोंका काम है कि निकम्मी हठको पकड़ कर न बैठें। भाषा और लिपि दोनों ऐसी वस्तु हैं कि इनमें जहांतक अधिक लोगोंकी एकता रह सके, उतनाही अच्छा है। हिन्दोस्थानके चलानेवालोंको यह भी देख लेना

चाहिये कि जो लिपि वह चलाते हैं, वह १४ वर्षसे उनके भीतर ही है और किसीने उसकी नकल नहीं की। यदि यह चाल अच्छी होती तो सर्वत्र फैल जाती।

हिन्दी अखबारोंमें हिन्दोस्थान ही एक ऐसा पत्र है, जो बहुत दिनसे दैनिक चल रहा है। अब तक वही हिन्दीका एक मात्र दैनिक पत्र कहलाता था। अब एक और भी हुआ है। तथापि वह पहला है, पुराना और अच्छे ठिकानेसे निकलता है। इससे बार-बार जीमें यही इच्छा होती है कि वह कुछ और उन्नत ढङ्गसे चलता तो अच्छा होता। दैनिक पत्रोंके लिये जो सामान दरकार है, वह उसमें नहीं है। तारकी खबरोंको वह सिलसिलेके साथ नहीं छापता। उसके ऐसे संवाददाता भी नहीं हैं, जो देश विदेशसे उसे जरूरी खबरें भेजें। न वह ऐसे स्थानसे निकलता, जहां कुछ स्थानीय खबरें हों। इन सब अभावोंको यदि वह इच्छा करे तो पूरा कर सकता है। इसके सिवा सबसे अधिक सामयिक बातोंका समावेश और उन पर आलोचना है, इसका उसमें एक दम अभाव है। दैनिक होने पर भी उसके पाठक यह नहीं जान सकते कि रूस जापानकी लड़ाईका क्या हाल है। विलायतमें क्या हो रहा है। भारतवर्षमें क्या हो रहा है। बड़े लाट क्या कहते हैं और क्या करते हैं, इत्यादि। हम यह नहीं कहते कि वह अपनी पालिसी पलट दे या अपनी राय बदल दे। चाहे उसकी कुछही राय हो और कैसीही हो, पर उसमें वह मसाला तो होना चाहिये जो एक दैनिक पत्रको दरकार है। यदि वह चेष्टा करे तो यह दिखा सकता है कि एक हिन्दी दैनिक पत्र कहाँ तक अच्छा हो सकता है और देशमें उसका कहां तक आदर हो सकता है।

राजस्थान समाचार

अभी कई एक पुराने हिन्दी अखबारोंकी बात कहना है। राजस्थान समाचारकी बात उनसे पीछे कहना ठीक होता, पर दैनिक अखबारोंकी

बात हमने आरम्भ कर दी थी और "राजस्थान समाचार" भी इस समय दैनिक है। इससे उसकी बात साथही कह देना उचित समझा गया।

राजस्थान समाचारका जन्म अजमेरमें सन १८८६ ईस्वीमें हुआ। वह अपनी उमरके १६ साल पूरे कर चुका है। अभी हालहीमें उसका सतरहवाँ वर्ष आरम्भ हुआ है। वह साप्ताहिक निकला था। दो रायल शीट—१६ पृष्ठ पर निकलता था। वार्षिक मूल्य ३॥) था। इस पत्रको समर्थदानजीने निकाला, जो जातिके चारण हैं। उस समय पत्रपर आपका नाम "मनीषी समर्थदान" छपता था। समर्थदानजी स्वामी दयानन्दजीके बड़े भक्त थे। शायद मुंशी समर्थदान कहलाते थे। दयानन्दजीने तो उनको मनीषी बनाया था। आरम्भमें उक्त पत्रकी आर्य्यसमाजकी ओर बड़ी भारी झोंक थी। आर्य्यसमाजका वह बड़ा पक्ष करता था। इसीसे लोग उसे आर्य्यसमाजका पत्र समझते थे। सन १८९४ ईस्वीमें बाबू राधाकृष्णदासने हिन्दी भाषाके सामयिक पत्रोंका इतिहास प्रकाशित किया था, उसमें इस पत्रको आर्य्यसमाजका पत्र कहा है।

हमने इस पत्रकी दूसरी संख्या सबसे पहले हाथरसके रेलवे स्टेशन पर देखी थी। यह श्रीभारतधर्म्म महामण्डलके श्रीबृन्दावनवाले महोत्सवके समयकी बात है। इसका कागज कुछ अच्छा और चिकना था। टाइप और छपाई साफ थी। पत्र खासा था। अजमेर जैसी जगहसे हिन्दीका एक वैसा पत्र निकल जाना किसी प्रकार बुरा नहीं कहा जा सकता था। उसमें कुछ लेख आर्य्यसमाजी ढंगके होते थे, कुछ राजनीति आदिके सम्बन्धके, कुछ रजवाड़ोंकी चिट्ठी-पत्रियां और कुछ इधर उधरकी खबरें। अजमेरका अखबार होनेपर भी अजमेरकी खबरें उसमें कुछ भी न होती थीं। अजमेरमें कितनीही वार कितनीही घटनाएं हो जाती थीं, राजस्थान समाचारमें उनका चार पंक्तियोंमें भी उल्लेख नहीं होता था। जयपुरके स्वर्गीय दीवान कान्तिचन्द्र मुकर्जीने अजमेरहीके एक

हिन्दी अखबार पर मानहानिकी नालिश की थी। हिन्दुस्थान भरके अखबारोंमें उसकी चर्चा थी, पर राजस्थान समाचारमें कभी इतना भी नहीं लिखा गया कि अजमेरमें कोई मुकद्दमा चलता है, कई साल तक उक्त पत्र इसी प्रकारकी कम हिम्मतीमें पड़ा रहा। कितनी ही बार उसके लेख इस प्रकारके होते थे, जिनसे यही समझमें आता था कि सम्पादक महाशय इच्छासे नहीं लिखते। दूसरोंके अनुरोधसे लिखते हैं। बीच-बीचमें ऐसा भी होता था, सम्पादकका लेख कुछ नहीं, दूसरे अखबारोंके लेख सम्पादकीय स्तम्भमें नकल हुए चले जा रहे हैं। जिस अखबारसे नकल होते हैं, उसका हवाला दिया दिया, न दिया न दिया।

कई साल पहले उक्त पत्रमें चित्र छपने लगे थे। चित्र अच्छे होते थे, छपते अच्छे नहीं थे। अखबारके नामके नीचे "सचित्र" शब्द भी लिखा जाने लगा था। पर कुछ दिन बाद चित्रोंका सिलसिला ठीक नहीं रह सका। तब जिस पत्रमें कोई चित्र छपता, उसपर सचित्र शब्द लिखा जाने लगा और जिसमें चित्र न होता, उसमें कुछ नहीं। इसी प्रकार कई साल तक उक्त पत्र साप्ताहिक चलता रहा और एक खुशामदाना-सी पालिसी रही।

पीछे वह सप्ताहमें दो बार किया गया। उस समय आकार १६ पृष्ठ की जगह १२ पृष्ठ हो गया। सप्ताहमें दो बार होनेकी दशामें उसकी दशा पहलेसे और भी ढीली हो गई थी। कभी-कभी पत्रके निकलनेमें देर हो जाती थी, एकाध नम्बर गायब भी हो जाता था। इतनेपर भी उसके मालिककी प्रशंसा करनी चाहिये कि उसने अपने पत्रको पीछे नहीं हटने दिया, वरञ्च और भी आगे बढ़ा दिया। अब उक्त पत्र दैनिक निकलता है। एक साल पूरा होकर और कई नम्बर अधिक निकल गये। इस समय आकार ठीक "हिन्दोस्थान"का-सा है, अर्थात् एक

शीट रायलके दो पन्नोंपर छपता है। मूल्य वार्षिक १०) है। दूरसे देखनेमें "हिन्दोस्थान" ही के समान मालूम होता है। जब यह दैनिक हुआ, तो ऐसी बेसामानीके साथ कि देखकर दुःख होता था। उसका टाइप इतना खराब हो गया था कि महीनों तक वह कुछ पढ़ा ही नहीं जाता था। खैर, पीछे टाइप बदल गया। पर अब भी उसकी छपाई आदिकी दशा निश्चित नहीं है।

दैनिक होनेके बादसे उसके लेखोंका ढङ्ग कुछ बदल गया है। पहलेकी अपेक्षा कुछ स्वाधीनता उसमें आ गई है। रजवाड़ोंके मामलेमें किसी-किसी बातपर कभी-कभी वह कुछ बोलने भी लगा है। पर अभी पुराना भय छूटा नहीं है और जब तक छूटेगा नहीं, तब तक ठीक सफलता भी नहीं होगी। कागज छोटा है। लेखोंका ढङ्ग उसमें छोटे कागजोंका-सा होना चाहिये। अंगरेजी दैनिकोंकी भाँति किसी लेखपर पाँच-पाँच सात-सात हेडिङ्ग जड़ देना किसी छोटे आकारके दैनिक पत्र-का काम नहीं है। उसे अपने एक-एक लाइनके स्थानको बहुमूल्य समझना चाहिये। अंगरेजी दैनिकोंका आकार खूब बड़ा होता है और टाइप छोटे-छोटे। वह किसी लेखपर कई-कई हेडिङ्ग बिठावें, तो बिठा सकते हैं। छोटे आकारके हिन्दी कागजको उनकी नकलकी क्या दरकार है?

कई सालसे राजस्थान समाचारकी कई बातें बदल गई हैं। एक तो उसके धर्म-विश्वासमें परिवर्त्तन हुआ है। अब उक्त पत्र कोई दो सालसे आर्य्य-समाजी नहीं जाहिर करता, वरञ्च पुरानी चालका हिन्दू बतानेकी चेष्टा करता है। आर्य्य-समाजियोंकी तरफदारीके लेख भी उसमें नहीं निकलते, वरञ्च कभी-कभी पुरानी हिन्दू-धर्मकी तरफदारीकी एक-दो बात उसमें निकल जाती हैं। उसका यह परिवर्त्तन भारत धर्म महा-मण्डलके परिवर्त्तनके साथ हुआ है। बाबा ज्ञानानन्दने समर्थदानजीको

फिरसे उनके पुराने मतपर ला दिया। नये महामण्डलकी ओर आनेसे पहले उसके विचार कुछ बीचो-बीच हो चले थे। अन्तको पुरानी तरफ झुक गये, अच्छा ही हुआ।

दो-एक बातें राजस्थान समाचारकी भाषाके विषयमें भी हमें कहनेकी जरूरत पड़ी है। अजमेरमें एक हिन्दी अखबारकी जैसी भाषा हो सकती है, उसके हिसाबसे उक्त पत्रकी भाषा किसी प्रकार बुरी नहीं, वरञ्च अच्छी है। पर कभी-कभी उक्त पत्र अपनी भाषाको और भी ऊंचा ले जानेकी चेष्टा करता है, उतनी दूर उसे नहीं जाना चाहिये। एक बार एक पुस्तककी आलोचना करते हुए उसने लिखा था—"इस पुस्तकमें भाषाकी बहुत-सी गलतियं हैं" हमको यह पढ़कर जरा अफसोस हुआ था कि जिन्हें अपनी "गलतियं" की खबर नहीं है, वह दूसरोंकी भूलें निकालने चले हैं। इसी प्रकार उक्त पत्रमें 'मूलियं, स्त्रियं' आदि लिखा जाया करता है। यह ऐसी भूलें हैं कि खास हिन्दुस्थानियोंके सिवा भारतवर्षके दूसरे प्रान्तोंके लोग जब तक भलीभांति व्याकरण न पढ़ें तब तक उनका सुधार नहीं कर सकते और न उन भूलोंको समझही सकते हैं।

केवल एक बात राजस्थान समाचारकी चालके विषयमें हम और कहेंगे। वह यह कि जो लेख दूसरे अखबारोंसे उसमें उद्धृत हों, उनमें उनका नाम दे। साफ नाम न देना या नामका कुछ इशारा बनाकर देना उत्तम चाल नहीं है। देखा देखी दूसरे पत्र भी अपनी चाल बिगाड़ते हैं। किसी पत्रसे कोई मजमून नकल करना जिस प्रकार कुछ दोष नहीं है उसी प्रकार उसका साफ नाम दे देना भी इज्जतको घटाता नहीं है, वरञ्च उससे नाम देनेवाले पत्रकी कुछ इज्जत बढ़ती ही है। पर नाम न देनेसे जो लोग नहीं जानते वह तो कुछ नहीं कह सकते हैं, किन्तु जो जानते हैं कि यह लेख अमुक पत्रसे नकल किया है, वह नकल करने-

वाले पत्रको अपने जीमें बहुत तुच्छ समझते हैं और स्वयं पत्र सम्पादकको भी कुछ लज्जितसा रहना पड़ता है। यह सङ्कीर्णता यहां तक बढ़ गई है कि जिन पत्रोंमें सिरसे पैर तक दूसरे अखबारोंके लेखही नकल होते हैं, वह भी उन अखबारोंके नाम देनेसे जी चुराते हैं; जिनसे कि वह लेख नकल किये हैं। यह दोष उर्दूके पत्रोंमें हिन्दीके पत्रोंसे भी कहीं बढ़कर हो गया है, विशेषकर पञ्जाबके अखबारोंमें। खैर, उर्दू पत्र इस दोषसे बचें या न बचें, हिन्दी पत्रोंको जरूर बचना चाहिये।

जो कुछ हो, राजस्थान समाचारके प्रचारसे हमें बड़ी प्रसन्नता है। इसका कारण यही है कि वह रजवाड़ोंका अखबार है। रजवाड़ोंमें अखबारकी बड़ी जरूरत है और रजवाड़े भारतवर्ष भरमें शिक्षा आदिमें सब प्रान्तोंसे पीछे हैं। राजस्थान समाचारने निकल कर रजवाड़ोंमें हिन्दीका प्रचार करनेकी चेष्टा की है और वहांके लोगोंमें समाचार-पत्र पढ़नेकी रुचि बढ़ाई है। यह बहुतही साधु उद्देश्य है। चेष्टा करनेसे वह बहुत कुछ सफलता लाभ कर सकता है। वहांके अभावों और आवश्यकताओं पर ध्यान देता हुआ उक्त पत्र अपने पथको बहुत कुछ ठीक कर सकता है। इसी प्रकार विचार पूर्वक चलनेसे कुछ दिनोंमें उक्त पत्र उन गुणोंका सञ्चय कर सकता है, जो एक हिन्दी दैनिक पत्रके लिये दरकार हैं। हमारी सदा इच्छा है, जिस प्रान्तका वह पत्र है उसमें उसका यश बढ़े।

रियासती अखबार

दो चार हिन्दी अखबार देशी रियासतोंसे भी निकलते हैं। वह ऐसी दशामें हैं कि हिन्दीके पढ़नेवालोंमेंसे अधिकतर उनके नाम तक भी नहीं जानते। उनमेंसे कई एक बहुत पुराने हैं और किसी न किसी प्रकार चले जाते हैं। जिन-जिन रियासतोंसे वह निकलते हैं उन्हींमें

उनके थोड़े बहुत ग्राहक हैं, अन्य प्रान्तोंमें उनका प्रचार बहुतही कम है। इससे अखबारोंके सम्पादक ही उन्हें जानते हैं, जिनके यहां वह बदलेमें जाते हैं। इस प्रकारके हिन्दी अखबारोंमें जोधपुर राज्यका

मारवाड़ गजट

सबसे पुराना है। इतना पुराना है कि हिन्दीके वर्तमान जीवित पत्रोंमें उससे पुराना और कोई पत्र नहीं है। उसका जन्म वैशाख सुदी ३ संवत १९२३ को हुआ। अक्षयतृतीयाके शुभमुहूर्तमें वह जारी किया गया। उस समय राव राजा मोतीसिंह साहब मारवाड़ राज्यके मुसाहिबके पद पर थे। महाराज तख्तसिंहजीका राजत्व काल था। उनकी मंजूरीसे उक्त तिथिको दो अखबार जोधपुरसे जारी हुए। उनमेंसे एक अखबारके दो नाम थे। हिन्दीमें "मरुधरमित्र" और उर्दूमें "मुहिबेमारवाड़"। यह अखबार राजा साहबका अपना था। उसमें साधारण समाचार और लेख छपते थे। उसका एक कालम हिन्दी और एक उर्दू होता था। दूसरे अखबारका नाम "मारवाड़ गजट" था। वह भी आधा हिन्दी और आधा उर्दू था। एक कालममें हिन्दी होती थी दूसरेमें उर्दू। उसमें रियासतकी आज्ञाएं और भीतरी और बाहरी देशोंकी खबरें होती थीं। यह रियासती पत्र था।

इन अखबारोंके प्रथम प्रबन्धकर्ता बाबू हीरालाल थे। पीछे बाबू डोरीलाल उर्फ कृष्णानन्दजी हुए जो दरबार-स्कूलके हेडमाष्टर थे। जबतक बाबू डोरीलाल रियासतमें रहे, तबतक यह पहला पत्र जारी रहा। उनके काम छोड़कर चले जाने पर बन्द होगया। बाबू डोरीलाल एक योग्य और स्वाधीन स्वभावके पुरुष थे। बरेलीके रहनेवाले कायस्थ थे। अब शायद मध्यप्रदेशमें डिप्टीकलक्टर हैं। बाबू डोरीलालजीके बाद बाबू रामस्वरूप शमीम दरबार स्कूलके हेडमाष्टर हुए। उनके हाथमें मारवाड़ गजटका चार्ज आया। उस समय तक रियासतका ध्यान अखबारकी ओर

विशेष न था। रियासतके मामूली कामोंकी भांति यह भी एक काम समझा जाता था। मारवाड़गजटमें मारवाड़ राज्यके हाकिमोंकी बदली, तैनाती आदिकी खबरें छपती थीं। बाकी अंशमें कभी कभी कोई एक आध लेख छप जाता था और रहे सहे हिन्दी उर्दू पत्रोंसे छांट कर खबरें भर दी जाती थीं।

बाबू रामस्वरूपजी भी कायस्थ थे। अजमेरके सदर राय अमीन दौलतरामके पोते थे। अच्छे लिखनेवाले और स्वाधीन प्रकृतिके आदमी थे। उन्होंने कई स्थानोंमें अपने मित्र और सम्बन्धियोंको मारवाड़ गजटका संवाददाता बनाया। इससे उसमें खबरें खूब छपने लगीं। मारवाड़ राज्यके एक इलाकेके ठाकुरने एक स्त्रीको डाइन होनेके सन्देहमे पुरानी रीतिके अनुसार कांटोमें जलवाकर मार दिया। उक्त इलाकेका नाम रास है। वह अजमेर प्रान्तके नयानगर स्थानके बहुत निकट है। वहांके एक संवाददाताने यह खबर मारवाड़गजटको लिखी और बाबू रामस्वरूपने उक्त गजटमें छाप डाली। अखबार एजण्टीमें भी जाया करता था, वहां पढ़ा गया। वहांसे राज्यको लिखा गया कि इस घटनाकी जांच होना चाहिये और यदि सच हो तो ठाकुरको दण्ड मिलना चाहिये। जोधपुर दरबारकी ओरसे उक्त ठाकुरके वकीलोंसे पूछा गया तो वह इनकार कर गये। तब बाबू रामस्वरूप पर इलजाम आया कि उन्होंने ऐसी गलत खबर क्यों छापी। उससे रियासतकी बड़ी बदनामी हुई है। वह बेचारे बहुत घबराये क्योंकि रियासतोंमें अखबारोंको स्वाधीनता नहीं है। तथापि उन्होंने नयानगरके संवाददाताको लिखकर घटना प्रमाणित कर दी और उस स्त्रीके घरके लोगोंका पता बता दिया। तब उनसे कहा गया कि ठीक है यह बात तो सच है, पर आगेको कोई ऐसी खबर न छपे जिससे कुछ झगड़ा उत्पन्न हो। बस, उस दिनसे मारवाड़ गजटकी रही सही स्वाधीनता भी जाती रही। कुछ दिन पीछे इसी नाराजीके कारण

बाबू रामस्वरूप नौकरी छोड़के चले गये। इसके पश्चात् जो दरबार स्कूलका हेडमाष्टर तथा मारवाड़ राज्यके शिक्षाविभागका सुपरिण्टेण्डण्ट होता रहा, वही मारवाड़ गजटका भी प्रबन्धकर्त्ता होता रहा। दरबारी आज्ञाओंके सिवा महकमे खाससे जो बातें लिखनेके लिये आज्ञा होती, वह पिछले पन्ने पर लिख दी जातीं।

सन् १८८४ ई० में जब रायबहादुर मुंशी हरदयालसिंह साहब मारवाड़ राज्यके सेक्रेटरी और मुसाहिब आला हुए तो उन्होंने मारवाड़ गजटको महकमे खासके अधीन करके बहुत कुछ उन्नति दी और उसे गवर्नमेण्ट गजटका नमूना बना दिया। हिन्दी कालममें हिन्दी ही रही, उर्दू कालममें अंगरेजी दाखिल हुई। तबतक पत्थरके छापेसे काम चलता था। उस समय अंगरेजी और हिन्दी टाइप मंगाया गया। कई साल तक मारवाड़ गजट इतनी उत्तमतासे निकला कि उसके कुछ लेख अङ्गरेजी अखबारोंमें भी नकल होने लगे और कभी-कभी अवध अखबारमें भी तरजमा होकर छपने लगे। सेक्रेटरीके आफिसके हेड क्लर्क बाबू हरिश्चन्द्र प्रबन्धकर्त्ता थे।

सन् १८९४ ई० में मुंशी हरदयालसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। तब रावबहादुर पण्डित सुखदेवप्रसाद साहब सीनियर मेम्बर महकमे खासके चार्जमें मारवाड़ गजट चला गया। उक्त पण्डित साहबके बहनोई पण्डित निरञ्जननाथ गजटके प्रबन्धकर्त्ता हैं। यह भी योग्य और अङ्गरेजी पढ़े आदमी हैं। पर रियासतोंमें अखबारोंको आजादी नहीं। इसीसे अपनी तरफसे कुछ नहीं लिख सकते। जब कभी जैसा कुछ लेख उन्हें एडीटोरियल कालमके लिये दरबारसे मिल जाता है उसीको छाप देते हैं। अब एक कालममें उर्दू और एकमें हिन्दी नहीं रहती। पहला पृष्ठ अङ्गरेजीमें रहता है और शेष तीन पृष्ठ हिन्दीके होते हैं। राज्यके हाकिमों और महकमोंको गजट बेदाम दिया जाता है और बाहरी खरीदारोंसे मूल्य लिया जाता है।

समाचारपत्रोंको स्वाधीनता न देनेमें पुराने विचारके उच्च कर्म्मचारी अवश्यही कुछ न कुछ भलाई समझते होंगे। पर अब वह समय नहीं है कि रियासतोंके लोग उन्हीं पुराने विचारोंपर अड़े बैठे रहें। अब ऐसा समय आगया है कि देशी रईस भी अपने अखबारोंको स्वाधीनता दें और उनसे लाभ उठावें। अखबारोंकी स्वाधीनतासे देशी रियासतोंकी प्रजाको बहुत कुछ लाभ पहुंच सकता है। जब अङ्गरेजी गवर्नमेण्टकी देखा देखी देशी रियासतोंने अपनी रियासतोंमें अखबार जारी किये हैं तो अंगरेजी गवर्नमेण्टकी रीति पर उन अखबारोंको स्वाधीनता देना चाहिये। देशी रियासतोंके विषयमें जो यह शिकायत सुनी जाती है कि ज़बर्दस्त मारे रोने न दे—इसको दूर कर देना चाहिये। अखबार कोई गनीम नहीं है कि जो स्वाधीन होकर रियासतको कुछ हानि पहुंचावे, वरञ्च यदि उसकी ठीक-ठीक सहायता की जाय और उसे उन्नत होनेके लिये अवसर दिया जाय तो वह राज्यके एक बहुतही कामकी वस्तु बन सकता है। जब एक विदेशीय गवर्नमेण्ट इस देशकी प्रजाको प्रेस-सम्बन्धी स्वाधीनता देती है, तब देशी राजा महाराजा अपनी देशी प्रजाको स्वाधीनता न दें, यह कैसे दुःखकी बात है। जोधपुर राज्यके कई एक प्रतिष्ठितसज्जनोंसे हमने सुना कि वर्त्तमान ईडरनरेश महाराज सर प्रतापसिंह जब जोधपुरके मदारुलमोहाल थे तो बहुधा कहते थे कि अखबारमें जो जी चाहे सो लिखा जाय हम आज्ञा देते हैं। चाहे हमारी ही निन्दा क्यों न लिखी जाय। पर श्रीहुजूर साहबके विषयमें (स्वर्गीय जोधपुर महाराज जसवन्तसिंहसे मतलब है, जो महाराज प्रतापसिंहजीके बड़े भाई थे) कोई अप्रतिष्ठाका शब्द न लिखा जाय, उसे मैं न सह सकूंगा। पर दुःख यही है कि श्रीमानने अपने इस वाक्यको कभी कार्य्यमें परिणत करके नहीं दिखाया। इन शब्दोंको वह मुंहसे ही कहते रहे, राज्यमें उनके विषयमें घोषणा कभी नहीं प्रचार की।

दूसरी कठिनाई देशी रियासतोंमें यह है कि यदि साधारण प्रजामेंसे भी कोई प्रेस या अखबार जारी करना चाहे तो उसे आज्ञा नहीं मिलती, बहुत तरहके सन्देह किये जाते हैं। जो लोग अखबार या प्रेस जारी करना चाहते हैं उन बेचारोंकी कभी यह इच्छा नहीं होती कि वह ऐसे काम करें जिनसे उनपर सन्देह किया जाय। तथापि कोई उनकी इस इच्छाकी ओर ध्यान नहीं देते। भगवान जाने कब तक देशी रजवाड़ोंकी यह दशा रहेगी।

इस समय मारवाड़ गजट सुपर रायल साईजकी एक शीटके दो पन्नों पर निकलता है। कागज छपाई आदि खासी होती है। उनका वार्षिक मूल्य ४) है। पत्रके ललाट पर जोधपुर रियासतका राजचिह्न बना हुआ है।

रियासती अखबार

देशी रियासतोंसे हिन्दीके कई एक अखबार निकलते हैं, उनमेंसे एककी बात गत बार कही गई, वह प्रायः सबके सब उर्दू और हिन्दीमें निकले थे। खालिस हिन्दीमें एकके सिवा और कोई नहीं निकला। इसका कारण यह था कि भारतवर्षमें हिन्दीसे पहले उर्दूके अखबार ही निकले हैं। इससे रियासती अखबार भी उर्दूहीमें निकले। पर रियासतोंकी प्रजामें उर्दू जाननेवाले लोग बहुत अल्प हैं, इसीसे उर्दूके साथ-साथ एक कालम हिन्दी भी रखना पड़ा। अर्थात् उर्दूका कालम रियासतके अहलकारोंके लिये और हिन्दीका प्रजाके लिये हुआ। उन्नति दोनोंकी ही कुछ नहीं हुई। खालिस हिन्दीमें मेवाड़की राजधानी उदयपुरसे

सज्जनकीर्त्ति-सुधाकर

निकला। यह पत्र बड़े उत्साहसे निकाला गया था और हिन्दीवालोंने बहुत कुछ आशाएँ भी की थीं। कारण यह कि उस समय हिन्दीके

बहुत कम पत्र थे। संवत १९३६ में इस पत्रका जन्म हुआ। उस समय स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्रजीके लेखोंकी हिन्दी पढ़नेवालोंमें धूम मची हुई थी। उदयपुरके स्वर्गीय महाराना सज्जनसिंहजीको भी हिन्दीसे प्रेम हुआ। बाबू हरिश्चन्द्रजीसे हिन्दीके विषयमें उक्त महाराना साहबकी लिखा पढ़ी भी होती थी। उसी परस्पर प्रीतिके फलसे "सज्जनकीर्त्ति-सुधाकर" निकला। आश्चर्य्य नहीं जो इसका नामकरण भी बाबू हरि-श्चन्द्रजी द्वाराही हुआ हो। यह पत्र बहुत धूमसे निकला था। आकार भी खूब बड़ा रखा गया था। इस समय उसका आकार सुपररायल दो शीटके चार पन्ने हैं। शायद यही आकार तब भी था। देशी रियासतोंमें राजनीति सम्बन्धी लेखोंके लिये स्वाधीनता नहीं, पर दूसरे प्रकारके लेख इस पत्रमें अच्छे निकलने लगे थे। उन दिनों यह वैसाही पत्र था जैसा बाबू हरिश्चन्द्रजीका "कविवचनसुधा" पत्र था। एक बार पण्डित हरमुकुन्द शास्त्रीजी इस पत्रके सम्पादक थे और उसी समय यह पत्र हिन्दीका एक पत्र कहलानेके योग्य भी था। जब तक महाराना सज्जन सिंह जीवित थे, तब तक यह अच्छी दशामें चलता था। सन १८८४ ईस्वीमें उनका शरीरान्त हो गया। तभीसे इस पत्रका प्राण निकल गया। अब यह केवल ढांचा मात्र है।

अखबारवालोंके सिवा बहुत कम लोग इस पत्रका नाम भी जानते होंगे। क्योंकि इसके जो कुछ ग्राहक हैं, वह उदयपुर राज्यके भीतरही हैं। हिन्दीके पुराने प्रेमियोंमेंसे किसी किसीको इसका नाम याद है, पर शकल भूल गये। इस पत्रकी पुरानी यादगारमेंसे इसका टाइटल पेज चला आता है, जिस पर कदाचित् कोई दृष्टि भी न डालता होगा। क्योंकि उसके टाइप घिसते घिसते एक दम सिलपट होगये हैं, अक्षरोंका पढ़ना सहज बात नहीं है। एक अक्षर किसी तरह जान लिया जाता है तो दूसरेके लिये अटकल लगानी पड़ती है। टाइटलके सिरे पर "श्रीएकलिङ्गो

विजयते" लिखा है। यही उदयपुर राज्यका "श्रीगणशाय नमः" है। क्योंकि एकलिङ्गजी वहांके इष्टदेव हैं। उनके नीचे अङ्गरेजी अक्षरोंमें अर्द्धचन्द्राकार पत्रका नाम दिया गया है। उसके नीचे मेवाड़का राज्य चिन्ह है, जो घिस पिस कर ऐसा हो गया है कि उसमेंसे कोई बात पहचानमें नहीं आती। मालूम नहीं कि जबसे पत्र जारी हुआ है, यह चिन्ह दूसरी बार बनवाया गया या नहीं। राज्य चिन्हके नीचे पत्रका नाम देवनागरी अक्षरोंमें दिया गया है। नीचे लिखा है - "यह राज्य चिन्ह सूर्य्यवंशी महाराणा मेद पाटेश्वरका है। श्रीसूर्य्यसेही महाराणाओंका सूर्य्यवंश चला है और दाईं बाईं तरफ क्षत्रिय और भीलके जो दो चित्र हैं, राज्य सेवामें विद्यमान रहते हैं।" इतना लिख कर नीचे "सत्यवार्त्ताकी सूचना" लिखी है अर्थात् इस ऊपरकी बातका अर्थ खोल कर समझाया है, वह इस प्रकार है—"सूर्य्य आदि लोकोंका एक एक स्वामी वा अधिकारी है। जिस प्रकार भरतखण्ड और इंगलेण्डके श्रीमान राजराजेश्वर अधिकारी हैं। (शायद यहां पहले श्रीमती राजराजेश्वरी लिखा होगा क्योंकि पत्र जारी होनेके समय तो श्रीमान राजराजेश्वर अधिकारी थे नहीं) कोई समय ऐसा था कि सूर्य्य चन्द्र आदि लोकोंमें किसी प्रकारसे महात्मा लोगोंका आना जाना होता था और उन्हीं सूर्य्य चन्द्र और अग्निसे पृथिवीके सब क्षत्रियोंके वंश चले हैं, जिनमेंसे श्रीमहाराणा उदयपुर, जयपुर और जोधपुर आदि सूर्य्यवंशी हैं। करौलीके राजा चन्द्रवंशी और भदावरके राजा अग्निवंशी हैं।" राज्य चिन्हकी बात इस भाषा और परिभाषासे पाठक कुछ समझ ही गये होंगे, बाकी हम समझा देते हैं। चिन्हके बीचमें सूर्य्यकी मूर्त्ति है और उसके ऊपर एक लिङ्गजीका स्वरूप बना हुआ है—दाएं बाएं एक भील और एक राजपूतकी मूर्त्ति है और नीचे हिन्दीमें लिखा है—

"जो हठ रक्खै धर्म्म की तिहि रक्खै करतार।"

सूर्य्यसे यही दिखाया गया है कि उदयपुरके राणा सूर्य्यवंशी हैं। एकलिङ्ग उनके इष्टदेव हैं, भील और राजपूत उनके सिपाही हैं। महाराणा लोग धर्म्मके बड़े भारी रक्षक हैं और उनका यह दृढ़ विश्वास कि जो धर्म्मकी रक्षा करता है, ईश्वर उसकी रक्षा करता है। दुःख की बात है कि यह राज्य चिन्ह अब इतना घिस गयाहै कि इसकी शकल पहचानना कठिन है।

पत्र पर अब भी यह भाषा लिखी जाती है—"श्रीमन महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यादवार्य्यकुल कमल दिवाकर श्रीरामेश्वरलिङ्गावतार विविध विरुदावली मोदित श्री १०८ श्रीमहाराणा सज्जनसिंहजीकी आज्ञानुसार संवत् १९३१ ईस्वीमें यह समाचार पत्र सत्कर्म्म रूपी पीयूषकी प्रवृत्ति और असत् कर्म्मरूपी विषकी निवृत्तिके निमित्त उदयपुरमें उदयका प्राप्त हुआ।" संस्कृत श्लोकमें महाराणा सज्जन सिंहजी ने इस पत्रके सम्बन्धमें अपना मनोरथ भी प्रकाश किया है—

श्लोकाः

चित्ते यस्य सदैव लोक सुखदं विद्यागुणोद्धर्द्धकम्।
कृत्यं मानुषतोषपोषण करं संराजतेनीतितः॥
मद्देशेन जनागुणेन विमुखा दुष्टा न दूष्कर्म्मिणः।
पीयूषांशु धरेद्दशास्य महतः कार्यस्य सिद्धिं कुरु॥ १॥
मद्देशस्थजनाः सुनीतिनिपुणा विद्योपदिष्टाः सुता।
सर्वे स्वीय सुकर्मधर्म निरता विद्यागुणोत्कर्षकाः॥
नानाशिक्षक शिक्षितोपपठिताः शिक्षागृहद्वारतः।
चन्द्रार्द्धाङ्कित शेषरे दृशा वृहत्कार्य्यस्य पूर्त्तिं कुरु॥ २॥
मदीया मही सर्वधान्याभियुक्ता फलैः कन्दशाकैस्सु पुष्पैः प्रपूर्णा।
जलाधार वापीतड़ागादितीरे पुरग्राम पल्लीनिवासोपरम्या॥ ३॥

इससे जान पड़ता है कि महाराना सज्जनसिंहके मनोरथ बहुत ऊंचे ऊंचे थे। यदि वह कुछ दिन बचते तो वह मनोरथ सफल भी होते। पत्रका मूल्य वार्षिक ६।॥) रखा गया था। यही मूल्य हरिश्चन्द्रजीके पत्रका था। मूल्यके नकशेके नीचे निम्नलिखित नोट दिया गया है— "श्रीआर्य्यकुलकमलदिवाकरकी आज्ञाके अनुसार यह साप्ताहिक समाचार पत्र सज्जन यन्त्रालय उदयपुरमें हर सोमवारको मुद्रित होता है। बिना मोलके किसी वस्तुकी ग्राहकता नहीं होती, इस दृष्टिसे इसका बहुत न्यून मोल रखा है। मेवाड़ वालोंके नाम दरखास्त करनेपर और गैर इलाकेवालोंके पास दाम पेशगी भेजनेपर जारी होगा। इसमें उत्तम वार्त्ता और अपूर्व आशय मुद्रित होते हैं जिनसे विद्या और सुखकी वृद्धि हो और सब लोगोंमें स्नेह बढ़े।"

हम इस पत्रको सन् १८८७ ई० से देखते हैं। इन १८ सालमें इसकी दशा प्रायः समान ही चली आती है। भेद इतना ही हुआ कि कुछ साल पहले उर्दू अखबारोंके लेख हिन्दी होकर इसमें नकल होते थे और अब कई सालसे हिन्दी अखबारोंका जोर हो गया है, इससे उन्हींके लेख इसमें अधिक नकल होते हैं। इस समय सज्जनकीर्त्तिसुधाकरकी २४ अप्रैलकी संख्या हमारे सामने है, उसीसे हम दिखाते हैं कि आजकल इस पत्रकी क्या दशा है। उसके पहले पृष्ठमें तो हम लिख चुके हैं कि टाइटल है, दूसरे पृष्ठके आरम्भसे विदेशी और देशी "तड़ित समाचार" चले हैं, उनमें ११ अप्रैलसे लेकर १६ अप्रैलके तार समाचार होनेहीसे स्पष्ट है कि उनका अंगरेजीसे तरजमा नहीं हुआ। तीन कालममें तार समाचार हैं। चौथेमें महाराज ग्वालियरके सम्बन्धमें एक लेख है, जो १८ अप्रैलके राजस्थान समाचारसे लिया गया है। तीसरे पृष्ठमें "सज्जनकीर्तिसुधाकर" नाम देकर नीचे तारीख दी है। अखबारोंमें एक दस्तूर है कि जो लेख सम्पादकके होते हैं, उनके ऊपर अखबारका नाम और तारीख होती है।

पर सज्जनकीर्तिसुधाकरमें हमने वर्षों से उसके सम्पादकका लिखा हुआ कोई लेख नहीं देखा। उसे प्रति सप्ताह अखबारका नाम और तारीख देकर सम्पादकीय रस्म तो पूरी करनी पड़ती है, पर उसके नीचे वह लिखता है, विविध समाचार। वह समाचार भिन्न-भिन्न पत्रोंसे चुने जाते हैं। ऊपर लिखी संख्याके तीसरे पृष्ठमें वही हैं। चौथे पृष्ठमें तीन लेख "हिन्दोस्थान" से नकल किये हैं। चौथा और पांचवां राजस्थान समाचारसे। पांचवेंमें लड़ाईकी लीला है जो हिन्दी बङ्गवासीसे नकल की है, छठे-सातवेंमें धर्ममण्डलका लेख है, जो "राजस्थान-समाचार"से लिया है। सातवें-आठवेंमें भूकम्पका लेख है, वह भारतमित्रसे लिया है। फिर दो लेख और हैं, जो और दो अखबारोंसे नकल किये हैं। १६ लाइनमें उदयपुरकी खबरें हैं, वही इस अखबारकी घरकी पूंजी समझना चाहिये। उसके नीचे उदयपुरके जन्म-मृत्युका एक लेखा भी २०-२५ लाइनमें है, यह भी उक्त अखबारके घरकी पूंजी ही समझना चाहिये। पर इसमें अङ्क ऐसे अन्धे लगाये हैं कि सब जमा-खर्च बराबर और हिसाब बेबाक मालूम पड़ता है। कई सालसे इस पत्रकी एक बातको हम बड़े ध्यानसे देखते आते हैं। यद्यपि यह पत्र सिरसे पैर तक दूसरे कागजोंकी नकल होता है, तथापि किसी लेखके नीचे उस अखबारका पूरा नाम नहीं देता, जिससे कि वह लेख नकल किया जाता है। नाम दिया जाता है इशारेमें। जैसे—१५ ए० भा० मि०, १८ ए० हि० स्था०, १२ ए० रा० स्था०, १० ए० बं० वा०। पाठकोंके समझनेके लिये हम इन इशारोंका भाष्य कर देते हैं—१५ एप्रिल भारतमित्र, १८ एप्रिल हिन्दोस्थान, १२ एप्रिल राजस्थान समाचार, १० एप्रिल बंगवासी। जितनी जगहमें यह इशारे लिखे जाते हैं, पत्रका पूरा नाम भी उतनी ही जगहमें आ सकता और न्याय भी यह है कि जिस पत्रसे कोई लेख नकल किया जाय, उसका पूरा नाम नीचे दिया

जाय। पर सज्जनकीर्त्ति-सुधारकर वैसा करना नहीं चाहता। न-जाने इसमें क्या उत्तमता समझी जाती है। लखनऊके अवध अखबारको इसी प्रकारके इशारे लिखनेकी आदत है। यदि वह कोई लेख पायोनियरसे तरजमा करता है, तो उसके अन्तमें फारसीकी 'पे' बनाकर उसके साथ उस अङ्ककी तारीख लिख देता है। आश्चर्य नहीं, जो सज्जनकीर्त्ति-सुधाकरने उसी पत्रसे यह चाल सीखी हो। कुछ हो, यह चाल अच्छी नहीं और जिस हैसियतसे चलता है, उससे चलना अच्छा नहीं। उक्त पत्रकी धन-सम्बन्धी दशा बहुत अच्छी है। वह एक रितासतका अखबार है, इससे उसे धनकी कमी नहीं। कोई बारह-तेरह साल हुए हमको उदयपुर जानेका अवसर मिला था। उस समय हमने सज्जन-यन्त्रालयको देखा था। उसकी बहुत उत्तम दशा है, उसमें सब सामान सुन्दर और प्रचुर हैं, उस समय महाशय चालकदानजी उसके प्रबन्धकर्त्ता थे। वह योग्य पुरुष थे। लिखने-पढ़नेकी उनमें खासी योग्यता थी। वह अखबारमें कुछ विशेष लेख नहीं लिखते थे, पर कभी-कभी पुस्तकोंकी आलोचना लिखते थे और जब कभी उदयपुरमें किसी अच्छे व्याख्याताके व्याख्यान होते थे तो उनका वर्णन आदि भी लिखते थे। वह सब अच्छा होता था। हम समझते हैं कि रियासतकी ओरसे उनको लिखनेकी स्वाधीनता न होगी, नहीं तो वह अवश्य कुछ लिखते। आजकल प्रबन्धकर्त्ताओंमें उनका नाम नहीं देखते हैं, मुंशी नजीर हुसैनका नाम छपता है।

सज्जन यन्त्रालयके लिये रियासतका बहुत रुपया खर्च हुआ है और हजारों हरसाल खर्च होता है। इतना रुपया खर्च करके एक ऐसा रद्दी कागज निकाला जाता है कि जो रियासतकी सीमासे बाहर जानेके लायक नहीं। इसका क्या कारण? यदि रियासतोंमें राजनीतिक लेखोंके लिखनेकी स्वाधीनता नहीं है तो मत हो और बहुत लेख

लिखनेको पड़े हैं। इतिहास, समाज, धर्म्म, साधारण नीति आदि
लिखनेको तो कोई मना नहीं करता। मेवाड़-सा तो सुन्दर दे
राजस्थानमें और नहीं है। वहांकी झील तालावोंका वर्णन, वह
महलोंकी शोभा, वहांके दरबारों और उत्सवोंका वर्णन ऐसा नहीं है
साधारण रीतिसे लिखने पर भी लोगोंके मनोंको मुग्ध न करे
उत्सवों पर वहां जिस ढङ्गके दरबार और सवारियां होती हैं, उन
शान अब भी पुराने समयको याद दिला देती है। पर उदयपुरके पत्र
ऐसी खबरें होती भी हैं, तो दो तीन लाईनमें। गत २० अप्रैलको उद
पुरमें एकलिङ्गजीके वार्षिकोत्सवके उपलक्षमें 'दरीखाना' हुआ थ
हाथियोंकी लड़ाई हुई थी। यह एक बड़े ही ठाटका उत्सव उदयपुर
होता है। उदयपुरके कागजमें उसकी खबर साढ़ेतीन लाइनमें छपी है

उदयपुरमें विद्वान रहते हैं, विद्यानुरागी रहते हैं। वहां ए
अच्छी लाइब्रेरी है। उसमें विद्या सम्बन्धी बहुत कुछ समान है
उसका प्रबन्ध एक बड़े योग्य पुरुषके हाथमें है, जिसने ऐतिहासि
बातोंका पता लगानेमें बड़ा नाम पाया है। उसका नाम पण्डि
गौरीशंकरजी है। जानी मुकुन्दलालजी हिन्दीके एक पुराने लेखक व
मौजूद हैं। रामनारायणजी दूगड़, फतेहसिंहजी मेहता, जोधसिंह
मेहता जैसे उत्साही हिन्दीके प्रेमी और सुलेखक वहां मौजूद हैं। ऐ
ऐसे लोगोंके होते उदयपुरका एक मात्र अखबार ऐसी दशामें क
निकलता है? जो अखबार स्वयं धीर वीर श्री महाराण
साहबकी आज्ञासे निकलता है, उसकी ऐसी गिरी हुई दशा क
है? वहांका पत्र तो ऐसा होना चाहिये था कि लोग उसके एक ए
अक्षरको पढ़ते और उसके हर नये नम्बरके लिये टकटकी लगा
रहते। क्या हमें सज्जनकीर्त्ति-सुधाकरकी उन्नतिकी कुछ आश
करना चाहिये?

भूल सुधार

गत बार "सज्जनकीर्त्तिसुधाकर" की बात कहनेमें हमने कुछ भूल की है। पूज्यवर पण्डित गोविन्दनारायण जी मिश्र और पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्रके हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने उस लेखकी भूल भी बता दी और उसके सम्बन्धमें कुछ और आवश्यक बात भी बताई हैं। हमारा यह लिखना कि पण्डित हरमुकुन्दजी शास्त्री आदिमें सज्जनकीर्त्ति-सुधाकरके सम्पादक थे, ठीक नहीं है। उक्त पत्रके आदि सम्पादक पण्डित बंशीधर वाजपेयी थे, जो पण्डित लल्लूलालजीके समयके सुलेखक थे। लल्लूलालजीके साथ उन्होंने बहुत दिन तक काम किया था। हिन्दीके अच्छे मर्म्मज्ञ थे। वह जब तक उस पत्रके सम्पादक रहे, तब तक उक्त पत्र बहुत अच्छी रीतिसे चलता रहा। उस समय स्वर्गीय कविराजा सांवलदासजी भी उक्त पत्रमें ऐतिहासिक और कविता सम्बन्धी लेख लिखते थे। कविराजा उस समयके नामी लेखकोंमेंसे थे। "वीरविनोद" नामक राजस्थानका इतिहास उन्होंने लिखा था। जिसका अधिक भाग सज्जन यन्त्रालयमें छपा पड़ा है। अपने ऐतिहासिक लेखोंमें उन्होंने कर्नल टाड आदिकी भूलें भी दिखाई हैं।

श्रीनाथद्वारेमें एक लेखक मण्डली थी। उसमें पण्डित दामोदर शास्त्री, पण्डित मोहनलालजी-विष्णुलालजी पंड्या और लाला राम-प्रसादजी अग्रवाल आदि कई एक सज्जन शामिल थे। यह लोग अच्छे-अच्छे लेखोंसे सज्जनकीर्त्तिसुधाकरकी बहुत कुछ सहायता करते थे। दामोदर शास्त्रीजी बिहारबन्धुके प्रथम एडीटर थे और शायद इस बातको बहुत कम आदमी जानते होंगे कि बिहारबन्धुका जन्म बांकी-पुरमें नहीं, कलकत्तेमें हुआ था। पण्डित केशवरामजी भट्टके बड़े भाई पण्डित मदनमोहनजी भट्टने बिहारबन्धुको कलकत्तेसे जारी किया था। कोई छः साल तक वह कलकत्तेसे निकलता रहा। दामोदर शास्त्रीजीने

"विद्यार्थी" नामका एक मासिक पत्र भी संस्कृतमें निकाला था जो कुछ दिन तक निकलता रहा। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजीने "पृथ्वी-राज रासा" श्रीनाथद्वारे रहनेके समयही छपवाया था। बनारसमें लाजरस कम्पनीके यहां छपकर वह नाथद्वारेसे प्रकाशित होता था। इसके सिवा नाथद्वारेकी उक्त मण्डली एक मासिक दिनचर्य्या कुछ दिन तक निकालती रही।

रियासती अखबारोंमेंसे हमें दो एक ऐसे अखबारोंका और जिक्र करना है जो बहुत पुराने हैं, पर उन्हें बहुत कम लोग जानते हैं। परन्तु उनकी बात फिर कही जायगी। आज अजमेरके हिन्दी अखबारोंकी बात कहते हैं, क्योंकि अजमेर अङ्गरेजी अमलदारीमें होनेपर भी रजवाड़ोंहीमें समझा जाता है। अजमेरके राजस्थान समाचारकी बात हम कह चुके। उसके सिवा "राजस्थान पत्रिका" नामका एक और अखबार हिन्दी भाषामें वहां "राजपूताना मालवा टाइम्स आफिस"से निकला था। कोई एक साल तक चला। भाषा अच्छी न होने पर भी उसके लेख अच्छे होते थे। पर राजपूताना मालवा टाइम्सके साथही कोई एक साल चलकर वह समाप्त हो गया। "राजपूताना मालवा टाइम्स" पर जयपुरके परलोकगत दीवान कान्तिचन्द्र मुकर्जीने मानहानिकी नालिश की थी। उसमें उक्त पत्रके सम्पादक और मालिकको जेल हुई और प्रेस आदि सब नीलाम हो गये।

एक पत्र अजमेरसे और निकलता है, जो उक्त दोनों पत्रोंसे पुराना है। उसका सताईसवां साल चलता है। उसका नाम है :—

राजपूताना गजट

असलमें यह पत्र उर्दू है, पर हिन्दी भी थोड़ी बहुत जन्मसेही इसके साथ लगी हुई है। इसके मालिक और एडिटर मौलवी मुराद-अली बीमार थे। 'बीमार' उनका कविताका नाम था। कई साल हुए

उनका इन्तकाल हो गया। अब उनकी विधवा पत्नी मोतीबेगम उक्त पत्रको निकालती हैं। इस पत्रने कई रङ्ग बदले। छोटे बड़े कई प्रकारके कागजोंपर छपता रहा। अधिकतर लीथोहीमें छपता था। बीचमें कुछ दिनके लिये इसके हिन्दी कालम टाइपमें भी हो गये थे, अब फिर लीथोहीमें छपता है। आजकल इसके १२ पृष्ठोंमेंसे ४ हिन्दीके हैं और ८ उर्दूके। रजवाड़ों—विशेषकर राजस्थानकी खबरोंको लिखनाही इसने सदासे अपना प्रधान काम समझ रखा है। मौलवी मुरादअली बड़े बेधड़क और बेलगाम आदमी थे। अङ्गरेजी नहीं पढ़े थे, कानून-फानूनको भी कुछ नहीं समझते थे। इससे खूब बेधड़क होकर लिखते थे। एकाध बार लाइबलमें उनको सजा भी हुई। तो भी लिखनेमें उनका ढङ्ग कुछ बदला नहीं। स्थानीय कोतवालसे लड़ गये थे, तब भी नहीं डरे। जो कुछ हो उनके बेधड़कपनसे भी कभी-कभी बहुतसी गुप्त बातोंका भेद खुल गया और बहुत लोगोंका लाभ हुआ। उनके लेखोंमें यदि कुछ उजड्डपन कम होता तो उनकी बातका बहुत वजन होता। तथापि गुप्त रीतिसे अत्याचार करनेवाले लोग उनसे बहुत कुछ डरा करते थे। दुःखकी बात है कि इस पत्रकी लिखाई-छपाई कभी अच्छे ढंगकी नहीं हुई। अब भी वही दशा चली जाती है। मौलवी मुरादअलीमें कई गुण थे। वह गोरक्षाके बड़े पक्षपाती थे। हिन्दुओंसे द्वेष नहीं रखते थे और कभी किसीसे दबते नहीं थे। उस ढङ्गके लोग भी अब कम देखनेमें आते हैं। पुराने ढर्रके दबंग लोगोंका वह एक नमूना थे।

रियासती अखबार

सर्वहित

राजपूतानेकी बूंदी रियासतकी ओरसे "सर्वहित" नामका एक हिन्दी पत्र जारी हुआ था। अब नहीं है। उक्त पत्रका जन्म फाल्गुन शुक्ला

१ संवत् १९४६ तारीख २० फरवरी सन् १८९० ईस्वीको हुआ था और संवत् १९६० में बन्द हो गया। यह पत्र लीथोमें बहुत छोटे साइज पर निकला था, १६ पृष्ठमें निकलता था। लिखाई-छपाई भी अच्छी न थी पर इतनी बुरी न थी कि पत्र पढ़ा न जाय। उक्त पत्र पाक्षिक था। कोई ६ संख्याओं तक उसका सम्पादन पण्डित रामप्रताप शर्माने किया। पीछे राज्यने श्री रंगनाथ प्रेसकी मनेजरी और सर्वहितके सम्पादनका भार पण्डित लज्जाराम शर्म्माको दिया। ३ साल तक वह उक्त पत्रको अच्छे ढङ्गसे चलाते रहे। चौथे वर्ष १२-१३ संख्या तक सम्पादन करके पण्डित लज्जाराम अलग हो गये। उनके अलग होनेके बाद पत्रकी दशा खराब होने लगी जो बन्द होनेके समय तक और भी खराब होती गई। पत्र रियासतकी ओरसे निकलता था। इससे रियासतके प्रधान कर्म-चारियोंकी इच्छा पर ही, उसका जीवन निर्भर था। उन्होंने जब तक उसे जिला रखना चाहा, वह जीता रहा और जब न चाहा तब बन्द कर दिया। यही उक्त पत्रके जारी और बन्द होनेका कारण था। तो भी इतना और कहा जा सकता है कि लज्जाराम शर्म्माके अलग हो जानेके बाद उसे वैसा योग्य सम्पादक नहीं मिला।

लज्जारामजीके अलग हो जानेके पश्चात् यह पत्र कुछ दिन तो बदस्तूर पत्थरके छापे पर छपता रहा। पीछे टाइपके अक्षरोंमें भी छपने लगा, पर निरा खिलवाड़ होता था। न कुछ लेखोंका सिर-पैर होता था, न पत्रका सिद्धान्त था। हमें उक्त पत्रके तीसरे वर्षके कुछ नम्बर मिले हैं। यद्यपि उनमें राजनीतिकी चर्चा नहीं है, पर सामाजिक, धर्म्म, सम्बन्धी देशी कारीगरी, देशी कारोबार, भाषा और साहित्यके विषयमें कई एक बहुत खासे लेख और नोट हैं। खबरें ऐसे ढङ्गसे चुनी हैं कि पत्र पाक्षिक होनेपर भी वह बहुत पुरानी नहीं मालूम होती थीं। पत्रमें सनातन हिन्दू-धर्म्मका पक्ष किया जाता था। सामाजिक और

धर्म्म सम्बन्धी बातोंमें मतभेद होनेसे कई बार उक्त पत्रने हिन्दोस्थान आदि पत्रोंसे झगड़ा भी किया हैं। खेती और कारीगरीके विषयमें उन दिनों कई एक लेख अच्छे निकले थे। चुटकले, पहेली, हँसी दिल्लगी-की बातें उसमें होती थीं। पुस्तकोंकी समालोचना भी खासी होती थी। विशेषकर हिन्दू-धर्मके विरुद्ध पोथियोंका अच्छा खण्डन होता था। उन दिनोंमें उसका मोटो यह था—

ईशः सुखयतु लोकान विहाय कपटानि ते भजनत्वीशम्।
श्रयतु खलोपि सुजन्ता सर्वोपिस्वीकार तु सर्वहितम्॥

इसका मूल्य सर्वसाधारणसे १) और विद्यार्थियों तथा सभाओंसे ॥=) डाक महसूल सहित था। इस पत्रकी एक सचाईकी प्रशंसा करनी चाहिये कि यह प्रतिवार २४० छपता था और वही संख्या उसके पहले पृष्ठके सिरेपर लिखी रहती थी। अखबारवालोंमें और दोष चाहे कुछ हो या न हो, पर यह दोष अवश्य है कि बड़ी सचाईका घमण्ड रखनेवाले अखबारवाले भी अपने अखबारके छपनेकी संख्या असलसे दुगुनी-तिगुनी ही नहीं, चौगुनी तक बता बैठते हैं। यह पत्र उस दोषसे रहित था और अपनी थोड़ी संख्याको प्रकाश करनेमें किसी तरहकी लज्जा नहीं समझता था। किन्तु एक दोषसे यह भी रहित न था—अर्थात् जिन पत्रोंसे लेख आदि उद्धृत करता था, उनके नाम पूरे न देकर संकेतमें देता था। दूसरे अखबारोंकी नकलसे यह दोष उसमें भी आया था। सारांश यह कि पण्डित लज्जारामजीके समयमें सर्वहित रूपमें अच्छा न होनेपर भी गुणमें अच्छा था। यदि इसका रूप देखकर ही उस समयके पाठकोंने उसे फेंक न दिया होगा तो वह उसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न हुए होंगे। वही पण्डित लज्जाराम पीछे बम्बईके "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार"के सम्पादक हुए। बाबू राधाकृष्ण दासने अपने सामयिक हिन्दी पत्रोंके इतिहासमें सर्वहितके सम्पादकोंमें पण्डित

मन्नालाल और कन्हैयालालका नाम लिखा है, पर हमने जहां तक सुना लज्जारामजीके बाद उसका कोई ऐसा सम्पादक नहीं हुआ, जिसे वास्तवमें सम्पादक कहा जाय।

भारतभ्राता

रींवा राज्यसे सन् १८८७ ईस्वीमें "भारतभ्राता" नामका एक साप्ताहिक पत्र निकला था। आकार प्रकार भारतजीवनकासा था। चार पृष्ठ थे। राज्यके कमाण्डर इनचीफ महाराजकुमार लाल बलदेवसिंह बड़े विद्यानुरागी थे। उन्हींके उद्योगसे वह निकला था, वही इसके प्रबन्धकर्त्ता थे। अखबार रियासतका नहीं था, स्वतन्त्र था और रियासतसे निकलनेपर भी राजनीति सम्बन्धी लेख उसमें होते थे। पत्र खासा था, एक हिन्दी पत्र कहलानेके योग्य था। पहले कालाकांकरका हिन्दोस्थान भी उसी आकारमें निकला था। उसीकी देखादेखी उक्त पत्र निकला था। कुछ-कुछ ढङ्ग भी उसका "हिन्दोस्थान"हीसा था। इसके सम्पादकोंके नाम ठीक तौरसे जाननेका हमें अवसर नहीं मिला। एकका नाम विदित है कि वह रींवा स्कूलके एक शिक्षक थे, उनका नाम बाबू भगवानसिंह था। करीब चार साल हुए उक्त पत्र बन्द हो गया। बन्द होनेके दिनोंमें उसकी दशा भी बहुत गिरी हुई थी। बन्द होनेका कारण स्पष्ट विदित नहीं हुआ था। तथापि यही मालूम हुआ कि रियासतमें एक वैसे कागजका जारी रहना रियासतके कुछ उच्च कर्मचारियोंको पसन्द न था। इस पत्रके बन्द होनेके थोड़ेही दिन बाद लाल बलदेवसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। अब रींवासे वैसा पत्र निकलनेकी कुछ आशा नहीं है। अफसोस रियासती अखबारोंकी जहां-तहां ऐसीही गति है। भारतभ्राताका वार्षिक मूल्य २) साल था।

गवालियर गजट

गवालियर राज्यका "गवालियर गजट" इतना पुराना अखबार

है कि प्रचलित हिन्दी पत्रोंमें उसकी उमरका कोई नहीं है। किन्तु गुमनाम भी इतना है कि अधिकांश हिन्दी जाननेवाले उसका नाम तक नहीं जानते। यह पत्र जबसे निकला, तबसे बराबर जारी है। यदि गदरके दिनोंमें कुछ दिन बन्द रहा हो तो रहा हो। नहीं तो बराबर नियत समय पर निकलता रहा है। ५४ सालसे उक्त पत्र जारी है। इसके आदिके दो तीन सालके अङ्क नहीं मिलते, इससे इसकी जन्म तिथि ठीक विदित न हो सकी।

यह पत्र जन्मकालसे एक कालम हिन्दी और एक कालम उर्दूमें बराबर निकालता आया है। जिस समय स्वर्गीय महाराज जयाजी राव नाबालिग थे, उस समय राज्यकार्य्यका सब भार रावराजा दिनकरराव राजवाड़े दीवान पर था। वह बड़े बुद्धिमान और नीतिनिपुण पुरुष थे। गदरमें विपद्‌ग्रस्थ अंगरेजोंकी सहायता भी उन्होंने की और गवालियर राज्यकी रक्षा भी। आपहीकी सलाहसे महाराज जयाजी विद्रोहियोंसे बचकर आगरे चले गये। इसीसे गवालियरमें विद्रोहियोंके हुल्लड़ मचाने पर भी उनका जोर न बंध सका।

भारतवर्षमें उस समय नई रोशनी फैलने लगी थी। अखबारोंकी भी चर्चा फैली। हिन्दी भाषाके जो एक दो पत्र उस समय निकलते थे, उनका बड़ा आदर था। उन्नतिप्रिय दिनकर रावने महाराजकी सलाहसे गवालियरसे एक अखबार निकालना चाहा। हिन्दी भाषामें अखबार लिखनेवालोंकी उस समय बड़ी कमी थी। पत्र सम्पादनके लिये एक योग्य सम्पादककी जरूरत पड़ी। एक अंगरेज सज्जनकी कृपासे एक योग्य सम्पादक भी मिल गया। नाम था मुंशी लछमनदास। अखबार निकलनेसे दो तीन साल पहले मुंशीजीने गवालियरमें आकर एक प्रेस खोला, उसका नाम रखा—आलीजाह दरबार प्रेस। उक्त प्रेसमें उस समय दो लीथो और एक टाइपकी कल थी। मुंशीजीने इस योग्यतासे

प्रेसका काम चलाया कि दिनकररावने प्रसन्न होकर संवत् १९०४ में उनको "ग्वालियर गजट" निकालनेकी आज्ञा दी। मुंशी लछमनदास आगरेके रहनेवाले कायस्थ थे। यह तीन भाई थे। बड़े जवाहिरलाल आगरेमें छापेखानेका काम करते थे। दूसरे चुन्नीलाल सरकारी दफ्तरमें मुन्तजिम थे। लछमनदास पहले आगरेमें अंगरेजोंको उर्दू पढ़ाया करते थे। वहांसे एक अंगरेजकी सुफारिशने गवालियर पहुंचाया।

जब "गवालियर गजट" निकला था, उस समय उसका आकार २०×२६ था। भाषा उर्दू होती थी, जो फारसी अक्षरोंमें छपती थी और वही बराबरके कालमोंमें देवनागरी अक्षरोंमें भी छप जाती थी। उर्दूके कुछ कठिन शब्द कभी-कभी सरल हिन्दी शब्दोंमें बदल भी दिये जाते थे। उक्त पत्रमें रियासतकी सरकारी और बेसरकारी खबरोंके सिवा उर्दू और हिन्दीके अखबारोंसे खबरें नकल होती थीं और कभी-कभी "पायनियर" आदि अंगरेजी अखबारोंसे भी दो चार खबरें ले ली जाती थीं। स्वाधीनता इस पत्रकी भी वैसीही थी जैसी दूसरे रियासती अखबारोंकी। इससे हिन्दुस्थानमें इस पत्रकी कभी इज्जत नहीं हुई। रियासतहीमें यह बिकता रहा। खबरें उसकी बहुत पुरानी और खूसट होती थीं। अच्छे लेखोंका सदा अभाव ही दिखाई दिया। यदि अच्छे लेख कभी निकले भी हों, तो हमारी दृष्टि तक नहीं पहुंचे।

जुलाई सन् १८९६ ई० में "गवालियर गजट" उर्दूमें अलग और हिन्दीमें अलग छपने लगा। किन्तु हिन्दीवालेकी भाषा फिर भी उर्दू ही रही। कुछ दिन एक अंगरेजी पर्चा भी गजटके साथ निकलने लगा था, जो शायद दस बारह नम्बर तक निकलकर बन्द हो गया। कुछ दिन पहले तक उर्दू और हिन्दीमें अलग अलग, उक्त गजट बराबर निकलता था। कोई दो साल हुए जबसे रियासतमें फारसी अक्षर बन्द होकर नागरी जारी हुए तबसे उर्दूका गवालियर गजट बन्द हो गया।

अब जनवरी सन् १६०५ ई० से उसमें एक नया फेर बदल हुआ है। गवालियर गजटकी जगह उक्त पत्रका नाम "गवालियर ष्टेट गजट" होकर वह रियासतका सरकारी अखबार बन गया है। अब उसमें सरकारी आज्ञाएं, सरकारी विज्ञापन, गवालियरराज्यकी वर्षाका नकशा और बाजारदर, कभीं कभी जी० आई० पी० रेलवेके विज्ञापन, मालके महसूलकी दर आदि विषय छपते हैं। साधारण समाचार अब उक्त गजटमें नहीं छपते। साधारण समाचारोंके लिये "जयाजीप्रताप" नामसे एक अलग हिन्दी साप्ताहिकपत्र निकलने लगा है। अब हिन्दी समाचार पत्रोंको गवालियार गजटकी जगह बदलेमें यही पत्र मिलता है, गवालियार गजट नहीं। इस पत्रमें अधिक खबरें दूसरे पत्रोंसे नकल होती हैं और उन पत्रोंके नाम इशारेमें दिये जाते हैं। एक दो कालममें अंगरेजी लेख भी होते हैं, जो कभी कभी नकल और कभी कभी रियासतके किसी अंगरेजीदां सज्जनके लिखे होते हैं।

"जयाजीप्रताप" इसी वर्षके जनवरी माससे महाराज जयाजीराव संधियाकी यादगारमें निकाला गया है। इसके सम्पादक बाबू श्रीलाल बी० ए० हैं। अंगरेजी आपकी अच्छी है। पर हिन्दी कैसी है यह खबर नहीं। अखबारमें अधिक लेख नकल होते हैं, इससे सम्पादककी योग्यता जाननेका अवसर नहीं मिलता। आशा है कि आगेको सम्पादक महाशय कुछ अपनी लेखनीका बल दिखावेंगे, जिसकी बड़ी जरूरत है। उक्त महोदयही गवालियार ष्टेट गजटके भी सम्पादक हैं। जयाजीप्रतापका वार्षिक मूल्य २) है। गजटका दाम सरकारी तौर पर ८) और सर्वसाधारणसे १२) वार्षिक है।

मुंशी लछमनदासके बाद रामचरणदास पांच साल तक गवालियर गजटके सम्पादक थे। पीछे सन् १८७३ ई० तक मुंशी ब्रजमोहनलाल गजटके सम्पादक और प्रेसके सुपरिण्टेण्डेण्ट रहे। कोई एक साल बाद

पण्डित उमाचरण प्रेसके सुपरिण्टेण्डेण्ट हुए, उस समय मुंशी कामताप्रसाद गजटके सम्पादक हुए। सन् १९०४ ईस्वीमें पण्डित उमाचरणकी बदली हो गई। तबसे बाबू कृपाशङ्कर प्रेसके सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। इनके समयमें गजटका सम्पादन उमानाथ बागची नामके एक बंगाली महाशय द्वारा हुआ। एक साल पीछे बाबू श्रीलालको उक्त पद दिया गया। वही इस समय सम्पादकके पदपर आरूढ़ हैं।

गवालियारगजटकी हिन्दीका एक नमूना नीचे देते हैं। यह ३ जनवरी सन् १९०४ ई० की संख्यासे दिया जाता है। उस समय हिन्दीका गजट बिलकुल अलग निकलता था।

"इस दुनियामें बड़े-बड़े मुवर्रिख और इन्शाप्रदाज लोग ही गुजरे हैं जिनके कलमने अजीबोगरीब खयालातकी एक नई दुनिया रच दी। या यों कहो कि जमीन आसमानके कुलाबे मिला दिये। लेकिन दुनियामें हमेशा इस कदर नौ ब नौ और ताजा ब ताजा वाकआत होते रहे हैं कि वह लोग उनको नातमाम छोड़कर चल बसे। और बावजूद इसके कि दुनियाको पैदा हुए करोड़ां बल्कि अरबां बरस गुजरे, उसके वाकआत हमेशा नये होते हैं जिनके लिये लुगात और डिक्सनरीमें अलफाज भी नये नहीं मिल सकते। इन वाकआतके सामने आदमीकी उमर बिलकुल कोताह है बल्कि उसका खातमा भी दुनियाके वाकआतसे एक वाकआन है जो मामूलातमें दाखिल हो रहा है। यह वाकआत जिन्दगीको ऐसे चिमटे हुए हैं जैसा मलयागिर पर्वत पर चन्दनके दरख्तको सांप चिमटे हुए होते हैं।"

यह हिन्दी, हिन्दी नहीं उर्दू है और वह भी पुराने जमानेकी, कमसे कम तीस चालीस साल पहलेके जमानेकी। विचार वैसे ही हैं और ढंग भी वैसाही। पर "जयाजीप्रताप" की हिन्दीमें बहुत कुछ परिवर्त्तन दिखाई देता है। यद्यपि उसमें नकलके सिवा असल अर्थात् सम्पादककी

लिखी हुई भाषा कम होती है, तथापि जो नमूना हम नीचे देते हैं, उसके विषयमें हमारा अनुमान है कि उसकी भाषा सम्पादककी भाषा है।

"गत सप्ताहमें गर्म्मीका बड़ा जोर रहा। कभी-कभी रातको सर्दी भी अधिक हो जाती थी। बुधवार २४ मईको पूर्व श्रीमती महारानी विक्टोरियाका स्मारकदिन होनेके कारण प्रेसमें छुट्टी रही। इस वजहसे "जयाजीप्रताप" आज वृहस्पतिवारको प्रकाशित हुआ।"

कच्ची होने पर भी यह हिन्दी हिन्दीके ढंगकी है। आशा होती है कि अब देवनागरी अक्षरोंके प्रसादसे अच्छी हिन्दी भी गवालियर राज्यमें फैलेगी। बहुत कालसे नागरी अक्षरोंका प्रचार रहने पर भी रजवाड़ोंमें शुद्ध और सरल हिन्दी नहीं फैली है। अभीतक वहां पुराने जमानेकी खूसट उर्दू उसी प्रकार जारी है, जैसे अंगरेजी सरकारके उर्दू दफ्तरोंमें। इसका कारण यह है कि अधिकतर रियासतोंमें हिन्दीका प्रचार करनेवाले कायस्थ सज्जन हुए हैं जो फारसी उर्दू पढ़े हुए होते थे और हिन्दी केवल अक्षर मात्र जानते थे। इसीसे रियासतोंमें हिन्दीकी उन्नति नहीं हुई और न शुद्धतापूर्वक नागरी अक्षरोंसे काम लेनेकी रीति पड़ी।

कायस्थों पर जहां यह इलजाम है कि वह उर्दूके बड़े प्रेमी हैं, वहां यह बात भी हिन्दी हितैषियोंके लक्ष्यके योग्य है कि जोधपुर, गवालियर आदिके पुराने उर्दू-हिन्दी मिश्रित अखबार उन्हींके निकाले निकले। इसीसे हिन्दी पर भी उनका कुछ न कुछ एहसान है। उसके लिये हिन्दी उनका शुक्रिया अदा कर सकती है। इसमें कुछ शक नहीं कि वह लोग उर्दूकी भांति हिन्दीके प्रेमी होते तो हिन्दीका बहुत कुछ भला कर सकते। जोधपुरके मुंशी देवीप्रसाद महोदयका ध्यान अब हिन्दीकी ओर अधिक हुआ है। इन कई एक सालमें उन्होंने हिन्दीकी अच्छी सेवा की है और बहुत कुछ करनेका इरादा रखते हैं। आशा है कि इस ढलती उमरमें

भी हिन्दीको वह बहुत कुछ लाभ पहुंचा सकेंगे। अब समय है कि सब सज्जन मिलकर हिन्दीको खूब कामकी चीज बना डालें। इसीसे इस देशका भला होगा।

गवालियर गजटका वर्त्तमान आकार गजट आफ इण्डियाकासा है। पर उसमें पृष्ठ बीसके नीचे ही होते हैं। खूबसूरतीमें भी वह अंगरेजी गजटके तुल्य नहीं होता। हम रियासत और गजट दोनोंकी उन्नति चाहते हैं। एक दिन ऐसा हो सकता है कि सब देशी रियासतोंसे उनके अलग अलग सरकारी गजट हिन्दीभाषामें निकलें और स्वाधीन समाचार-पत्रोंका उनमें आदर हो। प्रेसको वहां स्वाधीनता मिले।

गवालियर गजटके टाइटल पर उक्त रियासतका राजचिह्न (कुंडली-धारी सर्पराजकी मूर्त्ति) होता है। यह चिह्न नये पत्र जयाजीप्रतापके मस्तक पर भी होता है। गवालियर राज्यके टिकट आदि सब पर यह चिह्न होता है।

रियासती अखबार

जयपुर गजट

स्वर्गीय महाराज रामसिंह बहादुरका शासनकाल जयपुरमें राम-राज्य कहला गया। महाराज सवाई जयसिंहने जयपुर नगर बसाकर जो कीर्त्तिलाभ की थी, उससे कई गुनी कीर्त्ति महाराज रामसिंहजीने अपने सुशासनके कारण प्राप्त की। जयपुर राज्यमें उन्होंने जो जो उन्नतिके काम किये उनमेंसे एक काम रियासती प्रेस कायम होना और उससे एक अर्द्धसाप्ताहिक समाचार पत्र निकलना भी है। जयपुर गजटकी नींव उनके शासनकालमें सन् १८७८ ई०में पड़ी।

आरम्भमें इसके सम्पादक बाबू महेन्द्रनाथ सेन हुए। यह जयपुर कौंसिलके मेम्बर थे। उस समय उक्त पत्र अंगरेजी और हिन्दी था। जयपुर कौंसिलके सेक्रेटरी और मेम्बर ठाकुर नन्दकिशोरसिंह प्रधान

मेम्बर बाबू संसारचन्द्र सेन आदि सज्जन उक्त गजटमें अपना लेख देते थे। पीछे मथुरावाले पण्डित श्यामलालजीका प्रबन्ध हुआ। तब भी पुराने लेखक उसमें लिखते थे। कुछ दिन पीछे महाराज रामसिंहजीने आज्ञा दी कि गजट अंगरेजी हिन्दी और उर्दू तीन भाषाओंमें निकला करे। तबसे आज तक वह बराबर उक्त तीनों भाषाओंमें निकलता चला आता है।

उस समय इस पत्रकी दशा अच्छी थी और ग्राहक संख्या भी खासी थी। क्योंकि महाराज रामसिंहजीकी आज्ञा थी कि रियासतके सब जागीरदार उसे अवश्य खरीदें। तब तक प्रेसका प्रबन्ध रियासतके हाथमें था। पीछे स्वर्गीय दीवान ठाकुर फतहसिंहजीने प्रेसका ठीका दे दिया। उसके अनुसार मुंशी महावीरप्रसाद प्रेसके प्रबन्धकर्त्ता हुए। पत्र बराबर तीनों भाषाओंमें अर्द्ध साप्ताहिक निकलता रहा। पर उसका वह दौर-दौरा न रहा। पत्रमें इधर उधरके उर्दू अखबारोंकी नकल होने लगी। गम्भीर लेखोंका अभाव हुआ। आगे चलकर प्रेसका ठीका तो मुंशी महावीरप्रसादके पासही रहा, पर प्रबन्ध उनके भाई कृष्णवल्लभ करने लगे। वह भी उसी पुरानी चालसे पत्रको चलाते रहे और उसकी दशा गिरती रही। जो जागीरदार "जयपुर गजट" खरीदते थे, वह धीरे धीरे ग्राहकोंमेंसे नाम कटाने लगे। पत्रकी बहुत खराब दशा हो गई। कई सालसे वही दशा चली आती है। पढ़े-लिखे आदमी उसे छूते तक नहीं। नामको पत्र निकल रहा है। पन्द्रह सोलह साल हुए उक्त पत्र हमने देखा था। इस समय अनुमान किया था कि बन्द होगया होगा। किन्तु पता लगाने पर जान पड़ा कि अभी उक्त पत्र जीवित है। जयपुर शहर दूसरी दूसरी बातोंमें जिस प्रकार पुरानी लकीरका फकीर है, वैसा ही जयपुर गजट भी पुराने फैशनके हाथ बिका हुआ है। न उसका कोई ठीक सम्पादक है, न कोई लेखोंसे उसकी सहायता करनेवाला है।

अवध अखबार और पायनियारसे साधारण खबरें और तारकी खबरें नकल कर ली जाती हैं। जयपुर गजटकी २४ मई सन् १६०५ ईस्वीकी एक संख्या हमारे सामने है। यह रायल साइजकी डेढ़ शीटके छः पृष्ठ पर छपी हुई है। यही आकार उक्त गजटका बहुत वर्षोंसे चला आता है। इसका पहला और छठा दो पृष्ठ बहुत घिसे और मैले टाइपमें छपे हुए हैं। बाकी चार पृष्ठ लीथोमें छपे हैं।

पहले पृष्ठमें गजटका नाम अंगरेजी और हिन्दी अक्षरोंमें छपा हुआ है। तारीख तीनों अक्षरोंमें है। अंगरेजीमें जयपुर राज प्रेसका एक विज्ञापन है। उसके नीचे एक विज्ञापन उक्त प्रेसका नागरी अक्षरोंमें भी है। पर टाइटलके घिस जानेसे वह पढ़ा कुछ नहीं जाता। बहुत जोर लगाकर हमने इतना पढ़ा कि उक्त प्रेसमें बड़ी सफाईके साथ सब चीजें छप सकती हैं और रङ्गबरङ्गका काम भी छप सकता है। क्यों न हो! छपाई सफाईका विज्ञापन स्वयं इसका नमूना है। कोई अभागा उन अक्षरोंको पढ़ लेगा तभी तो कुछ छपवानेकी हिम्मत करेगा। खैर, उसी पृष्ठके दूसरे कालममें उर्दू अक्षरोंमें हालवे साहबकी गोलियों और मरहमका विज्ञापन है। तीसरे कालममें वही विज्ञापन हिन्दीमें है। चौथे कालममें अंगरेजी पांच पंक्तियां हैं। उनमें उन बच्चोंकी संख्या लिखी गई है जो जयपुर नगरमें २० मईसे २३ मई तक पैदा हुए। उसके नीचे जयपुर नगरका १५ मईका अन्नका भाव हिन्दीमें दिया है। २४ मईके कागजमें शहरका १५ मईका अन्नका भाव छपा है। खबरोंकी ताजगीका यह एक अच्छा नमूना है। दूसरेसे लेकर पांचवें पृष्ठ तक साधारण खबरें और छोटी छोटी तारकी खबरें हैं जो ११ मईसे १३ मई तककी हैं। छठा पृष्ठ एक दम अंगरेजी है। उसमें १७ और १८ जूनकी तारकी दो तीन खबरें हैं। नीचे तीन खबरें सादी हैं। बाकी तीन कालमोंमें जयपुरकी पबलिक लाइब्रेरीकी नई किताबोंकी सूची है। और

कोई समाचार जयपुर नगर या जयपुर राज्यका उसमें नहीं है। गजटका मूल्य बाहरवालोंसे अगाऊ वार्षिक १५।) और पीछे देनेसे २०) है। शहर-वालोंसे कुछ कम है। पर पढ़ा न गया कि कितना कम है।

जयपुरमें प्रेसको स्वाधीनता नहीं है, इससे वहां कोई प्रेस नहीं खोल सकता। बड़ी मुश्किलसे बालचन्द्र नामका एक प्रेस खोला गया है, पर वह पराधीन है। कोई अखबार उसमें नहीं छप सकता। पोलिटिकल चर्चासे जयपुर दरबार बहुत घबराते हैं। इससे कोई आदमी जयपुरमें स्वाधीन समाचार-पत्र नहीं निकाल सकता। स्वर्गीय बाबू कान्तिचन्द्र बड़े राजनीतिविशारद होने पर भी अखबारोंके शत्रु थे। किसी आदमीको स्वतन्त्रतासे बोलनेकी मजाल न थी। वह समय अब चला गया है, तथापि जयपुरके हाकिम लोग अब भी स्वतन्त्रताको पसन्द नहीं करते। पुरानी संकीर्णताको अपने साथ घसीट रहे हैं। जयपुर दरबार चाहे तो "जयपुर गजट" अब भी उन्नत हो सकता है। वहाँ अच्छे अच्छे लेखकोंका अच्छा समागम है। शेक्सपियरके कई एक नाटकोंके अनुवादकर्त्ता पुरोहित गोपीनाथ एम० ए०, पं० बदरीनारायणजी बी० ए०, मिस्टर जैन वैद्य, पं० चन्द्रधर शर्म्मा बी० ए०, पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, शास्त्री पण्डित बालचन्द्र, ज्योतिषी शिवनन्दन शास्त्री, पण्डित रामनिवास, पं० सूर्य्यनारायण एम० ए०, बाबू अर्जुन लाल बी० ए० आदि कितनेही हिन्दीके सुलेखक और विद्वान पुरुष जयपुर राज्यमें मौजूद हैं। इन सब सज्जनोंके रहते भी "जयपुर गजट" इतना रद्दी निकलता है कि जिसे कोई लिखा-पढ़ा आदमी छूता तक नहीं। वह खाली पन्सारियोंकी पुड़ियोंके काम आता है। क्या इस लेख पर किसी ऐसे सज्जनकी दृष्टि पड़ेगी जो इसकी बात जयपुर दरबारके कानोंतक पहुंचा सके। क्या हम आशा कर सकते हैं कि जयपुर दरबार इस पर ध्यान देकर अपने राज्यके गजटकी दशा सुधारें और

उसे एक योग्य सम्पादकके हाथोंमें सौंपेंगे। सुना है बाबू संसारचन्द्र सेन और ठाकुर उमरावसिंह कोटला, समाचारपत्रोंके बड़े प्रेमी हैं। उनके रहते भी जयपुर गजटकी यह दशा है तो सुधारनेकी आशा कब तक की जाय ?

कलकत्तेकी मारवाड़ी-एसोसिएशनवालोंने अपने अभिनन्दन पत्रमें जयपुर दरबारसे प्रार्थना की थी कि आप अपने राज्यमें उर्दूकी जगह हिन्दीका प्रचार कीजिये। दरबारकी तरफसे उत्तर मिला कि जयपुरमें हिन्दीके लिये कुछ रोक टोक नहीं है। क्या दिव्य उत्तर है! प्रार्थी सुनकर चकित हो गये। जयपुरके जिन उच्च कर्म्मचारीकी मारफत यह उत्तर मिला था, वह खूब जानते थे कि जयपुरकी कचहरियोंमें उर्दूहीका अमल दखल है, तिस पर भी वह इस उत्तरसे कुछ विचलित न हुए। पराधीनताने जब पढ़े-लिखे लोगोंके चित्त रियासतोंमें ऐसे छोटे बना रखे हैं तो वहां किसी बेहतरीके लिये क्या आशा की जावे, पर करनी पड़ती है क्योंकि मनुष्यकी आशा उसे प्राण रहते तक लुभाया करती है।

हिन्दीभाषामें कितनेही समाचारपत्र निकले। यदि उनमेंसे आधे भी जीवित रहते तो उनकी संख्या कोड़ियों होती। पर जमानेकी आबहवा उन्हें मवाफिक न आई। वह पैदा होनेके थोड़े-थोड़े दिनोंके बाद मरते गये। उनकी बात एक अलग लेखमें कही जावेगी। आजके लेखमें उन पत्रोंकी बात कहते हैं, जो जारी हैं और लष्टमपष्टम अपनी रक्षा करते चले आते हैं। उनमेंसे एक प्रयागराजका

प्रयागसमाचार

है। इस समय उसका २४ वां वर्ष चलता है। इस पत्रके जन्मदाता स्वर्गीय पण्डित देवकीनन्दन तिवारी थे। उन्होंने इस पत्रको छोटे-छोटे दो पन्नों पर निकाला था। दाम एक संख्याका एक पैसा था।

तिवारीजी बहुतही धनहीन ब्राह्मण थे, इससे उनके पत्रने बड़ी कङ्गाल दशामें कई वर्ष बिताये। वह बेचारे अपना पत्र छपाकर स्वयं कन्धे पर लादे बेचते फिरा करते। लिखनेमें वह बड़े स्वतन्त्र थे। जीमें आता था सो लिखते थे। प्रयागकी खबरें बहुत लिखते थे। लिखनेका ढङ्ग कोई पक्का न था। जब जैसा लिखा जाता वैसाही छप जाता। कानपुरनिवासी स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्रको इस पत्रसे बड़ा प्रेम था। कालाकांकरमें हमने देखा था कि वह सबसे पहले उसे खोलकर पढ़ते थे और उसकी कोई न कोई खबर टीका टिप्पणी सहित "हिन्दोस्थान"में नकल करते थे। "हिन्दीप्रदीप" और "प्रयागसमाचार"में एकबार चखचख भी चल चुकी है। हमने वह नम्बर उक्त दोनों पत्रोंके नहीं पढ़े, पण्डित प्रतापनारायणकी जुबानी उनकी बात सुनी थी। उससे मालूम होता है कि खूब फक्कड़बाजीकी नौबत आई थी। उर्दूके "तूतियेहिन्द" और "अवधपञ्च"में जैसी नोकझोंक हुई थी, उसीका नमूना इन दोनों पत्रोंकी छेड़छाड़ भी थी। वह समयही ऐसा था। अब वैसी बातें अखबार नहीं लिख सकते। पण्डित प्रतापनारायणजी बड़े चावसे दोनों पत्रोंकी बातें सुनाते और छेड़छाड़का आनन्द लिया करते।

अब कई सालसे प्रयागसमाचार पण्डित जगन्नाथ शर्म्मा राजवैद्यके हाथमें है। तबसे इसकी दशा बहुत कुछ बदल गई है। आकार बड़ा हो गया है। लेखोंका ढङ्ग भी ठीक हो गया है। इस समय उसका आकार डबल रायल सीटके दो वरक है। तिस पर मूल्य वही है, जो बहुत छोटे आकारके समय था अर्थात् शहरवालोंसे केवल १) साल और बाहरवालोंसे १।) साल। वैद्यजीके हाथमें आनेके बाद भी इस पत्रकी दशा जल्द-जल्द बदलती रही है। जब जैसा सम्पादक इसे मिला वैसाही रूप इस पत्रका होता गया। अब भी इसकी दशा स्थिर नहीं है। सम्पादक जल्द-जल्द बदलते रहते हैं। कोई सम्पादक साल दो साल

जमकर काम नहीं करता। जहां तक हम जानते हैं, वैद्यजीकी आर्थिक दशा अच्छी है। यदि वह चाहें तो पत्रको बहुत अच्छी दशामें निकाल सकते हैं। प्रयागमें हिन्दी अखबार निकालनेवालेको कई तरहके सुबीते हैं। "पायनियर" जैसा अंगरेजीका पहले नम्बरका दैनिकपत्र वहींसे निकलता है। इससे खबरों और पत्रकी इज्जतके लिये प्रयाग अच्छा स्थान है। फिर युक्तप्रदेश हिन्दीभाषाका प्रधान देश है और प्रयाग उसकी राजधानी। इस हिसाबसे प्रयाग हिन्दीका राजनिवास है। वैद्यजी महाराज कुछ रुपये पत्रको अच्छा करनेकी चेष्टामें खर्च करें और दो-चार सालके लिये चित्तको उदार कर लें तो उनका पत्र प्रयागका एक नामी पत्र हो सकता है। अच्छे सम्पादक रखकर काम चलाया जाय तो "प्रयागसमाचार"की खबरें उसी चावसे हिन्दी जाननेवाले पढ़ें, जिस चावसे पायनियरकी अंगरेजीवाले पढ़ते हैं। भारतवर्षमें अखबार चलानेमें धन नहीं मिलता पर कीर्ति मिलती है। वैद्यजी भी चाहें तो थोड़ेसे रुपये खर्च करके बहुतसी कीर्ति पा सकते हैं।

पिछले कई एक वर्षोंमें इस पत्रको जिन लोगोंने सम्पादन किया है, उनमेंसे कई एकके नाम हम जानते हैं। एक-दो सज्जन इसको बिना किसी प्रकारका वेतन लिये सम्पादन करते थे। वैद्यजीने स्वयं भी सम्पादकका काम किया है और अब भी जरूरत पड़ने पर करते हैं। पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल कुछ दिन इसका सम्पादन कर गये। वह अब बम्बईके श्रीवेङ्कटेश्वर समाचारका सम्पादन करते हैं। कोई एक सालसे अधिक गहमर निवासी बाबू गोपालराम इसे लिखते रहे। आजकलके लेखोंसे विदित होता है कि वैद्यजी स्वयं लिखते हैं।

हिन्दीके और चलते अखबारोंमेंसे एक काशीका

भारतजीवन

है। युक्तप्रदेशमें इसका प्रचार भी खासा है। ३ मार्च सन् १८८४ ई० को

इसने काशीमें जन्म लिया। इस पत्रके सम्पादक और मालिक बाबू रामकृष्ण वर्म्मा हैं। जबसे यह पत्र जारी है, बराबर निकलता चला आता है। उसका मूल्य डाकव्यय सहित १॥) वार्षिक है। आरम्भमें एक शीट रायलके ४ पन्नों पर छपता था। एक बार ८ पन्नों पर छपने लगा था, पर अब ६ पर छपता है। "भारतजीवन" अखबारी हैसियतसे चाहे किसी दशामें क्यों न रहा हो--हिन्दीकी सेवा उससे हुई है, इसमें सन्देह नहीं है। भारतजीवन प्रेसकी पोथियोंसे हिन्दीका बहुत कुछ प्रचार हुआ है। नाटक, उपन्यास, किस्से-कहानी, गजल, दास्तान, कवित्त, कजली आदिकी कितनीही पोथियाँ उक्त प्रेसने छापीं। कई एक बड़ी-बड़ी और कामकी पोथियाँ भी उक्त प्रेससे छपकर निकलीं पर अधिक ध्यान उन पोथियोंके छापने पर रहता है, जो जल्द बिक जावें।

"भारतजीवन" सदा एक दब्बू अखबार रहा है। स्वाधीनतासे लिखनेका उसे कभी हौसिला नहीं हुआ। विशेषकर स्थानीय मामलोंमें साफ-साफ लिखनेको उसकी हिम्मत कभी नहीं हुई। काशीकी कितनीही बड़ी-बड़ी घटनाओंकी वह खबर तक भी नहीं छापता। बहुतसे मामले काशीमें ऐसे हुए हैं, जिनकी खबरें विदेशीय कागजोंमें बहुत जोर-शोरसे छपी हैं, पर "भारतजीवन" उनकी तरफसे एकदम चुप साध गया। "भारतजीवन" की उमरके इन बीस-बाइस सालमें कितनेही भारी-भारी मामले काशीमें होगये हैं, पर उसे उनके विषयमें मौनही धारण करना पड़ा है। काशी अखबार लिखनेवालोंके लिये कुछ कठिन स्थान है। पुलिसकी वहां बड़ी शक्ति है। कोतवालका वहां वैसाही अधिकार रहता चला आया है, जैसा जारका रूसमें। कारण यह कि अनपढ़ गुण्डे लोगोंका बहुत जोर रहता चला आया है और उधर काशीके रईसलोग निरे बोदे और कमहिम्मत होते चले आये हैं। इन दो बातोंने पुलिस और कोतवालके अधिकार वहां बेतरह बढ़ा दिये है। रईसोंको वहाँ

गुण्डे भी दबाते रहे हैं और पुलिस भी। इधर गुण्डे सचमुचही गुण्डे हैं। जो उनसे दबे उसे खूब दबाते हैं, पर जो उन्हें दबावे उससे दबते भी खूबही हैं। इसी कारण पुलिससे वह खूब दबते थे और रईसों पर खूब शेर थे। कभी-कभी पुलिससे उनका खूब मेल भी रहता था। उस समय काशीके रईसोंकी और भी शामत आजाती थी। उनपर दोहरी मार पड़ती थी। अब वह समय नहीं है, तथापि यह दशा एकदम बदल भी नहीं गई है। अब भी पुलिसकी जबरदस्ती काशीमें खूब है और गुण्डोंकी भी वहां खासी चलती बनती है। जबतक एक जबरदस्त अंगरेजी अखबार काशीसे न निकले, तबतक किसी हिन्दी अखबारका वहां स्वाधीनतासे लिखा जाना कठिन है।

काशीकी पुलिसकी जबरदस्तीकी बातें छापनेका साहस "भारत-जीवन" ने कभी नहीं किया। हां, बाहरी अखबारोंमें उनपर बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई है। एक कोतवालकी खबर कलकत्तेके "उचितवक्ता" पत्रने खूब ली थी और अन्तको कोतवाल साहब काशीसे बाहर किये गये थे। इसी प्रकार और काशीकी कितनीही बातें हैं, जिन पर बाहरके अखबारोंको लिखापढ़ी करना पड़ती है। "भारतजीवन" उनके विषयमें चुप रह जाता है।

"भारतजीवन" के सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्म्मा हैं। सहकारी सम्पादक बहुत लोग हुए हैं। उनमेंसे स्वर्गीय बाबू कार्तिकप्रसादजीने इसकी कई साल सेवा की, वह एक खासे ढङ्ग पर इस पत्रको चलाते रहे। उनकी बीमारीके दिनोंमें तथा उनकी मृत्युके बाद बाबू हरिकृष्ण जौहर तथा गंगाप्रसाद गुप्तने कुछ दिन इसका सम्पादन किया है। यहां यह भी बता देना उचित है कि "भारतजीवन" के सहकारी सम्पादक ही असली सम्पादक होते हैं। सम्पादकका पद सम्पादक महाशयने अपने

लये खाली खूबसूरतीके लिये रख लिया है। आजकल मालूम नहीं, कौन सिहकारी सम्पादक हैं।

"भारतजीवन" एक प्रान्तीय पत्र है। अपनेही प्रान्तमें यह अधिक फूलाफला है। कजरी, टप्पे, ठुमरी, बिरहा, गजल, लावनी, किस्से-कहानी, उपन्यास, बदमाशोंकी बोलचाल आदिकी पोथियां छापकर तथा ताश, शतरञ्ज, पहेली, गजल आदिकी बातें अखबारमें प्रकाशित करके वह अपने नगर और प्रांतके लोगोंको रिझाता रहा हैं। कठिन जान पड़ता है कि वह इस वृत्तसे बाहर निकले। इससे काशीमें एक ऐसे अखबारकी बड़ी जरूरत है जो वहांके फिसड्डी, निकम्मे, आलसी रईसोंको होश दिलानेके लिये उनके कानोंके पास जाकर नक्कारा बजावे और उनका फिसड्डीपन छुड़ावे।

तीसरा दौर

हिन्दी-बङ्गवासी

वैशाख संवत् १९४७में कलकत्तेके बङ्गवासी प्रेससे "हिन्दी बङ्गवासी" नामका एक समाचारपत्र निकला। इसके मालिक मनेजर सब बंगाली और सम्पादक भी बंगाली थे। उनका नाम पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती है, जो आजकल बम्बईके श्रीवेङ्कटेश्वर समाचारके सम्पादक हैं। बङ्गाली होनेपर भी आपने सम्पादन हिन्दी समाचारपत्रोंहीका किया है। कुछ दिन आप कालाकांकरके दैनिक हिन्दी पत्र "हिन्दोस्थान" के सम्पादक थे। पीछे भारतमित्रके सम्पादक हुए। "भारतमित्र" छोड़नेपर आपने बङ्गवासी प्रेसमें जाकर हिन्दी बङ्गवासी नामका एक बड़े आकारका हिन्दी अखबार चलाया, जिसको आगामी अप्रेल मासमें पूरे १६ साल हो जायंगे। आप उसके सम्पादक बने।

"हिन्दी बङ्गवासी" एक दम नये ढंगका अखबार निकला। हिन्दीमें उससे पहले वैसा अखबार कभी न निकला था। वह डबल

रायल आकारके दो बड़े-बड़े पन्नों पर निकला। दो रुपये साल उसकी कीमत हुई। प्रति सप्ताह कमसे कम एक चित्र उसमें प्रकाशित होने लगा। खबरें ताजा ताजा निकलने लगीं। लेख भी अच्छे होते थे! एक-आध लेख हंसी-दिल्लगीका भी होता था। जिनके चित्र छपते थे, उनके चरित्र भी बहुधा निकला करते थे। बहुतसी ऐसी बातें उसमें छपने लगीं, जो किसी और हिन्दी अखबारमें न होती थीं। केवल एक ही दोष उसमें था कि उसकी भाषा बङ्गला ढङ्गकी होती थी। इसका कारण यही था कि उसका सम्पादक बङ्गाली था, उस समय वह बहुत साफ हिन्दी नहीं लिख सकता था और हिन्दीके अदब कायदे भी कम जानता था। इससे हिन्दीके दो चार सुलेखक उसकी किसी किसी बातसे नाराज हुए। पर इससे उसकी उन्नतिमें कुछ बाधा न पड़ी, वह खूब फैलने लगा। विशेषकर बिहार और युक्तप्रदेशमें उसका बड़ा आदर हुआ। थोड़ेही दिनोंमें उसकी ग्राहक संख्या दो हजार तक होगई। इतने ग्राहक कभी किसी पत्रके न हुए थे। "उचितवक्ता" के उससे पहले एक बार पन्द्रह सौ तक ग्राहक हुए थे। और भी शायद किसी एकाध अखबारके इतने या इससे अधिक ग्राहक हुए थे। पर उनकी वह दशा बहुत दिनों तक स्थिर न रही।

हिन्दी बङ्गवासीको जारी हुए एक वर्षसे अधिक हुआ था कि अचानक उसके प्रसिद्ध होनेका एक कारण निकल आया। वह कारण एक भारी विपदमें उत्पन्न हुआ था। "एज आफ कनसेण्ट बिल" सरकारने बड़ी जबरदस्तीसे पास किया था। "बंगवासी" उसका बड़ा विरोधी था। सरकारकी इस जबरदस्ती पर उसने कुछ कड़े लेख लिखे थे। सरकारने अप्रसन्न होकर "बंगवासी" पर राजविद्रोहका मुकदमा चला दिया। बंगवासीके मालिक, मनेजर, सम्पादक और प्रिण्टरको २।३ दिन हवालातमें रहना पड़ा। अन्तमें वह कोई एक लाखकी जमानत पर छूटे। कलकत्ता

हाईकोर्टमें मुकदमा गया। उस समय सर कोमर पेथरम साहब कलकत्ता हाईकोर्टके चीफ जष्टिस थे। उनकी अदालतमें यह मुकदमा पेश हुआ। जूरियोंमेंसे अधिकने बंगवासीको दोषी कहा, पर कुछने निर्दोष भी कहा। उदार-हृदय चीफ जष्टिसने कहा कि जब तक सब जूरियोंकी एक राय न हो मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं इन जूरियोंको हटा देता हूं, नये जूरी लेकर फिरसे विचार होगा। इतनी मुहलत मिल जाने पर बंगालके बहुतसे शिक्षित लोगों और अखबारवालोंने एकत्र होकर सरकारसे बंगवासीको छोड़ देनेकी प्रार्थना की। लार्ड लैंसडौन और छोटेलाट सर चार्लस इलियटकी सरकार हाईकोर्टके फैसलेसे ढीली हो चुकी थी, उसने वह प्रार्थना स्वीकार की। बंगवासी एक हलकीसी माफी मांगकर बच गया। गरीब अखबारवालोंका सरकारके पल्लेमें फंसना शेरके पंजेमें फंसना है, बंगवासी पर वह बड़ी भारी विपद आई थी पर हिन्दी बंगवासीकी उससे बड़ी शुहरत हो गई। यद्यपि दोनों कागज अलग २ थे। पर उस समय अधिक लोग यही समझते थे कि "बङ्गवासी" और "हिन्दी बङ्गवासी" दोनों एकही वस्तु हैं, केवल भाषाका भेद है। इसी खयालसे हिन्दी बङ्गवासीका उस समय बड़ा नाम हुआ।

हिन्दी बङ्गवासीके निकलनेसे दोही सालके अन्दर कई एक हिन्दी अखबार बन्द होगये, कई एककी कमर टूट गई। जब २) सालमें एक बड़ा और अच्छा अखबार मिलने लगा तो छोटे छोटे अधिक दामोंके अखबार कौन लेता? यही कारण दूसरे हिन्दी अखबारोंके बन्द होजाने या दब जानेका हुआ। हिन्दी अखबार वालोंमें इस बातका किसीको ध्यान भी न था कि २) सालमें एक बहुत बड़ा अखबार चल सकता है। हिन्दीवाले क्या बंगलावाले भी कई एक साल पहले नहीं जानते थे कि इतने थोड़े दामोंमें एक इतना बड़ा अखबार चल सकता है। केवल बंगवासी वालोंकोही इस बातका अनुभव था।

अपनी बात

गत २६ सालका चिट्ठा

भगवान कृष्णदेवकी कृपासे भारतमित्रने अपनी आयुके २६ साल पूरे करके २७ वें सालमें पांव रखा। हिन्दीके चलते पत्रोंमें यह बहुत पुराना पत्र है। इसकी इस २६ सालकी जीवनी पर जरा ध्यान देनेसे बहुतसी कामकी बातें मालूम हो सकती हैं। इससे आज भारतमित्रकी आत्म-कहानी सुनाई जाती है। इन वर्षोंमें उसकी गति स्थिति और उन्नतिकी कैसी दशा रही तथा हिन्दी भाषाका तबसे क्या फेरफार हुआ यही दो एक विषय इस लेखमें दिखाना चाहते हैं।

जन्म समय

ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा संवत १९३५ को भारतमित्रका जन्म हुआ। उस दिन अंगरेजी तारीख १७ मई सन् १८७८ ई० था। इसकी पहली संख्या आधे रायल शीट दो पन्नों पर छपी थी! इसके मस्तक पर इसके नामके नीचे इसका मोटिव या उद्देश्य यह लिखा गया था—

जयोऽस्तु सत्यनिष्ठानां येषां सर्वे मनोरथाः।

इसका मूल्य प्रति संख्या दो पैसे रखा गया था। इसके चौथे पृष्ठके अन्तमें एक निवेदन छपा था जिसकी ठीक नकल नीचे की जाती है—

निवेदन

विदित हो कि यह पत्र प्रतिपक्षमें एक बार प्रकाशित होगा, परन्तु बिना सर्ब साधारण की सहायताके इस्के चिरस्थाई होने कि आशा निराशा मात्र है इस लिये सर्बसाधारणको उचित है कि इसकी सहायता करें और यदि यह पत्र ईश्वरकी इच्छासे समाजमें प्रचलित हुआ तो और इस्के ५ सौ ग्राहक हुए तो शीघ्रही साप्ताहिक होके प्रचारित होगा।

कलकत्ता बड़ाबाजार सूतापट्टी	छोटूलाल मिश्र दुर्गाप्रसाद मिश्र

* * *

इस निवेदनसे समझमें आता है कि पण्डित छोटूलालजी मिश्र और पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्र इस पत्रके जन्मदाता हैं। इसकी पहली संख्या सरस्वती प्रेस कलकत्तेमें छपी थी जो ४८ मछवाबाजार रोडमें था और जिसके प्रिण्टर बाबू क्षेत्रमोहन मुकर्जी थे। ऊपरके निवेदनकी भाषासे उस समयकी हिन्दी भाषाका भी बहुत कुछ पता लगता है। हिन्दी लिखनेकी उस समय क्या रीति थी वह भी इससे स्पष्ट होती है। इन सब बातोंको अधिक स्पष्टतासे दिखानेके लिये हम भारतमित्रके पहले नम्बरका सबसे पहला लेख पूरा नकल कर देते हैं।

"समाचारपत्रोंसे जो उपकार होता है, वो बम्बई और बंगालेको देखनेसे साफ जान पड़गा; इस लिये इस विषयमें बहोत लिखनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। क्योंकि जबतक जिस देशमें, जिस भाषामें और जिस समाजमें समाचारपत्रका चलन नहीं है, तब तक उसकी उन्नतिकी आशा भी दुराशा मात्र है, कारण ये वो चीज है कि जिस्से घरमे कोठड़ीके भीतर बैठके सारी दुनियांको हथेली पर देख लो अर्थात् अखण्डभूमण्डलमे जहां जो विशेष बात होती है वो इसीके द्वारा प्रकाश होती है और अपना दुःख सुख प्रधान राज्याधिकारियोंको सुनाने और प्रार्थना करनेका येही मुख्य उपाय है यदि समाचारपत्र नहीं होय तो राजाको अपने प्रजाका कुछ हाल नहीं मालुम हो सके ऐसी दशामें राज्य-शासन भी अच्छी तरहसे नहीं हो सक्ता इसी लिये सुसभ्य प्रजाहितैषी राजालोग समाचारपत्रोंको स्वाधीनता देके उत्साहित करते हैं इससे राजा प्रजा दोनोंको सुख प्राप्त होता है, कारण राजाको बिना परिश्रम वेतनके संसारके दूत मिल जाते हैं जो कि सर्वदा राजाको नाना तरहकी खबरोंसे सावधान किया करें हैं और प्रजाको राजातक अपना कष्ट और अभावके निवेदन करनेका मुख्य उपाय और सुगम रस्ता यही है, क्योंकि समाचार पत्र प्रजाका प्रतिनिधि स्वरूप होता है

और मुख्य तो हृदयसंस्कार करनेको जैसा ये समर्थ है वैसा तो और कोई भी नहीं है।

प्रथम तो समाचारपत्र राज्यका प्रधान मन्त्री और मध्यस्थ होता है, दूसरे वाणिज्यका तो जीवनस्वरूप है, जो कुछ बाणिज्यकी उन्नति और बढ़ती दिखाई देती है वो इसीके प्रसादसे है, क्योंकि आज कल हिन्दुस्तानमें सबसे बढ़कर बाणिज्यकी उन्नति बम्बईवालोंने करी है, यद्यपि कलकत्ता राजधानी है, और वाणिज्य भी होता है तो भी नफा और लाभ उन्हीं लोगोंको है जिनकी भाषामें समाचारपत्र प्रचलित है यहांके वनज व्योपारमे जितना लाभ अंगरेज यहूदी पारसी लोगोंको होता है, इस्का क्या कारण है? हमारी समझमे तो खबरका कागज ही इस्का प्रधान कारण है। क्योंकि इस द्वारा देश देशांतरके मालका भाव और आमदनी रफतनीकी खबरोंसे मालकी स्थिति और (इस्टाक) जाननेसे और सब देश और समयकी घटना मालुम होनेसे वाणिज्यका भविष्यत अनुमान होय है, और तदनुसार काम करनेसे विशेष लाभ होना संभव है।

तीसरे इससे प्राय कृतविद्य देशहितैषी लोग अपने अपने चित्तका भाव लिखके प्रकाश करते हैं उस द्वारा बिना पूछे भी अच्छे लोगोंको परामर्श और सलाह मिलती है।

चाथे इसमें बहोतसे ऐसे विषय रहते हैं जिसके पढ़नेसे मनुष्य बहुदर्शी और गुणवान हो जाते हैं। इस लिये उनको सभी काम सुगम हो जाते हैं और क्रमसे उन्नति होके वहोत लाभ होता है।

परन्तु बड़े दुःखका विषय है कि ऐसा उपकारी और देशहितकारी समाचारपत्र हिन्दुस्थानकी राजधानी जो कि अब कलकत्ता है इसमे हिन्दुस्तानी महाजनोंके पढ़ने लायक कोई भी नहीं है इससे हम लोगोंकी बहोत हानी होती है।

बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि आजतक ऐसा कोई समाचारपत्र प्रचारित नहीं हुआ जिससे हियांके हिन्दुस्तानी लोग भी पृथ्वीके दूसरे लोगोंकी तरह अपने अक्षर और अपनी बोलीमें पृथ्वीकी समस्त घटनाको जान सकें क्या यह बड़ी पछतावेकी बात नहीं है जब कि इस १६ वी सदीमें बङ्गाली तथा अन्यान्य जातिके आदमी अपनी २ बोलीमें केवल एक समाचारपत्रकी उन्नतिसे विद्यामे ज्ञानमे दिन दिन उन्नत हुए जाते हैं और हमारे हिन्दुस्तानी भाई केवल अज्ञान खटिया पर पैर फैलाये हुए पड़े हैं और ऐसा कोई नहीं जो इनको उस खटिया परसे उठाके ज्ञानकी किरण उनके अन्तःकरणमें प्रकाश करे बहोत दिनोंसे हम आशा कर्ते थे कि कोइ विद्वान बहुदर्शी आदमी इस अभावको दूर करनेकी चेष्टा करेंगे परन्तु आशा परिपूर्ण न हुई।

इस आशाके परिपूर्ण न होनेसे हिन्दुस्तानियोंको सांसारिक खबर जाननेके लिये बंगालियोंका मुंह ताकते देखकर हमारे चित्तमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि एक ऐसा समाचारपत्र प्रचलित हो कि जिसको हमारे हिन्दुस्तानी और मारवाड़ी लोग अच्छी तरह पढ़ सकें तो इससे हमारी समाजकी अवश्य उन्नति होगी।

दूसरे कई एक मित्रोंने भी हमको इस भारी कामको कर्नेकी परामर्श दी और उन्हींकी परामर्शसे हमने इसको सर्वसाधारणके समीप भेजनेके लिये स्थिर किया।

किन्तु एक बार यह चिन्ता हमारे चित्तको उत्साहित कर्ती थी दूसरी बार यह चित्तमें आता था कि इस भारी काममें अग्रसर होना हमारे ऐसे अयोग्य और मूर्खका केवल सर्वसाधारणके आगे अपनी हंसी कराना है परन्तु अन्तको कइ एक मित्रोंकी सहायतासे और सर्वसाधारणकी सहायता पानेकी आशासे हम इस भारतमित्रको सर्वसाधारणके पास प्रेरण करते हैं (और जिससे सब आदमी इसको ले सकें इस लिये इसका

मूल्य केवल दो पैसा है) अब सबसे हमारी यह प्रार्थना है कि इस भारतमित्रको अपना देशी समझके आदरसे ग्रहण करें।"

बांकीपुरका "बिहारबंधु" भारतमित्रसे पुराना है। उसने भारत-मित्रको पाकर जो आलोचना की थी उसका जरासा नमूना दिखाते हैं। उससे भी उस समयकी भाषाका पता मिलेगा।

"चन्द दिनोंसे नागरी हर्फोंमें एक भारतमित्र नामका अखबार कलकत्तेसे निकलने लगा है। अभी इस अखबारकी लिखावट इतनी उमदे नहीं है लेकिन उम्मीद है कि थोड़े दिनोंके बाद लिखावट अच्छी हो जायगी।"

तीन संख्याओं तक भारतमित्रका वार्षिक मूल्य स्थिर नहीं हुआ था। चौथी संख्यामें वार्षिक ।||) मूल्य और ।||) आना डाक महसूल स्थिर हुआ। यहां तक यह पाक्षिक था। १० वीं संख्यासे साप्ताहिक हुआ और हर वृहस्पतिवारको निकलने लगा। मूल्य भी बढ़कर तीन रुपये साल नियत हुआ। इसका आफिस ६० न० सूतापट्टीमें शालग्राम खन्ना एण्ड कम्पनीकी दुकानमें स्थापित हुआ। उस समय इसके लिखनेका रंग ढंग अच्छा हो गया। वाणिज्य राजनीति देशनीति आदिके लेख इसमें दिखाई देने लगे।

१५ वीं संख्यामें इसका संस्कृत मोटिव बदल कर हिन्दीमें इस प्रकार बना—

सगुण खनित्र बिचित्र अति खोले सबके चित्र।
शोधै नर चारित्र यह भारतमित्र पवित्र॥

२२ वीं संख्या तक उसी आकारमें छपकर इसने उन्नति की। २२ वीं संख्या १६ दिसम्बर सन् १८७८ ई० को डिमाई आकारके पूरे दो पन्नों पर निकली। तबसे यह पूर्णचन्द्रोदय यन्त्रमें छपने लगा।

प्रथम वर्ष २६ दिसम्बर १८७८ ई० तक "भारतमित्र" की २४ संख्याएं निकलीं।

दूसरा वर्ष जनवरी १८७६ ई० से आरम्भ हुआ। जो हिन्दी मोटिव पत्रके मस्तक पर लिखा जाता था, वह उठ गया। ८ मई १८७६ का भारतमित्र अपने घरके छापेखानेमें छपकर निकला और उसका आकार भी दूना हो गया अर्थात् डिमाई साईजके चार वरकों पर छपने लगा। इस प्रकार एक साल बाद भारतमित्रके घरका प्रेस हुआ। यह वह समय था कि जब कलकत्तेमें हिन्दीका न कोई प्रेस था, न कोई अखबार। हिन्दी छापने वालोंको बंगाली प्रेसोंमें जाकर काम निकालना पड़ता था। कलकत्तेमें बंगभाषाके आजकल जो नामी पत्र कहलाते हैं, वह उस समय भविष्यके गर्भमें निहित थे; बंगभाषाके जो पत्र उस समय जारी थे, उनमें "सहचर" और "सोमप्रकाश" का बहुत नाम था। अब उक्त दोनों पत्र नहीं हैं। हिन्दीके पत्रोंमें उस समय बाबू हरिश्चन्द्रकी "कविवचन सुधा" नामकी पत्रिका प्रसिद्ध थी। "बिहारबन्धु" भी निकलता था। भारतमित्रके आरम्भमें ही उसके साथ नोक झोक होगई थी। नोक झोक-का कारण वही वाक्य था, जो हमने ऊपर उद्धृत किया है। बिहारबन्धुजी भारतमित्रकी उस समयकी भाषाको बुरा कहने चले थे, पर वह स्वयं कितनी अच्छी भाषा लिखते थे, वह उस नमूनेसे देखना चाहिये। जान पड़ता है कि नोक झोक सनातनसे चली आती है। वह मनुष्यके स्वभावसे मिली हुई है।

एक सालके भीतर भारतमित्रको कई संवाददाता मिल गये थे। पत्र-प्रेरकोंके लेख इसमें छपने लगे थे। २२ जून सन् १८७६ के भारतमित्रमें श्रीराधाचरण गोस्वामीजीकी एक चिट्ठी छपी है, जिसमें आनन्द प्रकाश किया है कि स्वामी दयानन्दसे वेद सीखनेके लिये कई एक अमेरिकाके पादरी बम्बईमें आये हैं। उसी संख्यामें एक चिट्ठी रमाबाईकी छपी है,

जो आजकल पूनामें कृस्तान धर्म्मकी वृद्धि कर रही हैं। तब यह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण कन्या ब्राह्मण कन्या ही बनी हुई थी। सैर करती बंगालमें आई थी, आसाममें कामाख्याके दर्शनको गई थी। उसीका वर्णन उसने अपनी चिट्ठीमें किया है।

३ जुलाई सन् १८७९ ईस्वीसे भारतमित्रका आकार और बढ़कर रायल साईजके ४ वर्क हो गया। कागज भी कुछ और अच्छा हो गया। अब वह इसी आकारमें निकलने लगा। तीसरे सालका भारतमित्र अच्छे अखबारोंकी गिन्तीमें हो गया। उसमें विद्वानोंका अच्छा जमाव हो गया। और लेख आदिकी भी एक अच्छी शृङ्खला बनाई। इन दो तीन सालमें इसकी भाषाकी भी अच्छी उन्नति हुई। विज्ञापन अधिक निकलनेसे कुछ सज्जन उस समय बहुत घबराये थे। विश्वनाथ नामके एक सज्जनने चिढ़कर लिखा था कि इसका नाम इश्तहार-पत्र होना चाहिये। सन् १८८१ ईस्वीके जनवरीकी संख्याओंमें इस विषयके वादानुवादकी कई एक चिट्ठियां छपी हैं। हिन्दीमें केवल भारतमित्रही पत्र था, जिसमें पहले पहल विज्ञापनोंका इतना जमाव हुआ था। हिन्दीके उस समय जो पत्र थे, उनमें विज्ञापन बहुत कम होता था। इसीसे शायद उस समयके लोग विज्ञापनोंसे नाराज हुए थे। पर अब भी बहुतसे लोग विज्ञापनोंसे नाराज होते हैं। अब भी विज्ञापनोंकी आलोचना करके कुछ सज्जन कभी कभी अपनी अनुभव-शीलताका परिचय दिया करते हैं। पर उन्हें यह विचार कर लेना चाहिये कि सस्ते और बड़े अखबार विना विज्ञापन नहीं मिल सकते। अगर विज्ञापन न हों तो ग्राहक लोग जिस मूल्य पर अखबार पाते हैं, उससे दूना देकर भी शायद न पा सकें।

सन् १८८१ का भारतमित्रका फाईल देखनेसे स्पष्ट होता है कि इस समय वह योग्यतासे सम्पादित होता था और हिन्दी पत्रोंमें बहुत प्रति-

ष्ठित गिना जाने लगा था। बाबू हरिश्चन्द्र तब बहुत कुछ प्रतिष्ठा पा-चुके थे और हिन्दीके लिये बहुत कुछ कर चुके थे। उनका एक विज्ञा-पन उस सालके भारतमित्रके कई अङ्कोंमें छपा है। उसकी नकल छापे विना हम रह नहीं सकते हैं—

"सूचना

गोवधनिवारण विषयक भाषा काव्य जो रचना करेगा उसको ५) १०) १५) २०) २५) जिस योग्य होगा पुरस्कार दिया जायगा। कोई नाटक या उपाख्यान (नावेल दुःखान्त बहुत अच्छा किसी विषयपर) कोई लिखे जिसकी कथा मनोहर और करुणारसपूर्ण और आर्य्यजनके चित्तमें घृणा लज्जा और उत्साह बढ़ानेवाली हो तो ५०) से १००) तक पारि-तोपिक दिया जायगा, ग्रन्थ उत्तम विचित्र कथा पूर्ण और छोटा न हो।

हरिश्चन्द्र।"

इस विज्ञापनके आरम्भकी भाषा बहुत ढीली है, इसमें कई शब्द भर्तीके हैं और उसके अन्तिम वाक्यसे वह अर्थ नहीं निकलता जो निकलना चाहिये। ऐसी भाषाकी उस समय कुछ परवा नहीं की जाती थी। पर यह कुछ दोषकी बात नहीं है, क्योंकि तब भाषा बन रही थी। अब तबसे बहुत उन्नति हुई है। आगे और उन्नति होनेसे आज-कलकी भाषामें भी उस समयके लोगोंको बहुत कुछ दोष दिखाई देंगे। यही संसारका नियम है।

उन दिनों स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र प्रचलित हिन्दीमें पद्य लिखनेकी ओर भी झुके थे। उनका उस ढङ्गका एक पद्य ८ सितम्बर सन् १८८१ ई० के भारतमित्रमें छपा है। उसमेंसे कुछ नीचे नकल करते हैं—

"बरसा सिरपर आगई हरी हुई सब भूम।
बागोंमें झूले पड़े रहे भ्रमरगण झूम॥
बीरबहूटी मखमली बूटीसी अति लाल।
हरे गलीचे पर फिरें शोभा बड़ी रसाल॥"

लिखनेकी चेष्टा की है पर ठीक हो नहीं सका। "फिरती है" की जगह "फिरे" लिखा है तथा अच्छा लिखा है। आगे वसन्त ऋतुका वर्णन है, उसका भी नमूना देखिये—

"फागुनके दिन बीत चले अब ऋतु वसन्त आई।
बदला समां चली झोंकेसे रूखी पुरवाई॥
गर्मीके आगम दिखलाये रात लगी घटने।
कुहू कुहू कोयल पेड़ोंपर बैठ लगी रटने॥
पक्के धान पान पियराने आम भी बौराने।
हुइ पतझार, लगे कोपलमें पत्ते फिर आने॥"

पकेको 'पक्के' लिखना पड़ा है और 'भी' भारी हो गई है। इस प्रकारकी बहुतसी कठिनाइयां वर्तमान हिन्दीमें कविता करनेवालोंको पड़ती हैं और पड़ेंगी। पण्डित श्रीधर पाठकजीने एकान्तवासी योगीमें "कहां जलैहै वह आगी" लिखा है। लिखना चाहिये था 'कहां जलती है वह आग'। स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र उस तरहकी कविता बहुत साफ लिखते थे। लिखनेवाले जब लिखेंगे तो मैदान साफ हो जायगा, इतनी कठिनाइयां नहीं रहेंगी।

लेखप्रणाली

भारतमित्रके जन्म समय लार्ड लिटनका प्रेस एक्ट देशी अखबारोंके सिर पर गरजता था। इससे आरम्भके दो तीन वर्षोंमें उसमें राजनीति सम्बन्धी लेखोंकी कमी है। पर उस समय काबुलकी लड़ाई चल पड़ी थी, इससे उसकी खबरोंसे भारतमित्रकी अच्छी नामवरी थी। सन् १८८१ ई० देशी अखबारोंके लिये अच्छा था। उसमें लार्ड रिपन भारतके बड़े लाट हो गये थे, इससे देशी अखबारोंके शिथिल शरीरमें फिर उष्णताका सञ्चार हुआ। उस वर्ष भारतमित्रमें खूब राजनीतिक चर्चा है और खासे लेख हैं। आवश्यक सामयिक बातोंकी बराबर

आलोचना हुई है और स्वाधीनतासे राय दी गई है। लार्ड रिपनकी राजनीति पर अच्छे लेख लिखे गये हैं। साहब लोगोंके अंगरेजी अखबार भारतमें सदासे अङ्गरेज राजपुरुषोंकी हिमायत और भारत-वासियोंका विरोध करते आये हैं, उनकी भी बहुत ठीक आलोचना की गई है। मुलतानमें उस साल हिन्दू मुसलमानोंमें फसाद हुआ था। अङ्गरेजी अखबार उसमें हाकिमोंकी तरफदारी करते थे। इस विषयमें कई लगातार लेख भारतमित्रमें निकले हैं और खूब मौकेके निकले हैं।

मूल्य कम होना

साप्ताहिक होनेके बादसे भारतमित्रका मूल्य शहरके ग्राहकोंसे वार्षिक १॥) और बाहरवालोंसे ३=) था, क्योंकि उस समय अखबारोंका महसूल आध आना था। प्रति सप्ताह आध आनेके हिसाबसे साल-भरका डाक महसूल १॥=) होता है। लार्ड रिपनने कृपाकरके तीन तोलेके अखबारोंका महसूल एक पैसा कर दिया। इससे भारतमित्रने भी २४ नवम्बर सन् १८८१ ईस्वीसे अपना दाम घटा दिया। बाहरवालोंसे ३=) की जगह २॥) लेने लगा।

५ जनवरी १८८२ ईस्वीके भारतमित्रमें नये वर्षका लेख लिखते हुए गत वर्षकी समालोचना हुई है। उसमें हिन्दी समाचार पत्रोंकी भी बात है। उसी सालसे भारतमित्रका ढङ्ग और अच्छा और साफ हुआ है। उस साल अच्छे अच्छे विषयों पर लेख लिखे गये हैं। २६ जनवरीके अंकमें पहला लेख प्रेस एक्टके उठ जानेका है। देशी अखबारोंके उक्त कानूनने हाथ पैर जकड़ दिये थे। उसके मारे वह अपना स्वाधीन लेख तो क्या स्वाधीन अङ्गरेजी लेखोंका तरजमा तक नहीं छाप सकते थे। इस एक्टके दूर हो जानेसे भारतमित्रको और भी स्वाधीनतासे लिखनेका अवसर मिला। आरम्भहीसे भारतमित्रका कामकी बातोंकी ओर ध्यान रहता है। शहर हो या मुफस्सिल, दोनोंकी

जरूरी बातोंपर उचित राय प्रगट करनेकी भारतमित्रकी पुरानी आदत है। नगरकी सफाई आदिके विषयमें जिस प्रकार आजकल भारत-मित्रको लिखना पड़ता है, बीस साल पहले भी उसे उसी प्रकार लिखना पड़ा है। २३ फरवरी सन् १८८२ के अंकमें दिखाया गया है कि कलकत्तेके दक्षिण विभाग अर्थात् अंगरेजी मुहल्लोंमें खूब सफाई रहती है, पर हिन्दुस्थानियोंके बसनेकी जगह उत्तर विभागमें खूब कूड़ा करकट फैला रहता है। २० साल पहले जिस बातका रोना था, वह अब भी है, आगे और कबतक रहे सो भगवान जाने।

लेखप्रणालीकी उन्नति

योंतो दो साल पहलेहीसे भारतमित्रकी लेख प्रणाली उन्नत होगई थी, पर सन् १८८३ ईस्वीसे उसकी और भी उन्नति हुई। कारण यह कि लार्ड रिपनने देशी पत्रोंको प्यारकी दृष्टिसे देखा था। उस समय इलबर्ट साहबके बिलको लेकर बड़ा आन्दोलन मचा था। गोरे साहब उससे बहुत घबरा गये थे। उनके जोश और गुस्सेका ठिकाना न था। इस विषयके लेख भारतमित्रमें खूब धूम धामसे निकलते थे। ८ मार्चके अङ्कमें 'टाउनहालकी राक्षसी सभा' और 'कुफर कचहरी' नामके दो लेख उसी विषयमें निकले हैं। पहला गम्भीर है, दूसरा दिल्लगीका। उस समय भारतमित्रकी भाषा ऐसी सुधरी हुई थी कि बहुत हिन्दी पत्रोंकी अब तक भी वैसी नहीं हुई है और उसमें वही सरल रीति मौजूद है, जिस पर आज कल भारतमित्र चल रहा है।

इलबर्ट बिलके विषयमें भारतमित्रके लेख और भी कई हफ्ते तक जारी रहे। मईके अङ्कोंमें बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-मुकदमेके लेख भरे हुए हैं। उस मुकदमेकी कलकत्तेमें इलबर्ट बिलसे कम धूम नहीं पड़ी थी। एक मुकद्दमेमें जस्टिस नारिसने शालिग्रामजीकी मूर्ति अदालतमें

मंगवाई थी। बाबू सुरेन्द्रनाथने अपने पत्र "बङ्गाली"में इसकी निन्दा की थी और दिखाया था कि अदालतमें ठाकुरजीका मंगवाया जाना उचित नहीं हुआ। सुरेन्द्र बाबूका ऐसा लिखना अदालतकी हतकइज्जत समझा गया। उन पर समन जारी हुआ और २४ घण्टेके भीतर उनका मुकद्दमा चीफ जष्टिस, जष्टिस नारिस, मेकडालन, कनिंघम और मित्रके सामन पेश हुआ। इसमें सुरेन्द्र बाबूको दो महीनेकी दीवानी जेलकी सजा हुई। १० मईके भारतमित्रमें इस पर पांच कालमका लेख है। इस पर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ, इससे क्रोड़पत्र निकाल कर चार कालमका लेख और लिखा। यह वही मुकद्दमा है, जिसमें अदालतके अनुकूल गवाही देनेके लिये काशीके एक महामहोपाध्याय भी दौड़े थे, जिनके एक नये व्यवस्थापत्र पर हस्ताक्षर करनेकी बात हम दो सप्ताह पहले लिख चुके हैं। जरूरी खबरोंके लिये भारतमित्रमें क्रोड़पत्र समय समय पर बराबर निकला करते थे।

भारतमित्रके सन् १८८३ के अङ्कोंमें इलबर्ट बिल और सुरेन्द्रनाथकी बात महीनों चली है। राजा शिवप्रसाद इलबर्ट बिलके विरोधी हुए थे, इससे उनकी चर्चा बहुत कुछ चली थी। इस प्रकार सुरेन्द्रनाथकी जेल पर भी काशीका कविवचनसुधा कुछ अनुचित बात कहता था, इससे उसके विषयमें भी बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई है। राजा शिव-प्रसाद और वह एक ही जगहके थे। इसीसे शायद दोनों मिलकर स्वदेशियोंका विरोध करते थे।

नया प्रबन्ध

जारी होनेके दिनसे ही भारतमित्रके प्रबन्धमें जल्द जल्द परिवर्तन होता था, तथापि पण्डित छोटूलालजी मिश्रके हाथमें उसका प्रबन्ध देर तक रहा। २५ अक्टोबर सन् १८८३ से इसके प्रकाशकोंमें पण्डित हर-मुकुन्द शास्त्रीका नाम लिखा जाने लगा। कुछ हो, इसके चलानेवालोंका

इस बातपर बराबर ध्यान था कि जहाँ तक हो सके यह अच्छी रीतिसे चले। यद्यपि यह हिन्दीका साप्ताहिक पत्र था, तथापि खबरें इसमें बहुत ताजा निकलती थीं। ३० अक्तोबर सन् १८८३ ई० को स्वामी दयानन्दजीका देहान्त हुआ और पहली नवम्बरके भारतमित्रमें वह खबर निकल गई। ८ नवम्बरके पत्रमें "स्वामी दयानन्द सरस्वती" नामका एक लेख निकला है। उसमें स्वामी दयानन्दजीकी बहुत कुछ प्रशंसा की गई है और उनको महात्मा कहकर स्मरण किया गया है। किन्तु साथही उनके कामोंमें जो कुछ दोष थे उनकी भी उचित समालोचना की गई है। उसमेंसे हम थोड़ासा उद्धृत करते हैं—

"इस महात्माके जो जो सङ्कल्प थे यदि सब पूर्ण हो जाते तो हमें इनके मरनेका इतना बड़ा शोक न होता। पर किन किन कारणोंसे इनके मनोरथ सिद्ध न हुए उनका कह देना भी इस समय बहुत जरूरी जान पड़ता है। जिस जिसने हिन्दुस्तानका इतिहास पढ़ा है वह जानता होगा कि एक समय काशी मथुरा और उज्जैन आदि दो चार नगरोंको छोड़कर सारा हिन्दुस्तान बौद्ध हो गया था। परन्तु ब्राह्मणोंकी सहायतासे कितनी जल्दी शङ्कराचार्य्यजीने इस धर्म्मको यहांसे जड़से उखाड़ दिया था और उसके स्थानमें आर्य्य धर्म्म प्रचलित किया था। ब्राह्मण लोग हिन्दू जातिके अगवे हैं, सारी हिन्दू जाति अब तक भी हाथ जोड़े हुए इन देवताओंकी आज्ञामें चल रही है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि बहुतसे ब्राह्मणोंने पढ़ना लिखना छोड़ दिया है परन्तु यह समयकी गति है उनका प्रभुत्व अभी ज्योंका त्यों बना है। ऐसी बंधी हुई शृङ्खलाको तोड़नेवाला और ब्राह्मणोंकी सहायता लेकर काम न करनेवाला हिन्दु-जातिकी कभी उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि जिससे दयानन्द सरस्वती कृत कार्य्य न हो सका। ब्राह्मणोंकी सहायता लेनी तो एक ओर रही वह ब्राह्मण जातिकी बहुत निन्दा करता था।"

सुना है कि स्वामीजी भारतमित्रके इस प्रकार सफाईसे लिखनेसे अप्रसन्न नहीं होते थे वरञ्च वह उसके शुभचिन्तक थे।

हिन्दीका आन्दोलन

सन् १८८४ ईस्वीके भारतमित्रमें हिन्दीका बड़ा आन्दोलन दिखाई देता है। लगातार कितने ही नम्बरोंमें सम्पादक महाशयने हिन्दीकी हिमायतमें लेख लिखे हैं। इसके सिवा कितने ही प्रेरित पत्र निकले हैं। इसमें एक एक अङ्कमें कई कई लेख हिन्दीहीके लिये दिखाई देते हैं। बहुत जम कर आन्दोलन किया गया था। "हिन्दू पेट्रीयट" उस समय बङ्गालियोंके चलाये हुए अंगरेजी-पत्रोंमें नामी था। उसने भी हिन्दी-की तरफदारीमें एक अच्छा लेख लिखा था। जिस प्रकार बिहारियोंके कानमें कभी कोई फूंक मार जाया करता है कि बंगालसे बिहारको अलग करा लेना चाहिये, उसी प्रकार कुछ पञ्जाबियोंको भी सनक आया करती है कि पञ्जाबकी भाषा हिन्दी नहीं पञ्जाबी है। इससे पञ्जाबकी भाषा क्या चीज है, इस बातको दिखानेके लिये २७ मार्च सन् १८८४ के भारतमित्रमें एक अच्छा लेख निकला है। इस हिन्दीके आन्दोलनका यह फल हुआ कि मेरठ जैसे उर्दूके दास शहरमें देवनागरी प्रचारिणी सभा बन गई। इस विषयमें लिखापढ़ी और जोश यहां तक बढ़ा हुआ था कि सिरसाके स्वर्गीय काशीनाथ खत्रीने इङ्गलेंडमें हिन्दीपर आन्दो-लन करनेकी सलाह दी थी

लार्ड रिपन

वर्षके अन्तकी संख्याओंमें लार्ड रिपनके अच्छे कामोंकी आलोचनामें कई एक लगातार लेख निकले हैं। दिसम्बरकी संख्यामें स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीका भेजा हुआ "रिपनाष्टक" छपा है।

११ दिसम्बरके पत्रमें एक और जोरदार लेख उसी विषयमें छपा है। उसके अन्तमें बड़ेबाजारवालोंको सलाह दी है, वह इस प्रकार है—

"बड़ेबाजारके हिन्दुस्तानी मारवाड़ी भाइयोंको चाहिये कि बड़े परिश्रमका उपार्जित धन नाच तमाशेमें खर्च न कर आपसमें चन्दा करके एक रिपन हिन्दी स्कूल स्थापन करें।" तब कुछ नहीं हुआ था, पर अब विशुद्धानन्द विद्यालय बना है और सारस्वत खत्रियोंने भी एक अलग हिन्दी अङ्गरेजी स्कूल खोला है। मनुष्योंकी अच्छी आशाएं भी पूरी होती हैं, पर धीरे धीरे।

सन् १८८४ के भारतमित्रकी अन्तिम संख्यामें लार्ड रिपनकी विदाईकी बात है कि वह २० दिसम्बर सन् १८८४ को एस० एस० क्लाइव जहाज पर चढ़कर बम्बईसे विलायतको चले गये। किन्तु इससे पहले १३ दिसम्बर शुक्रवारको दिनके साढ़े तीन बजे भारतमित्र कमेटीके सम्पादक और बङ्ग देशके बङ्गला और उर्दू अखबारोंके सम्पादक भारतमित्र कमेटीके हालमें एकत्र होकर गवर्नमेण्ट हौसमें गये और अङ्गरेजीमें एक एड्रेस श्रीमान् लार्ड रिपनको दिया, जो पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बङ्गाल, उड़ीसा, राजपूताना, मध्यप्रदेश आदिके देशी अखबारोंकी ओरसे भारतमित्रके उस समयके आनरेरी मनेजिङ्ग प्रोप्राइटर बाबू जगन्नाथ खन्नाने सुनाया था और एक चांदीके कासकेटमें रखकर श्रीमान्को अर्पण किया था। इस एड्रेस पर कोई अस्सी अखबारोंके सम्पादकोंके नाम थे।

सन् १८८५ ईस्वी

१ जनवरी सन् १८८५ ईस्वीके भारतमित्रमें कलकत्तेकी इण्डियन एसोसियेशनके उस एड्रेसके विषयमें एक लेख लिखा गया है जो उक्त सभाने २४ दिसम्बर १८८४ ईस्वीको नये लाट डफरिनको दिया था। उस एड्रेसमें उक्त सभाने इस देशके बहुतसे अभावोंकी बातें कही थीं; म्यूनिसिपलिटियोंकी उन्नति, व्यवस्थापक सभाओंका सुधार तथा और कितनीही बातें ऐसी लिखी थीं, जिनके लिये आजकल कांग्रेस दावा किया

करती है। इन सब बातोंका साफ उत्तर लार्ड फडरिनने कुछ नहीं दिया था, पर जो कुछ दिया था वह भी कुछ कम सन्तोषजनक न था। उससे यह बात भलीभांति प्रगट होती है कि उस समय हाकिम लोग प्रजाकी बातें सुनना नापसन्द नहीं करते थे। वरञ्च सुनकर कुछ ध्यान देते थे।

उसी संख्यामें उदयपुरके महाराना सज्जनसिंहके २५ वर्षकी उमरमें स्वर्गवासी होनेकी खबर छपी है। उनकी उमर कम थी, पर उनमें अनेक गुण थे। वह गुणी और विद्वानोंके बड़े तरफदार थे। हिन्दीकी उन्नतिकी ओर उनका बड़ा ध्यान था। उदयपुरका "सज्जनकीर्त्ति सुधाकर" पत्र उन्हींका स्मारक चिह्न है।

८ जनवरीकी संख्यामें प्रयागमें हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य-सभाके स्थापित होनेकी बात छपी है। तब पण्डित हरमुकुन्द शास्त्री इस पत्रके सम्पादक थे। सभा तीन चार दिन तक हुई थी। आगे १५ जनवरीके पत्रमें एक हिन्दी पत्र-सम्पादकोंकी सभा होनेकी खबर है। यह सभा ऊपर लिखी सभामें २६ दिसम्बर १८८४ ईस्वीको हुई थी। इसमें उस समयके १०-१५ हिन्दी समाचार-पत्रोंके सम्पादक उपस्थित थे। सम्पादकोंकी सभा बनी। बाबू रामकृष्ण वर्मा सभा-पति और पं० राधाचरण गोस्वामी मंत्री हुए थे। कई बातें निश्चय की गई थीं। पर यह सब काम एकबार ही होकर रह गया। उसमें जान न पड़ी।

उसी संख्यामें भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीके अस्त होनेका शोक-समाचार है। और उससे अगली संख्यामें उनकी एक जीवनी प्रकाशित हुई है, जिसमें उनकी चार इच्छाओंकी बात लिखी गई है। वह कहा करते "मेरे पास पूर्ववत् धन होता तो चार काम करता (१) श्री ठाकुरजी-को बगीचेमें पधारकर धूम धामसे षटऋतुका मनोरथ करता (२) विला-

यत, फरांस और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योगसे एक शुद्ध हिन्दीकी यूनीवर्सिटी स्थापन करता और (४) पश्चिमोत्तर देशमें शिल्पकलाका एक कालिज खोलता।"

उर्दू हिन्दीके झगड़ेके लेख इस साल भी चलते रहे। हिन्दुस्थानियोंको वालंटियर बनानेकी आवश्यकतापर भी कई लेख लगातार हैं। ५ मार्चकी संख्यामें स्वर्गीय महाराना सज्जन सिंहजीकी ६ कालमकी जीवनी प्रकाशित हुई है। इससे उनके जीवनकी बहुत-सी कामकी बातें मालूम होती हैं। बहुतसे अच्छे-अच्छे राजनीतिक लेख इस वर्षमें लिखे गये। सालभरका एक अच्छा जखीरा इसके भीतर बन्द है। पडरीके स्कूल मास्टर सोहनप्रसादने "उर्दू हिन्दीकी लड़ाई" नामकी एक पुस्तक लिखी थी। मुसलमानोंने उसपर नालिश कर दी थी, इससे वह सचमुच लड़ाई हो गई थी। उसपर भी इस सालके पत्रमें कई लेख लिखे गये हैं।

सन् १८८६ और ८७

१८८६ सालके आरम्भमें इनकमटेक्सपर कई एक लेख हैं। मार्च और अप्रैलके अङ्कोंमें दलीपसिंहके हिन्दुस्थानमें आनेकी चर्चा है। अप्रैलमें कलकत्ता-पींजरापोलकी नींव पड़नेकी बात है। आगे गोरक्षापर भीं बहुत कुछ लिखा पढ़ी है, जो महीनों चली है। २० जूनको संख्यामें एकही साथ इन्दोरके महाराजा तुकाजी होलकर और ग्वालियरके महाराजा जयाजीराव संधियाकी मृत्युका संवाद है। उसी संख्यासे कलकत्तेमें चर्बी मिले हुए घीके बिकनेपर आन्दोलन आरम्भ हुआ है, जो आगे दूर तक चला है और उसपर बड़े-बड़े लम्बे लेख लिखे गये हैं। उस समय उसका फल भी अच्छा हुआ था। उसकी बात कौन्सिल तक पहुंची। और उसके लिये एक कानून भी बना।

२० जनवरी सन् १८८७ के नम्बरोंमें स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाकी जुबिलीकी बात है। फरवरीके अङ्कोंमें मिडिल पास लोगोंपर

लेख लिखे गये हैं, जिनमें इस बातपर दुःख प्रगट किया गया है कि जो लोग मिडिल पास न करेंगे, उनको पश्चिमोत्तर प्रदेशकी गवर्नमेण्ट १०) मासिकसे अधिककी नौकरी न देगी। उस समय अखबारवालोंको यह बात बहुत चुभी थी। अब देखते हैं कि मिडिल पासकी कदर भी गई। इन्ट्रेन्स मिडिल हो गया।

और कई वर्ष

२ फरवरी सन् १८८८ ईस्वीके पत्रमें हवड़ेसे सियालदह तक एक सीधी चौड़ी सड़क निकलनेकी कल्पनाकी बात है। वही सड़क आज-कल कलकत्तेके बड़ेबाजारकी प्रधान सड़क और उसकी शोभा बढ़ानेवाली हरिसनरोड है। गोरक्षाकी चर्चा इस सालकी संख्याओंमें भी बहुत है। कांग्रेसपर भी कई लेख उक्त सालके पत्रोंमें हैं। अंगरेजी अखबार-वाले आरम्भमें कांग्रेसको बागी कहा करते, उन्हींका उत्तर इन लेखोंमें है। इस सालके अन्तके नम्बरोंमें बम्बईके कमिश्नर क्राफर्डके रिशवतवाले मुकद्दमेकी बहुत कुछ चर्चा है। जनवरी सन् १८८६ में प्रयागकी चौथी कांग्रेसके लेख छपे हैं। उन दिनों एक बार ग्राहकोंकी कमीसे राजा रामपालसिंहजीका मन अपने "हिन्दोस्थान" पत्रको बन्द करनेका हुआ था, उसके लिये भी भारतमित्रने बड़ी तलमलाहट दिखाई थी।

१८८६ ई० की बड़ी घटना काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंहको अधिकारच्युत करना है। इसपर भी भारतमित्रमें बहुत कुछ लिखा-पढ़ा गया है। इसी विषयको लेकर लाहोरके कोहेनूर और अखबारे-आमकी लड़ाई हो गई थी, उसकी बात भी कही है। फिर अमृतबाजार पत्रिकाके काश्मीरके भेदोंकी एक गुप्त सरकारी चिट्ठी प्रकाश कर देनेपर सरकारने जो सिक्रेट बिल बनाया, उसपर भी बहुत कुछ लिखा-पढ़ा गया है। सालके अन्तमें प्रिन्स अलवर्ट विक्टरके भारतवर्षमें पधारनेके विषयके लेख हैं।

जनवरी सन् १८६० ई० के प्रथम अङ्कमें प्रिन्स विक्टरकी तसवी दी गई है। यहींसे भारतमित्रमें तसवीर छापे जानेकी नींव पड़ी उस समय मि० ब्राडला भी भारतवर्षमें आये थे, जो बम्बईकी कांग्रेसः शरीक होकर कुछ दिन ठहर कर वहींसे लौट गये थे। ब्राडला साह दिसम्बरके अन्तमें आये थे और प्रिन्स विक्टर ३ जनवरीको। कांग्रेसं अन्तमें ब्राडला साहबने एक वक्तृता दी थी, जिसका जरूरी अंश भारत मित्रमें छपा है। ३० जनवरी १८६० के अंकमें "ष्टेट्समैन" सम्पाद मि० राबर्ट नाइटके मरनेका शोक समाचार है। वह बड़े भारतहितैषं थे। हिन्दुस्थानियोंका पक्ष करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। उ समय हिन्दुस्थानी लोग ष्टेट्समैनको अपना पत्र समझते थे। उ कारणसे ष्टेट्समैनका हिन्दुस्थानियोंमें आदर हुआ। अब वह बा नहीं है। मार्चके नम्बरोंमें कलकत्तेके पास दमदममें गोरे बहाराः हाथसे शेख सलीमका मारा जाना और उसका हाईकोर्टसे फांसीक सजा पाकर फुलबेञ्चसे रिहाई पा जाना आदि बातोंका वर्णन है बहाराकी फांसीकी बात सुनकर साहब लोग एकदम बिगड़ गये थे उनके बिगड़नेका यह फल हुआ कि हाईकोर्टको फुलबेञ्च करके बहाराक छोड़ देना पड़ा।

हिन्दुस्थानकी लेजिसलेटिव कौंसिलोंके सुधारके बिलकी बात उ वर्षकी एक जरूरी घटना है। इस कामके लिये ब्राडला साहबने ए बिल तय्यार किया था, पर उनका बिल पेश होनेसे पहले लार्ड क्रासः अपना बिल पेश कर दिया। इससे ब्राडला साहबको अन्त उसमें कुछ परिवर्तन करानेकी जरूरत पड़ी थी। उस बिलः अनुसार कौंसिलका कुछ सुधार हुआ था, जो आज तक चल आता है। उन दिनों रोहतकके अत्याचारकी भी बहुत कु चर्चा थी। वहांके डिपटी कमिश्नर रेनक साहबने वहां

हिन्दुओंपर अपनी नासमझीसे बहुत कुछ अत्याचार किया था, जिसकी विशेष बातें कालाकांकरके "हिन्दोस्थान"ने प्रकाशित की थीं। ब्राडला साहबने यह बात पार्लीमेण्ट तक पहुंचाई थी, पर दुःखकी बात है कि इसपर आन्दोलन करनेसे पहले ही उनका देहान्त हो गया। उस साल एण्टी कांग्रसकी भी बहुत कुछ चर्चा थी, जो अमृतसरमें सैयद अहमद खांने कांग्रसका विरोध करनेके लिये चलाई थी और अब वही मुसलमानोंकी शिक्षा-सम्बन्धी कानफरेंस बन गई है।

सितम्बरकी संख्याओंमें अमृतसरके पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट वारबर्टन साहबके लाहोरके "ट्रिब्यून" पत्रपर मानहानिकी नालिश करनेकी बात है। अमृतसरकी पुलिसने एक ऐसा गुप्त कानून बना रखा था, जिससे लोगोंपर बहुत तरहके अन्याय होते थे। उसीके अनुसार उसने एक दिन एक लड़कीको मंगाकर उसके शरीरके चिह्न देखे थे। इन सब बातोंको दिखाते-दिखाते ट्रिब्यूनने कुछ ऐसी बातें लिखी थीं, जिनसे बारबर्टन साहबकी मानहानि हो गई। ट्रिब्यूनको इस मामलेसे जुरमाने को सजा अवश्य हुई, पर बारवर्टन साहबको भी अमृतसरसे निकल जाना पड़ा था। इस मुकदमेकी बातें भारतमित्रमें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं।

सन् १८६१ ईस्वीके आरम्भमें "सहवास-सम्मति" बिलपर बहुत जोर का आन्दोलन हो रहा था। उसमें भारतमित्र भी शरीक था। जनवरी-में वर्तमान रूस-नरेश राजकुमारावस्थामें भारत-भ्रमणको आये थे। उनके विषयमें भी सचित्र लेख लिखे गये थे। सिरसाके बाबू काशीनाथ खत्री हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखक थे। फरवरीके भारतमित्रमें उनकी मृत्युका संवाद और चित्र छापा गया है। अप्रैल और मईके "भारतमित्र" में मनीपुरके बखेड़े और काशीके राममन्दिरके मामलेपर लगातार लेख हैं। जूनके अङ्कोंमें वही चर्चा है।

अगस्त मासके आरम्भमें कलकत्तेके बङ्गवासी पत्रपर सरका राजविद्रोहका अभियोग लगाया था। कलकत्तेके अखबारोंमें उस स इसी अभियोगका आन्दोलन था। अगस्तसे लेकर अक्टूबरके आर तकके अङ्कोंमें इस मुकदमेके लेख हैं।

१४ जनवरी १८९२ ई०की संख्यामें प्रयागके प्रसिद्ध पणि अयोध्यानाथकी मृत्युका शोक समाचार है और अगली २१ जनवरी संख्या प्रिन्स अलबर्ट विक्टर (हमारे वर्तमान महाराज एडवर्डके ज्ये पुत्र) की मृत्युका शोक समाचार सहित काला बार्डर लिये निकली है इस साल भारतमित्रमें रुपयेके बट्टे पर बहुत प्रभावशाली लेख निकले है चांदीका भाव उस समय बहुत गिर गया था, रुपया बट्टे के हिसाब कोई दस आनेका रह गया था। ६ जूनकी संख्यामें कलकत्तकी ज कलोंमेंसे सांप निकलनेकी बात है। उन दिनों इसका भी ब शोर मचा था।

एक बात और आलोचना करनेके योग्य है कि ३ दिसम्बर स १८८१ से भारतमित्रमें "ॐ श्री गणेशायनमः" लिखा जाने लगा, जो १ सितम्बर सन् १८९३ ई० तक रहा। १५ जून सन् १८९३ ई० तक इस दिनकर प्रकाश शामिल रहा।

अब तक "भारतमित्र" ९०, नम्बर क्रासष्ट्रीटसे निकलता था। ३ अगस्त सन् १८९३ ई०को उसका आफिस ५, ताराचन्ददत्त स्ट्रीटमें डाक श्रीकृष्णजी बर्मनके प्रबन्धमें चला गया। इस समय वह बहुत ब आकारमें था। सुपर रायल कागजके बड़े दो वरक पर छपता था। य आकार उसने १५ जून सन् १८९३ से धारण किया।

बड़ा आकार

बड़ा आकार धारण करके "भारतमित्र" सचित्र होगया। प्रति सप्ता एक-एक दो-दो चित्र भी इसमें नियमसे निकलने लगे। इसी दशा

१६ नवम्बर १८६३ ई० से यह ६६ नया चीना बाजारसे जगन्नाथदास एण्ड कम्पनीके प्रबन्धसे निकलने लगा। उस समय तक यह पत्र एक कम्पनीके प्रबन्धसे निकलता था। उसीके मेम्बर लोगोंमें इसके जन्मदाता पालनकर्त्ता सब थे। बाबू जगन्नाथदास भी कम्पनीके एक मेम्बर थे। अन्तमें कम्पनीने उन्हींको पत्र दे दिया और वही इसके मालिक हुए, जिनके यहाँ वह अब तक है।

पानीका जुआ

सन् १८६४ ई० से लेकर भारतमित्रकी बात इतनी पुरानी नहीं हैं, जिनका विशेष उल्लेख करनेकी जरूरत हो। तबतक ऐसा समय आ गया था कि हिन्दीमें और भी कई पत्र अच्छे अच्छे निकलने लगे थे। हिन्दी अखबारोंकी अच्छी चर्चा होगई थी और हिन्दी पाठकोंकी संख्या भी बढ़ चली थी। इसमें केवल एक ही बात कहेंगे। वह पानीके जुएका आन्दोलन है। कई सालसे अफीमके खेलकी भांति पानीका खेल भी कलकत्तेमें होता था, उसका प्रधान अड्डा अफीम चौरास्ते पर था। वहां यह खेल कई कोठियोंमें होता था। इसमें लाखोंकी हार जीत हर साल होती थी और गरीब तबाह होते थे। कितने धनी इससे कङ्गाल होगये थे। सबेरेसे लेकर रातके १० बजेतक इसकी धूम रहती थी। बदमाशोंकी संख्या इसके कारण बड़े बाजारमें बहुत ही बढ़ गई थी। भारतमित्रने इसका आन्दोलन आरम्भ किया। पहले उसे कई बार विफल मनोरथ होना पड़ा। पर अन्तको सन् १८९७ ई० में सफलता प्राप्त हुई। बङ्गाल गवर्नमेण्टने पानीका जुआ बन्द करनेके लिये एक आईन बना दिया। जुएवालोंको अपना काम बन्द करना पड़ा। तबसे बदमाशोंकी संख्या बहुत कम हो गई। यह आन्दोलन छोटे लाट इलियट साहबके समयमें आरम्भ हुआ और मेकञ्जी साहबके समयमें सफलताके साथ समाप्त हुआ।

७ मई सन् १८९६ ई० से भारतमित्रका आकार और भी बड़ा होकर डबल सुपर रायल हुआ था। उस आकारमें १८९७ के अन्ततक छपता रहा।

दैनिक भारतमित्र

१८९७ ई० में छोटे साइज पर भारतमित्र दैनिक किया गया। साप्ताहिक पत्र अपने असली साइजपर अलग निकलता रहा। पर कई महीने चल कर बन्द होगया। बहुत लोगोंको इससे बड़ा दुःख हुआ। कितने ही उत्साही सज्जनोंकी प्रेरणासे जनवरी सन् १८९८ ई० से रायल चार वरकपर भारतमित्र फिर दैनिक हुआ। मूल्य १२) साल रखा गया, पर एक वर्ष चल कर फिर बन्द करना पड़ा।

अन्तको जनवरी सन् १८९९ ई० से इसका आकार और भी बड़ा किया गया, जो इसका वर्तमान आकार है। और मूल्य घटाकर केवल २) वार्षिक रखा गया। उसी चालपर वह पांच सालसे चलता है। इन पांच वर्षोंकी बात बहुत ताजा है। इससे उसपर किसी प्रकारकी आलोचनाकी जरूरत नहीं।

उद्देश्य और सम्पादक

भारतमित्रका जन्म कलकत्तेमें ऐसे समयपर हुआ कि जब हिन्दीकी यहां कुछ भी चर्चा न थी और न हिन्दी जाननेवाले लोग ही थे। अखबारोंकी चर्चा भी न थी। दो चार आदमी एक आध बङ्गला या अङ्गरेजी अखबार पढ़ा करते। उस समय बङ्ग-भाषा और अङ्गरेजी दोनोंहीमें अखबारोंकी ऐसी बहुतायत न थी। भारतमित्रके चलानेवालोंने बड़ी कठिनाईसे इसके सौ पचास ग्राहक कलकत्तेमें खड़े किये थे। किन्तु यह लोग पत्र लेनेपर भी उसके पढ़नेमें असमर्थ थे। कितनेही लोग तो इतने अनभिज्ञ थे कि वह सब कालमोंकी भाषाको मिलाकर एक साथ पढ़ते थे। जब कुछ समझमें न आता तो कहते कि वह क्या लिखा है, कुछ मतलब ही नहीं समझमें आता।

पण्डित छोटूलाल मिश्र इसके प्रथम सम्पादक और जन्मदाता हैं। सन् १८८३ ई० तक वही इसे चलाते थे। उन्होंने इसकी उन्नतिके लिये बड़ी चेष्टा की, साथ ही सम्पादन भी बहुत अच्छी रीतिसे किया। उनके लिखनेका ढङ्ग बहुत साफ और भाषा सरल थी। उनके बाद सन् १८८४—८५ में पण्डित हरमुकुन्द शास्त्रीजी इसके सम्पादक थे। उन्होंने भी बड़ी योग्यतासे इसका सम्पादन किया। उनके समयमें इस पत्रकी बड़ी प्रशंसा थी। इसके एक बड़े शुभचिन्तक बाबू हनुमानप्रसाद और दूसरे बाबू केदारनाथ थे। पहले सज्जन इसका सम्पादन भी करते थे और दूसरे प्रबन्ध। दोनोंका देहान्त सन् १८८७ ई० में हो गया।

इसके चलानेवाले कई सज्जन थे, जिनकी एक कमिटी थी। वह सब इसका काम बेतनखाह करते थे। अपना निजका काम करनेके बाद जो समय बचता था, इसीमें खर्च करते थे। एक ज्ञानवर्द्धिनी सभा थी, जिससे इसको बड़ी सहायता मिलती थी। पण्डित छोटूलालजीने कहा कि यह पत्र हमने केवल दो उद्देश्योंके लिये निकाला। एक हिन्दी भाषा-का प्रचार, दूसरे उन जरूरी बातोंसे लोगोंको कुछ-कुछ जानकर बनाना, जिनका जानना उनके लिये इस जमानेमें बहुत जरूरी है। इन उद्देश्योंमें इस पत्रको बहुत कुछ सफलता हुई और आगे बहुत-कुछ आशा है। इसके परिचालक लोगोंका इससे किसी प्रकारका अपने स्वार्थकी सिद्धिका उद्देश्य न पहले था, न अब है।

पण्डित हरमुकुन्दजी इसके पहले तनखाहदार सम्पादक थे। इसके बाद यही सिलसिला चला। १४ अप्रिल सन् १८८७ ई० से पण्डित जगन्नाथ चतुर्वेदी इसके सम्पादक और मैनेजर हुए। १४ दिसम्बर १८८७ ई० से पण्डित अमृतलाल शर्म्मा हुए। आप १८८६ ई० के अन्त तक रहे। जनवरी १८६० से पण्डित राधाकृष्ण चतुर्वेदी उक्त पद पर हुए, फिर १२ मार्च सन् १८६१ ई० को बाबू रामदास बर्मा उनकी जगह हुए।

वह जून १८६३ ई० तक रहे, तब कुछ दिनके लिये पत्र डाक्टर वर्मनके प्रबन्धमें आया। तब पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्र इसके सम्पादक थे, जो इसके जन्मदाताओंमेंसे भी हैं और जिन्होंने उचितवक्ताको भी जन्म दिया।

इसके बाद यह पत्र भारतमित्र कम्पनीके हाथसे निकलकर बाबू जगन्नाथदासके हाथमें आया। यहां कई साल तक पण्डित रुद्रदत्त इसके सम्पादक रहे। सबसे अन्तमें पण्डित राधाकृष्ण चतुर्वेदी फिरसे तथा पंडित प्यारेलाल और बाबू ब्रह्मानन्द थे। सन् १८९९ ई० से वर्तमान सम्पादक द्वारा इसका सम्पादन होता है।

"भारतमित्र" राजनीतिक पत्र है। आदिसे इसकी यही पालिसी है। हिन्दीका प्रचार और राजनीतिक चर्चा इसके प्रधान उद्देश्य हैं। धर्मका आन्दोलन करना इसकी पालिसी नहीं है। पर जरूरत पड़नेपर उसीमें शरीक होना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। सदासे पुरानी चालके हिन्दू इसके परिचालक हैं, इससे उनके धर्मकी इसे काम पड़नेपर तरफदारी करना पड़ती है। यही चाल इसकी आरम्भसे अबतक है। केवल बीचमें एक दो आर्य्यसमाजके सम्पादकोंने इसकी चाल बिगाड़ी थी। उनसे इसको बड़ी हानि भी पहुंची। जिसकी जो चाल है, उसीपर चलनेसे उसकी उन्नति होती है। उसके बिगड़नेसे बहुत भारी हानि होती है। यह एक अटल सिद्धान्त है। पर दुःख है कि हिन्दुओंमें कुछ लोग इस सिद्धान्तसे विचलित होकर अपनेको कमजोर बना रहे हैं। क्या मुसलमान, क्या कृस्तान, सब अपनी-अपनी चालपर चलते हैं, अपने-अपने धर्मका आदर करते हैं, अपनी-अपनी धर्म-संबंधी बातोंपर दृढ़ हैं। केवल हिन्दूही भटकते हैं, यह कैसे दुःखकी बात है!

२६ साल भारतमित्रको जारी हुए हो गये। तीन समय तबसे बदले। इसके जारी होनेके दिनसे पंडित हरमुकुन्दजीके सम्पादक रहने तक इसका पहला समय था, जब हिन्दी बहुत बालक थी। पंडित

द्रदत्तजीके समयमें दूसरा समय हुआ। तब हिन्दीने अच्छी उन्नति
र ली थी। अब तीसरा समय है। तीसरे समयके लोग हिन्दीकी
वा कर रहे हैं। यह भी अपने पूर्वके सज्जनोंकी भांति इसकी उन्नतिकी
ष्टा करते हैं। समय अनुकूल रहेगा तो उन्नति भी अच्छी होगी।

यह इस पत्रकी पुरानी २६ सालकी कहानी है। आशा है कि पाठक
पने पुराने पत्रका सदा आदर करेंगे और भगवानसे इसके उन्नत
ने और सैकड़ों वर्ष जीनेकी प्रार्थना करेंगे।

गत संख्यामें भारतमित्रके पिछले २६ सालकी कहानी सुनाई गई
े। बहुतसे पाठकोंने उसे पसन्द किया है। किसी-किसीने तो यहां
क कहा है कि वह पुस्तककार छपना चाहिये। वास्तवमें वह अपनी
हीं, हिन्दीभाषाकी गत चौथाई सदीकी कहानी है। बातें और भी
हुत रह गईं। एक संख्यामें और कहां तक कह सकते। फिर
ितनीही बातें ऐसी हैं, जो पीछे मालूम हुई हैं। कितनीही ऐसी भी हैं
िनका कोई बतानेवाला नहीं, तथापि दो एक भूली-भटकी बातें और
ह डालते हैं।

कलकत्तेके बड़ेबाजारमें एक बंगाली सज्जन बाबू नित्यगोपाल मल्लिक
ृते हैं। आरम्भमें कई साल इसी बङ्गाली रईसके उत्साहसे "भारतमित्र"
ला है। उनका इस पत्रसे कुछ भी स्वार्थ न था, तथापि अपने हिन्दु-
ानी मित्रोंके अनुरोधसे कई साल वही इसका सब प्रबन्ध करते रहे।
भारतमित्र" की पुरानी कमिटीके एक मेम्बर बाबू मनोहरदास खन्ना
। उन्होंने भी कई साल तक इसके लिये बड़ा परिश्रम किया। वह
सके बड़े प्रेमी थे। आरम्भमें डाक्टर एस० के० वर्म्मन भी इसमें
लखते थे। और अच्छा लिखते थे। आपके लेख बड़े मजाकदार होते
। बाबू जगन्नाथ दासने जबसे इसे लिया तबसे वह भी इसमें लिखते
। पंचाना नोक-झोंक उनकी खूब होती थी।

अरबी भाषाकी कहावत है कि नई बात अच्छी लगती है, पर हम देखते हैं कि पुरानी बात और अच्छी लगती है। भारतमित्रकी पिछली बातोंको खोलनेमें स्वयं हमको भी बहुत कुछ आनन्द मिला और बहुत बातोंका ज्ञान हुआ। इससे कह सकते हैं कि खोजकर निकालनेसे पुरानी बातें भी नई हो जाती हैं। असलमें नई बात वही है कि जिसे पहले मनुष्य जानता नहीं। हमारी तरह हमारे सहयोगी अमृतबाजारने अपनी कुछ पिछली बातें सुनाईं, उनमेंसे हम भी कुछ बातें सुनाते हैं।

लण्डनमें फौलर साहबने अपनी एक वक्तृतामें एक अङ्गरेजी अखबारकी कहानी कही है। कहा कि "डेलीमेल" पत्र पर अब नित्य १५०० पौण्ड अर्थात् २२॥ हजार रुपये खर्च होते हैं। साल भरमें खाली छपाईका बिल २७ लाख रुपयेका होता है। इसपर अमृतबाजार कहता है कि हमारी कहानी "डेलीमेलसे" भी विचित्र है।

इस समय "अमृतबाजार प्रेस" का जैसा ठाटबाठ है, उसे देखकर कोई नहीं कह सकता कि वह केवल २४०) की पूंजीसे जारी हुआ था। कलकत्तेके अहीरीटोलेमें एक उत्साही सज्जनने २४०) में एक प्रेसका सामान खरीदा था। पर वह उसे जारी करनेसे पहले मर गया। वही सामान कलकत्तेसे खरीदा जाकर अमृतबाजार नामके एक छोटेसे गांवमें भेजा गया, जो बङ्गदेशके जेसोर जिलेमें है। इस दो सौ चालीस रुपयेके सामानमें सबसे कीमती एक बेलन प्रेस था, जिसका दाम ३२) था। गांवके बढ़ईकी सहायतासे वह खड़ा किया गया। इस प्रकार उस गांवमें एक छापाखाना खुला।

कुछ योंहीसे सीखे-साखे आदमी टाईप कम्पोज करनेमें लगाये गये, मालिकको भी कम्पोज करना पड़ता था। सम्पादक और प्रेसमैन भी वहींसे तय्यार करने पड़े। वह वहींके निवासी थे और वहीं बहुत दिन तक रहे। इस प्रकार बङ्गाली भाषामें एक छोटी-सी साप्ताहिक

पत्रिका निकली, जिसका नाम उस गांवके नामपर "अमृतबाजार पत्रिका" पड़ा।

भारतमित्रसे आठ साल पहले अमृतबाजार पत्रिकाका जन्म हुआ। उस समय कोई भी देशी पत्र इतनी बात कहनेका मकदूर भी न रखता था कि सरकारके सामने अपने स्वत्वोंकी कुछ बात तक भी कह सके। इसीसे उक्त पत्रिकाके निकलनेसे हाकिमोंमें बड़ी हलचल पड़ी। जब पत्रिकाकी उमर चार महीनेकी थी तो उसपर मानहानिकी नालिश हो गई। उसको सतरहवीं संख्यामें एक लेख निकला था, उसीपर मालिक, एडिटर, प्रिण्टर और गांवका एक आदमी, अभियुक्त हुए। मुकद्दमा जेसोर जिलेके मजिस्ट्रेट मनरो और जण्ट मजिस्ट्रेट ओकिनलीकी अदालतमें चला। आठ महीने मुकद्दमा चलता रहा। बङ्गाल गवर्नमेण्टने भी इस मुकद्दमेकी ओर बड़ा ध्यान रखा। स्वर्गीय बाबू मनोमोहन घोष पत्रिकाकी ओरसे पैरवी करते थे। प्रिण्टर और लेखकको छः महीने और एक सालकी जेल हुई। पर मालिक किसी प्रकार बच निकला।

जिलेके हाकिमोंकी जबरदस्ती और मलेरिया ज्वरकी बढ़तीके कारण उक्त पत्रिकाके मालिकको अपना गांव छोड़कर कलकत्ते आना पड़ा। उसके पास केवल १००) थे, जो २५) सैकड़े सूदपर एक पड़ोसीसे लिये थे। तीन महीनेतक वह कुछ न कर सका। पत्रिका बन्द रही। पीछे फिर जारी हुई और इसमें कुछ पोलिटिकल कारटून निकले, जो देशी अखबारोंमें पहली और नई चीज थे। इससे इसका बड़ा नाम हुआ। पीछे बड़ोदानरेश मलहार राव गायकवाड़ पर रजीडण्टको विष देनेकी चेष्टा करनेका अभियोग चला। उस समय पत्रिकाने अच्छा आन्दोलन किया। बङ्गलाका पत्र होनेपर भी उसने कई लेख अंगरेजीमें प्रकाशित किये। तब पत्रिका बङ्गला और अंगरेजीमें निकलती थी। इतनेमें लार्ड लिटनने अपना प्रेस एक भारतवर्षमें जारी

किया। देशी भाषाके पत्रोंकी स्वाधीनता एकदम छिन गई। उस समय पत्रिका पूरी अंगरेजीमें निकलने लगी।

साप्ताहिक अंगरेजी होकर पत्रिकाने जो काम किये और जैसा नाम पाया, वह सबपर विदित है। जब सरकारने "एज आफ कनसेण्ट बिल" प्रजाकी घोर विपक्षताकी परवा न करके भी जारी किया तो अमृतबाजार पत्रिका नित्य अंगरेजीमें निकलने लगी। अंगरेजी भाषाकी एक दैनिक पत्रिका कहलानेका वही हक रखती है। जब दैनिक हुई तो कुछ लोगोंने सलाह दी कि एक लाखकी पूंजीके बिना दैनिकपत्र नहीं निकालना चाहिये। पर बिना पूंजीही पत्रिका दैनिक की गई और पहलेही नम्बरमें उसका खर्च निकल आया। इस समय पत्रिका भारतवर्षके सब स्थानोंमें फैली हुई है।

पत्रिकाकी इन बातोंसे भारतमित्रकी कई बातोंका भी कुछ-कुछ मेल है। अधिक मेल उस समयका है। अखबार निकालनेवालोंको उस समय कैसी-कैसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था उसका अनुमान इन सब बातोंसे बहुत कुछ हो सकता है।

तथापि एक बातमें भारतमित्रका बड़ा सौभाग्य है। अदालती झगड़ोंमें इसे बहुत कम कष्ट उठाना पड़ा है। एक या दो बार इसे अदालत तक जाना पड़ा है, पर सब काम कुशल पूर्वक निबट गये। इसके चलानेके लिये जो कुछ उत्साह दिखाया गया, उसकी बात कुछ पहली बार कही गई थी। अर्थात् इसके एक मनेजर फुर्सतके समय आप बाजारमें भारतमित्रकी कापियां लेकर निकला करते थे और दुकान दुकान पर जाकर सुनाते थे। जरूरतके समय इसके मालिकोंने कम्पोज ही नहीं, छापने तकका काम किया है। वह इसलिये नहीं कि छापनेवालों और कम्पोज करनेवालोंका अभाव था, वरञ्च इसलिये कि उस समय जरूरत ही वैसा करनेकी थी।

दो बार भारतमित्रको देशी प्रेसकी ओरसे एड्रेस देनेका अवसर हुआ है। एक बार लार्ड रिपनको एड्रेस दिया गया था, जिसकी बात पहले कही जा चुकी है। दूसरी बार महारानीकी हीरा-जुबिलीके समय शिमले जाकर एड्रेस दिया गया था। पिछले एड्रेसमें भी भारतमित्रको सब देशी अखबारोंके प्रतिनिधि बननेकी इज्जत मिली थी।

"भारतमित्र" कलकत्तेके बड़ेबाजारका पत्र है। इससे बड़ेबाजारकी सेवा वह जन्म दिनसे करता आता है। पानीका जुआ उठवा देनेमें उसने बड़ेबाजारकी अच्छी सेवा की। उसके बाद दूसरा काम रातका भुगतान उठवा देना है। पहले बड़ेबाजारके मारवाड़ियोंमें दस्तूर था कि वह हुण्डियोंके रुपयेका भुगतान रातको किया करते थे। रातको दो दो बजे तक रुपये चुकाने पड़ते थे। इसमें बड़ा कष्ट और अनर्थ होता था। वह चाल आन्दोलन करके उठाई गई। अब सन्ध्याहीको हुण्डियोंका भुगतान हो जाता है। जो लोग देरसे हुण्डी लेकर जायं, उनको अगले दिन रुपया देना पड़ता है। इस बुरी चालके मिटानेके प्रधान उद्योगी कलकत्ता बंगाल बंकके हेड मुंशी पण्डित शिवगोपाल तिवारी हैं। आप भारतमित्रके सदासे शुभचिन्तक हैं।

यदि समय अनुकूल होगा तो भारतमित्रको बहुत कुछ उन्नतिकी आशा है। अभी इसकी जो कुछ उन्नति हुई है, वह बहुत सामान्य है। आगे बढ़नेके लिये बहुत मैदान पड़ा है। लार्ड कर्जनने ६ तोलेके अखबारोंका महसूल एक पैसा करके देशी अखबारोंको बहुत कुछ हिम्मत दिलाई है। इससे भारतमित्रको भी बहुत कुछ लाभ उठानेकी आशा है। विचार होता है, भरोसा होता है कि कोई न कोई अच्छी बात होगी।

हम आशा करते हैं कि हमारे पाठक हमारी इस रामकहानीसे उत्साहित होंगे। उनको उत्साहित करनेके लियेही हमने यह बातें विशेष कर सुनाई हैं। इससे इन्हें मालूम होगा कि हिन्दीमें कुछ हुआ है

और यह याद रहे कि जो कुछ हो चुका है, उससे कितने ही गुना बढ़कर और भी होनेकी आशा है। अपने प्रिय पाठकोंसे हम थोड़ेसे उत्साहकी सहायता मांगते हैं। और कुछ नहीं चाहते। केवल इतनी सहायता कि वह अपने मित्रों और अपने परिचित लोगोंको भारतमित्रका ग्राहक बनावें। ग्राहकोंका बढ़ाना ही समाचार पत्रका प्राण है। इससे भारत-मित्रके प्रेमी जितनेही ग्राहक बढ़ावेंगे, उतनाही इसके जीवनको दृढ़ करेंगे और उतनाही इसे शक्तिशाली बनावेंगे। यदि पाठक प्रतिज्ञा करके एक एक ग्राहक भी बढ़ावें तो बातकी बातमें इसके दूने ग्राहक हो सकते हैं। भरोसा करते हैं कि हमारी यह प्रार्थना खाली न जायगी।

—भारतमित्र सन् १९०५ ई०

५
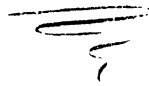
आलोचना-प्रत्यालोचना

व्याकरण-विचार

पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदीके "भाषा और व्याकरण" वाले लेखकी आत्मारामने दस लेखोंमें आलोचना की है। 'भारतमित्र'के पाठकोंने यह लेख बड़े चावसे पढ़े हैं। ढूंढ़-ढूंढ़कर बड़ी आरजूसे मंगाये हैं। जिनको न मिले, उनका तकाजा है कि वह लेख जल्द पुस्तकाकार छपें, जिससे हम भी देख सकें।

आलोचनाकी रीति अभी हिन्दीमें भलीभांति जारी नहीं हुई है और न लोग उसकी आवश्यकताहीको ठीक ठीक समझे हैं। इससे बहुत लोग आलोचना देखकर घबरा जाते हैं और बहुतोंको वह बहुत ही अप्रिय लगती है। यहां तक कि जो लोग स्वयं इस मैदानमें कदम बढ़ाते हैं, अपनी आलोचना होते देखकर वही तुर्शरू हो जाते हैं। इससे हिन्दीमें आलोचना करना भिड़के छत्तेको छेड़ लेना है। छेड़नेवालेको चाहिये कि बहुतसी भिड़ोंके डङ्क सहनेके लिये प्रस्तुत रहे।

एक बार हमारे एक कृपालुने किसी एक छोटीसी पोथीकी एक छोटी-सी कवितामें कुछ दोष दिखाया था। 'भारतमित्र' में एक सज्जनने उसका उत्तर देकर आलोचकको होश दिलाया कि आपकी आलोचना ठीक नहीं। आप उस लेखको पढ़कर बेताब हो गये। उसके उत्तरमें फिर कुछ लिखा और फिर कुछ सुना। उन्हींके किसी एक मित्रने उन्हें खबर दी कि वह पोथी 'भारतमित्र' सम्पादककी लिखी हुई है, आपने

उसपर छेड़-छाड़कर अच्छा न किया। कृपालुजीने झट एक माफीनामा लिखा कि मुझे मालूम न था, वह आपकी बनाई पोथी है, नहीं तो मैं कभी ऐसा अनुचित काम न करता। यहांसे लिखा गया, पोथी मित्रकी हो या शत्रुकी—अपनेकी हो या बेगानेकी, आलोचना उसकी न्यायसे होनी चाहिये। यह तो कोई बात नहीं कि मित्रकी हो तो उसकी प्रशंसा की जाय और शत्रुकी हो तो निन्दा। इतनी अनुदारता लेकर साहित्यके मैदानमें कभी आगे न बढ़ना चाहिये। ऐसी दुर्दशा हिन्दीमें आलोचनाकी है। *

एक लड़केने एक दिन अपनी मासे कहा—'मा मुझे कोई न मारे तो मैं सबको मार आऊं'। ठीक यही दशा हिन्दीके कुछ आलोचकोंकी है। वह समझते हैं कि हमें सबकी आलोचना करनेका अधिकार मिल गया है और हमारी आलोचना कोई करे तो हमारे भाई-बन्धु जाति-धम्मकी, भाई-बिरादरीकी दुहाई देते हुए चारों ओरसे लट्ठ लेकर सहायताके लिये आ धमकें और विद्यासे नहीं तो उसे लट्ठसे सीधा करदें। आत्माराम पर भी वही बीती। वह गरीब, लठैतोंके दलमें घिर गया।

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी स्वयं बड़े भारी आलोचक होनेका दावा रखते हैं। आत्मारामने तो आलोचनाके केवल दस लेखही लिखे हैं, द्विवेदीजीने बड़ी-बड़ी पोथियां बनाके डालदी हैं। लाला सीतारामकी पोथियोंकी आप बहुत कुछ आलोचना कर चुके हैं और किये जाते हैं, यहां तक कि उन आलोचनाओंकी आप पोथियां तक छपवा चुके हैं। केवल इतनाही नहीं, संस्कृतके स्वर्गीय पण्डितोंकी भी आलोचना आपने की

* जिस पुस्तकका उल्लेख किया गया है, वह 'खिलौना' नामकी पुस्तक थी और उसकी आलोचना द्विवेदीने की थी। पुस्तक गुप्तजीकी लिखी हुई थी सही किन्तु उसपर उनका नाम नहीं छपा था। द्विवेदीजीको सावधान करने वाले उनके और गुप्तजीके, दोनोंके मित्र पण्डित श्रीधरजी पाठक थे। सम्पादक।

है और पोथियां रच डाली हैं। आलोचनामें केवल उनकी तारीफों-हीके ढोल नहीं बजाये गये हैं, वरञ्च उनकी भूलं दिखाई हैं, उनके साथ दिल्लगीकी है, उनको टिटकारियां दी हैं। लाला सीतारामको सभ्यताका पाबन्द बताकर उनकी बहुत हंसी उड़ाई है। मरुस्थलके एक महाकविने जिस प्रकार एक पोथा बनाकर 'भारत' आदिकी भूल दिखाई है, द्विवेदी-जीने उसी प्रकार कालिदास तककी खबर ली है। अब गत नवंबर मासकी 'सरस्वती'में "भाषा और व्याकरण" का लेख लिखकर उन्होंने हिन्दीके नये पुराने लेखकोंसे जो बर्ताव किया है, वह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। उस लेखसे क्या स्पष्ट होता है? क्या यह कि हिन्दी भाषामें कोई व्याकरण नहीं है और उसमें एक नया व्याकरण बनाना चाहिये? क्या हिन्दी या हिन्दीके किसी लेखकके साथ उसमें कुछ सहानुभूति या श्रद्धा प्रगट होती है? इन बातोंमेंसे एक भी नहीं है। केवल यही स्पष्ट होता है कि हिन्दीमें गदर मच रहा है। जितने पुराने लेखक थे, सब अशुद्ध लिखते थे। नये भी अशुद्ध और बेठिकाने लिखते हैं। जितने व्याकरण हिन्दीमें हैं वह किसी कामके नहीं, शुद्ध हिन्दी लिखना कोई जानता नहीं। जो कुछ जानते हैं सो केवल उस लेखके लेखक!

यदि हिन्दीमें अच्छे व्याकरण नहीं हैं और द्विवेदीजीको यह अभाव मेटनेकी भगवानने शक्ति दी है तो एक अच्छा व्याकरण लिखनेसे उनको किसने रोका? और अब कौन रोकता है? पर व्याकरण लिखना तो शायद चाहते नहीं। चाहते हैं, अपनी सर्वज्ञताका डङ्का बजाना। आत्मारामको उनके लेखसे उनकी सर्वज्ञताका सबूत नहीं मिला, इसीसे उसने उनके लेखकी आलोचना कर डाली। हमने आत्मारामके इस कामको बुरा नहीं समझा और द्विवेदीजी तथा उनके प्रेमी कहलाने-वालोंको भी ऐसा ही समझना चाहिये। क्योंकि हमारी समझमें द्विवेदी-जीने अपना वह लेख केवल इसलिये नहीं छापा होगा कि वह एक बार

'सरस्वती'में छपकर सदाके लिये गुमनामीके गढ़ेमें चला जाय। वरञ्च इसलिये छापा होगा कि उस पर लोग अपनी राय प्रकट करें और जो ठीक तत्त्व है वह निकल आवे।

आत्मारामके लेखोंसे विदित होता है कि उसने द्विवेदीजीके उस लेखसे हिन्दी लेखकोंकी कुछ अप्रतिष्ठा समझी। हमारी समझमें भी उस लेखसे बहुत कुछ दम्भकी ध्वनि निकलती है, चाहे उसे द्विवेदीजीने मनकी कितनी ही सफाईसे लिखा हो।

शायद इसी खयालसे आत्मारामने अपने लेखोंमें कटाक्षसे अधिक काम लिया है, पर उसके कटाक्ष हंसीसे भरे हुए हैं, विषैला कटाक्ष उसने एक भी नहीं किया। कटाक्ष भी द्विवेदीजी पर नहीं हैं। उनके किसी काम पर, या उनकी अगली पिछली दशा पर आत्मारामने कोई कटाक्ष नहीं किया है। उनकी पोथियोंको भी नहीं छुआ है; केवल उसी लेखको लेकर उसने जो कुछ कहा है—कहा है। आत्मारामके कटाक्ष, उसकी चुलबुली दिल्लगियां, मीठी छेड़ जो कुछ है, द्विवेदीजीके लिखनेके ढंगपर, उनकी भाषाकी बनावट पर, उनके व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान पर, उनके दखलदरमाकूलात पर, उनके गम्भीरताकी सीमा-लंघन करने आदि पर हैं। हमारी समझमें बहसकी सीमासे बाहर आत्माराम बहुत कम गया है। किसी बातको उसने तूल भी नहीं दिया। वरञ्च जहां तक हो सका है, हरेक बातको बहुत थोड़ेमें कहा है—यहां तक कि उसकी लिखी किसी पंक्तिसे यदि एक शब्द भी अलग कर दिया जाय तो सब मतलब गड़बड़ होजाय, फजूल लिखनेका तो काम ही क्या है? साथही आत्मारामने द्विवेदीजीकी बहुतसी भूलें दिखाई हैं, जिनमेंसे दो तीन मोटी मोटी भूलें यह हैं—"अनस्थिरता" ठीक नहीं, द्विवेदीजी "मुहाविरा" लिखते हैं, जिसका उच्चारण वह नहीं है जैसा वह लिखते हैं और बहुत बातें बताई हैं, जिनका अभी कुछ उत्तर नहीं मिला है। पर हम देखते हैं कि

उनके कुछ तरफदार जामेसे बाहर होगये हैं। वह भारतमित्र-सम्पादकको आत्माराम समझकर गालियोंसे प्रसन्न करने लगे हैं। यहाँ तक कि स्वयं द्विवेदीजी जैसे सभ्यता और शिष्टताके अभिमानीने भी कल्लू भाईका आल्हा पसन्द करके ऐसे लोगोंके रवैयेका समर्थन किया है। पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री सभ्यताकी दुहाई देते हुए भी द्विवेदीजीकी बड़ाईका डङ्का बजाते हैं। एक सज्जन देवीप्रसाद शुक्ल नामधारीने श्री वंकटेश्वर-समाचारमें पदार्पण किया है। यह भी द्विवेदीजीकी अनानीयत हीका डङ्का बजाते आये हैं। लेखक आरम्भमें ही गीदड़ों और शेरोंका एक श्लोक लिखकर उनके महत्त्व और अपने शिष्टाचारका परिचय देने आये हैं। द्विवेदीजीकी सब भूलोंको जेवर समझकर उनकी गठरी अपने साथ लिये फिरते हैं। कोई इनसे पूछे कि जब आपके शिष्टाचारका यह हाल है तो दूसरोंसे आप किस शिष्टाचारकी आशा रखते हैं? हम भी कह सकते हैं कि यह शुक्लजी और कोई नहीं द्विवेदीजी हैं, पर ऐसा कहनेसे लाभ क्या? द्विवेदीजी हों या और कोई, मतलब बातसे है न कि लेखकके कुल-शीलसे और उसके नाम-धामसे। बहस भाषा और व्याकरणकी है, चाहे उसे आत्माराम लिखे या भारतमित्र सम्पादक। चाहे लेखक वर्णमें ब्राह्मण हो या नाई, धार्मिक हो या अधार्मिक। भाषाकी बहसमें हम तो यही समझते हैं कि धर्म्म या जाति, स्वर्ग या नरककी जरूरत नहीं है। बातका बातसे उत्तर दो, विचारसे उत्तर दो, बिगड़ने या नाराज होनेकी कोई जरूरत नहीं है।

यदि द्विवेदीजी यह समझते हों कि जो कुछ वह लिखते हैं, वह ठीक है उसमें किसी हुज्जतकी जगह नहीं, तो समझलें कि आत्मारामने जो कुछ कहा वह व्यर्थ है। उसको लेकर वह और उनके मित्र नाराज क्यों हों? और यदि वह यह समझें कि दूसरे लोगोंको भी उनकी कही बात पर कुछ कहनेका अधिकार है तो आत्मारामकी बातोंमें उन्हें जो अच्छी

मालूम हों, उन पर ध्यान दें। आत्मारामको उत्तर देनेमें उनकी शान न घटती हो, तो कुछ उत्तर दें। कुछ भी न हो, तो जो उनके जीमें आवे सो करें और जो उनके मित्रोंके जीमें आवे सो वह करें। पर इतना जानलें कि आडम्बर, दम्भ और धांधल मचानेसे साहित्यका कुछ सम्बन्ध नहीं है। न ऐसी बातोंसे कोई सच्ची बात दब सकती है।

लिखने पढ़नेवालोंको अपना मन खूब साफ रखना चाहिये। अपनेको एकदम बहुत ऊंचा और दूसरोंको एकदम अनभिज्ञ कभी न समझना चाहिये। साथ ही यह भी देखना चाहिये कि मैं क्या कहता हूं और दूसरा क्या कहता है। यदि कोई सत्य बात प्रगट हो जाय, तो उसे अन्यायसे दबाना नहीं चाहिये और अपनी भूल हो तो उसे मान लेना चाहिये। खाली दूसरों पर दोष लगानेवाला ही पण्डित नहीं हो सकता और न अपनी भूल माननेवाला मूर्ख कहला सकता है। हमें इस विषयमें कुछ बोलनेकी जरूरत न थी, क्योंकि एक ओर द्विवेदीजीका लेख है दूसरी ओर आत्मारामके लेख,—लोग पढ़कर आप फैसिला कर सकते हैं। पर कुछ लोगोंने भारतमित्र-सम्पादकको ही आत्माराम समझकर मनमें आया सो कह डाला है, इसीसे यह लेख लिखना पड़ा है कि आप सज्जनोंको आत्मारामसे क्या मतलब है, उसके लेख हाजिर हैं।

—भारतमित्र १९०६ ई०।

भाषाकी अनस्थिरता।

१

जो लोग समझते थे कि हिन्दी भाषा एकदम लावारिस है, कोई उसका मुरब्बी या सरपरस्त नहीं—वह यह खबर सुनकर खुश होंगे कि वास्तवमें उक्त भाषा मातापिताविहीन नहीं है। गत नवम्बर मासकी "सरस्वती" के देखनेसे विदित हुआ है कि उक्त पत्रिकाके सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी हिन्दी भाषाके संरक्षक या वारिस दोमेंसे एक कुछ हुए हैं। इसके लिये हिन्दीके प्रेमियों और द्विवेदीजी महाराजको हम बधाई देते हैं।

कहावत है कि बारह वर्षके पीछे घूरेके दिन भी फिरते हैं। उसके अनुसार अन्तको हिन्दीके दिन भी फिरे। बड़े ही अच्छे अवसरपर द्विवेदीजीने सरस्वतीकी उक्त संख्यामें "भाषा और व्याकरण" लिखकर अपनी हिन्दीदानीके झण्डे गाड़ दिये हैं। आपने साबित कर दिया है कि हरिश्चन्द्रसे लेकर आजतक जितने हिन्दी लिखनेवाले हुए हैं, सबकी हिन्दी अशुद्ध है। उन सबको इसलाहके लिये आपको स्वयं खलीफा या उस्ताद बनना पड़ा है और सबको एकही उलटे उस्तरेसे मूंडना पड़ा है। सच है इस तरह किये बिना ठीक सफाई भी नहीं हो सकती।

लल्लू और लक्ष्मणसिंहको द्विवेदीजीने कुछ नहीं कहा। लल्लूको तो शायद इसलिये छोड़ दिया है कि स्वर्गीय पण्डित अम्बिकादत्त व्यास "बिहारी विहार" की भूमिकामें उसे ठीक कर चुके थे। फिर वह उर्दू-शुर्दूका जाननेवाला अर्द्धशिक्षित लल्लू द्विवेदी जैसे हमादां संस्कृतके अद्वितीय पण्डित, संस्कृत श्लोकोंके लासानी उच्चारक (कोई सज्जन इसपर एतराज न करें, क्योंकि यह ईजादेबन्दा है) अंगरेजीके परम पण्डितकी

लेखनीके नीचे आनेहीके योग्य कहां था! पर राजा लक्ष्मणसिंहको छोड़ दिया, इसपर आगरा भर हैरान है। हरेकके जीमें रह रह कर यही प्रश्न उठता है कि राजाको बेलियाकत समझकर द्विवेदीजीने माफ किया या वह कुछ शुद्ध हिन्दी लिखना जानता था?

खैर, इस प्रश्नका उत्तर आगरेवाले तलाश करते रहें, पाठक द्विवेदीजीके लेखकी तरफ आयें। द्विवेदीजीने पहले ही हमलेमें हरिश्चन्द्रको वह धरकर फफेड़ा है कि सब हिन्दीवाले चीं बोल जावेंगे। आप जानते हैं कि हरिश्चन्द्र कौन? वही जिसको इस समयके हिन्दी लेखक वर्तमान हिन्दीका जन्मदाता और पालनकर्त्ता मानते हैं। वही जिसकी रचनाओंको पढ़कर "हम पच्छनके टूवालामां" बोलनेवाले हिन्दी बोलनेको चोंच खोलने लगे हैं। हिन्दीवालोंका तो हरिश्चन्द्रसे यह नाता है। द्विवेदीजीका एक नाता भी बहुत खोज करनेसे निकल आया है। आपने पण्डित श्रीधर पाठकका नाम सुना होगा। उन श्रीधरजीने हरिश्चन्द्रके गोलोकवासके पश्चात् एक हरिश्चन्द्राष्टक लिखकर अपनी लेखनीको गौरवान्वित किया था। श्रीद्विवेदीजीने पण्डित श्रीधरजीकी प्रशंसामें एक सप्तक लिखकर भारतमित्रमें छपवाकर अपनेको धन्य समझा था। इसी हिसाबसे द्विवेदीजीकी डबल श्रद्धा हरिश्चन्द्र तक पहुंचती है। श्रीधरजी वाले अष्टकमें मिलकर द्विवेदीजीका सप्तक पञ्चदशक बनता हुआ हरिश्चन्द्रके चरणकमल तक पहुंच जाता है। ऐसे हरिश्चन्द्रकी जब द्विवेदीजीने सबसे पहले खबर ली है तो फिर किसी ऐसे वैसेकी बातही क्या रही।

ग्राम्य पाठशालाके गुरुजीकी भांति द्विवेदीजीने 'क ख ग' सेही अपना लेख आरम्भ किया है। बड़ी सरलतासे आप फरमाते हैं— "मनमें जो भाव उदित होते हैं, वे भाषाकी सहायतासे दूसरोंपर प्रकट किये जाते हैं। मनकी बातोंको प्रकट करनेका प्रधान उपाय भाषा है।" क्या कवाइदे हिन्दी समझानेकी चेष्टा आपने की है। हरिश्चन्द्रसे

लेकर आजतक किसीको यह बात मालूम न थी। विषय जरा कड़ा है—इससे आप उसे और भी सरल करके समझाते हैं—"संकेतों अर्थात इशारों (अर्थात् रमूज अर्थात् किनायों—भी जोड़ दिया जाता तो संकेतका अर्थ और सरल हो जाता) से भी मनके भाव प्रकट किये जा सकते हैं; पर यह उपाय अप्रधान है। इशारोंसे वह काम नहीं हो सकता जो भाषासे होता है। इससे मनोभाव प्रकट करनेका प्रधान साधन भाषा है।" वाह वाह! आप न समझाते तो यह गूढ़ विषय कौन समझाकर हिन्दी साहित्यका उपकार करता? आप जैसे विद्वान संसारसे उठ जावेंगे तो कौन फिर ऐसी जरूरी बातें इस सफाईसे समझावेगा? तब तो हिन्दीकी दुनियाँमें अन्धेरा ही हो जायगा!

पर बावजूद इस कवाइददानीके हमारे द्विवेदीजी दो कदम चलकर ही फिसलन्त फरमाते हैं। सुनिये—"मनुष्य और पशु-पक्षी आदिकी उम्र देश, काल, अवस्था और शरीर-बन्धनके अनुसार जुदा-जुदा होती है।" कोई पूछे कि जनाब व्याकरण-वीर साहब! उम्र जुदा-जुदा होती है, या उम्रें जुदा-जुदा होती हैं? जुदा-जुदा होती है कि न्यूनाधिक होती है? एकबार सिंहावलोकन तो कीजिये! जरा अपनी कवाइदे-हिन्दीसे मिलाकर तो देखिये कौनसी बात ठीक है? क्या आपकी व्याकरणदानीकी इज्जत रखनेके लिये बेचारी उम्रके टुकड़े कर दिये जाते हैं।

आप फरमाते हैं—"जिस तरह मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और लता आदिकी उत्पत्ति, बृद्धि और विनाश होता है, उसी तरह भाषाका भी होता है।" क्या होता है? विनाश? क्योंकि आपकी उत्पत्ति और बृद्धिको तो आपका "होता" लातें मार-मारकर भगाता है और आपकी व्याकरणदानीकी ओढ़नी उतारे लेता है। सचमुच जिस भाषाके ठेके-दार आप जैसे घरघमण्डी हों, उस अभागीका विनाश ही होता है।

वाजिदअली शाह खूब कह गये हैं कि खुदा किसी शहरकी जबानको देहातमें राइज न करे।

यह तो द्विवेदीजीकी व्याकरणदानीकी कैफियत है। अब जरा आपके बनाये हुए वाक्योंके अर्थ टटोलिये। आपका पहला ही वाक्य है—"मनमें जो भाव उदित होते हैं, वे भाषाकी सहायतासे दूसरोंपर प्रकट किये जाते हैं!" क्यों जनाब, भाषाकी सहायतासे मनके भाव दूसरोंपर प्रगट किये जाते हैं या भाषासे? आप टाँगोंकी सहायतासे चलते हैं या टाँगोंसे? आँखोंकी सहायतासे देखते हैं या आँखोंसे? कानोंकी सहायतासे सुनते हैं या खास कानोंहीसे? लेखनीकी सहायतासे लिखते हैं या लेखनीहीसे लिखने लग जाते हैं? जो अपनी बोली जानते हैं, वह इस वाक्यको इस तरह लिखते— "मनमें जो भाव उठते हैं, वह भाषासे दूसरोंको सुना दिये जाते हैं।" अथवा "मनकी बात बोलकर दूसरोंको जना दी जाती है।" द्विवेदीजी तरजमें-से भाषा तैयार करते हैं, उसमें असलियत कहां? भाषापन कहाँ? तिसपर भी सबको सिखानेके लिये कमर कसकर खड़े हो गये हैं।

आगे आप व्याकरणकी उत्पत्ति सुनाने चले हैं। इसमें आपके वाक्य आपसमें इस प्रकार टकराते हैं, जैसे भूकम्पसे घरके बर्तन या बन्दरके कूदनेसे मकानकी खपरैलें। आप फरमाते हैं—"शब्दोंके समूहका नाम भाषा है। शब्दोंके उत्पन्न होनेके बाद व्याकरण उत्पन्न होता है। पहले शब्द तब अनुशासन—पहले साहित्य तब व्याकरण।" किसी हिन्दी जाननेवालेको उक्त तीनों वाक्य सुनाकर देख लो, वह फौरन कहेगा कि मजजूबकी बड़ है। ठीक यही मालूम होता है कि पहले दो वाक्योंके बीचसे एक वाक्य गायब हो गया है और तीसरा वाक्य उनपर जबरदस्ती दुलत्तियाँ झाड़ रहा है। भाषा जाननेवाला इन वाक्योंको इस प्रकार लिखता—"शब्दोंके समूहका नाम भाषा है। पहले शब्द

उत्पन्न होते हैं पीछे व्याकरण। व्याकरण शब्दोंका अनुशासन करता है।"

अब जरा अनुशासनका भाष्य सुनिये। फरमाते हैं—"पाणिनिका एक सूत्र है—'अथ शब्दानुशासनम्' इसका नाम है अधिकार सूत्र। यहां 'अनुशासन' में जो अनु उपसर्ग है, वह इस बातको सूचित करता है कि शब्दोंके अनन्तर उनका शासन किया गया है। अर्थात् पाणिनिने सदाके लिये यह शब्द-शास्त्र नहीं बनाया; किन्तु उनके समय तक शब्दोंके जैसे प्रयोग होते थे, उन्हींका उन्होंने अनुधावन किया है—उन्हीं के प्रयोग-सम्बन्धी नियम उन्होंने बना दिये हैं।"

यदि द्विवेदीजी सामने होते, तो पूछते कि महाराज! यह जो आपने गड्डमड्ड कई एक वाक्य आगे-पीछे मियाँ मदारीके गोलोंकी भाँति उगल दिये हैं, इसका कुछ सिर-पैर है या खाली हिन्दीवालोंको हैरान करनेके लिये यह लीला दिखाई है। कृपाकरके यह तो बताइये कि पाणिनिके सूत्रके अर्थसे आपके ऊपरवाले वाक्योंमेंसे सबसे पिछले वाक्यका क्या सम्बन्ध है? सदाके लिये बनाया या न बनाया, इसके कहनेसे आपका क्या प्रयोजन है? यदि आप यह फरमावें कि मैंने जो यह भाषा और व्याकरणवाला लेख लिखा है, अब तकके हिन्दी लेखकोंकी मरम्मतके लिये है—सदाके लिये नहीं, तो इसका क्या अर्थ होगा? मेरे एक मित्र इन वाक्योंको सुनकर बोल उठे कि द्विवेदीजी बहुत-सी विद्या और बहुत तरहकी बातें एक साथ फाँक गये हैं। वह सब आपके पेटमें बकर-कूद मचा रही हैं। आप एकको श्रीमुखसे निकालना चाहते हैं, तो कई लधड़-पधड़ करती आगे-पीछे निकल पड़ती हैं और सिलसिला खराब कर देती हैं।

आप व्याकरण-शास्त्रका पता बताते हैं—"व्याकरण वह शास्त्र है, जिसमें शब्दों और वाक्योंके परस्पर सम्बन्धके अनुसार अपेक्षित अर्थके

जाननेके नियम होते हैं।" क्या गुठल इबारत है। मजाल है, कोई जरा अर्थ समझ जाय! खैर, आपने इसको सरल करनेकी चेष्टा इस प्रकार की है—"अथवा यों कहिये कि जिसके पढ़नेसे ठीक-ठीक लिखना और बोलना आता है।" बारह सालके बाद तो बाबाने कहा कि बच्चा! फावड़ीका नाम गुलसफा है!

आगे द्विवेदीजीने व्याकरणकी जरूरतपर सिरखपी की है। बहुतसी देहाती दलीलोंको उलट-पलट करनेके बाद इस सिद्धान्तपर आकर ठहरे हैं—"अतएव व्याकरणकी आवश्यकता सिर्फ इस लिये है कि नियम रचनाके द्वारा सब प्रान्तोंके लिये वह एक-सी भाषा सङ्गठित करें।" अर्थात् बैसवाड़े और मन्द्राजके लिये एक ही भाषा सङ्गठित कर डाले! खैर साहब, करै तो करै और न करै तो न करै; कितनी ही व्याकरणदानीका दावा करके भी आप अपने देशकी करै-सरैको मत छोड़िये। पर यह तो कहिये कि ऊपरवाले वाक्यमें "सिर्फ" की जरूरत और "नियम रचना" का अर्थ क्या है?

अब दो एक बातें द्विवेदीजीकी व्याकरणदानीके विषयमें और कहना चाहते हैं। आप लिखते हैं "नया-नया साहित्य हमेशा उत्पन्न हुआ करता है।" नहीं जनाब, नया साहित्य हमेशा या नित्य नया साहित्य कहिये। हमेशाके साथ दो बार नया रहनेसे आपका व्याकरण नाराज हो जायगा। आप लिखते हैं—"किसी भी व्याकरणके नियम—" इस वाक्यमें खाली 'किसी' चाहिये। किसीमें 'भी' तो आपही मौजूद है। यों लिखनेवाले तो "कभी भी" लिख डालनेसे भी नहीं चूकते। "भाषा को स्थिरता आ जाती है" की जगह "भाषामें स्थिरता आ जाती है"—चाहिये। स्थिरता कुछ नींद नहीं है, जो भाषाको आवे।

इस तूल कलामके बाद द्विवेदीजी लिखते हैं—"बहुत दिनसे हिन्दी-भाषा लिखी जाती है। (जनाब खता मुआफ! पढ़ी भी जाती है)—पर

सर्वमान्य व्याकरण अब तक नहीं बना। (है महज़ूफ) इसका फल यह हुआ है कि पचास वर्षकी पुरानी भाषा आज कलकी भाषासे नहीं मिलती। यहां तक कि वर्तमान समयमें भी (अर्थात् इस समय भी) एकही वाक्यको एक लेखक एक तरह लिखता है, दूसरा-दूसरी तरह, तीसरा तीसरी तरह। (चौथा चौथी, पांचवां पांचवीं, दूर तक समझते चले जाइये) एक अखबारकी भाषा दूसरेकी भाषासे नहीं मिलती और दूसरेकी तीसरेकी भाषासे। इससे क्या हुआ कि भाषाको अनस्थिरता प्राप्त हो गई है।"

ईश्वरका धन्यवाद है कि "अनस्थिरता" आ गई है न कहा। खैर, अब द्विवेदीजी अनस्थिरताको व्याकरणसे सिद्ध करें और अपने राम उनके लिये एक और लेख तैयार करें।

२

द्विवेदीजी घबराते हैं कि हिन्दी भाषामें एक भी सर्वमान्य व्याकरण अभी तक नहीं बना। इससे पचास सालकी पुरानी भाषा आजकलकी भाषासे नहीं मिलती तथा एक अखबारकी हिन्दी दूसरेकी हिन्दीसे नहीं मिलती। इससे बड़े दुःखके साथ आप फरमाते हैं —"इससे क्या हुआ है कि भाषाको अनस्थिरता प्राप्त हो गई है। और बहुत सम्भव है कि यदि यही दशा बनी रही तो आजसे सौ वर्ष बादके लोग आजकलकी भाषाके बहुतसे वाक्योंको न समझ सकेंगे।"

श्रीमान्‌की यह घबराहट उस देहातनकी घबराहटसे कम नहीं है, जो एक दिन शहरमें सूत बदलाने चली गई थी। वहां जाकर उसने देखा कि पचासों गाड़ियां रूईसे भरी सामनेसे आ रही हैं। देखकर बेचारीको ज्वर आ गया। कांप कर गिर गई और कहने लगी कि हाय-

हाय, इतनी रूईको कौन कातेगा ? उस बेचारी बुढ़ियाको डर हो गया था कि सब रूई उसेही कातना पड़ेगी। उसी तरह हमारे द्विवेदीजी महाराजको भय हुआ है कि पचास साल पहलेकी हिन्दी आजकी हिन्दीसे नहीं मिलती है, तब सौ सालके बाद क्या हाल होगा। पर आपको इतना भय न फरमाना चाहिये। सौ नहीं, तीन सौ साल तककी हिन्दी समझी जाती है। सूरदासजीके पद आजकलके हिन्दी पढ़े अच्छी तरह समझ लेते हैं—"तजि मन हरि-विमुखनको संग", "सन्देशन मधुवन कूप भरे", "नैना अब लागे पछतान", "बिन गोपाल बैरन भई कुंजें", "हंसा रे चल चरनसरोवर जहाँ न प्रेम वियोग" आदि सूरदासके पद किसकी समझमें नहीं आते ? यह तीन सौ साल पहलेकी भाषाके पद हैं। दो सौ साल पहले चरणदासजी थे। उनके पद हैं—"मनवा चल बेगमपुर बसिये", "तेरे तनका तनक भरोसा नाहीं काहेको करत गुमानरे।" सन् १८०२ ईस्वीमें दिल्ली निवासी मीर अमनने "बागोबहार" बनाई। प्रोफेसर आजाद अपनी उर्दूके इतिहासवाली पोथी आबेहयातमें लिखते हैं कि इसीको गद्य उर्दूकी पहली पोथी समझना चाहिये। इसके एक साल बाद कविवर लल्लू लालजीने अपनी प्रेमसागर नामकी पोथी लिखी। इन दोनों पोथियोंको बने सौ सालसे अधिक होगये, आजकलके सब हिन्दी पढ़े, उनकी भाषा बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं। द्विवेदीजी उनके कौन कौनसे वाक्य नहीं समझते कृपा करके उन वाक्योंके 'प्रकाशन' का कष्ट फरमावें।

जिनको हिन्दी आती है और जिन्होंने हिन्दी सीखी है, उनकी हिन्दी सौ साल बाद भी भली भांति समझी जायगी। दो चार शब्दोंका हेर फेर तो होही जाया करता है। पर जो लोग उटकरलैस हिन्दीके सुलेखक बन बैठे हैं, जिनकी हिन्दी मातृ-भाषा भी नहीं है और जिन्होंने उसे कायदेके साथ सीखकर अच्छे जुबानदानोंकी संगतकी

खैराद पर नहीं चढ़ाया है, उनकी भाषा सौ सालके बाद क्या आज भी न समझी जा सके तो आश्चर्य्य नहीं। सरस्वतीके उसी अङ्कमें एक वाक्य है—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि पण्डित बलदेवप्रसादके शरीरके साथ हिन्दीका एक बहुत अच्छा लेखक हमेशाके लिये तिरोहित होगया।" इस वाक्यके लेखकजी महाराजका मतलब तो यह है कि पण्डित बलदेवप्रसाद हिन्दीके अच्छे लेखक थे, वह उठ गये। पर इससे अर्थ निकलता है यह कि पं० बलदेवप्रसादका शरीर भी तिरोहित होगया और उसके साथ हिन्दीका एक अच्छा लेखक भी हमेशाके लिये तिरोहित होगया। लेखकने एक अंगरेजी बोतलका टुकड़ा पीसकर हिन्दीकी खिचड़ीमें मिलाना चाहा है! यह वाक्य उसी तरह दुलत्तियाँ झाड़ रहा और रस्सियां तुड़ा रहा है, जिस तरह दो शऊरदार बाप बेटोंकी सवारीका जानवर एक बांसमें बंधा हुआ, उनके कन्धेपर लटकता हुआ एक पुलपरसे जाते समय झाड़ और तुड़ा रहा था।

द्विवेदीजीको "को" की बड़ी बीमारी है; ऊपरके वाक्यमें है—"बहुतसे वाक्योंको न समझ सकें।" सीधी बात है—"बहुतसे वाक्य न समझ सकें" 'को' इसमें फालतू है। जिनको हिन्दी जाननेवालोंकी सोहबत नहीं, वह इसी तरह "को" की भरमार करते हैं। अर्द्ध कोको बनना उनकी आदत हो जाती है।

आगे लिखने और बोलनेकी भाषाका भेद बतानेकी चेष्टा द्विवेदीजी करते हैं। पर भाषापर आपको अधिकार नहीं। इससे सौ साल बीतनेसे पहले आज ही उनकी बात समझनेके लाले पड़ रहे हैं। जरा आपका इरशाद समझनेमें जोर लगाइये—"लिखने और बोलनेकी भाषामें कुछ भेद होता है। लिखनेकी भाषा थोड़ी बहुत अस्वाभाविक होती है और लेखकके प्रयत्न और परिश्रमसे सिद्ध होती है। पर बोलनेकी भाषा स्वाभाविक हाती है। उसके प्रकाशन (प्रगटन नहीं?) में किसी तरहकी

चेष्टा नहीं दरकार होती।" कहिये, महाराजजीके इन वाक्योंका क्या अर्थ समझे? हाय हाय! "मोरी रंगमें डबोई कारी कामरिया!" अजी महाराज! हिन्दीके सुधारको खड़े हो गये, पहले कुछ दिन लिखनेका ढङ्ग तो सीख लेते। कहिये तो भाषा, प्रयत्न और परिश्रमसे सिद्ध क्या होती है? दालकी भांति गल जाती है या मसानमें जाकर भूत जगाती है? हिन्दी लिखने चले हैं तो इस तरह लिखिये कि हिन्दीवाले आपकी बात समझ लें। फिर आप फरमाते हैं कि बोलनेकी भाषाके प्रकाशनमें किसी तरहकी चेष्टा नहीं दरकार होती। क्या मुंह खोलना नहीं पड़ता? बत्तीसी दिखाये और ओष्ठ फरकाये बिना ही वह स्वयं मुंहसे बाहर निकल जाती है। कहने चले हैं आप यह बात—"लिखनेकी भाषा कुछ बनावटी होती है और बोलनेकी सीधी बेबनावटी। लिखनेकी भाषामें लेखकको कुछ चतुराई और सावधानीसे काम लेना पड़ता है, पर बोलनेकी भाषामें कुछ नहीं करना पड़ता।" इस सीधीसी बातको द्विवेदीजीने एक अनघड़ भाषाके चक्करमें डालकर बतंगड़ बना दिया है। द्विवेदीजी और कहते हैं—"लिखनेकी भाषा अधिक दिनोंतक एक रूपमें रहती है। बोलनेकी भाषामें बहुत शीघ्र शीघ्र फेरफार होते रहते हैं। इसलिये कथित भाषा चिरकाल तक एक रूपमें नहीं रहती।" इसमें पिछला वाक्य यों होना चाहिये,—"इसलिये वह चिरकाल तक एक रूपमें नहीं रहती।" अफसोस है कि भाषाके ऐसे ऐसे सीधे दोष भी महाराजकी समझमें नहीं आते। खैर, महाराजजीको जानना चाहिये कि लिखनेकी भाषा भी वही अच्छी समझी जाती है जो बोलचालकी भाषा हो, मनघड़न्त न हो। उसीको बामुहावरा भाषा कहते हैं। मुहावरेका अर्थ बोलचाल है। अहलेज़ुबान और ज़ुबानदान लोगोंकी बोलचाल बामुहावरा बोलीकी गिनतीमें है। उक्त बामुहावरा भाषा ही बहुत काल पीछे तक समझमें आती है। सूरदासकी भाषा बोलचालकी भाषा

होनेसे ही आज तीन सौ सालके बाद भी समझमें आती है, मीर अमनकी भाषा सौ साल हो जानेपर भी खूब समझमें आती है और गद्य उर्दू लेखक उसीके चलाये पथपर चलकर कृतकार्य्य हुए हैं। पर मियां सुरूर लखनवीकी घड़न्त भाषा "फिसानये अजाइब"हीमें रह गई, किसीने उसकी कद्र न की। सारांश यह कि शिक्षित लोगोंकी बोल-चाल लिखी जानेपर बहुत काल तक ठहरती है और समझमें आती है। वह खूब गठीली और चुस्त होती है गुट्ठल और बेडौल नहीं होती। जो लेखक रोजमर्रहकी भाषा नहीं लिख सकते, वह कितनी ही व्याकरण-दानीसे काम लें, उनकी भाषा उन्हीं तक रह जाती है। कोई उसकी पैरवी नहीं करता।

द्विवेदीजी कुछ ऊंचे दरजेकी बात कहने लगते हैं, तो सड़ककी धूल समेटने लगते हैं। आप इस व्याकरण और भाषाकी बहसमें संसारकी अनित्यता दिखाते हैं—"मनुष्य और पशु, पक्षी आदि जीवधारियोंकी तो कोई (नहीं साहब कुछ कहिये) बात ही नहीं स्वयं यह संसार ही नश्वर है। इसमें दिन-रात परिवर्तन हुआ करता है। जो चीज आज है वह कल नहीं, जो कल है वह परसों नहीं।" (परसों है वह अतरसों नहीं, अतरसों है वह और एक दिन पीछे नहीं। हिसाबी लोग इसी प्रकार एक-एक दिन बढ़ाकर इस गूढ़ दार्शनिक विषयको समझनेकी चेष्टा करें।) धन्य हैं ! भाषा और वैराग्यको एक ही लठसे हांकना हमारे द्विवेदीजीकी ऊंची पहुंचका काम है। यहां कबीरकी बुद्धि भी सिर झुकाती है। आप ऊपरके वाक्योंमें एक बहुत ही बारीक बात कहते हैं। अर्थात् मनुष्य और पशु, पक्षी आदि जीवधारी संसारसे अलग हैं। बाकी पहाड़, पत्थर, ईंट, चूना, नदी, तालाब, पेड़, पत्ते आदिका नाम शायद संसार है। आकाश, तारे, चांद, सूर्य्य और समुद्र भी संसारही में होंगे। पर इनकी बाबत द्विवेदीजीने साफ कुछ नहीं कहा। पर

इतना खोलकर कह दिया है कि स्वयं संसार ही नश्वर है। फिर आदमी और जानवरोंकी तो बात ही क्या है। जो पहाड़ या नदी नाले आज हैं, वह कल नहीं और परसों देखिये, तो चान्द तारों सहित दिनमें आकाश ही नदारद !

द्विवेदीजीने "भाषा और व्याकरण" का लेख क्या लिखा है, एकदम जीवोंके उद्धारको ठान ली है। आपके एक ही इस लेखमें वेद, शास्त्र, पुराण, दर्शन सब हैं। गीता, वेदान्त, न्याय, सब इसीमें हैं। बातें आपने एक साथ इतनी कह डाली हैं कि किसीका किसीसे मेल नहीं। जैसे कैलासमें बाघ और हरन एक ही साथ विचरते हैं, किसीको किसीसे कुछ कष्ट नहीं, उसी प्रकार द्विवेदीजीकी बातें भी अलग अलग अपना अपना काम करती हैं। एक बातसे दूसरीको सरोकार नहीं। इसके भीतर छिपी हुई आपकी प्रश्नोत्तरी सबसे गजब की है। सुनिये—

प्रश्न—"इस नश्वरतासे क्या किसीको कोई (कुछ) तकलीफ होती है।"

उत्तर—"नहीं ! समयके अनुसार मनुष्यकी इच्छा और अपेक्षामें भी अन्तर होता जाता है। इससे उसे संसारिक परिवर्तन नहीं खलते। भाषाका भी यही हाल है। * * * * देशकाल और मनुष्यकी स्थितिके अनुसार उसमें रदबदल (रद्दोबदल) हुआ ही करता है और बराबर हुआ करेगा। उसे कोई रोक नहीं सकता।"

उत्तरकी दुम—"परिवर्तन होना ईश्वरीय नियम है! उसकी प्रतिबन्धकता कौन कर सकेगा ? (मजाल है किसीकी !) परन्तु (वाह ! कितना बामौका 'परन्तु' है ! भाषादानी आपपर समाप्त है !) भाषाकी नश्वरता और परिवर्तनशीलतासे मनुष्यको कोई (नहीं, कुछ) हानि नहीं।" खैर हानि न सही, पर आगे चलकर न कह देना कि हानि है।

आगे चलकर आप नई तान सुनाते हैं—"व्याकरण भाषाकी वृद्धिका अवरोधक है। वह भाषाकी सजीविताका नाश करनेवाला है।" वाह! सुबहान अल्लह! आप तो व्याकरणकी तरफदारी करने चले थे न? जरा होश सम्हालकर बातें कीजिये। हवासको काबूमें रखकर एक बात अच्छी तरह कहिये, तब दूसरीको मुंहसे निकलने दीजिये, जिससे सिलसिला न बिगड़े।

आप लगे हाथ और भी फरमाते हैं—"भाषाओंके भी जीवनकी सीमा होती है। वे भी उत्पन्न होकर बढ़तीं और प्रतिकूल समय आते ही नाशको प्राप्त होती हैं।" (नाश हो जाती हैं, कहनेमें शायद यह ओज न रहता?) महाराजजी! खयाल रखकर लिखिये, ऊपर भी दो बार यह बात आप कह चुके हैं।

फिर फरमाते हैं—"जो भाषा उन्नति कर रही है—बढ़ रही है—उसमें व्याकरणकी पख लगाना मानो उसकी बाढ़को रोक देना है। व्याकरण एक प्रकारकी बेड़ी है। भाषाके पैरोंसे उसका योग होते ही भाषा बेचारी भयभीत होकर जहांकी तहां रह जाती है।" दुहाई महाराज! अब बार बार मत कहिये एक बार सुन लिया। आपकी बेतुकी सुनते सुनते कानोंके पर्दे फट चले। आपकी उलझी तकरीरका मतलब समझना मामूली बुद्धिके आदमीका काम नहीं है। आगामी बार आपकी नजीर समझनेकी चेष्टा की जावेगी। इस समय कृपा करके इतना बताते जाइये कि अनस्थिरताका क्या अर्थ है? स्थिरता और अस्थिरताके बीचमें यह कहांसे पैदा हो गई।

३

जो बात दो वाक्योंमें मनुष्य समझ जाता है, उसे द्विवेदीजी कमसे कम बीस तीस वाक्योंमें समझाये बिना नहीं रह सकते। एक बार

कोई उनसे मुखातिब हो जाय, फिर पीछा छुड़ाना कठिन है। व्याकरणसे भाषाकी उन्नति रुकती है इस बातको आप दूरतक समझाते आये हैं। पर आपकी तसल्ली नहीं होती। इससे फिर कहते हैं—

"इस कारण बोलनेकी भाषाको व्याकरणकी शृङ्खलासे बांधनेकी जरूरत नहीं। उसे यथेच्छ सञ्चरण करने देना चाहिये। और (अजागलस्तन) उसका व्याकरण बन भी नहीं सकता क्योंकि जो भाषा परिवर्तनशील है, उसका व्याकरण बनावैगा कोई कितनी दफा? (वाह! वैगा और दफाके दोनों पलड़े भी कैसे बराबर हैं!) जा प्रयोग या जो वाक्य, या जो मुहाविरा आजकल व्याकरणसिद्ध और सर्वसम्मत है, (अजी महाराज! मुहाविरा व्याकरणसिद्ध कैसे होता है। किसीसे इस कमबख्त शब्दके मानी तो पूछ लीजिये।) वही कुछ काल बाद निषिद्ध माना जायगा। तो क्या उस समय फिर एक नया व्याकरण बनैगा? (नहीं साहब नहीं बनैगा, आपकी दलील पत्थरकी लकीर है। पर आप जैसे हिन्दीदांको "तो" और "तब" का प्रयोग ठीक नहीं मालूम यह कैसे गजबकी बात है। आप इस तरह कहिये—"तब क्या फिर एक नया व्याकरण बनेगा?" ऐसा लिखनेमें वाक्य गठ गया। आपका "तो" "उस समय" को साथ लेकर रफू-चक्कर हुआ। क्योंकि "तब" कहनेमें ही "तो उस समय" आ गया। आप सच जानिये कि अच्छी भाषा लिखनेवाले वाक्यको छोटा करके लिखना, आपकी व्याकरणदानीकी पाबन्दीसे भी कहीं बढ़कर समझते हैं।) नहीं, यदि इस तरह नये-नये व्याकरण बनते रहेंगे तो अनन्त व्याकरणोंकी जरूरत होगी।" (निहायत ठीक यह इरशाद आपका है, किसी दलील या नजीरकी जरूरत आपने बाकी नहीं छोड़ी।)

उन्नति करती हुई अर्थात् बोलनेकी भाषाके लिये व्याकरण नहीं बनना चाहिये इस बातको बहरे-तवीलमें समझा कर आप

अपने इरशादका दूसरा पहलू बदलते हैं—"पर जो भाषा लिखी जाती है उसकी बात दूसरी है।" अजी! पढ़े-लिखे लोगोंमें जो भाषा बोली जाती है वह लिखी भी जाती है। आप यह क्या कहने चले हैं? अपने वाक्यको यों सुधारिये—"पर लिखनेकी भाषाकी बात दूसरी है।" देखिये तो १६ अक्षरोंका वाक्य कैसी सफाईसे १५ अक्षरोंका बन गया।

अच्छा अब आपका इरशाद फिर चले—"जिस भाषामें बड़े-बड़े इतिहास, काव्य, नाटक, दर्शन, विज्ञान, और कला कौशलसे सम्बन्ध रखनेवाले महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जाते हैं, उसका शृङ्खलाबद्ध होना बहुत जरूरी है। उसका व्याकरण बनना चाहिये।" जरा ठहरिये, कृपा करके यह भी बताते चलिये कि जिस भाषामें बड़े बड़े उपन्यास, किस्से-कहानी, लतीफे, चुटकले, अदालतोंके फैसले, नामी वक्ता लोगोंकी वक्तृताएं, बड़े छोटे लाटोंके दौरेकी रिपोर्ट सामयिक समाचार आदि लिखे जायं उसका व्याकरण बने या नहीं? मुझ फिदवी आत्मारामका इससे बहुत काम पड़ता है इसीसे बात काटकर पूछना पड़ा। अपराध क्षमा हो। अच्छा अब आगे बढ़िये—

"लिखित भाषाहीमें ग्रन्थकार अपने कीर्तिकलापको रखकर अपना नश्वर शरीर छोड़ जाते हैं। व्याकरण ही उस कीर्तिका प्रधान रक्षक है।" फिर पूछना पड़ा, क्षमा करें। विनय यह है कि बहुतसे ग्रन्थकार एक ही नश्वर शरीर छोड़ जाते हैं यह कैसी बात है? हरेकके एक एक नश्वर शरीर तो होता होगा? एक ही शरीर छोड़ जाते हैं तो बाकीका क्या करते हैं? फिर व्याकरण तो उस कीर्तिका प्रधान रक्षक है, कलाप और नश्वर शरीरका रक्षक कौन होता है? विदित हो, दासानुदास आत्माराम यह न्याय-दर्शनकी बात नहीं पूछता, व्याकरणकी पूछता है।

द्विवेदीजी आगे आज्ञा करते हैं—"विविध विषयोंपर ग्रन्थ लि
वाले ग्रन्थकारोंके अनुभव, खोज, परीक्षा और विचारोंसे भावी सन्त
को चिरकालतक तभी लाभ पहुँचेगा जब ग्रन्थांकी भाषा व्याकर
नियमोंके द्वारा दृढ़ कर दी जायगी। व्याकरणका नियमन (वाह
नियमन !) भाषाकी उन्नतिका प्रतिबन्धक अवश्य है। (हां, आगे
आप कई बार ऐसीही आज्ञा कर चुके हैं। यह मार मार मिठाई खि
हैं !) पर यदि लिखनेकी भाषा उसका आश्रय लेकर अपनी परिव
शीलताको न रोकैगी तो उससे समाजकी बड़ी हानि होगी।" f
समाजकी हानि होगी ? आर्यसमाजकी या ब्रह्मसमाजकी ?
"समाज" भी आपके अंगरेजी तरजमेकी खराबी है। इसका अर्थ
समय तो समझमें नहीं आता। सौ वर्ष बाद आने लगे तो दूसरी बात
इसी लिखित भाषामें आप जैसे ग्रन्थकार अपने कीर्तिकलाप रख
अपना नश्वर शरीर छोड़ जाना चाहते हैं ?

आपका कथन है—"क्योंकि परिवर्तन होते-होते कोई समय
आवैगा, जब पुरानी भाषाको लोग बिल्कुलही न समझ सकैंगे अ
उस भाषामें भरे हुए ज्ञानसमूहसे वे लोग (कौन लोग ? किसकी त
इङ्गित अर्थात् इशारा है ? जरा अपने व्याकरणमें देखिये तो) वं
रह जायंगे। पुरानी भाषाओंके भी जाननेवाले हुआ करते हैं। (
हैं या हैं कहिये। हुआ करते हैं देहातियोंकी बोली है।) परन्तु (
फालतू है) बहुत थोड़े।" दो पंक्तियां भी आप साफ नहीं लिख सकते
खाली व्याकरणकी झोंकमें लड़खड़ाते हैं।

आपकी आशंकाका पिछला रूप देखिये—"रासोकी भाषाको
देखिये। उसमें कितने अपरिचित शब्द भरे हुए हैं। छः सात सौ व
तो यह दशा है ; हजार दो हजार वर्षमें यदि भाषाकी वर्तमान स्थि
ज्योंकी त्यों बनी रही, तो रासो बिलकुल ही समझमें न आवैग

पिछले वाक्यमें "हजार दो हजार वर्षमें" की जगह "हजार दो हजार वर्षतक" चाहिये और "बनी रही"की जगह "बनी रहे"। भगवानही जाने आपका व्याकरण आपकी भाषाकी ऐसी-ऐसी मोंचें भी निकाल सकता है या नहीं। खैर, अब मतलबकी तरफ चलिये। पहले तो आप पचास या सौ सालकी भाषाके समझमें न आनेकी शिकायत करते थे, अब हजार दो हजार तक पहुंचे। जरा विचारिये तो कैसे बेअटकल आप हैं। लिखते समय अगली पिछली बातोंका सिलसिला मिला लेनेके लिये भी व्याकरण कहता है या खाली अहमूरागनी गानेके लियेही ?

इस प्रकार ६ पंक्तियोंमें पूरी होनेके लायक बात व्याकरण-विशारद द्विवेदीजीने व्याकरणके जोरमें भरकर सरस्वतीके सात कालमोंमें पूरी की है। आपके कथनका सारांश यही है कि हिन्दीमें कोई अच्छा व्याकरण नहीं है। बोलनेकी भाषाका व्याकरण न होना चाहिये, पर लिखनेकी भाषाको अवश्य व्याकरणकी जञ्जीरसे जकड़ देना चाहिये, जिससे वह हजार दो हजार वर्ष वैसोही बनी रहे। व्याकरणकी जञ्जीरमें बंधी रहनेसे हजारों वर्ष पहलेकी संस्कृत आजतक समझमें आती है। पर यह न समझना कि सातही कालममें आपका लेख समाप्त हो गया है। आपका गीत "सुनो भरत दै कान सुयश हनुमानजीको" वाले गीतसे भी कहीं लम्बा है। पूरे २४ कालम (कोई दो-चार लाइन कम) में समाप्त हुआ है। द्विवेदीजी कुछ ऐसी वैसी इस्तेदादके विद्वान नहीं हैं।

अब प्रश्न करनेवाले एक प्रश्न कर सकते हैं कि क्यों द्विवेदीजीको इस प्रकार अचानक लालबुझक्कड़ बनकर इस खुदाकी सुरमादानीका पता बतानेकी जरूरत पड़ी ? इसका उत्तर सहज नहीं। ईश्वर नाना रूप धारण करके इस धराधामपर अवतार क्यों लेता है, क्या कोई इसका उत्तर दे सकता है ? नहीं। पर भक्त कहते हैं कि पृथ्वीका भार उतारने

और डूबतेहुए धर्मकी रक्षा करनेके लिये। इसी प्रकार द्विवेदीजीके भक्तोंने जाना है कि डूबती हुई हिन्दी भाषाके उद्धारके लिये आपने यह लीला की है। आप स्वयं भी आज्ञा करते हैं—"इसीसे हिन्दीकी दशा अनस्थिर हो रही है। (यह अनस्थिर अनस्थिरताका बड़ा भाई है।) एक तो हिन्दी भाषामें साहित्यका एक प्रकारका अभाव ही है। (और दुःखकी बात यह कि आप जैसे दिग्गज विद्वानोंके जीते जी!) दूसरे उसकी अनस्थिरता उसे और बरबाद कर रही है।" किसे? हिन्दी भाषाको या उसके साहित्यको। आत्मारामकी समझमें तो यह अभागी अनस्थिरता आपकी बुद्धिको बरबाद कर रही है। "जिस अखबारको उठाइये, जिस पुस्तकको उठाइये, सबकी (जी नहीं, उसीकी कहिये। सबकी कहना था तो 'जिस'को ताकमें रहने दिया होता। आपहीकी व्याकरणदानीकी रक्षाके लिये कहना पड़ता है। नहीं तो बड़ोंका कथन है कि टका दीजिये, अकल न दीजिये।) वाक्य रचनामें आपको भेद मिलैगा। व्याकरणके नियम निश्चित न होनेसे सब अपने-अपने क्रमको ठीक समझते हैं। इसकी तरफ लोगोंका बहुत कम ध्यान जाता है कि हमारा वाक्य व्याकरणसिद्ध है वा नहीं।" स्वयं द्विवेदीजीको यह बीमारी सबसे अधिक है। आप अपने क्रमको ठीकही नहीं मानते, दूसरोंको लठके जोरसे सिखाना भी चाहते हैं।

यहांतक तो आप तर्करूपी मोहमिलापका ढेर लगाते रहे, अब उदाहरण सुनिये और आपकी वाक्यरचनाके बागड़बिल्लापनकी प्रशंसा करते चलिये। आप देखेंगे कि एक वाक्य आंगनमें है तो दूसरा दालानमें और तीसरा छज्जेपर। "यहां पर हम व्याकरणविरुद्ध हिन्दीरचनाके दो चार उदाहरण देना चाहते हैं। (नाहक कष्ट करते हैं, आपका पूरा लेखही उसका उदाहरण है।) पर जिनकी रचनाके वे उदाहरण हैं (कौन से प्रभु? अभी तो वह आपके पेटहीमें विराजमान हैं। यह "वे" कहां

अड्डा जमाना चाहता है ? बस, यही आपकी व्याकरणदानी है ?) उनसे इस कारण (किस कारण ? जरा अपनी व्याकरणदानीमें कारण तो तलाश कीजिये ? आपके तो एक ही वाक्यके छेड़नेमें आफत हो जाती है !) हम शतबार क्षमा प्रार्थना करते हैं । (व्याकरणसे आपने अपना कसूर तो बताया नहीं, क्षमा शतबार नहीं सहस्र बार मांगिये, यह आपका सौजन्य है !) —चाहे (हैं हैं !) वे इस समय इस लोकमें हों चाहे परलोकमें । इसमें बुरा माननेकी बात नहीं है । (बेशक बुरा माननेकी बात नहीं है, विशेषकर उन लोगोंको तो कभी आपकी बातका बुरा न मानना चाहिये, जो परलोकमें है । यहांवालोंसे अधिक अनुरोध नहीं किया जा सकता ।) हम स्वयं भी बहुधा व्याकरणविरुद्ध लिख जाते हैं । (आपकी सचाईमें संदेह नहीं । आत्मारामकी समझमें तो आप एकदम व्याकरण विरुद्धही लिखते हैं । बेचारा बताता बताता तङ्ग आ गया ।) इसका कारण यह है कि व्याकरणकी तरफ लोगोंका ध्यान ही कम है । (वाह साहब ! व्याकरण-विरुद्ध तो बहुधा आप लिखें और उसकी तरफ ध्यान रखें लोग ! उन्हें ध्यान रखाईका क्या मिलेगा ? अच्छा आत्माराम ध्यान रखेगा, मेहनताना तय कर लीजिये ।) और एककी देखादेखी दूसरा भी उसकी कम परवा करता है ।"

अब आगामी बार द्विवेदीजीके उदाहरण सुनानेको आत्माराम हाजिर होगा । दो सप्ताह हो गये इससे आशा होती है कि अगली हाजिरीतक द्विवेदीजी "अनस्थिरता" को व्याकरणसे सिद्ध कर डालेंगे । दो सप्ताहमें उन्होंने व्याकरण भली भांति उलट-पलट लिया होगा ।

४

द्विवेदीजी आंधीकी भांति उठते हैं, किन्तु धूलकी भांति गिरते हैं । आपकी लम्बी चौड़ी फूं फां और हू-हुल्लड़ देखकर तो यही प्रतीत होने

लगता है कि न जाने कैसी भारी बात आप कहेंगे, पर पास जाते ही मालूम हो जाता है कि देहाती गुल गप्पाड़ेसे बढ़कर कुछ नहीं है। देहातियोंकी आदत होती है कि वह जरासी बातके लिये मुहल्ले भरको सिर पर उठा लेते हैं। जब पूछिये कि इतना हंगामा क्यों है तो "बकरी हांकने" की बात निकलती है। अर्थात् उतना शोर मचाकर ग्रामीणजी कोई युद्ध नहीं कर रहे थे, केवल अपने भाईको समझा रहे थे कि कल उधर नहीं—दूसरी ओर बकरियोंको चराने ले जाना।

आपकी लम्बी चौड़ी हांपनी चढ़ी हुई बातोंको सुनकर लोग घबरा उठे थे कि न जाने हिन्दीवालोंकी कैसी कैसी भूलों और व्याकरणविरुद्ध बातोंका गट्ठड़ लादकर आप लाये हैं। पर देखा तो कुछ नहीं, बस ढोलके अन्दर पोल! कहां तो आपकी वह घबराहट और बौखलाहट कि जिस अखबारको उठाते हैं, जिस पोथीको उठाते हैं, सबमें वाक्यरचनाका भेद पाते हैं और कहां यह फिसड्डीपन कि एक पुरानी पोथीके साढ़े तीन पंक्तियोंके विज्ञापन पर गिरकर रह गये। वाह! इतनी शोराशोरीपर यह बेनमकी! दो चार अखबारोंकी भाषाका मुकाबिला करके दिखाना था, दो चार पोथियोंकी वाक्यरचनाका भेद बताना था। पर यह जरा समझदारीका काम था, इतनी समझ शायद आपमें है नहीं। होती तो दूर जाना न पड़ता, अपनी रचनाहीमें सब रचनाभेद देख लेते। आपकी एक बात दूसरीसे नहीं मिलती, एक वाक्य दूसरेसे नहीं मिलता। खैर, अब वह उदाहरण देख डालिये, जिसे बड़ी धूमधामसे झंडेपर चढ़ाकर द्विवेदीजी महाराज अपनी व्याकरणदानीकी लीला दिखाने सरस्वतीके मैदानमें आये हैं और जिसके घमण्डके मारे आप ऐंठासिंह बनेजाते हैं—

"मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकोंको श्री बाबू रामदीनसिंह 'खड्गविलास'के स्वामीका कुल अधिकार है और किसीको अधिकार नहीं कि छापै। २३ सितम्बर १८८२—हरिश्चन्द्र"

इस वाक्यमें छापेकी एक बहुत छोटीसी भूल रह गई है। इस प्रकारकी भूलको अंगरेजोंके विद्वान दिल्लगीसे प्रेसके भूतोंका काम बताया करते हैं। "का" की जगह "को" या "को" की जगह "का" उक्त भूत सहजमें बना डालते हैं। पढ़े लिखे वैसी भूलोंको लेखकके सिर तो कहां संशोधकके सिर भी नहीं मढ़ते। क्योंकि वह शुद्ध छपने या न छपनेका जिम्मेदार नहीं होता। संशोधकोंके विषयमें भी वह खूब जानते हैं कि वह प्रूफ भलीभांति शुद्ध करके जाते हैं, पर छापेखानेके भूत अपनी कारीगरीसे कभी कभी ऐसे अक्षर वहाँ जोड़ देते हैं कि उस संशोधनका एक विचित्र ही संशोधन हो जाता है। ऊपरके वाक्यमें छापेखानेके भूतने पहले तो "का"की जगह "को" बना दिया है, पीछे "को"की जगह "का" जोड़ दिया है ; शुद्ध वाक्य इस प्रकार था—"मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकोंका श्री बाबूरामदीनसिंह 'खड्गविलास' के स्वामीको कुल अधिकार है।" स्कूलोंमें जो विद्यार्थी व्याकरण सीखते हैं, उन्हें ऐसे वाक्य शिक्षक शुद्ध करनेको देते हैं। विद्यार्थी उन्हें चटपट शुद्ध करके शिक्षकके हवाले कर देते हैं। पर हमारे श्री द्विवेदीजी महाराजने इस डेढ़ वाक्यको बहुत भारी काम समझा है। आप उसे द्रोणगिरिकी भांति कन्धेपर रख लाये हैं। आपकी आज्ञा सुनिये—

"इस वाक्यमें पुस्तकोंके आगे कर्म्मका चिन्ह "को" विचारणीय है। (हिन्दीके कर्म्म फूट गये।) पुस्तकों * * * * को स्वामीका कुल अधिकार है। यह बात व्याकरणसिद्ध नहीं।" सचमुच २३ साल हो गये, इतनी भारी भूल किसीसे न पकड़ी गई थी। आप दूरकी कौड़ी लाये हैं। खैर, आपका संशोधन देखिये—"यदि 'को' के आगे 'छापने' का ये दो शब्द आ जाते तो वाक्यकी शिथिलता जाती रहती।" 'छापने' का एक अधूरा वाक्य है या दो शब्द ? यदि दो शब्द ठहराते हैं तो इनके बीचमें और क्यों नहीं जोड़ते ? 'छापने' और 'का' जबतक

अलग-अलग न हों दो कैसे कहलायगे ? खैर, इसके लिये खिसियानेकी जरूरत नहीं। आप भूलना और दूसरोंकी भूलें पकड़नेके लिये बकध्यान लगाना ही आपकी श्रेणीके विद्वान परम विद्वत्ता समझते हैं। अच्छा महाराज ! यदि आपके 'छापनेका' की जगह केवल 'का' या 'पर' होता तो वाक्यकी शिथिलता जाती रहती कि नहीं ? आप और फरमाते हैं—"फिर छापैके पहले एक सर्वनाम भी अपेक्षित है। यहांपर मतलब 'पुस्तकोंको छापै' से है। पर यदि सर्वनाम भी कोई चीज है तो पुस्तकों-की जगहपर 'उन्हें' या 'उनको' जरूर आना चाहिए।" जी नहीं, उन्हें या उनको आनेकी कुछ जरूरत नहीं। जब मतलब साफ है तो एक व्यर्थ शब्द क्यों बढ़ाया जाय ? ऊपर तो पुस्तकोंकी बात साफ है, फिर आपको "उनको" की क्या जरूरत ? स्पष्ट तो है कि मेरी पुस्तकोंका कुल अधिकार बाबू रामदीनसिंहको है और कोई न छापे। फिर "उनको" के बिना आपके सर्वनामकी इज्जत क्यों नहीं रहती ? दरअसल यह है, हिन्दी आप समझतेही कम हैं। पहले तो आपन "को" को बिना पहचाने ही उसके आगे "आपने" जोड़नेकी आज्ञा दी। अब "उनको" और जोड़ने-की जबरदस्ती कर रहे हैं। जान पड़ता है कि "को" से आपको बड़ी प्रीति है। इससे "का" की जगह "को" और एक और "को" जोड़कर एक खासा "को को" बना लिया। खैर, परम भाषा दिग्गज होनेपर भी द्विवेदीजीमें उदारताका लेश है, यह बड़े सन्तोषकी बात है। हरिश्चन्द्रकी इतनी भारी भूल पकड़नेपर भी आप कहते हैं—"सम्भव है, बाबू हरिश्चन्द्रने इस वाक्यको (नहीं नहीं यह वाक्य कहिये, फिर वही 'को' !) ठीक लिखा हो, पर (कतर डालिये) छापेवालोंकी असावधानीसे यह त्रुटियां रह गई हों।" अहा ! कितना चौड़ा हृदय द्विवेदीजीको ईश्वरने दिया है ! हिन्दी लेखकोंसे उन्हें अगाध प्रेम न होता तो क्या कभी उनकी लेखनीसे यह वाक्य निकलते ? एक तो काशी ऐसा स्थान है,

जिसकी विद्याके हिसाबसे कुछ गिनती ही नहीं। जहां न कोई संस्कृत जानता है न संस्कृतका व्याकरण। हिन्दी पढ़ा लिखा तो वहां होगा ही कौन, क्योंकि हिन्दी वहांकी मातृभाषा है। फिर हरिश्चन्द्र जैसा विद्या-शून्य आदमी—जिसने लाखों रुपये हिन्दीके लिये स्वाहा कर डाले और पचासों ग्रन्थ हिन्दीके रच डाले, भला वह क्या एक पूरे पौने दो वाक्यका विज्ञापन शुद्ध लिख सकता था? कभी नहीं, तीन कालमें नहीं! छापेवाले कभी नहीं भूले, हरिश्चन्द्र ही भूला। क्योंकि वह व्याकरण नहीं जानता था। न तो उसे कर्मके चिन्ह "को" का विचार था, न वह सर्वनामकी जरूरतकी खबर रखता था। क्या अच्छा होता कि द्विवेदीजीका दो दरजन साल पहले जन्म होता और हरिश्चन्द्रको आपके शिष्योंमें नाम लिखाने तथा कुछ व्याकरण सीखनेका अवसर मिल जाता। अथवा यही होता कि दो दरजन वर्ष हरिश्चन्द्र और जीता, जिससे द्विवेदीजीसे व्याकरण सीख लेनेका अवसर उसे मिल जाता। साथ ही उसके गुरू कहलानेवाले राजा शिवप्रसादको भी अपनी भूलें ठीक करा लेनेका सौभाग्य प्राप्त होता।

द्विवेदीजी एक काम अच्छा करते हैं, कि सबको व्याकरणकी दृष्टिसे देखते हैं। वह चाहते हैं कि लोगोंमें कोई बात व्याकरणविरूद्ध न हो। चाहे छींकें, चाहे खांसें, चाहे खायें, चाहे पियें, रोयें या हंसें, व्याकरणका सदा ध्यान रखें। सुनिये आप कहते हैं—"हिन्दी लेखकोंमें एक बात और भी हम बहुधा व्याकरणविरूद्ध देखते हैं। वह ब और व का अभेद है। कहीं ब की जगह व हो जाता है और कही व की जगह ब। (आपसे हो जाता है या हिन्दीके लेखकोंके लिखनेसे? जरा पिछले वाक्यसे अगलेको मिलाकर चलिये।) ऊपरके अवतरणमें जो 'अनुवादित' शब्द है। उसमें वा की जगह बा हो गया है। पर जिस पुस्तककी पीठपर यह नोटिस छपी है, (आपकी नोटिस—आत्मारामका नोटिस) उसके नाम

'बकरीविलापकी' बकरीमें ब की जगह व हो गया है। ब और व में भेद है। यदि भेद न होता तो एक के बदले दो वर्णोंकी जरूरत ही क्या थी ?" आपकी बात बिलकुल सच्ची है। सचमुच ब और व में भेद है। पर इस भेदपर भी आपने वकरीको ठीक बकरी समझ लिया, यह आपकी बुद्धिकी सख्त बहादुरी है। क्योंकि बकरीकी ठीक पहचान चरवाहों, गड़ेरियों या उन लोगोंहीको होती है, जो देहातमें जन्म लेते हैं और बस्तीसे अलग बस कर एकान्तमें जीवन बिताते हैं। ऐसे लोगों-के पास बड़े-बड़े बुद्धिमान शिक्षा लेने जाते हैं। पण्डित श्रीधर पाठकने ऐसे एक गड़रियेकी कहानी लिखी है जिसके पास एक आलिम शिक्षा लेने गया था। उस कहानीका आरम्भ यों है—

"बसा बस्तियोंसे था दूर एक किसान।"

और एक बात है। वा की जगह बा और ब की जगह व हो जानेसे द्विवेदीजीका लाभ है, चाहे हिन्दीके मृत लेखकोंकी स्वर्गमें कुछ निन्दाही होती हो। आपकी लियाकतके झंडे गड़ गये। 'ब' ने बहुत प्रसन्न होकर कहा है कि द्विवेदीजी बड़े बहादुर हैं और 'व' ने कृतज्ञता प्रकाश करके कहा है कि वाह! आपकी क्या बात है! द्विवेदीजीके बिना यह सूक्ष्म विचार कौन करता! आपसे वादी भी प्रसन्न और प्रतिवादी भी प्रसन्न!

हरिश्चन्द्रको द्विवेदीजी कहांतक क्षमा करें। एक खता माफ कर सकते हैं। पर जब खतापर खता देखी तो उनका कलेजा पक गया। हरिश्चन्द्रका और एक ज़ुल्म द्विवेदीजी दिखाते हैं—"सामासिक शब्दोंको इकट्ठा लिखनेकी तरफ भी लोगोंका कम ध्यान है। 'बकरी विलाप' एक सामासिक शब्द है। पर हरिश्चन्द्रजीकी पुस्तकमें जो सन् १८८६ ई० की छपी हुई है, इसके दो खण्ड कर दिये गये हैं।" कैसे गजबकी बात है कि जीते जी तो हरिश्चन्द्र अपना मसविदा एकबार लिखकर फेंकनेके बाद

दोबारा न पढ़ता था और कलम न मिलता तो तिनकोंहीसे लिख मारता था, मरनेके दो तीन साल बाद भी यह अन्धेर कि बकरी-विलापके दो खण्ड करके द्विवेदीजीकी व्याकरणदानीके कोमल हृदयमें आघात पहुंचाया ! हरिश्चन्द्र ! तुमने नाहक जन्म लिया और नाहक ऐसी सुन्दर हिन्दीको जन्म दिया ! न तुम होते, न ऐसी प्यारी हिन्दी होती। दास आत्माराम आनन्दसे उलटे अक्षरोंमें "हातिमताई" और "चहारदर-वेश"का किस्सा पढ़ता और व्याकरणाचार्य्य द्विवेदीजी महाराज अपनी शुद्ध सरल व्याकरण मार्जित भाषामें बैठे-बैठे गाते—

"झिनमा चटक छिनहिमां मद्धिम, जस बुझात खन होत दिया,
ऐसे ही कछु दीख परत हैं, हमरी अक्किलके लच्छन।"

अन्तमें विनय है कि तीन सप्ताह हो गये "अनस्थिरता" का उद्धार आपने न किया। इसे जरा एकबार अपने व्याकरणकी पोशाक पिन्हाकर सबके सामने लाइये। वाजिब था अर्ज किया, आइन्दा हुजूर मालिक हैं।

५

राजा शिवप्रसादकी इसलाह

हरिश्चन्द्रकी भूलोंको ठीक करके द्विवेदीजी अपने उदाहरणरूपी अस्त्रसे राजा शिवप्रसादकी इसलाह करते हैं। आप उनकी "बालबोध" नामक पोथीसे नीचे लिखे वाक्य उद्धृत करते हैं—

"धरतीपर अनेक देश हैं और उनमें मनुष्य बसते हैं। परन्तु सब देशके लोगोंकी एक-सी बोली नहीं है।"

द्विवेदीजी कहते हैं कि "सब देश" की जगह "सब देशों" क्यों न हो ? ठीक है, जो आप कहते हैं वही होना चाहिये। पर इसे आप राजा साहबकी भूल समझेंगे या असावधानी ? सुनिये, राजा साहब उर्दूसे हिन्दीमें आये थे, कदाचित् इसी कारण उनसे यह असावधानी

हुई। राजा साहबने "हर" का तरजमा "सब" किया है। "हर देश" या "हर मुल्क" होता तो ठीक होता। आप भी कुछ न कह सकते। हरको "सब" बनानेहीमें "देश" को "देशों" बनानेकी जरूरत पड़ी। स्वयं द्विवेदीजीने भी एक मौकेपर 'हर'की जगह 'सब' लिख मारा है। आपके वह वाक्य इस प्रकार हैं—

"जिस अखबारको उठाइये, जिस पुस्तकको उठाइये, सबकी वाक्य-रचनामें आपको भेद मिलेगा।" यहां "हरेककी" की जगह द्विवेदीजीने "सबकी" लिख डाला। जब द्विवेदीजी भूल सकते हैं तो एक भूल राजा शिवप्रसादकी भी माफ होना चाहिये।

द्विवेदीजी राजाकी और भी भूलें दिखाते हैं—"बिजली कुछ बादलोंही में नहीं रहती। थोड़ी बहुत (२) सब जगह और अक्सर चीजोंमें रहा करती है। यहां तक कि (३) हमारे और तुम्हारे बदनमें भी है। और कलोंके जोरसे भी (४) निकल सकती है।--विद्याङ्कुर, २३ वीं आवृत्ति। राजा शिवप्रसाद।"

द्विवेदीजी इसपर कहते हैं- "(२) थोड़ी बहुतके आगे 'बिजुली' क्यों न हो? और जहां (३) और (४) अङ्क हैं, वहां 'वह' क्यों न हो?" यदि द्विवेदीजीकी आज्ञा मानी जाय, तो राजा शिवप्रसादका वाक्य इस तरह बने—"बिजुली बादलोंहीमें नहीं रहतीं, थोड़ी बहुत बिजुली (धन्य बिजुली! देहातकी औरतोंको भी द्विवेदीजीने मात किया। एक बार अवधके एक गाँवमें स्त्रियोंके मुँहसे यह शब्द सुना था, या अब द्विवेदीजी-से सुना!) सब जगह और अक्सर चीजोंमें रहा करती है। यहां तक कि वह हमारे और तुम्हारे बदनमें भी है, और कलोंके जोरसे भी वह निकल सकती है।"

अब जिनको हिन्दीकी समझ है, वह जरा विचारें कि राजा साहबके वाक्योंसे मतलब साफ निकलता है या द्विवेदीजीके संशोधित वाक्यों-

से। द्विवेदीजी जो इसमें एक जगह 'बिजुली' और दो जगह 'वह' घुसेड़ते हैं, इससे राजा साहबके वाक्य स्पष्ट हो गये या गुट्ठल ? राजा साहबके वाक्योंमें जब बिजली हीकी बात कही गई है, तो बार-बार बिजलीका नाम लेनेकी जरूरत क्या है ? बिजलीकी बात समझते-समझते कोई हाथीकी बात तो समझने नहीं लगेगा। द्विवेदीजीको क्या समझाया जाय, वह जिसको नहीं जानते हैं, उसीकी बाबत समझ बैठे हैं कि उसे खूब जानते हैं। फारसीमें इसे 'जहलेमुरक्कब' कहते हैं। फारसीवाला कहता है कि जो नहीं जानता और समझता है कि जानता हूं, वह सारी उमर जहलेमुरक्कबमें रहता है। राजा साहबके ऊपरवाले वाक्य इतने शुद्ध और सुन्दर हैं कि उनसे बढ़कर और नहीं हो सकते। यदि वर्तमान हिन्दीका वर्तमान रूप दो चार सौ वर्ष रहना बदा हो, तो राजा साहबके यह वाक्य भी बने रहेंगे और अच्छी हिन्दीका नमूना कहलावेंगे।

द्विवेदीजी वैयाकरण बनकर तो चले, पर चलते हैं वैयाकरणोंके पथके विपरीत। वैयाकरण लोग अपनी भाषामें आधी मात्रा घटा सकनेसे पुत्र होनेकी खुशी मानते हैं, आप तो संस्कृतके बड़े पण्डित हैं, देखिये संस्कृतवाला क्या कहता है—

"अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवंमन्यन्ते वैयाकरणाः"

पर द्विवेदीजी एक मात्राही क्यों, अक्षरके अक्षर जबरदस्ती बढ़ा डालनेको अपनी व्याकरण-वीरता समझते हैं ? आपको मालूम होना चाहिये कि राजा शिवप्रसाद उर्दूके ऊंचे दरजेके लेखकोंमें थे। सर सैयद अहमदखां आदि उनकी उर्दूकी कदर किया करते थे। सर सैयद उर्दूके स्तम्भ-स्वरूप ऊंचे दरजेके लेखक थे। अच्छी उर्दूका उन्हें यहां तक प्रेम था, कि वह अपने बेटे जष्टिस महमूदकी उर्दूको उर्दू नहीं समझते थे। कहा करते थे, कि तुमने दिल्लीमें रहकर उर्दू नहीं सीखी, तुम अच्छी उर्दूको

क्या समझ सकते हो ? राजा शिवप्रसादकी ऊपरवाली भाषा कितनी फसोह है, उसका हम मौलवी मुहम्मद हुसेन आजादकी भाषासे मुकाबिला करके दिखाते हैं। यह मुहम्मद हुसेन वही हैं, जिनके बनाये उर्दूके इतिहास आबेहयातको सब उर्दूवाले सिर आंखोंपर रखते हैं। पञ्जाब यूनिवर्सिटीमें आदिसे आजतक उन्हींका बनाया उर्दूका व्याकरण पढ़ाया जाता है। उर्दू हीका नहीं, फारसीका व्याकरण भी पञ्जाब यूनिवर्सिटीमें उन्हींका बनाया जारी है। उनकी दरबारे-अकबरी नामकी किताबसे हम कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हैं—

"हम सब एक ही मञ्जिले मकसूदके मुसाफिर हैं। इत्तिफाकन गुजरगाहे दुनियामें एकसा हो गये हैं। रस्तेका साथ है। बना बनाया कारवान चला जाता है। इत्तिफाक और मिलनसारीके साथ चलोगे, हमदर्दीसे काम बटाते चलोगे, तो हंसते-खेलते रस्ता कट जायगा। अगर ऐसा न करोगे और इन झगड़ालुओंके झगड़े तुम भी पैदा करोगे, तो नुकसान उठाओगे। आप तकलीफ पाओगे, साथियोंको भी तकलीफ दोगे।"

अब यदि द्विवेदीजीका व्याकरण लेकर मौलवी मुहम्मद हुसेनकी भाषाकी इसलाह की जाय, तो इस प्रकार हो—"हम सब एक ही मञ्जिले मकसूदके मुसाफिर हैं। हम सब इत्तिफाकन गुजरगाहे दुनियामें एक-सा हो गये हैं। हम सबका रस्तेका साथ है। हम सबका बना बनाया कारवान चला जाता है। अगर तुम इत्तिफाक और मिलनसारीके साथ चलोगे, अगर तुम हमदर्दीसे काम बटाते चलोगे, तो हंसते-खेलते हम सबका रस्ता कट जायगा। अगर तुम ऐसा न करोगे और इन झगड़ालुओंके झगड़े तुम भी पैदा करोगे, तो तुम भी नुकसान उठाओगे। तुम आप भी तकलीफ पाओगे और तुम अपने साथियोंको भी तकलीफ दोगे।" इसमें ३ 'हम सब' और १ 'हम सबका' १ 'अगर' ४ 'तुम'

१ 'तुम भी' और 'तुम" (कुछ भूल-चूक रह गई हो, तो द्विवेदीजी माफ करें) बढ़ गया। इससे जो लोग भाषा जानते हैं, भाषा बोलना जानते हैं, वह तो आपके व्याकरणसे काम ले सकेंगे नहीं। हाँ, गाँव-गँवईके पाँच पञ्च मिलकर आपके व्याकरणको देहातमें रिवाज दिलानेके लिये आन्दोलन करें, तो शायद कुछ सफलता हो सकती है।

और दो-चार पंक्तियाँ हम लखनऊके "अलनदवा" नामके पत्रसे नकल करते हैं। यह भारतवर्षके मुसलमान विद्वानोंकी एक सभाका पत्र है। शमसुलउल्मा मौलवी शिवली इसके सम्पादक हैं, जो अरबी-फारसीके एक बड़े विद्वान और उर्दूके प्रवीण सुलेखक हैं। उक्त पत्रके एक लेखकी दो-तीन पंक्तियाँ नकल की जाती हैं—"मिसरकी तालीम याफ्ता सोसाइटीके एक जीअसर मेम्बर मि० कासिम अमीनविक हैं, जो किसी जमानेमें पर्देके बड़े तरफदार थे और युरोपकी मौजूदा आजादोको सख्त नफरतकी निगाहसे देखते थे। फरेञ्चमें एक रिसाला भी पर्दये इसलामकी ताईदपर लिखा था।" यदि द्विवेदीजीके व्याकरणसे इन पंक्तियोंको ठीक किया जाय, तो इसमें एक 'वह' और एक 'उन्होंने' जोड़नेकी जरूरत पड़ती है ; पर जरूरत नहीं है, इसीसे लेखकने उनको छोड़ दिया है। हिन्दीमें क्रियासे बहुत-सा काम निकल जाता है। क्रिया बहुत स्थानोंपर आपही कर्त्ताका बोध करा देती है। द्विवेदीजीका ध्यान शायद इधर कम है।

कदाचित् पाठक यह कहें कि राजा साहबकी हिमायतके लिये उर्दू-वालोंके उदाहरण क्यों दिये गये हैं? इसका उत्तर आत्मारामकी तरफसे यह है कि हिन्दीवालोंको तो द्विवेदीजी खयालमें लाते ही नहीं। हिन्दीमें बड़े-से-बड़े लेखक हरिश्चन्द्र थे, उन्हींको महाराजजीने सबसे पहले धर लपेटा है। फिर मुद्रा-राक्षस और सत्य हरिश्चन्द्र आदिसे हम उदाहरण दें, तो क्या मुंह लेकर? देवनागरी अक्षरोंके प्रवर्त्तक राजा

शिवप्रसादको आप कुछ गांठते ही नहीं हैं। गदाधरसिंह, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री आदिको भी पकड़कर खूब झंझोटा है। अब उदाहरण दिया जाय, तो किसके लेखसे? लाचार उर्दूके लेखकोंकी सनदें लेकर द्विवेदीजीकी सेवामें उपस्थित होना पड़ा।

कुछ और पंक्तियाँ द्विवेदीजीने राजा शिवप्रसादके इतिहास तिमिर-नाशकसे उद्धृत की हैं। उनमें भी वही 'उसने' और 'वह' की तकरार है। अन्तमें द्विवेदीजीने राजा साहबके मामलेमें यह हुक्म दिया है—"कर्तृपदोंका ऐसा समूल संहार शायद ही और किसी लेखककी इबारतमें पाया जाय। यदि इस तरहकी इबारत अच्छे मुहाविरेमें गिनी जाय, तो नमः शब्दशास्त्राय।"

अजी महाराज, आप जानते ही नहीं कि कर्तृपद कहां लाये जाते हैं और कहाँ-कहाँ छोड़ दिये जाते हैं। आपकी आदत है, जिस बातको नहीं जानते उसीमें फजीलत दिखाते हैं। आपको यह भी मालूम नहीं कि मुहावरेका अर्थ क्या है। यदि जानते तो कभी न लिखते कि इस तरहकी इबारत मुहाविरेमें गिनी जाय—। इबारत मुहावरेमें कैसे गिनी जाती है, यह किसीसे आप पूछ तो लीजिये। लोग आपकी समझदारीकी हंसी उड़ा रहे हैं। कहिये अनस्थिरताकी क्या दशा है? वह व्याकरणसे सिद्ध हुई कि नहीं? अच्छा और एक सप्ताहकी मोहलत। पर 'मुहावरे'का अर्थ भी पूछ रखना।

६

द्विवेदीजीमें एक विशेष गुण है। अबतक प्रकृतिने इस गुणसे हिन्दी सुलेखकोंको वञ्चितही रखा था। वह गुण यह है कि जहांतक हो सकता है, आप हिन्दीके लेखकोंके विज्ञापनोंकी भूल पकड़ते हैं। विज्ञा-

पन न मिलनेसे उनकी पुस्तकोंपर हाथ डालते हैं, नहीं तो नहीं। अब यदि सब छापेखानेवाले और पोथियोंवाले मिलकर उन्हें अपने विज्ञापनोंकी भूलें निकालनेका आम मुखतारनामा दे दें तो एक अच्छी आफतसे छूटें। साल दो सालमें द्विवेदीजी सब विज्ञापनोंको अपने व्याकरणसे ठीक करके रख दें। ऐसा हो तो हिन्दीसाहित्यकी एक बड़ी भारी सेवा हो। जैसे कि ईसपकी कहानीवाले मोचीने कहा था कि यदि नगरके आसपास चमड़ेकी दीवार बना दी जाय तो किसी शत्रुका कुछ भय न रहे। देखिये तो हरिश्चन्द्रकी भांति द्विवेदीजी गदाधर सिंहको भी एक सूचनाहीसे पकड़ते हैं—

"यन्त्रालयाध्यक्ष महाशयकी इसपर ऐसी कृपा हुई कि आज एक वर्षमें छापकर अब आप लोगोंके हस्तगत करनेके योग्य किया है।"

इस इबारतमें "आज" और "अब" दो शब्द हैं। उनमें एक अधिक है। चाहे "अब" को निकाल दीजिये चाहे "आज" को, इबारत ठीक हो जायगी। यहां दोनों शब्दोंका अर्थ एकही है। उनमेंसे एक असावधानीके कारण जुड़ गया है। पर द्विवेदीजी इसपर बड़ा तूल-कलाम करते हैं। कहते हैं कि इसमें एक "इसे" या "इसको"की जरूरत है। 'किया है' का कर्म्म जरूर चाहिये। उसके बिना वाक्यकी टंगड़ी टूटी जाती है। सकर्मक क्रियाके कर्त्ताके आगे कर्त्ताका चिह्न "ने" आना चाहिये। अतएव "कृपा हुई" के बाद कहीं पर "आपने" या "उन्होंने" की जरूरत जान पड़ती है।

बड़ी आफत है, पीछा छुड़ाना दूभर हो गया। अरे! बाबा एकही तो वाक्य है? उसमें जब एक जगह "इसपर" मौजूद है तो फिर आपके "इसे" या "इसको"के उसमें जबरदस्ती घुस बैठनेकी क्या जरूरत है? क्या आपको यह भय है कि आपके "इसके" की सहायताके बिना यन्त्रालयाध्यक्ष महाशय पोथीके बदले गदाधरसिंह-

हीको छाप बैठेंगे ? इसी प्रकार आपके "उन्होंने" या "आपने" के न जोड़नेसे पोथी यन्त्रालयाध्यक्ष महाशय या गदाधरसिंह न बन जायगी ! आप क्यों इतने चक्करमें पड़ते हैं ? आप सच जानिये कि हिन्दीवाले आपकी "उसको" "उन्होंने" से जहां तक हो सकता है, बचते हैं। यही हिन्दी लिखनेकी रीति है, पर आप जानते नहीं। आगे आप इस वाक्यको दो टुकड़े करके लिखने और उसके लिये एक "ने" युक्त "कर्ता" रख देनेकी सलाह भी देते हैं। यह सलाह किसी मुर्देकी टांगमें लिखकर बांध दी जाय तो स्वर्गमें गदाधरसिंहके पास पहुंच सकती है। देखें वह इसको पसन्द करें या नहीं।

इसीपर फैसिला फरमाते हुए द्विवेदीजी लिखते हैं—"किसी-किसीका मत है कि सकर्म्मक और अकर्म्मक दोनों तरहकी क्रियाओंके लिये एक ही प्रकारका कर्ता हो सकता है। यथा—

हम जब घर गये लड़केको बीमार देखा।

"यहां पर ('यहां' के बाद 'पर' आपने नाहक खोंसा है) 'देखा' और 'गये' दो प्रकारकी क्रियायें हैं ; पर उनका कर्ता 'हम' 'गये' के लिये भी है और 'देखा' के लिये भी। सकर्म्मक 'देखा' के लिये 'हमने' की जरूरत नहीं समझी गई। इस तरहका प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध है। पर व्याकरण सिर्फ अपने समय तककी भाषाके मुहाविरोंका नियमन करता है। अतएव यदि सब लेखक इस प्रकारके प्रयोगोंको साधु मान लें तो कोई आपत्तिकी बात नहीं।"

यही धोखा तो आपको खराब करता है। अजी जनाब ! बेचारा "हम" गये और देखा दोनोंका कर्त्ता नहीं बनना चाहता, केवल 'गये' का कर्त्ता बनता है। 'देखा' अपने कर्त्ता 'हमने' को अलग बुला रहा है। वह 'तो' सहित गायब है। क्योंकि 'अब' अपने लिये एक 'तो' भी चाहता है। यहां 'तो' और 'हमने' अलग कर

दिये गये हैं, जिनके अलग होजाने पर भी वाक्यका मतलब वैसेका वैसा है। पर ऐसे वाक्य बोल चालमें आते हैं, लिखनेमें कम। नाटक, उपन्यास आदिके कामके हैं, इतिहास आदिके लेखक उन्हें बरतावमें नहीं लाते।

कुछ इबारत द्विवेदीजीने गोस्वामी राधाचरणजीके मासिकपत्र भारतेन्दुसे पकड़ी है। इसमें एक शब्द आपने ऐसा तलाश किया है कि आपकी तलाशकी प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता है। गोस्वामीजीके लिखनेसे बढ़कर द्विवेदीजीकी तलाशकी तारीफ है। आपको ऐसी चीजें मिल जाती हैं, यह आपकी कितनी बड़ी योग्यता है! आप उस शब्दके विषयमें रायजनी करते हैं—"ऊपरके अवतरणमें जो शब्द मोटेसे अक्षरोंमें छपा है, वह अत्यन्त ग्राम्य है। कोई भी (वाह री 'भी'!) सम्पादक किसी सभ्यजनके सामने वैसा शब्द अपने मुंहसे न निकालेगा।"

गोस्वामीजीने वैसा शब्द फिर न लिखा होगा और जहांतक हम जानते हैं किसी हिन्दी लेखकने भी उसका अनुसरण नहीं किया। इससे उस ग्राम्य शब्द-रत्नके लुप्त होजानेका पूरा भय था। द्विवेदीजीने उसका उद्धार करके एक पन्थका नाम रख लिया। भारतके सब पन्थी मिलकर उन्हें कोई उपाधि दे डालें तभी इसका बदला हो सकता है।

गोस्वामीजीकी इबारतमें है—"अंगरेजी अखबार तो खास इसी वजहसे लिये जाते हैं कि वह रियासतके खिलाफ न लिखें—।" द्विवेदीजी इस वाक्यमें 'वह' की जगह 'वे' देखना चाहते हैं। आप कहते हैं—"हम देखते हैं कि लोग 'वह' शब्दको बहुवचनमें भी लिखते हैं और एकवचनमें भी। यदि अधिक लेखकोंको 'वे' की जगह 'वह' ही लिखना अच्छा लगता हो तो वही सही। इस दशामें व्याकरण बनानेवालोंको चाहिये कि वे 'वह' को एकवचन और वहुवचन दोनोंमें रक्खें।"

विपद तो यह है कि द्विवेदीजी न भाषा जानते हैं, न व्याकरण, और

टांग अड़ाते हैं दोनोंमें। जब आपको किसी देशकी बोलीकी ही खबर नहीं है तो उसके व्याकरणके सुधारके लिये क्यों दौड़ते हैं? 'वह' और 'वे' की बहससे व्याकरण भरे पड़े हैं। सुनिये दिल्ली, आगरा और लखनऊ तीनों प्रान्तोंके लोग 'वह' और 'यह' को एकवचन और बहुचन दोनोंमें बोलते हैं। बहुत चेष्टा हुई कि बहुवचनमें 'वह' को 'वे' या 'वो' बना दिया जाय और यह को 'ये'। पर 'वे' को तो लोगोंने निरा गंवारी समझा और 'वो' और 'ये' चले नहीं। उक्त तीनों प्रान्तोंमें 'वे' किसीके मुंहसे नहीं निकलता। कोई अनपढ़ या गंवार बोल उठे तो उसकी बातको मानताही कौन है? व्याकरणोंमें साफ लिखा है कि 'वह' एकवचन और बहुवचन दोनों है और 'वे' गैरफसीह है। गोस्वामी राधाचरण आगरा प्रान्तके हैं, हिन्दीके देशके हैं, वह 'वे' क्यों लिखने लगे?

आशा है कि आपने अपनी 'अनस्थिरता' को व्याकरणका लहंगा पिन्हाया होगा। क्योंकि बहुत दिन हो गये।

७

एक विशेष प्रकारके जलपक्षीकी भांति द्विवेदीजीको किनारेके कीचड़-ीमें सब मिल जाता है। इसीसे अगाध जलतक कष्ट करनेकी आवश्य-कता आपको नहीं पड़ती। आप यथासम्भव हिन्दी लेखकोंकी भूल इधर उधरके विज्ञापन आदिसे चुनते हैं, उनकी बनाई पुस्तकोंपर कम हाथ डालते हैं। जिस प्रकार हरिश्चन्द्रकी भूल एक सड़ियल विज्ञापनमें टटोली, वैसेही काशीनाथजी खत्रीकी त्रुटि किसी आलोचना या सूचनासे निकाली है। सुनिये—

"यह एक पुस्तक नागरीमें है।" * * * जिनको ये दोनों पुस्तक लेनी हों * * शाहजहांपुरसे मंगालें *

* * तृतीय भागमें निषेधकोंके आपत्तियों और कल्पनाओंके विधिपूर्वक उत्तर हैं।"

द्विवेदीजी इसपर यों एतराज फरमाते हैं—

"पुस्तकके पहले 'एक' शब्द अनावश्यक जान पड़ता है। 'दोनों पुस्तक' की जगह 'दोनों पुस्तकें' क्यों न हो? आपत्ति और कल्पना शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। अतएव उनके सम्बन्धके सूचक 'के' की जगह स्त्रीलिङ्ग 'की' होना चाहिये।"

द्विवेदीजीको इस बातका तो मगज नहीं है कि बीस साल पहले जो हिन्दी बोली जाती थी अब उसमें कुछ अन्तर हो गया है। काशीनाथने पुस्तकके पहले 'एक' ठीक लगाया है। उस समय लोग इसी तरह लिखते थे। 'दोनों पुस्तकें' नहीं। पहले उर्दूवाले आतियां हैं, जातियां हैं, लिखते थे। वाजिदअलीशाह तक यह चाल रही। अब नहीं है। इसे भूल कहना निरा बेमगजापन है। इतनाही कहा जा सकता है कि यह मुहावरे छूट गये, अब नहीं बोले जाते। एक उर्दूका कवि कहता है—

वह सूरतें इलाही किस देश बस्तियां हैं,
अब देखनेको जिनके, आखें तरसतियां हैं।

तब यह बोलचाल शुद्ध थी, उत्तम समझी जाती थी। अब लोग उसकी पैरवी नहीं करते। पर उसे गलत नहीं बताते। उस समयके बोलनेवालोंपर ताने नहीं झाड़ते। क्योंकि पुराने लेखक इस समयके लोगोंके पथप्रदर्शक और Pioneer थे। उनकी मेहनतकी तरफ ध्यान करना चाहिये। वह पथ परिष्कार न करते तो इस समयके लोग चलते किधरसे। जिसने पहले रेलका इञ्जन बनाया, उस आदमीकी जबतक संसारमें सभ्यता रहेगी, पूजा होगी। उसके भद्दे इञ्जनको लोग बड़ी प्रीतिकी दृष्टिसे देखेंगे। आजकलके उत्तम इञ्जनोंको देखकर यदि कोई उस आदमीके उस आदि इञ्जनकी बनावट पर हंसे तो उसे द्विवेदीजी

जो कुछ कहना चाहें वह कृपा करके अपनेहीको कहलें। क्योंकि आपकी उसी आदमीकी-सी गति है।

द्विवेदीजी एक जरासी छापेकी भूलको भी हिन्दीके लेखकोंके सिर मढ़ देते हैं। 'की' की जगह 'के' छप जानेसे आप फरमाते हैं कि काशीनाथने आपत्ति और कल्पनाको स्त्रीलिङ्ग नहीं समझा। इतना भी न सोचा कि यह छापेकी भूल होगी। खैर न सोचा न सही, द्विवेदीजी काशीनाथकी पुस्तकोंमें दो-चार स्थान ऐसे दिखावें जहाँ आपत्ति या कल्पनाको पुलिङ्ग लिखा हो। नहीं तो आपकी आपत्ति महज लुर है। उर्दूवाले गद्यमें लिखी हुई "के" और 'की' की सनद नहीं मानते हैं। क्योंकि वह जानते हैं 'के' की जगह 'की' या 'की' की जगह 'के' लिखा जा सकता है। ऐसे मौकोंपर वह कवितासे सनद लेते हैं। जैसे मीरने एक जगह 'जान'को स्त्रीलिङ्गकी जगह पुलिंग लिख डाला है—

इश्क बुरेही खयाल पड़ा है, चैन गया आराम गया।
जानका जाना ठहर गया है, सुबह गया या शाम गया।

अब यदि इसके पहले चरणमें "चैन गया आराम गया" न होता तो उर्दूवाले कभी न मान लेते कि मीरने "जान" को पुलिङ्ग लिखा है। बरञ्च वह समझते कि लेखकने भूलसे "गई" को "गया" लिख मारा है। पर पहले अंशमें "आराम गया" मौजूद है इससे दूसरे अंशमें भी "शाम गया" शुद्ध मानना पड़ेगा। उर्दूवालोंके इस उदार नियमको द्विवेदीजीकी आपत्तिसे मिलाकर देखना चाहिये। हिन्दीमें पचासों पोथियां लिख जानेवाले काशीनाथको, द्विवेदीजीकी समझमें इतनी लियाकत भी न थी कि आपत्ति और कल्पनाका लिंग समझता।

हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, गदाधर सिंह, राधाचरण और काशीनाथ आदिकी पहले कही हुई भूलें दिखाकर द्विवेदीजी अपनी राय शरीफ (बल्कि शरीफा) यों जाहिर फरमाते हैं—

"इस तरह सारी (बल्कि लंहगा ! आपका देहाती चोचलाही तो सितम करता है !) त्रुटियोंको हम मुहाविरा नहीं समझते।" अजी महाराज ! सच तो यह कि आप कुछ भी नहीं समझते। पर इतनी हेचमदानी पर भी हमादानीके पीछे लठ लिये फिरते हैं। पहले तो आप किसीसे यह पूछिये कि त्रुटियोंको 'मुहाविरा' कैसे समझा करते हैं। फिर यह पूछिये कि "मुहाविरा" शब्दका ठीक उच्चारण और अर्थ क्या है। जबतक आपको इस शब्दके अर्थका ज्ञान न हो जाय, तबतक इसका नाम लेकर अपनी हंसी मत कराइये।

द्विवेदीजी और कहते हैं—"यदि वे सब मुहाविरा समझ ली जायंगी तो मुहाविराकी परिभाषाके बाहर शायद एक भी त्रुटि न रह जाय। सभी उसमें आजायंगी।" यह एक या सवा वाक्य द्विवेदीजीने दूसरोंकी भूलें दिखानेको लिखा है। पर आप स्वयं इसमें कितनी भूलें कर गये हैं, सुनिये—इसमें "वे" तो गंवारी है, आजकलके अच्छे लेखक इसे मत्रूक समझते हैं। "मुहाविरा" गलत लिखा गया है, इसका उच्चारण पूछकर द्विवेदीजी इसे सही लिखें तो अच्छा। "मुहाविराकी परिभाषा" की जगह "मुहाविरेकी परिभाषा" चाहिये। यह एक बहुतही मोटी भूल है। "समझ ली जायंगी" के मुकाबिलेमें "रह जाय" ठीक नहीं। या तो पहलेही 'गी' न चाहिये नहीं तो पीछे भी एक'गी' जोड़नेकी जरूरत है।

द्विवेदीजी और कहते हैं—"हम मुहाविरा (रे) के खिलाफ नहीं। (तब शायद मुहावरा कमबख्तही आपके खिलाफ होकर आपसे इस प्रकार टेढ़ा-टेढ़ा चलता है !) मुहाविराही भाषाका जीव है। पर उसकी सीमाका होना आवश्यक है।"

अजी महाराज ! "जीव" है कि "जीवन" है ? शायद "न" को आपका कम्पोजीटर हजम कर गया। नहीं तो आप जैसे विद्वान् जीव और जीवनका भेद न जानते हों ऐसा कहना तो ढिठाई है। क्योंकि

केवल हिन्दीहीके नहीं, अंगरेजी, संस्कृत, बंगला, मराठी आदि भाषाओंके भी आप परम पण्डित हैं और इन सब भाषाओंके व्याकरणसम्मत वाक्योंके कुछ उदाहरण आप दे सकते हैं। "उसकी सीमाका होना" में आपका "का" बेजरूरत है। "उसकी सीमाका होना" या "उसके सीमा होना" से काम निकल सकता है। या यदि आपका व्याकरण 'की' के बाद एक "का" के बिना नहीं मानता तो एक 'कू' आत्मारामकी तरफसे भी सही। जिसमें आप राजी, उसीमें दास आत्माराम भी राजी !

इस तरह हिन्दीके पुराने लेखकोंको गन्दी इबारतोंके नमूने दिखाते हुए द्विवेदीजी लिखते हैं—

"अब हम अंगरेजी, संस्कृत, बंगला आदि भाषाओंके व्याकरणसम्मत वाक्योंके कुछ उदाहरण देना चाहते हैं। इन उदाहरणोंमें कर्ता, कर्म, क्रिया, लिंग, वचन और विभक्ति आदि सम्बन्धी कोई दोष नहीं है।"

इस प्रकार सूचना देकर श्रीमान्‌ने अंगरेजी, संस्कृत, बंगला, मराठी और अन्तमें हिन्दीसे सचमुच कई एक उदाहरण दे डाले हैं। समझमें नहीं आया कि इस "मारूं घुटना फूटे आंख" से द्विवेदीजीने क्या मतलब निकाला। हिन्दीकी बहसमें दूसरी भाषाओंके पदार्पण करनेका क्या मतलब ?

"कहां झगड़ा पिजावेका, निकाला बागका कागज।"

विचारनेसे दोही बातें समझमें आती हैं। एक तो यह कि द्विवेदीजी केवल हिन्दीहीके लासानी विद्वान् नहीं, अंगरेजी आदि और कई भाषाओं-के भी सख्त पण्डित हैं—यह बात दुनियाको जना देना था। दूसरे यह कि आपके दिमागमें यह सब भाषाएं अपने-अपने व्याकरण सहित बड़े जोर-शोरसे भरी हुई थीं। एकके निकालते समय औरोंकी भी डाट खुल गई और वह बाहर निकल निकलकर तमाशा देखने लगीं।

आत्माराम को पिछली बातही ठीक मालूम होती है। क्योंकि अपनी विद्याका इजहार द्विवेदीजी स्वयं क्या करते। सूर्य्यको यह प्रकाश करनेकी क्या जरूरत है कि मैं सूर्य हूं। उसकी किरणें फैलकर जगतको प्रकाशमान कर देती हैं। इसी प्रकार यह कई भाषाओंके उदाहरण द्विवेदी रूपी सूर्यकी किरणें हैं। आपके उदयकालको पाकर स्वयं आगे दौड़ती हैं।

खैर, इसका फैसला फिरपर रहे। इस समय आत्मारामको विनय करने दी जाय कि "अनस्थिरता' का द्विवेदीजीके व्याकरणसे क्या फैसला हुआ ?

८

अंगरेजी, संस्कृत और बंगला आदि भाषाओंके जो व्याकरणसम्मत उदाहरण द्विवेदीजीने दिये हैं उनमेंसे बंगलावाला उदाहरण इस प्रकार है—

"राखालेर स्त्री मृत्यु शय्याय। डाक्र कविराज विदाय लइया छेन ; अवशिष्ट परमायु बड़जोर २-३ घण्टा मात्र। क्रंदनरत आत्मीय स्वजन मुमुर्षुके घिरिया आछेन मुमुर्षु चक्षु उन्मीलित करिया सकलेरदिके चाहिया चाहिया दृष्टि फिराइया लइते छिलेन राखालेर पिता परलोकयात्रीर मनोभाव बूझिया पुत्रके डाकिया बोलिलेन, 'राखाल आमरा बाहिरे जाइतेछि ; तुमि एइ खाने एकटु थाक।' सकले बाहिर गेलेन ; राखाल स्त्रीर शियरे बसिल।"

द्विवेदीजीकी रायमें इस उदाहरणमें कर्त्ता, कर्म्म, क्रिया, लिंग, बचन और विभक्ति सम्बन्धी कोई दोष नहीं है। तो भी शामतका मारा मुमुर्षु शब्द "जरा विचारणीय" निकल आया। द्विवेदीजी फरमाते हैं—"वह 'मुमूर्षु' क्यों न हो ?" बुद्धिकी बलिहारी ! अजी देवता ! जब निर्दोष उदाहरण ही तलाश करना था तो ऐसा तलाश किया होता

जिसमें एक शब्द भी गलत न होता। पर ऐसा करनेसे शायद कोई यह न जान सकता कि आप बंगलामें भी भूल निकाल सकते हैं। अथवा बंगलामें भी निर्दोष नमूनोंका अकाल है! अच्छा अब अपने इस उदाहरणका शब्दार्थ सुन चलिये—

"राखालकी स्त्री मृत्यु शय्या पर। डाक्टर कविराज विदा ले चुके हैं अवशिष्ट परमायु अधिकसे अधिक २-३ घण्टे मात्र। रोते हुए आत्मीय स्वजनोंने मुमूर्षु को घेर रखा है। मुमूर्षु आंख खोलकर सबकी ओर देख देखकर दृष्टि फिरा लेता था। राखालके पिताने परलोकयात्रीका मनोभाव समझकर पुत्रको बुलाकर कहा,—'राखाल, हम बाहर जाते हैं तुम यहीं जरा ठहरो।' सब बाहर गये, राखाल स्त्रीके सिरहाने बैठा।"

यह उदाहरण "प्रवासी" नामक बङ्गला मासिक पत्रके गत श्रावण मासके नम्बरसे लिया गया है; उसका पूरा अनुवाद सरस्वतीके उसी नम्बरमें छपा है जिसमें यह उदाहरण है। सरस्वतीके लेखकने इस टुकड़ेका जो अनुवाद किया है वह इस तरह है—

"बाबू गोपालदासकी पत्नी श्यामा शय्यापर पड़ी कण्ठस्थप्राण हो रही है। डाक्टर, हकीम, वैद्य आदि सबने साफ जवाब दे दिया है। अब केवल दो-तीन घण्टेकी वह और मेहमान है। कुटुम्ब और परिजनके लोग उस आसन्न मृत्युशय्याको चारों ओरसे घेरे रो रहे हैं। मुमूर्षु क्षण-क्षणमें नेत्र खोलकर सबकी ओर देखती और दृष्टि फेर लेती है। गोपालदासके दूरदर्शी पिता उस कण्ठस्थप्राणकी ऐसी आकुल अवस्था देखकर उसके मनोभिलाषको समझ गये। उसी समय पुत्र गोपाल-दासको बुलाकर उन्होंने कहा—'गोपाल, हम लोग बाहर जाते हैं, तुम थोड़ी देर यहां बैठो।' इतना कहकर सब लोग बाहर चले गये।"

यह अनुवाद असलसे बहुत बढ़ गया है। कसकर लिखा जाय तो दो तिहाई रह जाय। पर द्विवेदीजीके व्याकरणकी रूसे अनुवाद होनेपर

भी इसमें कई जगह दुमकी कसर रह गई है। द्विवेदीजी कह सकते हैं कि मुमूर्षुके आगे श्यामा या पत्नी शब्द क्यों न हो? नहीं तो "फेर लेती है" क्रिया ठीक नहीं होती, "सब लोग बाहर चले गये" की जगह "वे सब लोग बाहर चले गये" क्यों न हो?

जो अनुवाद ऊपर आत्मारामकी तरफसे हुआ है, उसके पहले वाक्यमें "पड़ी है" दूसरेमें "है" जोड़ देनेसे अर्थ साफ हो जाता है। पर द्विवेदीजीके व्याकरणसे इसे ठीक किया जाय तो बहुतसे शब्द इसके गलेमें लटकाने पड़ें। विशेषकर "उसके" और "उसकी" का खर्च तो बहुत ही बढ़जाय। और "अवशिष्ट परमायु" से पहले एक "उसकी" लगाये बिना तो वह कभी न माने। उधर बंगला उदाहरणको देखिये तो उसके पहले और दूसरे वाक्यमें क्रिया ही नदारद है। क्रियाका गायब कर डालना द्विवेदीजीके व्याकरणकी रूसे जुर्म है। पर बंगालमें ऐसे मौकों पर क्रिया उड़ा देना ही फसीह समझा जाता है। यहां तक कि स्वयं द्विवेदीजी भी उसे निर्दोष समझकर उदाहरण स्वरूप नकल करते हैं। पर हिन्दीवाले यदि कहीं कर्त्ता, कर्म्म या क्रिया रचनाको सुन्दर बनानेके लिये छोड़ दें तो आप उन्हें दोष देते हैं। इस समझके कुरबान! जरा बंगलाको सामने रखकर ही श्रीमान् अपनी भाषाका मिलान करते।

अंगरेजो, संस्कृत, बंगला और मराठीके उदाहरण आपने जिन कागजोंसे नकल किये हैं, उनका नाम दिया है। पर हिन्दीके उदाहरण पर यह कृपा नहीं की गई। जिस पत्रसे हिन्दीका उदाहरण लिया, उसका नाम द्विवेदीजीने नहीं दिया। यदि नाम देते तो लोग इतना तो समझ जाते कि अमुक पत्र बड़ा भाग्यवान है, जिसकी चन्द पंक्तियां द्विवेदीजीके व्याकरणसे शुद्ध निकल आईं। खैर, उस पत्रको भी द्विवेदीजीने गजस्नान करा दिया है। पहले चन्द पंक्तियोंको अच्छा कहकर पीछे कुछ पंक्तियोंकी भूलें दिखा डाली हैं।

इस बार आत्मारामको फुरसत कम थी उससे यह बहुत बातें न लिख सका। आगामी बार इस विषयमें कुछ और लिखा पढ़ी करेगा। इस समय केवल इतनी ही विनय है कि अनस्थिरताका फैसिला झटपट हो जाना चाहिये, क्योंकि वही सारी लिखा-पढ़ीकी जड़ है।

९

जिस हिन्दी अखबारकी कुछ पंक्तियां द्विवेदीजीने "व्याकरण सम्मत भाषाका बहुत अच्छा नमूना" समझकर नकल कीं, उसीसे कुछ ऐसी पंक्तियां नकल की हैं, जिनमें आपको 'हम' 'तुम' 'वे' आदिका अभाव मिल गया है। अभाव दिखाकर आप रायजनी करते हैं—

"इससे यह नहीं सूचित होता (बेतुकी हांक न लगाइये ऐसे कहिये—इस कथनसे यह अभिप्राय नहीं—क्योंकि कहनेवाले आप स्वयं हैं ; कोई दूसरा नहीं) कि लेखकको उनका प्रयोग नहीं आता या वह व्याकरण नहीं जानता। (आपकी परम इनायत, लेखककी सख्त खुशनसीबी !) नहीं, यह दोनों बातें नहीं। (इस कृपाका धन्यवाद, पर आपने बातेंकी भांति दोनों क्यों न लिखा ?) बात यह है (अर्थात् उन दोनोंसे अलग तीसरी बात) कि हिन्दी भाषा अनस्थिर दशामें है। (इसमा का सक ?) व्याकरणके नियमोंकी तरफ किसीका विशेष ध्यान नहीं है। (गनीमत है कि आपका ध्यान तो है।) इन त्रुटियोंके रहते भी वाक्योंका मतलब समझनेमें बाधा नहीं आती। (पर आपका व्याकरण, बाधा बेचारीको निश्चिन्त होकर बैठने दे तब तो !) परन्तु यदि इसी आधार पर इस तरहकी इबारत लिखी जायगी तो भाषाको कभी स्थैर्य्य आनेका नहीं। (चिन्ता दूर कीजिये, स्थैर्य्य नहीं तो अनस्थैर्य जरूर आ जायगा) सब लोग मनमानी भाषा लिखते रहेंगे और व्याकरणके नियम व्यर्थ हो ।" (खता माफ, आप क्या किसीसे पूछकर लिखते हैं ?)

इस प्रकारकी अटकलपच्चू बातें लिखकर आप और भी लिखते हैं—

"हम यह कह आये हैं कि हम मुहाविरे (गनीमत है कि मुहाविरा न कहा, आपके व्याकरणसे तो वही ठीक होता) के खिलाफ नहीं। परन्तु जिस तरहकी भाषाके नमूने (अर्थात् भाषाके नमूने) हमने ऊपर दिये (आपकी लियाकतकी बानगी दिख गई, नमने दिये नहीं दिखाये कहिये।) याद रखिये, (अर्थात् रहे) वे हिन्दीके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखकोंके हैं। वे यदि सभी मुहाविरे समझे जायंगे तो, फिर सारा शब्द समूह ही मुहाविरा रूपी (मुहाविरेके साथ रूपीकी क्या गांठ लगी है! पापोशमें लगाई किरन आफताबकी!) किलेके भीतर सुरक्षित हो बैठेगा। (क्या परवा, आप अपने व्याकरणकी तोपसे उस किलेके धुएं उड़ा दीजियेगा।) पर ऐसा होना उचित नहीं। मुहाविरेकी भी सीमा है।"

महाराज आप न मुहाविरा जानते हैं और न उसकी सीमा। "भाषाके नमूने मुहाविरे समझे जायंगे" इसका क्या अर्थ हुआ? आप जरा भाषा, शब्द और "मुहाविरे"का अलग-अलग अर्थ तो पूछ लीजिये। खैर, लिखते-लिखते आपको कुछ मुहाविरेका ध्यान आ गया है। इससे कहते हैं—

"यह जरूर है कि कुछ मुहाविरे ऐसे हैं (हां कुछ मुहाविरे ऐसे हैं, कहने हीसे काम चल जाता, पर आप इस वाक्यको लम्बा करना ही व्याकरण सम्मत समझते हैं जिनमें कर्ता और कर्म्म आदि पदोंको स्पष्ट रखनेकी जरूरत नहीं होती। (आप जरूरतकी जगहको खूब पहचानते हैं। हिन्दीके लेखकोंको चाहिये कि हरदम आपको जेबमें रखा करें। जरूरतका मौका पड़नेपर निकालकर आपसे सलाह कर लिया करें।) वे गुप्त रहते हैं। उनके गुप्त रहने ही से वाक्यमें शोभा आती है।"

इतनी रुसवाईके बाद आपकी समझमें आया कि कहीं-कहीं कर्त्ता कर्म्म आदिके गुप्त रखने हीसे वाक्यमें शोभा आती है। यदि इस विषयके ठीक समझनेका मगज आपको होता, तो राजा शिवप्रसादकी भाषाके एक अत्यन्त सुन्दर टुकड़ेकी आप अपने विचित्र व्याकरणसे गर्दन न नापते। जहाँ कर्तृ पद "गुप्त रहने ही से वाक्यमें शोभा आती है" उनकी तीन मिसालें द्विवेदीजी देते हैं—

(१) सुनते हैं राजपूतानामें अकाल पड़ा है। (२) दामोदर देर मत करो हमें दफ्तर जाना है। (३) कानपुरसे एक नया अखबार निकला है। चल जाय तो है।

इन तीन मिसालोंपर आप यों रायजनी करते हैं—

"इन वाक्योंमें "सुनते हैं" "देर मत करो" और "चल जाय" के कर्तृ पद लुप्त हैं और उनका अदर्शन कानको खटकता भी नहीं।"

'कानको खकटकता भी नहीं या कानोंमें खटकता भी नहीं ?' व्याकरण और बोलचालसे मिलाकर देखिये। और सुनिये, तीनों वाक्योंमें तीनों कर्तृ पद ही लुप्त नहीं हैं, दूसरे वाक्यमें "दफ्तर जाना है" के बीचसे "को" भी लुप्त है। आप "को" से बड़ा प्रेम रखते हैं, पर यहाँ उसे भूल गये ! खैर, आपका भी तो व्याकरणकी ओर पूरा ध्यान नहीं रहता !

एक विनय और भी है। वह यह कि आपके उदाहरणवाले तीनों वाक्योंमें थोड़ी-थोड़ी मोच है। वह निकाल देनेसे उनकी शकल यों बन जाती है—

(१) सुनते हैं राजपूतानेमें अकाल पड़ा है।

(२) दामोदर देर मत करो, दफ्तर जाना है।

(३) कानपुरसे एक नया अखबार निकला है। चल जाय तो अच्छा है।

खयाल रहे कि "चल जाय तो है" कोई हिन्दीवाला नहीं बोलता। इसमें "अच्छा" जोड़े बिना कुछ अर्थ नहीं निकलता। यदि यह वाक्य किसी पत्रसे नकल किया गया हो, तो समझना चाहिये कि उसमें से "अच्छा" छूट गया है।

"को" की खराबीसे हिन्दीमें कुछ नये प्रयोग दिखाई देने लगे हैं। यहाँ तक कि "को" के परम प्रेमी द्विवेदीजी भी उन्हें देखकर घबराये हैं। वैसे प्रयोगोंसे युक्त नीचे लिखे चार वाक्य उन्होंने उदाहरणके लिये हिन्दीके अखबारोंसे उद्धृत किये हैं—

(१) लाचार फौजकी सहायतासे गिरजा घेर लिया और उसको पकड़कर कैदखानेमें पहुंचाया गया।

(२) एक स्त्रीको सिखा पढ़ाकर उन स्त्रियोंका भेद लेनेको भेजा गया।

(३) लार्ड किचनरको प्रसन्न करनेके लिये लार्ड कर्जनको बेइज्जत किया गया।

(४) यदि मुझे वालण्टियर नहीं बनाया जायगा, तो * * मैं * * अभियोग उपस्थित करूंगा।

द्विवेदीजी बहुत तूल कलाम करके चाहते हैं कि यह वाक्य इस प्रकार हों—

(१) * * * वह पकड़कर कैदखानेमें पहुंचाई गई।

(२) एक स्त्री * * * भेद लेनेके लिये भेजी गई।

(३) * * * लार्ड कर्जन बेइज्जत किये गये।

(४) यदि मैं वालण्टियर न बनाया जाऊंगा * * *

चारों उदाहरणोंमें चार "को" उड़ाते ही वाक्य ठीक हो गये। चौथे वाक्यमें पूरा "को" नहीं है, पर अधूरा अर्थात् मुझकोकी जगह मुझे मौजूद है। द्विवेदीजी कहते हैं—"जान पड़ता है, इस तरहके प्रयोगोंको

हमने उर्दूवालोंसे सीखा है।" शायद आपकी बात ठीक हो, पर इतना आप जान लें कि उर्दूवाले भी ऐसे प्रयोग छोड़ते चले जाते हैं। अब उन्हें 'को' से बड़ी नफरत होने लगी है। जिस 'को' को आप व्याकरण सम्मत समझते हैं, उससे भी वह बहुधा तरह दे जाते हैं। जैसे आपका वाक्य है—" * * इस तरहके प्रयोगोंको हमने उर्दूवालोंसे सीखा।" इसकी जगह अब यों लिखने लगे हैं—"........इस तरहके प्रयोग हमने उर्दूवालोंसे सीखे हैं।"

जो कुछ हो आप एक भद्दी चाल छुड़ाना चाहते हैं, इसके लिये आत्माराम आपका धन्यवाद करता है। पर विपद यह है कि एक भद्दी चाल छुड़ाने जाकर आप चार भद्दी सीख लेते हैं। आपका एक वाक्य है—"उनकी सदोषता जाती रहती।" आप इसे सीधी तरह यों लिख सकते थे—"उनका दोष जाता रहता।" बेचारे दोषको पुरुष से स्त्री बनाना और उसके पीछे एक 'स' लगाना आपकी निहायत "सुबुद्धिता" का परिचय देता है। इसके सिवा एक आध अच्छी चाल नाहक छोड़ने और एक आध अपनी तरफसे नई जारी करनेका आपको बहुत शौक है। आप कभी-कभी क्रियाको ऐसे मौकेपर गायब करना चाहते हैं, जहाँ वह हो नहीं सकती। जैसे—" * * * नियमोंका प्रतिबन्ध हिन्दीको क्यों?" यहाँ आपकी 'क्यों' का जी एक 'हो' के विना उसी तरह नहीं लगता है, जैसे एक गंवारकी अकेली अशरफीका जो उसके पानीके मटकोंके पास गड़ी हुई थी।

एक बात दो तरह होनेसे ही द्विवेदीजी घबरा उठते हैं। यहाँ तक कि 'जब तब' और 'जो तो' ने ही आपको घबरा दिया। सुनिये उर्दू-वाले 'जब' के मुकाबिलेमें 'तो' भी नहीं लाते, उसे गायब ही कर देते हैं। बहुतसे हिन्दीवाले भी इसी चालको पसन्द करते हैं। दास आत्माराम की भी यही पसन्द है। प्रयाग और काशीके हिन्दी लेखक अबके

मुकाबिलेमें तब अधिक लिखते हैं। यह भी ठीक समझा जाता है। पर 'जो' के मुकाबिलेमें 'तब' लिखना अच्छा नहीं समझा जाता। अच्छे लेखकोंके लेखमें यह प्रयोग शायद न मिलेगा। इस जरा-सी बातके लिये द्विवेदीजीकी घबराहट मुलाहिजा कीजिये—"भाषाकी यह अनस्थिरता बहुत ही हानिकारिणी है। क्या ये सभी मुहाविरे हैं और सभी शुद्ध हैं? यदि ऐसा ही है, तो यह कहना चाहिये कि हिन्दी शब्द-समूहमें बिलक्षण गदर हो रहा है।"

नहीं साहब! गदर वदर कुछ नहीं हो रहा है, खाली आप घबरा रहे हैं। उर्दूवाले 'जब' 'तब' और 'जो' 'तो' चारोंको शर्तमें लाते हैं। आप पहले दोको समय बाचक बताते हैं और दूसरे दोको शर्तमें लाना चाहते हैं। दोको उर्दूवाले पहले समय और शर्त दोनोंमें लाते थे अब कम लाने लगे हैं। समयके मौकेपर जबकी जगह जिस वक्त लिखते हैं और 'तब' का व्यवहार बहुधा जबके बिना ही करते हैं। पर द्विवेदीजी चाहते हैं कि हिन्दीवाले उर्दूकी नकलपर न चलें। वह कहते हैं हिन्दीका साहित्य अभी बन रहा है, सर्वमान्य व्याकरण भी कोई अभी तक नहीं बना। इस कारण जो प्रयोग अधिक सयुक्तिक और अधिक सार्थक हों वही क्यों न काममें लाये जायँ?

यह विचार आपका बहुत ठीक है। पर आप तो स्वयं अपने विचारपर पक्के नहीं हैं। आप ही तो भाषाकी अनस्थिरताकी दुहाई देकर अभीसे हिन्दीकी टांगोंमें व्याकरणकी पछाड़ी बाँध देना चाहते हैं। आप ही तो लोगोंको उनकी बोलचालसे हटाकर अपनी व्याकरण-सम्मत बोली सिखाना चाहते हैं। 'जब' और 'जो' के उदाहरणमें द्विवेदीजीने छः वाक्य लिखे हैं, वह इस प्रकार हैं—

(१) जब तुम घरपर होगे मैं आऊँगा।

(२) जब तुम घरपर होगे तब मैं आऊँगा।

(३) जब तुम घरपर होगे तो मैं आऊँगा।

(४) जो तुम घरपर होगे मैं आऊँगा।

(५) जो तुम घरपर होगे तो मैं आऊँगा।

(६) जो तुम घरपर होगे तब मैं आऊँगा।

इन उदाहरणों पर द्विवेदीजीकी राय यह है—"इनमें से तीसरे और छठे वाक्यको छोड़कर और कोई वाक्य नहीं खटकता। पहले और चौथे वाक्यमें 'जब' और 'जो' के उत्तरपद लुप्त हैं। इसलिये उनके विचारकी जरूरत नहीं। तीसरे उदाहरणमें समयकी शर्त है और छठे उदाहरणमें घर पर होनेकी। अतएव दोनोंके अर्थमें भेद हुआ। फिर अर्थ भेदके हिसाबसे प्रयोग भेद क्यों न हो?"

द्विवेदीजीको इनमेंसे चाहे जौनसा वाक्य खटके या न खटके 'तो' और 'तब' का व्यवहार वह इन वाक्योंमें भली भांति नहीं दिखा सके। अच्छी भाषा जाननेवाले इनमेंसे पहले और चौथे वाक्यको अच्छा मानेंगे। और पांचवां भी कुछ लोग बोलते हैं, पर उनका बोलना फसीह नहीं समझा जाता। छठां खाली द्विवेदीजीके मनकी उपज है, इस तरह कोई नहीं लिखता। यदि कोई लिखता हो तो वह कृपा करके उदाहरण दे। अच्छी हिन्दी लिखनेवाले इन छहों वाक्योंमें 'तो' या 'तब' कुछ न लावेंगे और इनमें जितने 'पर' हैं वह भी कतर डालनेके लायक हैं। इन छःमेंसे केवल दो वाक्य इस प्रकार बन सकते हैं,—

(१) जब तुम घर पर होगे मैं आऊंगा।

(२) जो तुम घर होगे मैं आऊंगा।

पहला समय दिखाता है और दूसरा शर्त।

अन्तमें विनय है कि अब तो आप 'अनस्थिरता' का कोई ठौर ठिकाना कर दें, क्योंकि आत्माराम अपनी जीट बन्द करना चाहता है। अब वह एकाध बोली और सुनाकर फुर होना चाहता है। उसकी बारी होचुकी।

अब एक पहाड़ी खखोडरके पुराने उल्लूकी गुड़म गुड़म सुनिये। बहुत दिनसे यह गोबर-गणेश चुपचाप था। अब उसने बङ्गवासीके धर्म्मभवन पर बैठकर अपने पट्टों सहित बोलना शुरू किया है।

१०

द्विवेदीजी आज्ञा करते हैं—"हिन्दीकी अनस्थिरताके दो एक उदाहरण और देकर हम इस लेखको समाप्त करना चाहते हैं। नीचेके वाक्योंको देखिये। उन्हें एक अखबारसे हम नकल करते हैं—

(१) आपको भी इस विषयमें लेखनी उठाना चाहिये।

(२) इसके लिये शिक्षा लेना होगी।

(३) वह लोग.........जड़ी बूटियां इकट्ठी करते थे।

ये सब कर्त्तृ वाच्य प्रयोग हैं। कर्त्तृ वाच्यमें क्रिया कर्त्ताके अनुकूल होती है। यह बात पहले उदाहरणमें है। पर दूसरे उदारहणमें क्रियाका उत्तर भाग (होगी) कर्म्म शिक्षाके अनुकूल है। और तीसरे उदाहरणमें क्रियाका पूर्व भाग (इकट्ठी) कर्म्म जड़ी बूटियांके अनुकूल है। कहीं कर्म्मके अनुकूल कहीं कर्त्ताके। कहीं क्रियाका पहला टुकड़ा स्त्रीलिङ्ग होगया, कहीं दूसरा।"

विनय यह है कि जो लोग उन नगरोंमें नहीं रहे जो भाषाके मखजन हैं, जिन स्थानोंसे भाषा निकली और उन्नत हुई, जिन्होंने अच्छे हिन्दी जाननेवालोंका सत्संग नहीं किया—उनके साथ रहकर उनकी बोलचाल नहीं सीखी और उसके तोड़-मरोड़ पर ध्यान नहीं दिया, जिन्होंने हिंदीके विज्ञ सुलेखकों और विद्वानोंके लेख नहीं पढ़े और इस भाषाके इतिहास तथा इसके समयके परिवर्त्तन पर ध्यान नहीं दिया, वह हमारे द्विवेदीजी की सी ही बातें किया करते हैं। 'उठाना चाहिये' 'लेना होगी' और इकट्ठी करते हैं' का भेद प्रान्तीय है। दिल्लीवाले लिखते हैं—(१) लेखनी उठानी

चाहिये। (२) शिक्षा लेनी चाहिये। (३) जड़ी बूटियां इकट्ठा करते

दिल्लीवाले ऐसा क्यों लिखते हैं ? इसका उत्तर यह है कि वह इ तरह बोलते हैं। जो बोलते हैं, वह लिखते हैं, इसी प्रकार लखनऊव लिखते—(१) लेखनी उठाना चाहिये। शिक्षा लेना होगी। (३) ज बूटियां इकट्ठा करते थे।

तीसरे वाक्यमें यदि कर्त्ता स्त्रीलिङ्ग होता तो दिल्लीवाले यों लिखते (३) जड़ी बूटियां इकट्ठी करती थीं। लखनऊवाले लिखते—ज बूटिय इकट्ठा करती थीं।

लखनऊवाले भी दिल्लीवालोंकी भांति जो बोलते हैं, वही लिखते कुछ जिद्द करके वैसा नहीं लिखते। दिल्लीवाले बराबर अपनीही चा पर लिखते हैं, लखनऊवालोंकी चालपर कभी नहीं लिखते। पर लखन वाले कभी-कभी 'करना होगी' और 'करनी होगी' दोनों लिखते पञ्जाबी तथा दूसरे देशोंके लोग दिल्लीवालोंकी पैरवी करते हैं, लखन वालोंकी नहीं। पर अवध और युक्तप्रदेशमें लखनऊवालोंकी पै अधिक होती है। जनवरी मासके मखजनसे हम दिल्ली निवासी श सुलउलमा मौलाना जकाउल्लहके एक लेखकी थोड़ी इबारत नकल व हैं—"चंद नौजवान यूनिवर्सिटियोंके ग्रेजवेट हैं, जो अपनी मादरी जुबा शेर कहना और नस्र लिखनी जानते हैं। इन नौजवानोंकी काबिल और ईस्तैदाद काबिले तारीफ है कि वह अंगरेजी इल्मेअदब भी जा हैं और इसके साथ उनको अपनी जुबानमें नजमोनस्र लिखनी भी अ है। मगर अफसोस यह है कि वह अपनी काबिलीयत पर दूर लगाकर देखते हैं। अगर वह मक्खीके बराबर हो तो भैंसेके बर नजर आती है। उनको अपनी काबिलीयत और लियाकत पर नखवत है कि वह उन बुजुर्गोंको जिनकी सारी उम्र अपनी जुबा तसनीफों-तालीफोंकी तहकीकमें गुजरी है तकवीमेपारीना जानते हैं।" इ

'शेर कहना और नस्र लिखनी' की जगह लखनऊवाले 'शेर कहना और नस्र लिखना' कहेंगे। 'लिखनी भी आती है' की जगह 'लिखना भी आती है' कहेंगे। ४ जनवरीके 'अवधपंच' में लिखा है—'पुरगमसदा कुछ ऐसी खफा हुई कि फिर न आना थी न आई" दिल्लीवाले ऐसे मौकेपर लिखते हैं—* * * "न आनी थी न आई।"

ऊपर कह चुके कि दोनों प्रान्तोंवाले अपने अपने ढङ्गपर लिखते हैं और बोलते हैं। दोनोंहीका लिखना और बोलना ठीक समझा जाता है। लखनऊवालोंके लेख दिल्लीके अखबारोंमें छपते हैं तो क्रियाका ढङ्ग लखनवी रहता है और दिल्लीवाले लखनऊके अखबारोंमें लिखें तो उनका ढङ्ग कायम रहता है। क्रियाका यह ढङ्ग दोनों प्रान्तोंमें बद्धमूल होगया है। आधुनिक हिन्दीके लेखकोंने अपने यहां भी क्रिया आदिका ढङ्ग उर्दूके ढङ्ग परही रखा है, इससे यह चाल भी हिन्दीमें चली आई है। इससे किसीको कुछ तकलीफ नहीं है। बोलनेवाले बोलते हैं। अपरिचित लोग पुस्तकें पढ़कर जान लेते हैं। हिन्दीके लेखक अधिक दिल्लीकी चालपर चलते हैं। केवल भारतमित्रमें कुछ लखनऊकी पैरवी होती है। पर दिल्लीकी चालपर चलनेवालोंको 'भारतमित्र' किसी प्रकारका दोष नहीं लगाता है। जो लोग जिस ढङ्गपर लिखते हैं, 'भारतमित्र' उनके लेख उसी प्रकार छाप देता है, इसलाहके लिये हाथ नहीं बढ़ाता।

'हमें' 'जिन्हें' 'सकें' 'करें' आदि द्विवेदीजी बहुत लिखते हैं और हम देखते हैं कि, जो लोग उनकी 'सरस्वती' में इन शब्दोंका शुद्ध उच्चारण अर्थात् हमें' जिन्हें' सकें' करें' आदि लिखते हैं उनकी भी आप इसलाह कर डालते हैं। इसको पढ़े लिखे आदमी अन्यायही नहीं, असभ्यता समझते हैं। जिस ढङ्गसे इन शब्दोंको द्विवेदीजी लिखते हैं उस ढङ्गसे कोई नहीं बोलता, शायद उनके देशमें बोलते होंगे। लेकिन इसके लिये सारा हिन्दुस्थान अपनी जबान खराब नहीं करेगा। पञ्जाब, युक्तप्रदेश, अवध,

दिल्ली, आगरा, काशी, पटना इत्यादि जहां-जहां अच्छी हिन्दी-उर्दूके लिखने-बोलनेवाले हैं, वह सब निर्विवाद रीतिसे 'हमें' करे' आदि लिखते और बोलते हैं। यह 'करें' 'सकैं' की देहाती चाल खाली द्विवेदीजी चलाते हैं और दूसरोंको भी इसकी ओर घसीटनेकी चेष्टा करते हैं। क्या उनके पास इसके लिये कोइ व्याकरणकी दलील है ?

भाषाका एक दोष जटिल लिखना भी है। द्विवेदीजी मानो इस समय इसके आचार्य हैं। दास आत्मारामको यही बात समझाते-समझाते कई सप्ताह लग गये। जिस वाक्यमें अर्थात्की जरूरत पड़ती है, उसको सरल-स्वच्छ भाषा लिखनेवाले कभी पसन्द नहीं करते। पर द्विवेदीजीका काम बिना अर्थात्के चलताही नहीं है। आप लिखते हैं—"हिन्दीको कालसह अर्थात् कुछ कालके लिये स्थायी करनेके लिये यह बहुत जरूरी बात है कि उसकी रचना व्याकरण विरुद्ध न हो उसमें सिर्फ ऐसे-ऐसे शब्दोंका प्रयोग हो जो विशेष व्यापक हों अर्थात् जिन्हें अधिक प्रान्तोंके आदमी समझ सकें।" अब कोई पूछे कि महाराजजो, यदि 'कालसह' शब्दको आप एक अनघड़ पत्थर समझते थे तो इसके लिखने और फिर उसमें 'अर्थात्' जोड़कर अन्धेको न्योतने और दूसरेके हाथमें उसकी लाठी थमवानेवाली कहावत पूरी करनेकी क्या जरूरत थी? क्यों न ऐसे शब्द लिखे जायं, जिनका मतलब आप समझमें आ जाय? भाषामें जटिलता उत्पन्न करनेको क्या आप कुछ भी दोष नहीं समझते। इस जटिलताको तो आपका व्याकरण भी नहीं खो सकता।

एक और एतराज द्विवेदीजी करते हैं—"कुछ शब्द ऐसे हैं कि जिनका संस्कृतमें कुछ अर्थ है, पर हिन्दीमें वे दूसरे ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। ऐसे शब्द सर्वथा त्याज्य हैं। वाधित, निर्भर, आन्दोलन और कटिबद्ध आदि शब्द इसी कक्षाके हैं।" इसमें स्यात्को द्विवेदीजी भूल गये, जो उनकी तहरीरोंमें बहुत मिलता है। विनय यह है कि एक

भाषाके शब्दोंका दूसरी भाषामें जाकर अर्थ कभी-कभी बदल जाया करता है। यहाँ तक कि एक ही भाषामें एक शब्दके एकसे अधिक अर्थ होते हैं। 'गरीब' अरबीका शब्द है, फारसीमें इसका अर्थ विचित्रके साथ-साथ मुसाफिर भी हुआ। हिन्दीमें इसका अर्थ न विचित्र है, न मुसाफिर, हिन्दीमें दीनको गरीब कहते हैं। अब कहिये आपकी क्या सलाह है, यह शब्द रामचरितमानस और विनयपत्रिकासे निकाल दिया जाय या इसका अर्थ अजीव या मुसाफिर किया जाय? इसी तरह 'मुर्ग' फारसीमें पक्षीको कहते हैं, हिन्दीमें मुर्ग या मुर्गा पक्षी विशेष-का नाम हो गया। 'तमाशा' अरबी लफ्ज है, उसका अर्थ है देखना और कुछ मित्रोंका मिलकर पैदल सैरको जाना। हिन्दीमें तमाशेका अर्थ खेल और किसी अजीब चीजका देखना है। पुरानी हिन्दीमें तमाशेकी जगह 'पेखना' शब्द मिलता है। यह तमाशेके असल अर्थकी तरफ दौड़ता है। हिन्दीमें 'चिड़िया' का अर्थ पक्षी है। दिल्ली और उसके प्रान्तमें 'चिड़िया' उस चिड़ियाका नाम है, जो घरोंमें रहती है और जिसको काशी आदिके देहातमें 'गोरैया' कहते हैं। संस्कृतमें 'राग' शब्द अनुरागके अर्थमें आता है, बंगलामें 'राग' का अर्थ गुस्सा है, हिन्दीमें 'राग' का जो अर्थ है, यदि द्विवेदीजी न जानते हों, तो अपने "कल्लू अल्हइत" से पूछ लें; क्योंकि उसका आल्हा भी एक राग है, चाहे वह कितना ही गंवारी हो। द्विवेदीजीके बताये हुए परित्यज्य शब्दोंमें 'वाधित' के विषयमें हम कुछ नहीं कहते, पर 'आन्दोलन' और 'कटिबद्ध' कुछ बुरे नहीं हैं। Agitation की जगह 'आन्दोलन' तैयार किया गया है। संस्कृतमें इसका अर्थ वह न भी निकलता हो, तो भी हिन्दीमें इसका जो अर्थ लिया जाता है, वह बेजा नहीं है। 'कमर बाँधना' का अर्थ हिन्दीमें तैयार होनेका है। फारसीमें भी इसके लिये कमरबस्तन है। कटिवद्ध इसीसे बना। पर बद्धकटि चाहिये। यह

उल्टा हो गया है। 'दस्तपनाह' का अर्थ चिमटा है। असली फारसी-में चिमटेको दस्तपनाह नहीं कहते, उसका यह नाम हिन्दुस्तानमें तैयार हुआ, इससे किसीकी क्या हानि हुई ? पचासों अंगरेजी शब्द ऐसे हैं, जिनका संस्कृतमें ठीक वह अर्थ नहीं है, जो अब किया जाता है। प्रस्ताव, अनुमोदन, समर्थन आदि शब्दोंका आजकल जो अर्थ लिया जाता है, क्या संस्कृतमें उनका ठीक वही अर्थ है ? 'ताजीरातेहिन्द' इण्डियन पिनल-कोडका तरजमा किया गया है। फारसी कायदेसे इसका ठीक वही अर्थ नहीं है, जो इण्डियन पिनल-कोडका है। 'ताजीरातेहिन्द' में अनुवादकर्त्ताने पचासों अंगरेजी कानूनी शब्दोंकी जगह अरबी शब्द रखे हैं। जिस अर्थके लिये वह रखे गये हैं, अरबीमें उनका ठीक अर्थ वैसा ही नहीं है। पर अदालती भाषामें उनका अर्थ ठीक समझा जाता है। सारांश यह कि आवश्यकताके अनुसार नये शब्द गढ़ने पड़ते हैं। 'प्रेम फसफसाया' हिन्दी बंगबासीकी टकसालमें ढला है और "शौक चर्राया" शहरी आवारा लोगोंकी बोलचाल है। ऐसे शब्दोंके छोड़ देनेके प्रस्तावका दास आत्माराम भी अनुमोदन करता है। संस्कृत भाषाके अनुसार दूसरी भाषाके शब्दोंमें 'षत्त्व' 'णत्त्व' लगाना बुरा मालूम होता है। 'पोस्ट्र मास्ट्र' की जगह 'पोष्ट माष्टर' और "गवर्नमेन्ट" की जगह "गवर्नमेण्ट" लिखनेसे जी तो बहुत खराब होता है, पर कहीं-कहीं टाइप उसी ढङ्गके बने हुए हैं। इससे लिखनेको चाहे जो लिखो कम्पोजीटर टाइपके अनुसार कर लेता है। बंगालमें यह दोष विशेष है, 'भारतमित्र' भी इससे बचा हुआ नहीं है।

अपने लेखके अन्तमें द्विवेदीजी लिखते हैं—"दूषित भाषाके उदाहरण में (उदाहरणों चाहिये) जिनके वाक्य इस लेखमें उद्धृत किये गये हैं, उनसे हम पुनर्वार प्रार्थना करते हैं ("जिन" के आगे "सज्जनों" या "महोदयों" अवश्य आना चाहिये था, खाली "जिन" लिखनेसे शिष्टता-

ी कुछ कमी-सी मालूम होती है। बकौल अग्निहोत्रीजी, ऐसा लिखनेमें 'सज्जनानुमोदित शिष्टभाषाप्रणाली" कुछ दूर जा पड़ी) हमने दोष देखलानेके इरादेसे ऐसा नहीं किया। (नहीं-नहीं आपने गुण दिखानेके रादेसे ऐसा किया! अग्निहोत्रीजी-जैसे सरल-चित्त-पुरुष भी इस ंषयमें आपके तरफदार हैं।) सिर्फ अपनी बातको स्पष्टतापूर्वक ामझानेको ऐसा किया है।"

शुद्ध मन और नेकनीयतीसे जो काम किया जाता है, आत्मारामकी ामझमें उसके लिये किसी माफी-वाफीकी जरूरत नहीं है। सबको ़सम खानेकी जरूरत नहीं है। यदि द्विवेदीजीने हिन्दी लेखकोंके दोष ेकनीयतीसे दिखाये हैं, तो आदि और अन्तमें माफी किस कसूरके लिये ांगी? हो सके तो द्विवेदीजी यह बात आत्मारामको समझा दें।

आत्मारामने जो कुछ लिखा है, बड़ी नेकनीयती और साफदिलीसे ़खा है। हिन्दीके पुराने और नये सुलेखकों और सेवकोंकी, उनके र्जेके अनुसार जैसी कुछ इज्जत उसके जीमें है, उसी हिसाबसे एक रत्ती ी कम इज्जत वह द्विवेदीजीकी नहीं करता। उसने जो कुछ लिखा है ़्विवेदीजीके लेखपर लिखा है, उनकी लेखप्रणालीपर लिखा है और उनकी ़न्दीकी समझपर लिखा है। उनके ऊपर कुछ नहीं लिखा है। यद्यपि ़्विवेदीजीके एकाध तरफदारने आत्मारामके कथनको न समझ कर, कुछ-ा कुछ कहना आरम्भ किया है। यहां तक कि 'कल्लू अल्हइत' को पना ढोल बजाने और आल्हा गानेकी जरूरत पड़ी है, पर आत्माराम न सब बखेड़ोंसे दूर है। उसका जो कुछ सरोकार है, द्विवेदीजीके लेखसे , उनके शरीरसे या उनके कामोंसे कुछ नहीं है। द्विवेदीजीके एक रफदारने हिन्दी बङ्गवासीमें नाम छिपाकर "अनस्थिरता" को सिद्ध रना चाहा है। उसके कहनेका तात्पर्य यह है कि "संस्कृतसे 'अनस्थिरता' ़िद्ध नहीं हो सकती; परन्तु हिन्दीमें जैसे अनरीति, अनरस, अनहोनी,

अनमिल, अनमोल, अनसुनी, अनहुई, अनपढ़, अनहित, अनगणित आदि हैं, वैसे ही 'अनस्थिरता' भी शुद्ध है।" ठीक है, पर ऐसा लिखकर आप द्विवेदीजीकी बेइज्जती करते हैं। शायद द्विवेदीजीने आपकी यह बेतुकी हांक सुनकर कहा हो कि भगवान ऐसे तरफदारोंसे बचावे। अच्छा साहब! आप जो कुछ कहते हैं सो तो होता है, पर यदि आपके इन शब्दोंके आगे एक-एक 'ता' बिठा दी जाय तब तो आपकी बुद्धिमानी एक दो वर्षके बच्चेसे भी बढ़ जायगी। अनरीतिता, अनरसता, अनहोनीता, अनामलता, अनमोलता,—इसी प्रकार और भी तातताकी कितनी अच्छी शोभा होगी। तब यह शब्द हिन्दी व्याकरणसे सिद्ध होंगे कि नहीं? क्योंकि द्विवेदीजी "अनस्थिर" ही नहीं "अनस्थिरता" भी लिखते हैं। आप बिना बुलाये सहनक लेकर दौड़े तो हैं, पर इतना तो मालूम कर लीजिये कि द्विवेदीजी आपकी बातको मानते हैं कि नहीं। आपसे तो अग्निहोत्रीजी अच्छे हैं, जो अपने लेखमें "अनस्थिरता" को सीधी तरहसे कई जगह "अस्थिरता" लिख गये हैं। आत्मारामको उन्होंने खूब डांटा है, पर आपकी भाँति न्याय और सत्यको नहीं छोड़ा। इससे आत्माराम उनका धन्यवाद करके आजकी टें-टें समाप्त करता है।

आत्माराम

—भारतमित्र सन् १९०६ ई०।

आत्मारामीय टिप्पण (१)

"अनस्थिरता"

अपनी अनस्थिरताके तारसे लटकते हुए हमारे द्विवेदीजी महाराज आजकल अच्छी त्रिशङ्कुलीला दिखा रहे हैं। वह तार हवाके झोंकोंसे उड़ता हुआ कभी कलकत्ते पहुंचता है, कभी काशी। पहले तो आप सोचते रहे कि "अनस्थिरता" हिन्दीसे सिद्धकी जाय या संस्कृतसे। कलकत्तेके टँटँरामने जब बताया कि अनखानी, अनहोनीकी तरह 'अनस्थिरता' हिन्दीसे सिद्ध हो सकती है, तब द्विवेदीजीको भी यह कहने-का साहस हुआ कि वह हिन्दीहीसे सिद्ध होती है। यह बात आपने टँटँरामका धन्यवाद किये बिना और उन्हें उस्तादीकी कुरसी दिये बिनाही, फरवरीकी सरस्वतीमें स्वीकार कर ली। अब आप इस बातपर स्थिर हैं कि "अनस्थिरता" हिन्दीसे सिद्ध है। पर यार लोग भी तो पीछा नहीं छोड़ते। पं० गिरधर शर्म्मा आदिने छेड़ना शुरू किया, तो आप फरमाते हैं कि वह संस्कृतसे भी सिद्ध हो सकती है। ईसपकी कहानी-वाले देहातीसे जब यह कहा गया कि देखो भाई तुम अपना गधा बताते हो यह तो गधी है, तो उसने कहा कि हाँ, ठीक है—पर मेरा गधा कुछ ऐसा गधा भी न था। अपनी 'अनस्थिरता'को हिन्दी संस्कृत दोनों साबित करनेके लिये हमारे द्विवेदीजी भी वही दहकानी काररवाई करते हुए हिन्दी बंगवासी आदि तक पहुँचे हैं।

आपको ऐसी घबराहटमें देखकर हमारे एक मित्रने कहा कि द्विवेदीजीको "अनस्थिरता" अंगरेजीसे साबित हो सकती है। जिस प्रकार उनका भाषा और व्याकरणका लेख जर्मनीसे चलकर जुही तक पहुँचा है, उसी प्रकार आपकी 'अनस्थिरता' भी विलायती मालकी खेप है।

आप हरबर्ट स्पेन्सरपर फरवरीके लेखमें कुछ भक्ति दिखाते हैं। आश्चर्य नहीं, यह भी उसी विलायती विद्वान्के मगजसे निकली हुई बातकी हिन्दी हो। हरबर्ट स्पेन्सरने अपने System of synthetic Philosophy के आरम्भमें विज्ञानके दो विभाग माने हैं The Unknowable और The knowable। उसी प्रकार द्विवेदीजीकी भाषा और व्याकरण फिलासोफीके दो विभाग हैं, "अनस्थिरता" और "स्थिरता"। 'अन' हरबर्ट स्पेन्सरके यहां भी मौजूद है, और द्विवेदीजीके यहां भी देखिये, ठीक कायदा मिल गया कि नहीं ?

हरबर्ट स्पेन्सरके Education में हमें Unorganizable शब्द मिला, यह भी द्विवेदीजीकी अनस्थिरताके ढंगका है। डाकखाने वालोंका Unclaimed भी इसी श्रेणीका है। इसी प्रकार Unscrupulous, Unthought, Uncivilised, Unread, Ungrammatical, आदि शब्दोंमें भी द्विवेदीजी महाराजका 'अन' मौजूद है। देखिये कैसा सिद्ध किया ? Unknowable की भांति 'अनस्थिरता'का भेद जानना भी सहज नहीं है। अल्पज्ञ यह बात नहीं जान सकते। यही कारण है कि द्विवेदीजी इस परम शब्दको हिन्दीसे मानते हैं और संस्कृतसे सिद्ध करते हैं। हरबर्ट स्पेन्सर कहता है—

"The Unconditioned therefore, as classable neither with any form of the conditioned nor with any other unconditioned, cannot be classed at all. And to admit that it cannot be known as of such or such kind, is to admit that it is unknowable."

Herbert Spencer's First principles Part 1 chapter IV. The Relativity of all knowledge para 24.

स्पेन्सरका Unknowable मानों द्विवेदीजीकी 'अनस्थिरता'हीकी महिमा-वर्णन करता है। उसका सहजमें जान लेना सहज नहीं है।

'केनोपनिषत्' मानो इसीकी महिमामें कहता है—

अन्यद् एव तद् विदिताद्
अथो अविदिताद् अधि ।१।३

और फारसीवाला कहता है—

अय बरतर अज खयालो
कयासो गुमानो वहम् ।

सारांश यह है कि अनस्थिरताको दूरसे प्रणाम करके पीछे हट जाना चाहिये। उसकी सिद्धि या बेसिद्धिका खयाल छोड़ देना चाहिये।

* * *

चूहीने जाल काट दिया

समयको पलटते देर नहीं लगती। यह समय भी बड़ा बाजीगर है। बड़े-बड़े तमाशे दिखाता है। गत जून मास चिल्लेकी गर्मियोंकी बात है कि द्विवेदीजीने अपनी 'सरस्वती' में 'शीकरेशविलास' नामकी एक पोथीकी आलोचना छापी। उसमें ग्रन्थकर्त्ता पण्डित शिवदत्तके नामके साथ कविरत्न देखकर आप बड़े घबराये। पहिले तो आपने कविरत्नके आसपास डबल कामे लगाये। इतनेपर भी आपको सन्तोष न हुआ। आलोचनाके अन्तमें लिखा—"इस पुस्तकके कविने अपनेही मुंहसे अपनेको 'शिवदत्त कवीन्द्र' कहा है। सो क्यों, समझमें नहीं आया।

यह तो कविकी तारीफ हुई। अब उनकी कविताकी सुनिये—"पहले उल्लासमें कालिदासकी द्रुतविलम्बित रचनाकी खूब प्रतिस्पर्द्धा की गई है। इससे एक-आध जगह यमक साधनका यत्न करते समय अन्तिम चरणमें अर्थकी कुछ खींचतान हो गई है। आशा है, रावराजाजी इस सत्कविका अभीष्ट पूर्ण करेंगे। यदि पूरी पुस्तक नहीं, तो नीचेकी ही पंक्तियोंका

अर्थ यदि कोई राजा साहबको समझा दे, तो कविरत्न शिवदत्तजीका परिश्रम सफल हो जाय और शायद अब तक सफल हो भी गया होगा।" इस मलीह-हजोके पश्चात् कुछ पंक्तियाँ कविकी कवितासे नकलकी गई हैं।

पर अब गर्मी नहीं है, वसन्तऋतु है। द्विवेदीजीके कानोंमें चारों ओरसे कोयलका शब्द आ रहा है। उन्हीं शिवदत्त कवीन्द्रने पं० गिरिधर शर्म्माके लेखका उत्तर देते हुए द्विवेदीजीकी "अनस्थिरता"की तरफदारीकी है। इसीसे द्विवेदीजी गद्गद होकर, ६ अप्रेलके हिन्दी बंगवासीमें जून मासवाले कविरत्नकी बाबत फरमाते हैं— "अनेक पुस्तकोंके कर्त्ता कविरत्न पण्डितवर शिवदत्त शर्म्माने भी २६ मार्चके बङ्गवासीमें इसी अर्थको माना है।" जूनमें शिवदत्त 'चूही' थे। उस समय द्विवेदी 'केशरी' उसे क्या ध्यानमें लाते? आलोचनाके पंजेसे उसे फाड़ न डाला, यही बहुत है। पर अब उसी चुहियाने आपका अनस्थिरता-रूपी जाल काट दिया है। तब द्विवेदीजीकी मोह-निद्रा दूर हुई है। आज द्विवेदीजोने शिवदत्तको 'पण्डितवर' और 'कवीन्द्र' मान लिया और कवीन्द्रजीने उनकी अनस्थिरता सिद्ध कर दी। अहोरूपमहोध्वनिः—जमाखर्च बराबर। हाजीजी मिजाज अच्छा है? हाँ, काजीजी आपकी दुआसे!

आत्माराम

आत्मारामीय टिप्पण (२)

"अपने तौर पर !"

हमारे द्विवेदीजी दूसरोंके मालका उपयोग "अपने तौर पर" करना खूब जानते हैं। मेक्समूलर आदिके भाषा विज्ञानके पढ़नेसे जो संस्कार आपके चित्तपर हुआ था, उसे "आप अपने तौर पर" लिखनेकी बात फरवरीमें कह चुके थे। मार्चमें फिर वही "तौर" चला। दो सज्जनोंने आपके पास 'प्रतापचरित' लिख भेजा। आप ताकमें थे ही, आपने उस "सामग्रीका उपयोग अपने तौर पर" कर डाला। धीरे-धीरे आपका "तौर" चंगेज और तैमूरका "तौरा" हुआ जाता है !

कहते हैं कि आपके उक्त लेखसे हिन्दीके कवि और सुलेखकोंकी पसलियां फड़क उठीं। स्वर्गमें प्रतापकी आत्मा तड़प गई। कलकत्तेमें बनियोंकी गद्दी-गद्दी और साहिबोंके आफिस-आफिसके कन्नौजिया दादा कह रहे हैं कि द्विवेदीजीने प्रतापकी जीवनी लिखकर हमारी जातिका एक कलंक धो बहाया।

इस ऊंचे दरजेके लेखकी अधिक प्रशंसा तो इस समय हो नहीं सकती। एक चावलसे ही बिलफैल पाठकोंको बटलोई भरका हाल जानना होगा। द्विवेदीजी महाराजने उस लेखमें प्रतापके रूप-रवैयेका एक विलक्षण चित्र खेंच कर प्रतापकी ओर इशारा करके लिखा है—"आप अपने रूप आदिकी तारीफमें कहते हैं—

कौसिक कुल अवतंस श्री
मिश्र सङ्कटादीन।
जिन निज बुधि विद्याविभव
वंश प्रशंसित कीन ॥१॥

तासु तनय परताप हरि
परम रसिक बुधराज।
सुघर रूप सत कवित बिन,
जिहि न रुचत कछु काज ॥२
प्रेम परायन सुजनप्रिय
सहृदय नवरस सिद्ध।
निजता निज भाषा विषय
अभिमानी परसिद्ध ॥३
श्रीमुख जासु सराहना
कीन्हीं श्रीहरिचंद।
तासु कलम करतूति लखि
लहै न को आनन्द ॥४"

यह चार दोहे द्विवेदीजीने प्रतापके "संगीत शाकुन्तल"से नकल किये हैं। पाठक, जरा इनके अर्थ पर ध्यान दें और द्विवेदीजीकी अक्लका "तौर" देखें। आपकी अजीब अक्ल इनमें प्रतापके रूप आदिकी तारीफ तलाश करती है! आप फरमाते हैं—"नाटककी प्रस्तावनामें कविका अपने ही मुंह अपनी तारीफ करना अनुचित नहीं। पर यहां पण्डित प्रतापनारायणने मतलबसे कुछ जियादह अपनी तारीफ कर डाली है। ऊपरके अवतरणके आगे भी आपने अपनी तारीफ की है और अपनेको 'पण्डिवर' लिखा है। परम रसिक, सहृदय और नवरससिद्ध इत्यादि विशेषण तो ठीक ही हैं! पर 'सुवररूप' में विलक्षणता है।"

कवि दौड़ें! कविताके समझनेवाले दौड़ें! झटसे आगमें राई नून डालें! द्विवेदीजीके बाद कविताफहमीका मैदान साफ है! फिर ऐसे समझदार कहां! लाखों वर्षमें पृथिवी कभी कोई ऐसा लाल उगल देती है! पहला दोहा साफ ही है। उसमें कवि अपने वंश और पिताकी

प्रशंसा करता है। दूसरे दोहेमें, वह अपनी प्रशंसा करता है। उसके एक चरणके अर्थ तक भी हमारे खुशफहम जीवनी लेखक "ठीक ही है" मानते हैं। पर घबराये हैं दूसरे चरणसे। उसमें 'सुघररूप' लिखा है। आप समझते हैं कि 'सुघररूप' प्रतापने अपनेहीको कहा है! उधर जनाब लिख चुके हैं कि प्रतापकी "नाक बहुत बड़ी थी" "दिनभर नास फांका करती थी" तिस पर भी प्रताप 'सुघररूप'! कभी वह आईनेमें अपना मुंह भी देखा करता था या नहीं? कान्यकुब्जोंमें आईना देखना मना तो नहीं है?

द्विवेदीजीसे प्रश्न है कि जनाबे आली! बहुत भाषाएं आप पढ़ गये, बहुत तरहकी कविताएं देख गये। कभी किसी भाषाके कविको आपने अपने रूपकी प्रशंसा करते भी देखा? अथवा कन्नोजियोंहीमें ऐसे बुद्धिसागर होते हैं कि "बहुत बड़ी" और "दिन भर नास फांकने वाली" नाक चेहरे पर चिपकाकर भी अपनेको सुघररूप समझते हैं? सच तो यह है कि इस दासकी आलोचनाने आपको एकदम बौखला दिया। आपने यह जानकर कि यह दास भारतमित्र सम्पादक है और भारतमित्र सम्पादकका प्रतापजीसे सत्सङ्ग रहा है, प्रतापकी ओरसे भी जीमें गुबार पैदा कर लिया और लगे उसकी कविताको और ही दृष्टिसे देखने! जरा गुबार दूर करके एक बार प्रतापकी कविता पर फिर ध्यान दीजिये। देखिये वह अपने रूपकी प्रशंसा नहीं करता है। वह कहता है—"उसका बेटा प्रतापहरि परम रसिक बुधराज है। जिसे सुघररूप और सतकविताके बिना कोई काम नहीं रुचता"। प्रताप यह नहीं कहता कि मेरा रूप सुघर है, वरञ्च वह कहता है कि अच्छे रूप और अच्छी कविताके बिना मुझे कुछ नहीं रुचता। कवि सदा अच्छी सूरतोंके दिवाने होते हैं। अन्धे होने पर भी सूरने अपने रूपके लालची नैनोंके पचासों पद लिख डाले। एक कवि कहता है—

"नैन हमारे लालची
तनक न मानत सीख।
जहं जहं देखत रूप रस
तहं तहं मांगत भीख।"

हुस्नपरस्तीको कवि अपनी कविताका कमाल समझते हैं। हुस्न-परस्ती करना और कवितामें कमाल पैदा करना कवि एक ही समझते हैं। इसीसे जो लोग कविता समझनेकी बुद्धि न रखने पर भी उसमें दखल दरमाकूलात करते हैं, उनके लिये "गालिब" कहता है—

हरबुल हवसने हुस्नपरस्ती
किया शआर।
अब आबरूये शेवये
अहले नजर गई।"

अर्थ है—हरबुल हवस (जो जिस विषयको नहीं जानता, पर उसमें दूसरोंकी देखादेखी दखल देना चाहता है) अपनेको हुस्नपरस्त कहने लगा, इससे जो सच्ची नजर रखनेवाले हैं, उनके कामकी इज्जत गई। अर्थात् नासमझोंने कवितामें दखल देकर समझदारोंकी इज्जत खोई। हिन्दीमें जिनकी यह समझ है, वह मेक्समूलर और हर्बर्ट स्पेन्सर समझते हैं, यही मजेदारी है।

यदि द्विवेदीजी चाहें तो यह बात कविवर "पूर्ण" से समझ सकते हैं। वह आपसे दूर नहीं है। कल्लूके 'आल्हे' और शुक्लकी हाई-कोर्टकी जरूरत न पड़ेगी।

आत्माराम

हिन्दीमें आलोचना

(१)

"जब तक वर्ष छः महीने वे हरिश्चन्द्रके पूर्वोक्त वाक्योंकी स्थिरताके प्रमाण दें और हमारे इस लेखके एक-एक अक्षरका खण्डन करें तबतक हम हर्बर्ट स्पेन्सरकी एक आध किताबको हिन्दीमें लिखनेकी फिक्र करें।"

यह वाक्य श्रीयुक्त पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदीके श्रीमुखसे निकल कर गत फरवरी मासकी "सरस्वती" के ७८ और ७६ पृष्ठोंमें प्रकाशित हुए हैं। इनसे जान पड़ता है कि आप हर्बर्ट स्पेन्सरकी किताबें समझ सकते हैं और उन्हें हिन्दीमें लिखना चाहते हैं। भगवान करे उनकी यह भली इच्छा जल्द पूरी हो। वह जल्द इस नेक काममें लगें और साधु स्पेन्सरके साधु स्वभावका प्रभाव उनके स्वभाव पर पड़े। क्योंकि हम देखते हैं, जबसे बाबू आत्मारामने आपके नवम्बरकी सरस्वतीवाले "भाषा और व्याकरण"के लेखकी आलोचना की है, तबसे आपका मिजाज बहुत अधिक गर्म हो गया है। फरवरीकी सरस्वतीमें उस आलोचनाके उत्तरमें आपने जो लेख लिखा है, उससे आपके मिजाज-की वह हरारत विलक्षण रूपसे प्रगट होती है। बहुत रोकने पर भी वह सरस्वतीके २२ पृष्ठोंमें फैल गई है और उक्त पृष्ठ एक-एक तत्ता तवा बन गये हैं। उनपर उंगली रखना कठिन है। अत्यन्त क्रोध या बेहोशीमें मामूली आदमियोंके मुंहसे जैसी बेसिलसिला बातें निकला करती हैं, वैसे ही आप जैसे विद्वान् और असाधारण पुरुषके मुखसे निर्गत हुई हैं। इतनी बदहवासी और घबराहटमें आपको स्पेन्सरसे साधु पुरुषकी पोथियोंका किसी तरह ध्यान आ गया है, यह बड़ी शुभ बात है।

स्पेन्सरकी जीवनीकी कुछ बातें पढ़नेका एक बार हमें भी सौभाग्य

प्राप्त हुआ था। उसकी कुछ बात अपने पाठकोंके लिये भारतमित्रमें भी प्रकाशित करदीं थीं। कितने ही सालतक इस साधु पुरुषका लोग नाम सुनते थे, पर पता-ठिकाना कुछ नहीं जानते थे। कोई नहीं जानता था कि वह कहां रहता है। खाता कहीं था, रहता कहीं था, किसीसे मिलता-जुलता न था। जिनसे कभी मिलनेका कुछ काम पड़ भी जाता था, तो उनपर प्रगट न होने देता था कि वही स्पेन्सर है! उसने सारी उमर एकान्तमें बैठकर विचार किया। उसी विचारका फल उसकी किताबें हैं। वह बड़ाईका भूखा न था। अपनी छटांकभर विद्याको मनभर करके दिखलाना तो क्या; विद्वान् कहलाने तकमें राजी न था। मान-बड़ाई-ईर्षासे रहित था। धन, मान—किसी चीजका लालच उसे फुसला नहीं सकता था।

हाफिजने क्या खूब कहा है—

बिरोई दाम बर मुर्गे दिगर नेह,
कि उनका रा बलन्दस्त आशियाना।

“जा यह जाल दूसरी चिड़ियोंके लिये फैला, उनका घोंसला बहुत ऊंचा है।” ऐसे पुरुषकी किताबें द्विवेदीजी हिन्दीमें लिखना चाहते हैं, इससे उत्तम काम और क्या हो सकता है। हिन्दी जाननेवालों पर सचमुच आप बड़ी कृपा करना चाहते हैं, उनके साथ बड़ी उदारताका बर्ताव करना चाहते हैं।

स्पेन्सर मत्सर-रहित, साधु पुरुष होनेके सिवा विद्वान् और बड़ा नामी आलोचक था। अवश्य ही वह हम हिन्दी अखबारवालोंकी भांति कुछ अटरम-सटरम पोथियोंके पन्ने नापनेवाला आलोचक न था, पर था बड़ा भारी आलोचक। संसारका कोई ऊंचा विचार या काम नहीं है, जिसकी आलोचना उसने न की हो। मनुष्यके कामोंसे लेकर, प्रकृतिके कामों तककी आलोचना उसने की है। द्विवेदीजी भी हिन्दीमें अपने

समयके एक बड़े आलोचक हैं। आशा है कि वह स्पेन्सरकी किताबोंसे स्वयं भी लाभ उठावेंगे। जान लेंगे कि विद्वान्‌को अपने गलेमें ढोल डालकर अपनी विद्याका डङ्का बजानेको कोई जरूरत नहीं है। आलोचकमें केवल दूसरोंकी आलोचना करनेका साहसही न होना चाहिये, वरञ्च अपनी आलोचना दूसरोंसे सुनने और उसकी तीव्रता सहनेकी हिम्मत भी होना चाहिये। जिस प्रकार वह यह समझता है, कि मेरी बातोंको दूसरे ध्यानसे सुनें, उसी प्रकार उसे स्वयं भी दूसरोंकी बातें बड़ी धीरता और स्थिरतासे सुनना चाहिये। यह नहीं कि आप तो जो चाहे सो कह डाले और दूसरा कुछ कहे तो गुस्सेसे मुंहमें झाग भर लावे, जबान काबूमें न रख सके।

स्पेन्सर भी आलोचनासे बचा नहीं। विद्वानोंने उसके विचारोंकी बड़ी कड़ी आलोचना की है। कह सकते हैं कि उतनी कड़ी आलोचना दूसरोंकी बहुत कम हुई है। पर इससे उसके माथे पर जरा भी बल न आया। अपने आलोचकोंकी बातें सुनकर वह जामेंसे बाहर कभी न हुआ और न अपने आलोचकोंको उसने अपनेसे जलनेवाला और पुराना शत्रु कहा।

फल यह हुआ कि उसके विचारोंका इन आलोचनाओंसे बड़ा आदर और प्रचार हुआ। बेन और हक्सले आदि विद्वानोंको उसके विचारोंका खूब ध्यान रखकर चलना पड़ा है। आश्चर्य है कि द्विवेदीजी स्पेन्सरकी किताबोंके समझने और उन्हें हिन्दीमें लिखडालनेकी योग्यता रखने पर भी स्पेन्सरकी-सी धीरता और दृढ़ता नहीं दिखा सकते! स्पेन्सरका यह गुण उनमें न आया!

अब मुख्य उद्देश्यकी ओर आते हैं। गत फरवरी मासकी सरस्वतीमें द्विवेदीजीने जो लेख "भाषा और व्याकरण" पर लिखा हैं, उसीकी कुछ आलोचना इस लेखमें करना चाहते हैं। उक्त लेख आपने लिखा तो

अपने पहले लेखकी पुष्टि और आत्माराम बाबूके लेखोंके खण्डनमें, उससे वह अर्थ सिद्ध न हुआ। उक्त लेख एक व्यक्ति विशेषपर गालि की बौछार बन गया। उसमें आपने प्रमाण, युक्ति और तर्कसे कम काम लिया और गाली, गुस्से और स्वकल्पित इलजामोंसे अधिक। इस व्यर्थ कल्पनासे आपने तर्कमें कुछ सहायता न लेते तो कोई दोष भी नहीं दे सकता। गजब यह किया है, कि झूठी कल्पनाएं करते गये और उधर इन्हें खूब सच्ची तांबेके पट्टे की मजबूत मानकर खयाली दौड़में बहुत दूर निकले चले गये। इतन निकल गये कि आपको इतना होश न रहा कि कहां चले आये। इ एक उदाहरण द्विवेदीजीके उक्त लेखसे देते हैं। आपने किसी समझ लिया है कि आत्माराम और कोई नहीं वह स्वयं 'भारत सम्पादक' है। इस नामकी ओटमें वह छुपना चाहता है। यह वि आपके जीमें आते ही 'भारतमित्र-सम्पादक', उसके लिखे लेख, पु और 'भारतमित्र' अखबारको आपने आत्माराम मान लिया। आप 'भारतमित्र-सम्पादक'के सब दोष आत्मारामके दोष और उ पोथियोंकी भूलोंको आत्मारामकी भूलें समझते हैं। भारतमित्रमें ि एक-एक पंक्तिका उसीको जिम्मेदार समझते हैं। भला, इस खुशफह कुछ ठिकाना है!

इतना ही नहीं, इससे भी बढ़कर सुनिये। जब आपने व्याकरणपर पहला लेख लिखा, तो यह नहीं बताया था कि इसमें अ निजके विचार ही नहीं मैक्समूलर आदि अंगरेजीके विद्वानों सतीशचन्द्र आदि बंगाली पण्डितोंके विचारोंका निचोड़ भी शामिल

जब आत्माराम बाबू द्वारा उस लेखकी आलोचना हुई, तो फरवरीके लेखमें आपने यह बात खोली है। पर अब खोली तो आपने समझ रखा है कि जिस प्रकार यह बात पहलेसे आपके मग

थी, वैसी ही आत्मारामके मगजमें मौजूद थी। अर्थात् आत्माराम न केवल भारतमित्र-सम्पादक ही है, वरञ्च आपके मगजमें रखी हुई बातों-को उड़ा ले जानेकी शक्ति भी वह रखता है। आपने अपने पहले लेखमें भाषाकी "अनस्थिरता" दिखानेके लिये कुछ वेदान्तकी बहार दिखाई थी। आत्माराम बाबूने उस बेमौका वेदान्तकी कुछ दिल्लगी उड़ाई थी। अब द्विवेदीजी उस वेदान्तको मैक्समूलरका बताते हैं और मैक्समूलरके मरने पर भारतमित्र-सम्पादकने जो कविता लिखी थी, उसका हवाला देते हुए आत्मारामको भारतमित्र-सम्पादक समझकर ताना देते हैं कि तूने ही तो मैक्समूलरकी तारीफ की है और उसमें मैक्समूलरके लेखोंको "उचित आज्ञा" की सनद दी है। कहिये इतनी लम्बी दौड़का कहीं ठिकाना है!

द्विवेदीजीसे विनय है कि उस कविताको फिर पढ़ें। वह "उचित आज्ञा" पुस्तकालयकी पुस्तकोंकी है, न कि खास मैक्समूलरके लेखोंकी। उस कवितामें पुस्तकोंके पढ़नेके लाभ भी पूरे न दिखाये जा सके। मैक्समूलरकी प्रशंसा तक तो वह पहुंची ही कहां? पर खैर, यदि वह मैक्समूलर ही की उचित आज्ञा हो, तो भी आपके दिमागमें बैठे हुए मैक्समूलरको भारतमित्र-सम्पादक कैसे पहचानता? भाषाके विज्ञानकी उत्पत्ति तो सौ सालसे हुई है, पराये दिमागमें घुसकर उसकी छुपी बातोंको बमद्दे पेशगी जाननेका कोई विज्ञान निकला हो, तो हमें भी बताना। भला कुछ तो लाभ अब भी आपके प्रसादसे होना चाहिये।

इसी प्रकार कपोल-कल्पित बातोंका किला बनाकर द्विवेदीजीने कयासी गोले मारे हैं। द्विवेदीजीने फरवरीके लेखमें यही जाहिर करना चाहा है कि भारतमित्र-सम्पादक ही आत्माराम है। "अन-स्थिरता" वाले लेख उसीने आत्माराम बनकर द्विवेदीजीसे पुरानी अदावतका बदला लेनेके लिये लिखे, न कि भाषा या व्याकरणकी भलाई-

के लिये। व्याकरणका वह विरोधी है, भाषाकी अनस्थिरताको मिटने देना नहीं चाहता, पर हम इन बातोंको एक तरहका भारी धोखा देना और असल बहससे भागना समझते हैं।

इससे इन सब इलजामोंकी सफाई कर देना चाहते हैं। जिससे आपसकी लड़ाईका खयाल मिटकर खाली भाषा और व्याकरण सम्बन्धी लड़ाईका खयाल रह जाय। तब भाषा और व्याकरणपर बहस करनेको खूब मौका मिलेगा। जो तत्त्व है, शायद वह भी निकल आवेगा। साथ ही जो लोग अदावतके भाड़में झोंके लगाते हुए असली बहसको कूड़ेके ढेरमें दबाना चाहते हैं, उनकी सूरत भी लोग पहचान लेंगे।

---

(२)
ईर्षा-द्वेष

"और जो लोग, 'ज्ञानलवदुर्विदग्ध' हैं, ईर्षा-द्वेषसे जिनका जी जल रहा है, उनको वृहस्पतिके बापकी बातोंमें भी पूर्वापर विरोध और संदिग्ध भाव देख पड़ेगा। हमारा पहला लेख इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है।" (सरस्वती फरवरी १९०६ पृष्ठ ६७)

इसका अर्थ यह है कि पण्डित महावीरप्रसादजीके "भाषा और व्याकरण" वाले लेखकी जिन लोगोंने प्रशंसा लिख भेजी, वह तो पढ़े लिखे और अच्छे हैं, पर जिन लोगोंने उसके दोष दिखाये, वह 'ज्ञानलवदुर्विदग्ध' हैं। मारे ईर्षा-द्वेषके पण्डितजी पर उनका जी जल रहा है। इससे वह लोग पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी तो क्या, बृहस्पतिके बापकी बातोंको भी टेढ़ी-मेढ़ी और संदिग्ध बता सकते हैं। हमारा प्रश्न है कि ऐसा विचार आपका क्यों हुआ? हमारी मोटी समझमें तो इसके केवल दो ही कारण हो सकते हैं। या तो यह कि द्विवेदीजी अपनेको कमसे कम बृहस्पति समझते हैं और अपने विचारोंको विवादशून्य और अपनी

भाषाको भ्रम-रहित समझते हैं। उसपर किसीके उंगली रखनेकी गुंजाइश नहीं देखते। अथवा वह यह समझ बैठे हैं, कि हिन्दी-समालोचकोंकी लङ्कामें अकेले आपही रामभक्त हैं, बाकी सब रामविरोधी। इन दो कारणोंके सिवा, तीसरा तो कोई कारण नहीं दिखाई देता, जिससे द्विवेदीजीको ऊपर कही बात कहनी पड़ती।

पर, वह एक बार धीर-भावसे विचारें कि जो उसूल वह कायम करते हैं, वह समालोचक-सम्प्रदाय और हिन्दी-साहित्यकी भलाईके हकमें अच्छा है या बुरा। आपके इस नियमसे तो हर लेखक या समालोचक—जिसकी कुछ तीव्र समालोचना की जावेगी और भूलें दिखाई जावेंगी, यही कह उठेगा कि मेरी भूल दिखानेवाले मुझसे जलते हैं। वह मारे ईर्षाके वृहस्पतिके बापको भी तुच्छ बना सकते हैं। उनसे मेरी कई सालसे दुश्मनी है। तबसे वह मुझपर बराबर चोट करते चले आते हैं। यदि आपका यह नियम पक्का मान लिया जाय, तो किसीकी पोथी या लेखकी आलोचना करना और उससे शत्रुता करना एकही बात है।

उधर हिन्दी साहित्य-संसारमें देखिये तो द्विवेदीजीही बड़े आलोचक हैं। जबसे इस संसारमें आपका नाम हुआ है, तबसे आप बराबर आलोचनामें लगे हुए हैं। आपकी रचनासे आलोचनाका जखीरा भारी है। आपने अपने सामनके लोगोंहीकी नहीं, अपनेसे सैकड़ों वर्ष पहले उत्पन्न होनेवालोंकी आलोचना भी की है और उनके दोष तलाश किये हैं। किसी-किसी पर आपकी आलोचना बराबर चल रही है। तो क्या आपके नियमके अनुसार यही समझा जाय कि आप 'ज्ञानलव-दुर्विदग्ध' हैं और उन सब मरे-जीते लोगोंपर ईर्षा और द्वेषके मारे आपका जी जल रहा है ? आपको वृहस्पतिके बापकी बातोंमें भी पूर्वापर विरोध नजर आवेगा ? दूर न जायं एक बार द्विवेदीजी 'सरस्वती'

में अपनी लिखी हुई आलोचनाओंको फिरसे पढ़ जायं, कदाचित एक दो आदमीही ऐसे मिलेंगे, जिनपर आपकी लेखनीने डङ्क न चलाया हो। जो लोग इस समय आपकी हिमायतको खड़े हुए हैं, उनमें भी अधिक घायल निकलेंगे, —दूसरोंकी तो बातही क्या है !

यह प्रश्न भी द्विवेदीजीसे किया जासकता है - क्या आप उन्हीं लोगोंकी पुस्तकों या लेखोंकी आलोचना करते हैं, जिनसे आपको ईर्षा-द्वेष है और जिनकी कीर्तिको देखकर आपका जी जल रहा है ? अथवा आपके लेखों और पोथियों पर आलोचना करनेवालोंके नसीबमें यह कलंक लिखा गया है कि मारे ईर्षा-द्वेषके उनका जी आप पर जल रहा है ? आप जब किसीकी आलोचना करने चलते हैं, तो संसारका सब ज्ञान आपकी रकाब पकड़े साथ-साथ दौड़ता है, और दूसरा आपकी बातपर कुछ कहे तो चट "ज्ञानलवदुर्विदग्ध" का पट्टा उसके माथेसे बांध दिया जाता है, इसका क्या कारण ? क्या इसके लिये भी सौ पचास सालसे जर्म्मनी-वर्म्मनीमें कहीं कोई नया विज्ञान उत्पन्न हुआ ?

संसारमें ऐसा नियम चल नहीं सकता, कि द्विवेदीजी या उनके सदृश कोई व्यक्ति जिसपर चाहे जो कुछ नुकताचीनी कर जाय और वह खूब ठीक और सच्ची समझी जाय। किन्तु दूसरा कोई उस नुकताचीनीकी भी कुछ नुकताचीनी करे (असल चीजोंकी बात जाने दीजिये) तो वह अल्पज्ञ और ईर्षा करनेवाला समझा जाय। यदि ऐसा नियम कुछ देरके लिये चल भी जाय, तो स्थिर नहीं रह सकता। एक बुद्धिमानका कथन है कि मनुष्यका हृदय दर्पण है। उसीके विचारोंका प्रतिविम्ब उसमें पड़ता है। मनुष्यको चाहिये कि जो बात स्वयं पसन्द नहीं करता है, उसे दूसरोंके लिये भी पसंद न करे। हम कभी नहीं समझते कि द्विवेदीजी उन लोगोंके मुंहसे अपनेको अल्पज्ञ और द्वेषी सुनना पसंद करेंगे, जिनकी वह आलोचना करते हैं। एक आलोचकका दूसरे

आलोचकोंको दोषी कहना स्वयं दोषी बनना और अपने कामको स्वयं निन्दा करना है।

हमारी द्विवेदीजीसे विनय है, कि इस बहसमें वह अपने मुकाबिलको ईर्षा-द्वेषके इल्ज़ामसे रहित करें, चाहे उसे अल्पज्ञ समझते रहें। यदि आप इस बहसमें आत्मारामको भारतमित्र-सम्पादक न समझते और उससे अपनी पुरानी शत्रुता न बताते, तो भी उसके लेखका उत्तर दे सकते थे। वह उत्तर आपका फरवरीके उत्तरसे अधिक निर्बल न होता और न उससे आपके हृदयकी इतनी दुर्बलता और स्वभावकी इतनी असहिष्णुता प्रगट होती, जितनी फरवरीके उत्तरसे हुई है। आपके फरवरीके उत्तरने साबित कर दिया है कि आलोचनाकी लेखनी उठाना आप जैसे दुर्बल चित्तोंके लिये खाली बिडम्बना है। पराई आलोचना करनेको निकलना ओखलीमें सिर देना है। उसपर कितनीही चोटें पड़ें, सहना होती हैं। एक गंवारी कहावत है कि एक छेड़की तीन सौ साठ गालियां होती हैं। आप छेड़ करना पसंद करते हैं, पर उत्तर सुननेकी हिम्मत नहीं रखते - ... किस प्रकारके आलोचक हैं! यदि किसीके एक चांटा जमानेका शौक रखते हो, तो दस चांटे खानेकी समाई रखो। यह नहीं कि आप तो किसीको मार बैठें और जब स्वयं मार खाई तो रोते-पीटते घर आये! मां-बापको हैरान किया और मुहल्ले भरको सिरपर उठा लिया!

लीजिये जिस हर्बर्ट स्पेन्सरको आप आदर्श मानते हैं और उसकी एक-आध पुस्तककी हिन्दी करना चाहते हैं, उसीकी बात लीजिये।

नवम्बर १८७२ ई०के Contemporary Review में डाक्टर हजसनने हर्बर्ट स्पेन्सरके विरुद्ध कुछ आलोचना की थी। उसका उत्तर लिखते हुए वह कहता है—"I Value them as coming from a thinker of subtlety and independence. (मैं इन विचारोंका आदर

करता हूं, क्योंकि यह एक स्वाधीनचेता और पेचीले लेखककी लेखनीसे निकले हैं।)"

सिजविक साहब नामके एक दूसरे आलोचकके विषयमें वह लिखता है—A Critic whose remarks on questions of mental philosophy always deserve respectful consideration.

यह उसने, अपने आलोचककी प्रशंसा की है जिसका अर्थ है—"वह ऐसा आलोचक है, जिसकी आलोचना मनोविज्ञानके सम्बन्धमें आदरणीय है।" आगे हर्बर्ट स्पेन्सर इस आलोचककी दिखाई अपनी भाषाकी ढिलाई स्वीकार करता है—This apparent inconsistency, marked by the italics, would not have existed if, instead of "a cognition of it", I had said, as I ought to have said, "what we call a cognition of it,"—इसमें हर्बर्ट स्पेन्सर स्वीकार करता है कि मुझे अपने a cognition of it की जगह what we call a cognition of it कहना उचित था। ऐसा कहनेसे बातका सिलसिला ठीक होजाता।

अपने तीसरे आलोचक मार्टिनोको वह An able metaphysician अर्थात् मनोविज्ञानविद् कहकर अपनी भूल मानते हुए कहता है—I admit this to be a telling rejoinder, and one which can be met only when the meanings of the words, as I have used them, are carefully discriminated and the implications of the doctrine fully traced out.

"मैं इसे बड़ी प्रभावशाली आलोचना समझता हूं। ऐसी आलोचना तबही हो सकती है, जब मेरी भाषा और मेरा सिद्धान्त बहुत ध्यानसे पढ़ा और विचारा जाय।"

एक और आलोचकके विषयमें जो कम उमर था और उसका उसने नाम तक भी नहीं लिया, वह कहता है—That he discovers no mistakes I do not say. It would be marvellous if in such a multitude of propositions averaging a dozen per page I had made all criticism-proof.

मैं यह नहीं कहता कि आलोचनामें उसने मेरी भूलें नहीं निकाली ऐसा कहना अजीब होगा कि इतनी बड़ी पोथी लिखकर जिसके हरेक पृष्ठमें कमसे कम बारह सिद्धान्त हैं, मैंने उसके भूल घुसनेके सूराख तक बंद कर दिये। अधिकके लिये आप Essays volume III chapter XI देखें। देखिये स्पेनसर-सा विद्वान अपने आलोचकों पर आपकी तरह बिगड़ नहीं गया, वरञ्च धीरतासे उनको उत्तर देता रहा।

यदि आपको यही बात पसन्द है कि केवल आत्मारामका पता लगाया जाय, उसकी बातोंको समझने और उसका उत्तर देनेकी कुछ जरूरत नहीं, तो अच्छा वही सही। इस बहानेसे आप भाषा और व्याकरणकी बहससे न भागिये, क्योंकि वह कामकी बात है। लीजिये आपकी तसल्लीके लिये हम मान लेते हैं कि इस बहसके समाप्त होने तक आत्माराम, भारतमित्र-सम्पादकही सही। जब आत्मारामके लेखोंको सम्पादकने अपने लेखोंके बराबर इज्जत दी है, उसकी बातोंका समर्थन किया है, तो उसको सम्पादक मान लेनेमें क्या हानि है? पर क्या एक आत्मारामही भारतमित्र-सम्पादक है? नहीं, नहीं, इस बहसमें जो कोई आत्मारामकी तरफदारी करता है, वही आपको भारतमित्र-सम्पादक दिखाई देता है। यहाँ तक कि पं० गिरिधर शर्म्माका, लेख नहीं तो भाषाही भारतमित्र-सम्पादककी है। इस बहमका क्या इलाज? आपको यह विश्वास दिलाना कठिन है, कि आत्माराम भी कोई है और जिन सज्जनोंने उसकी

हिमायत की है, वह भी हैं और स्वयंही उन्होंने अपने-अपने लेख भी लिखे हैं, भारतमित्र-सम्पादकने "उनकी सामग्रीका उपयोग अपने तौर पर" नहीं किया। इससे यह मान लेनाही अच्छा है कि भारतमित्र-सम्पादक आत्माराम है।

पर इतनी उदारता कीजिये कि उसे अपना पुराना शत्रु होनेके इल्जामसे माफ कीजिये। इससे समालोचकोंकी बड़ी निन्दा होती हैं, लोग कहेंगे कि यह समालोचक लोग बड़े इतरजीव हैं कि लोगोंसे अपनी शत्रुता निकालनेके लिये उनकी पोथियोंके दोष दिखाया करते हैं। साहित्य या भाषाकी भलाईके लिये वह कभी नहीं लिखते, खाली प्रमाद और विप्रलिप्सावश अन्ट-सन्ट बका करते हैं! द्विवेदीजी महाराज! आत्मारामकी एक आलोचनासे आप इतने विचलित हो गये कि जी काबूमें न रहा। शिष्टाचारकी दीवारसे भी जिसका अग्निहोत्रीजी बड़ा ध्यान रखते हैं, उचक कर पार हो गये। जरा ध्यान दीजिये जो लोग सालहा सालसे आपकी कड़ी आलोचनाएं सह रहे हैं और कभी उफ नहीं करते, कहिये वह किस कड़े कलेजेके लोग हैं? आलोचक होने पर भी आपकी यह घबराहट और आलोचक न होने पर भी उन लोगोंकी वह बरदास्त, आश्चर्यके योग्य है या नहीं? इससे अब यह मानलें कि जिस प्रकार पराई छेड़ आपके हृदयमें चुभती है, वैसेही आपकी बात भी दूसरोंके मनको व्यथित करती है। आत्मारामने तो खाली आपसे छेड़ की है, आप पचासोंसे कर चुके हैं। पर यदि आत्माराम या भारतमित्र-सम्पादक आपका शत्रु है, तो आप पचासोंके शत्रु हैं। आप कितनोंहीको छेड़ते हैं और वह आपको। यह बेचारा अलग-अलग कितनोंको छेड़ने जाय, एक सबके छेड़नेवाले आपहीको क्यों न छेड़ ले? सब पुण्य एकही तीर्थराजमें मिल जाय! पर यह उसकी बहादुरी है। इसपर आपको उसकी पीठ ठोकना चाहिये न कि उससे नाराज होना।

अबस तुम अपना
रुकावटसे मुँह बनाते हो।
वह आई लब पे हंसी
देखो मुसकराते हो।

---

(३)

नेक नजर और नेकनीयती

"जिस कायामें घुसकर हमारे शूर समालोचक वाण-वर्षा कर रहे हैं उसकी शुरूहीसे सरस्वती पर नेक नजर रही है। आक्रमण पर आक्रमण उस पर होते आये हैं। पर हमने कभी उनकी तरफ ध्यान देनेकी जरूरत नहीं समझी। नहीं मालूम क्यों कुछ लोगोंकी आंखमें सरस्वती कांटे-सी चुभती है।" (सरस्वती, फरवरी १९०६ पृष्ठ ७०)

"क्योंकि नेक-नीयतीके सब काम छिपकर ही किये जाते हैं। आपकी बड़ी नेकनीयती नई नहीं, ६ वर्षकी पुरानी है। जब उसका वेग बढ़ जाता है तब वह समय-समय पर कभी लेख, कभी नोट, कभी तस्वीर आदिक रूपमें बाहर निकलकर आईनेके समान आपके साफ दिलको हल्का कर दिया करती है।" (सरस्वती, फरवरी १९०६, पृष्ठ ८०)

इन वाक्योंसे द्विवेदीजी यह स्पष्ट करना चाहते हैं, कि आपने जो लेख, भाषा और व्याकरण पर लिखा था, वह बहुत जरूरी था। पर उसके उत्तरमें आत्मारामने जो कुछ लिखा उसमें ६ साल पहलेकी दुश्मनीका बदला निकाला गया है। आत्माराम कल्पित नाम है। भारतमित्र-सम्पादकने स्वयं वह सब लेख आत्माराम बनकर लिखे।

सरस्वती उसकी आंखोंमें चुभती है। वह उससे बराबर छेड़-छाड़ किया करता है। पर हम कहते हैं कि यह द्विवेदीजीका वहम है। इसकी दवा लुकमानके पास भी नहीं है। जो 'भारतमित्र' सम्पादक

६ सालसे आपके साथ खुल्लमखुल्ला छेड़छाड़ करता आया, उसे अचानक आत्माराम बननेकी क्या जरूरत पड़ी ? अब यह आपसे क्यों भयभीत हुआ ? कुछ सबब इसका आप भी सोचिये। एक आत्मारामही क्या, जिसने जहाँसे इस विषयमें लेख लिखे हैं, उसीपर आपने बदगुमानी की है। सबके लेखोंपर आपने यही राय पास की है कि वह भारतमित्र-सम्पादकहीने लिखे हैं। यहां तक कि यदि कोई लेख दूसरेका लिखा मान भी लिया, तो उसकी भाषाही पर आपको शक हो गया। हमने आपको इतना शक्की न समझा था। जान पड़ता है जिस सज्जनने हिन्दी 'बंगवासी' में दिखानेको आपकी तरफदारी की और वास्तवमें आपके लेखकी धूल उड़ाई और आपका उपहास किया, उसीके कल्पित वाक्य आपपर असर कर गये। उसीने पहले अपने लेखोंमें यह पट्टी आपको पढ़ाई कि आत्माराम भारतमित्र-सम्पादक है। भारतमित्र-सम्पादक आपसे पुरानी दुश्मनी रखता है। उसीके वश होकर आपकी हजो लिखता है। अनस्थिरताका 'अन' हिन्दी है। उसका संस्कृतसे सम्बन्ध नहीं। आश्चर्य है कि आपने यह सब बातें मान लीं। नहीं तो आपका सिद्धान्तही दूसरा है।

फरवरीका लेख लिखते समय यद्यपि आप क्रोधान्ध हो गये हैं, १७ सालमें कभी आपको इस प्रकार अधीर होते नहीं देखा जैसा इस लेखमें। तिसपर भी आप उस लेखमें बड़ी गम्भीरतासे एक लखनवी सज्जनको समझाते हैं—

"आप चाहे ऐसी आलोचनाके जितना खिलाफ हों, पर हरिश्चन्द्र यदि होते तो वे जरा भी मुखालिफत न करते। क्योंकि उन्होंने खुद औरोंकी आलोचना की है; समालोचनाका मार्ग उन्होंने हिन्दीमें निकाला है। अतएव यह कब सम्भव था कि अपनेही निकाले हुए मार्गके मुसाफिरसे वे रुष्ट होते।"

अहा ! अत्यन्त क्रोधमें भी यह धीरता, यह उदारता और यह सुविचार ! तिसपर भी आपने अपनेही पथके पथिक आत्मारामसे इतनी नाराजी दिखाई ! उसे अपना साथी न बताकर दुश्मन बताया। जब आप जीते हैं और स्वयं अपने निकाले हुए मार्ग पर चलनेवाले आत्मारामसे सख्त बेजार हैं, तो कैसे समझते हैं कि हरिश्चन्द्र आपकी आलोचनासे रुष्ट न होते ? आप रुष्ट होते हैं, पर वह न होते कैसी अजीब बात है !

आपको उचित था कि आत्मारामको शत्रु न मानते। पर यदि वह वास्तवमें आपका शत्रु है, तो आप भी क्या उसके शत्रुही हैं ? क्या शत्रुकी आलोचनाका कोई युक्तियुक्त उत्तर नहीं हो सकता ? शत्रुको केवल शत्रु कहकर उसकी युक्तियोंकी उपेक्षा करना तो आलोचकोंका धर्म्म नहीं है। मजा तो जबही है कि शत्रु अपनी कटूक्तिका भी ऐसा उत्तर सुने कि दाँत खट्टे कराके भागे। यदि आपका शत्रु किसी औरकी कायामें घुसकर आप पर हमला करता है, तो करे। समझ लीजिये कि वह अपने चोलेको कमजोर समझता है। इसमें आपके घबरानेकी क्या बात है ? इसके लिये हर आदमीको कायामें अपने शत्रुको मत देखिये। उन लोगोंकी पैरवी मत कीजिये, जो हरेककी आत्माको दूसरेकी कायामें देखते हैं। उन्हें 'फिसानये अजाइब'की मलिकाका मेमना समझकर जाने दीजिये।

"सरस्वती" का हमारे यहाँ बड़ा आदर है। इण्डियन प्रेसके मैनेजर स्वयं देख गये हैं कि 'सरस्वती' के वार्षिक फाइल 'भारतमित्र' प्रेसमें बहुत कीमती जिल्दोंमें बंधवाकर रखे जाते हैं। इससे यह कहना कि वह आँखोंमें खटकती है, हमारे लिये तो ठीक नहीं।

एक चिकने कागजकी उत्तम टाइपकी, बढ़िया तस्वीरों वाली ठीक समयपर निकलनेवाली हिन्दी मासिक पत्रिका किस हिन्दी-प्रेमीकी

आँखोंमें काँटेसी खटकेगी ? बेहतर हो कि चुभतीका हम वह अर्थ जो शहरवालोंके रोजमर्रहमें आता है। शहरवाले अपनी बहुत पस की प्यारी चीजको चुभती हुई कहते हैं।

द्विवेदीजीको शिकायत है कि ६ मालसे हम उनके साथ अदावत बर्ताव करते हैं। पर हम इसको नहीं मानते। इसके लिये हम अप सफाई पेश करगे। ६ साल नहीं, आपका हमारा सोलह-सतरह साल सम्बन्ध है। सन् १८८६ ई० में जब हम कालेकांकरमें थे, तब ह द्विवेदीजीको पहले-पहल जाना। आपने अपना गङ्गालहरीका हिन्द अनुवाद "हिन्दोस्थान" में छपनेको भेजा था। तब हमने अनुम किया था कि आप एक संस्कृत जाननेवाले पण्डितोंमेंसे हैं। अनुवाद कुछ दिन छपा। इसे देखकर एक और सज्जनने गङ्गालहरी का अनुवाद भेजना आरम्भ किया। वह भी "हिन्दोस्थान" में छ लगा। इससे द्विवेदीजी नाराज हुए। आपने लिखा कि जबतक मे अनुवाद छपता है, दूसरेका न छपे। हमने दूसरे सज्जनको रोका, वह बिगड़ गये। कहने लगे द्विवेदीजीका अनुवाद बड़ा अनोखा है, उसके सामने दूसरेका न छपे। जरा पूछिये तो सही, उन्हींका किया भी कि नहीं। फल यह हुआ कि दोनों अनुवाद ही छपनेसे बंद गये। जब द्विवेदीजीने अपना अनुवाद पुस्तकाकार छपवाया, त खरीदकर पढ़ा। उत्तम हुआ था। उन दिनोंमें आपने शायद 'ऋतुसंहा का अनुवाद छपवाया था। उसमें से यह टुकड़ा याद रह गया है—

"आयो कृतान्त इव निदाघ काला।"

व्रज भाषामें द्विवेदीजीकी गंगालहरी ही देखी, बाकी कविताएं उन "निदाघ काला" के ढंगकी होती रहीं। "हिन्दोस्थान" में हमें जहां याद है, हमारे सामने उनका कोई गद्य लेख नहीं छपा था। व्रज भाषा

'गंगालहरी'-जैसी द्विवेदीजीकी और कविता देखनेमें नहीं आई। फिर छपने योग्य चीज है।

इसके बाद "हिन्दी बंगवासी" में हमारा और आपका साबिका पड़ा। सन १८९८ ई० में आपका 'गर्दभकाव्य' उक्त पत्रमें छपा। और भी कुछ बातें आपकी भेजी हुई छपी थीं। याद पड़ता है, वह सब पद्य-हीकी थीं। गद्य तब तक आप कम लिखते थे।

तीसरी बार 'भारतमित्र'में आपसे जान-पहचान हुई। इस बार कुछ अधिक मेल-जोल हुआ। पहले हम द्विवेदीजीका केवल नाम जानते थे और वह शायद हमारा नाम भी न जानते हों। इस बार पण्डित श्रीधरजीकी मारफत जान-पहचान हुई थी, इससे आपसमें पत्र-व्यवहार भी चला और लिखा-पढ़ीकी मात्रा भी खूब बढ़ी। आप हम पर बहुत कुछ कृपा भी दिखाने लगे। जनवरी १८९९ ई० में हम भारतमित्रमें आये। वर्षके अन्तिम भागमें आपसे हमारी साहिब-सलामत हुई। सबसे पहले १३ नवम्बरके भारतमित्रमें आपकी लिखी "शरत्सायं-काल" कविता छपी। इसका छन्द मेघदूती और भाषा "निदाघकाला"के ढंगकी है। २७ नवम्बरको आपका एक गद्य लेख छपा है—जिसका सिरा है "शास्त्र और सिद्धान्त।" जिसके नीचे लिखा है—बालबोधसे उद्धृत। ४ दिसम्बरके अंकमें आपकी स्वप्न नामकी एक कविता छपी है। उसमें लिखा है कि भूप लक्ष्मण सिंहका अविनाशी आत्मरूप जब आगरेसे उड़कर सुरपुरमें पहुंचा, तो पहले ही कालिदासके पास गया। देखा कि कालिदासका शरीर सूखकर हाड़ोंकी ठठरी बना हुआ है। -

मिलते समय राजा डरे कि कहीं कालिदासकी हड्डियां उनके हृदयमें गड़ न जावें। खैर दोनों मिले। पीछे कालिदासने कई बार आँसू पोंछ कर कहा—मैं तो बहुत दिनसे यहां आ गया और मेरी प्राणप्यारी कविता-वधू भारत-भूमिमेंही रह गई। मेरे वियोगसे वह अनाथ हो

गई थी। सिर पटक-पटक कर फोड़ती थी। एक तुम्हारे कारण वह अपनी रण्डादशा कुछ भूल गई थी। तुम भी उसे छोड़ आये। अब तो वह मरी। कामिनी कमनीय अरक्षित देखकर बहुत लोग उसे अपनी करना चाहते हैं। पर वह इसके योग्य नहीं। क्योंकि लोग—

रसके रुचिर भेद नहीं जानत
यद्यपि बाहु पसारी।
वा रसिकासों चहहिं मोहवश,
आलिंगन बलिहारी!

वह घृणा करके उन अयोग्य पुरुषोंके पाससे भागती है। पर वह निर्लज्ज बलात्कारको हाथ बढ़ाते हैं। कितनीही तरहके वस्त्र उसे पहिनाते हैं। कोई उसे जर्मनीकी चिड़ियोंकी परोंकी टोपी, कोई पैरिसकी गौन, कोई पूने-नागपुर-मद्रासकी धोती पिन्हाता है और—

घेरदार घाघरो अवधको, कोऊ बुरो बनाई।
प्राणबधूटिनहूकी जिह लखि, उठै आंख अधिकाई॥
बरबस पकरि प्रियाकी चोटी, तन मन दीन ढकेलि।
हाहाकार सुने नहिं नेकहु, वाके जानि अकेलि॥

इस प्रकार कालिदासकी कविता-बधूकी बेइज्जतीका स्वप्न देखते-देखते द्विवेदीजी जाग पड़े, तो कहीं कुछ न था।

१८ दिसम्बरके अङ्कमें एक लेख आपका गद्य छपा है। यह पण्डित श्रीधरजीकी कवितासे सम्बन्ध रखता है। २५ दिसम्बरके अङ्कमें आपका "श्रीधर सप्तक" छपा है। इसका आरम्भ यों हैं—

बाला-बधू-अधर अद्भुत स्वादताई।
द्राक्षाहुकी मधुरिमा मधुकी मिठाई।
एकत्र जो चहहु पेखन प्रेमपागी।
तो श्रीधरोक्त कविता पढ़ियेऽनुरागी।

सन् १८९९ ई० इस प्रकार बीत गया। नया साल १९०० ई० लगा। उसके ८ जनवरीवाले अङ्कमें द्विवेदीजीकी "सुतपञ्चाशिका" छपी। संध्या होनेसे पहले द्विवेदीजीके एक मित्रने उनसे आकर कहा कि आज जो कचहरीसे फिरकर घर आया, तो देखा कि माता सिर पर हाथ धरे रो रही है। उधर पत्नीकी तरफ देखा, तो उसकी यह दशा थी—

मुख-ऊपर घूंघट घटा तानि, रहि-रहि सह सिसकी रुदन ठानि।
तन बसन सबै महं धूरि सानि, फुफकरति मनहु नागिनि रिसानि॥

देखकर घबराया और डरते-डरते मातासे पूछा, तो उसने कहा कि बेटा तेरे लड़का नहीं होता, इसीका दुःख है। मैंने माताको समझाया कि लड़के होकर मर जाते हैं, तब दुःख होता है और—

शत सहस माहि कहुँ एक सपूत।
लखि परै शेष सारे कपूत।

* * *

बहु पुत्रवान जनके निशान।
मिट गये न कोऊ कतहुं जान।
पै सुयशवान, जउ पुत्र हीन!
भे अमर विश्व-बिच नाम कीन।

इस प्रकार माताको समझाकर मित्रजी मित्रसे मिलने आये। इसी पर द्विवेदीजीने 'पञ्चाशिका' रची।

---

(४)

नेक नजर और नेकनीयती

१५ जनवरी सन् १९०० ई०के 'भारतमित्र'में पण्डित महावीर प्रसादजी द्विवेदीकी प्रसिद्ध बालविनोद नामकी कविता छपी है। जिसकी

"पहले हमैं खिलाई
सोवैं हमैं सुलाई—"

आदि पंक्तियां पाठक भूले न होंगे। १२ फरवरीसे आपकी 'कुमार सम्भवसार' नामकी कविता छपना आरम्भ हुई। १६ फरवरीको इस कविताका जो अंश छपा है, उसके नीचे द्विवेदीजीका एक नोट है, जो आपकी तबीयतकी एक विशेषताका पता देता है। वह इस प्रकार है—

"कानपुरमें एक G. K. Srivaswi (जी० के० श्रीवस्वी) महाशय हैं। आपका हिन्दी नाम हमको मालूम नहीं। आपने लिखाही नहीं। लाला सीताराम बी० ए० के चिरञ्जीव गिरिजाकिशोरके नाममें भी जी० के० है। परन्तु यह विश्वास नहीं होता कि वह यही महाशय हैं। जी० के० जी हमसे सख्त नाराज हैं। अपराध हमारा यह है कि हमने लाला सीतारामके अनुवादोंकी समालोचना की है। आपने हमको उपदेश दिया है, कि लाला साहबके अनुवादोंकी समालोचना करना छोड़ एक आध संस्कृत ग्रन्थका हम भी अनुवाद करें। आपके उपदेशको मान देकर आज हमने यह "सार" लिखा है। यदि जी० के० महाशयको यह 'सार' पसन्द आया, तो 'अनुवाद' लिखनेका भी, अवकाश मिलने पर हम विचार करेंगे, परन्तु समालोचनासे हाथ खींचनेके विषयमें आपके उपदेशको मान देना चाहिये अथवा नहीं— इस बातका अभी तक हमने निश्चय नहीं किया है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी
झांसी १३ फरवरी १६००।"

२१ मई तक आपका यह "सार" छपता रहा। इसके नीचे जो नोट होते थे, उनमें बराबर लाला सीताराम पर चोटें होती थीं। हम बराबर द्विवेदीजीसे विनय करते रहे, कि आप अपना अनुवाद किये जाइये, लाला सीतारामजीसे हर वक्त छेड़-छाड़की जरूरत नहीं है। पर

किसीकी बातको मान लें, यह आपकी शुरूसे ही आदत नहीं है। इस बीचमें कविता तो आपकी और कोई नई नहीं छपी, पर लेख कुछ छपे। उनमेंसे एक लेख उस सालकी होलीके दूसरे नम्बरमें छपा था। उसका शीर्षक था—"अथ श्रीप्लेगस्तवराजः।" जितने लेख आपने 'भारतमित्र'में लिखे उन सबमें यही हमें अधिक पसन्द आया और इसीकी बाहरसे भी प्रशंसा हुई।

दूसरा लेख "अप्पयदीक्षित" था। शायद द्विवेदीजीके मित्र यह सुनकर चौंकेंगे कि उस समय "सरस्वती" हमारे द्विवेदीजीको "आंखमें भी न जाने क्यों काटेसी चुभती थी"! आपने इस लेखमें सरस्वतीको माकूल झाड़ बताई है। पूरा लेख सवा कालमका है, नहीं तो ज्योंका त्यों नकल करनेमें मजा आता। खैर, उसके कुछ अंश जहां-तहांसे नकल कर देते हैं। श्रीगणेशहीसे लीजिये—

"काशीकी नागरीप्रचारिणी सभाके पांच पण्डित इंडियन प्रेस प्रयागसे प्रतिमास एक 'सरस्वती' निकालने लगे हैं। इस सरस्वतीकी दूसरी संख्यामें अप्पयदीक्षित पर एक लेख है। इस लेखका मसाला काव्य-मालासे लिया गया है।

* * * *

इस लेखमें अनेक प्रमाद हैं, जिनका निराकरण करना हम उचित समझते हैं।"

यह श्रीगणेश था। आगे उन्होंने जिस ढङ्गसे लिखा है, उसका भी कुछ नमूना लीजिये —

"सरस्वतीके बोर्डआफ यडिटर्स (सम्पादक समिति) का कथन है कि अप्पयदीक्षित महाराष्ट्रीय जातिके थे—" इसी प्रकारके छेड़-छाड़के शब्दोंके साथ 'सरस्वती'के अप्पयदीक्षित सम्बन्धी लेखकी भूलें दिखलाई हैं। सारांश यह कि कोई ६ महीने तक द्विवेदीजीकी 'भारतमित्र' पर

बड़ी कृपा रही और वह इसमें जब तब कुछ न कुछ लिखते रहे, जिसका परिचय हम ऊपर दे चुके हैं।

इन ६ महीनोंमें बहुत कुछ लिखा-पढ़ी चली, मेल-ममत्व दिखाया गया, पर बेखटके यह थोड़ा समय भी पार न हुआ। बीचहीमें कई विघ्न उपस्थित हो गये। २६ जनवरी सन् १६०० ई० के 'भारतमित्र'में आपका एक लेख छपा था, जिसका शीर्षक था—'हिन्दी-शिक्षावलीके तृतीय भागकी समालोचनाका परिणाम'। आपने 'हिन्दी-शिक्षावली'के तृतीय भागकी समालोचना छपवाई थी। इस लेखमें आपने उस समालोचनाका परिणाम दिखाया। अपनी आलोचनामें उक्त पुस्तककी भूलें दिखाई थीं, इस परिणाममें उन भूलोंकी पूंछ पकड़कर खेंची गई। शिक्षावलीकी भूलोंका आप यहां तक सुधार चाहते थे कि जो चीजें शिक्षावलीके संग्रहकर्त्ताओंने दूसरी जगहसे संग्रह की थीं, उनका जिम्मेदार भी वह उन्हींको ठहराते थे। 'खिलौना' नामकी एक पोथीसे उक्त शिक्षावलीमें कुछ उद्धृत हुआ था, उसमें भी आपने भूलें दिखा डालीं। आपने लिखा—"खिलौना नामक पुस्तकके कविने एक चरणमें २६ और दूसरेमें २८ मात्रा जड़ दी हैं। देखिये—'ढम ढमाढम ब्याह गिलहरीका है सुनिये आज, आसन पोथी लेके चलिये पांड़ेजी महाराज।' ढम ढमाढमके पहले 'ढ' को दीर्घ और महाराजके 'हा' को ह्रस्व करनेसे क्या छन्दकी शोभा क्षीण हो जाती? हिन्दी शिक्षावलीके रचने, शोधने और प्रकाश करनेवालोंका शुद्धताकी ओर कितना ध्यान है, यह इस पद्यसे विदित है।"

यह बात द्विवेदीजीने कितनी नरमी और कितनी मधुरतासे समझाई है, इसकी ओर पाठक ध्यान देंगे। क्योंकि दूसरोंसे द्विवेदीजीके तरफदार बड़े मधुर और शिष्ट बर्तावकी आशा रखा करते हैं। 'खिलौना' लिखनेवालेके मित्रोंमेंसे रामभजराम नामके एक सज्जनने ५ फरवरीके 'भारत-मित्र'में इसपर कुछ अलोचना की, उनके लेखमेंसे हम कुछ पंक्तियां उद्धृत

कर देते हैं—"२६ जनवरीका भारतमित्र पढ़नेसे मालूम हुआ कि पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी आजकल खूब धमार्थ परिश्रम करते हैं। जिस प्रकार वह पहाड़ खोदकर चूहेका बच्चा निकाल रहे हैं, वह उन्हींका काम है। प्रयागकी टेक्स्ट बुक कमेटीका सौभाग्य है कि उसके मनों भूसेको उड़ाकर दो-चार गेहूंके दाने दिखला देनेवाला एक आदमी बेकौड़ी-पैसे मौजूद है।

× × × ×

× × तलाश करने जाओ तो संशोधक लोग बड़ी मुश्किलसे मिलें सो भी गांठके टके खर्चने पर। यहां बेदाम काम होता है। यह भी एक अच्छा तमाशा है × × किसीकी संग्रह की हुई पुस्तकमें अन्य पुस्तकोंसे कुछ अंश उद्धृत किये जायं, तो संग्रहकर्त्ताको उसमें संशोधन करनेका क्या अधिकार है, यह द्विवेदीजी बतावें ? कबीरकी पोथीमेंसे, दादूकी पोथी-मेंसे, नानककी पोथीमेंसे यदि कोई कुछ संग्रह करे, तो उसको, उसके संशोधनका क्या अधिकार है। कबीर कहता है—

अलख-पलकमें खप गया, निरंजन गया बिलाय।
अवगत भजूं तो गत नहीं, भजूं कौन सो लाय॥
थकत-थकत जग थाकिया, थाका सबही खलक।
देखत नजर न आइया, हारि कहा अलख॥

अब गिनें जरा द्विवेदीजी महाराज इन दोहोंकी मात्रा और कर इनका संशोधन। और बतावें हमको, कि क्या हक है उनको इनके संशोधन करनेका।

'खिलौना' लिखनेवालेने बच्चोंके पढ़नेके लिये गिलहरीका ब्याह लिखा, बच्चोंकी कविता और बन्दरका ढोल, जीमें आया जैसे बजाया और मनमानी तान तोड़ी। 'हिन्दी शिक्षावली' वालेको क्या अधिकार है, जो उसका संशोधन करे? × × × अथवा द्विवेदीजीको यह

विचारना चाहिये था कि बनानेवाला निरा मूर्ख ही न होगा। बच्चोंके लिये कविता बनाई है, उसमें एकआध मात्रा टूट जाय, तो कौन बड़ी बात है? घरकी दाई या दादी, नानीके समयकी कोई कहानी, द्विवेदीजीको अवश्य याद होगी—'कहांकी बुढ़िया कहांका तू, चल मेरे रहटा चहरक चूं'—की मात्रा गिन तो डालिये और जरा 'तू' और 'चूं' का काफिया भी तो देखिये। आप तो अंगरेजीके पण्डित हैं, बच्चोंकी प्रकृतिको पहचानते हैं, फिर क्या आप नहीं जानते कि खिलौनेवालेने बच्चोंकी तबीयतका खयाल रखकर उनके Rhymes को उनके मिजाजके माफिक रखा है। एक जगह उसी 'खिलौना' पोथीमें आंखके साथ फांकका काफिया बांधा गया, तो क्या 'खिलौना' बनानेवाला इतना मूर्ख है कि उसे क-ख की भी खबर नहीं? परन्तु जो जरा भी समझके देखेगा, तो समझ जावेगा कि माता बच्चको गोदमें लिये लोरी दे रही है। किसी कविकी जोरू नहीं है, उस बच्चेकी माता है। इसीसे अल्ल-बल्ल उसके जोमें आता है, सो कहती है।"

२६ फरवरीके अङ्कमें "रामभजनको दक्षिणा" लिखकर द्विवेदीजीने उसका उत्तर दिया है। जरा आपके खयालकी दौड़ देखनेके योग्य है—"पटना-निवासी बाबू पत्तनलालकी किताबोंपर हमारा एक लेख कुछ दिन हुए 'भारतमित्र'में प्रकाशित हुआ था। इसीसे चिढ़कर जान पड़ता है, रामभजरामजी गोमुखीको सिरहाने रखकर ५ फरवरीके 'भारतमित्र'में 'शिक्षावली'की समालोचनाके विषयमें भवति न भवति करनेको उतारू हुए हैं। रामभजनजीने अपना नाम न देकर छिपेही छिपे 'ओंनमोभगवतेवासुदेवाय'का माला फेरा है।" आदिसे द्विवेदीजीकी यह समझ है कि आप जिस किसीके लिये जो चाहें सो लिखें, उसका कारण तलाश करनेकी जरूरत नहीं; पर आपके लिये जब कोई कुछ लिखता है, उसका जरूर एक न एक कारण होता है। इससे रामभजनने

जो कुछ लिखा, वह पत्तनलालजीका बदला लेनेके लिये लिखा। पत्तनलालकी कथा सुनकर पाठक हंस पड़ेंगे। पत्तनलाल पटना-निवासी एक सज्जन हैं। उन दिनों उन्होंने दो कविताएं ऐसी लिखी थीं, जो पण्डित श्रीधरजी पाठककी दो कविताओंका अदल-बदल जान पड़ती थीं। सबसे प्रथम हमनेही उन पुस्तकोंकी आलोचना करते हुए पत्तनलालके इस कामकी निन्दा की थी। पीछे स्वयं पण्डित श्रीधरजीने भी उसपर एक लेख लिखा। तब हमारे द्विवेदीजीको भी जोश आया। आपने भी एक लेख लिखकर पत्तनलालको फटकारा। पर रामभजन रामका मसखरापन देखिये कि उनने न तो भारतमित्र-सम्पादकको कुछ कहा और न श्रीधरजीका सामना किया, अपने मित्र पत्तनलालका बदला लेनेके लिये सीधा द्विवेदीजीसे लड़ पड़ा! हम आशा करते कि अब तो सब लोगोंको इस बातके समझनेमें कुछ दिक्कत न रह जायगी, कि जो आदमी द्विवेदीजीका मुकाबिला करता है, उससे कुछ न कुछ लाग-डाट बताना आपकी पुरानी आदत है और उसके नामको कल्पित समझना भी आपकी पुरानी समझ है। जिस समय रामभजराम और द्विवेदीजीकी यह लिखा-पढ़ी हो रही थी, उस समय अचानक द्विवेदीजीकी एक निजकी चिट्ठी भारतमित्र-सम्पादकके नाम आई। उसका भाव यह था कि पण्डित श्रीधर पाठक कहते हैं कि 'खिलौना' आपने बनाया है। यदि मैं यह जानता कि वह आपका बनाया हुआ है, तो उसकी कभी वैसी आलोचना न करता। पर आपने यह बात मुझे न बताकर मेरी आलोचनाकी कड़ी आलोचना लिखी, यह मित्रताके व्यवहार-से दूर बात है। यहांसे उत्तरमें लिखा गया, कि आपकी कृपाका धन्यवाद है। पर इस बातसे सहमत नहीं हो सकते कि मित्रोंकी पुस्तकोंकी आलोचना और प्रकार हो और जो मित्र नहीं हैं, उनकी और प्रकार। आलोचना न्यायसे होना चाहिये उसमें मित्रताकी जरूरत

नहीं। साथ ही यह भी लिखा गया कि वह लेख अपना न था और का था। यदि आपने इससे कुछ रंज माना हो, तो क्षमा कर दीजिये। हमारी समझमें तो मामला रफा-दफा हो गया था, रंजकी कुछ बात न रही थी। उसके बाद कुछ दिन तक आप भारतमित्रमें लिखते भी रहे थे। यदि इसीको द्विवेदीजी ६ साल पहलेकी दुश्मनी समझते हों, तो उनकी जबरदस्ती है। और कोई बात हो, तो कृपा करके वह बतावें ?

---

(५)

नेकनजर और नेक नीयती

गत ५ मईके अङ्कमें हमने लिखा था कि रामभजराम और द्विवेदीजीकी लिखा-पढ़ी फरवरी सन् १६०० तक समाप्त हो गई थी और उसके बाद २१ मई, सन् १६०० ईस्वी तक द्विवेदीजी भारतमित्रमें लिखते रहे थे। उस समय इस मामूली लिखा-पढ़ीका कुछ भी मैल उनके जी पर न रहा था। इसका और भी अधिक प्रमाण हमें मिला है। सन् १६०१ का 'भारतमित्र'का फाइल देखा, तो जान पड़ा कि उस वर्ष भी द्विवेदीजी 'भारतमित्र'में लिखते रहे। उस सालकी १६ जनवरी, १६ फरवरी, २३ फरवरी, १६ मार्च, ३० मार्च, ६ अप्रैल और १३ अप्रेलके अङ्कोंमें उनकी 'कुमार सम्भवसार' वाली कविता छपी है। इससे स्पष्ट है कि रामभजकी लिखा-पढ़ीके सवा साल बाद तक द्विवेदीजीकी लेखनीकी इस पत्रपर कृपा थी। अब यह कहनेकी जगह नहीं है कि हमसे उनसे कुछ दुश्मनी थी। पर द्विवेदीजी कहते हैं—

"आपकी बड़ी नेक-नीयती नई नहीं, ६ वर्षकी पुरानी है। जब उसका वेग बढ़ जाता है, तब वह, समय-समय पर कभी लेख, कभी नोट, कभी तसवीर आदिके रूपमें बाहर निकल कर आईनेके समान आपके साफ दिलको हलका कर दिया करती है।"

आईनेके समान साफ-दिल हलका क्योंकर होता है, यह बात तो द्विवेदीजीके समझाये बिना हमारी समझमें आनेकी नहीं, बाकी उनका मतलब हम 'समझ गये। अप्रैल १६०१ ई० तक की सफाई हम पेश कर चुके हैं। "६ वर्षकी पुरानी नेक-नीयती" कोई ५ वर्षकी रह गई। उसकी सफाई हम और पेश करना चाहते हैं। द्विवेदीजी इस पत्रमें लिखा करते थे, वह कृपा उन्होंने कम करदी, इसका कारण हमने बहुत तलाश किया, कुछ न मिला। रामभजवाले झगड़के बाद फिर 'भारतमित्र'में उनपर किसी प्रकारकी लिखा-पढ़ी भी नहीं हुई। फिर नाराजीका क्या कारण ? दुश्मनीका क्या कारण ? बहुत याद करनेसे एक बात हमें स्मरण हुई। वह यह है कि एक-आध बार हमने उनके भेजे हुए लेख कुछ विशेष कारणोंसे नहीं छापे। आपका एक लेख था— "किसने किससे होली खेली" उसमें लिखा था—"बूरोंने अङ्गरेजोंसे होली खेली, अमुकने अमुकसे होली खेली।" हमने लिखा कि यह लेख आपकी शानके लायक नहीं हुआ। आपने वापिस मंगवा लिया, हमने भेज दिया। हम समझे थे कि "जो कुछ लिखे छपाये सिद्ध, और नहीं नामही प्रसिद्ध" से द्विवेदीजीको नफरत है। उस लेखको आप फाड़कर फंक देंगे। पर हमने कई दिन बाद एक हिन्दी अखबारमें (शायद "हिन्दोस्थानमें") देखा कि वह लेख छप गया है।

फिर एक कविता उनकी आई थी, उसका शीर्षक शायद—"मांसाहारीकोहंटर" था। हमने उनको कहा कि यद्यपि हमलोग मांसखानेवालोंमें नहीं हैं, तथापि आपने जिन शब्दोंमें मांसखानेवालोंको याद किया है, वह अच्छे नहीं हैं, फिर भी आप तो एक ऐसी जातिके हैं जिस जातिके लोग मांस खाते हैं। इससे आप इस लेखकी नजरसानी कर लीजिये। एक और कविताकी बात हमें याद पड़ती है। उसका शीर्षक 'बलीबर्द' था। 'काव्यमाला'में एक संस्कृत कविता छपी थी। किसी कविने

वह नागपुरके राजा लोगों पर उनकी कंजूसीके कारण लिखी थी। कविने अपने भैंसेकी महिमा वर्णन करते हुए राजाकी हजो की थी। 'हिन्दी प्रदीपमें' भी उस पर एक लेख छपा था। बलीवर्दको उस भैंसेकी महिमा मेंसे कुछ महिमा द्विवेदीजीने अर्पण कर दी थी। भैंसेवाले कविने अपने भैंसेकी एक खास तारीफ की थी। द्विवेदीजी अपने 'बलीबर्द'के लिये उस तारीफका लोभ संवरण न कर सके। हमने उनको लिखा कि इन उपमाओंमें सभ्यता जरा आंख दिखाती है। इस पर वह कविता भी द्विवेदीजीने वापिस मंगवाली। फिर कहां छपवाई, कुछ याद नहीं। पर उनकी 'काव्यमंजूषामें' शायद वह है।

और एक बात है। 'नैषधचरितचर्चा' नामकी पोथी द्विवेदीजीने हमारे पास कोई दो तीन दफा भेजी और उसकी आलोचनाके लिये आज्ञा की। कई कारणोंसे यह आज्ञा हमसे पालन न हो सकी। यह कई एक बातें हैं, जिनसे द्विवेदीजी शायद हम पर कुछ अप्रसन्न हों और शायद इन्हीं बातोंसे उन्होंने 'भारतमित्र'में लिखना बन्द कर दिया हो। नहीं तो और कोई कारण हम उनसे लड़ाई या शत्रुताका नहीं पाते। हम आशा करते हैं कि ऐसे तुच्छ कारणोंको उनके सदृश उदार पुरुष दुश्मनीमें नहीं लासकते।

अब हम फिर 'सरस्वती' की बात छेड़ते हैं। प्रथम वर्ष उसको काशीके पांच सज्जन मिलकर सम्पादन करते थे। दूसरे और तीसरे वर्ष उन पांचमेंसे एक बाबू श्यामसुन्दरदास उसके सम्पादक रहे। चौथे सालसे 'सरस्वती' द्विवेदीजीके हाथमें आई। इससे पहले 'सरस्वती'के साथ छेड़-छाड़ करनेमें हम और द्विवेदीजी बराबर थे। पर अबसे केवल हमारी छेड़ रह गई, उनकी मिट गई और 'सरस्वती'से छेड़ करना मानो उनसे छेड़ करना हो गया।

'सरस्वती'का जनवरी १९०३ ईस्वीका नम्बर द्विवेदीजी द्वारा

सम्पादित होकर निकला। उसकी आलोचना ३१ जनवरी १६०३ के भारत-मित्रमें की गई। आलोचनाका जरूरी अंश हम नीचे उद्धृत कर देते हैं।

"इस नम्बरमें एक आधके सिवा सब लेख सम्पादकके प्रतीत होते हैं। ढंग अच्छा है। 'विष्णुशास्त्री चिपलूणकर' नामका लेख सुन्दर और सुपाठ्य है। पर 'सरस्वतीका विनय' नामकी कविता भद्दी हुई है। बाबू श्यामसुन्दरदास कविताका ज्ञान नहीं रखते थे, उनके समयमें भद्दी कविताका छपना दोषजनक न था। पर द्विवेदीजी नामी कवि हैं, कविताका मर्म्म जाननेवाले हैं, उनके होते ऐसी कविता क्यों छपी ?

सरस्वतीके इस नम्बरके अन्तिम पृष्ठ पर एक चित्र छपा है, उसमें दिखाया है कि एक विना पूंछका हनुमान गदा हाथमें लेकर कविता कुटुम्बका मुख चूर कर रहा है। 'व्यङ्ग' 'अक्षर' 'मैत्री' 'अर्थ' 'अलंकार' और 'सरसता' सबको ध्वंस किये डालता है—'अनेक उपाधिधारी समस्या पूरक कवि' पर इतनी चोट होने पर भी उसी नम्बरमें जो कविता छपी है, उसका नमूना लीजिये—

'यद्यपि वेश सदैव, मनो मोहक धरती हूं।
बचनोंकी बहु भांति, रुचिर रचना करती हूं।
उदर हेतु में अलम नहीं तिस पर पाती हूं।
हाय ! हाय ! आजन्म दुख सहती आती हूं।

बालिका सरस्वती कहती है कि मैं वेश भीं बड़ा जी लुभानेवाला बनाती हूं और बातें भी बहुत मीठी-मीठी कहती हूं, तिसपर भी खानेको पूरा नहीं पाती। हाय ! हाय कैसी जन्मकी दुःखिनी हूं।

शिव ! शिव ! इसका नाम कविता है ! क्या भावके सिर पर वज्र गिराया है। क्या सरस्वतीको बाजारी स्त्री बनाया है। यदि कविताकी फौजदारी अदालत बैठे, तो ऐसे कविको फांसीकी सजा दे

और यदि अदालत न्याय न कर सके, तो ऐसी कविता छापनेके अनुपातमें सम्पादक आत्महत्या करले।"

पण्डित गंगाप्रसादजी अग्निहोत्रीने यह न समझकर कि ऊपर लिखी कविताका भाव कैसा खराब हो गया है, अपनी ओरसे इसका यों तरजमा किया—"सरस्वती-पत्रिकाके सञ्चालक तथा सम्पादक उसको कागज, स्याही, अक्षर, चित्र और गम्भीर भाव-गर्भित लेख आदिसे परिपूर्ण करनेके लिये कोई बात उठा नहीं रखते हैं, तथापि जबसे उन लोगोंने उक्त पत्रिकाको प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है, तबसे उन लोगोंको हानिही उठानी पड़ी।" हमने इसके उत्तरमें लिखा—

"यदि उस कविताके कविका यही भाव है, तो यही वाक्य ज्योंका त्यों लिख देना उचित था, यदि तुकबन्दी करनी थी तो यों करते—

सरस्वतीके जो हैं सम्पादक सञ्चालक।
सच्चे जीसे हैं इसके पक्के प्रतिपालक॥
देकर कागज-स्याही अक्षर चित्र मनोहर।
और लेख गम्भीर भावगर्भित सुन्दर तर॥
चित्त लगाकर इसको हैं वह खूब चलाते।
हाय बिचारे तिस पर भी हैं घाटा पाते।"

हमने और लिखा था—"कविने सरस्वतीको बालिका बनाकर विनयके लिये खड़ा किया है। उसके मुखसे वैसेही शब्द निकलना उचित हैं, जो हिन्दु-कुल-कन्याके लिये उचित हैं। कन्या चाहे कङ्गाल हिन्दूकी हो, चाहे भाग्यवानकी, वह रूप और मीठे वाक्योंकी बिक्री नहीं कर सकती। यह काम वेश्याकी लड़कीका है। इससे उक्त कविता भद्दी ही नहीं है, कविका भद्दापन भी दिखाती है।

आंग्ल-भाषाके बिद्वत् चूड़ामणियोंसे 'भारतमित्र'का द्वेष नहीं है। भारतमित्रमें अच्छे-अच्छे अंगरेजी पढ़े विद्वानोंकी कविता छपती रहती हैं।

पर जो दोष है, क्या कोई उसे दोष न कहेगा ? यदि आंग्ल भाषाके विद्वत् चूड़ामणि होनेसे ही सब दोष दूर हो जाते हैं, तो सरस्वतीके वर्तमान सम्पादक द्विवेदीजीने लाला सीतारामपर क्यों किताबें लिख डाली हैं ? लाला सीताराम ही क्या, संस्कृतके बड़े-बड़े गड़े हुए पण्डितों की कबरें खोदकर वह उनकी दाढ़ी-मूंछें क्यों नापते हैं ?

× × × × और कृपा करके इतना आप बताइये कि 'विमल बी० ए०' पासका क्या अर्थ ? सरस्वतीकी उसी संख्यामें लिखा है—

मातृ भाषाके प्रचारक

विमल बी० ए० पास।

'विमल बी० ए० पास' कौनसी परीक्षाका नाम है ?"

१९०३ के फरवरी और मार्च मासकी 'सरस्वती' एक साथ निकली थी। उक्त संख्यामें एक चित्र है, जिसका शीर्षक है—"साहित्य समालोचना।" उसमें एक साहित्य सभा बनाई गई है। उसमें ९ कुर्सियां लगाई गई हैं। पहली-दूसरी इतिहास और जीवन-चरितकी कुर्सियां खाली हैं। तीसरी कुर्सी पर्यटनकी है। इसपर एक गोल टोपीवाले बाबू बिठाये गये हैं, जो अचकन-सदरी पहने हुए हैं। उन्हीं दिनों एक सज्जन अपना पर्यटन बहुत लम्बा चौड़ा लिख चुके थे, उनकी तसवीर भी उनकी पोथीमें छपी थी। साहित्य सभाकी तीसरी कुर्सीपर जो बाबू बिठाये गये हैं, उनकी तसवीर उस पर्यटन लिखनेवालेकी तसवीरसे बहुत मिलती है। मालूम होता है कि तीसरी कुर्सीपर उन्हींको जलील करनेके लिये बिठाया है। पांचवीं कुर्सी उपन्यासकी है, उसपर एक लम्बी दाढ़ी और बड़े पेटका बाजीगर हाथमें डुगडुगी और लकड़ी लिये और अपने बकरे और बन्दरकी रस्सी थामे दण्डायमान है। छठी कुर्सीपर एक विरहा गानेवाले गंवारकी तसवीर है। यह मूर्त्ति व्याकरणवालोंकी बनाई गई है। सातवीं कुर्सी काव्यकी है, उसपर एक लखनौआ, शौकीन लाला,

झब्बेदार टेढ़ी-टोपी लगाये छड़ी हाथमें लिये, लम्बी जुर्राबें और गुरगा-बियां पहने, टांगे लटकाये, मुंहपर हाथ धरे बैठे हैं। यह तसवीर लखनवी भड़वोंकी तसवीरोंसे मिलती है। आठवीं कुर्सीपर—एक अकालके मारे भूखे बैसवाड़िया दादासे बैठे हैं। आपकी चोटी लटक रही है, सिरपर एक विलक्षण पगड़ी है। शरीरकी सब हड्डियाँ गिनी जाती हैं। हाथमें भीख मांगनेकासा लोटा है। यही मालूम होता है कि तीन चार फसलें इनकी खराब हो गईं, बीज भी वसूल नहीं हुआ तब भीख मांगनेको आ बैठ हैं। यह नाटककी कुर्सीपर बैठ हैं। कोपकी नवीं कुर्सी खाली है।

चौथी कुर्सीकी बात हम छोड़ गये, वह आलोचनाकी है। उसपर एक बन्दर विराजमान है। उसकी खूब लम्बी कलशदार टोपी है। जांघिया और सदरी पहने हुए है, दुम बगलमें दबा रखो है, बाएं हाथमें दर्पण लिये उसमें अपने मुखचन्द्रका दर्शन कर रहा है। उसके पास खड़ी सरस्वती रो रही है। वीणा और पोथी फेंक रखी है और दोनों हाथ मुंहपर रखे हैं। सरस्वतीकी इस तसवोरपर २५ अप्रैल, १६०३ के 'भारतमित्र'में एक आलोचना हुई। आलोचनाके ऊपर साहित्य-सभाकी आलोचनावाली कुर्सी नम्बर ४ के बन्दरकी तसवीर है और उसके नीचे यह नोट है—

"सरस्वतीकी फरवरी और मार्चकी संख्यामें साहित्य-सभावाली तसवीर बहुत बढ़िया बनी है। सभामें ६ कुर्सियां हैं, उनमें से चौथीपर समालोचना-रूपी महावीरजी विराजमान होकर दर्पणमें अपना मुख-चन्द्र निहार रहे हैं। यह तसवीर बहुत पसंद आई, इसीसे इसका विशद चित्र बनाकर पाठकोंको भेंट देते हैं। एक मित्रने चित्र देखकर कहा कि सरस्वतीजी सभामें रोती हैं, वह आप ही का मुंह देखकर। बेचारीने डरसे मुँह छिपा लिया।

भारतमित्रकी इस आलोचनामें एक मीठी दिल्लगी है। सरस्वती-

सम्पादकने नाटकको भूखा-सूखा बाह्मन बनाया है, पर हिन्दी नाटकोंसे एकदम खाली नहीं है। हरिश्चन्द्र, प्रताप, अम्बिकादत्त, श्रीनिवासदास, लक्ष्मणसिंह, सीताराम और दूसरे सज्जनोंके अनुवादित और रचित नाटक हिन्दीमें बड़े आदरकी वस्तु हैं।

काव्य तो हिन्दीमें ऐसा मौजूद है कि दूर-दूर तक इज्जत होती है। व्याकरण भी हिन्दीमें बुरे नहीं हैं। उपन्यासोंकी अभी बेशक कमी है। पर द्विवेदीजीने कृपापूर्वक सबको एकही लाठी हांका है। पर समालोचनाका बन्दर जो आईनेमें अपना चन्द्रानन आप देख रहा है, न जाने द्विवेदीजीने क्या समझकर बनाया। हिन्दीमें समालोचक तो वह स्वयं ही हैं। समालोचनाकी उन्होंने पोथियां तक लिखडाली हैं। फिर आपका नाम भी महावीर है, इससे समालोचनाकी कुर्सी पर वह स्वयं बैठे हुए आईनेमें अपना मुंह देख रहे हैं और सरस्वती उनकी यह अद्भुत लीला देखकर रो रही है! द्विवेदीजी दूसरोंको बनाने चले थे, पर स्वय बन गये। यही भारतमित्रने उनको समझाया!

अब द्विवेदीजी स्वयं न्याय करें कि उनकी कविताका एक दोष दिखाना और एक ऐसी दिल्लगीमेंसे जो उनकी ओरसे सब हिन्दीवालोंके साथ बड़ी बेदर्दीसे की गई है, उन्हींकी दिल्लगी निकाल देना क्या शत्रुता करना है? आप सारे जमानेको छेड़ने निकले हैं, ऐसी दशामें कोई आपको छेड़ बैठे तो उससे आप नाराज क्यों हों?

---

(६)

आत्मारामकी आलोचना।

पिछले लेखोंमें हम यह दिखा चुके हैं कि कभी लेख, कभी नोट, कभी तसवीर आदिके रूपमें हमने अपनी क्या नेकनीयती बाहर निकाली। इस सम्बन्धकी जितनी जरूरी बातें थीं, उनका सार हम दिखा चुके। और भी दो-चार बातें तलाश करनेसे निकल सकती हैं, पर

उनके लिये बहुत खोज करनेकी जरूरत नहीं है। जो लिखा जा चुका है, वही यथेष्ट होगा। हमारे द्विवेदीजी आलोचनासे नाराज नहीं हैं। नये-पुराने सबकी आलोचना करना आप अच्छा समझते हैं। भेद केवल इतना ही है कि अपनी आलोचना शांतिसे नहीं सुन सकते। एक बार आपने शृंगार-रसकी कविता पर एक लेख लिखा था। उसमें लिखा था कि केवल ब्रजभाषाके कवि ही राजाओंके रुपयोंके लोभसे शृंगार-रसकी कविता करते थे। बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंके कवियोंने वैसी कविता नहीं की। हमने उनका यह लेख पढ़कर दिखाया था कि गुजराती और मराठीकी बात तो हम कह नहीं सकते, पर बंग-भाषामें शृंगार-रसकी कविता ढेरों मौजूद है। कुछ कविता हमने 'अमृतबाजार पत्रिका' के वृद्ध सम्पादक बाबू शिशिरकुमार घोषकी संग्रह की हुई पोथियोंसे उद्धृत भी कर दी थी। साथही यह भी बता दिया था कि शिशिर बाबूने यह पोथियां किसी राजासे इनाम पानेके लिये संग्रह नहीं कीं। हम आशा करते हैं कि हमने जो द्विवेदीजीको उनकी एक मोटी भूलसे आगाह कर दिया, इसका यदि उन्होंने कुछ गुण न माना हो, तो इसे शत्रुता भी न समझा होगा।

इसी प्रकार एक मराठी लेखका अनुवाद छापते हुए द्विवेदीजीने कहा था कि महाराष्ट्र लोगोंने ही हिन्दीको राष्ट्र भाषा बनानेकी ओर ध्यान दिया है। बंगालियोंने इधर कुछ ध्यान नहीं दिया। इसपर हमने पुराने 'बङ्गदर्शन' से दिखाया था कि लगभग ३० वर्ष पहले 'बङ्गदर्शन' में ऐसे लेख निकल चुके हैं, जिसमें बंगाली विद्वानोंने हिन्दी भाषाको राष्ट्रभाषा बनाने पर जोर दिया है। अपनी समझमें हमने एक पुरानी बात खोजकर प्रकाशित करनेमें अच्छा ही काम किया। हम नहीं समझ सकते कि उसे भी कोई दोषका काम क्योंकर बता सकता है?

अब हम आत्मारामजीकी आलोचना पर दो-चार मोटी-मोटी बातें

कहना चाहते हैं। हम अफसोस करते हैं कि आत्मारामके लेखोंको द्विवेदीजीने भाषा और साहित्यकी दृष्टिसे नहीं पढ़ा,—हिन्दीमें एक उच्च श्रेणीका सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण बनानेकी दृष्टिसे नहीं पढ़ा। उनको पढ़ते समय आपको ६ साल पहलेकी नेकनीयतीका खयाल तो आया, पर उस लेखमें क्या लिखा है, इसका जरा भी खयाल न आया। द्विवेदीजीके इस विचारसे उनके भक्त और साथियोंके विचार भी उन्हींकी पैरवी करने लगे और सब मिलकर यह कहने लगे कि लेख द्वेषसे लिखा गया है, द्विवेदीजीकी भूलें पुरानी दुश्मनी निकालनेके लिये दिखाई गई हैं। आपके असली उद्देश्यको धूल उड़ाकर छिपाया जाता है। विनय यह है कि द्विवेदीजीका असली उद्देश्य क्या था ? दो-चार बार आपने और आपके मित्रोंने लिखा है कि आपका उद्देश्य हिन्दीमें एक सर्वाङ्ग सुन्दर व्याकरणकी जरूरत दिखाना है। बहुत ठीक है। आत्मारामने यह कहाँ, कहा है कि ऐसा व्याकरण न बनना चाहिये ? हिन्दी तो क्या अंगरेजीमें भी यदि कोई सर्वाङ्ग सुन्दर नया व्याकरण बनावे, तो क्या कोई मना करता है ? सब भाषाओंमें व्याकरण पर व्याकरण बनते चले आते हैं, कोई रोकता तो नहीं।

क्या द्विवेदीजीको आत्मारामने व्याकरण बनानेसे रोक दिया है ? यदि नहीं, तो आपके उद्देश्यको उन्होंने धूलमें छिपानेकी क्या चेष्टा की ? आत्मारामने दिखाया है कि जिन बातोंको लेकर द्विवेदीजी व्याकरणकी जरूरत साबित करने आये हैं, उनसे व्याकरणकी जरूरत तो कुछ नहीं साबित हाती। हाँ, कुछ नये-पुराने लेखकोंकी हजो उनके लेखसे होती है, चाहे उन्होंने जान बूझकर की हो, चाहे बेजाने। साथही यह भी दिखाया कि जो भूलें पुराने लेखकोंके लेखोंमें वह दिखाते हैं, उनसे व्याकरणका कुछ सम्बन्ध नहीं है। बकरीको यदि कोई 'वकरी' लिखे, तो व्याकरण इस दोषको कैसे दूर करेगा ? कहां 'ब' लिखना चाहिये,

कहां 'व' लिखना चाहिये, यह बात तो व्याकरण बतावेगा नहीं। बहुतसी भूलें लोग अभ्यास दोषसे करते हैं, बहुतसी कम्पोजिटरों और प्रूफ देखनेवालोंके हाथोंसे होती हैं। द्विवेदीजी इन सबको एकही श्रेणीमें लेते हैं। इससे व्याकरणका क्या सम्बन्ध है?

फरवरीकी 'सरस्वती'में आत्मारामकी बातपर नाराज होकर आप हरिश्चन्द्रजीके मुद्राराक्षस नाटककी भूलें दिखाते हैं। उनमें नवीं और दसवीं भूल इस प्रकार है—

(९) "दुण्ढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दोंमें मुख्य था। इसको दो स्त्री थीं।

(१०) एक दिन राजा दोनों रानियोंके साथ एक ऋषिके यहां गया।"

आपने पहले वाक्यमें "दो स्त्री" और दूसरेमें "दोनों रानियों" पर एतराज किया। आपका एतराज सुनिये—"नवें वाक्यमें "दो" के लिये 'स्त्री' एक वचन, पर दसवें वाक्यमें 'दोनों' के लिये 'रानियों' बहुवचन!"

मईकी 'सरस्वती' हमारे सामने है। इसके पहले पृष्ठके पहले कालममें ही द्विवेदीजी लिखते हैं—

(१) "पृथ्वीके पेटसे उनकी हड्डियोंको खोदकर उन्होंने उनकी ठठरी अजायब घरोंमें रख दी है।"

(२) "शरीर-शास्त्रके सिद्धान्तोंकी सहायतासे उन्होंने उन ठठरियोंसे उन पुरातन प्राणियोंके विषयमें सैकड़ों अद्भुत बातें जान ली हैं।"

पहले 'ठठरी' फिर 'ठठरियों' भाषा और व्याकरणके इतने बड़े दावेदार होनेपर भी द्विवेदीजी अभ्यास दोषसे भूल गये हैं। कोई नया व्याकरण उनका यह अभ्यास छुड़वा नहीं सकता। जिस अभ्यास बश हरिश्चन्द्र आदि इस प्रकार लिख जाते थे, वह अब भी एकदम दूर नहीं हो गया है। द्विवेदीजी जरा ध्यान करते तो देखते कि 'ठठरी' 'अजायब

घरों' में कैसे रखी जा सकती हैं। 'ठठरी' एक वचन 'अजायब घरों' बहुवचन ! उसी वाक्यमें आगे चलकर आप स्वयं 'ठठरियों' लिखते हैं। जब एकही 'ठठरी' रखी थी तो 'ठठरियों'का ढेर कहांसे निकाल लिया ? 'ठठरियों' बहुवचन है। व्याकरण यह बता सकता है कि 'ठठरी' एक वचन है और 'ठठरियों' बहुवचन, पर वह किसीको कहीं 'ठठरी' और कहीं 'ठठरियों' लिखनेसे रोक नहीं सकता। जो लोग इस प्रकारकी भूलोंमें पड़ते हैं, व्याकरण उनका कहां तक सुधार कर सकता है ?

द्विवेदीजीहीको लीजिये। भाषा और व्याकरणवाले लेखमें उनका एक वाक्य था—"इस तरहकी सारी त्रुटियोंको हम मुहाविरा नहीं समझते।" यह वाक्य एकदम गलत है। जो हिन्दी जानते हैं, वह इसकी बनावट पर हँसे बिना कभी नहीं रह सकते। पर द्विवेदीजी इसे बड़ा शुद्ध समझते हैं और इसकी शुद्धताका पक्ष करते हुए फरवरीकी 'सरस्वती'में बेतरह बिगड़े हैं। यह वाक्य इस तरह होना चाहिये था—"इस तरहकी त्रुटियां हम मुहावरेमें नहीं गिन सकते।" अथवा "इस तरहकी त्रुटियोंको हम मुहावरेमें नहीं गिन सकते।" पर द्विवेदीजी लिखते हैं—"त्रुटियोंको हम मुहाविरा नहीं समझते।" यह वाक्य उनका मुहावरेके खिलाफ है। ऐसी बोलचाल नहीं है। व्याकरणमें शक्ति नहीं है, जो भाषाके जोड़तोड़की इस प्रकारको भूलोंको बता सके। द्विवेदीजीके इस वाक्यमें "सारी" शब्द फालतू देखकर आत्मारामने नोट किया—"बल्कि लहंगा।" इसका मतलब यह था कि त्रुटियोंके पहले 'सारी' शब्दका जोड़ना फजूल है। द्विवेदीजीने उसके समझनेकी चेष्टा नहीं की। आपने समझा कि "सारी" शब्दहीको आत्माराम गंवारी समझता है, इसीसे आत्मारामके लेखमेंसे एक "सारी" निकालकर लाये और उसपर 'लहंगा' 'घाघरा' 'धोबिन' आदि कितनेही शब्द बिठाये।

यदि भाषाके जोड़-तोड़पर वह ध्यान रखा करें, तो उनको इ
सामान इकट्ठा करनेकी जरूरत न पड़ा करे। कठिनाई यह है कि
बातोंका व्याकरणसे सम्बन्ध नहीं, यह भाषाके जोड़-तोड़से स
रखती है। यही कारण है कि द्विवेदीजी जहां-तहां बहुतसे 'वह'
और 'को' बढ़ानेके तरफदार हैं। आत्मारामकी इन मीठी छेड़
अफसोस है कि आपने गालियां समझा, इसीसे उनके असली मतल
छोड़कर दूर चले गये। यहां तक कि जिस सभ्यताके आप बड़े पक्ष
हैं, इस झगड़ेमें यह भी आपने गंवा दी।

अधिक दिल्लगी आत्मारामने उन बातोंपर की है, जो असलमें
हैं और द्विवेदीजी उनको बहुत भारी समझते हैं। यदि एक ही श
उच्चारण दो प्रकार हो, तो इसमें कोई क्या कर सकता है? पर द्विवे
उसमेंसे भूलें निकालते हैं। जैसे आत्मारामके लेखोंमें 'ज़ुबान' 'ज
'ज़ुबांदानी' 'जबांदानी' 'जबानदानी' 'ज़ुबानदानी' मौके-मौकेसे
है। द्विवेदीजी इसपर भी एतराज जमाते हैं। ऐसी बातोंपर एत
जमानेवालेकी दिल्लगी न उड़ाई जाय, तो क्या किया जाय?
नावाकफियतसे दूसरोंकी सही चीजोंमें भूलें निकालना हंसी करा
कि नहीं? क्या व्याकरण ऐसा हुक्म लगा सकता है कि 'ज़ुबान'
कहो या 'जबान' ही कहो? इसी प्रकार 'जायंगे' 'जायेंगे' 'ज
तीनों बराबर बोले जाते हैं। इसमें से पहला बोलनेमें ज्यादा आ
और पिछले दोनों लिखनेमें। द्विवेदीजी इससे भी अप्रसन्न हैं।
अप्रसन्नतासे क्या हो सकता है? उनकी नाराजीसे तो इन ती
एक बन नहीं सकता। व्याकरण यह बता सकता है कि यह
बोले जाते हैं, इनको मिटा तो नहीं सकता।

द्विवेदीजीका खयाल है कि आत्मारामने उनपर खास चोटें क
पर ऐसा नहीं है। असलमें उन्होंने आपके लिखनेकी ढंगकी दिल्लगी

है। किन बातोंको द्विवेदीजी व्यक्तिगत चोट समझते हैं जरा सुनिये—

"हमारा देहातीपन, हमारा संस्कृत श्लोकोंका लासानी उच्चारण, हमारा बहुत तरहकी बातोंको फांक जाना, हमारा संस्कृतका अद्वितीय ज्ञान— न हमारे शरीरसे कुछ सरोकार रखता है, न हमारे कामोंसे। सरोकार शायद रखता है आपके शरीरसे।" नहीं महाराज! अप्रसन्न न हूजिये, वह सम्बन्ध रखता है आपकी लेख-प्रणालीसे। आप अपनी लिखी इन बातोंको फिर पढ़ लीजिये, इनमें आपपर व्यक्तिगत आक्षेप कुछ नहीं है, केवल आपकी लेख-प्रणालीपर नोक-झोक है। लासानी उच्चारणकी बाबत आप चाहें, तो कह सकते हैं कि उसका लेखसे कुछ सम्बन्ध नहीं, पर माफ कीजिये वह भी आपकी पढ़ने-लिखनेकी सीमासे बाहर नहीं है। पढ़ने-लिखनेको छोड़कर आपके किसी विशेष कामसे उसका सम्बन्ध नहीं है।

---

(७)

कुछ नमूने

फरवरीकी 'सरस्वतीमें' आत्मारामके लेखोंका उत्तर देते हुए पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने जिस भाषा और जिन शब्दोंसे काम लिया है, उसके कुछ नमूने हम नीचे दिखा देते हैं। हम द्विवेदीजीके कहनेका बुरा मानकर वह सब नमूने पेश करना नहीं चाहते। केवल यह दिखाना चाहते हैं कि जो लोग सभ्यता और शिष्टताके आदर्श बनना चाहते हैं, वह जब कभी स्वयं सभ्यता और शिष्टतासे दूर हटने लगते हैं, तो कहां तक हट जाते हैं।

शिष्टता

द्विवेदीजी फरमाते हैं—"उदाहरणके लिये पण्डितजीके एक चेले

(हमारे समालोचक शुक्राचार्यके आत्मरूप) को देखिये। आपको पण्डितजीने बहुत दिन तक राम राम रटाया, पर आपकी रायमें हमारा लेख बिलकुल ही कूड़ा-कर्कट है × × ×

खैर, इतनी ही हुई कि समालोचना समरके ऐसे नेपोलियन समालोचकोंके गुरुदेवने हमारे लेखको वैसा नहीं समझा।"

"अपने पहले लेखमें भाषाकी नश्वरताका जिकर करते समय हमने संसारकी नश्वरताका नाम ले लिया, इसपर वाजिदअलीशाहके मकतबके एक जुबादांको गश आ गया।"

"और तो जो लोग ज्ञानलवदुर्विदग्ध हैं, ईर्षा-द्वेषसे जिनका जी जल रहा है, उनको बृहस्पतिके बापकी भी बातोंमें पूर्वापर विरोध और संदिग्ध भाव देख पड़ेगा।"

"उत्तर समालोचनाओंका दिया जाता है, प्रलापोंका नहीं। जिसे जुबांदानी, कवायददानी और जुबांदानीकी मोहबतसे मिले हुए ज्ञानीपनका त्रिदोष ज्वर चढ़ा हुआ है, उसकी कल्पनाओंका उत्तर ही क्या? कुत्सापूर्ण-निस्सार वर्णनका भी क्या कोई उत्तर होता है?"

"इसी तरह महाप्रलय तक चले जाइये और फिर वहांसे विपल, पल और दण्डोंसे शुरू करके महाप्रलय तक तेलीके बैलकी तरह अनवरत चक्कर लगाया कीजिये। समालोचक-शिरोमणे! आपने जिस घरमें अपनी आत्माका डेरा डाला है, उसकी पहले खबर लीजिये, तब दूसरों को जुबांदानीका सबक सिखाइये।"

सभ्यता

'गवर्नमेंटको चाहिये कि इस 'को-के-की' के मर्जके मरीजको बस्तीसे हटाकर दूर किसी झोपड़ेमें सेग्रीगेट करदे, नहीं तो सारी (इसे आप चाहे तो वाजिदअलीशाही सुथना समझ सकते हैं) दुनियामें इसी बीमारीके फैलजानेका बड़ा डर है।"

"मगज बढ़जानेका शायद यह फल हो, क्योंकि जिस इटालियन विद्वानने प्रतिभापर पुस्तक लिखी है, उसने मगजके बड़े हो जानेहीका नाम पागलपन रखा है।"

"लहंगा, नहीं-नहीं, बल्कि पंजाबका देहाती घाघरा। हमारा इरादा तो उसे ही रखनेका था, जिससे वह सितम पर सितम करता चला जाय, लेकिन कमबख्त धोबिनने धोखा दिया। वह उसे लेकर कंकरीले घाटपर धोने चली गई। × × × यह तो कहिये कि आपकी लिखा-पढ़ीकी सारी खोलकर घाघरा पहनाया जाय, या नहीं? प्रतापनारायण ऐसे वज्र देहातीने जिस रूहके कालिबको हिन्दी सिखाई, वह क्यों न लहंगेका तरफदार हो।"

गर्व

"इस लेखमें आज हम भाषाके सम्बन्धमें सिर्फ उसकी अनस्थिरता पर कुछ कहेंगे, फिर उसकी स्थिरताके साधनभूत व्याकरणके विषयमें हम थोड़ीसी विवेचना करेंगे। इसके सिवा और भी दो एक बातोंका हम विचार करेंगे। भाषाके विषयमें हम जो कुछ कहेंगे उसमें सिर्फ मैक्समूलरके मतका अनुकरण करेंगे। यह हम इसलिये कहते हैं, जिसमें हमारे विश्वविजयी समालोचक, जो सुरगुरु बृहस्पतिको भी अपने सामने कोई चीज नहीं समझते, मैक्समूलरके भाषा-विज्ञान नामक बहुत बड़े ग्रन्थको पढ़कर (अगर पढ़ सकते हों तो) इस लेखके साथ उसका भी खण्डन कर डालें।"

"जो इतना भी नहीं जानता कि जीव और जीवनमें भेद है या नहीं और है तो क्या है, जिसकी आंखें प्रकाशन और प्रकटनको देखकर दुखने लगती हैं, जिसकी समझमें 'ब' और 'व' का अन्तर अभी तक नहीं आया और जिसका पंचभूतात्मक प्रपञ्च भर्तृहरिका एक श्लोक सही-सही नकल तक नहीं कर सकता, उसका शब्दोंकी व्युत्पत्ति पूछना मानो

तीन दमड़ीकी दूकान रखनेवाले किसी बनिये बक्कालका जगत् सेठ राथ्स चाइल्ड या कारनेगीसे उनकी सम्पत्तिका हिसाब पूछना है।”

अप्रियवाद

“हां अगर हम हरियानेके देहाती होते तो बात दूसरी थी। × × न हम पंजाबके देहाती हैं, और न हम महा महादेहाती होकर नागरिक बनने और ज़ुबांदानीका लोलक लटकानेका दावाही रखते हैं, फिर हम आलोचना कर कैसे सकते हैं ?”

“यहां तक लिख चुकने पर हमें खयाल हुआ कि बाबू हरिश्चन्द्रके पूर्वोक्त वाक्य हमने लिख तो दिये, पर हमारे समालोचक चक्रचूड़ामणि उनकी अनस्थिरताको एक चुटकीमें उड़ा देंगे। वे फौरन ही कह देंगे कि देहली और लखनऊका बोल-चालही ऐसा है और काशीके पुराने लेखक घरहीमें बैठे-बैठे एक ज़ुबानसे देहली, लखनऊ और काशीकी बोलियां एकही साथ बोलते थे।”

हठ

हठमें भी द्विवेदीजी अपने सानी आप हैं। आप कहते हैं “हिन्दीके शब्द विचारमें हमारी समझमें यथासम्भव संस्कृत-व्याकरणसे सहायता लेनी चाहिये। संस्कृत व्याकरणके समान अच्छा और कोई व्याकरण दुनियामें नहीं।”

इतने पर भी आपकी— ‘अनस्थिरता” संस्कृत कायदे पर नहीं चल सकती। उसके लिये आप हिन्दीमेंसे ‘अन’ लाना चाहते हैं और ‘अनमिल,’ ‘अनदेखी’ ‘अनसुनी’ की मिसाल देते हैं। साथ-साथ उसको संस्कृतसे शुद्ध बनानेमें भी त्रुटि नहीं करते हैं। आप लिखते हैं—“अभी दिसम्बरके अखीरमें जब हम बनारसमें थे, एक दिन नागपुरके पं० माधवराम सप्रे बी० ए० और संस्कृत चन्द्रिकाके सम्पादक अप्पा शास्त्री

विद्यावागीश हमारे स्थान पर आये। विद्यावागीशजी संस्कृतके अद्वितीय पण्डित हैं। उनसे इस शब्दके विषयमें बातचीत हुई।

सप्रे महाशय भी उस समय थे। हमने उसे एक तरहसे इच्छित अर्थमें संस्कृतका शुद्ध शब्द साबित किया। उसे तो उन्होंने मानही लिया, पर उन्होंने एक और तरहसे भी उसे शुद्ध ठहराया।"

जो व्यक्ति हिन्दीका सुधार चाहता है, उसमें एक अच्छा व्याकरण देखा चाहता है, उसके हृदयकी यह लम्बाई-चौड़ाई देखनेके योग्य है! अपने अशुद्ध वाक्योंको शुद्ध बतानेका जिन लोगोंको इतना आग्रह है, वह व्याकरणका सुधार करने चले हैं! आश्चर्य है कि आप अपना एक शब्द न बदलेंगे और दुनियां आपके कहनेसे अपनी भाषा बदल देगी! आपका यही मोह छुड़ानेके लिये आत्मारामने आलोचना की थी।

परोक्तं नैव मन्यते

आत्मारामने बार-बार द्विवेदीजीसे यह कहा है कि आप छापेकी भूलोंको ग्रन्थकारकी भूल मत समझा कीजिये। इस सीधीसी बातके माननेमें भी आपको बड़ा कष्ट हुआ। बाबू हरिश्चन्द्रकी "नाटक" नामकी एक पुस्तकपर "रुग्नावस्था" शब्द छप गया है, द्विवेदीजी उसपर टिप्पणी करते हैं—"पर बाबू साहबका रुग्नावस्था शब्द या तो हिन्दी है, या अगर संस्कृत है तो महाभाष्यकी रूसे सही है या अगर नहीं सही है, तो बाबू साहब उसके जिम्मेदार नहीं, क्योंकि उन्होंने अपने लेखोंकी कापी दुबारा नहीं पढ़ी और प्रूफ पढ़नेका तो कुछ जिकर ही नहीं। बड़े ग्रन्थकारोंकी चालही यही है।" हमारी इच्छा तो न थी कि हम ऐसे कठोर वचन द्विवेदीजीको कहें, पर लाचार होकर कहना पड़ता है कि जिस आदमीकी यह समझ है, उसकी दवाही केवल आत्मारामकी लेखनी है। इस प्रकारकी समझ रखनेवालोंको आत्मारामी ढंगसेही उत्तर मिला करता है। क्या बाबू साहब 'रुग्न' और 'रुग्ण'को नहीं जानते

थे ? उनकी इतनी भारी भूल आपहीकी समझमें आई ? आप 'भारत-मित्र'से एक वाक्य नकल करते हैं—"इन सब दोषोंके दूर होनेको कोई उपाय नहीं ! है।" इस वाक्यमें श्रीमान् द्विवेदीजी'को' की भूल दिखाते हैं। भारतमित्रके सम्पादकको 'को' और 'का' का भेद आपकी समझमें मालूम नहीं। देहातसे जो लड़का किसी स्कूलमें पढ़ने आता है वह 'को' और 'का' की भूल बता सकता है, पर भारतमित्रका-सम्पादक इतनी भारी भूलको दूसरेके बताये बिना नहीं समझ सकता। द्विवेदीजीकी-सी लज्जा द्विवेदीजीकेही पास है ! आप धन्य हैं ! आपकी समझ धन्य है ! आप उस वाक्यके 'को' को कम्पोजिटरकी भूल मानने पर राजी नहीं !

आपकी खुशनसीबी है कि इण्डियन प्रस बहुत उत्तम छापता है, बहुत शुद्ध छापता है। नहीं तो प्रूफकी भूलोंके कितनेही हार, फूलोंके हारोंकी भांति आपको अपने गलेमें पहनने पड़ते। इतने पर भी भूल आपकी 'सरस्वती'में हो जाती हैं। फरवरीकी संख्याके ६१ वें पृष्ठपर "समामोचक" छपा है। अवश्यही यह प्रूफकी भूल है। ६२ वें पृष्ठमें 'करत समय' छपा है, जरूर वह 'करते समय' है। आपने एक जगह मरजको 'मर्ज' लिखा है। यह बेशक आपकी भूल है, प्रूफकी नहीं। जिक्रको 'जिकर' लिखा है, यह भी आपहीकी भूल है। इसमें पहली भूल पक्की भूल है और दूसरी कच्ची, क्योंकि हिन्दीवाले जिक्रको 'जिकर' लिख सकते हैं।

भाषाके इस प्रकारके नमूने द्विवेदीजीके फरवरीवाले लेखमें जहां-तहां मौजूद हैं। सबके उद्धृत करनेकी गुञ्जाइश नहीं। जो अंश लिख दिये हैं, वही द्विवेदीजीके लिये और सबके लिये काफी हैं। इन 'चिन्हों'के लिये द्विवेदीजीने संस्कृतका एक श्लोक उद्धृत किया था। हम उसको द्विवेदीजी जैसे योग्य पुरुषपर घटाना नहीं चाहते। वरञ्च कहना चाहते

हैं कि गुणीके पास आकर अवगुण भी गुण बन जाते हैं। इससे यही कहना होगा कि गर्व, दुर्वचन, हठ, अप्रियवाद आदि दोषोंके शुभ दिन आये कि उनको एक गुणी पुरुषने ग्रहण किया! अब उनकी गिनती अवगुणोंमें नहीं, गुणोंमें होगी।

भारतमित्र सन् १९०६ ई०

'अश्रुमती' नाटक

बङ्ग-भाषामें इस नामका एक नाटक है। यह छपकर बिकता भी है और साधारणतया नित्यके थियेटरोंमें खेला भी जाता है। इसपर इसके कर्त्ताका नाम भी छपा हुआ नहीं है, किन्तु इस पुस्तकके 'उत्सर्ग-पत्र' में जिसके नाम पुस्तक उत्सर्ग की गई है, उसे ग्रन्थकार 'भाई रवि' कहकर सम्बोधन करता है। हमने इस नाटकके कर्त्ताका पता लगाया, तो जान पड़ा कि वह कलकत्तेके प्रसिद्ध ठाकुर-घरानेके एक सज्जन हैं। उसी उत्सर्ग-पत्रमें जो तिथि दी है, उससे मालूम होता है कि इस पुस्तकको बने हुए २२ साल हो गये और इस २२ वर्षके समयमें वह सात बार छप चुकी है।

२२ वर्षसे यह नाटक बङ्ग-देशमें मौजूद है। इस देशके ग्रन्थकारों और आलोचना करनेवालोंकी दृष्टि इतने दिनोंमें भी इसपर नहीं पड़ी होगी, यह हमारी समझमें नहीं आता। फिर, हमने सुना है कि कितनी ही बार इस नाटकका खेल पबलिक-थियेटरोंमें हुआ है और यह भी सुनते हैं कि ठाकुर-घरानेके सज्जन जो अपने महलके भीतर निजके तौर पर नाटक खेला करते हैं, उसमें भी इस 'अश्रुमती' नाटकका अभिनय होता है। सुना है कि ठाकुर-घरानेके लोग इस नाटकके खेलनेके समय

स्वयं पात्र बनते हैं। ऐसी दशामें बङ्गदेशके पढ़े-लिखे और समझदार लोगोंको इस नाटककी बात मालूम न हो गई हो, ऐसा नहीं कह सकते।

केवल बङ्गदेश ही नहीं—यह नाटक बङ्गला पढ़े हुए हिन्दुस्तानियोंके हाथमें भी पहुँच गया। यहाँ तक कि गाजीपुरके सुयोग्य वकील मुन्शी उदितनारायणलालने उसका हिन्दीमें अनुवाद भी कर डाला। यह अनुवाद कई वर्ष हुए, जब हम 'हिन्दी-बङ्गवासी' में काम करते थे, तो हमें मिला था। उसीके पढ़नेसे हमें मालूम हुआ कि बङ्ग-भाषामें इस नामका एक नाटक है। हमने नाटक पढ़ा। पढ़कर हमारे शरीरके रोएँ खड़े हो गये, हृदय काँप उठा। हमने उसकी आलोचना 'हिन्दी-बङ्गवासी' में की और मुंशी उदितनारायणलालको बताया कि यदि कोई बङ्गाली हिन्दूपति महाराणा प्रतापसिंहके चरित्रको न समझकर उनपर झूठा कलङ्क लगावे, तो लगा सकता है। पर आप हिन्दू हैं, हिन्दुस्तानी हैं राजपूतों और महाराणा प्रतापके चरित्रको अच्छी तरह समझते हैं, फिर न जाने क्यों, आपने ऐसी कलङ्कमयी पोथीका अनुवाद किया है! यह पोथी हिन्दूजातिकी, क्षत्रियवंशकी, बेइज्जती करती है और उनपर घोर कलङ्क लगाती है। इसका अनुवाद करनेसे आप पापके भागी हुए हैं। इससे इस कलङ्कमयी पुस्तकके अनुवादकी जितनी पोथियां छपी हैं, वह सब गङ्गाजीमें डुबो दीजिये और फिर गङ्गास्नान करके पवित्र हूजिये। उदार-हृदय सत्यप्रिय मुंशी उदितनारायणलालने हमारी आलोचना पढ़कर अपने अनुवादकी सब पोथियां गङ्गाजीमें फेंक दीं और अपने ऐसा करनेकी हमें खबर दी। तबसे हिन्दीमें उक्त कलङ्कमयी पोथी नहीं है। यदि रहती, तो आज तक कितने ही हिन्दुओं और क्षत्रियोंके कलेजेमें घाव कर डालती।

पर आश्चर्य है कि इस २२ सालमें किसी बङ्गालीको इस बातकी खबर न हुई। किसी अखबारवाले या किसी समालोचकने यह नही

बताया कि यह पुस्तक वाहियात हुई है। ऐसी पुस्तकके जारी रहनेसे केवल बङ्ग-भाषाके साहित्यमें ही कलङ्क नहीं लगता, वरञ्च बङ्गदेशके पढ़े-लिखे लोगोंपर भी कलङ्क लगता है। बङ्ग-भाषामें अच्छे समाचार-पत्रोंकी कमी नहीं है, समझदार समालोचकोंकी कमी नहीं है, तिसपर यह पोथी इतने दिनसे जारी है। इसीसे हमने यह सिद्धान्त किया कि बङ्गाली लोग हिन्दुओं और हिन्दुस्तानियोंके चरित्र समझनेमें असमर्थ हैं। उनको इतनी भी खबर नहीं कि क्या चीज कलङ्क भरी है और क्या निष्कलंक!

हम 'अश्रुमती' को भूल गये थे। इसका हिन्दी-अनुवाद पढ़नेसे हृदयमें जो वेदना हुई थी, उसे भी भूल गये थे। किन्तु दुर्भाग्यवश कलकत्ता बड़ाबाजार-पुस्तकालयमें बङ्ग-भाषाकी पुस्तकें देखते-देखते फिर वही 'अश्रुमती' हमारे हाथमें आ गई। इस बार हृदयका आवेग बहुत संभालनेपर भी संभल नहीं सका। हम उस पुस्तकको वहाँसे उठा लाये और बड़े कष्टसे अनिच्छापूर्वक उसे पढ़कर उसपर निशान किये। पढ़ते समय हमारे हृदयकी जो दशा हुई, वह वर्णन नहीं कर सकते। बार-बार उस पाप-भरी पुस्तकको हमने फेंक दिया, किन्तु फिर पढ़नेके लिये उठाया और किसी तरह समाप्त किया। हमारी समझमें नहीं आया कि इसके बनानेवालेने क्यों इस पुस्तकको बनाया है? बनानेमें उसका उद्देश्य क्या था? देशकी भलाई, समाजकी भलाई, साहित्यकी भलाई—तीनोंमें कौनसी बात इस पुस्तकके बनानेमें सोची गई? यह वीररस, शृङ्गाररस, हास्यरस या करुणरस—किस रसकी पोथी है? बहुत सोचा कुछ समझमें न आया! वह दुर्भाग्यका समय था कि जब टाड साहबकी बनाई हुई राजस्थान पुस्तक बङ्गदेशमें आई! शायद टाडको यह खबर होती कि नामर्द बङ्गाली जातिमें मेरी यह पुस्तक जायगी और उस जातिके नामर्द लोग इसको पढ़कर राजपूतोंके चरित्रको कलङ्कित करेंगे, तो वह कभी

अपने राजस्थानको न बनाते। कर्नल टाड साहब राजस्थानमें रहे थे। राजपूतोंके निकट रहनेसे वह राजपूत जातिका चरित्र समझे थे, राजपूतोंकी वीरताका प्रभाव उनपर पड़ा था। मेवाड़ राज्यके राणाओंकी वीरताके चिन्ह देख-देखकर उस वीर जाति-सम्भूत वीर पुरुषका हृदय जोश मारने लगा था, इसीसे उस वीर जातिका कीर्ति-स्वरूप 'राजस्थान' ग्रन्थ उन्होंने बनाया और उसमें मेवाड़ देशका विशेष रूपसे अलग खण्डमें वर्णन किया। क्योंकि मेवाड़की गुणावली टाडके हृदयपर छाई हुई थी। पर हिन्दुस्तानमें एक कहावत है—'मर्दकी गर्दमें रहना अच्छा, नामर्दकी सरहदमें रहना अच्छा नहीं'—जो पुस्तक टाडने राजपूतों—मेवाड़ और मेवाड़के महाराणाओंकी उज्ज्वल कीर्ति-प्रकाश करनेके लिये बनाई थी, उसीने बङ्गदेशमें पहुँचकर उक्त कीर्तिमानोंकी कीर्तिका मुंह काला किया।

बङ्गसाहित्य पर कलङ्क

'अश्रुमती' नाटकके लिखे जानेसे बङ्गभाषाके साहित्यका मुंह काला हो गया है। इस पुस्तका नाम—'अश्रुमती नाटक' रखा है। किन्तु इसके टाइटल पेज पर मोटो स्वरूप टाड साहबके 'राजस्थान'से एक वचन उद्धृत किया है, उसे हम भी नीचे लिख देते हैं—

"There is not a pass in the alpine Aravalli that is not sanctified by some deed of Pratap, some brilliant victory, or oftener, more glorious defeat. Huldighat is the Thermopylae of Mewar, the field of Deweir her Marathon." —Tod's Rajasthan.

इसका भावार्थ यह है—"अरावली पर्वतमें एक भी ऐसी घाटी नहीं है जो महाराणा प्रतापके किसी कामसे पवित्र न हुई हो—चाहे कोई चमकती हुई फतह अथवा कोई उनके चरित्रको खूब उज्ज्वल करनेवाली हार। हल्दीघाट मेवाड़का थरमोपोली है और देवेर वहांका माराथोन।"

'अश्रुमती' नामके साथ इस मोटोका कुछ मेल नहीं है। यदि पुस्तक महाराणा प्रतापका चरित्र दिखानेके लिये होती तो उसपर यह वाक्य लिखा जा सकता। काशी-निवासी बाबू राधाकृष्णदास अपने 'महाराणा प्रतापसिंह' नामके नाटक पर यह वाक्य लिखते तो शोभा देता। किन्तु जिस पुस्तकमें प्रतापकी वीरता न दिखाकर 'अश्रुमती' का कलङ्क दिखाया गया है, उस राजपूत कन्याको एक मुसलमान शाहजादे-के प्रेममें पागल होते दिखाया है, ऐसी पुस्तकमें इस मोटोके लानेकी क्या जरूरत थी? पाठकोंको समझानेके लिये हम अश्रुमती नाटककी कहानी-का आशय कह देते हैं:—

अकबरका सेनापति महाराज मानसिंह अकबरकी तरफसे दक्षिण विजय पाकर दिल्लीको वापस जाता हुआ उदयपुर आया। महाराणा प्रतापकी ओरसे उसकी दावत हुई। पर महाराणा स्वयं दावतमें नहीं आये—लड़के और मन्त्रीके हाथसे सब काम कराया। पीछे प्रतापका मानसिंहसे आमना-सामना होजाने पर प्रतापने कहा कि मानसिंह! तुमने अकबरको अपनी बहन देकर कुलमें कलङ्क लगाया है, इसलिये तुम्हारे साथ बैठकर हम भोजन नहीं कर सकते। मानसिंह नाराज होकर दिल्ली चला गया और अकबरको बहकाकर मेवाड़पर सेना चढ़ा लाया। महाराणा प्रताप पराजित होकर बनों और जङ्गलोंमें घूमने लगे। उनके साथ उनकी कल्पित लड़की अश्रुमती भी थी। एक दिन अकबरकी सेनाका एक मुसलमान चोरीसे अश्रुमतीको चुरा ले गया। मानसिंहके कहनेसे उसने ऐसा कुकर्म्म किया था। मानसिंहने उस मुसल्मानसे कहा कि महाराणा प्रतापकी यह लड़की तुमसे व्याही जायगी। इससे प्रतापने जो मुझे गाली दी है, उसका बदला होजायगा। पर अकबरके बेटे शाहजादे सलीमको अश्रुमतीकी खबर लग गई। उसने अश्रुमतीको अपनी रक्षामें रखा। अश्रुमती सलीमके प्रेममें पागल हो

गई। यह बात उसने अपने चाचा शक्तिसिंहसे भी कह दी। सलीम भी अश्रुमती पर मोहित हुआ। पीछे क्षत्रिय-कुल गौरव पृथ्वीराजका भी अश्रुमती पर प्रेम हुआ। सलीमने पृथ्वीराजको मार डाला और अश्रुमतीको घायल किया। अश्रुमतीका चाचा उसे घायल अवस्थामें उसके पिताके पास ले गया। वहाँ उसने पिताके सामने भी सलीमके प्रेमकी हां की। मृत्युशय्यापर पड़े हुए पिता प्रतापको इसके सुननेसे मानो मरनेसे पहले ही मर जाना पड़ा। अन्तमें उसने उस कलंकिनी अश्रुमतीको भैरवी बननेका हुक्म दिया। वह महादेवकी पूजा करती हुई श्मशानमें रहने लगी। वहां श्मशानमें भी उसे सलीम मिला और अन्तमें वह गायब होगई। यही 'अश्रुमती नाटक' का सार है।

हम बङ्गदेशके पढ़े-लिखे लोगोंसे पूछते हैं कि इस पुस्तकको पढ़कर बंगदेशकी लड़कियोंको क्या शिक्षा मिलेगी? और आप सब बंगाली लोग न्यायसे कहें कि आपहीको उससे क्या उपदेश मिला? इस पुस्तकके पढ़नेसे आपकी गर्दन नीची होती है या ऊंची? बंग-साहित्यके मुंह पर इससे स्याही फिरती है या नहीं? आपके बंग-साहित्यमें यदि ऐसी पुस्तकें बढ़ें तो उस साहित्यका मुंह काला होगा कि नहीं? जिस पुस्तकका नाम कुछ और मोटो कुछ और है तथा मोटो कुछ और उद्देश्य कुछ और है, वह साहित्यमें घोर कलंककी वस्तु है या नहीं?

हिन्दुओं पर कलङ्क

किन्तु साहित्य जहन्नुममें जाय, हमको साहित्यसे कुछ मतलब नहीं है। हमको जो कुछ मतलब है इस पुस्तकसे है, वह हिन्दू-धर्म्म लेकर, राजपूतोंका गौरव लेकर और हिन्दूपति महाराणा प्रतापसिंहकी उज्ज्वल कीर्ति लेकर है। इस 'अश्रुमती' में चाहे जाने हो, चाहे बेजाने, हिन्दूधर्म पर बड़ा भारी आक्रमण किया गया है, राजपूत कुलमें कलंक लगाया गया है। विशेषकर मेवाड़की सब कीर्ति धूलमें मिलानेकी चेष्टा की गई है।

बंगाली चाहे जाने, चाहे न जाने, किन्तु हिन्दू लोग महाराणा प्रतापकी बड़ी इज्जत करते हैं, सबेरे उठकर उनका नाम लेते हैं, उनका उज्ज्वल यश आजतक गाया जाता है। उसे सुन-सुन कर इस गिरी दशामें भी हिन्दुओंका हृदय स्फीत हो जाता है। कारण यह है कि जयपुर-जोधपुर आदिके नरेशोंने बादशाहको डोले दे दिये। इससे हिन्दू-समाजमें बड़ी हलचल पड़ी। हिन्दू-समाजने अपनेको बड़ा अपमानित और लाञ्छित समझा था। सब राजा लोग अकबरके दबावमें आ गये थे। ऐसे कठिन समयमें प्रतापका निर्भीक होकर मुसलमानोंसे घृणा करना और क्षत्रिय कुलके गौरवकी रक्षा करना सामान्य बात नहीं थी। हिन्दू-समाजको उनसे बड़ी आशा हुई। और पीछे अन्यान्य क्षत्रियोंको भी वैसा करनेका साहस हुआ। यहां तक कि प्रतापके अनुकरणसे अन्तमें बादशाहोंको डोला देनेकी रीतिही उठ गई। प्रतापने इस कामके लिये बड़ा भारी कष्ट उठाया। टाड साहबने प्रतापकी वह सब कीर्ति गाई है। प्रतापको राजपाट छोड़कर जंगल-जंगल घूमना पड़ा है। जैसी-जैसी विपद उनपर पड़ी हैं, वह सब झेलना उन्हींका काम था। इसीसे हिन्दुओंने उनका नाम 'हिन्दूपति' रखा और उनके नामकी पूजा होने लगी।

कैसे दुःखकी बात है कि जिस महाराणाने दूसरे राजपूतोंको, मुसलमानोंको कन्या देनेसे रोका—एक बङ्गाली ग्रन्थकार उसीपर कलङ्क लगाता है और उसकी एक कल्पित लड़कीको एक मुसलमानके साथ भगाता है। अब विचारिये कि जिस ग्रन्थकारने यह पुस्तक लिखी है, उसने कैसा भारी अनर्थ किया है और कहां तक हिन्दुओंके मनको कष्ट नहीं दिया?

प्रतापका इतिहास

'अश्रुमती' नाटकके कर्त्तासे हमारा प्रश्न है कि आपका यह नाटक कल्पित है या ऐतिहासिक? यदि कल्पित है, तो उसमें महाराणा प्रतापसिंह

आदिके नाम लिखनेकी क्या जरूरत पड़ी ? उनकी एक कल्पित लड़की खड़ी करके उसे एक मुसलमानके प्रेममें पागल करनेकी क्या जरूरत पड़ी ? अभी प्रतापसिंहका वंश पृथ्वीपर है। मेवाड़का राज्य अभी संसारसे उठ नहीं गया है। आज भी प्रतापकी गद्दीपर प्रतापके वंशधर महाराणा लोग मौजूद हैं। आज भी मेवाड़का राज्य अचल-अटल बना हुआ है। आज भी राजस्थानके सब नरेशोंमें महाराणाका मस्तक ऊँचा है। फिर किस हौसले पर 'अश्रुमती' के लिखनेवालेने महाराणा प्रतापको कलङ्क लगाया है ? यदि इस बातकी लिखनेहीकी इच्छा थी कि नाहक ही एक राजपूत कन्या एक मुसलमानके प्रेममें पागल हो तो और नाम कल्पना कर सकता था। 'अश्रुमती' के लिये प्रताप छोड़कर कोई दूसरा बाप बना सकता था।

किन्तु यदि यह कहा जाय कि यह नाटक ऐतिहासिक है, तो किस इतिहासमें लिखा है कि प्रतापके अश्रुमती नामकी एक लड़की थी ? और कहाँ लिखा है कि उसे मुसलमान उठा ले गये थे ? यह सब बातें केवल मिथ्या कल्पना-मात्रही नहीं है, वरञ्च इससे ग्रन्थकारके हृदयका गिरा भाव भी प्रकाशित होता है। वह जान-बूझकर एक निष्कलङ्क आदमीको कलङ्क लगानेकी चेष्टा करता है। महाराणा प्रतापकी कहानी कोई दस-पांच हजार वर्षकी नहीं है। वह सम्वत् १५९६, विक्रमीयमें जन्मे थे, संवत १६२८ विक्रमीयमें राजगद्दी पर बैठे थे और सम्बत् १६५३ विक्रमीयमें उनका देहान्त हुआ था। उनके देहान्तको सिर्फ ३०५ साल हुए हैं। इतनी निकटकी घटनाको इस तरह कलुषित करनेका अर्थ हम कुछ नहीं समझे। टाड साहबने जङ्गली बिल्ली द्वारा रोटी छीने जानेके समय प्रतापके एक छोटी-सी कन्या दिखाई है, अश्रुमती जितनी जवान लड़की कोई नहीं दिखाई। फिर टाड साहबने हल्दीघाटकी लड़ाईमें केवल शाहजादे सलीमके आनेकी बात कही है, राणाकी किसी

लड़कीके मुसलमानों द्वारा चुराये जानेकी बात कहीं नहीं कही है। मुसलमानी इतिहासोंको पढ़कर हमने पता लगाया है कि हल्दीघाटकी लड़ाईके समय शाहजादे सलीमकी उमर कुल सात बरस थी। इतने छोटे सलीमके साथ किसका प्रेम हो सकता है? और वह छोटा-सा बच्चा सलीम किससे प्रेम कर सकता था? पर धन्य ग्रन्थकार आपकी लेखनीने एक बेतुका प्रेमका फौव्वारा छोड़ ही दिया!

निष्कलङ्कोंपर कलङ्क

जो लोग हिन्दुओंकी दृष्टिमें पापरहित, निष्कलङ्क और महात्मा हैं, वही इस 'अश्रुमती' नाटकमें अधिक कलंकित किये गये हैं। जिस प्रतापको मुसलमान नरेशोंसे घोर घृणा थी, उसीकी लड़कीको इसमें मुसलमानके प्रेममें कलंकित किया गया है। जिस पृथ्वीराजने मोहमें आये प्रतापको अपनी उत्तेजनामयी कवितासे मोह-भङ्ग किया था, उसीको इस पुस्तकमें पामर-से-पामर करके दिखाया है। वह पहले तो एक स्त्रीसे प्रेम करके उसे विवाहकी आशा देता है। फिर उससे प्रेम तोड़कर 'अश्रुमती' के प्रेममें फँसता और सलीमके हाथसे मारा जाता है। किन्तु यह सब मिथ्या है। पृथ्वीराज सूर्यकी तरह निष्कलङ्क था। वह खाली कवि और वीर ही न था, वरञ्च इस संसार और इस संसारके प्रेमको तुच्छसे भी तुच्छ समझता था। भक्त शिरोमणि नाभाजीने अपनी भक्तमालके १०८ भक्तोंकी लड़ीमें उसको भी पिरोया है। वह यों लिखते हैं :—

"सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुन नवरस।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायो हरिजस॥
परि दुख विदुख सलाघ्य वचन रसनाजु विचारै।
अर्थ विचित्रनि मोल सबै सागर उद्धारै॥

रुक्मिणी लता वर्णन अनूप वागीश बदन कल्याण सुव।

नरदेव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव ॥१४०॥"

इसीसे देखना चाहिये कि हिन्दू-लोग पृथ्वीराजको किस दृष्टिसे देखते हैं। इसी प्रकार वीर-शिरोमणि शक्तिसिंहको भी एक प्रकारका हीन राजपूत साबित करनेकी चेष्टा की है और उसकी भतीजीका मुसलमानसे प्रेम उसपर प्रगट किया है। महाराज मानसिंहने बादशाहको अपनी बहन जरूर दी थी, और प्रतापपर नाराज होकर उसने सेना भी चढ़ाई थी। पर वह इतना नीच नहीं था कि प्रतापकी कन्याको मुसलमानोंके हाथसे चोरी कराता। शायद 'अश्रुमती'कारने मानसिंहकी जीवनी नहीं पढ़ी। दुःख है कि 'अश्रुमती'कार मेवाड़ और राजपूतोंके विषयमें कुछ भी नहीं जानता, किन्तु नाटक लिखने बैठ गया। वह जानता नहीं कि अश्रुमती प्रतापकी लड़की तो क्या, किसी राजपूत—यहाँ तक कि किसी हिन्दुस्तानीकी, लड़कीका भी नाम नहीं होता। मेवाड़के वन-पर्वत-जंगल-झीलोंके विषयमें उक्त ग्रन्थकार कुछ भी नहीं जानता। इसीसे उसने बड़ी ऊटपटांग बातें लिखी हैं! पिछौला तालावको उसने पेशला नदी लिखा है! उदाहरण-स्वरूप हम 'अश्रुमती'कर्त्ताकी कुछ खामखयाली दिखाते हैं—

"जब फरीद नामका मुसलमान मानसिंहके कहनेसे सोती अश्रुमतीको उठा लाया, तो मानसिंह उसके पास आकर कहने लगा—"हाँ, ठीक है, यही प्रतापसिंहकी कन्या है। यद्यपि मैंने इसको बहुत बचपनमें देखा था, तो भी यह पहचानी जाती है। अच्छा फरीद! इस कन्यारत्नको लेकर तुम सुखसे घरबारी बनो, तुम्हारे परिश्रमका यही पुरस्कार है।" चाहे मानसिंह कितना ही अकबरका तरफदार हो, पर एक छोटे मुसलमानके सामने उसके मुँहसे कभी ऐसे शब्द नहीं निकल सकते—चाहे स्वयं इन्द्र आकर उसके सिरपर वज्र क्यों न मारता हो।

अश्रुमतीकी सखी मलिना पूछती है—"क्या तू कभी अपने माता-पिताको याद नहीं करती ?" उत्तरमें अश्रुमती कहती है—"बीच-बीचमें मा-बाप याद आते हैं, पर सलीमको देखकर सब भूल जाती हूं।"

प्रतापके घरमें तो क्या, किसी अदनासे अदना क्षत्रियके घरमें भी कभी ऐसी पापिनी कन्या नहीं हुई, जो एक मुसलमानसे प्रेम करे और माता-पिताको भूल जाय।

अश्रुमतो रोती हुई सलीमको अपना प्रेम जताती है—"सलीम ! सलीम ! क्या कहा सलीम ? तुम-जैसा मुझे चाहते हो, वैसा मैं तुम्हें नहीं चाहती ? तुम्हारे दर्शनको मैं दिन-रात आशा लगाये बैठी रहती हूं। स्वप्नमें तुम्हें देखकर माता-पिताको भी भूल जाती हूं।"

चाचा शक्तिसिंहसे अश्रुमतीकी बातें होती हैं—

"शक्ति०—तू यदि नहीं जानती अश्रुमती ! तो सुन, सलीम मुसलमान है, विधर्म्मी है, राजपूतोंका परम शत्रु है, उससे हम लोगोंका कुछ सम्बन्ध नहीं।

अश्रु०—चाचा ! यदि सचही वह राजपूतोंका शत्रु हो और शत्रु होकर भी मित्रका-सा काम करे, तो क्या उससे प्रेम न करना चाहिये ?"

जब शक्तिसिंह अश्रुमतीको मारनेके लिये तलवार निकालता है, तो अश्रुमती कहती है,—"मारो चाचा ! मारो ! हृदय पसार देती हूं। मुझे मारकर कलङ्कसे मुक्त हो ; मैं सलीमके सिवा किसीको नहीं चाहती !

शक्ति०— क्या ? सलीमसे ब्याह करेगी ? तू वही अश्रुमती है, या और ? तूही क्या सूर्य्यवंशियोंकी लड़की अश्रुमती है ? तूनेही क्या घृणित मुसलमानको हृदय दिया है ?

अश्रु०—हां चाचा ! दिया है, मुझे मारो।"

राजपूत-कन्याके मुखसे ऐसी बात कभी नहीं निकल सकती। यदि निकले, तो चाचा शक्तिसिंह एक अश्रुमतीको नहीं, हजार अश्रुमतीको उसीदम तलवारके घाट उतार सकता है। शक्तिसिंहही नहीं, राजपूतके घरका एक चमार भी ऐसी कन्याका सिर काट डालनेका अधिकार रखता है। पर बङ्गाली लोग इन बातोंको नहीं जानते और न जान सकते हैं! इसीसे अधिक बातें उद्धृत नहीं की गईं। पोथीका अधिक भाग ऐसी ही कलंक-भरी बातोंसे भरा हुआ है।

हमारी प्रार्थना

'अश्रुमती' के कर्त्तासे हमारी प्रार्थना है कि आपने चाहे किसी भाव और किसी नियतसे यह पोथी क्यों न लिखी हो, पर उससे हिन्दुओंकी बड़ी भारी निन्दा हुई है। इसमें लिखी हुई बातोंसे हिन्दुओंके हृदयमें बड़ा भारी आघात लगता है, राजपूतोंकी इससे बड़ी अपकीर्ति होती है! मेवाड़-राजवंशका इससे बड़ा अपमान होता है। इससे जो छपी सो छपी, अब अपनी इस पोथीका छापना बन्द कीजिये और जो पोथी छपी हुई बाकी हैं, उन्हें फूंक-जलाकर उनकी राख गङ्गाजीमें फेंक दीजिये। इससे हिन्दुओंका चित्त शान्त होगा और हिन्दू आपकी उदारताकी बड़ाई करेंगे। हम आशा करते हैं कि राजपूत-महासभा और हिन्दू-समाज दोनोंमें किसो प्रकारका आन्दोलन उठनेसे पहलेही आप इस कामको करके सब हिन्दुओंके चित्तको शान्त करेंगे।

—भारतमित्र सन १९०१ ई०

तुलसी सुधाकर

दो अढ़ाई महीनेसे यह पुस्तक हमें मिली है। इसमें तुलसीदासकी सतसई पर पण्डित सुधाकर द्विवेदीजीकी कुण्डलियां लगी हुई है। पुस्तक पाकर हमको जितना हर्ष हुआ, पढ़कर उतना नहीं हुआ। यह पुस्तक छपी बहुत अच्छी है, इसका कागज बहुत उत्तम है। तिसपर 'तुलसी सतसई' बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है। और सबसे बढ़कर बात यह है कि उसपर महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदीजी जैसे प्रवीण विद्वान्‌की कुण्डलियां हैं—इसीसे हमारे चित्तमें एक विचित्र प्रकारकी आशा उत्पन्न हुई थी। हमने सोचा था कि द्विवेदीजीके हाथमें यदि यह पुस्तक आई है, तो अवश्य ही उनकी कुण्डलियां पाठकोंको कुञ्जीका काम देंगी। पर हम दुःखसे प्रकाश करते हैं कि उनकी कुण्डलियोंसे 'तुलसी सतसई' पर एक ताला और लग गया। तुलसी-सुधाकरके पढ़नेवालोंको पहले तुलसीके दोहे समझनेके लिये सिर खपाना पड़ेगा और पीछे सुधाकरजी महाराजकी कुण्डलियाओंका अर्थ लगानेमें पहाड़से टकराना पड़ेगा।

तुलसी-सुधाकरकी भूमिका पढ़कर हमको बड़ी आशा हुई। भूमिका बहुत अच्छी हुई है, उसे बहुतसी नई बातें मालूम होती हैं। सतसई बनानेवाले तुलसीदास कौन थे, सतसई लिखनेकी रीति कबसे और कैसे चली ; इत्यादि कितनीही बातें इसमें लिखी गई हैं। एक जगह भूमिकामें ऐसा भी लिखा है कि शायद बिहारीकी सतसईके अनुकरण पर इस सतसईके तुलसीदासने अपनी सतसई लिखी। इसी प्रकार हमारी भी अटकल है कि पण्डित अम्बिकादत्त व्यासकी कुण्डलियां देखकर सुधाकरजीको 'तुलसी सतसई' पर कुण्डलियां रचनेकी रुचि हुई होगी। पर साथही हमारा यह भी अनुमान था कि कुण्डलियां लिखकर सुधाकरजी महाराज तुलसी सतसईको सरल कर देंगे। वह बात उलटी निकली।

'तुलसी सतसई'के दोहे बड़े लकड़ तोड़ हैं। उनमें सरस और सरल दोहे बहुतही कम हैं और गूढ़ और कूट दोहोंकी भरमार है। हमको इससे पहले पूरी सतसई पढ़नेका कभी अवसर नहीं मिला। अब हमने पढ़कर जाना कि वह बड़ी विकट है। यह सुधाकरजीकाही काम है कि उन्होंने उसका अर्थ समझा है। क्या अच्छा होता कि जो कुछ अर्थ वह समझे थे, दूसरोंको भी समझा देते। ऐसा करते तो पोथी बहुत सरल हो जाती और लोग उसका अर्थ समझकर सुधाकरजीका गुण गाते। पर वैसा अवसर नहीं मिला। वह कदाचित राह बतानेही चले होंगे, पर बता न सके, भुलाने लगे। तुलसीने जहां कोई बड़ा कूट दोहा लिखा है, सुधाकरजी महाराजने वहां महाकूट कुण्डलिया बनाई है। कहीं-कहीं तुलसीका दोहा सरल है, वहां भी सुधाकरजी टेढ़े चले हैं। दो-एक उदाहरण देते हैं—

राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय तुलसी सुरतरु तोर॥

यह दोहा सरल है। इसका अर्थ भी सहजही समझमें आ जाता है। इसपर सुधाकरजीकी कुण्डलिया सुनिये—

तुलसी सुरतरु तोर तोरि मैं मोर कहानी।
सेवहि अबहि सबेर बीर नत कारज हानी॥
बरनत है द्विजराज करत द्विजराज अहेरा।
रसना रसना रहहि किये बिनु यहि तरु डेरा॥

दोहेमें 'सुरतरु तोर' का अर्थ लगानेमें जरा सोचना पड़ता है, पर कुण्डलियामें 'तोरि मैं मोर कहानी' 'रसना रसना' आदि लिखकर द्विजराजजीने इतना काम कर दिया है कि ऊपरका अर्थ पढ़नेवाला पांच-सात मिनट तक आपहीके अर्थको सोचता रहे।

तुलसी सुधाकर

'तुलसी सतसई'का २४१ नम्बरका दोहा है—

हंस कपट रस सहित गुन अन्त आदि प्रथमंत।
भजु तुलसी तजि बामगति जेहि पदरत भगवंत॥

सहजमें हमारी समझमें यह दोहा न आता, पर सुधाकरजीने इसकी टीका कर दी है। हंस=मराल, मरालका अन्त ल, कपट=छलका आदि छ, रस=पुष्परस=मकरन्दका आदि म और गुनका अन्त न—सब मिलाकर लछमन हुआ। इस प्रकार पहाड़ तोड़कर सुधाकरजीने अर्थ निकाला, पर फिर अर्थ निकालकर आप अपनी कुण्डलियां यों बनाते हैं—

जेहि पदरत भगवन्त
भोगिहू बनि जेहि पूजो।
तेहि राघव पद बिना
सुगतिदाता नहिं दूजो॥
सीस जनक के आदि
अन्तपति जगपर ससंक।
उर मानस महं रखहु
सदा अस द्विजवर हंसक॥

कुण्डलिया बनाकर आपको कुण्डलियाकी भी टीका करनी पड़ी। आप लिखते हैं—सीसका आदि 'सी' और जनक-पिताका अन्त 'ता' मिलकर सीता हुआ। अर्थात् सुधाकरजो महाराजने जो "सीस जनक के आदि अन्त पति" लिखा है, इसका अर्थ है सीतापति। पहाड़के पेटमें दर्द उठा, चूहा उत्पन्न हुआ।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि द्विवेदीजी महाराजको इस रचनामें बड़ा भारी परिश्रम और बड़ा भारी कष्ट हुआ होगा। उन्हें महीनों नहीं, तुलसीके दोहोंका अर्थ लगाते वर्ष बीत गये होंगे। उसपर फिर अपनी

रचना करनेमें कुछ कम दिन नहीं लगे होंगे। पर इतना सब करनेका फल क्या हुआ ? केवल यही कि दस-बीस आदमी बहुत जोर लगाकर सुधाकरजी महाराजकी इस पुस्तकको समझ सकेंगे। बाकी लोग न समझ सकेंगे, न पढ़ सकेंगे। पुस्तक बनारसके चन्द्रप्रभा प्रेसके मैनेजर पं० जगन्नाथ मेहतासे मिलती है।

—भारतमित्र, सन १९०२ ई०।

प्रवासीकी आलोचना

"प्रवासी" बङ्गभाषाका एक अच्छा मासिक-पत्र है। प्रयागसे निकलता है। आकार-प्रकारमें "सरस्वती" के तुल्य है, पर कुछ भारी है। उमरमें सरस्वतीसे छोटा है, पर उससे आगे है।

आश्विनकी संख्यामें उक्त पत्रने हिन्दी-सामयिक-साहित्यकी कुछ आलोचना की है। हिन्दी कागजोंकी ओर एक बंगाली कागजका ध्यान होते देखकर हमें बड़ा आनन्द हुआ। क्योंकि अभी तक हिन्दी कागज ऐसे नहीं हुए, जिनके पढ़नेकी जरूरत समझकर बंगाली सज्जन हिन्दी सीखनेका कष्ट गवारा फरमावें।

"प्रवासी"का यह कहना बहुतही सत्य है कि संस्कृतसे निकली हुई भारतीय भाषाओंमें हिन्दी सबसे पीछे है और बंगला सबसे आगे। हिन्दीमें लेखक और पाठक दोनों कम हैं! उसके बोलनेवाले बहुत होने पर भी अपनी भाषाकी ओर उनका कर्तव्य-ज्ञान बहुत कम है।

आगे प्रवासीने हिन्दीके मासिक पत्रों पर कुछ बातें कही हैं, जो लगभग ठीक हैं और उनसे विदित होता है कि उक्त लेखका लिखनेवाला हिन्दी मासिक पत्रोंकी दशाका ज्ञान रखता है। "सरस्वती" की बात

कहते हुए "प्रवासी" ने सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसादजीकी लिखी माइकेलकी जीवनीकी बात कहकर कहा है कि माइकेलके लिखे दो प्रहसन और दो नाटकोंका हिन्दीमें अनुवाद हुआ है। पर उनपर ग्रन्थकारका नाम नहीं दिया गया। एक प्रहसनके अनुवादकर्त्ताने तो इतना भी नहीं लिखा कि उनकी पोथी अनुवाद है या नहीं। साथही उसके पात्रोंके नाम भी पलट डाले हैं। इस पर 'प्रवासी'ने कटाक्ष किया है—"शायद यह सब लीला भूलसे हुई है ; क्योंकि जिन्हें लोग हिन्दी लेखकोंमें आचार्य्य समझते हैं तथा दूसरोंको उपदेश देना ही जिनके घरका वाणिज्य है, वह जान-बूझकर कभी पराई चीजको अपनी न बतायंगे।"

'प्रवासी' और भी कहता है,—"द्विवेदीजीने जिन अनुवादककी बात कही है वह धर्मोपजीवी और प्रसिद्ध तीर्थके निवासी हैं। हम उनका नाम नहीं प्रकाश करना चाहते। अनुवाद करनेमें कुछ हानि नहीं, पर मूल बङ्गला ग्रन्थके अधिकारीसे आज्ञा लिये बिना हिन्दी अनुवाद करते हमने देखा है और कई बार ऐसा करनेवालोंको खबरदार भी किया है।"

कटाक्ष बड़ा तीव्र है, पर सच्चा है। इससे हमारे हृदयमें वेदना भी होती है और लज्जासे हमारा सिर भी झुका जाता है। तथापि एक बात हम अपने बंगाली सहयोगीसे कहे बिना नहीं रह सकते कि यह दोष हिन्दीवालोंमें बंगालियोंसे ही आया है। इस दोषके मूल ग्रन्थकार भी बङ्गाली हैं, हिन्दीवाले केवल बेसमझ अनुवादकर्त्ता हैं। सुनिये सुनाते हैं—

पंजाबके लुधियाना नगरसे एक उर्दू पत्र इसी सालसे निकला है। पत्र नया होने पर भी उसका सम्पादक पुराना है, क्योंकि वह लुधियाने-ही में एक पुराने पत्रका कई सालसे सम्पादक था। अपनी समझमें वह

अपने पत्रमें अच्छे लेख लिखता है। वह लेख कई उर्दू पत्रोंमें नकल भी हो जाते हैं। पर नक्काल लोग उस पत्रका नाम नहीं लेते। इस पर उक्त पत्रके सम्पादकने एक लम्बा लेख लिखकर शिकायत की, उसमें कहा,—"मैं नित्य दस घण्टे विलायत और अमेरिकाके अखबार पढ़ता हूं और बड़े परिश्रमसे अच्छी-अच्छी खबरें निकाल कर अपने पत्रमें देता हूं। दूसरे अखबारवाले उनको धीरेसे नकल करलेते हैं, मेरे पत्रका नाम तक नहीं लेते।" इसका लखनऊके एक उर्दूपत्रने अच्छा उत्तर दिया है। वह कहता है—"जिन अंगरेजी पत्रोंसे आप खबरें और चुटकले लेते हैं, क्या कभी उनका नाम भी अपने पत्रमें छापते हैं? नित्य दस घण्टे परिश्रम न करके खाली टिटबिट्ससे खबरें और चुटकले ले लिया कीजिये, एक सप्ताहका टिटबिट्स आपके कागजके लिये तीन सप्ताह तक काफी है।"

बंगालियोंके उच्छिष्ट पर हिन्दीवाले गिरते हैं, यह परम लज्जाकी बात है। फिर जिसकी रकाबी चाटते हैं, उसका नाम नहीं लेते, कृतज्ञताका प्रकाश नहीं करते यह और भी निन्दाकी बात है। पर बंगाली जिनकी रकाबी पर हाथ साफ करते हैं, क्या उनका नाम लेते और पेट पर हाथ फेरके "जिस भण्डारसे आया वह भण्डार सदा भरपूर" कहकर असली दाताको दुआ देते हैं? "प्रवासी"ने शायद ध्यान न दिया हो, पर हमने बंगालमें रहनेसे कुछ-कुछ दिया है। बंगालियोंके लिखे बहुतसे नाटक, उपन्यास मासिकपत्रोंके लेख और कविताएं अंगरेजी और फ्रेंच भाषाओंके तरजुमे, खाके और चोरी हैं। सहयोगी "प्रवासी" जरासा इधर ध्यान देगा तो "बूढ़े मुँह मुहासे" की-सी दरजनों पोथियां बंगभाषामें पावेगा। अवश्य बंगभाषाने उन्नति की है, पर पराई रकाबीके उच्छिष्ट बिसकुट ही उसके पेटमें अधिक हैं और भरते जाते हैं। अभी बंगालियोंकी अपने मगजसे निकाली हुई बातोंका कम संग्रह है। जो बंगभाषाके धुरन्धर लेखक हैं, उन्हींकी पूँजीमें अधिक पराया माल है।

प्रवासीकी आलोचना

अभी वह दिन दूर है कि जब हिन्दुस्थानियोंका सूखा दमाग हरा होगा। तब तक हमें बंगलाके उच्छिष्ट पर ही गुजारा करना होगा। क्या अच्छा होता, जो दूसरोंकी पोथियां चुपचाप अपनी करनेवालोंके लिये कोई कड़ा नियम होता। ग्रन्थकारोंकी आज्ञा बिना कोई उनकी पोथियोंका तरजुमा न करने पाता। ऐसा होता तो बंगलाके कई ऐसे उपन्यास हिन्दीमें न आजाते, जिनमें पुराने हिन्दूवीरोंकी निन्दा है। ऐसे बंगाली लेखकोंको सहयोगी "प्रवासी"ने सावधान होकर लिखनेको कहा है, इसके लिये उसका हृदयसे धन्यवाद किया जाता है।

—भारतमित्र सन् १६०३ ई०

बंगला साहित्य

गत वार हमने बङ्गला मासिक पत्र 'प्रवासी'की हिन्दी मासिक पत्रों-की आलोचनाके विषयमें कुछ बातें कही थीं। इस समय दो-चार और भी बातें कहनेकी जरूरत पड़ी है। प्रवासीने लिखा है कि कलकत्तेके 'दारोगादफ्तर' नामके डिटेक्टिव मासिक पत्रके लेख भी हिन्दीवालोंने तरजुमा किये हैं। यह काम बिना अनुमति किया है और असली पत्रका नाम भी नहीं दिया गया। हमारी समझमें 'दारोगादफ्तर'के किस्से किसी हिन्दी पत्रवालेने तरजुमा नहीं किये हैं। शायद "जासूस" पर यह कटाक्ष किया गया हो, पर जासूसवालोंने हमें लिखा है कि 'जासूस' में कभी 'दारोगादफ्तर'के किसी लेखका तरजुमा नहीं हुआ। यदि 'प्रवासी'का इशारा उसीपर हो तो उन लेखोंका पता देनेमें कुछ बेजा बात नहीं है। प्रवासीने यह भी लिखा था कि 'समालोचक'में हमारे कुछ लेख तरजुमा किये गये हैं। इस बातको भी 'समालोचक'वाले झूठ बताते हैं। वह कहते हैं कि प्रवासीका कोई लेख हमने तरजुमा नहीं किया। यदि किया हो, तो उसका वह पता दे।

इस सप्ताह बङ्गाली लेखकोंकी बाबत हमारे पास बहुत-सी चिट्ठियां आई हैं, जिनका मतलब यही है कि बंगाली लेखक स्वयं दूसरोंके लेख बेनाम-बेनिशान अपने कर लेते हैं, उनमें से कुछके उदाहरण भी हम देते हैं।

सबसे प्रसिद्ध लेखक उपन्यास लिखनेवालोंमें बाबू बङ्किमचन्द्र चटर्जी हुए हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' पर इलजाम लगा था कि वह फ्रेंच उपन्यासकी छाया है। बङ्किम बाबू कहा करते कि 'दुगशनन्दिनी' तरजुमा या छाया नहीं, उन्हींके मगजसे निकली है। जब उनको वह फ्रेंच उपन्यास दिखाया गया, तो उन्होंने कहा कि मैंने इसको कभी नहीं देखा। मेरा खयाल मेरेही मगजसे निकला हुआ है। बङ्किम बाबूके उपन्यासोंमें हम कई बातें और भी ऐसी दिखावेंगे, जो दूसरोंकी हैं और बङ्किम बाबूकी समझी जाती हैं। बङ्किमके उपन्यासोंमें जो विचार हैं, उनमेंसे बहुत ऐसे हैं, जो बङ्गदेश या भारत-वर्षके नहीं हैं, एकदम विदेशी वस्तु हैं।

बाबू दीनेन्द्रकुमार राय 'वसुमती' के सम्पादक हैं। यह बहुत कुछ अंगरेजीसे तरजुमा करते हैं और पता निशान देनेमें हिचकते हैं। उन्होंने "अजयसिंहेर कुठी" नामकी एक पोथी बंगलामें लिखी है। उसमें लिखा है कि फ्रेंच डिटेक्टिव कहानीके अवलम्बनसे लिखी गई है। पर न ग्रन्थकर्त्ताका नाम लिखा है, न पुस्तकका नाम लिखा है और अनुमति आपने किससे ली है, सो आपही जानते होंगे। जहांतक हम जानते हैं, वह फ्रेंच भाषा नहीं पढ़े हैं, इससे अवश्यही उनकी कहानी फ्रेंच होगी, तो उन्होंने अंगरेजी अनुवादसे बंगला की होगी। पर यह नहीं लिखा कि फ्रेंचसे उन्होंने बंगला कैसे की।

उसी 'वसुमती' आफिसके उपेन्द्रनाथ मुकर्जीने 'सन्तप्त शैतान' नामकी एक पुस्तक निकाली है, जो एक अंगरेजी पुस्तकका तरजुमा है।

पर पुस्तकपर न असली ग्रन्थकारका कहीं नाम है और न अनुमतिका जिक्र।

जो बाबू प्रियनाथ मुकर्जी एक नामी डिटेक्टिव अफसर हैं और जिनके 'दारोगादफ्तर'के अनुवादका 'प्रवासी' दूसरोंपर इलजाम लगाता है, उन्हीं-की एक बात सुनिये। आपने अंगरेजीके शरलाकहोमके लेखसे "कृपणेर धन" और "प्रणये संशय" नाम देकर 'दारोगादफ्तर' में छाप लिया है। न असल किताबका नाम दिया है, न निशान दिखाया है। ठीक यही जान पड़ता है कि सब प्रिय बाबूकी करामात है।

"मिस्ट्रीज आफ पेरिस" को "ठाकुर बाड़ीरदफ्तर' नाम देकर 'बसुमती' वालोंने प्रकाश किया। न मूल लेखकका नाम है और न किसीकी अनुमति ली गई है।

उपेन्द्रनाथ मुखर्जीने अमेरिकन डिटेक्टिवसे "मारकिन गोइन्दा" और फ्रेंच डिटेक्टिवसे "फरासी गोइन्दा" बसुमती आफिससे छापकर निकाला है, कहीं नाम नहीं कि असली ग्रन्थकार कौन है। भुवनचन्द्र बनर्जीने अमेरिकन डिटेक्टिवको पुस्तकोंको 'पुलिस कमिश्नर' मासिक पत्रके नामसे छाप डाला ; मगर कहीं मूल लेखकका नाम नहीं दिया।

यह दो चार मोटी-मोटी बातें कही गई हैं। थोड़ा ध्यान देनेसे बहुत बातें मालूम हो सकती हैं और हमें भरोसा होता है कि और बहुतसी बातें मालूम होंगी। पर इन सब बातोंके लिखनेसे हमारा यह मतलब नहीं है कि हिन्दीवाले बंगला किताबोंका तरजुमा किया करें और असली ग्रन्थकर्त्ताओंका नामोनिशान न दिया करें और न उनसे तरजुमा करनेकी अनुमति लिया करें। वरञ्च हम यही दिखाना चाहते हैं कि जो दोष हिन्दी अनुवादकर्त्ताओंमें आगये हैं, वह बंगला लेखकोंमें भी हैं। आशा है कि 'प्रवासी' उस ओर भी ध्यान देगा।

—भारतमित्र सन् १९०३ ई०

तारा उपन्यास

बम्बईके हिन्दी सहयोगी 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' से गोस्वामी किशोरीलालजीके 'तारा' उपन्यासकी बात चली है। उक्त पत्रका ३ जुलाईका अङ्क पढ़कर यह मालूम होगया कि गोस्वामीजी और उक्त पत्रके सम्पादकमें राजीनामा होगया। गोस्वामीजीने यह मान लिया कि अमरसिंहका साला अर्जुन, गौड़ था—हाड़ा नहीं था, न वह बून्दीका राजकुमार था। बस, "सहयोगी" वेंकटेश्वर, राजी होगया। पर हम पूछते हैं कि अर्जुन चाहे हाड़ा हो, चाहे गौड़, वह अपनी भानजीका एक मुसलमानसे व्याह कराना चाहता है, इसके लिये गोस्वामीको या 'वेंकटेश्वर'को कुछ अफसोस है या नहीं? और भी हम देखते हैं कि गोस्वामीजी महाराजको अबतक भी यह मालूम नहीं है कि 'तारा' कैसी कलङ्क भरी पोथी है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह यों "वेंकटेश्वर"में उसकी तारीफकी तान न उड़ाते। आप फरमाते हैं—

"हमारे माननीय सहयोगी (वेंकटेश्वर समाचार) ने जो 'तारा' पर अपनी उदार निरपेक्ष और सच्ची सम्मति देकर उस (तारा) को हिन्दी साहित्यमें चमकता हुआ तारा स्वीकार कर आधुनिक उपन्यासोंमें उच्च स्थान प्रदान किया है, इसके लिये हम अपने आदरणीय सहयोगीको अनेक धन्यवाद प्रदानकर, शुद्ध हृदयसे कृतज्ञता स्वीकार करते हैं।"

जब गोस्वामीजी अपनी पोथीके लिये ऐसी ऊँची हवामें हैं, तो हमें अपना चुप रहनेका इरादा छोड़कर उन्हें कुछ नीचे उतार लाना चाहिये।

गोस्वामीजी देखें कि उनकी 'तारा' कैसी है। शाहजहांका बेटा दाराशिकोह अपनी बहन जहांनाराके पास मिलने गया है। बहन दारासे

बड़ी है। हमारे गोस्वामीजी महाराजने बहन-भाईकी जो बातचीत कराई है, सो सुनिये—

दारा—आखिर यह हैं किसकी तसवीरें?

जहांनारा (मुसकिराकर) मेरे दिल्वरकी!

भाई-बहनकी कैसी रुचिपूर्ण बातें हैं। हमारे गोस्वामीजीके सिवा ऐसी रुचिसम्पन्न बातें और कौन लिख सकता है? पर क्या गोस्वामीजी महाराजकी सुरुचि यहीं समाप्त होगई? नहीं, वह उसे और आगे ले जाते हैं—

दारा—(मनही मन) हां-हां कमबख्त! तेरे फाहिशापनकी खबर फकत मुझहीको नहीं, बल्कि वालिद साहबको भी पूरे तौरपर है। मगर नालायक! तैंने ऐसे चकाबूके-जाल फैलाकर सभीको गिरिफ्त कर रखा है कि जान-बूझकर भी तेरा कुछ भी नहीं कर सकता।

जैसी शुद्ध भाषा है, वैसा ही यह दिव्य विचार है। भाईका विचार बहनके विषयमें इतना सुन्दर होनेहीसे गोस्वामीजीकी 'तारा' साहित्यका चमकता हुआ सितारा है।

अब भाई-बहनकी बातें जरा और सुनिये—

"जहांनारा—क्या गौर करने लगे?

दारा—तुम्हारे दिलवरके बारेमें?

जहांनारा—यानी उसके हलाल करनेके तरीके पर? एं? जैसे मेरे ऊपर शक करके उस दिन वालिदने एक नौजवान गवैये नूरुद्दीनको हम्माममें खोजेसे कतल करा डाला और एक दिन एक नौजवान गवैये नजीरखांको पानमें जहर देकर मार डाला। क्या वैसा ही कोई तरीका तुम भी मेरे दिल्वरके कतल करनेके लिये सोचने लगे? * * *

जहांनारा—ज्यादा खूबसूरत यह तसवीर यानी तारा है या मैं?

दारा—(मुस्कराकर) मेरी निगाहमें तो तारासे तुम्हीं ज्यादा हसीन मालूम होती हो!"

क्या दिव्य साहित्य है! इसीके लिये वंकटेश्वर 'तारा'को हिन्दी साहित्यका चमकता हुआ तारा कहता है! कहां है काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभा? उसे आनन्दके मारे बांसों उछलना चाहिये कि उसके एक प्रधान मेम्बर गोस्वामीजी हिन्दी साहित्यको कितना ऊंचा लेगये हैं।

दारा और जहांनाराकी कुछ और बातें सुनिये—

"दारा—प्यारी शाहजादी! अफसोस सद अफसोस है कि तुम्हारे दिल तक इश्ककी वह आंच हरगिज नहीं पहुंची है जिसके श्वाले (?) में मैं भुन-भुनकर कबाब हुआ जाता हूं। सच है दर्द-दिलकी कैफियतसे वे बिलकुल नावाकिफ रहते हैं, जिन्होंने इजरते इश्कके दाममें अपनी जान कभी न फंसाई हो।

जहां—(मुस्कराकर) बेशक, बेशक और वाकई जनाब! भला यह कमतरीन इश्ककी लज्जत क्या जाने। अफसोस! खुदाने शाहजादियोंको इश्ककी लज्जतसे बिलकुलही महरूम किया।

दाराने मनही मन कहा—"जी हां सही है। बीबीको एक शब भी बगैर किसीको बगलगीर बनाये चैन न आता होगा।"

क्या सहयोगी 'वंकटेश्वर'ने तारामें यह वाक्य नहीं पढ़े? क्या इन्हीं वाक्योंको लेकर 'तारा' हिन्दी साहित्यका चमकता हुआ तारा है? हम नागरी प्रचारिणी सभाको सावधान करते हैं कि यदि सचमुच वह हिन्दीकी उन्नति चाहती है, तो सबसे पहले 'तारा' पढ़े और गोस्वामीजी महाराजको उनकी पुस्तकके गुण-दोष समझावे कि वह कैसा गन्दा और भयानक काम कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि हमें इस विषयमें और आगे बढ़ना न पड़े। क्योंकि इस पुस्तकमें आगे चलकर इससे भी बढ़कर भयानक और वाहियात बातें हैं। —भारतमित्र सन् १९०३ ई०।

अधखिला फूल

निजामाबाद-निवासी पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्यायने इस नामसे एक कहानी लिखी है। यह उन्होंने "ठेठ हिन्दी" में लिखी है और उनकी इस कहानीकी भूमिका पढ़नेसे यह भी विदित होता है कि आगे वह इस 'ठेठ हिन्दी' ही के प्रचार करनेकी चेष्टा करेंगे। इससे पहले भी "ठेठ हिन्दीका ठाठ" नामकी पोथी वह लिख चुके हैं। वह हमने नहीं देखी। पर जो पोथी हमारे सामने है, उसकी भाषा और भूमिका पढ़नेसे हमने ठेठ हिन्दीके ठाठकी भाषाका भी अनुमान कर लिया है। हम ठेठ हिन्दीके तरफदार नहीं। ठेठ हिन्दीका हमारी समझमें कुछ अर्थ भी नहीं। अधखिले फूलकी भूमिकामें पण्डित अयोध्यासिंहजीने ठेठ हिन्दीका कुछ लक्षण बताया है, पर उसे हम नहीं मान सकते।

सौ सालसे अधिक हुए, लखनऊमें उर्दूके कवि इंशाने ठेठ हिन्दीकी एक कहानी लिखी थी। कोई ४०-५० पृष्ठकी थी। उसकी कुछ भाषा हम नीचे उद्धृत करते हैं—"अब यहांसे कहनेवाला यों कहता है कि एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान चढ़ी कोई कहानी ऐसी कहिये जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोलीकी पुट न मिले। बाहरकी बोली और गंवारी कुछ उसके बीचमें न हो, तब मेरा जी फूलकर कलीके रूप खिले। अपने मिलनेवालोंमेंसे एक कोई बड़े पढ़े-लिखे पुराने-धुराने ठाक बड़े ढाग यह खटराग लाये सिर हिलाकर मुँह थुथाकर नाक भौं चढ़ाकर गला फुलाकर लाल-लाल आँखें पथराकर कहने लगे यह बात होती दिखाई नहीं देती। हिन्दीपन भी न निकले और भाखापन भी न ठुस जाय जैसे भलेमानस अच्छोंसे अच्छे लोग आपसमें बोलते हैं जूंका तूं वही सब डौल रहे और छाँव किसीकी न पड़े यह नहीं होनेका। मैंने उनकी

ठण्डी साँसकी फाँसका ठोका खाकर झुँझलाकर कहा—मैं कुछ ऐसा बड़ बोला नहीं जो राईको पर्वत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलकर उङ्गलियाँ नचाऊं और बेसुरी बेठिकानेकी उलझी-सुलझी तानें लिये जाऊँ। मुझसे न हो सकता तो भला मुंहसे क्यों निकालता? जिस ढबसे होता इस बखेड़को टालता। * * * अपना हाथ उठाकर मूंछोंको ताव देता हूं जो मेरे दाताने चाहा तो वह ताव भाव और हाव चाव और कूद फांद और लपट झपट दिखाऊं आपके ध्यानका घोड़ा जो बिजलीसे भी बहुत चञ्चल उचपलाहटमें है, देखतेही हरनके रूप अपनी चौकड़ी भूल जाय।"

यह तो हुआ उस कहानीके गद्यका नमूना। अब पद्यका भी लीजिये —
"घोड़े पे अपने चढ़के आता हूं मैं, करतब जो हैं सब दिखाता हूं मैं।
उस चाहनेवालेने जो चाहा तो अभी, कहता जो कुछ हूं कर दिखाता हूं मैं॥"

इस कविताका नाम आपने रखा है चौतुका। इंशाने अपनी यह कहानी केवल नवाब सआदतअलीखाँके चित्त विनोदार्थ लिखी थी, ठेठ हिन्दीके प्रचारके लिये नहीं। ठेठ हिन्दीके ठाठके विषयमें भी हमने समझा था, उसी ढङ्गकी दिल्लगी पण्डित अयोध्या सिंहने की होगी। पर इस अधखिले फूलको देखकर जान पड़ा कि वह इस भाषाके प्रचारके पक्षपाती हैं! उनकी ठेठ हिन्दीका कुछ नमूना उनकी पोथोमेंसे नीचे नकल कर देते हैं—

पहली पंखड़ी।

"बैशाखका महीना, दो घड़ी रात बीत गई है। चमकीले-तारे चारों ओर आकाशमें फैले हुए हैं, दूजका बालसा पतला चांद, पच्छिम ओर डूब रहा है, अन्धियाला बढ़ता जाता है, ज्यों-ज्यों अन्धियाला बढ़ता है, तारोंकी चमक बढ़ती जान पड़ती है। उनमें जोतसी फूट रही है, वह कुछ हिलते भी हैं, उनमें चुपचाप कोई-कोई कभी टूट पड़ते हैं, जिससे सुनसान आकासमें रह रहकर फुलझड़ी-सी छूट जाती है। रातका

सन्नाटा बढ़ रहा है, ऊमस बड़ी है, पौन डोलती तक नहीं, लोग घबरा रहे हैं, कोई बाहर खेतोंमें घूमता है, कोई घरकी खुली छतोंपर ठण्डा हो रहा है, ऊमससे घबराकर कभी-कभी कोई टिटिहरी कहां बोल उठती है।

भीतोंसे घिरे हुए एक छोटेसे घरमें एक छोटासा आंगन है, हम वहीं चलकर देखना चाहते हैं, इस घड़ी वहां क्या होता है। एक मिट्टीका छोटासा दीया जल रहा है, उसके धुंधले उजालेमें देखनेसे जान पड़ता है, इस आंगनमें दो पलंग पड़े हुए हैं। एक पलंगपर एक ग्यारह बरसका हंसमुख लड़का लेटा हुआ उसी दीयेके उजालेमें कुछ पढ़ रहा है। दूसरे पलंग पर एक पैंतीस-छत्तीस बरसकी अधेड़ इसतिरी लेटी हुई, धीरे-धीरे पंखा हांक रही है, इस पंखेसे धीमी-धीमी पौन निकल कर उस लड़के तक पहुंचती है, जिससे वह ऐसी ऊमसमें भी जी लगाकर अपनी पोथी पढ़ रहा है। इस इसतिरीके पास एक चौदह बरसकी लड़की भी बैठी है। यह एकटक आकाशके तारोंकी ओर देख रही है, बहुत बेर तक देखती रही पीछे बोली मा! आकाशमें वह सब चमकते हुए क्या हैं?

माने कहा, बेटी! जो लोग इस धरतीपर अच्छी कमाई करते हैं, मरनेपर वही लोग सरगमें बास पाते हैं, उनमें बड़ा तेज होता है, अपने तेजसे वह लोग सदा चमकते रहते हैं। दिनमें सूरजके तेजसे दिखलाई नहीं पड़ते, रातमें जब सूरजका तेज नहीं रहता, हम लोगोंको उनकी छवि देखनेमें आती है। यह सब चमकते हुए तारे सरगके जीव हैं, इनकी छटा निराली है, रूप इनका कहीं बढ़कर है। न इन लोगोंके पास रोग आता, न यह बूढ़े होते, दुख इनके पास फटकता तक नहीं। यह जो तारोंके बीचसे उजली धारसी दक्खिनसे उत्तरको चली गई है, आकाश गङ्गा है, इसका पानी बहुत सुथरा मीठा और ठंडा होता है, वह लोग इसमें नहाते हैं, मीठे अनूठे फलोंको खाते हैं, भीनी-भीनी महकवाले अनोखे फूल सूंघते हैं, भूख प्यासका डर नहीं, कमानेका खटका

नहीं, जब जो चाहते हैं मिलता हैं, जब जो कहते हैं होता है, सदा सुख चैनसे कटती है, इन लोगोंके ऐसा बड़भागी इस जगतमें और दूसरा कोई नहीं है।

उत्तर ओर यह जो अकेला चमकता हुआ तारा दिखलाई पड़ता है, जिसके आसपास और कोई दूसरा तारा नहीं है यह ध्रुव है। यह एक राजाके लड़के थे, इन्होंने बड़ा भारी तप किया था, उसी तपके बलसे आज उनको यह पद मिला हुआ है।

इन सरके ऊपरके सात तारोंको देखो, यह सातों रिखी हैं। इनमें ऊपरके चार देखनेमें चौखूंटे जान पड़ते हैं, पर नीचेके तीन कुछ-कुछ तिकोनेसे हैं। इन्हीं तीनोंमें जो बीचका तारा है, वह वसिष्ट मुनी हैं। उनके पासही जो बहुत छोटासा तारा दिखलाई पड़ता है, वह अरुन्धती हैं, यह बसिष्ट मुनीकी इसतिरी हैं। यह बड़ी सीधी, सच्ची, दयावाली, और अच्छी कमाई करनेवाली हो गई हैं, अपने पतीके चरनोंमें इनका बड़ा नेह था। इनकी भांति जो इसतिरी अपने पतीके चरनोंकी सेवकाई करती हैं, पतीकोही देवता जानती हैं, उन्हींकी पूजा करती हैं, उन्हींमें लव लगाती है, सपनेमें भी उनके साथ बुरा बरताव नहीं करतीं, भूलकर भी उनको कड़ी बात नहीं कहतीं, कभी उनके साथ छल-कपट नहीं करतीं, वह सब भी मरनेपर इसी भांत अपने पतीके साथ रहकर सरग सुख लूटती हैं।"

आकास, पच्छिम, अन्धियाला, मिट्टी, यह सब शब्द ब्रजभाषाके भी नहीं हैं। ब्रजभाषामें अकास, अंधियारा, मट्टी या माटी, कहा जाता है और 'इसतिरी' शब्द भी ब्रजभाषामें नहीं। अच्छी भाषा बोलनेवाले किसी प्रान्तमें इन शब्दोंको नहीं बोलते। किसी प्रान्तके बेपढ़े लोग बोलते हों, तो ऐसे शब्द साधारण भाषामें आने नहीं चाहियें। सिरको अयोध्यासिंहजीने 'सर' लिखा है। हिन्दीमें 'सर' नहीं होता। उर्दूवाले

भी 'सर' नहीं बोलते हैं, जहां फारसी तरकीब आ जाती है--जैसे 'सर दर्द'। खाली होता है तो 'सिर' बोलते हैं। पोथीकी भाषाका जो अंश ऊपर उद्धृत किया है, उसमें कई एक मुहावरे भी गलत हैं। "कोई घरकी खुली छतोंपर ठण्डा हो रहा है।" इस वाक्यका वह अर्थ नहीं है, जो अयोध्यासिंहजीने यहां लगाया है, वरञ्च हिन्दीमें आदमीके लिये ठण्डा होनेका अर्थ मर जानेसे है। "पंखा हांक रही है" न ब्रजभाषा है, न हिन्दी। हांकनाका प्रयोग गाय, बैल आदिके साथ होता है। "रातमें जब सूरजका तेज नहीं रहता हमलोगोंको उनकी छवि देखनेमें आती है।" यह भी गलत है। "देखनेमें आती" की जगह "दिखाई देती है" चाहिये। यदि "देखनेमें आती है" रखा जाय तो "हमलोगोंको" उसमें से निकाल देना होगा। भूख-प्यासका डर नहीं, कमानेका खटका नहीं, इसमें कमानेके साथ खटका चल नहीं सकता, क्योंकि खटकेका अर्थ आशंका है। "कमानेकी चिन्ता नहीं" या "कमानेका खटराग नहीं" कहा जा सकता है। "उत्तर ओर यह जो अकेला चमकता हुआ तारा दिखाई पड़ता है जिसके आस-पास और कोई दूसरा तारा नहीं है यह ध्रुव है।" एक ही वाक्यमें "तारा है" और ध्रुव है ठीक नहीं होता।" उनके पास ही जो बहुत छोटा-सा तारा दिखलाई पड़ता है वह अरुंधती है। * * * अपने पतिके चरणोंमें इनका बड़ा नेह था। एक ही वाक्यमें, एक ही शब्दके लिये एक वचनके साथ बहुवचन और वर्तमान-के साथ भूतकाल एकदम बेमेल है।

भूमिकामें अयोध्यासिंहजीने लिङ्ग-भेदके विषयमें जो बातें लिखी हैं, उनमें भी कई बातें ठीक नहीं हैं। "चाल चलन" सर्वत्र पुलिङ्ग है। आपने दिखाया है कि 'भारतमित्र'में "तुम्हारी चाल चलन" लिखा गया था। यदि ऐसा लिखा गया हो तो वह भी गलत है। धरती, घनी-घनी कुञ्ज बेलें लहलहा रही हैं, आब, आदि सब शब्द ब्रजभाषाके होनेपर भी

साधारण भाषामें चलते हैं, एक प्रांतीय नहीं हैं। 'लहलहाना' और 'घने' उर्दूमें भी चलते हैं। "न्यारी" शब्द साधारण हिन्दीमें चलता है,— उर्दूमें नहीं। "निगोड़ी" शब्द गंवारी नहीं है, शहरमें भी चलता है, पर स्त्रियोंकी बोलीमें। "भोली" शब्द तो उर्दूवाले भी खूब लिखते हैं। एक बात आपने भूमिकामें विचित्र लिखी है— "हिन्दी लिखनेमें ब्रजभाषाके शब्दोंसे छुटकारा नहीं मिल सकता।" खूब कही, जब हिन्दी ब्रजभाषासे बनी है तो वह ब्रजभाषाके शब्दोंको कैसे छोड़ सकती है? ब्रजभाषाके जो शब्द हिन्दीमें मिलकर देशव्यापी हो गये हैं, वह हिन्दीसे अलग नहीं हो सकते और जो शब्द ब्रजके गांवोंमें रह गये हैं उनके मिलानेकी कुछ जरूरत नहीं है।

बात बढ़ानेसे बहुत बढ़ जायगी। थोड़ेसे शब्दोंमें हम अपना मतलब समझा देते हैं। हमारे लिये इस समय वही हिन्दी अधिक उपकारी है, जिसे हिन्दी बोलनेवाले तो समझ ही सकें उनके सिवा उन प्रान्तोंके लोग भी उसे कुछ-न-कुछ समझ सकें जिनमें वह नहीं बोली जाती। हिन्दीमें संस्कृतके सरल-सरल शब्द अवश्य अधिक होने चाहियें, इससे हमारी मूल भाषा-संस्कृतका उपकार होगा और गुजराती, बङ्गाली मराठे आदि भी हमारी भाषाको समझनेके योग्य होंगे। किसी देशकी भाषा उस समय तक कामकी नहीं होती, जब तक उसमें उस देशकी मूल भाषाके शब्द बहुतायतके साथ शामिल नहीं होते। अयोध्यासिंहजी स्त्रीको "इसतीरी" मित्रको "मितर" स्वर्गको "सरग" शब्दको "सबद" आदि लिखके अपनी भाषाको सौ साल पीछे धकेलनेकी चेष्टा क्यों करते हैं?

पोथीकी कहानी अच्छी है। गंवारी शब्दोंको छोड़कर भाषा बहुत अच्छी है। ॥=) में खड्गविलास प्रेस बांकीपुरसे मिलती है।

—भारतमित्र, सन् १९०५ ई०।

गुलशने हिन्द

इस नामकी एक पुस्तक हमारे पास समालोचनाके लिये आई है। इसमें उर्दूके प्रसिद्ध कवियोंकी संक्षिप्त जीवनियां लिखी गई हैं। इसके लेखक मिरजाअली लुत्फ थे। उन्होंने यह पुस्तक सन् १८०१ ईस्वीमें जान गिलक्राइस्ट साहबकी आज्ञासे लिखी थी और अब १०५ वर्ष पीछे लाहोरमें छपकर हैदराबाद दक्षिणसे प्रकाशित हुई है।

इस पुस्तकके मिलनेकी घटना बड़ी विचित्र है। पांच वर्ष हुए हैदराबाद (दक्षिण) की नदीमें बाढ़ आई, इससे लाखों रुपयेकी हानि हुई। किसी बेचारेका पुस्तकालय बह गया था। उसकी पुस्तकें लोगोंने पानीमेंसे निकालीं और कौड़ियोंके मोल बेच डालीं। उन्हींमें यह पुस्तक भी थी। जिन सज्जनोंको यह पुस्तक मिली, उन्होंने मौलवी शिबलीको दिखाई। शिबली साहबने इसे बहुत पसन्द किया और स्वयं इसका सम्पादन किया। जहां कुछ भूल देखी ठीक कर दी और इस पर कुछ नोट भी लिख दिये।

मौलवी अब्दुलहक बी० ए० मदरसये आसिफियाके प्रिन्सपल हैं। उन्होंने इस पुस्तक पर एक बहुतही उत्तम भूमिका लिखी है। उससे इसकी बहुत कुछ आबरू बढ़ गई है। हम इस पुस्तक पर आलोचना करनेसे पहले कुछ बातें मौलवी अब्दुलहककी भूमिकासे लिखते हैं, जिनका जानना हिन्दीके पाठकोंके लिये भी बहुत आवश्यक है। पटना-निवासी अली इब्राहीम खांने १२ वर्षके परिश्रमसे सन् १७८४ ईस्वीमें उर्दू कवियोंकी एक जीवनी तैयार की थी। उसक नाम था 'गुलजारे इब्राहीम।' यह पुस्तक फारसीमें थी। उस उर्दूवाली पुस्तककी नींव, उसी फारसीवाली पुस्तकसे पड़ी, पर यह एकदम उसका अनुवाद नहीं है। अनुवादकर्त्ताने इसमें बहुत-सी बातें बढ़ाई हैं, जिससे यह एक नई पुस्तक बन गई है।

जब यह पुस्तक बनी, उस समय दिल्लीमें शाहआलम और लखनऊमें नवाब सआदतअली खांका शासन था। दिल्ली उजाड़ हो चली थी, पर लखनऊ आबाद था। दिल्लीके कवि लखनऊमें एकत्र होते जाते थे। उर्दू कविताकी उन्नतिका यही समय था। पर अवनतिका भी था। कारण यह कि एक ओर तो यह भाषा स्वच्छ होती जाती थी और दूसरी ओर फारसी वालोंके अनुकरणसे इसकी उन्नतिका मैदान सङ्कीर्ण होता जाता था। कवि लोग कविता उर्दूमें करते थे, पर चिट्ठी-पत्री फारसीमें चलती थी। उनकी कविताकी पुस्तक उर्दूमें होती थी, पर वह भूमिका उसकी फारसीमें लिखते थे। बीचमें कोई नोट करना होता था, तो वह भी फारसीमें। हकीमजीसे नुसखा लिखवाइये तो वह भी फारसीमें लिखते हैं। सरकारी दफ्तरोंमें भी फारसी थी, इससे उर्दू जरा आगे नहीं बढ़ सकती थी।

१६ वीं शताब्दिके आरम्भमें डाक्टर जान गिलक्राईस्टने फोर्ट विलियम कलकत्तेमें पुस्तकोंके लिये एक विभाग बनाया। उससे साहबका मतलब यह था कि जो अङ्गरेज भारतमें नौकरी करते हैं; उनकी शिक्षाके लिये उसमें उर्दूकी पुस्तकें तैयार कराई जावें। जिस प्रकार राजा टोडरमलकी चेष्टासे अकबरके दफ्तरोंमें फारसी जारी हुई थी, उसी प्रकार जान गिलक्राइस्टकी चेष्टासे उर्दूने अंगरेजी दफ्तरोंमें स्थान पाया। जान गिलक्राइस्टने उर्दूमें बहुत-सी पुस्तकें लिखवाई। गद्य-उर्दूका लिखा जाना उसी समयसे आरम्भ हुआ।

फोर्ट विलियम कालिजमें जो पुस्तकें लिखी गई, उनमेंसे प्रसिद्धका वर्णन इस प्रकार है—

सैयद मुहम्मद हैदरबख्श हैदरीने सन् १८०१ ईस्वीमें तोता कहानी लिखी। मूल पुस्तक संस्कृतमें थी। इब्ननिशातीने उसे दक्षिणी भाषामें लिखा था। दक्षिणीसे वह फिर उर्दूमें लिखी गई। हातिमकी कहानी

भी जिसका नाम 'अराइशे महफिल' है हैदरबखशहीने लिखी थी। एक और पुस्तक मुसलमान धर्म्म सम्बन्धी लिखी। फारसीकी प्रसिद्ध पुस्तक 'बहार दानिश' का अनुवाद किया और 'गुलजार दानिश' उसका नाम रखा! 'तारीख नादिरी' नामकी एक और पुस्तक भी लिखी थी।

मीर बहादुरअली हुसेनीने 'बदरे नजीर बेमुनीर'की कहानीको उर्दू पद्यमें लिखा और उसका नाम 'नस्रे बेनजीर' रखा। एक और पुस्तक अखलाके हिन्दीके नामसे लिखी, जो फारसीकी पुस्तक 'मुफर्रहउल कुलूब' की छाया पर लिखी थी। 'मुफर्रहउल कुलूब' संस्कृतके पञ्चतन्त्रकी छाया है। यह दोनो पुस्तकें सन् १८०२ ई० में लिखी गईं।

दिल्ली निवासी मीर अमन जो अहमदशाह दुर्रानीकी तबाहीके समय दिल्ली छोड़कर पटनेमें आ बसे थे, वहांसे वह भी सन् १८०१ ईस्वीमें कलकत्ते पहुंचे और उन्होंने यहां अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बागोबहार'के लिखनेकी नींव डाली। यह पुस्तक सन् १८०१-२ में लिखी गई। १६ वीं शताब्दिके आरम्भमें दिल्लीकी जो भाषा थी, उसका यह पुस्तक उच्च आदर्श थी। अमीर खुसरोकी फारसी पुस्तक 'चहार दरवेश'से यह पुस्तक लिखी गई। पर मीर अमनने उस पुस्तकसे इसका अनुवाद नहीं किया। वरञ्च उनसे पहले इटावा निवासी तहसीनने अमीर खुसरोकी पुस्तकसे 'नौतर्जे रिन्सा' नामकी एक पुस्तक लिखी थी, उससे मीर अमनने यह पुस्तक उत्तम उर्दूमें लिखी। अखलाके 'मोहसिनी'के ढङ्ग पर एक किताब 'गञ्जखूबी' उसी जमानेमें अमनने लिखी। मीर अमनकी पुस्तक 'बागोबहार' उर्दू गद्यकी सबसे पहली और उत्तम पुस्तक समझी जाती है।

हफीजुद्दीन अहमद फोर्टविलियम कालिजमें प्रोफेसर थे। सन् १८०३ ईस्वीमें अबुलफजलकी फारसी पुस्तक 'इयारेदानिश' का उर्दू अनुवाद किया और उसका नाम "खिरद अफरोज" रखा। मूल पुस्तक संस्कृत पञ्चतन्त्र है और अरबीमें उसका नाम 'कलेला दमना' है।

मीर शेरअली अफसोस भी इसी मण्डलीमें थे। दिल्ली-निवासी थे। ११ वर्षकी अवस्थामें अपने पिताके साथ लखनऊ आये। गिलक्राइस्ट साहबने कई एक अच्छी उर्दू जाननेवाले लखनऊसे बुलाये थे। लखनऊके रेजीडेण्ट स्काट साहबने शेर अलीको चुना, दो सौ रुपये महीने तनखाह नियत करके, ५०० रु० मार्गके व्ययके लिये देकर कलकत्ते भेजा। वह सन् १८०० ईस्वीमें कलकत्ते पहुंचे और ९ वर्ष पीछे मर गये। इन्होंने "आराइशे महफिल" नामकी एक आदरके योग्य पुस्तक लिखी थी। इसमें हिन्दुस्थानकी बहुत-सी बातें लिखी थीं, यह सुजानरायकी पुस्तक 'खुलासतु तवारीख'से बनाई गई थी। मरनेसे एक वर्ष पहले सन् १८०८ ईस्वीमें इन्होंने सादीकी गुलिस्तांका उर्दू अनुवाद 'बागे उर्दू' के नामसे किया।

नेहालचन्द्रने सन् १८०४ ई० में गुलेबकावली गद्य उर्दूमें लिखी और उसका नाम 'मजहबेइश्क' रखा।

कासिमअली जवान दिल्लीके थे। लखनऊ गये और वहांसे सन् १८०० ईस्वीमें कलकत्तेके फोर्टविलियम कालिजमें आये। उन्होंने सन् १८०२ ईस्वीमें शकुन्तलाकी कहानी उर्दूमें लिखी। नवाज कविने ब्रजभाषामें सन् १७१६ ईस्वीमें शकुन्तलाकी कहानी लिखी थी। उसीका यह अनुवाद है। उन्होंने एक बारहमासा लिखा था। उसमें हिन्दू मुसलमानोंके तेहवारोंका वर्णन है। उसका नाम 'दस्तूरे हिन्द' रखा और वह सन् १८१२ ईस्वीमें छपा।

इकरामअलीने एक अरबी पुस्तकसे उर्दूमें 'इखवानुस्सफा' नामकी एक पुस्तक सन् १८१० ईस्वीमें लिखी। इसमें आदमी और जानवरोंका झगड़ा, जिनोंके बादशाहके सामने फैसला कराया है।

श्री लल्लूलालजी गुजराती ब्राह्मण थे, उत्तर भारतमें आकर बस गये थे। उन्होंने फोर्ट विलियम कालिजके निरीक्षणमें हिन्दीकी कई पुस्तकें

लिखी थीं। जैसे 'प्रेमसागर' 'राजनीति और लतायफे हिन्दी' आदि। 'सिंहासनबत्तीसी' लल्लूजी और जवानने मिलकर सन १८०१ ईस्वीमें लिखी, आधी उर्दू आधी हिन्दी है।

मजहरअली विलाने 'बैतालपचीसी' लिखी। उसकी भाषा भी सिंहासनबत्तीसी-सी है। मजहर अलीकी सहायतासे माधवानलकी कहानी ब्रजभाषासे उर्दूमें लिखी गई।

स्वयं गिलक्राइस्टने भी १८०१ ईस्वीमें उर्दूका एक कोष लिखा और कुछ उर्दू भाषाके नियम भी लिखे। इससे पहले फर्गुसन साहबने उर्दूका एक कोष लिखा था, पर वह अधूरा था। सन् १७७३ ईस्वीमें लन्दनमें छपा था। फिर जनरल विलियम कर्क पेट्रिकने एक डिक्शनरी लिखना आरम्भ किया। इसके इन्होंने तीन भाग किये थे। पहले भागमें वह शब्द थे, जो अरबी-फारसीसे हिन्दीमें आये। यह भाग सन् १७८५ ई० में लन्दनमें छपा। शेष दो भाग नागरी टाइपके अभावसे नहीं छपे। नागरी टाइप जल्द बन न सका। लन्दनसे भारतमें आकर उन्होंने देखा कि डाक्टर गिलक्राइस्ट भी इसी काममें लगे हुए हैं, उन्होंने चाहा कि दोनों मिलकर काम करें, पर कामोंकी अधिकतासे पीछे वह अलग हो गये।

डाक्टर गिलक्राइस्टने 'अंगरेजी हिन्दुस्थानी कोष'का पहला भाग सन् १७९८ ईस्वीमें छपवाया। दूसरा भाग हिन्दुस्थानी अंगरेजी पूरा न कर सके, जिसका एक कारण यह भी था, खर्चका अन्दाजा कोई ४० हजार रुपये लगाया गया था और ग्राहक मिले थे कुल ७०। इससे दुःखके साथ उन्होंने यह काम छोड़ दिया। अन्तमें सन् १८०८ ई०में डाक्टर टेलरने एक हिन्दुस्थानी अंगरेजी कोष बनवाया और विलियम हण्टर साहबने नजरसानी कराके फिरसे छपवाया।

फोर्बसका कोष १८४७ ईस्वीमें लन्दनमें छपा। फ्रांसीसी बर्टरेण्ड साहबने पेरिसमें एक कोष सन् १८५८ ईस्वीमें छपवाया। ब्राइसका कोष

सन् १८६४ ईस्वीमें लन्दनमें छपा। एक कोष प्लेटने लिखा था! पीछे डाक्टर फालेनने उर्दूके कई कोष लिखे। उनकी हिन्दुस्थानी अंगरेजी डिक्शनरी सबसे भली है। यहां तक कि पीछे उर्दू जाननेवालोंने भी जो कोष लिखे हैं, उनमें डाक्टर फालेनके ढङ्गपर ही चले हैं।

मौलवी अब्दुलहककी भूमिकासे तीन बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि युरोपियन विद्वानोंने उर्दूकी उन्नतिके लिये बहुत कुछ चेष्टा की, और कराई, और उर्दूमें गद्य लिखनेकी रीति जारी की, और उसके अधिक प्रचारके लिये उसे अंगरेजी दफ्तरोंमें दाखिल कराया। दूसरी बात यह है कि उर्दू गद्यकी नींव कलकत्तेके फोर्ट विलियममें पड़ी और इसी प्रकार हिन्दी गद्यकी प्रधान और पहली पुस्तक प्रेमसागर भी कलकत्तेमें ही बनी। हिन्दीके लिये भी अंगरेजोंने कुछ चेष्टा की थी और लल्लू-लालजीसे कई पुस्तकें लिखवाई थीं। पर अंगरेजी दफ्तरोंमें वह न जा सकी, इसी कारण उस समय उसकी वैसी उन्नति न हो सकी जैसी उर्दूकी हुई। इस समय हिन्दीने जो कुछ उन्नति की है, आपहीकी है। किसीकी सहायता इसे कुछ भी न मिली। युक्तप्रदेशमें इसे केवल इतनी सहायता मिली थी कि यह भी उर्दूके साथ किसी-किसी मौकेपर सरकारी दफ्तरोंमें रहे। उतनेहीमें मुसलमान बिखर गये। इससे स्पष्ट है कि आगे भी हिन्दी जो कुछ करेगी स्वयं करेगी। किसीकी सहायता-वहायता इसे न मिलेगी।

इस पुस्तक गुलशनेहिन्दके विषयमें हमें और लिखना पड़ेगा। क्योंकि अभी उसकी भूमिकाकी बात भी पूरी नहीं हुई है। यहां केवल इतना ही कहना है कि जो हिन्दीके प्रेमी उर्दू पढ़ सकते हैं, वह इसकी एक-एक प्रति जरूर खरीद लें, इससे उन्हें हिन्दीका १०० वर्ष पहलेका इतिहास जाननेमें खूब सहायता मिलेगी। यह १।) में अब्दुलहखां साहब, कुतुबखाना आसफिया, हैदराबाद-दक्षिणसे मिलती है।

—भारतमित्र, सन् १९०७ ई०।

॥ श्रीः ॥

स्फुट-कविता

देव-देवी स्तुति

जय रामचन्द्र

(१)

जयति जयति जय रामचन्द्र रघुवंश-विभूषन ।
भक्तन हित अवतार धरन नाशन भव-दूषन ॥
जयति भानुकुल भानु कोटि ब्रह्माण्ड प्रकाशन ।
जयति जयति, अज्ञान-मोह-निशि-तिमिर विनाशन ॥
जय निज लीला-वश वपु धरन,
करन जगत कल्यानमय ।
जय कर-धनुशर तूनीर-कटि,
सिया सहित श्रीराम जय ॥

(२)

शिव विरञ्चि अहिराज पार कोऊ नहिं पावैं ।
सनकादिक शुक नारद शारद ध्यान लगावैं ॥
मुनिगन जोग समाधि करहिं बहुविधि जा कारन ।
तदपि रूप वह सकहिं न करि उर अन्तर धारन ॥
सो अखिल ब्रह्म शिशुरूप धरि,
खेलत दशरथके सदन ।

कौशल्या निरखत मुदित मन,
जयति राम आनन्द घन ॥

(३)

सहित अनुज बन बीच करी मुनिमख रखवारी ।
मारग जात निहारि नार पाथरकी तारी ॥
जनकपुरी महं जाय यज्ञको मान बढ़ायो ।
नृपति प्रतिज्ञा राखि सीयको मन हुलसायो ॥
शिव चाप तोरि खल नृपनको,
मान दर्प चूरन कस्यो ।
अरु भृगुकुल कमल पतङ्गको,
चाप खैंचि संशय हस्यो ॥

(४)

सुन विमातके वचन तुरत वनको उठ धाये ।
रुदित छोड़ि पितु मात प्रजा, मन सोच न लाये ॥
अवध तजनको खेद नाहिं धन धाम तजन कर ।
किन्तु भरतको ध्यान एक उर माहिं निरन्तर ॥
जय जटाजूट कर धनुष शर,
अङ्ग भस्म बलकल-वसन ।
सिय अनुज सहित वन गमन करि,
पिता वचन पालन करन ॥

(५)

नेही जानि निषाद नीच छातीसों लायो ।
लछमन सम प्रिय भाषि प्रेमसों हियो जुड़ायो ॥
स्वाद बखानि बखानि भीलिनीके फल खाये ।
निज करपङ्कज ताहि दाह कर आगे धाये ॥

परस्यो कर सीस जटायु निज,
धाम ताहि छनमें दयो ।
जय पवन-सुवनकी प्रीति लखि,
अङ्ग अङ्ग पुलकित भयो ॥

(६)

सुग्रीवहिं लखि दुखी आपनी दशा बिसारी ।
फरकहि भुजा विशाल देह थहरावत सारी ॥
एक बानसों मारि बालि सुरधाम पठायो ।
तारा कहं परबोधि भक्तको कष्ट मिटायो ॥
जय बालिसुतहि पायक करन,
निरखि जाहि पुलकित हियो ।
करि तिलक माथ कपिरायके,
भीत-रङ्क राजा कियो ॥

(७)

छाड़ि गेह अरि-भ्रात आय चरनन सिरनायो ।
अग्रजके डर डर्यो मनहिं अतिही सकुचायो ॥
चितवतही एकबार अहो ! पलटी ताकी गति ।
लात खायके कह्यो भयो छनमें लङ्कापति ॥
दससीस मारि महिभार हरि·
असुरन दीन्हीं विमल गति ।
जय जयति राम रघुवंशमनि,
जाहि दीन पर नेह अति ॥

(८)

देवराज भये मुदित अमरपुर बजत बधाई ।
बजहिं दुन्दुभी, भीर बिमाननकी नभ छाई ॥

सुरबाला सब मुदित अङ्ग फूली न समावैं।
फूलन वर्षा होय देवगण अस्तुति गावैं॥
त्रसित जिये बहुकाल प्रभु!
असुर मार दीन्हीं अभय।
अब जाय अवध परतोषिये,
जयति राम रघुवीर जय॥

(९)

पूरन शशि जिमि निरखि उदधि बाढ़त तरङ्गनों।
देखि घटा घनघोर मोर नाचत उमङ्गसों॥
तैसो आज अवध-सुख उमड़त नाहिं समावत।
निरखि राम रिपु जीति भ्रात सीता सँग आवत॥
प्रमुदित गुरु जननी नारि नर,
सुख न जात केहुकौ कह्यौ।
अरु भ्रात शिरोमनि भरतकं,
मोद जलधि हियमें बह्यो॥

(१०)

हम प्रभु दीन मलीन हीन सब भांति दुखारी।
धर्म रहित धन रहित ध्यानच्युत बहु अविचारी॥
यद्यपि न काहू भांति सुखी भोगत करमन फल।
सोचि-सोचि निज दशा भर्यो आवत आँखिन जल॥
पैं तदपि होत सूखो हियो,
हर्थ्यो, सुमरि दिन आजको।
राजतिलक हियमें बसौ,
श्रीरामचन्द्र महाराजको॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, ८ अक्टूबर १८९४ ई०

श्रीराम-स्तोत्र

अब आये तुम्हरी सरन "हारेके हरिनाम।"
साख सुनी रघुवंशमनि "निर्बलके बल राम ॥"
जब लौं निजबल-मद रह्यौ सर्‌यो न गजको काम।
निर्बल ह्वै जब हरि भज्यो धाये आधे नाम ॥
छलबल करत कपीसको मिट्यो न नाथ कलेस।
निर्बल ह्वै जब पद गहे भयो बालिको सेस ॥
दीन सुदामाके किये छनमहँ कञ्चन धाम।
दसरथ गति भई गीधकी जपत नाथको नाम ॥
दीन होय आयो सरन खाय भ्रातकरि लात।
कियो लङ्कपति अङ्क भरि रिपु दसमुखको भ्रात ॥
पतिगन गुरुजन सब रहे अरु भरपूर समाज।
नाथ न कोऊ रख सक्यो द्रुपदसुता करि लाज ॥
आरत ह्वै जब तुम भजे हे कृपालु रघुवीर।
दुःशासन निर्बल कियो ढाई गजके चीर ॥
जपबल तपबल बाहुबल चौथो बल है दाम।
हमरे बल एकौ नहीं पाहि पाहि श्रीराम ॥
अपने बल हम हाथकी रोटी सकत न राख।
नाथ बहुरि कैसे भरैं मिथ्या बल करि साख ॥
सेल गई बरछी गई गये तीर तरवार।
घड़ी छड़ी चसमा भये छत्रिनके हथियार ॥
जो लिखते अरि-हीय पै सदा सेलके अङ्क।
झपत नैन तिन सुतनके कटत कलमको डङ्क ॥

कहां राज कहं पाट प्रभु कहां मान सम्मान !
पेट हेत पायन परत हरि तुम्हरी सन्तान ।।
आज विजय-दसमी भई तुम्हरो रघुकुल राय ।
सोचत सोचत निज दशा छाती फाटी जाय ।।
नहिं उमङ्ग नहिं हर्ष कछु नहिं उछाह नहिं चाव ।
उदासीनताको छयो चारहु ओर प्रभाव ।।
नाचत नाहिं तुरङ्ग कहुं नहिं हाथिन पैं भूल ।
चमकत नाहिन खड्ग कहुं बरसत नाहिन फूल ।।
जिनके छत्रनपर रही तरिवारन करि छांह ।
अभय सबनको करत ही जिनकी लम्बी बांह ।।
सो विस्वम्भरनाथके चरनन महं सिर नाय ।
घटतीके दिन मार मन चुपके रहे बिताय ।।
जिनके करसों मरन लौं छुट्यो न कठिन कृपान ।
तिनके सुत प्रभु पेट हित भये दास दरवान ।।
जहां पेटको भींखिबो तहां कौनको चाव ।
नाथ पुकारे कहत हैं तुमसों कहा दुराव ।।
ऐसे ही तपबल गयो भये हाय ! श्रीहीन ।
निस दिन चित चिन्तित रहत मन मलीन तन छीन ।।
घर बैठे खोयो सबै कर्म्म धर्म्म व्रत नेम ।
कलि विषयन महं बूड़िकै भूले प्रभुपद प्रेम ।।
जाति दई सद्गुण दये खोये वरन विचार ।
भयौ अधम हूतें अधम हमरो सब व्यवहार ।।
विश्वामित्र वसिष्ठके वंशज हा ! श्रीराम !
शव चीरत हैं पेट हित ! अरु बेचत हैं चाम ।।
झूठि मलेच्छनकी हहा ! खात सराहि सराहि ।

और कहा चाहो सुन्यो त्राहि त्राहि प्रभु त्राहि ॥
जिनको अस व्यवहार प्रभु जिनकी ऐसी चाल।
तिनको तपबल आप तुम बूझो दीनदयाल ॥
तहां टिकै क्यों बाहुबल जिन घर मेवा फूट।
बल बपुरो कैसे रहे जाय बाहु जब टूट ॥
जहां लरें सुत बाप संग और भ्रातसों भ्रात।
तिनके मस्तकसों हटै कैसे परकी लात ॥
लरि लरि अपनो बाहुबल खोयो कृपानिधान।
आप मिटै तौहू नहीं मिटी लरनकी बान ॥
अरु जो पूछौ दाम बल पल्लै नाहिं छदाम।
पै दामहुके फेर महं भूले तुम्हारो नाम ॥
निस दिन डोलत दाम लगि कूकुर काक समान।
जन्म बितावत प्रेत जिमि कृपासिंधु भगवान ॥
हमरे जीवनमांह प्रभु अब सुखको नहिं लेस।
लेख भालको बन रहे चिन्ता दुःख कलेस ॥
चितवत जागत स्वप्न महं चिन्ता रहत अपार।
कब लौं ऐसन बीति है नाथ दया आगार ॥
धर्म्म न अर्थ न कामके नाहिं रामसों प्यार।
ऐसे जीवन पोचकहं बार-बार धिक्कार ॥
नाहिन पार बसात कछु बुद्धि करत नहिं काम।
सूझत नाहिं सुपन्थ प्रभु दया करो श्रीराम ॥
राम ! आप बिन को गहे परे गिरे को हाथ ?
नाथ अनाथनके सदा तुमहीं हो रघुनाथ ॥
बूड़त हैं भवसिंधुमहं बेगि उबारो राम।
नाथ आपसो दूसरो नाहिं हितू निसकाम ॥

हम कोऊ लायक नहीं सब लायक प्रभु आप।
दीनहु ते अति दीन हैं वेगि मिटावहु ताप॥
तुम बिन प्रभु को दूसरो बिगरी देहि बनाय।
दया करो फेरो दशा होहु कृपालु सहाय॥
राजपाट धन बल गयो जावहु कृपा निधान।
पै न जाय यह अरज है तुम्हरे पदको ध्यान॥
हियसों नाथ न बीसरे कबहु रामको राज।
हिन्दूपन पै दृढ़ रहै निस दिन हिन्दुसमाज॥
यद्यपि हम-सो दूसरो नाथ नाहिं बेकाम।
पै हियतै मत बीसरो "निर्बलके बल राम"॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, २ अक्टूबर १८९६ ई०

राम भरोसा।

राम तुम्हारो नाम सुन्यो तुम देखे नाहीं।
कैसे हो तुम यहै सोच हमरे मनमाहीं॥
वेदन और पुरानन तव लीला बहु गाई।
सुनी पढ़ी हम हू कितनी तुम्हरी प्रभुताई॥
त्रेतायुगमहं भयो सुन्यो हम राज तुम्हारो।
और सुन्यो यह जगत बन्यो तुमहींते सारो॥
कृत त्रेता द्वापर कलि इन चारहु जुगमाहीं।
अचल राज महाराज तुम्हारो रहत सदाहीं॥
रवि ससि ब्रह्मा इन्द्र अन्त सबहीको आवै।
रामराजको पार किन्तु कोऊ नहिं पावै॥
कला नसै चादनी छीन ह्वै ससि हो कारो।
पै दूनो दूनो चमकै प्रभु राज तुम्हारो॥

हाथ जोर यक बात आज पूछ तुम पाहीं।
अब हूं हे प्रभु! राज तुम्हारो है वा नाहीं॥
सुन्यो दिव्य तव राज, दिव्य लोचन कहं पावैं।
जासों वह सुख अनुभव करि आनन्द मनावैं॥
आप दयाकर राज आपनो देहु दिखाई।
हम तो आंधर भये हमें रघुनाथ दुहाई॥
तुमहिं करो प्रभु दया तुमहिं जासो हम जानहिं।
गुणस्वरूप तुम्हरो अपने उर अन्तर आनहिं॥
सुन्यो तुम्हारो राज हतो दुखहीन सदाहीं।
दीन दुखो वामें ढूंढ़ेहू मिलते नाहीं॥
अङ्गहीन तन-छीन रोग सोकनके मारे।
कबहु न कोऊ सुने राम प्रभु राज तुम्हारे॥
और सुनी हम राज तुम्हारे भयो न कोई।
अन्नहीन जलहीन प्राण त्याग्यो जिन होई॥
पूत पिताके आगे काहूको नहिं मरतो।
राज तुम्हारे पुत्रसोक कोऊ नहिं करतो॥
और सुनी हम चोर जार लम्पट अन्याई।
सके न कबहूं रामराजके निकटहुं जाई॥
कबहुं न पर्‍यो अकाल मरी कबहूं नहिं आई।
अन्नहीन तृनहीन भूमि नहिं दई दिखाई॥
वायु बह्यो अनुकूल इन्द्र बहु जल बरसायो।
सुखी रहे सब लोग रह्यो नित आनंद छायो॥
धर्म्म कर्म्म अरु वेद गाय बिप्रनको आदर।
रह्यो तुम्हारे राज सदा प्रभु सब बिधि सुन्दर॥
पै हमरे नहिं धर्म्म कर्म्म कुल कानि बड़ाई।

हम प्रभु लाज समाज आज सब धोय बहाई ॥
मेटे वेद पुरान न्याय निष्ठा सब खोई।
हिन्दूकुल-मरजाद आज हम सबहि डबोई ॥
पेट भरन हित फिरें हाय कूकुरसे दर दर।
चाटहिं ताके पैर लपकि मारहिं जो ठोकर ॥
तुम्हीं बताओ राम तुम्हैं हम कैसे जानैं ॥
कैसे तुम्हरी महिमा कलुषित हियमहं आनैं ॥
किन्तु सुने हम राम अहो तुम निरबलके बल।
यही रही है हमरे हियमहं आसा केवल ॥
गुह निषाद हम सुन्यो राम छातीतें लायो।
माता मम भिल्लनी गीध जिमि पिता जरायो ॥
यह हिन्दूगन दीन छीन हैं सरन तुम्हारे।
मारो चाहे राखो तुमही हो रखवारे ॥
दया करो कछु ऐसी जो निज दसा सुधारैं।
तुम्हरो उत्सव एकबार पुनि उरमहं धारैं

—हिन्दी-बङ्गवासी, २४ अक्टूबर सन् १८९८ ई०

हे राम

आज एक बिनती करैं तुमसों रघुकुलराय
कौन दोस लखि नाथ तुम दियो हमहिं बिसराय ॥
अथवा हमहीं आप कहं भूले डोलत नाथ।
चरण कमलमें नाथके अब नहिं हमरो माथ ॥
सांची को दोहूनमें दीजे हमैं बताय।
तुम भूले वा हम फिरहिं निज नाथहिं बिसराय।
जो प्रभु हम कहं चित्तसों दीयो नाहि बिसारि।
तौ केहि कारण आज यह दुर्गति नाथ हमारि ॥

केहि कारण पावत नहीं आधे पेटहु नाज।
कौन पापसों वसन बिन ढकन न पावहिं लाज ॥
सीत सतावत सीत महं अरु ग्रीसम महं घाम।
भीजतही पावस कटत कौन पापसों राम ?
केते बालक दूधके बिना अन्नके कौर।
रोय रोय जी देत हैं कहा सुनावें और ॥
कौन पापतें नाथ यह जनमत हम घर आय।
दूध गयो पै अन्नहू मिलत न तिनकहं हाय ॥
केते बालक डोलते माता पिता बिहीन।
एक कौरके फेर महं घर घर आगे दीन ॥
मरी मातकी देहकों गीध रहे बहु खाय।
ताहीसों यक दूधको सिसू रह्यो लपटाय ॥
जहं तहं नर कङ्कालके लागे दीखत ढेर।
नरन पसुनके हाड़सों भूमि छई चहुं फेर ॥
हरे राम केहि पापते भारत भूमि मझार।
हाड़नकी चक्की चलैं हाड़नको व्यापार ॥
अब या सुखमय भूमि महं नाहीं सुखको लेस।
हाड़ चाम पूरित भयो अन्न दूधको देस ॥
बार बार मारी परत बारहिं बार अकाल।
काल फिरत नित सीस पै खोले गाल कराल ॥
यह दुर्गति नर देहकी कौन पापते राम।
साच कहो क्या होइ है अब हमरो परिनाम ॥
बार बार जियमें उठत अब तो यहै विचार।
ऐसे जीवन ख्वार पै लाख लाख धिक्कार ॥
फिरत पेटके फेर महं सूकर स्वान समान

केहि कारन नरतनु दियो कृपासिन्धु भगवान ॥
हमरे नर तनुते भले कीट पतङ्ग बिहङ्ग ।
हमरे नर तनुते भले बानर भालु कुरङ्ग ॥
साख सुनी हम रामप्रभु जोर आपको पाय ।
यक बानर गढ़लंक महं दीनी लंक जलाय ॥
और सुनी कपि सेन पुनि चढ़ी लङ्क पै धाय ।
पाथर खोदि समुद्र पै सेतु दियो फैलाय ॥
कांप उठे राछस सबै डगमग डोली लंक ।
फिरत रामके जोरमें बानर भालु निसंक ॥
खर्व कियो दससीसको गर्ब आप महाराज ।
सुरगनकी चाही करी दियो विभीखन राज ॥
और सुनी हम गीध इक लख्यो तुम्हारे हेत ।
जबलों तन महं बल रह्यो तज्यो नाहिं रन खेत ॥
बानर गीधहुंते गये प्रभु हम नरतनु पाय ।
नाथ तुम्हारे एकहू काम न आये हाय ॥
नाथ कबहुं कछु आइहैं हमहूं तुम्हरे काम ।
ऐसो अवसरहूं कबहुं पावेंगे हम राम ॥
तुम नहिं भूले रामप्रभु हमहीं भूले हाय ।
जहां तहां मारे फिरैं तुमसो नाथ बिहाय ॥
तन महं शक्ति न हीयमहं भक्ति हमारे राम ।
अधम निकम्मे आलसी पाजी डीलहराम ॥
डूबत अम्बु-अगाध महं बेगि उबारो आय ।
हम पतितन को नाथ बिन — नाहिन आन उपाय ॥
अब तुमसों बिनती यहै राम गरीबनवाज ।
इन दुखियन अंखियान महं बसै आपको राज ॥

देव-देवी स्तुति

जहं मारीको डर नहीं अरु अकालको त्रास ।
जहां करैं सुख सम्पदा बारह मास निवास ॥
जहां प्रबलको बल नहीं अरु निबलनकी हाय ।
एक बार सो दृश्य पुनि आंखिन देहु दिखाय ॥
करहिं दसहरो आपको दुःख ताप सब भूल ।
पुनि भारत सुखमय करौ होहु राम अनुकूल ॥
पुनि हिन्दुन के हीयको बाढ़ै हर्ष हुलास ।
बने रहैं प्रभु आपके चरण कमल के दास ॥

—भारतमित्र, १ अक्टूबर १९०० ई०

राम-विनय

अबलों हम जीवत रहे लै लै तुम्हरो नाम ।
मोहू अब भूलन लगे, अहो राम गुनधाम ॥
कर्म्म धर्म्म संयम नियम जप तप जोग विराग ।
इन सबको बहु दिन भये खेलि चुके हम फाग ॥
धनबल, जनबल, बाहुबल, बुद्धि विवेक विचार ।
मान तान मरजादको बैठे जूओ हार ॥
हमरे जाति न वर्न है नहीं अर्थ नहिं काम ।
कहा दुरावैं आपसे, हमरी जाति गुलाम ॥
बहु दिन बीते राम प्रभु खोये अपनो देस ।
खोवत हैं अब बैठकै भाषा भोजन भेस ॥
नहीं गाँवमें झूंपड़ो नहिं जंगलमें खेत ।
घरही बैठे हम कियो अपनो कञ्चन रेत ॥
पसु समान बिडरत रहैं पेट भरनके काज ।

याहीमें दिन जात हैं सुनिये रघुकुलराज ॥
दो दो मूठी अन्न हित ताकत पर मुख ओर।
घरहीमें हम पारधी घरहीमें हम चोर ॥
तौहू आपसमें लड़ें निसदिन स्वान समान।
अहो! कौन गति होयगी आगे राम सुजान?
घरमें कलह विरोधकी बैठे आग लगाय।
निसदित तामें जरत हैं जरतहि जीवन जाय ॥
विप्रन छोड्यो होम तप अरु छत्रिन तरवार।
बनिकनके पुत्रन तज्यो अपनो सद्व्यवहार ॥
अपनो कछु उद्यम नहीं तकत पराई आस।
अब या भारतभूमिमें सबै बरन हैं दास ॥
सबै कहैं तुम हीन हो हमहु कहैं हम हीन।
धक्का देत दिनानकों मन मलीन तन छीन ॥
कौन काज जनमत मरत पूछत जोरे हाथ?
कौन पाप यह गति भई हमरी रघुकुलनाथ?

—भारतमित्र, १५ अक्टूबर १९०४ ई०

दुर्गा-स्तुति

(भगवान शङ्कराचार्य्यके 'देव्यापराधक्षमापन स्तोत्र' की छाया)

(१)

जानत हूं कछु मन्त्र न जन्त्र न जानत अस्तुति रीति तिहारी।
जानत हूं आह्वान न ध्यान न पूजा अर्चाकी खरी बिधि सारी।
जानत मुद्राकी रीति कछू न कछू भाषन परितोषन भारी।
पै यह जानत हूं जननी अवलम्ब तुम्हारो सदा दुखहारी ॥

(३)

दीन मलीन न मोपे कछू निधि ताहू पै हों विधिसों अज्ञानी।
डोलत तो पद पंकजसों च्युत देहधरे नित आलस-सानी।
मेरे सबै अपराध छमौ अहो लोकउधारिनी मात भवानी।
पूत कपूत कढै कबहूं पर मात कुमात नहीं जग जानी॥

केतहु पूत तिहारे अहैं वसुधापै अरी बहुधा बहु ज्ञानी।
हौं तिनमें अरी केवल एक फिरूं खल चञ्चलताईकी खानी।
याहीके हेत बिडारिबो दीनको जोग नहीं तोहिको कल्यानी।
पूत कपूत कढै कबहूं पर मात कुमात नहीं जग जानी॥

(४)

हे जगदम्ब न पायनमें तुम्हरे मैं धरी कबहूं मन बानी।
नाहिन मात कभौं बहु द्रब्य पदारथ लै कछु भेट है आनी।
तापर नेह तुम्हारो अनूपम देखतहो मन निश्चय जानी।
पूत कपूत कढै कबहूं पर मात कुमात नहीं जग जानी॥

(५)

देव तजे सबरे, विधि-संजत पूजन सेवनसों अकुलाई।
बीत गई बिडरात अहो मम आयु पचासीहुसों अधिकाई॥
देवि दया करिकै अब जो लइहो नहिं दासहुको अपनाई।
तौ गणनायक-मात बिना अवलम्ब रहौं किहिके ढिग जाई ?

(६)

स्वापचहू चरवाक बने जननी मधुबोल उचारन वारो।
रंक बिहाय अतंक सबै सो फिरै निधि कोटिनमें मतवारो॥
ताको प्रतच्छ प्रभाव अहै जो परै श्रुतिमें इक मन्त्र तिहारो।
जाप करै विधिसों तुम्हरो नहिं जान सकै फलको तिहि सारो॥

(७)

अंग भभूत लगाय किये विषपान फिरैं चहुं ओर उघारो।
माल भुजङ्गनकी गर डारि जटानको भार धस्यो सिर भारो॥
भूतन ईस कपाली सदा जगदीशके नामसों जात पुकारो।
तेरे ही पानि गहे को अहो जगदम्ब अहै शुभ सो फल सारो॥

(८)

मांगत हूं गति मुक्ति कछु अरु नाहिं विभौकी सुचाहना मेरी।
नाहिन चाहत हूं बहु ज्ञान नहीं कछु लोलुपता सुख केरी॥
जाचत हूं जननी तब तोहि दया करिकै मोहि सो बर देरी।
जीवन बीतै सुनो मम री शिव गौरीही गौरी सदा जपतेरी॥

(९)

करिकैं बहु उपचार नाहिं विधि सहित अराधी।
रूखे चितवनहूसे निसि दिन मौनहि साधी॥
ताहू पैं तव नेह है किञ्चित मोपैं माय।
यही तोहि जननी उचित तेरो यहै सुभाय॥

(१०)

विपत परे पैं सुमिरों तोकों धाय।
हे करुणाकरनी सुख दैनी माय॥
मेरी या सठता पै दीठि न जाय।
भूखो सुत टेरैं मायहि अकुलाय॥

(११)

तेरी करुणा मोपैं अमित अपार।
यह विचित्र नाहींरी सुख आगार॥
पूत होय कैसोही औगुन पूर।
तदपि मात वाको नहिं ताड़ति दूर॥

(१२)

मो सम नाहिन पातकी तो समान अघहार।
देवी जो तव जोग है सोही करहु विचार॥

—भारतमित्र, ८ अक्टूबर १८९४ ई०

शारदीय पूजा

(१)

सिंहासन तज धीर पदहिं कन्यालय आवत।
उग्रभाव तजि भानु मृदुल किरनन छिटकावत ।।
जाके तेज प्रचण्ड विश्वको सिर भिन्नायो।
तन भये भाठीरूप प्राण तिनमहं खौरायो ।।
सो तेज प्रताप दिनेसको,
मृदुल भयो आई सरत।
निज विमल मधुर सौन्दर्यसों,
कियो आय भूषित जगत।।

(२)

कटे जलद जञ्जाल घननको घस्यो घोरतम।
मिस्यो वायुको बेग, हस्यो सब माटी करदम ।।
सुखद सुहावनि राति नील-निर्मल नभ मण्डल।
शोभा अमित अपार करत तारागण झलमल ।।
जल सूख्यो धरनि विधौत भई,
घाट बाट निर्मल भये।
नानाविध तरु पल्लव लता,
पत्रन पुष्पनसों छये ।।

(३)

रजत तटनसंग रजत-तटिनि अति शोभा पावत।
ह्वै प्रफुल्ल ससि रजत-किरण तापर बिथुरावत ।।
विमल सोत प्रतिबिम्ब नील नभको हिय धारत।
करि कौसल ससि तारागन भुंइ-माहं उतारत ।।

ससि ज्योति पाय रज रजत भई,
कण चमके चमचम करैं।
जिमि टूटि टूटि नभसों नखत,
आय भूमि ऊपर परैं ॥

(४)

छिटक रही चांदनी बढ्यो सौन्दर्य्य अपारा।
भये ज्योतिमय वृक्ष, पत्र चमकैं जिमि तारा ॥
केकी कण्ठ कठोर भयो चुपझिल्लिन साधी।
मसक दंस भये साधु, भूमि-महं लई समाधी ॥
कोकिल अवरोध्यो कण्ठ अरु,
चातक पुनि प्यासो भयो।
खंजन कुञ्जन अरु हंसगन,
समय पाय दरसन दयो ॥

(५)

फूले हारसिंगार महक चहुं ओर उड़ावहिं।
नानाविधि तरुराजि विकसि अति शोभा पावहिं ॥
निर्म्मल निश्चल वारियुक्त सब सागर सोहैं।
रंग रंगके कमल विकसि तिनमहं मन मोहैं ॥
रमनीय सुखद सुन्दर सरत,
इह रूप आय दरसन दियो।
मन देवन पितृन ऋषिनको,
सब प्रकार प्रमुदित कियो ॥

(६)

धन्य सुअवसर कियो मात जगदम्बा आवन।
पाप ताप सब नसे भयो भारत अति पावन ॥

आय मात आनन्दमयी आनन्द बढ़ायो।
विश्व-विजयिनी विजय कीन्ह दुख दूर भगायो ।।
भइ काल-त्रियामा सेस अरु,
सुखको सूरज परगट्यो।
चहुं ओर देस उज्ज्वल भयो,
दरकि हियो तमको फट्यो ।।

(७)

जय जय ध्वनि रहि पूरि बजत आनन्द बधाई।
नभ ठहराय विमान देवगण देखैं आई ।।
सुखको भयो प्रभात उठौ सब भारतवासी।
निरखहु नयन उघारि मात आई सुखरासी ।।
सब पूजहु मात सनातनी,
आदि सक्ति कहं धायकै।
रलमिल आनन्द उत्सव करहु,
नाचौ दुख बिसरायकै ।।

(८)

झालर घण्टा ढोल ढाक दुन्दभी बजाओ।
कोटि कोटि घण्टन-ध्वनिसों सब दिसा गुंजाओ ।।
आनहु आनहु बिल्व-पत्र भागीरथिको जल।
रक्त पीत अरु स्वेत नील आनहु कमलन दल ।।
अञ्जली पूरिके मातके,
चरनन महं अरपन करो।
कहि अहो मात दुखहारिनी,
दीन जननको दुख हरो।

(९)

पूजहु पूजहु महाशक्ति बलशक्ति बढ़ावनि।
भक्तन रक्षा करनि दैत्यदल मारि भगावनि॥
पूजहु पूजहु मात सदा भव-चिन्ता हारिनि
मनो कामना सिद्ध करनि कलिकष्ट निवारनि॥

त्रेता जाके पद पूजिकैं,
रामचन्द्र कीरति लई।
सीता पाई रावण हत्यो,
लङ्क विभीषन कहं दई॥

(१०)

पूजहु दुर्गति-दलनि नसैंगी दुर्गति मारी
सुभङ्करी दुखहरी दीनजन-करि महतारी॥
बेगि बुझैंगो दुःख दीनताको दावानल।
बाढ़ैं बहु सौभाग्य सौख्य ऐस्वर्य्य बुद्धि बल॥

सब ताप दीनता पाप दुख,
सङ्कट दूर नसायगो।
अरु भारतवासिनको पुनः,
भाग्य उदय ह्वै जायगो॥

(११)

जब मा! कृपा तुम्हारि रही भारतके ऊपर।
तब याके सम तुल्य धरनि पर रह्यो न दूसर॥
याको तेज प्रताप बुद्धि गौरव जस सुनिकर।
कांपत ही नित रह्यो हियो शत्रुनको थर थर॥

अब वही भाव जीवित करन,
आई हो करुणामयी।
पुनि दया दृष्टिसों करहुगी,
भारत कहं त्रिभुवनजयी।

(१२)

जयति सिंहवाहिनी जयति जय भारत माता।
जय असुरन दल दलनि जयति जय त्रिभुवन त्राता ॥
संग सरस्वति अरु कमला, सोभा बाढ़ी अति।
चारहु ओर गगन करि सेना, सुरसेनापति ॥
अब जननी याही रूपसों,
सदा वास भारत करो।
धन धान्य अनन्द बढ़ायकै,
दरिद सोक संसय हरो ॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, २३ सितम्बर सन् १८९५ ई०

आगवनी।

(१)

इते दिवसपर का सुध आई माय ?
भारत-भवनहिं दरस दिखाये आय ॥
लेन दुखित सन्तानहिं, गोद पसारिकै।
आई हो सुख देन, कलेश निवारिकै ॥
वह तेरी सन्तान देख, तोहि धावती।
"मा, मा" करती मा तेरे, ढिग आवती ॥

(२)

केते सहे दैत्यके दुख हो माय !
रोयो रैन दिवस तोकहं गोहराय ॥
नैननसों नित लागि रही, अविरल झड़ी ।
कीने बहुत उपाय कटै, ज्यों दुख घड़ी ॥
खान पान अरु ज्ञान सबै, बिसरायकै ।
टेरयौ दरसन हेत, मात ! अकुलायकै ॥

(३)

आवन बेलि सिधारी हे मोर माय ।
इते दिवस मा कौन देश रहि छाय ?
झेले दुःख अपार कहे नहिं जात री ।
नैन भये जलहीन, झुराने गात री ॥
बहुत दिवस पै आज, खुले हैं भाग री ।
करहु प्रतिज्ञा अब ना, जैहो त्याग री ॥

(४)

तेरे निकट रहे बिन हे मोर माय ।
असुरनके डर निकस निकस जिउजाय ॥
भिक्षा असन मलीन बसन, सब गात हैं ।
पेट भरन हित द्वार द्वार, बिडरात हैं ॥
जो कछु जोरहिं भीख मात दुख पाय कै ।
तुरत लेत हैं लूट असुर, तेहि आय कै ॥

(५)

हे करुना-करनी चितवहु एकबार ।
तव बिछुरे का दुर्गति भई हमार ॥
दुर्गतिहारिनि माय ! बेगि दुर्गति हरो

अभय दान अब देहु, हमैं निर्भय करो ॥
होंठन पर हैं प्रान, देह पंजर भयी ।
बेगि जियावहु आय, मात करुनामयी ॥

(६)

दया दीठि करि एकबार मा हेरि ।
तव बिन और न केऊ हे मां मेरि ॥
दुखसरिता रहि बाढ़ि कि अम्बु अथाह है ।
पड़ी भंवरमहं नाव कहूं, न निबाह है ॥
अब बिलम्ब केहि काज, अम्ब करुनामयी ।
बेगि उबारो आय, नाहिं सगरी गयी ॥

(७)

मात तोहि बड़ सरन गहेकी लाज ।
सरन गहेहूं दुख पावहु केहि काज ॥
जननि हियेकी पीर जात, नाहिन सही ।
बेगि निवारो मात दही, काया दही ॥
पाषानी ! क्यों हीय कियो, पाषान री ।
पाषानहि तव नाम खुदैगो जान री ॥

(८)

का दै जननी पूजा करैं तुम्हार ।
पेटहुकै निस दिनहै हाहाकार ॥
उदर भरनहित अन्न रह्यो घरमाहं जो ।
दानव-दल मा आय काढ़, मुखतैं लयो ॥
भेंट धरैं जो माय कहा, हम पास है ।
केवल आंखिन जल अरु, लम्बी सांस है ॥

(९)

सो आंखिन जल आज चढ़ाय चढ़ाय।
पूजैं मात तोहि हम चित्त लगाय॥
उन चरननमें अंसुवन, धार बहायकै।
सब दुख मेटैं बिस्वहिं आज, डुबायकै॥
बहुत दिवस पर आज भेंट, तोसों भयी।
अब तोहि जान न देहिं मात ममतामयी॥

(१०)

आवहुरे सब भारतवासी धाय।
खोलो आंख निहारो आई माय॥
झाड़ो तनकी खेह कलेस, बिहाय रे।
बैठो चल कै गोद बुलावत, माय रे॥
आई आई मात चलहुं, दरसन करैं।
जननी जननी बोलि प्रफुल्लित, मन करैं॥

(११)

बलि बलि जाऊं लै लै माको नाम।
बोलत बोलत नाचै मन बसु जाम॥
ज्यों ज्यों माको नांव जीह पर आत है।
त्यों त्यों इच्छा दूनो बाढ़ी जात है॥
आवहु आवहु सब मिलकै, मा मा रटैं।
मनको मिटै मलाल सोक सङ्कट कटैं॥

(१२)

नाहिन विद्या धन नाहिन गुन रूप।
विधि कर्म्महि लिख राखी दुखकै धूप॥
तासों आवहु हिलमिल, मापै जाहिं रे।

माय छाड़ि कहुं और ठिकानो, नाहिं रे ॥
छोड़ो ममता माया या संसारकी।
सरन गहहु सब मात दया-आगार की ॥

(१३)

बिन बल जे तन तरुवर सूख झुरान।
आज अचानक सो कैसे हरियान ॥
जिन नैननकी दीठि गई, अरु तम छयो।
कैसे उनमैं आज जगत, उज्ज्वल भयो ?
जिन श्रवननकी श्रवन शक्ति, अरु सुख भग्यो।
उनमहं कैसे आज अमिय, बरसन लग्यो ॥

(१४)

मन कहं नित घेरे रहत विषाद !
कैसे वामैं बाजे आनंद नाद ?
नित रोवत जो प्राण हंसी, वापै छई।
कैसे सगरी वस्तु आज दीखत नई ॥
सो दिन, सोही रात कौन कीनो नयो।
जान्यो—मात तुम्हार आज अगवन भयो ॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, २३ सितम्बर १८९५ ई०

जय दुर्गे

(१)

जाग जाग जगदम्ब मात यह नींद कहांकी।
कस दीन्हीं बिसराय बान सुतवत्सल मांकी।
एक पूतकी मात नींद भर कबहुं न सोवत।
तीसकोटि तब दीन हीन सुत तव मुख जोवत।

अपने निरबल निरधन सुतहि
मात रही बिसराय कस !
यो मोह छोह सब छाड़िके
होय रही क्यों नींद बस ?

(२)

रोगी दुख भोगी भूख तव सुत बिडरावहिं ।
पेट हेत नित मरैं पचैं भरपेट न पावहिं ।
करहिं अधर्म्म कुकर्म्म करहिं बहुविधि दुख कारो ।
जागहु जागहु मात दुःख इन सबको टारो ।
उठहु अम्ब ! सङ्कट हरो
निद्रा दूर बहाय कै ।
कर साठ कोटि जोरें खरे
द्वारे तव सुत आयकै ॥

(३)

एक बार सुरराज मात तू आन जगाई ।
नयन खोलि तम पीर भक्तकी तुरत मिटाई ।
स्वर्ग भ्रष्ट सुरपतिकहं पुनि इन्द्रासन दीन्हो ।
असुरन कहं करि जेर सुरन चित प्रमुदित कीन्हो ।
लाखाघर जरिते पंडु सुत
लीन्हे मात उबारि तुम ।
कस सोई लम्बी तानिकै
मातु हमारी बारि तुम ॥

प्रार्थना

(४)

निज प्रभाव जो मात चराचर जग विस्तारत ।
सब देवनकी शक्ति पुंजलै बपु निरधारत ।

करहिं निरंतर सदा देव मुनि जाको पूजन।
बिधि हरिहर सो अतुल भाव कर सकहिं न बरनन
सो मात सदा करुनामयी
नित हमार मंगल करैं।
बहु भक्ति भावसों धाय हम
श्रीचरननमैं सिर धरैं॥

(५)

पुण्यवान घर जो देवी सम्पति है राजत।
पापिनकैं घर जो दारिद्र रूपसों गाजत।
श्रद्धा ह्वै सज्जन जन हिय जो बसत सदाही।
लज्जा सुजनन माहिं बुद्धि ह्वै बुधजन माहीं।
सो मात भवानी चण्डिका
जगपालन हित चित धरो।
भय शोक अमंगल ताप दुख
दूर एक छिनमहं करो॥

(६)

रूप अचिन्त अनन्त अहै जगदम्ब तुम्हारो।
भुजबल अमित अपार दनुज कुल नासन हारो।
सुरगन लीन्हे राखि असुर सब मारि गिराये।
कैसे बरनन होइ चरित जो तुम दिखराये।
जय त्रिगुन रहित त्रिगुनन सहित
अखिल जगत विस्तारिनी।
जय जयति अपारा सकलमय
सकल पदारथ-धारिनी॥

(७)

तुम स्वाहा तुम स्वधा यज्ञ तुम्हरे बल चालत।
तुमहि मात सर्व्वत्र देव नर सब कहं पालत।
मुक्ति हेत बहु कष्टपाय जो जन ब्रत साधै।
मुक्ति स्वरूपा जानि एक तुमकहं आराधै।
त्रियवेद स्वरूपा सब्द मय
कोउ पावत नाहीं पार है।
तुम देवी सर्व ऐस्वर्य्यकी
तुमसे सब संसार है।

(८)

सस्य रूप धर मात जगत कहं पालन करनी।
धरि प्रचण्ड वपु पीड़ा रोग ताप संहरनी।
सब वेदनको सार मात नित मंगलकरनी।
दुर्गे दुर्गम भवसागर तारनकी तरनी।
धरि महालच्छमी रूप नित
हरिके हिये बिहारिनी।
तुमही गौरी, सिवसङ्गिनी
सबको दुःख निवारिनी।

(९)

दया करो यह आस पुजाओ हमरे मनकी।
सुध न बिसारें कबहु तुम्हारे श्रीचरननकी।
सदा रखें दृढ़ हिय महं निज साँचो हिन्दूपन।
घोर बिपदहू परें डिगै नहिं आन ओरि मन।
निज धर्म्म कर्म्म ब्रत नेम नित
दृढ़ चित ह्वै पालन करें।
नहिं आपनपो बिसरायकै
आन ओरि सपनहुं डरें॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, ४ सितम्बर सन् १८९७ ई०

आवहु माय

(१)

आवहु आवहु मातारी, सुखकी रास।
मेरे हिय मसान महं मा, करहु निवास।
दीन दुखिनकी जननी री, आवहु धाय।
हिय-मसानमहं राखी मा, ठांव बनाय।
यह हिय मेरो निस दिन मा, घोर मसान।
बीतत है या महं दिन रैन, एक समान॥

(२)

या हिय महं नहिं प्रेम नेम नहि नेह।
या हिय महं नहिं गाम न ठाम न गेह।
नाहिन या महं प्रीति रीति अरु भाव।
नाहिन यामहं रङ्ग न राग न चाव।
नाहिन यामहं बैरो, नाहिन मीत।
नाहिन यामहं हार मात, नहि जीत॥

(३)

अपनो और परायो देस विदेस।
इन सबहीको यामहं नाहीं लेस।
या हिय महं नहिं माय न बाप न पूत।
या महं नाहिन राव न रङ्क न दूत।
नाहिन यामहं मान नाहिं अपमान।
नाहिन कुछ हित अनहित करि पहचान॥

(४)

नाहिन यामहं कोप न रोस न काम।
नाहिन यामहं धीरज धरम न राम।

नाहिन यामहं मोह न लोभ न कोह।
नाहिन भाव भगतिको नाहिन छोह।
नाहिन यामहं सुख सम्पतिकर आस।
नाहिन नर्क और जमपुरको त्रास॥

(५)

नाहिन यामहं सरिता लहर तरङ्ग।
नाहिन यामहं इच्छा हरष उमंग।
नाहिन यामहं सीतल बरकी छांह।
अरु नाहिन तरुनिनकै कोमल बांह।
नाहिन यामहं सीतल मन्द समीर।
नाहिन सरवर-तट हंसनकी भीर॥

(६)

या हिय महं अब फूलत फलत न बाग।
खिलत न कबहूं फूल, न उड़त पराग।
कबहुं न कोयल कूजहिं बोलहिं मोर।
कबहुं न पंछी कीर मचावहिं रोर।
गाढ़ तमोमय रजनी घोर अंधार।
तम ऊपर तम चहुं दिस अमित अपार॥

(७)

कालराति सम घोर घोर अति घोर।
तमके बादल छाय रहे चहुं ओर।
उमड़त तमको सागर लेत हिलोर।
जो कछु पावत डारत तुरत झकोर।
ऐसो तम या हियमहँ रह्यो समाय।
निस दिन तामहं जीवन डूब्यो जाय॥

(८)

पुनि पुनि डूबत तऊ न पावत थाह
तापे मिलत न निकसनहूकी राह।
भीम निविड़ अति दुरजय तमको घेर।
बाढ़त चारहु दिकसों ढेरहिं ढेर।
हौं तो डूब रह्यो हूं तासु मंझार।
तापै डूबत दीखत सब संसार॥

(९)

जहं सब डूबैं कौन उबारहि काहि।
कोहै ऐसो दोष लगावहिं जाहि।
देखो मा! मम हियको घोर मसान।
जा महं चिन्ता दहकत चिता समान।
ताती सांसनके बहु उड़हिं अंगार।
छाई भाप चहूं दिस धूआंधार॥

(१०)

फूटे खंडहर सम यह मेरो देह।
सूखे हाड़ चाम भूतनको गेह
दिन दिन बाढ़त तामहं पोच बिचार।
मनहु होरही भूतनकी भरमार।
एक डरावत एक दिखावत त्रास।
एक खोलि मुख करन, चहत मा ग्रास॥

(११)

कोई आंत निकारत खेंचत खाल।
कोई चाटत रक्त किये मुख लाल।

वह देखो मा बरसत घोर अंगार।
बज्रनाद सम हो रह्यो हाहाकार।
वह देखो मा हाड़ मांस नर मुण्ड।
धड़ घोड़नके अरु हाथिनके सुण्ड॥

(१२)

वह देखो हिलमिल सब भूत पिशाच।
कूदहिं खेलहिं हंसहिं दिखावहिं नाच।
वह देखो कैसी दीपावलि होति।
पोली लाल हरि बहुरंगी जोति।
बढ़त घटत बुझ जात दिखावत खेल।
घेर बांधके नाचहिं ह्वै यकमेल॥

(१३)

धावहु धावहु बेगि बचावहु माय।
बेगि निवारहु अब नहिं देख्यो जाय।
हिय मसानमहं बिछि रह्यो, मा आसन तेरो।
तब पूजाको चाव है, मन माहिं घनेरो।
ऐसो आसन छाड़िके, मत जावहु माई।
करन चहत मा आज हम तेरी पहुनाई॥

(१४)

चरबी लोहूसों सन्यों नरमुण्ड मंगायो।
चोखे खप्पर देखिके सद रक्त भरायो।
खाल आंत बहुभांति अरु हाड़नकी ढेरी।
मूंड लाय माला करी एकत्र घनेरी।
रक्तफूल, सिन्दूर अरु चन्दन री! माई।
लाल वस्त्र पट धूप लै रक्त बनाई॥

(१५)

हित करिके पूजा करें मा तोहि मनावें।
विनय करें कर जोरिकै, चरनन चित लावें॥
भारत घोर मसान है, तू आप मसानी।
भारतवासी प्रेतसे डोलहिं कल्यानी॥
हाड़ मांस नररक्त है भूतनको सेवा।
यहां कहां मा पाइये चन्दन घी मेवा?

(१६)

दुर्गा नाम रखाय मात तोहि लाज न आई।
दुर्गतिनासिन सक्ति मात, अब कहां गंवाई॥
तो-सी माता पाय आज हमरी यह दुर्गति।
भूखे प्यासे बिडरावहिं पावहिं कलेस अति॥
बेसक हम कपटी कपूत कामी अरु कादर।
दर दर मारे फिरें हमहि कोउ देहि न आदर॥

(१७)

तौहू तुम्हरे पूत कहावैं मात भवानी।
तैं केहि कारन कियो हियो पाथर पाषानी?
तू अपने पूतनको क्यों नहिं ताप मिटावत।
केहि कारन इनके दुखपै तोहि दया न आवत?
सब ही गयो बिलाय कछू अब रह्यो न बाकी।
उदर हेत हम बेच चुके मा, चूल्हे चाकी॥

(१८)

कहां जायं क्या करें नाहि कहुं मिलत ठिकानो।
हम तो अब बहि चले मात तुम्हरी तुम जानो॥
भारत भयो मसान बैठिके ताहि जगाओ।
अथवा दयादृष्टिकहं फेरो, फेरि बचाओ॥
हम अपनी कह चुके, मात अब खुसी तुम्हारी।
तव चरनन महं गिरे आय लोचन भरि बारी॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, २४ अक्टूबर १८९८ ई०

दुर्गा-स्तवन

(१)

आज मधुर धुन बजत सैल-पति भवन बधाई !
नाचत गावत बहु किन्नरि सुर ताल मिलाई ।
बहु बिधि फूले फूल पवन सौरभ फैलावत ।
विकसे कमल तड़ागन महं सोभा सरसावत ।
गिरिपुर वासिनको आनन्द कह्यो नहीं जाई ।
आज हिमाचलके महलन एक कन्या आई ॥

(२)

सरद कालके प्रात ज्योति चहुँ दिस फैलाई ।
सिंह चढ़ी बालिका एक पर्व्वत पै आई ।
महिष मर्द्दिनी कन्या दसभुज जाके सोहैं ।
कर जोरे सब भक्त खरे वाको मुख जोहैं ।
बन्दीजन भये मुदित तासु बिरदावलि गावैं ।
मधुर गीत उल्लास भरे चहुँ दिस फैलावैं ॥

३)

सर्व भूत मय शक्ति स्वरूपिनि शक्ति तुम्हारी ।
को बरनन कर सकै तुम्हारी महिमा मा री !
तव लीलासों ब्यापि रह्यो है यह जग सारो ।
तेरे ही बल को है चारों ओर पसारो ।
तेरे बल रवि तपत बहत अति वायु भयङ्कर ।
कुपति हुतासन दाह करत उमड़त रत्नाकर ॥

(४)

रवि ससि तारा अनल प्रात महं ज्योति तुम्हारी।
कस्तूरी अरु कुसुमनमैं सौरभ बिस्तारी।
मृदुल मलय मारुत डोलत पक्षी बहु कूंजत।
मधुर कण्ठ अरु बीना मैं तेरो सुर गूंजत।
सुन्दरि कामिनि और लता काननकी प्यारी।
डोलत है आनन्द भरी लै छटा तिहारी॥

(५)

दसों दिशामें व्यापि रही दस भुजा तुम्हारी।
थाम्यो है ब्रह्माण्ड सकलके पालन हारी।
सङ्कट हारिनि वरदायिनि त्रैलोक्य बिहारिनि।
दुर्गति नासिनि जगत जननि सब विपद निवारिनि।
फैल रही चहुं ओर मातु करुना इक तेरी।
दयामयी सब जीवन पर तव दया घनेरी॥

(६)

कृपा दृष्टि करि एक बार जा पै तुम हेरो।
कमला विद्या आय करें ताके घर डेरो।
हर्षित हिय सब देव मनोरथ पूरैं वाके।
बिना बुलाये ॠद्धि सिद्धि आवैं घर ताके।
सुर सेनापति सजिके ताके होहिं सहाई।
दुःख सोक अरु ताप मारिकैं देहिं भगाई॥

(७)

यह भवको आरन्य महिष सम घोर भयङ्कर।
सुख सुषमाको संहारक संकटको आकर।
भयदायक अति घोर निसाको घोर अंधेरो।

करत चेतना हीन लगाये ताको घेरो।
उदय होय ऊषा देवी निज तेज बढ़ाओ।
भीषन समन सदन महं ताकहं मारि पठाओ॥

(८)

जब महेस बर दल्यो असुर गन देवनको दल।
मूर्तिमती तुम भई पाय सब सुरगनको बल।
ऊंचो मस्तक तेरो नभ मण्डलमें छायो।
चकित भये सब देव भक्तिसों ध्यान लगायो।
रवि ससि वन्हि समान ज्योति भई त्रय लोचनकी।
भई आस हिय मैं सबके सङ्कट मोचनकी॥

(९)

अरपन करि निज अस्त्र सुरन तव पूजा कीन्ही।
चरन कमलको कियो ध्यान जगदम्बा चीन्ही।
तब तू करि हुंकार धसी दानवदल भीतर।
मारि गिराये असुर किते तव अस्त्रन खरतर॥
अट्टहास तव सुरगणको आनन्द बढ़ायो।
नाचैं विद्याधरी मोद बहु नभमें छायो॥

(१०)

प्रकृति रूपिनी हैमवती जगदम्बा जाया।
फैल रही है या जगमें इक तेरी माया॥
जीव जन्तु अरु कीट देव मानव सब जगके।
सबकी तू गति, अहै पथिक सब तेरे मगके॥
सुखदे! सुभदे! बरदे! मा! जो जन हैं तेरे।
बने रहैं निस बासर तव चरननके चेरे॥

(११)

मातु आद्या शक्ति ज्योतिमय रूप तिहारो।
विश्व प्रकाशिनि सब दिक है तेरो उजियारो ।।
घोर तिमिरको पुंज चीर यह जगत दिखायो।
अन्धकार महं परे हमें कछु समभ न आयो ।।
जब कछु समभन चहें तबहि अति जी घबरावै।
बिना तुम्हारी दया कौन यह भेद बतावै ।।

—भारतमित्र, १५ अक्टूबर १९०४ ई०

जय लक्ष्मी

जयति जयति लक्ष्मी जयति मा जग-उजियारी।
सर्वोपरि सर्वोपम सर्वहू तें अति प्यारी ।।
व्यापि रह्यो चहुं ओर तेज जननी यक तेरो।
तव आननकी जोति होत यह विश्व उजेरो ।।
जहां चन्द्रमुखी मुखचन्द्रकी,
किरन न उजियारो करै।
तहँ तम न कटै युग कोटि लौं,
कोटि भानु पचि पचि मरै।

(२)

"'"बिन तेरे सब जगत, जननि! मृतवत् अरु निसफल"
देवन बात कही यह सांचि छाड़ि छोभ छल।
तोहि छाड़ि मा! देवन केतोही दुख पायो।
सुरपति चन्द्र कुबेर हूतें नहिं मिट्यो मिटायो ।।

जब सूखे तालू ओंठ मुख,
चरन गहे तव आयकै।
तब दूर भयो दुख सुरनको,
रहे नैन भर लायकै॥

(३)

जा घर नहिं तव वास मात सोही घर सूनो।
द्वार द्वार बिडरात फिरै तव कृपा बिहूनो।
औरनकी को कहे स्वजन जब धक्का मारैं।
अपने घरके ही घरसों कर पकरि निकारैं॥
नहिं भ्रात मात अरु बन्धु कोउ,
निरधनको आदर करै।
निज नारि हू मा तव कृपा बिन,
आनन मोरि निरादरै।

(४)

कोटि बुद्धि किन होहिं बिना तव काम न आवैं
कोटिन चतुराई तव बिन धूरहि मिलि जावैं।
तहं कहं बुद्धि थिराय मात जहं वास न तेरो ?
जहां न दीपक बरै रहे केहि भांति उजेरो ?
बहु बुद्धिमान तव कृपा बिन,
बुद्धि खोय मारे फिरैं।
केते मूरख तव लाडिले,
दूरि दूरि तिनका करैं॥

(५)

कहा भयो जो मरि पचिकै बहु विद्या पाई
पोथिन पत्रनकी घर महं अति भीर लगाई।

रही मात तव दया बिना सब विद्या छूछी
बहुत पसारे हात बात काहू नहिं पूछी।
नहिं जननी विद्या बुद्धिको,
तव बिन नैक उठाव है।
धिक जीवन तव करुना बिना,
तोसों कहा दुराव है?

(६)

जप तप तीरथ होम यज्ञ तव बिन कछु नाहीं
स्वारथ परमारथ सबरो तेरेही माहीं।
चलै न घरको काज न पितृन अरु देवनको।
जनम लेत तव कृपा बिना नर दुख सेवनको।
जय जयति अखिल ब्रह्माण्डके,
जीवनकी आधार जो।
जय जयति लच्छमी जगतकी,
एकमात्र सुखसार जो॥

(७)

भलो कियो री मात आय कीन्हों पुनि फेरो
तुम्हरे आये हमरे घरको मिट्या अंधेरो।
तुम्हरे कारन आज मात दीपावलि बारी
घर लीप्यो टूटो फूटी सब वस्तु संवारी।
तुम्हरे आये तव सुतनको,
आज अनन्द अपार है।
सब फूले फूले फिरत हैं,
तनकी नाहिं सम्हार है॥

(८)

मात आपने कंगालनकी दशा निहारो
जिनके आंसुन भीज रह्यो तव आंचल सारो।
कोटिन पै रही उड़त पताका मा जिनके घर
सो कौड़ी कौड़ीको हाथ पसारत दर दर।
हा! तो-सी जननी पाय कै
कंगाल नाम हमरो पस्यो।
धिक धिक जीवन मा लच्छमी
अब हम चाहत हैं मस्यो॥

(९)

तन सूख्यो मन मस्यो प्रान चिन्ता लगि छीजै
छन छन बढ़त कलेस कहो कैसे कर जीजै?
जरत अन्न बिन पेट देह बिन वस्त्र उघारी
भूख प्याससों व्याकुल ह्वै रोवत नर नारी।
जननी कब करुनकटाच्छसों,
इनकी ओर निहारि हो।
चहुं ओर दुःख दावा जरै,
कर गहि आय निकारिहो।

(१०)

गज रथ तुरग बिहीन भये ताको डर नाहीं।
चंवर छत्रको चाव नाहिं हमरे उर माहीं
सिंहासन अरु राजपाटको नाहिं उरहनो।
ना हम चाहत अस्त्र वस्त्र सुन्दर पट गहनो
पै हाथ जोरि हम आज यह,
रोय रोय विनती करैं।
या भूखे पापी पेट कहं,
मात कहो कैसे भरैं?

—हिन्दी-बङ्गवासी, २ नवम्बर १८९६ ई०

लक्ष्मी-स्तोत्र

(१)

जय, पङ्कजलोचनि, जय, श्रीपति हिये बिहारनि।
जय जय, महालक्ष्मी, जय भवसागर तारनि ॥
जयति सुरेश्वरि, हरिप्रिये, जय कमल निवासिनि।
जयति सर्वदे दयानिधे, जय जयति सुहासिनि ॥

जय जयति सदा सुखदायिनी,
दारिद दुख सबको हरौ।
मा दयावती सब जगत हित,
वसुवर्षा निसदिन करौ ॥

(२)

जय जय छीर समुद्रसुते अनधन बरसावनि।
जय जय हरिवल्लभे, जयति दारिद्र नसावनि ॥
जय त्रिभुवन जननी, जय त्रिभुवन पालन करनी।
ब्रह्मादिक तव ध्यान धरैं, जय आनंद भरनी ॥

बूड़त दारिद्र समुद्र महं,
नाव हमारी आज मा।
राखहु राखहु जगपतिप्रिये,
हाथ तुम्हारेहि लाज मा ॥

(३)

जयति चञ्चला चपला कमला कमलविहारिनि।
ललिता, मन्मथजननि भक्तगन कष्टनिवारिनि ॥
पण्डितजीकी विद्या गुनिजनको गुन तो बिन।
सीलवन्तको सील, मात पूछत है कोइन ॥

तौलों ठहरत रूप गुन,
जौलौं है तेरी दया।
कुल सील आदि है व्यर्थ सब,
मात बिना तेरी मया॥

(४)

पुण्यपुञ्ज सो लोग बसहु मा तुम जाके घर।
कहा राव कहा रङ्क करैं सब तिनको आदर॥
तव प्रसाद गुणहीन होहिं गुणवान धुरन्धर।
रूपशील कुलहीन बनैं बहुगुनके आकर॥
कुलरूप शील विद्या तुमहिं,
तुम जग सरबस सार हो।
अहो मात कृपा तेरी बिना,
कबहु न बेरो पार हो॥

(५)

सुर बिरञ्चि सुरपति कुबेर सब तोकहं ध्यावैं।
श्रीपति भूपति नृपति सदा तुम्हरे गुण गावैं॥
आरत दीन मलीन हाय! तुव सुत बिडरावहिं।
हा मा! तेरे पूत पेट भर अन्न न पावहिं॥
अब दया करहु फेरो दिवस,
पाहि मात बहु अति भयी।
मा वेगि उबारौ आयकै,
त्राहि त्राहि करुणामयी।

(६)

सिर ऊपरसों फिर्‍यो दुसह दारिदको पानी।
कौर हेत तव पूत दीन ह्वै बोलहिं बानी॥

बेगि उबारो मात नतरु हम जात रसातल।
इक तव नाम अधार छाड़ि कछु रह्यौ न सम्बल ।।
अब कोई नाहिन कर गहत,
सुनहु मात असरन सरन।
अस दया करहु मा, छाड़ि सब,
सेवैं इक तुम्हरे चरन ।।

७)

बारेक नयन उघारि देखि जननी निज भारत।
साक अन्न बिन चहुँ दिस डोलै हाथ पसारत।
फाटे चिथरन जोरि देहकी लाज निवा
जब सोऊ नहिं मिलै विबश ह्वै फिरै उघारै ।।
सूखे कर पद, फूले उदर,
दीन, हीनबल, मलिनमुख।
अब मात बेगि करुना करो,
मेटहु मेटहु दुसह दुख ।।

(८)

छाय रही चहुं ओर दुसह दारिद अंधियारी।
आवहु आवहु दया करो मा जग-उजियारी।
दयाकरा पग धरो होय मन्दिर उजियारो।
नयनन जलसों सींच करैं अभिषेक तुम्हारो ।।
दीपक बारैं उत्सव करैं,
अम्ब चरन महं सिर धरैं।
सब भूलि हृदयको ताप दुख,
मुदित मात पूजा करैं।

(६)

चाहैं चंवर न छत्र राज-भूषन गजबाजी।
अन्न दूध भर पेट मिलै याहीमैं राजी।
मोटो सोटो वस्त्र मिलै तन ढाकन कारन।
केवल चाहत सीत धूपको कष्ट निवारन।
अब मात दया कर देहु बर,
लागि रहैं तुम्हरे चरन।
हियसों न बिसारहिं हम कबहुँ,
अपनो सांचों हिन्दुपन॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, १ नवम्बर १८९७

जातीय—राष्ट्रिय-भावना

सर सैयदका बुढ़ापा ❋

बहुत जीचुके बूढ़े बाबा चलिये मौत बुलाती है,
छोड़ सोच मौतसे मिलो जो सबका सोच मिटाती है।
गोर भी कहती है रहते हमको किस लिये भुलाये हो,
यों जीने पर मरते हो क्या लोहेका सिर लाये हो।
बहुत नाम पाया बाबाजी अब तुम इतना काम करो,
जो कुछ नाम कमा डाला है उसको मत बदनाम करो।
गढ़ा फाड़के मुँह कहता है अन्त मुझीमें आना है,
अच्छी भांति सोचलो जीमें पिछला यही ठिकाना है।
स्वर्ग नर्क है बात दूसरी मानो चाहे मत मानो,
पर तुम मेरे मुंहमें होगे इसको निश्चयही जानो।
उस दुनियामें कोई नहिं कह सकता क्या लेखा होगा,
तो भी बाप और दादोंको गड़ते तो देखा होगा।
इससे जीमें निश्चय करलो मरना है फिर गड़ना है,
मट्टीमें मिल जाना है और गोरमें पड़कर सड़ना है।
सभी हड्डियां गलें सड़ेंगी कोई न पहचानेगा फिर,
यह खोपड़ी किसी दुखियाकी पड़ी है वा है सरका सिर।

❋ पश्चिमोत्तरप्रदेशके उस समयके छोटेलाल कालविन साहबके इण्डियन नेशनल कांग्रेससे बिरोध करने पर सर सैयद अहमदखांने भी कांग्रेससे विरोध किया था। उसी झोंकमें सैयद साहब हिन्दुओंको भी गाली दे बैठे थे। उनके कांग्रेस-विरोधी लेखों और मन्तव्यों पर यह कविता लिखी गई थी।

दिल्लीमें जामामस्जिदके पास एक छोटा-सा घर था,
बहुत वर्ष नहिं हुए कोई एक रहता उसके भीतर था।
वहां पासके रहनेवालोंसे जो पता लगाओगे,
चिन्ह अब तलक भी कुछ उस टूटेसे घरका पाओगे।
पास मोहल्लेकी मस्जिदमें करता रहता वह उपदेश,
काल बिताता पढ़ाके लड़के साधारण रखता था वेश।
एक बार ही समयने उसके एक ऐसा पल्टा खाया,
छुड़वाके मसजिदके टुकड़े ऊँचे पद पर पहुँचाया।
द्रव्य पायके अपने मनमें अब वह इतना फूल गया,
बड़ा अचम्भा है दो दिनमें सब पिछली गति भूल गया।
कीड़ोंने "असबाबे बगाबत" (१) को अबतक नहिं खाया है,
उल्था करनेवाला भी भूतलमें नहीं समाया है।
बोलो तो बुड्ढे बाबा क्या उस सनेहका हुआ निचोड़,
भूल गये पञ्जाब-यात्रामें तुम आंख रहे थे फोड़ (२)?
हिन्दू और मुसलमानोंको एकहिसा बतलाते थे,
आंख फोड़नेको अपने झटपट प्रस्तुत हो जाते थे।
क्या कहते हैं लोग तुम्हें कुछ बातका उनके ध्यान करो,
क्या क्या चर्चाएं फैली हैं जरा उधर भी कान करो।
हमने माना द्रव्य कमा कर घरको अपने भर दोगे,
पर यह तो बतलाओ अन्तःकरणको क्या उत्तर दोगे?

(१) "असबाबे बगावत" एक पोथी है, जो सर सैयदने गदरके बाद बनाई थी। उसमें दिखाया था कि यदि हिन्दुस्थानी कौंसिलोंमें भारतीय प्रजाके प्रतिनिधि रहते तो सन् १८५७ ई० का गदर न होता।

(२) पञ्जाबमें लेक्चर देते हुए सैयद साहबने कहा था कि मेरे एक ही आंख होती तो अच्छा था, जिससे हिन्दू मुसलमानोंको एक ही दृष्टिसे देखता।

हमने माना किसी व्यक्तिको ध्यान न हो परमारथका,
पर है यह क्या बात कि चेला ही बन जावे स्वारथका ?
हे बाबा महमूद गजनवी लूट-लूट धन जोड़ गया,
अन्तकाल उसका जब आया रोते-रोते छोड़ गया।
दीन हीन दुखिया लोगोंको मार-मार उसने लूटा,
चलती बेर देख धन, अपना मार दुहत्थड़ सिर कूटा।
कुछ भी ले जा सका सङ्ग नहिं मलता खाली हाथ गया,
सदा सदाको कलङ्क औ पापोंका गट्ठड़ साथ गया।
करके द्रोह दीन दुखिया लोगोंसे क्या पद पाओगे,
अपना नाम बड़ा कर लोगे देशका नाम मिटाओगे।
कारूं और शद्दादके झगड़े अब इस समय कहानी हैं,
पर कलङ्क औ अपयशकी तो चिरस्थायिनी बानी हैं।
वह दिन गये वक्तृता देते आंसू टप टप गिरते थे,
नैन तुम्हारे दीन हीन लोगोंसे कभी न फिरते थे।
अहा ! चाटुकारीको खोके चाटुकार तुम बनते हो,
अपने हाथ स्वतन्त्रालयको रचके आप ही खनते हो !
स्मरण हमें इस अवसर पै शादीका कहना आता है,
ज्यों ज्यों नर बूढ़ा होता है लोभ अधिक हो जाता है।
हे धनियो ! क्या दीनजनोंकी नहिं सुनते हो हाहाकार ?
जिसका मरे पड़ोसी भूखा उसके भोजनको धिक्कार !
भूखोंकी सुध उसके जीमें कहिये किस पथसे आवे,
जिसका पेट मिष्ट भोजनसे ठीक नाक तक भर जावे।
हे हे पेट भरो ! यूसुफ (३) भूखे अकालमें रहते थे,

(३) मुसल्मानोंके एक पैगम्बर थे, जिनके समयमें मिश्रदेशमें बड़ा भारी अकाल पड़ा था।

जब कोई इसका हेतु पूछता था तो उससे कहते थे।
भूखे पेट न सोये कोई इस डरसे मैं डरता हूं,
भूल न जाऊं भूखोंको इसलिये पेट नहिं भरता हूं।
यद्यपि नाम तुम्हारा पृथ्वीमें प्रसिद्ध नहिं थोड़ा है,
खानेको कलिया पुलाव चढ़नेको गाड़ी घोड़ा है।
सांझ सबेरे उनपर बैठ हवा खानेको जाते हो,
इधर उधर सड़कोंमें फिरकर उल्टे घरको आते हो।
नंगे भूखे तुमको सच है कभी नहीं रहना पड़ता,
पैदल चलनेसे पाओंमें फूल तलक भी नहिं गड़ता।
फिर भी क्या नंगे भूखों पर दृष्टि नहीं पड़ती होगी,
सड़क कूटने वालोंसे तो आंख कभी लड़ती होगी ?
कभी ध्यानमें उन दुखियोंकी दीन दशा भी लाते हो,
जिनको पहरों गाड़ी घोड़ोंके पीछे दौड़ाते हो।
वह प्रचण्ड ग्रीष्मकी ज्वाला औ उनके वे नग्न शरीर,
बन्द सेजगाड़ी पर चलनेवाला क्या जाने बेपीर ?
जलती हुई सड़क पर नंगे पैरों दौड़े जाते हैं,
कुछ बिलम्ब होजाता है तो गाली हण्टर खाते हैं
लूके मारे पंखेवालेकी गति वह क्योंकर जाने,
शीतल खसकी टट्टीमें जो लेटा हो चादर ताने।
बाहर बैठा वह बेचारा तत्ते झोंके खाता है,
सिरपर धूल गिरा करती है बैठा डोर हिलाता है।
बहुत परिश्रम करते करते ऊंघ कभी जो जाता है,
बिना बूझ लातें गाली उसके बदलेमें पाता है।
हा ईश्वर ! हाहा ईश्वर ! तेरी माया है अपरम्पार,
क्या जाने क्यों दुखियों हीको दुख देता है बारम्बार

गाली लातें खाते खाते अब तो गोली खाते हैं,
किञ्चित् मात्र ऊंघ जानेमें जीसे मारे जाते हैं।
हमने माना गोरा रङ्ग आज कल तुमको प्यारा है,
पर हे श्याम ! सुना है काला भी तो रङ्ग तुम्हारा है।
एक काला इसलिये गया पिण्डीमें गोलीसे मारा,
पङ्खा करते एक गोरेको ऊंघ गया था बेचारा।
इन कठोर अन्यायोंको भी जो कोई बतलावे न्याय,
उसके हृदय और मस्तक दोनोंकी फूट गई है हाय !
यह मोटी मोटी बातें भी क्या नहीं देती दिखलाई ?
आंखों आगे खड़ा न सूझे हा ! ऐसी चर्बी छाई।
बतलाओ क्या पेटका भरना मनुष्यत्व कहलाता है,
पेट पूछिये तो कूकर सूकरका भी भरजाता है।
तुम जो अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण तन पर धारे हो,
औरोंको दुख देते नितप्रति अपने सुखके मारे हो।
भाई-बन्धु तुम्हारे सारे दुखमें डूबे रहते हैं,
तुम स्वारथपरतामें डूबे क्या सुख इसको कहते हैं ?
हे सैय्यद बाबा दो दिनसे तुम धन पाके धनी हुए,
बहुतेरे निर्धन पृथिवी पर धनी हुए मिटगये मुए।
अच्छी भांति देखलो धन सब खानेमें नहीं आता है,
मरने पीछे बांधके गठड़ी क्या कोई ले जाता है।
लाख जोड़के रक्खो वा एक आना नित्य कमाओगे,
आधसेर अन्नसे अधिक पेटके लिये नहीं पाओगे।
फिर इस सारी हाहू कृतघ्नताका क्या होगा परिणाम ?
मरजाने पर धन वैभव पद सब आवेंगे किसके काम ?
जीता रहना तुम ऐसोंका मरजाने हीके सम है,

वरञ्च जीते रहनेसे तो मरजाना भी उत्तम है।
जागे रहना जिसका सोनेकी अपेक्षा भारी है,—
ऐसेका मरजाना जीते रहनेसे सुखकारी है।
जिन दुष्टोंके निकट धर्म पापसे दबाना अच्छा है,
उनका तुरन्त इस पृथ्वीसे उठ जानाही अच्छा है।
जैसे एक धार्मिक सबका खेवा पार लगाता है,
वैसेही एक पापी बेड़ेका बेड़ा डुबवाता है।
जो कुछ पाप आज इस दीन हीन जातीमें छाया है,
हे हे पापी जनो! किया है तुमने इसने पाया है।
हाय हाय दुष्कर्म्म तुम करो और उसका फल यह पावें,
पापी पाप करें औ चलदें निर्दोषी पकड़े जावें!
तुमसे लाख बनें बिगड़ें कुछ हानि लाभ नहीं होना है,
जिनके बिगड़े सब जग बिगड़े उनका हमको रोना है।
जिनके कारण सब सुख पावें जिनका बोया सब जन खायं,
हाय हाय उनके बालक नित भूखोंके मारे चिल्लायं।
हाय जो सबको गेहूं दें वह ज्वार बाजरा खाते हैं,
वह भी जब नहिं मिलता तब वृक्षोंकी छाल चबाते हैं।
उपजाते हैं अन्न सदा सहकर जाड़ा गरमी बरसात,
कठिन परिश्रम करते हैं बैलोंके संग लगे दिन रात।
जेठकी दुपहरमें वह करते हैं एकत्र अन्नका ढेर,
जिसमें हिरन होंय काले चीलें देती हैं अण्डा गेर।
काल सर्पकी सो फुफकारें लुयें भयानक चलती हैं,
धरतीकी सातों परतें जिसमें आवासी जलती हैं।
तभी खुले मैदानोंमें वह कठिन किसानी करते हैं,
नंगे तन बालक नर नारी पित्ता पानी करते हैं।

जिस अवसर पर अमीर सारे तहखाने सजवाते हैं,
छोटे बड़े लाट साहब शिमलेमें चैन उड़ाते हैं।
उस अवसरमें मरखप कर दुखिया अनाज उपजाते हैं,
हाय विधाता उसको भी सुखसे नहिं खाने पाते हैं।
जमके दूत उसे खेतोंहीसे उठवा ले जाते हैं।
यह बेचारे उनके मुहको तकते ही रह जाते हैं।
अहा बिचारे दुखके मारे निस दिन पच-पच मरें किसान,
जब अनाज उत्पन्न होय तब सब उठवा लेजाय लगान।
यह लगान पापी सराही अन्न हड़प कर जाता है,
कभी-कभी सबका सब भक्षण कर भी नहीं अघाता है।
जिन बेचारोंके तन पर कपड़ा छप्पर पर फूस नहीं,
खानेको दोसेर अन्न नहीं बैलोंको तृण तूस नहीं।
नम्र शरीरों पर उन बेचारोंके कोड़ पड़ते हैं,
माल माल कहकर चपरासी भागकी भाँति बिगड़ते हैं।
सुनी दशा कुछ उनकी बाबा! जो अनाज उपजाते हैं,
जिनके श्रमका फल खा खाकर सभी लोग सुख पाते हैं।
हे बाबा! जो यह बेचारे भूखों प्राण गवावेंगे,
तब कहिये क्या धनी गलाकर अशर्फियां पी जावेंगे?
सच पूछो तो धनिकोंका निर्वाह इन्हींसे होता है,
जो उजाड़ता है इनको वह सारा देश डबोता है।
चोर नहीं हैं यह बेचारे फिर क्यों मारे जाते हैं,
हाय दोष बिन हवालातमें नाना कष्ट उठाते हैं।
इस प्रकार यह दीन हीन जब दुखसे मारे जावेंगे,
तब कहिये क्या आय फरिश्ते जगका काम चलावेंगे?
आड़ बाड़ मतदूर करो जो खेतको रक्षित रखना है,

छालको वृक्षों पर रहने दो जो तुमको फल चखना है।
हे धनवानो हा धिक! किसने हरली बुद्धि तुम्हारी है,
निर्धन उजड़ जायंगे तब फिर कहिये किसकी बारी है?
इससे उचित यही है तुम परिणाम पे अपने ध्यान करो,
धर्म नीतिसे नहीं डरते तो निज बरबादी सोच डरो।
जो गर्मी आनेसे पहिले शिमलेको चल देते हैं,
सुखके सागरमें अपने जीवनकी नौका खेते हैं।
साथ लिये गोरी मेमोंको सुखसे सदा बिचरते हैं,
भांति भांतिकी सुखमय क्रीड़ा और कुतूहल करते हैं।
तत्ता झोंका जिन्हें स्वप्नमें भी नहिं सहना पड़ता है,
ग्रीष्म शब्द उनको मुखतकसे भी नहिं कहना पड़ता है।
उनकी जाने बला दीन दुखियोंसे कैसी पटती है,
कोई मरे जिये कोई उनकी तो सुखसे कटती है।
सय्यद बाबा! एक क्षण भरको ध्यान इधर भी कर लीजे,
इस सीधीसी बात का मेरे अवश्यही उत्तर दीजे।
जब यह कृषक समाज सर्वथा नष्ट भ्रष्ट हो जावेगा,
तब यह सुख-लोलुप समाज क्या आप अन्न उपजावेगा?
सुख-सागरमें लहरें लेना जिसको लब्ध सदा ही है,
जिसके घरमें रंगरलियोंसे सदा मुहम्मदशाही है।
चाहे टिक्कसके मारे लोगोंके तन पे चाम न हो,
पर उनके व्यय और वेतनमें कभी कमीका नाम न हो।
उनकी आंखोंमें बाबाजी किसका दुख कब जंचता है,
जिनके घाऊघप्प पेटमें कहतका चन्दा पचता है।
इसी प्रकार वणिक लोगोंकी भी अब पूंजी घटती है,
आये वर्ष पांच दसका जो तप्पर टाट उलटती है।

साहूकारोंके अब तो प्रतिवर्ष दिवाले कढ़ते हैं,
पूंजी घटी चली जाती है ऋणके तूदे बढ़ते हैं।
हाहाकार उधर हानीकी टिकसकी ललकार इधर,
आठों पहर घोर आपद है साहूकारोंके सिर पर।
तुम्हीं बताओ क्या इस घोर विपदका सहना अच्छा है,
इस प्रकारसे प्रजावर्गका पीड़ित रहना अच्छा है।
बाबा! उनसे कह दो जो सीमाकी रक्षा करते हैं,
लोहेकी सीमा कर लेनेकी चिन्तामें मरते हैं।
अच्छे-अच्छे कपड़ोंसे तुम अपने अङ्ग सजाते हो,
इससे क्या हो सकता है जब नीचे कोढ़ छिपाते हो।
प्रजा तुम्हारी दीन दुखी है रक्षा किसकी करते हो,
इससे क्या कुछ भी होना है नाहक पचपच मरते हो।
जो इन कष्टोंका जारी रहना तुम बुरा समझते हो,
बड़े खेदकी बात है बाबा! उनसे आप उलझते हो।
भली राह पर चलनेमें सौदा साहबके घोड़े हो,
देशवृद्धिकी चलती गाड़ीके मारगमें रोड़े हो।
यही स्वच्छ उद्देश्य अजी जातीय आन्दोलनका है,
वर्तमान अवसरमें हमको अभाव भारी धनका है।
जारी न हो इलेक्टिवसिष्टम तबतक यह नहिं होना है,
परन्तु इसके लिये आपका अजब अनोखा रोना है।
गोवधका ले नाम अनोखा तुमने स्वांग मचाया है,
नक्शा चितली कबरका तुमने क्या ही खूब दिखाया है।
जिस झगड़ेको तूने अपने हाथों आप मिटाया है,
अहा! उसीके लिये आज तू छुरी बांध कर आया है!
लज्जा करो धर्म्मके ऊपर पापकी छुरी चलाते हो,

इस प्रकारसे पोतके कालस मुंहको हाथ दिखाते हो!
खुदगरजीके मारे अगली पिछली इज्जत खोते हो,
मुसलमान-कुलका गौरव औ देशका नाम डबोते हो।
फिरसे अब शैतान आनकर सिरपर तेरे हुआ सवार, (४)
मुसलमान भाइयोंको अपने नहीं तो क्यों करते यों ख्वार।
जाति तुम्हारी ऋणकी मारी मारी डूबी जाती है,
तिस पर भी अफसोस तुम्हें दिन रात खुशामद भाती है।
एक पास हो गया है ऋणका आफत आनेवाली है,
ऋणी नौकरी पेशोंके अब पड़ गई देखा भाली है।
मुसलमान ही अधिक ऋणी हैं निरधनताके मारे हैं,
मुंहसे कहनेको जो बाबा तुमको अति ही प्यारे हैं।
वह कानूनन अपने पदसे शीघ्र उतारे जावेंगे,
कर्ज एक्टकी कठिन खड्गसे निश्चय मारे जावेंगे।
अय! नामीनेशनके लोलुप! इधर तुम्हारा ध्यान भी है,
कब यह नियम चला कब हुआ उपस्थित इसका ज्ञान भी है?
किस किसने इस बिलको रोका किसने वाद विवाद किया,
किसने किया विरोध और किस किसने इसका पक्ष लिया?
आप किया प्रस्ताव समर्थन आप ही उसको पास किया,
हां हुजूर वालोंने देकर वोट खरा उपहास किया!
चुने हुए मेम्बर होते तो ऐसा कब होने पाता,
इस प्रकार कौंसिलमें कब नानीजीका घर बन जाता।
अब भी क्या इसलामके हामी बनके डींगें मारोगे,
पक्षपातके मेम्बर पर चढ़ झूठी बांग पुकारोगे?

(४) सैयद साहब कुरानमें लिखे हुए शैतानको नहीं मानते।

चाटुकारिने बाबा तुमको औंधी बुद्धि सिखाई है,
स्वार्थान्धता पकड़ तुम्हें उल्टे रस्ते पर लाई है।
जातिका अपने नामीनेशनसे यह लाभ कराओगे,
सबका एक साथ ही अपने हाथों नाममिटाओगे।
अहा ! तुम्हारी आंखोंपर तो गहरी चरबी छाई है,
मुसलमान लोगोंको भी क्यों देता नहीं दिखाई है।
ट्रष्टी लोगों (५) के विल पर तुमने जो स्वांग मचाया था,
डुयल युद्धमें मर रहनेका भारी भय दिखलाया था।
उसको क्या इसलामी भाई भूल गये होंगे एकबार,
लड़कर या मरकर सौंपा बेटेहीको कालिजका भार।
हाय ढिठाई तिसपर भी तुम काला मुंह दिखलाते हो,
अपनेको इसलामका हामी कहते नहीं लजाते हो ?
यह तो हुआ जरा अब अन्तिम सम्भाषण भी सुन लीजे,
काम हमारा कहना है सुनके जो जी चाहे कीजे।
धन बल वयस बड़ाई गौरव तुमने सब कुछ पाया है,
पर अब उसका शेष होगया अन्त समय बस आया है।
एक और भी आशा शेष रही है शायद पाओगे,
मरते मरते जी० सी० एस० आई० भी तुम बन जाओगे।
पर यह भी सोचो इसको पाकर कितने दिन जीओगे,
अमृत रूप यह विष है कैसा समझके इसको पीओगे ?
दोही चार वर्षमें तुमको पृथ्वीसे उठ जाना है,
जिस घमण्डमें फूले हो उसका भी ठौर ठिकाना है।

---

(५) अलीगढ़ कालिजके ट्रष्टियोंका कानून लेकर सर सैयदने बड़ा झगड़ा किया था। अपना पद अपने पुत्र मि० महमूदको दिलाना चाहते थे। इससे बहुत मुसलमानोंने विरोध किया था। सर सैयद उनसे लड़ गये थे।

तुम वह सब मिट जाओगे दो झोंके ऐसे आवेंगे,
जिनको यहां बिताना है वह अपना काल बितावेंगे।
फिर किस मतलबको यह कौमी नमकहरामी करते हो,
व्यर्थ किसी सङ्कीर्ण हृदयकी हाय गुलामी करते हो ?
स्वारथ निस्सन्देह तुम्हारा कुछ इसमें अटका होगा,
किन्तु जातिकी गरदन पर कैसा भारी झटका होगा।
थोड़े दिनके लिये अधिक मत रखिये अपने सुखसे काम,
प्रजा भूखसे मरती है कुछ उसका भी सोचो परिणाम।
बड़ी बात क्या जो तुमने सिरको दो बार (६) बचाया है,
दस सिर रखने वालेको भी अन्तकालने खाया है।
परन्तु हाहा इस सिरमें अब इन बातोंको ठौर नहीं,
यत्न किये चिकने वर्तन पर ठहर सकी है बून्द कहीं !
परन्तु क्या कीजे जीमें यह बार बार दुख होता है,
हाय हमारा वह बूढ़ा यूं पाकर नाम डबोता है।
कभी कभी जो ध्यान सिमटकर इन बातोंसे लड़ता है,
बहुत सोच साचके अन्तमें ऐसा कहना पड़ता है।
बहुत जी चुके बूढ़े बाबा चलिये मौत बुलाती है,
छोड़ सोच मौतसे मिलो जो सबका सोच मिटाती है।

—हिन्दोस्थान, ६, २९ अप्रेल और २७ मई सन् १८९० ई०

---

(६) कम पढ़े लोगोंमें एक बात प्रसिद्ध थी कि सर सैयदका सिर दो बार बिक चुका है। पर जितना समय नियत हुआ था, उसमें उनका देहान्त न हुआ। इससे दोनों बारके रुपये हजम होगये।

वसन्तोत्सव

(१)

आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी
तेरा शुभागमन सुन फूली केसर क्यारी।
सरसों तुझको देख रही है आंख उठाये
गेंदे लेले फूल खड़े हैं सजे सजाये।
आस कर रहे हैं टेसू तेरे दर्शन की
फूल फूल दिखलाते हैं गति अपने मन की।
बौराईसी ताक रही है आमकी मौरी
देख रही है तेरी बाट बहोरि बहोरी।
पेड़ बुलाते हैं तुझको टहनियां हिलाके
बड़े प्रेमसे टेर रहे हैं हाथ उठाके।
मारग तकते बेरीके हुए सब फल पीले
सहते सहते शीत हुए सब पत्ते ढीले।
नीबू नारङ्गी हैं अपनी महक उठाये
सब अनार हैं कलियोंकी दुरबीन लगाये।
पत्तोंने गिर गिर तेरा पांवड़ा बिछाया
झाड़पोंछ वायूने उसको स्वच्छ बनाया।
फुलसुंघनीकी टोली उड़ उड़ डाली डाली
झूम रही हैं मदमें तेरे हो मतवाली।
इस प्रकार है तेरे आने की तय्यारी
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी॥

(२)

एक समय वह भी था प्यारी जब तू आती
हर्ष हास्य आमोद मौज आनन्द बढ़ाती।
होते घर घर बन बन मङ्गलचार बधाई
राव चावसे होती थी तेरी पहुनाई।
ठौर ठौर पर गाये जाते गीत सुहाने
दूर दूर जाते तेरा तिवहार मनाने।
कुछ दिन पहिले सारे बन उद्यान सुधरते
सुन्दर सुन्दर कुञ्ज मनोहर ठांव संवरते।
लड़की लड़के दौड़ दौड़ उपबनमें जाते
अच्छे अच्छे फूल तोड़ते हार बनाते।
क्यारी क्यारीमें फिर जाते मालिन माली
चुन चुन सुन्दर फूल बनाते कितनी डाली।
ठांव ठांव पर बिछतीं सुन्दर फटिक शिलाय
आने वाले बैठें छबि निरखें सुख पायें।
सखी देखने आतीं उनकी वह सुघराई
एक दूसरीको देतीं सानन्द बधाई।
सारी शोभा देख देखकर घरको फिरतीं
कहके अपनी बात मुदित सखियोंको करतीं।
कहतो थीं प्रमुदित हो होके सब सुकुमारी
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी।

(३)

माघ सुदी पांचेंका शुभअवसर जब आता
सचराचर संसार हर्ष पूरित हो जाता।
मिल जाता था समाचार सबको पहिलेही

वस्त्र वसन्ती सजनेका है शुभदिन येही।
दिवस दूसरे प्रातहिसे रङ्ग घोले जाते
सबके अङ्ग वसन्ती जोड़े शोभा पाते।
सब किसान मिलकर अपने खेतोंमें जाकर
फूल तोड़ते सरसोंके आनन्द मनाकर।
बनमें होते लड़कोंके पाले औ दङ्गल
चढ़त ढाकों पर औ फिरते जङ्गल जङ्गल।
कूद फांदकर भांति-भांतिकी लीला करते
महामुदित हो जहां तहां स्वच्छन्द विचरते।
उद्यानोंमें जातीं थीं मिल युवती बाला
वां पर भी होता था कुछ आनन्द निराला।
मुदित चित्तसे कामदेवकी पूजा करतीं
हर्षित मनसे कुञ्ज कुञ्जके बीच बिचरतीं।
बाट देखने लगती थीं ठकुरानीकी तब
मुड़ मुड़कर देखती अधिक उत्कण्ठासे सब।
चाव भरे मनसे यह कहती थीं सब नारी
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी॥

४

वहां पहुंचती जब ठकुराइनकी असवारी
पूजा करने तब उसके संग जातीं सारी।
लपक लपक तोड़तीं सभी मञ्जरी आमकी
हंस हंसके करतीं पूजा वन्दना कामकी।
फिरती फिरती जब कोई अति ही थक जाती
पेड़ तले बैठती सखीको टेर बुलाती।
मालिनको देती कोई पकवान मिठाई

बदलेमें पाती असीस सानन्द बधाई।
कोई अपनी प्यारीको कुछ आय सुनाती
कहके सुखकी बात कानमें अधिक हंसाती।
कोई करके छेड़ मरमकी आप लजाती
सुख देती अपनी प्यारीको औ सुखपाती।
खेल कूदकर इस प्रकार सब दिवस बितातीं
सांझ हुएसे पहिले अपने घरको आतीं।
उधर खेलकर जङ्गलसे सब लड़के आते
सरसोंकी टहनियां फूल टेसूके लाते।
हंसते और खेलते सब आते प्रसन्न मन
घरमें आकर पाते मीठे-मीठे भोजन।
रातोंको गातीं वसन्त मिल सखियां सारी
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी॥

५

कोसों तक पृथिवीपर रहतीं सरसों छाई
देती दृगकी पहुंच तलक पीतिमा दिखाई।
सुन्दर सुन्दर फूल वह उसके चित्त लुभाने
बीच बीचमें खेत गेहूं जौके मनमाने।
वह बबूलकी छाया चितको हरनेवाली
वह पीले पीले फूलोंकी छटा निराली।
आस पास पालोंके वट वृक्षोंका झूमर
जिसके नीचे वह गायों भैंसोंका पोखर।
ग्वालबाल सब जिनके नीचे खेल मचाते
बूंट चनेके लाते होले करते खाते।
पशुगण जिनके तले बैठके आनन्द करते
पानी पीते पगुराते स्वच्छन्द विचरते।

पास चनेके खेतोंमें बालक कुछ जाते
दौड़ दौड़के सुरुचि साग खाते घर लाते।
आपसमें सब करते जाते खिल्ली ठट्ठा
वहीं खोलकर खाते मक्खन रोटी मट्ठा।
बातें करते कभी बैठके बांधे पाली
साथ साथ खेतोंकी करते थे रखवाली।
कहते हर्षित सभी देख फूली फुलवारी
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी॥

६

हाय समयने एक साथ सब बात मिटाई
एक चिन्ह भी उसका नहीं देता दिखलाई।
कटे पिटे मिट गये वह सब ढाकोंके जङ्गल
जिनमें करते थे पशुपक्षी नितप्रति मङ्गल।
धरतीके जीमें छाई ऐसी निठुराई
उपजीविका किसानोंकी सब भांति घटाई।
रहा नहीं तृण न्यार कहीं कृषकोंके घरमें
पड़े ढोर उनके गोभक्षककुलके करमें।
जिन सरसोंके पत्तोंको डङ्गर थे खाते
उनसे वह अपना जीवन हैं आज बिताते।
लवण बिना वह भी हा रह जाता है फीका
नहीं पूछता भाव आज कोई उनके जीका।
जिन खेतोंमें आय पथिकगण बहु सुख पाते
फल खाते सुसताते सानन्द घरको जाते।
गांवोंके लड़के जब उन खेतोंमें आते
ढेरों सरसों तोड़ तोड़ घर में ले जाते।

आज पुलिसवाले उनको करके बरजोरी
जेल रहे हैं भेज, लगा सरसोंकी चोरी।
हा! वह उनकी सम्पति वह उनकी प्रभुताई
एक चिन्ह भी उनका नहिं देता दिखलाई।

७

कहां गये वह गांव मनोहर परम सुहाने
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने।
कपट और क्रूरता पाप और मदसे निर्म्मल
सीधे सादे लोग बसे जिनमें नहिं छलबल।
एक साथ बालिका और बालक जहं मिलकर
खेला करते औ घर जाते सांझ परे पर।
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई
जिनके सपनेमें भी पास कभी नहिं आई।
एक भावसे जाति छतीसों मिलकर रहतीं
एक दूसरेका दुख सुख मिलजुल कर सहतीं।
जहां न झूठा काम न झूठी मान बड़ाई
रहती जिनके एकमात्र आधार सचाई।
सदा बड़ोंकी दया जहां छोटोंके ऊपर
औ छोटोंके काम भक्ति पर उनकी निरभर।
मेल जहां सम्पत्ति, प्रीति जिनका सच्चा धन
एकहि कुलकी भांति सदा बसते प्रसन्न मन।
पड़ता उनमें जब कोई झगड़ा उलझेड़ा
आपसमें अपना करलेते सब निबटेड़ा।
दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई
एक चिन्ह भी उसका नहीं देता दिखलाई॥

८

आती है चांदनी ध्यानमें जब फागनकी
अति चञ्चल हो जाती है गति मेरे मनकी।
कौन दृश्य इन आंखोंके आगे फिरता है
कौन इन्हें आकर घण्टों निश्चल करता है।
पलक नहीं झपती रह जाती है पथराके
कौन इन्हें यूं रखता है पहरों बिलमाके।
हे हे दुखियो डूबी हो किस दुखसागरमें
अब उन बूँदों भेट कहां है भारतभरमें!
शोक ग्रसित क्यों हुई नहीं क्यों पलक उठातीं
क्या खोया जिसको ढूंढ़से भी नहिं पातीं?
ढलक बून्द एक आंसूकी जब मुंह पर आई
छटा चाँदनीकी पत्तों पर दी दिखलाई।
चौंक पड़ीं एकबार शब्द झांझोंका सुनकर
पलक उठीं तो हाय रह गया सिरको धुनकर।
कब तक धोका धरूं बता हे प्यारी आशा
कब तक देखे जाऊं यह सुख रहित तमाशा?
कहां झांझका शब्द कहांपर डफ मृदङ्ग है
कहां वह सब लीला और उसका रङ्गढङ्ग है।
वह सुखअवसर और अलौकिक सुन्दरताई
एक चिन्ह भी उसका नहिं देता दिखलाई॥

६

पतितपावनी पूजनीय यमुनाकी धारा
सदा पापियोंका जो करती थी निस्तारा।
अपनी ठौर आज तक वह बहती है निरमल

बना हुआ है वैसाही शीतल सुमिष्ट जल।
विस्तृत रेती अब तक वैसी ही तटपर है
आसपास वैसा ही वृक्षोंका झूमर है।
छिटकी हुई चांदनी फैली है वृक्षों पर
चमक रहे हैं चारु रेणुकण दृष्टि दुःखहर।
वही शब्द है अबतक पानीकी हलचलका
बना हुआ है स्वभाव ज्योंका त्यों जलथलका।
वोही फागन मास और ऋतुराज वही है
होली है और उसका सारा साज वही है।
अहह! देखनेवाले इस अनुपम शोभाके
कहां गये चल दिये किधर मुंह छिपा-छिपाके।
प्रकृति देवि! हा! है यह कैसा दृश्य भयानक
हृदय देखके रह जाता है जिसको भवचक!
क्या पृथिवीसे उठ गई सारी मानव जाती
क्यों नहिं आकर इस शोभा को अधिक बढ़ाती।
किसने वह सब अगली पिछली बात मिटाई
एक चिह्न भी उसका नहिं देता दिखलाई।

१०

हाहा आज अकेला इस तटपर फिरता हूं
लखके रह जाता हूं वही वही करता हूं।
हाय सुनाऊं किसको जाकर वही वहीकी
जीही लगी जानता है कुछ अपने जीकी।
आया हूं क्या यही देखनेको सन्नाटा
जिसने जगसे एकबार ही चित्त उचाटा।
जाग रहा हूं वा यह सपना देख रहा हूं

क्या वह दशा नहीं क्या मैं ही भूल गया हूं।
कोई ध्वनि सुननेको जबहूं ध्यान लगाता
शिवा रुदनका अशिव शब्द तबहूं सुन पाता।
अथवा कहीं उलूक कोई चिल्ला उठता है
मुवा-मुवाकी ध्वनिसे जी घबड़ा उठता है।
झींपलके अतिरिक्त बात कोई नहिं करता
प्रेतयोनिके सिवा यहां कोइ नहीं विचरता।
पथिक एक भी नहीं राहमें है दिखलाता
बिना बगूले और कोई नहिं आता जाता।
मनुजनाद कोसों तक देता नहीं सुनाई
चारों ओर घोर सुनसान उदासी छाई।
सुन पड़ती नहिं कहीं आज वह ध्वनि सुखकारी
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी।

—हिन्दोस्थान, ३१ जनवरी, १९ फरवरी, ४ मार्च १८९० ई०

पुरानी दिल्ली

धन, वैभव, सुख, मान, वीरगनको अदम्य बल
सूरन की सूरता, प्रतिज्ञा दृढ़तर निश्चल।
वह अनुपम लावण्य सुन्दरी ललना गनको
बसीकरन सुधहरन अनिश्चलकारी मनको।
वह सुहावनी छटा धवल ऊंचे महलनकी
शोभा धन जनसे भरपूर! ग्राम नगरनकी।
रह्यो न कोऊ शेषकाल सबही कहं खायो
एक-एक करि वा कराल मुख मांहि समायो!

—हिन्दी बङ्गवासी, २५ जून, सन् १८९४ ई०

पंजाबमें लायल्टी।

सबके सब पंजाबी अब हैं लायल्टीमें चकनाचूर,
साराही पंजाब देश बन जानेको है लायलपूर।
लायल हैं सब सिक्ख अरोड़े खत्री भी सब लायल हैं,
मेढ़ रहतिये बनिये धनिये लायल्टीके कायल हैं।
धर्म-समाजी पक्के लायल, लायल है अखबारें आम,
दयानंदियोंका तो है लायल्टी सेही काम तमाम।
लायल लाला हंसराज हैं लायल लाला रोशनलाल,
लायल्टी ही जिनका सुर है लायल्टी ही जिनकी ताल।
पोथी लेकर इन्हें पड़ी, अपनी लायल्टी दिखलाना,
लाट इबटसन देंगे उनको लायल्टीका परवाना।
मुसलमान साहब तो इससे कभी नहीं थे छुट्टीमें।
पैदा होते ही पीते हैं वह लायल्टी घुट्टीमें।
'वतन' सदासे लायल ही था और अब है 'पैसा अखबार'
लायल्टीके मारे ही हैं वह अब जीनेसे बेजार।
लायल सब वकील बारिस्टर जमींदार और लाला हैं,
म्युनिसिपाल्टी वाले तो लायल्टीका परनाला हैं।
खान-बहादुर राय-बहादुर कितने ही सरदार नवाब,
सब मिल जुलकर लूट रहे हैं, लायल्टीका खूब सबाब।
ऐरा गैरा नत्थू खैरा सबपर इसकी मस्ती है,
लायल्टी लाहोरमें अब भूसेसे भी कुछ सस्ती है।
केवल दो डिस लायल थे वाँ एक लाजपत, एक अजीत,
दोनों गये निकाले उनसे नहीं किसीको है कुछ प्रीत।

हाँ, कुछ डिसलायल थे रावलपिंडीके पंडित लाले,
वह सब पकड़, दिये फाटकमें बाहर लगा दिये ताले।
फिर एक और मिला था डिसलायलका बच्चा पिंडी दास,
सोते उसे उठाकर घरसे फाटकमें करवाया वास।
और दिखाई दिया एक डिसलायल लाला दीनानाथ,
उसको भी एक जुर्म लगाकर पिण्डीके करवाया साथ।
इन सबसे लाला लोगोंका कुछ भी नहीं इलाका है,
लायल लोगोंके घरमें डिस-लायल्टीका फाका है।
पेट बन गये हैं इन सबके लायल्टीके गुब्बारे,
चला नहीं जाता है, थककर हाँप रहे हैं बेचारे।
बहुत फूल जानेसे डर है फट न पड़ें यह इनके पेट,
इसी पेटके लिये लगी है लायल्टीकी इन्हें चपेट।
सुनते हैं पंजाब देश सीधा सुरपुरको जावेगा,
डिस लायल भारतमें रहकर इज्जत नहीं गँवावेगा।

—भारतमित्र, सन् १९०७ ई०

शोभा और श्रद्धा

मेघ मनावनि

आवहु आवहु मेघ कहां तुम छाय रहे
निज प्रेमिन कहं भूलि कहां बिलमाय रहे ?
आवहु आवहु भारतके जीवन-धन प्रान
ताकि रहे टक लाये तेरी ओर किसान।
या बूढ़े भारत कहं दूजी और न आस
स्वाति बिना चातककी कौन बुझावे प्यास।
तुम बिन या भारतको दूजो और न कोय
सांच कहैं तुम्हरे आगे क्यों राखैं गोय ?
धूरि उड़त चारहुं दिस सूखे खेत परे
आवहु आवहु फेरि करो इकबार हरे।
धावहु हे घन ! जावहु पुनि खेतन पर छाय
देहु न किन मोतिन सम निज जलकन बरसाय ?
आवहु पुनि बसुधाकी पूरी आस करो
हरे हरे खेतनसों वाकी गोद भरो।
तेरे भारतवासिनकी है एक लकीर
बने भये हैं वाहीके जो सदा फकीर।
जो घर बन बोहड़ महं राखत तुम्हरी आस
सो सब सीस झुकाये बैठे निपट उदास।
जो तुम्हरे बल रहते हे घन ! सदा निसङ्क
देखहु किन, सो आज भये रङ्कहुते रङ्क।

तुम्हरी सेवा करते दीन्हीं आयु बिताय
अब तिन कहं बिन तुम्हरे को है आन सहाय ?
एक भरोसो तुम्हरो जिनके राम समान
दूजो और न सपने हू महं जिनको ध्यान।
तुमहिं छाड़ि हे मेघ ! कहो काके ढिग जाहिं ?
कापर करहिं भरोसो कछु सोचो मन माहिं ?
एकबार आषाढ़हिं आये बरस बिताय,
बरसायो जल चित्त गये सबके हरखाय।
तबसों मेघ ! न पायो तुम्हरो दरस बहोरि,
ताकि रहे हम ताही दिनसों नभकी ओर।
तव प्रसाद तें भूमि गईही जो हरियाय,
तेरो पंथ निहारत धूरहिं गई बिलाय।
सूखे बन उपबन परबत झुरि जरि गई घास,
डोलत खग मृग जीह निकासे निपट उदास।
तेरे बल जो दाने निकसे परबत फार
बिन तेरे सो होय गये जरि बरिके छार।
सूखी तरुराजी झुरि झुरिके परि रहे पात,
सूखे सरिता सर ऊसर चहुं ओर लखात !
इमि बीत्यो असाढ़ अरु सावन हू गयो बीत,
देखे कहूं न झूले सुने न तेरे गीत।
सजी न अबके तेरे दल बादलकी फौज,
लूटी हाय न तेरे घनगरजनकी मौज !
चमचम करि चमकी नहिं दामिनी एकहुं बार
अरु नहिं छाये घोरघोर घन करत अन्धार !
बह्यो न पूरे बेगहि सीतल सरस बयार,

नभ महं उड़त न देखे बकगन बांधि कतार।
पी पी शब्द पपीहनको कोयलकी कूक,
झीं झीं झिल्लीगनकी अरु मोरनकी हूक।
कछु नहिं परयो सुनाई सावन बीत्यो हाय!
अरु भादोहूं सूखो सूनो गयो बिलाय।
सूखे डाबर सूखे नाले नदी तड़ाग
बिखरी चहुं दिस ग्रीसमहूंसों बढ़िकै आग।
पय बिहीन सिसु, मात पिता सब अन्न बिहीन,
त्रिन बिहीन पशु डकरावत ह्वैकै अति दीन।
भादों बीत्यो अरु आसिनहू बीत्यो जाय
तौहूं दया न ब्यापी घन तेरे मन हाय!
वह देखो पशु लोटत भुंइ महं परे बिहाल।
वह देखो नरनारी डोलत जिमि कङ्काल!
वह देखो शिशु डोलत जिनके बाप न माय,
देखहु देखहु गीध रहे सिर पर मंडराय!
देखहु देखहु दिन दोपहरे डोलहिं स्यार,
सिवा रुदन छायो चहुं दिस अरु काक गुहार!
द्रवहु द्रवहु भारत पर अबहूं हे घनश्याम!
अब न बचावहुगे, आवहुगे पुनि केहि काम ?
जदपि भये जीवन सों अब सब लोग हतास,
तदपि नाहिं टूटत हे नवघन! तुम्हरी आस ॥

—भारतमित्र, ९ अक्टूबर, १८९९ ई०

वसन्तबन्धु

जो वसन्त तुम आय गये हो कछुयक करो निवास
देखत बदन प्रसन्न तिहारो हियको बढ़त हुलास।
तव प्रसन्न मुख देखन कारन हीय रह्यो बौराय
देखत देखत होय बावरो औरहु देखत जाय।
मन जानत तन जानत जानत मनको जाननहार
तुम नहिं जानत मीत हमारो तुमपर प्रेम अपार।
मनको भरम देहकी ज्वाला और हियेको सूल
तव प्रसन्न मुख निरखि निरखि प्रिय गये आज सब भूल।
मलय समीर तुम्हारो मानहु करत प्रान सञ्चार
तव पिक कोकिल तानन जोस्यो टूट्यो हियो हमार।
तुम्हरे आये बन्धु भूमिको दीखत भाव नवीन
ताप मिटाय भगाय सोक दुख हासमयी सो कीन।
सोई आशा त्रिविध सनेह तुम्हारे दई जगाय
अहो मीत देवत्व तुम्हारो कहं लगि बरन्यो जाय।
ताही सों जिय होत तुम्हैं हम राखैं निसि दिन पास
निरखत तव मुखचन्द्र गिरावैं पलक न बारह मास।
सिरकी सपथ हमारे प्यारे कछु दिन ठहरो और
सरस करो या नीरस हियकों हे सब रुत सिरमौर।
झूठो है यह सोर हमारो झूठी हाय पुकार
अमरनगर वासी क्यों ठहरैं या मरलोक मंझार?
जान्यो हम नन्दनबन तुमकहं टेरत हैं सुरबाल
देन सुगन्ध पवनको अरु गूंधनको पुष्पन माल।
तहंहूं देखत होइहैं प्यारे सब जन बाट तुम्हार

तुम्हरे गये होयगो तिनको चिरसुख अधिक अपार।
तब क्या कहैं रहौ, जाओ प्रिय, जाओ निज सुखगेह
याद राखियो भूल न जैयो दीन मित्रको नेह।
जब बाहर या धराधाम कहं ग्रीषम देहिं तपाय
तब तुम प्यारे अमी ढालियो मेरे हिय महं आय।
बनो रहै योंही वसन्त अरु खिलैं अनेकन फूल
उमड़ै स्यामघटा हिय गावैं पंछी जमनाकूल।
प्रीति वसन्त अनन्त भर्‌यो यह मम हिय कैसे होय?
सांचि कहौ कबहूं वा मंह यह लेहौ प्रान समोय।

—भारतमित्र, १२ मार्च १९०० ई०

वर्षा।

छये घोर चहुं ओर मेघ, पावसकी परी पुकार
घन गरजत चपला अति चमकत, फरफर उड़त फुहार।
देखहु भयो गगन मण्डलको कैसो औरहि रूप
औरहि रंग भयो धरनीको सोभा अधिक अनूप!
मिट्यो ताप ग्रीसमको डोलत, सीतल अमल बयार
अब नाहीं बरसत नभतें लूअनके तेज अंगार।
अब नहिं उड़त भूमिके मुखपै, निसि बासर बहु धूर
अब नहिं रहत धूरि धूसरसों, नभ मण्डल परिपूर।
अब नहिं करत पिपासा तन महं प्रान छनहिं छनछीन
अब नहिं छटपटात नारी नर, जलबिहीन जिमि मीन।
आवहु आवहु मेघ अहो, पावस रुतुके सिरताज
तव प्रताप सब सूखे गीले, भये हरेसे आज।

शोभा और श्रद्धा

यह हरियाली नाहिंन चहुं दिस उमड़ि उभारत गात
भयो अपार अनन्द भूमिको, फूली अंग न समात।
बहु दिन बीते बाट निहारत हे नवघन चितचोर!
चाह भरी अंखियां सबहीकी लागीं नभकी ओर।
आज भई सीतल सो अंखियां, तो कहं सम्मुख पाय
घर बाहर आंगन द्वारन आनन्द रह्यो अति छाय।
तेरे ही दमकी है यह सब लहर बहर घनराय
सूखे बन बीहड़ पहाड़ मग सबै उठे हरियाय।
तेरी एक बून्द हे घन! जीवन-जल-बून्द समान
तुही देत सब जगकहं जीवन, हे जगजीवन प्रान!
यह केते पायनकी रौंदी सूखी झुलसी दूब
हरी करी बरसाय अमिय ता ऊपर कीनी खूब।
बाढ़त हैं पौधनरूपी-सिसु तेरो ही पय पाय
अरु बूढ़े बूढ़े पेड़नको तू ही होत सहाय।
कहा बताऊं प्यारे तोसों तेरे पयको जोर
निकसत छुद्र अन्नको दाना परबतहू कहं फोर!
कुसुमित भये लता पल्लव बहु विपिन उठे अति फूल
उमड़ि नदी इतराई डोलत भूल रही दोउ कूल।
कबहुं देत धरनी कहं इक धानी सारी पहिराय
कबहु खिले फूलनसों ताके मुख कहं देत खिलाय।
पलटत नभ चढ़के इक छन महं भांति-भांतिके रंग
साची कहो कहां यह सीखे भानमतीके ढंग?
जब तू चढ़त गगन पै हे घन करि निज मनकी मौज,
गहरे दल बादलकी लीन्हें आगे पीछे फौज,
धावत सोभा पावत मानहु मत्त गजनको झुण्ड

बलकर परबत तोड़न हेत लरावत अपने सुण्ड।
गरजत, यूथ गजनके मानहु हिलमिल करहिं चिघार
फाट्यौ हीयो कन्दरानको कम्पित भये पहार।
अरु सीतल समीरके झोंके भिरत तरुन संग जाय
मनहु लता पल्लवके साजन सों सुर रहे मिलाय।
मधुर स्वरन कोयलिया कूकहिं पिकहिं मचायो रोर
गावत मीठी तान बिहग बहु छनछन नाचत मोर।
यह बूढ़ किसान भारतके अहो मित्रवर नीर!
सबरे हैं तेरी लकीर पै बैठे बने फकीर।
नाहिं दूसरो नेहचो जिनके नाहिं दूसरी बान
तूही एक सहारो तिनके अथवा श्रीभगवान।
मिटी आज उनकी सब चिन्ता दुःख ताप भयो दूर
बैठ फूलि फूलि निज खेतन सुखकी उठत हिलूर।
जो नद पर्यो हतो रेती पै सिसकत सर्प समान
सो अब उमड़ि उमड़ि निज लहरन छुयो चहत असमान।
फेन उठावत, दौर्यो आवत तटन गिरावत तोर
बारम्बार तरंग उठावत करत प्रलय सम सोर।
हरे पहारनकी चोटी पै खिले फूल बहुरंग
हरे जालमें फंसे आय जिमि नाना रंग बिहंग।
जहं तहं झरने झर अनेकन फैलाये बहु धार
तव गुनगान हेत जिमि खोल जीह हजार हजार।
सब दिन तुमसों यही बीनतो हमरी हे घनराय!
यह तुम्हरो भारत चितसों कबहूं नहिं बीसर जाय।
रहे सदा हमरे चित महं अङ्कित तव चित्र ललाम
सदा बसौ हमरे नैनन महं प्यारे नवघनश्याम॥

—भारतमित्र, २४ सितम्बर १९०० ई०

पिता ।

(१)

एहौ जगतपिताके प्रतिनिधि पिता पियारे !
मोहि जन्म दै जगत दृस्य दरसावन हारे !
तव पद पङ्कजमें करौं हौं बारहिं बार प्रनाम,
निज पवित्र गुनगानकी मोहि दीजै बुद्धि ललाम ॥

(२)

यद्यपि यह सिर मेरो नहिं परमाद तिहारो ।
प्रेम-नेम तें तदपि चहौं तव चरननि धारो ।
गंगाजूकों अर्घ सब, हैं गंगहि जलसों देत,
ऐसो बालचरित्र मम लखि रीझौ मया समेत ॥

(३)

बन्दों निहछल नेह रावरे उर पुर केरो ।
लालन पालन भयो सबै विधि जासों मेरो ।
उलटै-पुलटै काम मम अरु टेढ़ी मेढ़ी चाल ।
निपट अटपटे ढङ्गहू नित लखि लखि रहे निहाल ॥

(४)

कहौं कहां लग अहौ आपनी निपट ढिठाई !
तव पवित्र तन माहिं बार बहु लार बहाई ।
सुद्ध स्वच्छ कपड़ान पर बहु बार कियो मल मूत ।
तबहुं कबहुं रिस नहिं करी मोहि जान पियारो पूत ॥

(५)

लाखन अवगुन किये तदपि मन रोष न आन्यो ।
हंसि हंसि दिये बिसारि अज्ञ बालक मोहि जान्यो ।

कोटि कष्ट सुखसों सहे जिहि बस अनगिनतिन हानि।
कस न करौं तिहि प्रेमको नित प्रनति जोरि जुगपानि ।।

(६)

बन्दौं तव मुखकमल मोहिं लखि नित्य विकासित।
मो संग विद्या आछतहूं तुतराई भासित।
लाल वत्स प्रिय पूत सुत नित लै लै मेरे नाम।
सुधा सरिस रस बैनसों जो पूरित आठौं जाम ।।

(७)

खेलत खेलत कबहु धाय तव गरे लपटतो।
लरिकाई चञ्चलताई कै खरो चमटतो।
लटकि लटकि कै आपहीं हौं सम्मुख जातो घूमि।
बन्दौं सो श्रीमुख कमल जो लेतो मो मुख चूमि ।।

(८)

जब तव जो कछु बाल बुद्धि मेरीमें आयो।
अनुचित उचित न जानि आयकै तुमहिं सुनायो।
हंसि हंसि ताहू पै दिये उचित ज्वाब मोहि जान।
बन्दौं अति श्रद्धा सहित सो मधुर मधुर मुसकान ।।

(९)

बन्दौं तुम्हरे तरुन अरुन पंकजदल लोचन।
दयादृष्टि सों हेरि सहज सब सोच विमोचन।
मेरे औगुन पै कबहुं जिन करि न तनिक निगाह।
सबहि दसा सब ठौरमें नित बकस्यो अमित उछाह।

(१०)

मोहिं मुरझान्यो देखि तुरत जलसों भरि आये।
कहूं रुष्टहू भये तहूं ममतासों छाये।

तरजन बरजन करतहूं हो पूरित पावन प्रेम।
सब दिन जो तकतेहुते बहु ममतासों मम छेम ॥

(११)

खेलन हेत कबहु जब निज मीतन संग जातो।
जब फिरकै आतो मारग तकते ही पातो।
आवत मोहिं निहारिकै हो हरे भरे ह्वै जात।
युगल नैन बन्दौं सोई मैं नित प्रति सांझ प्रभात ॥

(१२)

जिन नैननके त्रास रह्यो मेरे मन खटको।
पै वह खटको रह्यौ पन्थ सुख सागर तटको।
अगनित दुरगुन दुखनते जिन राख्यो रक्षित मोहिं !
काहे न वे दृग कमल मम श्रद्धा-सर-सोभा होहिं ?

(१३)

करौं बन्दना हाथ जोरि तव कर कमलनकी।
सब बिधि जिनसो पुष्टि तुष्टि भई या तन मनकी।
दूध भातकी कौरियां सुचि रुचिसे सदा खवाय।
इतनेते इतनो कियो जिन मोहिं मया सरसाय ॥

(१४)

बड़े चावसों केस संवारत पट पहिरावत।
जूठ कर मुख धोवत नित निज संग अन्हवावत।
कहूं सिसुता बस याहू मैं जब रोय उठों अनखाय।
तब रिझवत हंसि गोद लै कै देत खिलौना लाय ॥

—हिन्दोस्थान, ३ मई सन् १८९० ई०

स्वर्गीय कवि

(पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके शोकमें ।)

हे कवि ! कहं तुम कौन स्वर्गमें वास तुम्हारो ?
कौन दिव्य वह लोक इहांतें कितो पसारो ?
ध्रुव ब्रह्मा, सिव, विष्णु, देवपतिके लोकन महं
किम्बा औरहु ऊंचो लोक विराजत हो जहं।
रहो कतहुं किनपै राखो अनुरोध हमारो
एकबार स्वर्गीय दया-दृष्टिसे निहारो।
नभके उज्ज्वल आंगन महं दरसन दिखराओ
भूके हतभागिन कहं सुरपुर कथा सुनाओ।
मर्त्यलोकको अघी नरकको कीट कहाऊं
स्वर्गद्वारमें धसन अहो कवि ! कैसे पाऊं ?
कहं ऐसो मम भाग्य प्रान अवसान भये पर
पाऊं देव ! प्रफुल्ल-चित्त सुरपुर-भीतर घर ?
पुञ्ज पुञ्ज तव पुण्य अहो कवि ! आगे आयो
पुण्यमयी कविताने अपनो बल दिखरायो।
हे जसभागी ! उहां ठांव सुरपुरमें पाई
इहां भूमिपर रही रावरी कीरति छाई।
लै बीना स्वर्गीय, स्वर्गको गीत सुनाओ।
मर्त्यलोक-वासीकी यह अभिलाष मिटाओ।
मर्त्य-गान जो मर्त्य-कलेवर महं तुम गाये
अच्छर अच्छर जिनके अमृत माहं डुबाये,
सुनि हैं तिन कहं निसदिन मर्त्यकलेवर धारी
जबलौं रहे प्रानको तनमें तांतो जारी

केते जन्म बिताय बहुरि या जग महं आवैं
तुम्हरे उन चिर मर्त्यगीत कहं सुनहिं सुनावैं।
राख्यो सञ्चय करि जिन महं या जगको सम्बल
सोक, सान्ति, भय, ज्ञान, दुःख, सुख, हास्य, अस्रु जल।
अहो स्वर्ग कविराज! स्वर्गको गान सुनाओ
एक बार स्वर्गकी देव! वह छवि दिखराओ।
कहं कैसो सुरलोक अहै कैसो सुख वामें
किहि प्रकार सुख सान्तिभाव राजत है तामें?
किते कोटि ब्रह्माण्ड किते कोटिन बल द्वारा—
चालत हैं तहं, अहैं किते रवि ससि नभ तारा?
केते ब्रह्मा, विष्णु, किते सुरपति त्रिपुरारी
केते दीप्त पुञ्जमय दिव्य कलेवर धारी?
कौन भांति तहं फूल खिलत वायू झकझोरत
सोतवती किमि बेग सहित बहु सोतन छोरत?
कैसे सुन्दर विपिन तहां कैसे ऋतु आवत
कैसे भोग विलास राग रस रङ्ग बढ़ावत?
कैसी तहां सुरम्य सुहावनि फूली कुंजें
कैसे पुञ्ज पुञ्ज अलिगन तिन ऊपर गुंजें?
कैसे तहां तड़ाग खिले कैसे तहं सतदल
कैसो सुन्दर स्वच्छ सरस सीतल तिनको जल?
और तहां किहि भांति मीनगन खेल दिखावैं
पंछीगन मीठी लयसे निज गान सुनावैं?
सुन्यो स्वर्गके माहं विराजत नन्दन कानन
वाकी छबि दिखराय देहु है कैसो वह बन?
कैसे वाके पारिजात गहने फूलनके

कैसी तिनकी गन्ध रङ्ग कैसे कलियनके ?
किह प्रकार मन्दाकिनि तहं परवाह बढ़ावत
कहां सुधाको भांड, सुधा मुखसों ढरकावत ?
मनी कौस्तुभ कहा रङ्ग कैसो है ताको
केते कोटि विस्व महं रहत उजेरो वाको ?
सुन्यो अहै उच्चैस्रवा अरु ऐरावत तहं
तिन्हैं हमें दिखारावहु अरु जो कछु है वा महं।
अहो देव ! कविराज सदा आनन्द भावमय
सुरपुर अरु भूलोक तुम्हारे दोऊ आलय।
तव प्रसाद तें तथ्य मर्त्यको सिगरो पायो
अब सुरपुरकी कथा सुनन तुम्हरे ढिग आयो।
देव ! कृपा करि मोहिं स्वर्गको तथ्य बताओ
एकबार अङ्कित करि वाकी छबि दरसाओ।
स्वर्ग मर्त्यको ठीक भेद जासों कछु पाओं
चिर कलुषित हियको जासों कछु ताप मिटाओं ॥

—हिन्दी बङ्गवासी, ३० जुलाई १८९४ ई०

मेक्समूलर

किनकी सङ्गतमें बीतत निसि दिवस तुम्हारे
कौन तुम्हारे प्यारे हैं किनके तुम प्यारे ?
मत भूलो, विस्वास करहु तनिकहु नहिं तिनको
स्वारथके सब मीत मीत समझे हो जिनको।
जाओ वा पुस्तकागारमें सांझ सवेरे
मिलिहैं तहं बाप अरु दादाके मीत घनेरे
सो हैं सांचे साथी प्रेमी सखा तुम्हारे
सांचे उपदेसक सांचे गुरु अरु अति प्यारे।

जबहिं कहेंगे तुम्हरे हितकी बात कहेंगे
कछु तुमहीको देदंगे तुमसों कहा लंगे ?

(२)

अहो ! खिले उपबनकी सोभा निरखन हारे !
यह गुच्छे फूलनके तुमने भले संवारे।
पै याहीके हेत नाहिं यह जनम तिहारो
यों अधीर बनिकै औरनको रूप निहारो।
कहा भयो जो जोरे बहु फूलनके तोरे
अरु मीठे बहु भांति फलनके ढेर बटोरे।
कछू ऐसो अपनोहू तो गुन रूप दिखाओ
वा सोभापै रिझवारिनके चित्त रिझाओ।
तुमहूंमें कछु लोगनके दिन या विधि बीते
मरे भयो बहुकाल आजलों हैं पै जीते।

(३)

देखहु ध्यान लगाय चरित उनके अति निर्मल
सुद्ध स्वच्छ निरलिप्त मनहु गङ्गाजीको जल।
रहे सबन सों दूर काम सबहीके आये
देस जाति पर भीर परी तहं आगे पाये।
देखत हे बहु दोष लेत हे आंख छिपाई
देखत हे अपराध किन्तु हे देत भुलाई।
विद्या गुन बरसाय गये यों धराधाम पर
जिमि सावनके मेघ खेत पर परहिं टूटकर।
सब कछु लाये साथ किन्तु कछु साथ न लीयो
भलो करन हमरो आये थे सो कर दीयो॥

(४)

जबलों जीये देस जातिकी करी भलाई
याही एक धन्धेमें सारी आयु बिताई।
मरे छोड़ गये नाम आपनो राम नाम सम
अजर अमर अबिनासी उत्तमहू ते उत्तम
अटल अचल गम्भीर प्रतिज्ञा पालन हारे
वहुदरसी बहु विज्ञ बात के बड़े करारे।
कैसे हे करकमल और कैसे मुख उनके ?
कौन रहे वह तिनहि सिखावनहारे गुनके ?
पूछौ इन पोथिन सों वह सब कथा पुरानी
उनकी विद्या बुद्धि नहीं कछु इनसों छानी ॥

(५)

अहें इनहिं कण्ठस्थ वाक्य उनके सब सुन्दर
सब्द सब्द उनके इनके ओठनके ऊपर।
मृदु इनको उपदेश मधुर इनकी प्रियबानी
उचित आज्ञा सब इनकी अरु सीख सयानी।
चोट कथनकी इनके हियपे लगत करारी
मातहुकी सीख सों सीख इनकी अति प्यारी।
अरु वह इनके दृश्य सदा मन मोहनहारे
वन उपवन उद्यान बाटिका हू तें प्यारे।
अरु इनकी बतरावन सुनि सुनि कछू न चहिये
यही होत जीमें निस दिन सुनते ही रहिये ॥

(६)

सदा कमर बाँधे सबकी सेवामें हाजर
जबलों चाहो निकट राखि पुनि देहु बिदाकर।

परामर्स यह देत सदा सबको हितकारी
जो नहिं मानत तिनहूं सों नहिं होत दुखारी।
ऐसी इनकी बुद्धि, सरल एती ताहू पर
सत्रु होय वा मित्र जात हैं दोऊके घर।
कहो कौनको देख्यो ऐसो बाहर भीतर?
ऐसे साँचे कहां मिलहिंगे! तुमहिं मित्रवर?
सदा दोषसों दूर न व्याप्यौ दूषनहू छिन
ऐसे सांचे मित्र, मित्र,! कहुं मिलत भाग बिन?

—भारतमित्र, ३ दिसम्बर १९०० ई०

वसन्त।

फिर सेमर पलास बन फूले,फिर फूले कचनार।
बौरे आम कोइलिया कूकी, आई बहुरि बहार॥
वन उपवन में फूले केते, भांति भांतिके फूल।
प्रकृति रूप धार्यौ कछु औरै, ब्यार बही अनुकूल॥
फिर खेतनमें सरसों फूली शोभा छयी अपार।
फिर फुलवारिनमें गेंदनकी लगी अनेक कतार॥
चटकत बहु गुलाबकी कलियां सौरभ बिखरी जाय।
मधु लम्पट मधुपन ता ऊपर राखी लूट मचाय॥
निरमल चन्द चान्दनी चारहुं ओर दई छिटकाय।
रैन दिवस सम भये शीतको कोमल भयो सुभाय॥

कोकिल।

फूले बन पलास ऋतुपतिके लागे उड़न निसान।
फिर धहराय मलय मारुतके लसकर कियो पयान॥

अब क्यों मौन गह्यो प्रिय कोकिल आई बहुरि बहार ?
अब दिन फिरे तुम्हारे प्यारे पंचम स्वरहि पुकार ॥
कूक वसन्ती कोकिल प्यारे हृदय खोलि कर कूक,
करि अपने पिंजराके चाहे मेरे हियके टूक !
गाय गाय प्यारे पुनि वह स्वाधीन समयको राग !
वह पहली शोभा वसन्तकी वह सुचि सुन्दर फाग !

—भारतमित्र, १४ मार्च सन् १९०३ ई०

मनुष्यकी लालसा ।

अमेरिका—युक्तराज्यके एक प्रेसीडेंटकी एक अंगरेजीकी कविताका भाव ।

(१)

"इस दुनियामें लोगोंको हैं कम चीजें दरकार,
वह भी थोड़े दिनको" यों कवि करता है निर्द्धार ।
पर मुझ पर तो नहीं ठीक होती कविकी यह टेर,
है मेरे तो पास कोड़ियों इच्छाओंका ढेर ।
हर इच्छा मेरी हो जो एक सोनेकी टकसाल,
तोभी और बढ़ेगा कुछ इच्छाओंका जंजाल ॥

(२)

एक इच्छा है नित्य सजे यों मेरा दस्तरखवान,
मदिरावत समुद्रकी, कुदरतका पूरा सामान ।
मिलें फरासीसी उत्तम बावरची मुझको चार,
अच्छे अच्छे भोजन मेरी खातिर हों तय्यार ।
नित्य चौगुना खाना खाऊं तोभी भूख न जाय,
इच्छा मेरी इतने पर भी अधिक अधिक अधिकाय ॥

(३)

है इच्छा दूसरी मिले सुन्दर कीमती लिबास,
सेवलका काला पशमीना जाड़ेमें हो पास।
वक्षस्थल पर शोभित हो बढ़िया कशमीरी शाल,
और लैस ब्रूसलकी उसकी शोभा करे विशाल।
गरमीमें रेशमके कपड़े रेशमके रूमाल,
अंगुरीय हीरेकी करमें और गलेमें लाल॥

(४)

चौमंजिला सङ्गमरमरका उत्तम आलीशान,
बहे स्वास्थ्यप्रद बायु जहां, एक ऐसा मिले मकान।
जहां भोजके लिये बने हों अच्छे घर दालान,
सुन्दर सजा नाचघर और अमीराना सामान।
हों अस्तबल पचासों अच्छे घोड़ोंसे भरपूर,
अच्छी चोखी मदिराओंसे तहखाने मामूर॥

(५)

एक रमना एक बाग महलके हो चौफेरे,
दस सौ एकड़का हो एक अहाता घेरे।
जहं भेड़ोंके झुण्ड फिरें पशु चरते डोलें,
बच्चे उछलें कूदें नाच करें किलोलें।
एक साथ फल फलें फूल कितने ही फूलें,
जिसे देखे सब बागेअदनकी शोभा भूलें॥

—भारतमित्र, ३ दिसम्बर १९०४ ई०

वसन्त विनोद

स्वागत

अब आओ श्रीऋतुराज राज, सब साथ लिये अपनो समाज।
तब आये सीत चल्यो पलाय, आनन्द गयो चहुं ओर छाय।
सब अपने कोकिल ले बुलाय, सबको मन तोषं मधुर गाय।
फैलाओ चहुंदिस भ्रमर जाल, गुंजरहिं विपनमें डाल डाल।
छोटे छोटे पर फरफराय, लपटं फूलनसों धाय धाय।
आवं खंजन लोचन विसाल, नाचं सबके मन कर निहाल।
फरफर डोलैं मलयज बयार, फैलावत सौरभ बार बार।
सोभित हों कमलनसों तड़ाग, चहुं ओर उड़ें जिनको पराग।
बौराय उठैं चहुंदिस रसाल, पुष्पित हों सारे तरु तमाल।
फल-पुष्पन पूरित होय देश, धारै धरती नव वधू वेश।
हैं जितने सुखके साज-बाज, एकत्र करो इक ठौर आज।

कोकिल अब क्यों मौन गही ?

बहु विधि फूल विपिनमें फूले मन्द समीर बही ॥
बौराये बहु आम मंजरिन तीखी सान लही।
फूल उठे बन उपबन सिगरे उमगी परत मही ॥
अपने हाथ बहुरि कुसुमायुध फूल कमान गही।
चटक चाँदनी निर्मल चन्दा विरहिन अधिक दही ॥
मत्त भई मलयज संग डोलत सौरभ अति उलही।
नाचत मोर कीर बहु गावत चाचर होय रही ॥
फूलन फूलन डोलत अलिगन करते चित्तचही।

फूली लता लपटि तरुसे कुछ सुखकी बात कही ॥
तू कैसे चुप साधि रह्यो प्रिय टुक तो बोल सही।
शोभा नववसनाकी बनिके आगई नव दुलही।
पंचम राग सुना अब प्यारे सुखको सार यही।
जौलों रहे वसन्त रहेगो इक तेरो जसही ॥

—भारतमित्र, सन् १९०७ ई०

बाल-विनोद

जरूर कर सकते हो

(१)

'कर नहिं सकते हैं' कभी मुंहसे कहो न यार,
क्यों नहिं कर सकते उसे, यह सोचो एकबार।
कर सकते हैं दूसरे पांच जने जो कार,
उसके करनेमें भला तुम हो क्यों लाचार।
हो, मत हो, पर दीजिये हिम्मत कभी न हार,
नहीं बने एकबार तो कीजे सौ सौ बार ॥

(२)

'कर नहिं सकते' कहके अपना मुंह न फुलाओ,
ऐसी हलकी बात कभी जीपर मत लाओ!
सुस्त निकम्मे पड़े रहें आलसके मारे,
वही लोग ऐसा कहते हैं समझो प्यारे।
देखो उनके लच्छन जो ऐसे बकते हैं,
फिर कैसे कहते हो कुछ नहिं कर सकते हैं ?

(३)

जो जलमें नहिं घुसे तैरना उसको कैसे आवे,
जो गिरनेसे हिचके उसको चलना कौन सिखावे।
जलमें उतर तैरना सीखो दौड़ो सीखो चाल,
'निश्चय कर सकते' हैं कहके सदा रहो खुशहाल ॥

रेलगाड़ी

(१)

हिसहिस हिसहिस हिसहिस करती, रेल धड़ाधड़ जाती है,
जिन जञ्जीरोंसे जकड़ी है उन्हें खूब खुड़काती है।
दोनों ओर दूरसे दुनिया देख रही है बांध कतार,
धूएँके बलसे जाती है धुआं उड़ाती धूआंधार।
आगके बलसे कल चलती है, देखोजी इस कलका बल,
घोड़ा टट्टू जुता नहीं कुछ, खेंच रही है खाली कल ॥

(२)

मात बगूलोंको करती है उड़ती है जैसे तूफान,
कलयुगका कलका रथ कहिये या धरतीका कहो विमान।
पलमें पार दिनोंका रस्ता इसमें बैठे होता है,
कोई बैठ तमाशा देखे कोई सुखसे सोता है।
बैठनेवाले बैठे बैठे देखते हैं कितने ही रङ्ग,
जङ्गल झील पेड़ बन पत्ते नाव नहर नदियोंके ढङ्ग ॥

(३)

जब गांवोंके निकट रेलगाड़ीको ठहरा पाते हैं,
नर नारी तब आसपासके कैसे दौड़े आते हैं।
हिसहिस हिसहिस धड़धड़ करती फिर गाड़ी उड़ जाती है,
सबको खबरदार करनेको सीटी खूब बजाती है ॥

—भारतमित्र, १० दिसम्बर १९०४ ई०

प्रभात ।

चटक रहीं बागोंमें कलियां, पंछी करते हैं रंग रलियां ।
ग्वाल चले सब गायें लेकर, बालक पढ़ते हैं मन देकर,
महक रही है खूब चमेली, भौंरे आये जान अकेली ।
सूरज ले किरनोंकी माला, निकला सब जग किया उजाला ।
ठण्ढी हवा लगे अति प्यारी, क्या शोभा देती है क्यारी ।
पत्तों ओससे जड़े हैं, जैसे मोती बिखर पड़े हैं ।
उठो बालको हुआ सवेरा, दूर करो आलसका डेरा ।
मुंह धोओ थोड़ा कुछ खाओ, फिर पढ़नेमें ध्यान लगाओ ।

खल और साधु ।

घूसों चूहोंका सदा देखो यह व्यवहार ।
जो पावैं सम्मुख उसे करैं काटके ख्वार ॥
काठ वस्त्र जो कुछ मिले सबको डाल काट ।
अच्छे अच्छे द्रव्य हों या हों मैले टाट ॥
पृथ्वी पर है यह सदा दुष्ट जनोंकी बान ।
अपना कुछ मत हो भला, करैं पराई हान ॥
पर सूईके सुगुण यह फटे वस्त्र दे जोड़ ।
जहां फटा देखे तहां रहे न मुंहको मोड़ ॥
जोड़ सोनेको सदा जले सुहागा आप ।
साधु सुहागा सम करैं भला सहैं सन्ताप ॥
सुई सुहागेसे सदा सीखो परउपकार ।
घूस मूसकी बान तुम कभी न सीखो यार ॥

हंसी-दिल्लगी।

भैंसका स्वर्ग।

(१)

भैंसके आगे बीन बजाई भैंस खड़ी पगुराती है।
कुछ कुछ पूंछ उठाती है और कुछ कुछ कान हिलाती है।
हुई मग्न आनन्द कुण्डमें बंधा स्वर्गका ध्यान।
दीख पड़ा मनकी आंखोंसे एक दिव्य अस्थान॥

(२)

कोसों तक का जंगल है और हरी घास लहराती है।
हरयाली ही दीख पड़े है दृष्टि जहां तक जाती है।
कहीं लगी है झड़बेरी और कहीं उगी है ग्वार।
कहीं खड़ा है मोठ बाजरा कहीं घनीसी ज्वार॥

(३)

कहीं पे सरसोंकी क्यारी है कहिं कपासके खेत घने।
जिसमें निकले मनो बिनौले अथवा धड़ियों खली बने।
मूंग मोठकी पड़ो पतोरन और चनेका खार।
कहीं पड़े चौलेके डंठल कहीं उड़दका न्यार॥

(४)

कहीं सैकड़ों मन भूसा है कहीं पे रक्खी सानी है।
कच्चे तालावोंमें आधा कीचड़ आधा पानी है।
धरी हैं वां भीगे दानेसे भरी सैकड़ों नांद।
करते हैं भैंसे और भैंसें उछल कूद और फांद॥

(५)

वहाँ नहीं है मनुष्य कोई बन्धन ताड़न करनेको
है सब विधि सुविधा स्वच्छन्द विचरनेको और चरनेको।
वहां करे है भैंस हमारी क्रोड़ केलि किलोल।
पूंछ उठाये भ्यां भ्यां रिड़के मधुर मनोहर बोल॥

कभी कहीं कुछ चरती है और कभी कहीं कुछ खाती है।
कभी सरपतोंके झुण्डोंमें जाकर सींग लगाती है।
कभी मस्त होकर लोटे है तालावोंके बीच।
देह डबोये थूथन काढ़े तन लपटाये कीच॥

(७)

कभी वेगसे फदड़क फदड़क करके दौड़ी जाती है।
हलकी क्षीण कटीका सबको नाजुकपन दिखलाती है।
सींग अड़ाकर टीलेमें करती है रेतउछाल।
देखतेही बन आता है बस उस शोभाका हाल॥

(८)

पीठके ऊपर झांपल बैठी चुन चुन चिचड़ी खाती है।
मेरी प्यारी महिषी उससे और मुदित हो जाती है।
अपनेको समझे है वह सब भैंसोंकी सरदार।
आगे पीछे चलती हैं जिस दम पड़िया दो चार॥

(६)

सब भैंसं आदर देती हैं सब भैंसे करते हैं स्नेह।
महिषि राज्ञिका एक अर्थ है तब खुलता है निस्सन्देह।
तिस पर वर्षाकी बूंदें जो पड़ती हैं दो एक।
तब तो मानो इन्द्र करे है स्वयं राज अभिषेक

(१०)

डाबरकी गहरी दलदलमें घुटनों तक है दूबखड़ी।
वहां रौंथ करती फिरती है लिये सहेली बड़ी बड़ी।
पूंछ हिलाती है प्रसन्न मन, मनो चंवर अभिराम।
मक्खी मच्छर आदि शत्रुकी शङ्काका नहिं काम॥

(११)

पड़िया मुंहको डाल थनोंमें प्यारसे दूध चुहकती है।
आप नेहसे नितम्ब उसके चाटती है और तकती है।
दिव्य दशा अनुभव करती है करके आंखें बन्द।
महा तुच्छ है इसके आगे स्वर्गका भी आनन्द॥

पक्का प्रेम।

व्याज छोड़ि कै कीजिये सदा नेह निर्बाह,
जहां प्रेम-धौंसा बजै कहा करैगो व्याह?
फीको लागत है सदा बिन नखराको नेह।
जिमि हिय हुलसावत नहीं बिन चपलाको मेह॥
तरल तरङ्ग कहात है तरुनाईको प्रेम।
बिन दृढ़ यौवन होत नहिं प्रेमी दृढ़ यह नेम॥
व्याह करनके हेत जो तरुनि दिखावै प्रीति।
सो आदर लायक नहीं यही प्रेमकी रीति॥
प्रेम मिलै जो सहजमें सो नहिं आदर जोग।
वही प्रेम अनमोल है मिलै भोगि बहु भोग॥
धड़कत प्रेमीको हियो याहीसों दिन रात।
प्यारी मुख कहा नीसरै सुनत प्रेमकी बात॥
प्रेम शिकारी करत है जाको आय शिकार।

नींद भूख उड़ जात है वाकी एकहि बार ।।
होत प्रियाके ध्यानमें प्रेमीके सब काज।
नाहिं प्रेम कहं प्रेम सों कछु अन्तर अरु लाज ।।
सो सुख प्रेमी लखत है स्वर्गहुसे कमनीय।
कबहु जो ढिग आय कै धीर बंधावै तीय ।।
दोस नहिं एक तरुनि की करैं युवा द्वै चाह।
ऐसे ही द्वै तरुनिको होय एकही नाह ।।

—हिन्दी-बङ्गवासी, २० मई १८९५ ई०।

सभ्य बीबीकी चिट्ठी

(१)

बताओ आके मेरे पास, किस तरह पूरी होगी आस ?
छुएगा कैसे बौना चन्द, बुद्धि कैसी है उसकी मन्द ?
हंसी आती है सुन सुनकर, बताता नहीं कहां है घर ?
कहां है ऊंचा चोबारा, संगमरमरका फव्वारा ?
चमन फूला है किस जा पर, कहां है बेलोंका "बावर" ?
कहां झाऊकी सदा बहार, कहां सरवोंकी साफ कतार ?
हवाघर कहां है उसके पास, किस तरह होगी पूरी आस ?

(२)

कहां है "टेनिसघर" दिखलाव, कहां मछलीका बना तलाव ?
बात वह अगली सब सटकी, बहू मैं जब थी घूंघटकी ?
मजा अब सुखका पाया है, स्वाद शिक्षाका आया है ?
खुले अब नैन नींद गई टूट, बुद्धिके पर आये हैं फूट।
घुटावें क्यों पिंजरेमें दम ? नहीं कुछ अन्धी चिड़िया हम।
न लें क्यों खुली हवामें सांस ? किस तरह पूरी होगी आस।

(३)

पढ़ें हम सुखसे "लिटरेचर", सैंकड़ों कविता "शेक्सपियर"।
गिबन प्लेटोके सब इतिहास, पढ़ी पाई सबकी बूबास।
पढ़े हैं कितनेही दरशन, लाक मिल बेन्थम हेमिल्टन।
पढ़े हैं बहुत विवर्त्तनवाद, डारविन इस्पन्सरका नाद।
सुने सीखे कितने लेकचर, लिबरटी लाजिक औ कलचर।
किये कितनेही हासिल पास, किस तरह होगी पूरी आस ?

(४)

फराडे हरशलका विज्ञान, हेक्सली टेण्डल करके ध्यान।
सभीको करडाला है पार, पढ़े हैं नावेल कई हजार।
लिटन थेकर डिकन्स इस्काट, डियूमा एंटानी लिये चाट।
टरोलिप रिचर्डसन रेनल्ड, फील्डिङ्ग मंडे भी किये हल्ड।
हुई हम विदुषी निकला नाम! फकत अब शोहरसे है काम।
पश्चिमी विद्या आई रास, किस तरह पूरी होगी आस ?

(५)

लिखे मैंने "डेन्सिङ्ग" के ढंग, और "सिङ्गिग" हैं उसके संग।
बस अब देखूं दिखलाऊंगी, और सीखूं सिखलाऊंगी।
सदा सुन्दर तितली बनकर, उडूंगी फूलों फूलों पर।
कभी थियेटरमें जाऊंगी, फूल तुर्रे ले आऊंगी।
सभामें परीजान बनकर, डटूंगी कुरसीके ऊपर।
सुना भी लाला मौधूदास, किस तरह पूरी होगी आस ?

....

पीतम सङ्गी होनकी तुम्हरे मन है चाह,
हमरो तुम्हरो होय पै कैसे मित्र ! निबाह ?
हमरे अंग लगी रहत पोमेटम परफ्यूम,

सौरभ और सुगन्धकी पड़ी चहूं दिस धूम।
धूल अंग तुम्हरे रहत वायू ताहि उड़ात,
हमरो अति दुर्गन्धसों माथा फाट्यो जात।
हमरे कोमल अंग कहं ढाके राखत गौन,
तुम्हरे अंग धोती फटी नाममात्रकी तौन।
मेरे सिर पै कैप अरु मोरपुच्छ लहरात,
तेरे सिर लिपड़ी फटी साफ मजूर दिखात।
हमरी कटि-पेटी लसै कटिकहं राखत छीन,
तुम तगड़ी लटकाय जिमि अंतड़ी बाहिर कीन।
मम मुख "पौडर रोज" सों मानहु खिल्यो गुलाब,
तुम खड़ि माटी पोत कै माथो कियो खराब।
मेरे चरन विलायती चिकनो सुन्दर बूट
नागौरा तब पायमें ठांव ठांव रहे टूट।
मम सुन्दर जंघान में सिल्क रहत नित छाय,
सदा असभ्य शरीर तब रहत उघारो प्राय।
मम मुख ढङ्ग विलायती निकसत धीरे बात,
बबर तुम्हारी जिह्व है गोरू सम डकरात।
बावरचीके हाथ हम खायं सदा तर माल,
चूल्हा फूंकत तुम सदा खाओ रोटी दाल।
हमरो बोली 'गाड' है तुम छोड़ो 'हरिबोल'
यज्ञ याग जप होम अरु मानो उत्सव दोल।
देखतही तुमको सदा होत अरुचि उत्पन्न,
छन छन आवत है बमी हियो होत उत्सन्न।
भूमी अरु आकाश जिमि हम तुम भेद अथाह,
हमरो तुम्हरो होयगो कैसे मित्र निबाह?

—हिन्दी बङ्गवासी, २३ सितम्बर सन् १८९५ ई०

तकरीर मुंह जुबानी

(१)

चाहूं तो कलम लेके दिल सबका करूं पानी
इस बातमें नहीं है कोई भी मेरा सानी।
पढ़ पढ़ मेरी लिखावट लाटोंकी मरे नानी
एक काममें हूं कच्चा गो खूब खाक छानी।
आती नहीं है मुझको तकरीर मुंहजुबानी ॥

(२)

गुस्सेसे अगर कोई आंखें मुझे दिखावे
झट उसके पांव पकड़ूं वह चटसे भूल जावे।
है कौन मीठी बातें मेरी तरह बनावे
लाटोंके घरमें जाकर उनको रिझाके आवे ?
आती नहीं है लेकिन तकरीर मुंहजुबानी ॥

(३)

दरकार हो तो कर दूं लाटोंके कान भारी
दरकार हो तो कर दूं हिन्दू जहाज जारी।
हिन्दू धरमकी रूसे लण्डनकी हो तयारी
जो कहिये कर दिखावें कुदरत ये है हमारी।
आती नहीं है लेकिन तकरीर मुंह जुबानी ॥

(४)

हूं धर्म्मपालजीका हरवक्त धर्म्म भाई
अलकाटसे भी अपनी है खूब आशनाई।
जब जीमें आया तबही "सोऽहं"की रट लगाई
सब कुछ है पर है तौभी एक बातकी कचाई।
आती नहीं है मुझको तकरीर मुंहजुबानी ॥

(५)

फैलाऊं वेद लेके मैं वेदकी दुहाई
सब एक करूं बाम्हन मोची हो या कसाई।
है कांगरसमें अपनी हर तरहसे रसाई,
फिर कनफरंससे हो क्योंकर न धुन सवाई?
आती नहीं है लेकिन तकरीर मुंहज़ुबानी!

(६)

ताबीज गंडे मूली चाहे गलेमें डालूं,
संध्या करूं तिलक भी माथेसे मैं लगालूं।
देवीकी करूं पूजा महावीरका रिझालूं,
जो कहिये सो कौंसिलमें लिखके तो मैं सुनालूं।
आती नहीं है लेकिन तकरीर मुंहज़ुबानी॥

विरह।

भाठी सम ताप रह्यो हियरो,
हे राम जस्यो सब गात जस्यो।
एकबार छुवावत ही तन सों,
थरमामीटर भुंई फाट ढस्यो।
जब डाक्टरहू हिय हार थक्यो,
मरिबो तासों निहचे ठहस्यो।
बिरहानल ताप बड़ो सजनी,
दावानल सो अब जान पस्यो।

या जोबनको लै का करिहों?
चिर दिन याही भांति हाय कह विरहानल महं जरिहों।

जोबन चिर दिन रहत न सजनी जरा अन्त कहं आवै
यही निरासा चिरदिन जिय कहं बारहिं बार सतावै।

परिचित है मुसकान तुम्हारी।
सुमरन नाहिं, भई वा नाहीं, कबहूं तुमतें भेंट हमारी।
कछु कछु सुध आवत रहि रहिकर होत हुलास हिये अतिभारी
नैन चहत दरसन कर परसन धाय कण्ठ लावहु बलिहारी!

हे असाढ़के नव घनवा घन मीत,
बसी हियरवा भीतर तुम्हरी प्रीत।
तव दरसन करि बहुर जुड़ाने प्रान,
हरे भये पुनिहियके सूखे धान।
मांगत हूं तुमसों दोऊ कर जोर,
दया दीठि कर चितवहु मेरी ओर।
ले चल हे प्रिय! मोकहं संग लगाय,
एक बार पिय दरसन देहु दिखाय॥

मिलन

बहुर आयो तव दरसन काज।
उठहु चान्द सो मुखरावहु नयन सिरावहु आज।
दोउ प्यासे चकोर नैनन कहं ससिमुख-सुधा पियावहु।
एक बार हिय लाय पियारी मरतहिं मोहि जियावहु॥

—हिन्दी-बङ्गवासी, २० जून, १८९६ ई०

कलियुगके हनुमान ।

त्रेतायुगमें कूदि पार कीन्ह्यो हम सागर ।
सीताकी सुधि लाय कियो निज नाम उजागर ।
उपबन कियो उजार लंकमहं लङ्क लगाई ।
घी गूदर लपटाय पूँछ चहुँओर फिराई ।
या कलिमें कहा एतोहू बल हममें नाहीं ?
बान्धि पूंछ सों वेद पार सागरके जाहीं ?
सात समन्दके पार वेदकी उड़े पताका,
रोकैं पूंछ पसार आन धर्म्मनको नाका ।
यज्ञ मलेच्छनकी सारी करकै भरभण्डा,
अपने मुखमहं डारि जाहिं सब मुर्गी अण्डा ।
कूकर सूकर बीफ सीफ कछु रहे न बाकी,
स्वयं होयं तदरूप करहिं ऐसी चालाकी ।
अहो भ्रातृगण ! बैठ करत क्या सोच विचारा ?
मारि एक छल्लाङ्ग करहु भारत उद्धारा !

—हिन्दी बंगवासी, ८ मार्च १८९७ ई०

देशोद्धारकी तान ।

अल्ला गाड अरु निराकारमें भेद न जानो भाईरे ।
इन तीनोंको जीमें अपने जानो भाई भाईरे ।।
गाड कभी मूरत नहिं पूजी अल्लाने तुड़वाईरे ।
निराकारने गाली देकर सारी कसर मिटाईरे ।।
अल्ला करें न चौका चूल्हा गाड मेज बिछवाईरे ।
निराकारने देखादेखी अपनी जाति मिटाईरे ।।

तहमद अरु पतलून एक भये एक कोट मिरजाईरे।
चोटी डाढ़ी क्रूस जनेऊ गड्डमगड्ड मचाईरे॥
अल्ला करें ब्याह विधवनका गाडहुके मनभाईरे।
निराकारने सात चारकी चोखी चाल चलाईरे॥
अड्डा तारे बड्डा तारे तारे सजन कसाईरे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सच्ची बात सुनाईरे॥

पातिव्रत।

एकहि धर्म्म एक व्रत नेमा, काय वचन मन पतिपद प्रेमा।
पै पति सो जो मनकहं भावे, रोम रोम भीतर रम जावे।
बालकपनको पति जो होई, तासों प्रीति करो मति कोई।
ताको छाड़ करो पतिदूजो, मन लगाय ताके पद पूजो।
जब लगि वा पतिको मन चाहै, तब लगि वासों नेह निबाहै।
जब मनमाहिं रहे नहीं नेहू, आन किसीसों करै सनेहू।
एक मरे दूसर पति करहीं, सो तिय भवसागर उत्तरहीं।
जो पति छाय रहे परदेसा, और करै, नहिं सहे कलेसा।
पति बिन तियकर नाहि गुजारा, स्वामीजी कहि गये विचारा।

—हिन्दी बंगवासी, १९ अप्रेल १८९७ ई०

चूहोंका मातम।

कपड़ काटे रूई बिगारी, नास किये सन्दूक पिटारी।
बिबिर खोद सब घर थुथरायो, चौपट कियो जो आगे पायो।
कबहुं कोऊ बस्तु गिराई, कुछ खाई कुछ धूरि मिलाई।
ऐसे दोष तुम्हारे भाई, जानत हे सब लोग लुगाई।
ऐसेही लाखन बरस बिताने, और दोष हम सुने न जाने।
पर अब दोष कियो तुम भारी, बम्बइसे लाये महमारी।

विघ्नविनासन-वाहन भाई, अब चल सकत नहीं चतुराई।
जैसो कियों सोही फल पाओ, मरि मरि प्लेगलोक कहं जाओ।
जीवित रहते बिल्ली खाती, अथवा चील झपट लेजाती।
तासों मौत देख क्या डरना? "उभय प्रकार दुहुंदिस मरना।"
चले जाहु यमपुरको झटके, धांगड़की लाठीसों लटके।

—हिन्दी बंगवासी, २३ मई १८९८ ई०

सभ्य होली

ध्यान

जयति जयति श्रीगौरकृष्ण जय उन्नतिकारन।
जयति सभ्य अवतार जयति सभ्यता प्रचारन॥
पुच्छ रहित जय नराकार जय जयति मुरलिकर।
मोर पुच्छसंयुक्त जयति जय हैट शीशधर॥
जय धर्म्मकर्म्म कर तिमिर हर करन जगत तालीममय।
धनधान्य बुद्धि शोषन सदा श्रीबूट सहित गौराङ्ग जय॥

प्रभु वचनम्।

लियो हम शिक्षा हित अवतार।
जग उद्धार हेतु बपु धार्‌यो टेमस तीरथ पार॥
या मुरलीके द्वार करत नित शिक्षामन्त्र प्रचार।
सरबस लैके देत सभ्यता यह उद्देश्य हमार॥
सुबल हमारे सभ्य माष्टर ऐनक चपकनदार।
बने सुदामा लाटपादरी कर बिच डुग्गी धार॥
सुनो हमारे सखा शिष्यगण ह्वै कै सब हुशियार।
निज पलुअनको नाच दिखाओ खूब करौ त्योहार॥

मास्टर वचनम्

विद्या सीखो भाईरे, सब विद्या सिखो।
बाहर पढ़ो मद बच्चे सब घरके मांह लुगाईरे॥

खानपान व्यापार शिल्प सब जानो मूरखताईरे।
कालिजसे बस ध्यान लगाओ येही परम बड़ाईरे॥
विद्याके गुण निरखन कारन चशमा लेहु चढ़ाईरे।
सभ्य सुशिक्षा बिन पृथ्वी पर उन्नति कहीं न पाईरे॥
निज शिक्षाकी देहु परीक्षा देखो होली आईरे।
गौर महाप्रभुके सबूट चरननमें सीस नवाईरे॥

पादरी वचनम्।

लेहु सभ्यता भाई, तुम्हें हम देत बुलाई।
तुम्हरे गले प्रेमकी डोरी हमने है बंधवाई।
एक ओर उस्ताद मास्टर दूजे हम चटकाई॥
पकड़ दोऊने हलाई॥
सरल पन्थ ईश्वरके सुतको तुमको देत बताई।
छोड़ि अंधेरो गहो उजेरो सब भ्रम भूल मिटाई॥
लेहु सूधो पथ धाई॥
लड़की बहू हमारी तुम्हरे अन्तःपुरमें जाई।
देहिं सभ्यता बिना दाम नित, चितमों ध्यान लगाई।
काममें नाहिं कचाई॥
छोड़ो चाल पुरानी नाचो कूदो होली आई।
पीओ प्रभुका प्रेम पियाला सब कलङ्क मिटि जाई॥
कहत डुगडुगी बजाई॥

जोरूदास।

अपना कोई नाहीं रे,
बिन जोरू सिरताज जगतमें कोई नाहींरे।
मात पिता निज सुख लगि जायो अपने सुखके भाई,
एक जोरू ही संग चलेगी ऐसी शिक्षा पाई।

मिले शिक्षिता सभ्या जोरू सुखका सार यही है।
राखे सदा ताहि कान्धे पर सुखका सार यही है।
मूरख मात पिताने पहले बहु सुख आदर पायो।
पै इस सभ्यकालमें सो सब चालै नाहिं चलायो।
पीसें और पकावें परसें चौका देहिं लगाई।
हमरे चरन कमलके नीचे राखें पीठ लगाई।
घरकें पैर पीठपे देके सुखसे होली गावें।
उसी तालपे नाचें जो गुरु डोरी खेंच नचावें।

सभ्य बीबी

सैंया हमारे सांचे कन्हैया,
नित राखैं कांधेपै लेवें बलैया।
सारी उठाय पिया साया पिन्हावें,
मेमनमां हमका नचावें ताथैया।
सास मोरी पीसे ससुर भरे पानी.
हम भैलें कुरसीके नाविल पढ़ैया॥
आपै सिखाय सैयां लेक्चर दिवावैं,
जलसनमां हमरी करावें बड़ैया।

—हिन्दी-बङ्गवासी, ११ मार्च सन् १८९५ ई०

विज्ञ बिरहनी

होली आई कन्त बिदेश, बिरहनके मन अधिक कलेश।
आये कन्त न भेजी पाती, जल जल उठै बिरहसे छाती।
बिरह उदधिमें उठै तरंग, बिरहन बदले नाना रंग।
पकड़ा कलम दवात निकाली, कार्डपर लिख चिट्ठी डाली।
जो प्यारे छुट्टी नहिं पाओ, तो यह सब चीजें भिजवाओ।
चमचम पौडर सुन्दर सारी, लाल दुपट्टा जर्द किनारी।

हिन्दू बिसकुट साबुन पोमेटम, तेल सफाचट औ अरबी गम।
हम तुम जिनको करते प्यार, वह तसवीरें भेजो चार।
दो या चार ताश हों वैसे, उस दिन तुम कहते थे जैसे।
आपकी भेजी जो यह पाऊं, तो जीकी कुछ तपत बुझाऊं।
कुरसी मेज है काटे खाती, नाविल पोथी नहीं सुहाती।
तुम चाहे आओ मत आओ, यह सब चीजें झट भिजवाओ।

जोगीड़ा।

बाबाजी वचनम्

हां सदाशिव गोरख जागे सदाशिव गोरख जागे—
लण्डन जागे पेरिस जागे अमरीका भी जागे!
ऐसा नाद करूं भारतमें सोता उठकर भागे॥
हां सदाशिव गोरख जागे—

मन्तर मारूं जन्तर मारूं भूत मसान जगाऊं।
सब भारतवालोंको अक्किल चुटकी मार उड़ाऊं॥
सदाशिव गोरख जागे—

अङ्कड़ तोड़ूं कङ्कड़ तोड़ूं, तोड़ूं पत्थर रोड़ं।
सारे बाबू पकड़ बनाऊं बिना पूंछके घोड़ं॥
सदासिव गोरख जागे—

नाक फोड़ बाबूबच्चोंकी डालूं कच्चा सूत।
सबको एक रकाबी करदूं तो जोगीका पूत॥
सदाशिव गोरख जागे—

बीबीजी वचनम्

हुई बाबाजी तेरी—सदा चरणोंकी चेरी।
हे सन्यासी सदा उदासी सुनके तुम्हरी बानी।
जीमें बसी तुम्हारी मूरत भूल गई कृस्तानी॥

प्रेम ईसाका छूटा, नेह मरियमसे टूटा।
योगका पन्थ बताओ, मुझे भी सङ्ग लगाओ ॥
पांव दबाऊं अलख जगाऊं सेवा करूं बनाय।
साथ तुम्हारे सदा रहूंगी तनमें भसम रमाय ॥
कहो तो अन्दर आऊं! कहो तो मन्दर आऊं।
गूदड़ी झाड़ बिछाऊं! ध्यान चरनोंका लाऊं ॥

बाबाजी

चली जा रस्ते रस्ते—यहां जोगी अलमस्ते।
भागो चेली गुड़की भेली मैं जोगी अवधूत।
यहां फकत है कफनी सेली सींगी और विभूत ॥
चली जा नाले नाले, कि जिससे पूंछ न हाले।
करो घरमें गुलछर्रे, यहांसे बोलो भर्रे।

चेलीजी

कच्चे जोगी पक्के भोगी बालक निपट नदान।
जोग भोगका भेद न जाना दोनों एक समान ॥
निरा चोला रंगवाया, जतीका वेष बनाया।
जोगका भेद न पाया, मुफतमें अलख जगाया।

बाबाजी

हां मेरी जोगिन सब रस भोगिन रहौ सदा निरद्वन्द।
आसन सीखो मुद्रा सीखो करो अभय आनन्द ॥
जरा अब मिलकर बाजे, माल आवेंगे ताजे।
मिलेंगे कितने बुल्लू, करें चिल्लूमें उल्लू ॥

चेलागण वचन

यतीजी इसका खोलो भेद।
अण्डा भला कि मण्डा बाबा आंत भली या मेद।
बिसकुट भला कि सोहनलवा बकबक भला कि वेद ॥

बाबाजी वचन

जरा सुर तालसे नाचो

जो अण्डा सोही ब्रह्माण्डा इसमें नाहीं भेद।
दोनों अच्छे समझो बच्चे सोई आंत सोइ मेद॥
वेदका सार यही है, बुद्धिका पार यही है,
मिले तो अण्डा चक्खो, मिले तो मण्डा भक्खो।

चेलागण वचन

हां गुरुजी इसका खोलो भेद

किसको पूजें किसको ध्यावें किसको भोग लगावें,
किसको मानें किसको जानें किसको सीस निवावें?

गुरुजी इसका खोलो भेद

कैसे पूजें कैसे ध्यावें कैसे भोग लगावें,
कैसे मानें कैसे जानें कैसे सीस निवावें?

बाबाजी वचन।

एकही गाओ एकही ध्याओ करो उसीका ध्यान।
जो बोतलमें सो होटलमें निराकार भगवान॥
उसीका ध्यान लगाओ, उसीमें मन अटकाओ।
वही है मक्खन बिसकुट, वही है मुर्गी कुक्कुट।
अगल बगलमें बिसकुट मारो बोतल रक्खो पास।
आंख मूंदकर ध्यान लगाओ छः रितु बारह मास॥
गिरे प्याले पर प्याला, खुले तब दिलका ताला।
मिले तब प्रभुका दरसन, होय गहरा संघरपन।

सबका नृत्य।

सब हिन्दू सब हिन्दू भाई, सब हिन्दू सब हिन्दू।
जूता हिन्दू छाता हिन्दू साबन दियासलाई।

मुर्गी हिन्दू चर्ब्बी हिन्दू यवन मलेन्छ कसाई।
हिन्दू सोडावाटर जिञ्जर हिन्दू बीयर ह्विसकी।
सब कुछ हिन्दू सब कुछ हिन्दू बात कहूं किस किसकी ?
लण्डन हिन्दू पैरिस हिन्दू हिन्दू गोल मिठाई।
सूखी मछली बिलकुल हिन्दू जो यूरोपसे आई।

तागड़ दिन्ना नागर बेल, तीन तूंबड़ी नीला कपड़ा।
पूंछ सहित जो मछली खाय, रेल पेल बैकुण्ठहि जाय।
इकादशीको काटै चोटी, उसकी धाक स्वर्गमें मोटी।
जो बोतलका चाटे काग, उसके खुलें स्वर्गमें भाग।
खड़ा खड़ा जो मारे धार, सोही करे देश उद्धार।
यह देखो कलियुगके खेल, तागड़ दिन्ना नागर बेल।
यह देखो कलियुगकी होली ; नीचे बाम्हन ऊपर कोली।
नहिं कोई रानी नहिं कोई राजा ; पेलो डण्ड बजाओ बाजा।

—हिन्दी बंगवासी, २२ मार्च १८९७।

जोगीड़ा।

बाबाजी वचनम

अक्कड़ तोड़ूं कक्कड़ तोड़ूं तोड़ूं कच्चा सूत।
बालू पेलूं तेल निकालूं तो जोगीका पूत।
रेतमें नाव चलाऊं, नदीमें आग लगाऊं।
हवामें भवन बनाऊं, तवे पे पेड़ लगाऊं।
जाऊं उत्तर चीनमें तो मैं ऐसी बूटी लाऊं।
जिसको वह बूटी छू जावे भेड़ा उसे बनाऊं॥
लगे कञ्चनकी ढेरी, सुखी हो जोगिन मेरी।
बने चरननकी चेरी, लगे गहरी चौफेरी।

आओरे मेरे सरल शिखण्डी करो गुरुकी ओट।
तुमको करके सामने पीछेसे मारू चोट॥
घाव गहरा पहुंचाऊं, मनोरथ सिद्ध कराऊं।
मढ़ी पक्की बनवाऊं, मजेमें अलख जगाऊं।
जोगीजीकी बने मढ़ैया लगं किवड़िया लाल।
सुखसे सोवें जोगी जोगिन चेले होंय निहाल।
छमाछम घुंघुरू बाजें,गुरू सेजों पे राजें।
शिष्य पहरे पर गाजें, सेज फूलोंकी साजें।

चेला वचनम्

हिन्दू धरम अलम पे सोहे मछली बायें हाथ।
सिर पे चोटी कांधे झोली इन सबका क्या साथ ?
मिटाओ संशय मेरा, रहूं चरननका चेरा।
हियेका मिटे अंधेरा, नाम हो जगमें तेरा।

बाबाजी वचनम्।

अरे शिखण्डी ओ पाखण्डी नाहक उमर गंवाई।
बैंगन बेच तमाखू बेचा तो भी अकल न आई॥
पढ़ी नाहक अंगरेजी, दिखाई झूठी तेजी।
बनो कुछ दिन दुमरेजी, जरा सीखो सहमेजी।

बाबा बच्चोंका नृत्य

हिन्दू रूप बनाया रे सबको भरमाया।
हिन्दू बने लगाई चोटी, तोंद करी पतलीसे मोटी।
धर्म्म हमारा मछली रोटी, और सब झूठी मायारे।
यह दुनिया है झूठा सपना, हम हैं किसके कौन है अपना।
हरदम पैसा पैसा जपना, यही ध्यान हम लायारे।
चेलोंसे भिक्षा मंगवावें, घरमें बैठे चैन उड़ावें।

चेले ग्वाली रोटी पावें, यही ढङ्ग मन भायारे।

बम बम भोला भांगका गोला लाओ भैया चन्दा।
गुरु हमारे मढ़ी बनावें काम पड़ा है मन्दा॥

बनेगा शिवका मन्दर, नमूना देखो सिर पर।

धरम काजमें धन लगता है चिन्ता कुछ मत कीजे।
जो पावें बाबाको दंगे देना हो सा दीजे॥

कहें, सो ही करते हैं, पेट अपना भरते हैं।

भीख मांगने गुरुके कारन गये शिखण्डी भाय।
मैं भरभण्डी लिया है मैंने सिर भवन उठाय॥

देखिये हिम्मत मेरी, करूं मैं मक्खी फेरी।

गुरु मोहिं अलख लखाया जी।
गुरु प्रसादसे सिर पर मैंने भवन उठाया जी॥
गुरुकी सेवा करी माधके तेल लगाया जी।
भये प्रसन्न गुरुने मुझको अमृत प्याया जी॥
अब मोहिं सबसे प्यारा लागे भैंसका जाया जी।
जिधर देखता हूं आंखोंमें वही समाया जी॥

सब बालक

धन धन जोगी धन धन भोगी धन्य धन्य अवतार।
दया दृष्टि कर, लीजे जोगी, होलीका उपहार॥

हार कैसा सुन्दर है सवारी भी हाजर है।

चटपट आप सवार हूजिये पहन गलेमें हार।
झण्डा लिये हाथमें चलिये फिरिये सरेबजार॥

धूम तब होगी गहरी सुना मेरे बाबा लहरी।

भारतमित्र, २७ मार्च १८९९ ई०।

सिद्धान्त।

साधो भाई पांच हुए हम यार।
नित बोतलकी नैया पर चढ़, होते हैं भव पार॥
अपने एक वराण्डी राजा शेम्पियन है रानी।
कभी न डरें किसीसे औ नहिं करें किसीको हानी॥
नहीं तवक्को रक्खें किसीसे नहीं किसीकी परवा।
मदिरा छूट किसीके कोई काम न आवे सरवा॥
क्यों गङ्गाजलमें है कीचड़ सागरका जल खारा?
जिससे मैला फीका जल पी जगत न जावे मारा॥
तुम नहिं हुए शेक्सपीयर हुआ, काहेसे कवि भारी?
यही जानलो वह पीता था सदा सुराकी झारी॥
कैसे सुरगणने असुरोंको मार भगाया दादा?
सुर पीते थे लाल लाल भई असुर बिचारे सादा॥
इस भवके जङ्गलमें जो कोई है, सो बेगाना।
एक सुरा है अपनी हमने निश्चय यह पहचाना॥
हमें न देना गाली प्यारो और मना मत करना।
हमें किसीका दूध दही घी चुरा पेट नहिं भरना॥
एक मजा केवल लूटेंगे और न चाहें दूजा।
नाचें गावें धूम मचावें कर मदिराकी पूजा॥

सब जाय।

भाई सब जायरे जायरे जायरे।
इस कलियुगके हेर फेरमें सारी बात बिलायरे॥
यह जाय ब्रह्मा वह जाय विष्णू और शङ्कर त्रिपुरारी।

दैत्य राक्षस देव यक्ष सबकी चलनेकी त्यारी ॥
चले राम रावण दोनों ही राधाकृष्ण भवानी ।
रहे बिचारे ईश्वर बाकी तिनकी खेचातानी ॥
सातों स्वर्ग नरक चौरासी हो गये एकमकारा ।
भीष्म द्रोण दुर्योधन नारद व्यास हो गये पारा ॥
गये श्याम गोपी वह उनका मुरली मधुर बजाना ।
रह गये म्यूनिसिपलिटी आफिस थाना बोतलखाना ॥
तन्त्र पुराण मन्त्र षटदर्शन वेद लबेद सिधारे ।
गीतामें लग गया पलीता, कर्म्म धर्म्म झक मारे ॥
रहे डारविन, मिल, शेली, लड़कोंकी रही पढ़ाई ।
और रहो लड़कीकी शादी, जोरू सङ्ग लड़ाई ॥
रही सड़ी दुर्गन्ध ड्रेनकी और दूधमें पानी ।
चेचक हैजा ज्वर मलेरिया और पलेग निशानी ॥

दिन नहीं कटता ।

दिन कटत नहीं क्या कीजेरे ?
घरकी हवा सांस सो रोके, छन छन काया छीजेरे ॥
तास तड़ातड़ पीटत पीटत चिलम सड़ासड़ पीजेरे ।
पौबारा पच्चीस उड़ावत कैसे संध्या कीजेरे ॥
खेल चुके शतरञ्ज गंजफा बाजी ऊपर बाजीरे ।
परनिन्दा भी करते करते दिन नहीं कटता पाजीरे ।
तब लाचार चरस गांजे गोलीसे प्रीत लगाईरे ।
ब्राण्डी ह्विस्की बीयर ताड़ी पी पी सांझ बनाईरे ॥
बेवकूफ ब्रह्माने दिनको इतना बड़ा बनायारे ।
आयु बनाई इतनी छोटी दो दिन बीच सफायारे !

तानसेन ।

(१)

यह आप जानते हैं विक्रम था एक राजा ।
दरबार नौरतनसे था उसका जगमगाता ।।
था तानसेन भी एक उस्ताद पूरा पूरा ।
दरबारमें वह उसके एक रोज आन पहुंचा ।।
अर्थात् उस जगह वह सचमुच ही आपहुंचता ।
पर क्या करे वह तब तक पैदा नहीं हुआ था !

(२)

तब तानसेनजीने की रेलकी सवारी ।
पूछा तो कहा अब है कलकत्तेकी तयारी ।।
भाड़ेकी गाड़ी लेकर हुगलीके पुलसे होकर ।
एक ठाठसे गया वह विक्रमके घरके भीतर ।।
अर्थात वह निश्चयही विक्रमके घरपे जाता ।
क्या करे कि तब तक पुलही नहीं बना था ?
कलकत्तेमें फिर उसकी कुछ भी न थी निशानी ।
उज्जैनमें थी उस दम विक्रमकी राजधानी ।।

(३)

तब तानसेन अपनी विद्या लगा दिखाने ।
एक खूबसा पियानो लेकर लगा बजाने ।।
अर्थात वह पियानो अच्छी तरह बजाता ।
पर क्या करे वह बाजा तब तक नहीं बना था ?

(४)

जो हो फिर उसने ऐसा डटकर मलार गाया ।
दरबार भरको उसने राजा सहित भिजाया ।।

फिर इसके बाद दीपक इस धुनसे उसने छेड़ा।
जल भुनके बस वहीं पर उसका मिटा बखेड़ा॥
अर्थात सबही निश्चय खाते वहांपे गोता।
और तानसेन खुद भी जलभुनके खाक होता॥
राजाके पास था पर वाटरपुरूफ अच्छा।
और तानसेन पहले उठकर चला गया था॥

(४)

तबहीसे गीत उसके हैं सबके मुंह पे जारी।
उस्ताद होगया वह सबकी नजरमें भारी॥
करते हैं श्राद्ध उसका मिलजुलके सब गवैये।
अर्थात उसके गीतोंका हैं वह श्राद्ध करते॥
वह तो था एक मुसलमां कहती थी उसकी सूरत।
उसके लिये भला थी क्या श्राद्ध की जरूरत?

साधो पेट बड़ा हम जाना,
यह तो पागल फिरे जमाना।
मात पिता दादा, दादी, घरवाली नानी नाना।
सारे बने पेटकी खातिर, बाकी फकत बहाना॥
पेट हमारा हुण्डी पुर्जा पेटहि माल खजाना।
जबसे जन्मे सिवा पेटके और न कुछ पहचाना॥
लड्डू पेड़ा पूरी बरफी रोटी साबूदाना।
सब जाता है इसी पेटमें हलवा तालमखाना॥
यही पेट चटकर गया होटल, पीगया बोतलखाना।
केला मूली आम सन्तरे सबका यही खजाना॥

पेट भरे लार्ड कर्जनने लेकचर देना जाना ।
जब जब देखा तब तब समझे जहां खाना तहां गाना ॥
बाहर धर्म्मभवन शिवमन्दिर क्या ढूंढ़े दीवाना ।
ढूंढ़ो इसी पेटमें प्यारो तब कुछ मिले ठिकाना ॥

—भारतमित्र, १४ मार्च १९०३ ई० ।

आजकलका सुख

(१)

बागको जाते हैं चलिये मिलके बहलायेंगे जी ।
जिस जगह तालाबके तट पर है एक कोठी सजी ॥
जिस जगह हैं फूलते ढेरों चमेली ओ गुलाब ।
है जहां बिगनोनियाकी औरही कुछ आबताब ॥
नारियलकी चोटियों पर चांदनीका है निखार ।
लूट लो यह जिन्दगीकी चार दिनकी है बहार ॥

(२)

नाचती परियोंके चलकर देखिये वह कुञ्जबन ।
जेवरोंकी शान पिशवाजोंकी वह बांकी फबन ॥
तानपूरेकी तनारूं रूं वह तबलेकी ठनक ।
साथ सारङ्गीकी चूं चूं के मजीरोंकी खनक ॥
रूपकी तेजी निगाहोंकी वह उस पर मार मार ।
वह समयका ठाठ वह परयोंके जोबनका निखार ॥

(३)

पद्मिनी घरमें है पर कुछ उससे सुख मिलता नहीं ।
उसके कोरे प्रेमसे दिलका कमल खिलता नहीं ॥

नाचना गाना तो क्या करना न जाने वह हंसी।
प्रेम दिखलाती है कोनेमें बिठाकर घर-बसी॥
घरके धन्धे काम सब उसहीसे चलते हैं सदा।
और जीसे चाहती है वह सदा मेरा भला॥
दुःख पड़ने पर नहीं उसके बिना निर्वाह है।
ऐसी खुशवक्तीमें पर उसकी नहीं कुछ चाह है॥

(४)

चार दिनकी है जवानी घरमें है दौलत भरी।
जो न सुख लूटा तो फिर किस कामकी है जिन्दगी॥
यत्नसे रखना इसे यह देह है अपना विचित्र।
बूट अंगरेजोंका छू छू के हुआ है यह पवित्र॥
हां चले प्याला दमादम, रात जाती है चली।
गाड़ दो अब सुखके झंडे खोलदो दिलकी कली॥
सूप हो चप हो कढ़ी हो कोरमा हो केक हो।
आज बोतलबासिनीका खूबही अभिषेक हो॥

(५)

जय सदा होवे तुम्हारी मात एकशा* नन्दनी।
बन्दना तेरी करेंगे अब सदा जगवन्दनी॥
मात ढकढक-नादिनी जय शोकताप-निवारणी।
लाल शोभा-धारिणी जय जयति भव-भयहारिणी॥
जय महानीरे कि सिरपे काक जिसके ताज है।
हर कोई मोहताज उस यक्रत जननिका आज है॥
है दया जिसपर तुम्हारी, भाग है उसका बड़ा।
जय पतित पावनि रखो दिनरात शय्यापर पड़ा॥

* एक्सा—शराब।

आइये अब भक्तके मस्तकमें डेरा कीजिये।
बक्सके घोड़ेपे चढ़के नित्य दर्शन दीजिये॥

(६)

रंडियाँ गुड़ हैं हमें उस गुड़की जानों मक्खियां।
रात दिन करते हैं भिन भिन उनपे लेते चक्खियाँ॥
जूतियाँ खाके भी उनकी खिलखिलाते हैं सदा।
पर किसी कंगालको देखें तो होते हैं खफा॥
देखके कोमलको होते हैं कड़े, कड़ियलको नर्म।
देखके भिक्षुकको स्वर करते हैं ऊंचा और गर्म॥
जोर इस गद्दीके खाये देहमें जो है बचा।
वह सभी देते हैं मंगतोंके भगानेमें लगा॥

(७)

ढालते हैं हम तुम्हें ताली बजाना चाहिये।
गालियाँ देते हो क्यों पानी पिलाना चाहिये॥
देशहित चाहो तो उसकी भी नहीं है कछु कमी।
जीमें उसकी भी नहीं है, यार कुछ कम हमहमी॥
साहबोंको सब तरहसे खूब रखते हैं प्रसन्न।
उनके कामोंमें न चन्दा दें तो कब पचता है अन्न॥
झाड़ते लेकचर हैं लिखते लेख अब बतलाइये।
देश हितके वास्ते क्या क्या करें फरमाइये॥

(८)

कर चुके कर्त्तव्य पूरा हाँ पड़े तबले पे थाप।
वह पड़े हत्थी कि चिल्लाये पखावज बाप बाप॥
कामिनीका हो झमकड़ा रंगका दरया बहे।
हाँ, चले प्याले पे प्याला जिसको जो भावे कहे॥

पी कहीं कमबख्त है क्या देखता कर आंख बन्द।
ख्वाबहै, दुनियां तुम्हारी जिन्दगी है रोजचन्द॥
दीजिये फूलोंकी माला, वर्फ लाओ दे शराब।
देवगण पीते हैं इसको स्वर्गमें समझे जनाब॥
आज मदिराकी बदौलत स्वर्ग यह बंगाल है।
जो नहीं पीता है वह कमबख्त या कंगाल है॥

(९)

देशहित कह कहके नाहक फाड़ते हो क्यों गला।
कौन परहितमें फंसेगा छोड़के अपना भला॥
देश किसका है, भला किसका कर बतलाइये।
क्या हमारा फायदा उससे जरा समझाइये॥
कुछ कर अपना भला इतनी हमें ताकत नहीं।
हो सकेगा दूसरोंका लाभ फिर हमसे नहीं॥
हां ढले! लाओ चिलम! ला वर्फ पानी! पान दे!
देशहित बकबकके नाहक कौन अपनी जान दे॥

(१०)

हां चमेलीबी! मधुर ओठोंको अब फरकाइये।
राग नट हम्मीर केदारा जरा सुनवाइये॥
ठीककर हुक्का, पियाला खूब भरकर दीजिये।
हां अभी दो चार जल्दी दौर पूरे कीजिये॥
सूप चप कटलेट मंगाओ खूब भर भरके पलेट।
आग धूआं जो मिले उससे करो भरपूर पेट॥
पड़ रहो धरतीके ऊपर धूलमें लोटे फिरो।
शोर गुल हुल्लड़ मचाओ और उठ उठके गिरो॥

(११)

आइये अब सब जहन्नमको चले मिल जुलके साथ।
नाम हिन्दूका बना रखनेमें क्या आयेगा हाथ॥
धूल लिखना खाक पढ़ना जाय सब चूल्हेमें जाय।
कुछ न सोचो नाच मुजरे और मदिराके सिवाय॥
नौकरी करना कि दल्लाली कि कोई फाटका।
या पराया माल बेचा करके धन्धा हाटका॥
या विकालत करके सीखे छल कपट जूआ फरेब।
नित्य बहकाकर लड़ाकर काट ली लोगोंकी जेब॥
क्या करेंगे रहके इस दुनियांमें अब बतलाइये।
खूब ढोया जिन्दगीका भार चलिये आइये॥

(१२)

जो मनोवृत्ति थी वह मुद्दतसे गोता खा चुकी।
इन्द्रियोंकी घोर नदमें नावको डुबवा चुकी॥
थामिये प्याला दमादम कीजिये बीयर गड़ाप।
नाच हो गाना बजाना हो पड़े तबले पे थाप॥
खूब हाहा और ठीठी हो हंसी हो शोर हो।
लात हों घूंसे हों और बदमस्तियोंका जोर हो॥
खूब अपनी गन्ध फैलाये खमीरा हर तरफ।
एक हो सबकी रकाबी सब तकल्लुफ बर तरफ॥

(१३)

देह धरनेकी न तेरे जीमें इज्जत है न लाज।
है तुझे धिक्कार सौ सौ बार हे हिन्दू समाज॥
व्यर्थ तू जीता है नाहक भार पृथ्वीका हुआ।
देशमें बीमार था बंगालमें आकर मुआ॥

रूप बन्दरका बना हा काम बंदरके किये।
बोझ यह धरती उठाती है तुम्हारा किस लिये॥
मात वसुधे, कौन ऐसा पाप था तू ने किया।
वाम ऐसे पुत्र गणने पेट तेरेमें लिया॥
जल नहीं गंगामें अब या वेग पारावारमें।
क्यों डबो देते नहीं हैं, इनको अपनी धारमें॥

(१४)

चाहते मरना ही हो तो फिर तुम्हें है इख्तियार।
जो नहीं ऐसा तो सँभलो मिलके बैठो एक बार॥
तोड़ दो तबला पखावज साज कर दो चूर चूर।
फोड़ दो बोतल करो सब रंडियोंको घरसे दूर॥
तोड़ डालो कोठियां बागोंको झट डालो उखाड़।
दुःखको अपना करो आरामको डालो लथाड़॥
तब तलक आंखों तुम्हारी से बराबर जल बहे।
जब तलक कष्टोंका कुछ भी लेश भारतमें रहे॥

—भारतमित्र, सन् १९०४ और १९०६ ई०

टेसू

आये आये टेसू राजा, पीटो पेट बजाओ बाजा।
अबके टेसू रंग रंगीले, छैल छबीले नोक नुकीले।
अबके टेसू नमक हलाली, तोड़ तान बजावें ताली।
अमलीकी जड़से निकला पतङ्ग, तिसमें निकला शाह मलङ्ग।
शाह मलङ्ग चलावें सोटी, उसमें निकली लम्बी चोटी।
लम्बी चोटी चिन्दक चिन्दू, तिसमें निकले पक्के हिन्दू।
पक्के हिन्दू भवन बनाया, तिसपर कव्वा बैठा पाया।

कव्वेने की, काली बीट, तिसमें निकला चूना ईंट।
चूने ईंटसे निकला हाल, उसमें निकला आटा दाल।
आटे दालसे निकली रोटी, कोई पतली कोई मोटी।
रोटी खाई छूटी अंघाई, गङ्गा किरिया रामदुहाई।
तब बैठे पञ्चायत जोर, कहत कहानी होगई भोर।
सेख मलीमने कही कहानी, चौमासे भर भया न पानी।
गेहूं भये सवा नौ सेर, यह देखो किसमतका फेर।
बाबू करें मानकी हानी, सूखे खेत पड़ा जिमि पानी।
ठोकी जाय अदालत अर्जी, ऐसी क्या है रामकी मर्जी?
क्यों नहिं वह करता छिड़काव, क्यों नहीं चलती सड़कपे नाव।
सम्मन करो रामपर जारी, काहे सूखी हैं सब क्यारी।
रामचन्द्रजी आप न आये, करके एक वकील पठाये।
कहै वकील सुनोजी राय, ऊंट चढ़े को कुत्ता खाय।
अफरीका पर हुई चढ़ाई, बादल गये उधर ही भाई।
वह सोना भरकर लावेंगे, तब हम भी मेंह बरसावेंगे।
भारत पर बरसेगी हुन, लग रही है सोनेकी धुन।
यह देखो झण्डीके रंग, सूखे मूसर भे बजरंग॥

पहला रंग

नाइन एक स्वर्गसे आई, उसने यह सब कथा सुनाई।
मारवाड़में पड़ा अकाल, सुनकर बाबू भये निहाल।
दौड़ गये ताऊके पास, ताऊके मन बहुत हुलास।
ताऊ कहै सुनोजी बाबू, तुम कैसे बन बैठे हाबू?
लोग देसके भूखे मरें, उनके लिये कहो क्या करें?
ताऊ कहे सुनो रे पूत, किन बहकायो छोरो ऊत।
जल्दी घरके मूंद किवाड़, अपना अपना झोंको भाड़।

घरमें बैठे चैनसे खाओ, देस भेस चूल्हेमें जाओ।
जिनपर है ईश्वरकी मार, उनका कुछ मत करो विचार।
उनके तुम नीरे मत जाओ, अपनी ढोलक आप बजाओ।
इतनी सुन बाबू हरखाय, मूछों पर दो ताव चढ़ाय।
बोले ताऊ चोखी कही, बात तुम्हारी सबसे सही।
यह कहकर गाड़ी मंगवाई, बैठके बाबू हुए हवाई।
बड़ पीपलमें पड़ी जंजीर, कोई लो तुक्का कोई लो तीर॥

दूसरा रंग

एक रंग सबसे पचरंगा, जल गई धोती रह गये नंगा।
कुरसी पर कुछ बैठे बाबू, और सामने बैठे हाबू।
हाबू बोले बाबू सुनो, कुर्सी छोड़ो सिरको धुनो।
करते नहीं नरदमा माफ, बैठे हो बनके अशराफ।
भागो सभी निकम्मे लोग, अब नहीं मिलता छप्पन भोग।
इतनी सुनकर बाबू भागे, आंख मसलते टेसू जागे॥

तीसरा रंग

धस धस धसके नैनीताल, साहब बीबी नाचें बाल।
धसके उसही पर पुनि चढ़ें, और नई कुछ युक्ती गढ़ें।
धसकत धसकत पहुंचे बंग, धस गये उससे दारजिलिंग।
साहब देख बहुत घबराये, सारे साहब लोग बुलाये।
बोलो यारो अब क्या करना, हजरत बोले कुछ मत डरना।
ऊंचे बसो और भी चलकर, करो न जीमें मरनेका डर।
मौत अगर आवे मर जाओ, जितने जीओ मजे उड़ाओ॥

चौथा रंग

जुग जुग जीओ टेसू राजा, सदा रहे मेंभी सिरताजा।

लड़के लाड़े टेसू खेलें, कुढ़ मूहें सब पापड़ बेलें।
कह भई मुन्ना कैसी बात, हां भई चुन्ना सब कुशलात॥

—भारतमित्र, ९ अक्टूबर १८९९ ई०

टेसू

अबके टेसू रंगरंगीले, अबके टेसू छैल छबीले।
अबके शान बड़ी है आला, अबके है कुछ ढङ्ग निराला।
बड़ी धूमसे टेसू आये, लड़के लाड़ी साथ लगाये।
होगा दिल्लीमें दरबार, सुनकर चौंक पड़ा संसार।
शोर पड़ा दुनियामें भारी, दिल्लीमें है बड़ी तयारी।
देश देशके राजा आवें, खेमें डेरे साथ उठावें।
घर दर बेचो करो उधार, बढ़िया हो पोशाक तयार।
बढ़िया रेशम बढ़िया जरी, अच्छीसे अच्छी और खरी।
चमचम चमचम मोती चमकें, हीरे लाल दमादम दमकें।
हाथी घोड़े भीड़ भड़ाका, देखें सब घरफूंक तमाशा।
आओ सब घाटोंके लोग, आओ घर बाटोंके लोग।
आओ कामके करने वालो, आओजी रंग भरने वालो।
चलो चलो सब खेल खिलारी, आओ आओ सब ढिमधारी।
देखा सुना न जो कुछ कभी, दिल्लीमें वह होगा सभी।
भर भर बीयर चलें सन्दूकें, बीस हजार चलें बन्दूकें।
मार धड़ाधड़ तोपें चलें, दिल सब नामर्दोंके हलें।
बिजली करे रोशनी जाकर, भरे हाजिरी बनकर चाकर।
ऐसा आन पड़ा है जोग, दुनिया भरके आवें लोग।
बादशाहके भाई आवें, साथ साथ कितनोंको लावें।
बड़े लाटकी माता आवें, साथमें उनके भ्राता आवें।

हंसी-दिल्लगी

अमरीकासे साली सास, चलकर आवें हिये हुलास।
खूब बने श्रीकर्जन लाट, होय निराला उनका ठाठ।
ऐसी हो उनकी पोशाक, सबकी लगे उधर ही ताक।
जमें ठाठसे सब दरबार, सबके बने लाट सरदार।
कोई न उनके रहे समान, सभी रहें ढलकाये कान।
माता मास ठाठ यह देखें, बार बारके पानी पीवें।
देखेंगे यह छटा निराली, पास लाटके सासू साली।
क्यों भई लड़के कैसा रंग, कुछ समझे दिल्लीके ढङ्ग।
यह दुनिया है एक तमाशा, नाचो कूदो हीही हाहा।
बहती गंगा धोलो हाथ, वही ढाकके तीनों पात।

—भारतमित्र, ४ अक्टोबर १९०२ ई०
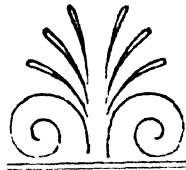
उर्दूको उत्तर

१७ मई १९०० ई० के अवधपञ्चमें "उर्दूकी अपील" नामसे एक कविता छपी थी, * उसका यह उत्तर है। असल अपील नीचे फुट नोटमें दी गई है। छोटे लाट मेकडानल्डने युक्तप्रदेशकी अदालतोंमें नागरी अक्षर जारी किये, उस समय उर्दूके पक्षवालोंने यह जोश दिखाया था। 'भारतमित्र' द्वारा उसका यह उत्तर दिया गया था :—

न बीवी बहुत जीमें घबराइये,
सम्हलिये जरा होशमें आइये।
कहो क्या पड़ी तुमपे उफताद है,
सुनाओ मुझे कैसी फरियाद है।
किसीने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या ?
सुनूं हाल मैं भी उसका जरा।
न उठतीमें यों मौतका नाम लो,
कहां मौत, मत सौतका नाम लो।
बहुत तुम पे हैं मरनेवाले यहां,
तुम्हारी है मरनेकी बारी कहां ?

* उक्त अपील इस प्रकार है,—

खुदाया पड़ी कैसी उफताद है,
बड़ेलाट साहबसे फरियाद है।
मुझे अब किसीका सहारा नहीं,
यह बेवक्त मरना गवारा नहीं।
मेरा हाल बहरे खुदा देखिये,
जरा मेरा नश्वोनुमा देखिये।

बहुत बहकी बहकी न बातें करो,
न मायेसे तुम आप अपने डरो।
जरा मुंह पे पानीके छींटे लगाव,
यह सब रातभरकी खुमारी मिटाव।
तुम्हारी ही है हिन्दमें सबको चाह,
तुम्हारे ही हाथों है सबका निबाह।
तुम्हारा ही सब आज भरते हैं दम ;
यह सच है, तुम्हारे ही सिरकी कसम।
तुम्हारी ही खातिर हैं छत्तीस भोग,
कि लट्टू हैं तुम पे जमानेके लोग।
जो हैं चाहते उन पे रीझो रिझाव,
कोई कुछ जो बेंडी कहे सौ सुनाव।

मैं शाहोंकी गोदीकी पाली हुई,
मेरी हाय यों पायमाली हुई!
निकाले जुबां फिरती हूं बावली,
खुदाया मैं दिल्लीकी थी लाडली।
अदायें बलाकी सितमका जमाल,
वह सजधज कयामत वह आफतकी चाल।
मेरे इश्कका लोग भरते थे दम,
नहीं झूठ कहती खुदाकी कसम।
यह आफत लड़कपनमें आनेको थी,
जवानी अभी सिर उठानेको थी।
निकाले थे कुछ-कुछ अभी हाथ पांव,
चमक फैलती जाती है गांव-गांव।

वही पहनो जो कुछ हो तुमको पसन्द,
कसो और भी चुस्त महरमके बन्द।
करो और कलियोंका पाजामा चुश्त,
वह धानी दुपट्टा वह नकसक दुरुस्त।
वह दान्तोंमें मिस्सी घड़ी पर घड़ी,
रहे आंख आईने ही से लड़ी।
कड़को कड़से बजाती फिरो,
वह बांकी अदायें दिखाता फिरो।
मगर इतना जीमें रखो अपने ध्यान,
यह बाजारी पोशाक है मेरी जान।
जना था तुम्हें माने बाजार*में,
पली शाहआलमके दरबारमें।
मिली तुमको बाजारी पोशाक भी,
वह थी दोगले काटकी फारसी।
वह फिर और भी कटती छटती चली,

कि गैबी तमांचेसे मुंह फिर गया,
महे चारदह अब्रमें घिर गया।
मेरी गुफ्तगू और हिन्दीके हर्फ,
वह शोलाफिशानी यह दरयाय बर्फ।
इस अन्दाज पे दिल हुआ लोट पोट,
दुलाईमें अतलसके गाढ़ेकी गोट?
खुदाया न क्यों मुझको मौत आगई,

*तुर्की भाषामें उर्दू छावनी या बाजारको कहते हैं। शाहजहांके लशकरमें कई भाषाओंके मिलनेसे उर्दू बनी थी। इसीसे इसका नाम बाजारी भाषा अर्थात् 'उर्दू' रखा गया।

वजे रोज उसकी पलटती चली।
वही तुमको पोशाक भाती है अब,
नहीं और कोई सुहाती है अब।
मगर एक सुन आज मतलबकी बात,
न पिछला वह दिन है न पिछली वह रात।
किया है तलब तुमको सरकारने,
तुम आई हो अङ्गरेजी दरबारमें।
सो अब छोड़िये शौक बाजारका,
अदब कीजिये कुछ तो दरबारका।
अदबकी जगह है यह दरबार है,
कचहरी है यह कुछ न बाजार है।
यहां आई हो आंख नीची करो,
मटकने चटकने पे अब मत मरो।
यहां पर न झांझोंको झनकाइये,
दुपट्टेको हरगिज न खिसकाइये।
कहांसे मेरे सिरपे सौत आ गई?
न झूमर न छपका न बाले रहे,
न गेसू मेरे काले-काले रहे।
न अतलसका पाजामा कलियों भरा,
दुपट्टा गुलाबी मेरा क्या हुआ?
न सुरमा न मिस्सी न मेहंदीका रंग,
अजब तेरी कुदरत अजब तेरे ढंग?
न बेलेकी बद्धी न अब हार है,
न जुगनू गलेमें तरहदार है।
न झांझोंकी झनझन कड़ोंका न शोर,

न कलियोंकी अब यां दिखाओ बहार,
कभी यां पे चलिये न सीना उभार।
वह सब काम कोठे पे अपने करो,
यहां तो अदब ही को सिर पर धरो।
यह सरकारने दी है जो नागरी,
इसे तुम न समझो निरी घाघरी।
तुम्हारी यह हरगिज नहीं मौत है,
न हकमें तुम्हारे कभी मौत है।
समझ लो अदबकी यह पोशाक है,
हया और इज्जतकी यह नाक है।
अदब और हुर्मतकी चादर है यह,
चढ़ो गोदमें मिस्ले मादर है यह।
यही आपकी मा की पोशाक थी,
यह आजाद[1]से पूछना तुम कभी।
इनायत है तुम पे यह सरकारकी,
तुम्हें दूसरी उसने पोशाक दी।
दुपट्टे की खसकन न महरमका जोर।
वह बांकी अदायें वह तिरछी चलन,
फिफरू हुआ हो गया सब हरन।
बस अब क्या रहा क्या रहा क्या रहा ?
फकत एकदम आता जाता रहा !
यह सौदा बहुत हमको महंगा दिया,
कि खिलअतमें हाकिमने लहंगा दिया !

१ आजादसे मतलब प्रोफेसर मुहम्मद हुसैन 'आजाद' है। उन्होंने अपनी 'आबे-हयात' नामकी पुस्तककी भूमिकामें उर्दूको ब्रजभाषाकी बेटी कहा है।

बुराई न इसकी करो दूबदू,
बढ़ायेगी हरदम यही आबरू।
पुरानी भी है वह तुम्हारे ही पास,
उसे भी पहन लो रहो बेहिरास।
करो शुक्रिया जी से सरकारका,
कि उसने सिखाई है तुमको हया।

—भारतमित्र, २८ मई १९०० ई०

अंगोछेकी अब तुम फबन देखना,
खुली धोतियोंका चलन देखना।
वह सेन्दूर बालोंमें कैसी जुटी,
किसी पार्कमें या कि सुर्खी कुटी।
गरज यह कि काया पलट हो गई,
मेरी आबरू यकबयक खो गई।
बड़े लाट साहब सताई हूं मैं,
तेरे पास फरियाद लाई हूं मैं॥

बसन्तमें विरह।

कामिनी—थामो थामो सखी !
यामिनी—क्यों सखी, ऐसे तुम क्यों करती हो ?
कामिनी—बीता शिशिर बसन्त आगया,
यामिनी—तभी पसीनों मरती हो।
कामिनी—देखो देखो कोकिल कैसे कुहू कुहू रव करते हैं ?
यामिनी—चील भी उड़ती हैं कव्वे मीठे बोल उचरते हैं।
कामिनी—अलिगन कैसे गूंज रहे हैं खिले हुए फूलोंके पास।
यामिनी—बेशक बहुत ठीक वह देखो कीड़े चाट रहे हैं घास !
कामिनी—मलय पवन बहता है देखो—
यामिनी—हां हां धूल उड़ाता है।
कामिनी—क्या कीजे क्या कीजे प्यारी ?
यामिनी—समझमें कुछ नहिं आता है !
कामिनी—जोवनकी ज्वालासे जलती हूं, अब यह जीवन जाता है।
यामिनी—सच कहती हो तीस ढले पर जोबन जोर दिखाता है।
कामिनी—हाय हाय सखि !
यामिनी—वाह वाह !
कामिनी—क्या कीजे ?
यामिनी—अपना काम करो।
कामिनी—श्याम बिना अब मरती हूं,
यामिनी—हां मरती हो तो दूर मरो।

—भारतमित्र, १८ मार्च १९०५ ई०

अबला विलाप

(१)

नारि मात तुम नारि हम, बसत तुम्हारे राज,
नारि राज महं नारिकी हाय जात है लाज।
हाय जात है लाज दुहाई मातु दुहाई,
अबला पीड़न हेत बढ़े चहुँदिस अन्याई।
राछस सम व्यवहार करत चहुँदिसतें धावें,
मन भावें सो करहिं पकरि अबलहिं जो पावें।

(२)

तुम नारी, नारीनके मनकी जानत पीर,
डूबत नवका लाजकी केहि विधि राखैं धीर?
केहि विधि राखैं धीर लाजको डूबत बेरो,
चहुँदिस हमरे भाग माहिं लखि परत अन्धेरो।
अन्यायी अन्याय करैं अरु दण्ड न पावैं,
अबला लाज गंवाय प्राणहू साथ गंवावैं!

(३)

ब्रह्मदेशकी नारि सब रोवत भरि भरि नैन,
बंगदेसकी नारिके चित महं कबहु न चैन।
चित महं कबहु न चैन बेतसी कांपैं थर थर,
ब्रह्मदेशकी नारि मरत नित गोरनके डर।
गोरन, मा! सत लियो प्रान नारीको खोयो,
हाकिम अरु जूरीन न्यायको नाम डबोयो॥

—भारतमित्र, १२ जून १८९९ ई०

टेसू

स्वागत।

बर्षा बीती सर्दी आई, टेसूजीकी पड़ी अवाई।
आये आये टेसू राव, लड़कोंके मनमें अति चाव।
बड़ी धूमसे टेसू आये, भीड़ भड़का साथ लगाये।
आये भोले भाले टेसू, लालबुझक्कड़ काले टेसू।
टेसूजीका सुनिये हुलिया, मुंह है उनका फूटी कुलिया।
चुन्धी आंखें बैठा नाक, तिसपर हरदम बीनी पाक।
ऐसे हैं टेसू महाराज, भक्तनके नित सारें काज।
देश देशकी बात सुनावें, गुप्त प्रकट सब खोल दिखावें।
सुनिये उसका पूरा हाल, कैसा बीता अबका साल॥

बड़ेलाट कर्जन

बार दूसरी कर्जन आये, सनद साल दोकी फिर लाये।
आय बम्बईमें यों बोले, कौन बुद्धि मेरीको तोले।
मुझसा कोई हुआ न होगा, यह जाने कोई जानन जोगा।
मैं जो कुछ चाहूं सो होय, मेरे ऊपर और न कोय।
राजाका भाई था आया, उसको भी नीचा दिखलाया।
पहले मुझको मिला सलाम, तब फिर उससे हुआ कलाम।
मुझको सोना उसको चांदी, मुझको बीवी उसको बांदी।
गया विलायत शोर मचाया, सबको भौंचक करके आया।
बार बार यह कहा कड़ककर—किसका शासन मुझसे बेहतर?
भारतको रग मैंने पाई, तुम क्या समझोगे मेरे भाई।
देखो मेरे यह दो साल, कैसा सबको करूं निहाल।
मेरे पीछे जो कोई आवे, बैठे सोवे मौज उड़ावे।
करना पड़े न कुछ भी काम, बैठे बैठे मिले सलाम॥

सच्चाई

बड़ेलाटके जीमें आई, दिखलावें अपनी सच्चाई।
सभा जोड़ तब यह फरमाया, जुग जुग रहे हमारा माया।
हमही भारतका कल्यान, करके देंगे पद निरबान।
कल जो कुछ कौंसिलमें किया, वह तो तुमने सब सुन लिया।
है कानून जबान हमारी, जो नहीं समझे वही अनारी।
हम जो कहें वही कानून, तुम तो हो कोरे पतलून।
हमसे सचकी सुनो कहानी, जिससे मरे झूठकी नानी।
सच है सभ्य देशकी चीज, तुमको उसकी कहां तमीज ?
औरोंको झूठा बतलाना, अपने सचकी डींग उड़ाना।
येही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है।
बोले और करे कुछ और, यही सभ्य सच्चेके तौर।
मनमें कुछ मुंहपे कुछ और, यही सत्य है करलो गौर।
झूठको जो सच कर दिखलावे, सोही सच्चा साधु कहावे।
मुंह जिसका होसके न बन्द, समझो उसे सच्चिदानन्द ॥

मल्लयुद्ध

बनके सच्चोंके सरदार, करके खूब सत्य परचार।
धन्यवाद सुनते थे कर्जन, उतरी एक स्वर्गसे दर्जन।
उसने लेकर तागा सुई, जादूकी एक खोदी कुई।
उससे निकली फौजी बात, चली तबेलेमें तब लात।
भिड़ गये जङ्गी मुल्की लाट, चक्कीसे चक्कीका पाट।
गुत्थमगुत्था धींगा मुश्ती, खूब हुई दोनोंमें कुश्ती।
ऊपर किचनर नीचे कर्जन, खड़ी तमाशा देखे दर्जन।
लण्डनमें तब पड़ी पुकार, किसकी जीत कौनकी हार।
बादशाहने हुक्म सुनाया, सो सुनकर सबके मन भाया।

सदा विजय जिसने है पाई, अब भी जीत उसीकी भाई।
कलम करे कितनीही चरचर, भालेके वह नहीं बराबर।
जो जीता सो मजे उड़ावे, जो हारा सो घरको जावे।
किचनर जीते कर्जन हारे, शोर मचा दुनियामें सारे॥

रोष

बड़ेलाटको गुस्सा आया, बड़े रोषसे कलम उठाया।
लिखा ठनकके सुनो हुजूर, अब बन्देको कीजे दूर।
मुझको जल्दी रुखसत कीजे, और किसीको यहपद दीजे।
लण्डनसे यह उत्तर आया, कहा आपने सो मन भाया।
कहा आपका सब मंजूर, जल्द हुजियेगा काफूर।
सुनते ही बस उड़ गये होश, मिट गया सारा जोश खरोश।
सोचा और हुआ कुछ और, उल्टा होगया कैसा दौर!

विषादमें हर्ष

अहा! ओहो!! हुर्रे हुर्रे!!!, बङ्गदेशके उड़ गये धुर्रे!
रह न सका भारतका लाट, तो भी बङ्ग किया दो पाट।
पहले सब कुछ कर जाता हूं, पीछे अपने घर जाता हूं।
बेशक मिली उधरसे लात, किन्तु यहां तो रह गई बात।
वह थी अपने घरकी चोट उसके सहनेमें नहिं खोट।
पर बाहर इतराये जाना खाली शेखी खूब दिखाना।
अफसरसे खा लेना मार, पर अधीनको दे पैजार।
जबरदस्तसे चट दब जाना जेरदस्तको अकड़ दिखाना।
यही सभ्यशासनका सार, सुन लेना तुम मेरे यार॥

स्वदेशी आन्दोलन

देख देशको अपने ख्वार, बंगनिवासी उठे पुकार।
आंगनमें दीवार बनाई, अलग किये भाईसे भाई।

भाईसे किये भाई दूर, बिना विचारे बिना कुसूर।
आओ एक प्रतिज्ञा करें, एक साथ सब जीवें मरें।
चाहे बंग होय सौ भाग, पर न छुटे अपना अनुराग।
भोग विलास सभी दो छोड़, बाबूपनसे मुहलो मोड़।
छोड़ो सभी विदेशी माल, अपने घरका करो ख्याल।
अपनी चीजें आप बनाओ, उनसे अपना अंग सजाओ।
भजो बङ्गमाताका नाम, जिससे भला होय अञ्जाम।

ताऊ और हाऊ

एक बागमें डेढ़ बकायन, उतरी वहां स्वर्गसे नायन।
नायनने यह कही कहानी, मारवाड़में हुआ न पानी।
वहां कहतसे हाहाकार, कलकत्तेमें बन्द बजार।
कपड़ेकी बिकरी नहिं होती बिके न चादर बिके न धोती।
दोनों ओर देखके छूछा, हाऊने ताऊसे पूछा।
कहिये ताऊ अब क्या करें, कैसे अपनी पाकेट भरें।
बिकती नहीं एक भी गाँठ, सब गाहक बन बैठे ठांठ।
दिये बहुत लोगोंको झांसे, फंसता नहीं कोई भी फांसे।
विजयादशमी है नजदीक, कुछ तो करना होगा ठीक।
ताऊ कहे सुनो जी हाऊ, तुम निकले कोरे गुड़खाऊ।
फंसे उसीको खूब फंसाओ, नहीं फंसे तो चुप होजाओ।
देश वेश चूल्हेमें जाय, "सांसो म्हारी करै बलाय"।
खाओ पीओ मजे उड़ाओ, अकड़ अकड़के शान दिखाओ।
नहीं पीसगुड पटसन तो है, नारंगी नहिं बैगन तो है।
पटसनके रस्से बटवाओ, उससे सारा घर बंधवाओ!
सारा घर जब होगा एक, तभी रहेगी अपनी टेक॥

आशीर्वाद

टेसू आये लो असीस, भारत जीवे कोटि बरीस।
कभी न उसमें पड़े अकाल, सदा वृष्टिसे रहे निहाल।
अपना बोया आपही खावें, अपना कपड़ा आप बनावें।
बढ़े सदा अपना व्यापार, चारों दिस हो मौज बहार।
माल विदेशी दूर भगावें, अपना चरखा आप चलावे।
कभी न भारत हो मुहताज, सदा रहे टेसूका राज॥

—भारतमित्र, ३० सितम्बर १९०५ ई०

कर्जनाना

(१)

झांझ झमाझम ढोल धमाधम कौन बजाता आया,
सब कुछ उलट पलट कर डाला सब संसार कंपाया ?
"वह मैं ही हूं" झटसे यों श्रीकर्जनने फरमाया,
"आलीशान पुरुष हूं मुझसा कोई कभी न आया।"

(२)

किसने मात किया "बरनम"को थियेटरमें गर्राया,
किसने दौर बादशाही फिर दिल्लीको दिखलाया ?
कर्जन बोले "मैंने वह दिल्लीको खेल दिखाया,
क्योंकि 'गाड'ने जीसे मुझको शान-पसन्द बनाया।"

(३)

किसने सरकारी भेदोंको भयप्रद अधिक बनाया,
किसने सुन्दर शिक्षाबिलको दुलकी चाल चलाया ?
"निश्चय काम किया यह मैंने" बोले यों श्रीकर्जन,
"सर्व शक्तिमय हूं मैं मुझको कौन कर सके बर्जन।"

(४)

किसने दिया गुफामें किचनरकी मूछोंको झटका,
किसको बालफूर और उसके लोगोंने धर पटका ?
बोले कर्जन "सचमुच वह एक बुरी पटखनी खाई,
अपनी आप खोपड़ी मानो पत्थरसे टकराई।"

(५)

किसने बङ्गभूमिको दो टुकड़े करके दिखलाया,
किसने बेरहमीसे भाई-भाईको बिछड़ाया ?
बोले कर्जन "इसका कर्त्ता हूं बस मैं ही अकेला,
हाथ हैं मेरे लोहेके, दिल है पत्थरका ढेला।"

(६)

किसने मनचष्टरको सड़कों-सड़कोंपर टकराया,
किसने मलमल और कपड़ोंको आंधीमें उड़वाया ?
"किया है मैंने" कर्जन बोले "रञ्ज करेगी चेम्बर,
भूत भरे इसका हरजाना जब पहुंचूं अपने घर।"

(७)

किसने देशी चीजोंमें फिर सञ्चय प्राण कराया,
किसने सब तूफान बखेड़ोंको यहांसे भगवाया।
किसने सब बाबू लोगोंका नेशन एक बनाया ?
"किया तो है पर इच्छासे नहिं" कर्जनने फरामाया॥

—भारतमित्र, १८ नवम्बर १९०५ ई०

छोड़ चले शाइस्ताखानी
रोती छोड़ी प्यारी रानी;
उम्मीदों पर फेरा पानी,

है है उसकी भरी जवानी,
यह क्या तुमने दिलमें ठानी,
छोड़ चले शाइस्ताखानी!
पहले तो वह धूम मचाई,
मुल्कों मुल्कों फिरीं दुहाई,
सबने जाना कहर खुदाई,
अब यह कैसे जीमें आई,
छोड़ चले शाइस्ताखानी!
फिरसे जारी की नव्वाबी,
फिरसे छलका रंग गुलाबी,
ढाकेमें फैली शादाबी,
पर यह कैसे हुई खराबी?
छोड़ चले शाइस्ताखानी!
नव्वाबीकी शान निराली,
सब कहते थे खूब निकाली,
मिलता न था मिजाजे आली,
पर अब तो पिटती है ताली,
छोड़ चले शाइस्ताखानी!
पांच सदीका गया जमाना,
आप चाहते थे फिर लाना,
फिरसे वहशीपन फैलाना,
उधड़ गया पर ताना बाना,
छोड़ चले शाइस्ताखानी।
रोक स्वदेशीकी की भारी,
नादिरशाही करके जारी,

हुई सजाओंकी भरमारी,
आखिर करके अपनी ख्वारी,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
जारी कर सरकुलर लाइन,
और एमर्सन ठोंके फाइन,
हाकिम पुलिस हुए कम्बाइन,
पर यह समय बड़ा है डाइन,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
गुरखोंकी पलटन बुलवाई,
जगह जगह पर पुलिस चढ़ाई,
लाठीकी फिर गई दुहाई,
पर वह भी कुछ काम न आई,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
खूब अमनमें लठ चलवाया,
कितनों ही का सिर तुड़वाया,
नाहक पकड़ जेल भिजवाया,
आखिर यह दिन आगे आया,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
बरीसालकी देख तबाही,
भूली दुनियाँ सिक्खाशाही,
बृटिश रूलपर फेरी स्याही,
खत्म हुई अब आलीजाही,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
लड़के बच्चे खूब बिगाड़े,
कितनेही इसकूल उजाड़े,

मारामार हुई दिनधाड़े,
पर कुछ भी नहिं आया आड़े,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
बूढ़पनकी लाज न आई,
लड़कोंसे की खूब लड़ाई,
कुछ नहीं सोचा बात बढ़ाई,
इसो सबबसे मुँहकी खाई,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
सुनी उदय पटनीकी लीला,
किया मार्लेने तब ढीला,
चला न कुछ भी वां पे हीला,
आखिरको मुँह हो गया पीला,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
गये आगरे थे बुलवाये,
जैसे गये न वैसे आये,
बिगड़ कर्जनके बहकाये,
आकर यह सब फूल खिलाये,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
अपनी अकल काममें लाते,
तो क्यों यह सब शर्म उठाते,
काहे दुनिया को हँसवाते,
ऐसे छोड़ न घर को जाते,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !
भूल गये थे तुम कुस्तानी,
करते थे अपनी मनमानी,

पर यह दुनिया तो है फानी,
आप चले रह गई कहानी,
छोड़ चले शाइस्ताखानी !

—भारतमित्र, सन् १९०६ ई०

पोलिटिकल होली

टोरी जावें लिबरल आवें। होली है, भई होली है।
भारतवासी खैर मनावें । होली है भई होली है।
लिबरल जीते टोरी हारे। हुए मार्ली सचिव हमारे।
भारतमें तब बजे नकारे। होली है भई होली है।
लिबरल दलकी हुई बहाली। खुशी हुए तब सब बंगाली।
पीटें ढोल बजावें ताली। होली है भई होली है।
हुए मार्ली पद पर पक्के। बराडरिकको पड़ गये धक्के।
बंगाली समझे पौ छक्के। होली है भई होली है।
बंग भंगकी बात चलाई। काटनने तकरीर सुनाई।
तब मुर्लीने तान लगाई। होली है भई होली है।
बंगभंगका हमको गम है। तुमसे जरा नहीं वह कम है।
पर अब उसमें नहिं कुछ दम है। होली है भई होली है।
होना था सो हो गया भइया। अब न मचाओ तौबा दइया।
घरको जाओ लेह बिलइया। होली है भई होली है।
नहिं कोई लिबरल नहिं कोई टोरी। जो पर नाला सोही मोरी।
दोनोंका है पन्थ अघोरी। होली है भई होली है।
अब भी समझो भारत भाई, तुम्हें तुम्हारी दशा जनाई।
आप सहो जो सिर पर आई। होली है भई होली है।
करते फुलर विदेशी बर्जन। सब गोरे करते हैं गर्जन।

जैसे मिण्टो जैसे कर्जन । होली है भई होली है ।
बराडरिकने हुक्म चलाया । कर्जनने दो टूक कराया ।
मर्लीने अफसोस सुनाया । होली है भई होली है ।

—भारतमित्र, सन् १९०६ ई०

नया काम कुछ करना

नया काम कुछ करना साधो ! नया काम कुछ करना ।
लड्डू पेड़ा पापड़ छोड़ो, घास पात अब चरना ।
कान कटाना नाक छटाना, उल्टे होकर चलना ।
इत्र एसंस लवंडर छोड़ो, तेल किरासन मलना ।
उछलो कूदो दौड़ो फांदो, फुदुक फुदुक कर धाओ ।
घोड़ा छोड़ो गाड़ी छोड़ो, भैंसों पर चढ़ जाओ ।
दाल भात रोटीको छोड़ो, छोड़ो मौसी मामा ।
कोट बूट पतलून उतारो, पहनो एक पजामा ।
रल मिलके सब कोई दौड़ो, पहुंचो टाउन हाल ।
हिन्दूपन पर लेक्चर झाड़ो, गाओ ताल बेताल ।
कलम चलाओ, बात बनाओ, गला फाड़ चिल्लाओ ।
हिन्दूधरम प्रचार करो भई, होनोलूलू जाओ ।
जो न बने तुमसे कुछ भाई, पीटो पकड़ लुगाई ।
अथवा नाचो ताक धिनाधिन, सिरपर उन्हें बिठाई ।
अथवा जो तुम होते भाई, तो अब मूड़ कटाओ ।
पर्वत परसे कूदो अथवा जलमें गोते खाओ ।
नये ढङ्गसे जीना अथवा नये ढङ्गसे मरना ।
नया काम कुछ करना साधो ! नया काम कुछ करना ।

— भारतमित्र, सन् १९०६ ई० ।

टेसू

स्वागत

मेह बरसाते टेसू आये। मौज उड़ाते टेसू आये।
वर्षा होती मूसलधार। टेसू गावें खूब मलार।
खूब शरत्में टेसू आया। टेसू राजाके मनभाया।
अच्छा हुआ समयका फेर। कमल नहीं कीचड़का ढेर।
रिमझिम रिमझिम बरसे पानी। टेसू बोले सुनरी नानी।
चुप क्यों बैठी है मरजानी। बढ़ियासी एक सुना कहानी।

कर्जन-फुलर

नानी बोली टेसूलाल। कहती हूं तुझसे सब हाल।
मास नवम्बर कर्जन लाट। उलट चले शासनका ठाट।
फुलरजंगको गद्दी देकर। चल दिये अपनासा मुँह लेकर।
फुलरजंगने की वह जंग। सब बंगाल हो गया दंग।
लड़कोंसे की खूब लड़ाई। गुरखोंकी पल्टन बुलवाई।
किया मातरम् बन्दे बन्द। और सभाएँ रोकी चन्द।
जोर स्वदेशीका दबवाया। जगह जगह पर लठ चलवाया।
बरीसालमें की वह करनी। जिसकी महिमा जाय न वरनी।
अन्ततलक लड़कोंसे लड़े। आखिरको उल्टे मुँह पड़े।
पकड़ा पूरा एक न साल। आप गये रह गया अकाल।
खूब वचन गुरुवरका पाला। पर आखिरको हुआ दिवाला।

प्रिंस आफ वेल्स

सपत्नीक युवराज पधारे। धन्य हुए तब भाग हमारे।
कई महीने दौरा किया। घाट घाटका पानी पिया।
जहां तहांपर हुई दिवाली। खूब दिखाई दी खुशहाली।
कूच हुआ जब उनका डेरा। रहा हिन्दमें वही अँधेरा।

मिन्टो मार्ली

कर्जनजी जब देश सिधारे। तब मिन्टोजीने पगधारे।
लोग लगे अभिनन्दन देने। चुपके चुपके उत्तर लेने।
मारवाड़ियोंसे खुश होकर। कहा बनो तुम रायबहादुर।
पढ़ो लिखो मत, मौज उड़ाओ। आये साल उपाधी पाओ।
बंगदेशियोंसे यों कहा। तुम तो हो झगड़ालू महा।
हम नहीं जाने बंग विभाग। दूर खड़े हो गाओ राग।
हम तो भई अब घबराते हैं। लीजे शिमलेको जाते हैं।
शिमले चले गये चुप साधी। वहां लग गयी अटल समाधी।
सुनो विलायतकी अब बात। कनजरवेटिव खागये मात।
बाज उठी लिबरलकी तंत्री। हुए मार्ली भारतमंत्री।
मन्त्री होकर कथा सुनाई। सुनो बंगके लोग लुगाई।
बंगभंगका है अफसोस। पर अब बात गई सौ कोस।
होना था सो हो गया भाई। कर्मरेख नहिं मिटे मिटाई।
मिन्टोसे है अपना मेल। दिन दिन बढ़े प्रीतिकी बेल।

गुरु घंटालका स्वप्न

बिछी सवा गज ऊंची खाट। तोशक और तकियोंका ठाट।
उसपर पड़े गुरुघंटाल। सुनिये उनका अजब खयाल।
करवट लेनेको जब फिरे। औंधे मुंह धरती पर गिरे।
छातीमें कुछ आई चोट। आंख सूजकर हुई पपोट।
चेले गये दौड़कर पास। मुंह लटकाये चित्त उदास।
बोले धन्य गुरु महाराज खैर करी ईश्वरने आज।
गुरु कहें सब चेले सुनो। मत रोओ मत सिरको धुनो।
स्वप्न हमें एक ऐसा आया। नन्हा बालक गोद खिलाया।
बहुत देर तक रहे खिलाते। कुछ हंसते कुछ उसे हंसाते।

गिरा हाथसे छूटकर लड़का। उसे देख मेरा जी धड़का।
उसे उठानेको जब कूदा। तब यह काम हुआ बेहूदा।
लड़का बड़का हाथ न आया। पर छातीमें धक्का खाया।
चेले बोले मिलकर मारे। धन्य गुरूजी भाग हमारे।
आप तो थे खटियापर सोते। अगर कहीं घोड़ेपर होते?

—भारतमित्र, सन् १९०[illegible] ई०

गुरूजीका हाल

कहा गुरूजी कैसा हाल। रह गई चोटी उड़ गई खाल।
फैलाये कितने ही जाल। गली नहीं पर मेरी दाल।
रही हमारी जो कुछ पोल। यारोंने सब डाली खोल।
नाहक मैं उलझा बेतौर। किया नहीं कुछ पहले गौर।
"टिड्ढाणं" की ढाल बनाई। उल्टी सीधी खूब सुनाई।
पर आखिरको मुँहकी खाई। अपनी करनी आगे आई।
जान गये सब लड़के बच्चे। नौकर चाकर अकलके कच्चे।
जान गई देखो घरवाली। नौकर चाकर पीटें ताली।
जा चाकरनी पान लगाती। वह भी हमें देख मुसकाती।
इससे सबको भेजा घर। तनहा करते यहां गुजर।
बैठे थे हम मनको मारे। भाईबन्द आ गये सारे।
मोटे मोटे लठ्ठ उठाये। बोले,—कल्लू कस बुलवाये।
तो संग को करि सकै मरोरि। अभी देहि हम माथा फोरि।
करनेको तब मदत हमारी। लगी दौड़ने दुनियां सारी।
सबके आगे जोड़े हाथ। खूब दिया भई तुमने साथ।
आये पहले हाथीराम। कोई न जाने जिनका नाम।
हैं कृतज्ञ हम सबके भाई। अंकाबंका सजन कसाई।

मरहट्ठोंने रखलई लाज। इससे जान बची है आज।
तो भी कुछ कुछ हैं गुर्राते। चुपके चुपके हैं चिचियाते।
इस्पेन्सरका लेकर नाम। बोलो लड़को सीताराम।

गुरुके पिट्ठू

बिना बुलाये हम थे आये। दोनों हाथों सहनक लाये।
संसकिरतकी तोड़ी टांग। घोट पीसके छानी भांग।
पीकर भांग हुए बेहोश। सरपट दौड़े सतरह कोस।
'अजब रसायन' तब है बना। जैसे गीदड़ वैसे धुना।
ली उतार पुरखोंकी पगड़ी। नाक पकड़के सबकी रगड़ी।
पण्डितप्रवर हुए तब हम। वाहरे हम, भई वाहरे हम!
राजाजीका गुन था गाया। हाथ नहीं एक धेला आया।
टूट गई है सारी आस। इससे जी है बहुत उदास।
चूक गये हम अपनी चाल। रह गई चोटी उड़ गई खाल।

—भारतमित्र, १९०६ ई०

व्याकरणाचार्य

साधो मैं व्याकरणाचारी

घरहीके कोनेमें मिल गई मुझको विद्या सारी।
सबसे अधिक पसन्द मुझे है अपनीही टिड्ढाणं।
मेरा कहना तुम भी मानो, बाबा वचन प्रमाणं।
साईसीका इल्म सुना है, जैसे था दरयाई।
मेरी भी विद्याकी समझो, उतनी ही लंबाई।
यह भी वह भी तू भी तुम भी, उसको एक न जाने!
बेजाने ही सब बकते हैं, जाने सोही बखाने।
स्वर्ग मर्त्य पाताल शून्यमें, इसका नहीं ठिकाना

सृष्टी रच डाली तो क्या है, ब्रह्मा भी नहिं जाना।
कुछ सीखे थे बाबा साहब, कुछ जाने थे नाना।
पूरा इसे आप सब जानो, बन्देहीने जाना।
जो तुम कहो, जानते हो तो क्यों नहिं करते जाहिर।
तो तुम सुनो साफ, इसमें मैं नहीं जरा भी माहिर।
दुशमन तो दुशमन ही है पर, जो कोई है प्यारा।
उसको भी क्या बुद्धि भला, वह क्या समझे बेचारा।
कलयुगदास कहे करजोरे, यह सिद्धान्त हमारा।
अपनी आप गायके महिमा, हो भवसागर पारा।

—भारतमित्र, सन् १९०७ ई०

भैंसका मरसिया।

(१)

बढ़ दिलकी क्योंकर न अब बेकरारी।
जो मरजाय यों भैंस लाला तुम्हारी?
वह उम्र अपनी इतनीही थी लाई बिचारी।
सितम् कर गई जो अदमको सिधारी!
कहूं क्या जो मुझको हुआ रंजोगम है।
यह सच है कि तुमसे जियादह अलम है।

(२)

तअजुब है किस वास्ते मर गई वह!
यही सोचता हूं कि क्या कर गई वह!
खफा हो गई दिलमें या डर गई वह?
जो इस तरह सिर फोड़ कर मर गई वह।
मेरे तनपे दहशतसे आया पसीना।
सुना जब कि टकरोंसे फोड़ा था जीना।

(३)

न किस तरह फिर रञ्ज आजाय जी पर।
कि दादीके थी आपके वह बराबर।
हुआ आपको भी गमोरञ्ज यकसर।

भला ऐसा सदमा सहा जाय क्योंकर ?
बिचारीके सब दांत भी गिर पड़े थे।
मगर कान दोनों तो साबित खड़े थे।

(४)

खड़ी देखती है वह पड़िया बेचारी।
धरी है योंही नांद सानीकी सारी।
पड़ी है कहीं टोकरी और खारी।
वह रस्सी गलेकी रखी है संवारी।
बता तो सही भैंस तू अब कहां है ?
तू लालाकी आंखोंसे अब क्यों निहां है ?

(५)

न यों तेरे मरनेका हरगिज यकीं था।
अभी तेरा मरनेका सिनही नहीं था।
तेरे दूधका जिक्रही हर कहीं था।
तेरा दूध मक्खन था या अंगबीं था ?
भला अब किस लिये अब कर हाय हू हू ?
कि रोनेसे वापिस नहीं आयगी तू।

कतए तारीख

दोस्तकी मेरे भैंस थी बीमार
थे वह बेचारे सख्त खादिमें भैंस।
देखते देखते यकायक हैफ
फोड़कर सिर निकल गया दमे भैंस।
दिलने मुझसे कहा कि लिख अय "शाद"
कतए तारीख और मातमे भैंस।
दो दफे सिर पटकके हातिफने
यूं कहा "आह सदमये गमे भैंस।।"*

—अवधपञ्च, २० सितम्बर १८८५ ई०

---

* कामोंके भीतर जो वाक्य हैं इसके फारसी अक्षरोंसे भैंसके मरनेका सन् १३०२ हिजरी निकलता है।